श्री
जैनतत्त्वादर्श ग्रंथ

विद्यमानपंडितप्रवरमहामुनिआत्मारामजी

आनंदविजयजीविरचित,

समस्तजनदुराग्रहतिमिरपाटनप्रभाकरतुल्य

तथा

सुहितोपदेशामृतह्रदमय

तिनकूं

श्री मकशुदाबादनिवासी बाबुसाहेब राय

धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूरके

आश्रयसें

भीमसिंह माणकाभिध श्रावकनें

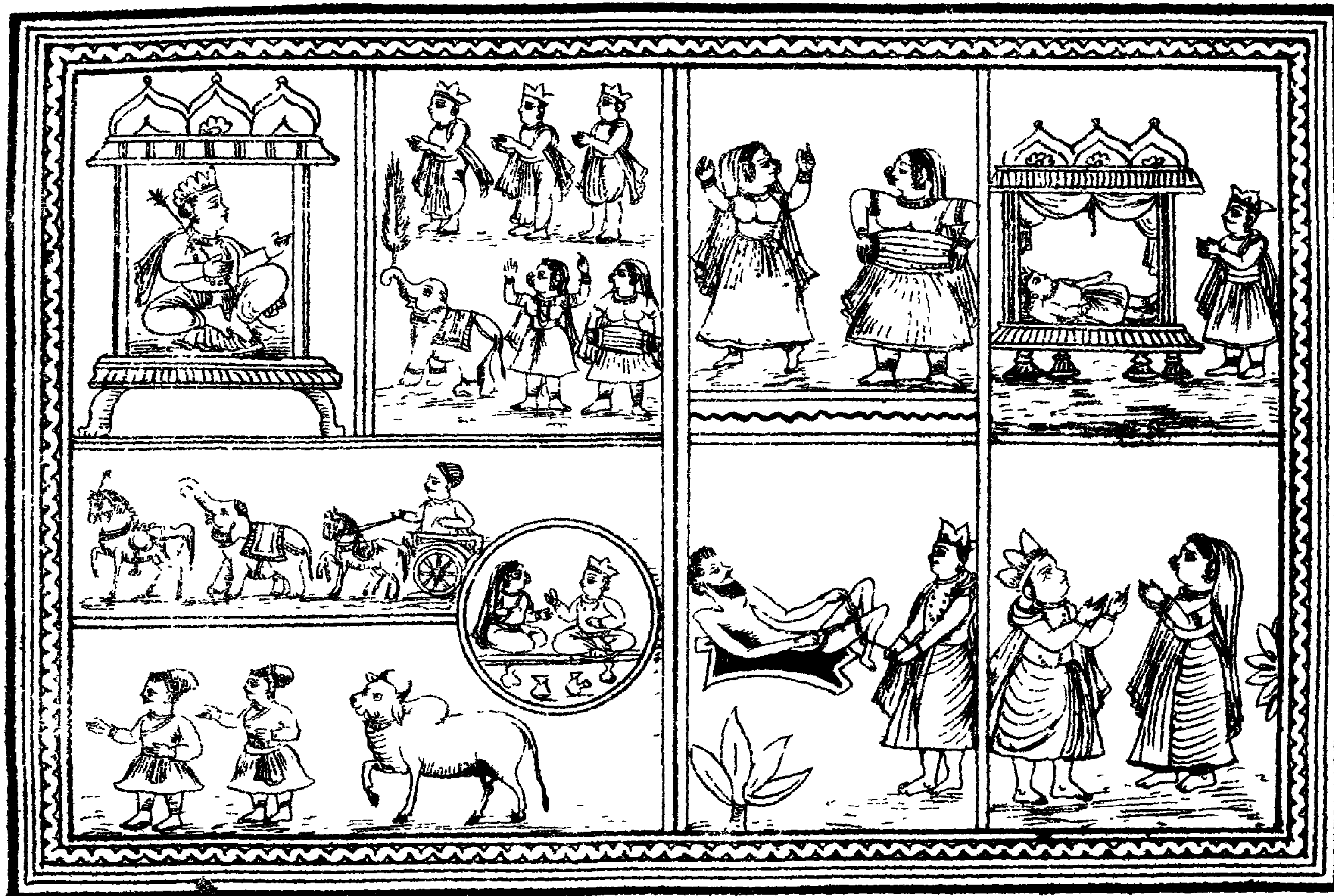
श्री मुंबापुरीमें

निर्णयसागर मुद्रालयके विषे मुद्रित करायके प्रसिद्ध किया है.

संवत् १९४० के ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी भृगुवासर तारीख ६ सने १८८४ इ०



मुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी.



तामलितापस ईसानेंद्रथया तेनुं चित्र.

प्रस्तावना.

अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेजी बहोत ग्रंथोंके अवलोकन करने वाले महामुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी है, इनके तत्त्वज्ञानकी शक्ति अरु परोपकारबुद्धि तथा यह पंचम कालके वर्त्तमान समयमें सिद्धांतोक्त उत्सर्गापवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गी सुसाधुयोंकी शुद्ध क्रियामें प्रवर्त्त हो कर पृथ्वीमें विहार करने संबंधी प्रख्याती यह नारतवर्षके बहुत देशोंके रहनेवाले श्रावक मंमलमें प्रसिद्ध है अरु इनकी निश्रामें रहने वाले साधुयोंका समुदायजी पूर्व महामुनियोंके सदृश बहोत गुणवान् निर्विकारी मुद्रावाला है, तातें आत्मस्वरूपको जान कर परम पदकों साधने वाले, क्षांत्यादिक दशविध यतिधर्मके आराधक यह सत्पुरुष विषे हमारे इहां कुछ विशेष प्रशंसा लिखनेकी आवश्यकता नहीं है. इनके तीव्रबुद्धि अरु धर्मांजिरुचि आदिक उत्तम गुण जो है, सो इनका बनाया यह ग्रंथ बांचनेसें सद्बुद्धिमान् आपही जान जायंगे. ऐसे सर्वदर्शनग्रंथज्ञाता अरु मुनिधर्मपालनशील महान्पुरुष, यह सांप्रत कालमें थोडेही दिखनेमें आते हैं.

अब पूर्वाचार्योंके संस्कृत अरु मागधी नाषामें रचे हूये ग्रंथोंका आशय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोके उपर उपकार बुद्धि करकें हालमें पूर्वोक्त महात्माने यह " जैनतत्त्वादर्श " नामा ग्रंथकी रचना न्यारे न्यारे बारह परिछेदरूपसें करी है. सो इस प्रकारसें किः—

प्रथम परिछेदमें शुद्ध देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है, दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप वर्णन कीया है, तीसरे परिछेदमें शुद्ध गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है, चौथे परिछेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पांचवे परिछेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसें कथन कीया है, छठे परिछेदमें सम्यक्ज्ञानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोंके स्वरूप कहे हैं, सातवे परिछेदमें सम्यक्दर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिछेदमें सम्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमें देशविरतिचारित्र संबंधी श्रावकोंके बारह व्रतोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है, नववे परिछेदमें श्रावकोंका दिनकृत्य, श्राद्धविधि ग्रंथानुसारसें लिखा है, दशवे परिछेदमें श्रावकोंका रात्रि

कृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, संवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांचो कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवे परिछेदमें श्रीआदीश्वर नगवान्सें ले कर श्रीमहावीर नगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोंका वर्णन करकें उस्सें जैनमत अनादि है औसा सिद्ध करा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखंडी धर्मके मतों अमुक अमुक वखतसें निकले हैं यहनी दर्शाय दीया है, बार हवे परिछेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीछें के किंचित् इतिहास लिखे है. इस्सेंनी कितनेक नवीन मतों निकलनेका वखत मालुम पडजाता है.

इस प्रकारसें उपर लिखे हूये बारह परिछेदों करिकें यह ग्रंथ समाप्त कीया है. यह ऊपर कहे हुये प्रत्येक परिछेदमें मात्र उसमें लिखे नये वि षयोंकाही वर्णन कीया है, इतनांही नहीं, परंतु उसके साथ मीमांसकादि अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखकें पीछें पूर्वाचार्य रचित सम्मतितर्कादि अ नेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खंमननी सविस्तर कीया है, तानें यह ग्रंथके बांचनेवालोंकूं अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कछुक स्वरूपनी मालुम हो जावेगा, फेर उसका यथास्थित खंमननी जाननेमें आवेगा.

जैसें मनःकल्पनासें निकले हूये नवीन दर्शनोंका उछापन करनेमें यह ग्रंथ उपयोगी है तैसेंही कितनेक जैनमतमें प्रवर्त्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी अनेकांत शैलीकों न पीछाननेवाले औसे विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञ जनोंकी अज्ञानता दूर करनेकोंनी यह ग्रंथ बहोत उपयोगी है, क्यों कि, इस वर्त्तमान कालमें कितने एक जैनमती अपनीअपनी मरजी मा फक अध्यात्मज्ञानी बनकें व्यवहारपक्षका त्याग करकें आवश्यकादि क्रि यायोंकों उछाप कें एकही निश्चयमार्गकों स्वीकार करनेकाही उपदेश लो कोंकों करते फिरते हैं; औसे अल्पवेत्ता एकांतपक्षके ग्राहक, स्वमतीयोंकों नी बहोत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशंकायोंके निवारण पूर्वक क्रि यादि शुनव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहोत करकें बठे परिछेदमें चौदह गुण स्थानोंके स्वरूपमें जहां बठे सातमे गुणस्थानकका स्वरूप कथन कीया है, उसी जगापर अरु दूसरें परिछेदोंमेंनी बहोत स्थलोंमें उपदेश कीया है.

तथा अबके समयमें कछुक संस्कृतादि शास्त्राभ्यास करकें अरु कोइ ग्रंथ देखे न देखे औसें कितनेक लोक अपनी मनःकल्पित बातों कहते हैं कि जै नमत बौद्धमतमेंसूं निकला है, कितनेक कहते हैं कि गौतमऋषिने जैनमत

चलाया हैं, ऐसी विचित्र प्रकारकी कल्पना अज्ञानी लोक करते हैं, तथा वेदोंकों सच्चा करणे वास्ते उनके पुराना अर्थोंकों उलटायकें नवीन अर्थ बनाने वाले दयानंदजीने तो जैनमतके लक्षावधि ग्रंथो आज मोजूद है तिनमेंसूं कोइएक ग्रंथके एक पत्तेनी देखे न होवेंगें तोनी विचारे नद्रक शिष्योंकों अपना पांमित्य दर्शावनेके वास्ते आपके बनवाये हूये पुस्तकोंमें जैन अरु चार्वाक ए दोनुं मत एकही करकें लिख दीये हैं, ऐसें ऐसें अपनी कपोल कल्पित बातों करकें नोले लोकोंकों फसाने वाले कपटी लोकोंका कपट रूप वल्लीका छेदन करणेकोंनी यह ग्रंथ कुठार समान है.

तथा वर्त्तमान समयमें कितनेक अल्पतर,सांसारिक विद्यामात्रकाही कछुक अन्यास करिकें,ऐसें जान रहे हैं कि,हमही सर्व शास्त्रोंके रहस्यार्थ जान गये हैं,दूसरे धर्माचार्यादिकों तों कुछनी समजते नहिं. वो अपनी दुर्बुद्धिके प्राबल्यसें ऐसे जान रहे हैं कि, पुण्यपापादिक, स्वर्ग नरक परनवादिक अरु धर्मकर्मादिक कुछनी नही है; सब ढोंग है. खाना,पीनां और मौज करनां यही सच्चा है,इत्यादि चार्वाक दर्शनके न्याई नास्तिक होय बैठने वालोंकोंनी अनेक शास्त्रोंका हेतु दृष्टांत दर्सायके कोइ कोइ परिछेदके कोइ कोइ स्थलोंमें अच्छी युक्तियों पूर्वक उनका दुराग्रह दूर करणेका उपदेश करणेमें आया है.

तैसेंही मात्र हम जैनमतवाले हैं; ऐसा नाम धराय कें निःकेवल अपने अज्ञानसें परानवित हूये हठग्राहित्वकी प्रकर्षतासें श्रीवीतरागनाषित धर्मकों उलटाय कें अपनी स्वेछासें श्री जिनप्रतिमाकों उछाप कें जैनमतकी हेलना करनेवाले ऐसें ढूंढकादि लोकों जो यह पंचमकालके महात्म्यसें बहोत दुष्ट परिणतिकों धारण करकें, नद्रकजनोंकों अधर्मका उपदेश करते फिरते रहते है; उन दुर्गतिमें पडनेवाले जनोके विषकों दूर करणे वास्तेनी यह ग्रंथ सुधा तुल्य औषधसदृश दीख पडता है. क्योंकि,इन लोकोंकोंनी कुमार्गसें हटायकें सन्मार्गमें ल्यावने वास्ते यह ग्रंथके प्रत्येक परिछेदोंमें बहोत जगेपर अनेक शास्त्रोंकी साक्षीयों दर्सायकें उपदेश कीया है, इस्सें इन लोकोंपरनी यह ग्रंथ बनानेवालेने बडा उपकार कीया मालुम होता है.

औ इस ग्रंथमें कितनेक इतिहासो ऐसे लिखे है किः—जिन इतिहासकों बांचनेसें शास्त्रोंमें कही हुइ वार्त्तायोंकूं आजके समयमें अयोग्य माननेवालोंकी शंकायों तत्काल दूर होयकें उलटी तिस शास्त्रोंके उपर यथार्थ आस्ता

हो जावे, इत्यादिक अनेक वार्त्ता चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमें सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ठ सुबोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसें हटाने वाला बहोत मनोरंजक है इन ग्रंथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसें प्रस्तावनाकी वृद्धि होति है इस वास्ते बांचने वाले सज्जनोंकों इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसें विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणेसें यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा.

और यह ग्रंथकी हिंदुस्थानी जाषामें रचना करी है तिस्सें गुर्जर, मार वाड, पंजाब, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइजी दे शकी जाषा जाननेवालेकोंजी वांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पडेगा.

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अजिमानी, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी जव्यजीवोंकूं इस ग्रंथके वां चने तथा पढने सुननेसें उत्तम प्रकारके सद्बोधका लाज प्राप्त होवेगा, असा जानिकें श्रीमक्षुदाबाद शहेरके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपति सिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेबका बडा आश्रय लेकें मैनें यह ग्रंथ छपा कर प्रसिद्ध कीया है; औरजी जैनधर्मकी वृद्धि इछनेवाले हमारे साधर्मिक जाइयोंकों मैं अर्ज करतां हूं कि, उदार तापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करकें शास्त्राभ्यासी जनोंकों बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देनां, ये बडा उत्तम पुण्यानुबंधी पुण्य उ पार्जन करनेका हेतु है, औ इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे हैं.

यह ग्रंथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों मैं बडी नम्रतापूर्वक विनति करता हूं कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लखाण कीया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासें, दृष्टिदोषकी प्रबलतासें तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अजावसें जो कुछ छपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानकें मेरे पर सुनजरही रख कर दोष सुधार लेनां चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है. किं बहु विलेखनेन.

॥ श्रावक जीमसिंह माणक ॥

॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिच्छेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

तीसरे परिच्छेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥ चतुर्थ परिछेदमें कुगुरुका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ पंचम परिछेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ षष्ठ परिछेदमें चौदह गुणस्थानकका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ सप्तम परिच्छेदमें सम्यग् दर्शनका स्वरूप लिखा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ अष्टम परिछेदमें चारित्रका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥नवम परिछेदमें श्रावकोंका दिन कृत्य विधि कहा है,तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥दशम परिच्छेदमें रात्रिकृत्य आदिक पांच कृत्य कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥ एकादश परिच्छेदमें श्री ऋषजादिसें महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रों ॥
॥ के अनुसार इतिहास कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ बारहवे परिछेदमें श्री महावीर जगवानसें ले कर आजपर्यंत
॥ कितनेक वृत्तांत लिखे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ ॐ नमः स्याद्वादवादिने ॥

॥ अथ तपागच्छीय ॥

॥ मुनिश्री आनंद विजय आत्मारामजी विरचित् ॥

॥ जैनतत्वादर्श नामक ग्रंथ प्रारंभः ॥

॥ तत्र प्रथम परिच्छेद ॥

॥ अनुष्टुब् वृत्तम् ॥

॥ स्यात्कारमुद्रितानेक, सदसद्भाववेदिनम् ॥
॥ प्रमाणरूपमव्यक्तं, भगवंतमुपास्महे ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथम देव, गुरु औ धर्म इन तीनो ॥
॥ तत्वोंका स्वरूप किंचित् लिख्यते ॥

विदित हो कि जो यह जैनमतहै तिसका स्वरूप श्री तीर्थंकर, गणधर और पूर्वाचार्यादिकोंने आगम निर्युक्ति भाष्य चूर्णि टीका औ प्रकरण तर्कादि अनेक ग्रंथ द्वारा स्पष्ट निरुकन कीयाहै परंतु पूर्वाचार्य रचित सर्व ग्रंथ प्राकृत वा संस्कृत भाषामे हैं सो अब जैन लोगोंके पढणेमे उद्यमके नकरणेसें उन अति उत्तम अद्भुत ग्रंथोंका आशय लुप्त प्राय हो रहाहै सोकितनेक भव्य जीवांकी प्रेरणासें तथा स्वकर्म्म निर्ज्जराकी आशयसें जिनकूं प्राकृत वा संस्कृत पढणी कठिनहै तिनोके उपकारार्थ देव, गुरु औ धर्मका स्वरूप किंचित् मात्र इस भाषा ग्रंथमें लिखतेहैं.

सर्व श्रोतंयसें नम्रता पूर्वक यह विनतीहैकि जो इस ग्रंथकूं पढे सो जहां मैने जिनमार्गसें विरुद्ध लिखाहो तहां यथार्थ लिख देवें यह मेरे ऊपर बडा अनुग्रह होगा इस ग्रंथके लिखनेका मेरा मुख्य प्रयोजनतो यहहै जो इस कालमें बहुत नविन मत लोकोने स्वकपोल कल्पित प्रगट करेहै तथा अंगरेजोंकी औ मुसलमानोकी विद्यापढणेसें तथा अनेक प्रकारके मत मतांतरोंकी वातां सुणनेसें अनेक भव्य जीवांकूं अनेक प्रकारके संशय उत्पन्नहो रहेहै तिनके दूर करणेके वास्ते इस ग्रंथका प्रारंभ कीयाहै अब पूर्वोक्त तीनो तत्वोंमे प्रथम देवतत्वका स्वरूप लिखतेहैं.

देव नाम परमेश्वरकाहै सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनेक प्रकारके विकल्प मतांतरिये पुरुष करतेहै सो जैनमतमें परमेश्वरका क्यास्वरूप मान्या है सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप औ विशेषण संयुक्त लिखतेहैं जैन मतमेजो परमेश्वर मान्याहै सो बारां गुण संयुक्त औ अष्टादश दूषण रहित अर्हत परमेश्वरहै औ जो परमेश्वर उक्त बारांगुण रहित तथा अष्टादश दूषण सहित होगा तिसमे कदापि परमेश्वरता सिद्ध नही होगी यह कथन आगे चलकर लिखेंगे.

अब प्रथम बारां गुण लिखतेहैं अशोकवृक्षादि अष्टमहा प्रातिहार्य सर्व जैनलोगोमें प्रसिद्धहैं तथा चार मूलातिशय एवं सर्व बारां गुणहैं तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहतेहैं (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय (३) अपायापगमातिशय (४) पूजातिशय तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहतेहैं केवलज्ञान केवल दर्शन करी भूत भविष्य वतमान कालमे जो सामान्य विशेषात्मक वस्तुहै तिसकू तथा उत्पाद व्यय ध्रौवयुक्तं सत् त्रिकाल संबंधि जो सत् वस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशयहै. दूजी वचनातिशय तिणमें भगवंतका वचन पंतीस अतिशय करी संयुक्त होताहै तिन पंतीस अतिशयका स्वरूप एसाहै (१) संस्कारवत्त्वं (संस्कृतादि लक्षण युक्त) (२) औदात्यं (शब्दमे उच्चपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्वं (ग्रामके रहणहारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगंभीर घोषत्वं (मेघकी तरें गंभीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्व वाजित्रोंके साथ मिलता शब्द) (६) दक्षिणत्वं (वचनकी सरलता संयुक्त) (७) उपनीतरागत्वं (मालव कोशक्यादि ग्राम राग करी युक्तता) ए सातअतिशयतो शब्दकी अपेक्षासें जानने औ अन्य अतिशयजो है सो अर्थाश्रय जानने (८) महार्थता (बडामोटा जिसमे अभिधेय कहेने योग्य अर्थहै) (९) अव्याहतत्वं (पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्वं (अभिमत सिद्धांतोक्तार्थता) एतावता अभिमत सिद्धांतजो कहना सोइ वक्ताके शिष्टपणेका सूचकहै (११) संशयनाम संभवः (जिनोके कहणेमे श्रोताकूं संशय नहीं होता) (१२) निराकृताऽन्योत्तरत्वं (जिनोके कथनमे कोइभी दूषण नहीं भतो श्रोताकूं शंका उत्पन्न होवे न भगवान दूसरीवार उत्तर देवें) (१३) हृदय गमता (हृदय ग्राह्यत्वं) हृदयमे ग्रहणे योग्य (१४) मिथःसाकांक्षता (परस्पर आपसमे

पद वाक्योंका सापेक्ष पणा) (१५) प्रस्तावौचित्यं (देशकाल करके रहित पणा नही) (१६) तत्त्वनिष्टता (विवक्षित वस्तुके स्वरूपानुसारि पणा) (१७) अप्रकीर्णप्रसृतत्वं (सुसंबंध होकर प्रसरणा अथवा असंबंधाधिकारका अतिविस्तार नही) (१८) अस्वश्लाघाऽन्यनिंदता (आत्मोत्कर्ष परनिंदा करके वर्जित) (१९) अनिजात्यं (प्रतिपाद्य वस्तुकी नूमिकानुसारि पणा) (२०) अतिस्निग्धमधुरत्वं (घृत गुडादिवत् सुखकारि) (२१) प्रशस्यता (कहेजो हें गुण तिनकी योग्यतासें प्राप्तहुइहे श्लाघा) (२२) अमर्मवेधिता (परका मर्म जिसमे उग्घाडणा नहीहै) (२३) औदार्य (अनिधेय अर्थका तुछपणा नही) (२४) धर्मार्थप्रतिबद्धता (धर्म औ अर्थ करके संयुक्त) (२५) कारकाद्यविपर्यास सो कारक काल वचन औ लिंगादि जहां विपर्यय नही (२६) विभ्रमादि वियुक्तता विभ्रमवक्ताके मनकी भ्रांति विक्षेपादि दोष रहित (२७) चित्रकृत्त्व (उत्पन्न कराहे छिन्न कौतुहलपणा) (२८) अद्भुतत्वं (अद्भुत पणा) (२९) अनति विलम्बिता (अतिविलंब रहित) (३०) अनेकजाति वैचित्र्य (जातियां वर्णन करणे योग्य वस्तु स्वरूप उनाका आश्रय) (३१) आरोपिता विशेषता (वचनांतरकी अपेक्षा करके स्थापन कियाहे विशेषपणा) (३२) सत्त्वप्रधानता (साहसकरी संयुक्त) (३३) वर्णपदवाक्य विविक्तता (वर्णादिकोंका विछिन्नपणा) (३४) अव्युछित्तिः (विवक्षितार्थकी सम्यक् सिद्धि जहां लग नहोवे तहां तांइ अव्यवछिन्न वचनका प्रमेय पणा) (३५) अखेदित्वं (थकेवा रहित) एह नगवंतकी डुसरी वचनातिशयके पैंतीस नेदहें. तीजी अपायापगमातिशय एतावता उपद्रव निवारक औ चोथी पूजातिशय सो नगवान तीनलोकके पूजनीक हें इनदोनो अतिशयांकी विस्तार रूप चोंतीश अतिशय होतीहें सो लिखतेहें.

(१) तीर्थकर नगवानकी देहका रूप औ सुगंध सर्वोत्कृष्ट औ रोग रहित देह तथा पसीना औ मल करि वर्जित (२) स्वास निःस्वास पद्म कमलकी तरें सुगंधवाला (३) रुधिर औ मांस गो डुग्ध वत् उज्वल (४) आहार निहारकी विधि चर्मचक्षुवालेकूं नही दीखे ए चार अतिशय जन्मसे साथ (१) एक योजन प्रमाणही समवसरणका क्षेत्रहै परंतु तिसमें देवता मनुष्य तिर्यंचकी कोटाकोटीभि समायसक्तिहै नीड नही होती (२) वाणी नापा अर्द्ध मागधी देवता मनुष्य तिर्यंचकूं अपणी अपणी

जाषापणे परिणमतिहै औ एक योजनमें सुणाईदेतीहै (३) प्रजामंमल मस्तकके पीछे सूर्यके बिंबकी मानो विडंबना करताहै आपणी शोजा करके ऐसा मनोहर जामंमल शोने है (४) साढे पचीश योजन प्रमाण चारो पासें उपड्वरूप ज्वरादि रोग नहोवे तथा (५) वैर (परस्पर विरोध नहोवे) तथा (६) इति (धान्याद्युपड्व कारी घणे मुषकादि नहोवे) (७) मारिमगीका उपड्व नहोवें (८) अतिवृष्टी (निरंतर वर्षणा नहोवे) तथा (९) अवृष्टी (वर्षणेका अजाव नहोवे) (१०) डुर्जिक्ष नहोवे (११) स्वचक्र परचक्रका जय नहोवे ए इग्यार अतीशय ज्ञानावरणीय आदि चार घाति कर्मोंके क्षय होनेसे उत्पन्न होतीहै अब (१) आकाशमें धर्म प्रकाशक चक्र होताहै (२) आकाशगत चामर (३) आकाशमें पाद पीठ सहित स्फटिक मय सिंहासन होताहै (४) आकाशमें तीन छत्र (५) आकाशमें रत्नमय ध्वज (६) जब जगवान चलतेहै तव पगके हेठ सुवर्ण कमल देवता रच देतेहैं (७) समवसरणमे रत्न सुवर्ण औ रूपामय तीन कोट मनोहर होतेहैं (८) समवसरणमे प्रजुके चार मुख दीखतेहै (९) अशोक वृक्ष छाया करताहै (१०) कांटे अधोमुख हो जातेहै (११) वृक्ष ऐसे नम्रुत होतेहै मानो नमस्कार करतेहैं (१२) उच्चनादे डुंडुनि जुवन व्यापक नाद ध्वनी करतीहैं (१३) पवन सुखदाइ चलतीहै (१४) पक्षी प्रदक्षणा देतेहैं (१५) सुगंध पाणीकि वर्षा होतीहै (१६) गोडे प्रमाण पंच वर्णके फूलोंकी वर्षा होतीहै (१७) केश डाढी मुछ नख अवस्थित रहतेहैं (१८) चार प्रकारके देवता जघन्यसें जघन्य जगवंतके पास एक कोटी होतेहैं (१९) षटऋतु अनुकूल शुन स्पर्श रस गंध रूप शब्द ए पांचो बुरेतो लुप्त हो जातेहै और अछे प्रगट होजातेहैं ए उगणीश अतीशय देवता करते है मतांतर तथा वाचनांतरमें कोइ कोइ अतीशय अन्य प्रकारसेंबीहैं ए पूर्वोक्त चार मूलातिशय और आठ प्रातिहार्य एवं बारां गुणां करी बिराजमान अर्हंत जगवंत परमेश्वरहै औ अठारह दूषण करके रहितहै सो अठारह दूषणोंका नाम दो श्लोक करके लिखीयेहै.

अंतरायदानलाज, वीर्यजोगोपजोगगाः ॥ हासो रत्यरतीजीति, जुगुप्सा शोक एवच ॥ १ ॥ कामो मिथ्यात्वमज्ञान, निद्रा चाविरतिस्तथा ॥ रागो द्वेषश्च नो दोषा, स्तेषामष्टादशाप्यऽमी ॥ २ ॥ इन दोनों श्लोकोंका

) दान देणेमें अंतराय ए प्रथम दोषः (२) लाजगत अंतराय (... ग्त अंतराय (४) जो एक वेरी जोगीये सो जोग पुष्पमाला दि ... अंतराय सो जोगांतराय (५) वार वार जोगणेमे आवे स्त्र्यादि घरादि कंकण कुंमलादि तजतांतराय सो उपजोगांतराय (६) हास्य (हसना) (७) पदार्थोंके उपरि प्रीति (रति) (८) रतिसे विपरीत सो अरति (९) जय सप्त प्रकारका (१०) जुगुप्सा (घृणा) मलीन वस्तुकूं देखकर नाक चढाणा (११) शोक (चित्तका वैधूर्यपणा) विकल ...ा (१२) काम (मन्मथ) स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनोंका वेद विका ... १३) मिथ्यात्वं (दर्शनमोह) (१४) अज्ञानं (मूढपणा) (१५) ...ा (सोंनां) (१६) अविरति (प्रत्याख्यान रहित) (१७) राग (पूर्व सुख ...ऽ साधनेमे गृद्धि पणा) (१८) द्वेष (पूर्व दुःखांका स्मरण औ पूर्व दुः...ा तिसके साधन विषय क्रोध) येह अठारह दूषण जिनमे नही सो ...ा जगवंत परमेश्वरहै इन अठारह दूषण मेसें एकबी दूषण जिसमे होगा कदेजी अर्हंत जगवंत परमेश्वर नही हो सक्ता॥ प्रथम पांच विघ्न जिस ...म लग रहेहै सो परमेश्वर क्युं कर हो सक्ताहै?

प्रश्नः—दानांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर दान देताहै? अरु लाजांतरायके नष्ट होनेसे क्या लाज परमेश्वरकों होताहै? तथा वीर्यांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर सक्ति दिखलाता है? तथा जोगांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर जोग करताहै? उप जोगांतरायके नष्ट होनेसे एतावता क्षय होनेसे क्या परमेश्वर उपजोग करतेहै?

उत्तर. पूर्वोक्त पांच विघ्नके क्षय होनेसे जगवतमें पूर्ण पांच शक्तियां प्रगट होतीयांहै जैसे निर्मल चक्षुका पटलादिक बाधकोंके नष्ट होनेसें देखनेकी शक्ति प्रगट होतीहै चाहे देखे चाहे नदेखे परंतु शक्ति विद्यमान है तैसेंही अर्हंत जगवंतके पांच शक्तियां प्रगट होतीयांहै पीछे दानादि चाहे करे चाहे नकरे परंतु शक्ति विद्यमानहै जो पांच शक्तियोंसें रहित होगा सो परमेश्वर केसें होसक्ताहै?

६ छठा दूषण "हसना" हास्यजो आताहैसो अपूर्व वस्तुके देखनेसें वा अपूर्व वस्तुके सुननेसें वा अपूर्व आश्चर्यके अनुजवके स्मरणसे इत्यादिक हास्यके निमित्तहै औ हास्यका मोहकर्मकी प्रकृतिरूप उपादान कारणहै

सो ए दोनोही कारण अर्हंत जगवंतमे नहीहैं प्रथम निमित्तकारणका संज य कैसें होवे अर्हंत जगवंत सर्वज्ञ सर्व दर्शीहै उनके ज्ञानमें कोइ अपूर्व ऐसी वस्तु नही जिसके देखे सुने अनुनवे आश्चर्य होवे इसते कोइजी हास्यका निमित्त कारण नही औ मोह कर्मतो अर्हंत जगवंतने सर्वथा क्षय कयाहै सो उपादान कारण क्युंकर संजवे इस हेतुसे अर्हंतमें हास्य रूप दूषण नही औ जो हसनशील होगा सो अवश्य असर्वज्ञ असर्वदर्शी औ मोहकरी संयुक्त होगा सो परमेश्वर कैसें होवे?

७ सातमा दूषण रति जिसकी प्रीति पदार्थों उपर होगी सो अवश्य सुंदर शब्द रूप गंध रस स्पर्श स्त्री आदिके उपर प्रीतिमान होगा जो प्रीतिमान होगा सो अवश्य उस पदार्थकी लालसा वाला होगा अरुजो लालसा वाला होगा सो अवश्य उस पदार्थकी अप्राप्तिसें दुःखी होगा सो अर्हंत परमेश्वर कैसें होसकाहै ?

८ आठमां दूषण अरति जिसकी पदार्थों उपर अप्रीतिहोगी सोतो आपही अप्रीतिरूपाये दुःखकरी दुःखीयाहै सो अर्हंत जगवंत कैसे हो सके?

ए नवमा दूषण "जय" सो जिसने आपणाही जय दूर नही कीया सो अर्हंत परमेश्वर कैसें होवे ?

१० दशमां दूषण जुगुप्साहै सो मलीन वस्तुकूं देखके घृणा करणी (नाक चढाणी) सो परमेश्वरके ज्ञानमे सर्ववस्तुका जासन होताहै जो परमेश्वरमे जुगुप्सा होवेतो बडा दुःख होवे इस कारणते जुगुप्सामान अर्हंत जगवंत कैसें होवे?

११ इग्यारमां दूषण शोक है सो जो आपही शोक वालाहै सो परमेश्वर नही?

१२ बारवां दूषण कामहै सो आपही जो विषयीहै स्त्रीयोंके साथ जोग करताहै तिस विषयाजिलाषीकूं कोन बुद्धिमान पुरुष परमेश्वर मानताहै ?

१३ तेरवां दूषण मिथ्यात्व है सो जो दर्शनमोह करी लिप्तहै सो जगवंतनही.

१४ चौदवां दूषण अज्ञान है सो जो आपही मूढहै सो अर्हंत जगवंत नही.

१५ पंदरवां दूषण निद्रा है सो जो निद्रामे होता है सो निद्रामे कुछ नही जानता औ अर्हंत जगवानतो सदा सर्वज्ञ है सो निद्रावान् कैसे होवे?

१६ शोलमां दूषण अप्रत्याख्यान हे सो जो प्रत्याख्यान रहित है सो स र्वाभिलाषी हे सो तृष्णा वाला केसे अर्हंत जगवंत होसके?

१७-१८ सत्तारवां श्रो अठारवां ए दोनो दूषण राग अरु द्वेष हे सो राग द्वेषवान मध्यस्थ नही होता अरु जो रागी द्वेषी होता हे तिसमें क्रोध मान मायाका संजव है जगवान तो वीतराग, सम शत्रु मित्र, सर्वजी वो पर समबुद्धि. न किसीकूं डुःखी अरु न किसीकूं सुखी करे, जेकर डुःखी सुखी करेतो वीतराग करुणा समुद्र कदेइ नहोसका इस कारणसें रागद्वेष वाला अर्हंत जगवंत परमेश्वर नही ए पूर्वोक्त अठारह दूषण रहित अर्हं त जगवंत परमेश्वरहे अपर कोइ परमेश्वर नही.

अथ अर्हंतके नाम दो श्लोकों करि लिखतेहै:—अर्हन् जिनः पारगत स्त्रिकालवित् क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठ्यऽधीश्वरः॥ शंभुः स्वयंभूर्भगवान् जगत्प्र भु, स्तीर्थंकरस्तीर्थकरो जिनेश्वरः ॥ १ ॥ स्याद्वाद्यऽजयदसर्वाः सर्वज्ञः सर्वदर्शि केवलिनौ। देवाधिदेव बोधिद पुरुषोत्तम वीतरागाऽप्त ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थः—(१) चौंतीश अतीशय करी सबसें अधिक होने में सुरेंद्र आदिकोंकी करी हुइ अष्ट महा प्रातिहार्या जन्म स्नात्रादि पूजा के जो योग्य है सो अर्हन् अथवा ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म रूप वैरी ह ननेसें अर्हन् अथवा बध्यमान कर्म रजके हननेसे अर्हन् अथवा नही है कोइ पदार्थ छाना जिनोके ज्ञानमे सो अर्हन् तथा नामांतरमें अरुहन् नही उत्पन्न होना जवरूपी अंकूर जिनोके सो अरुहन् ए प्रथम नाम.(२) जीते है राग द्वेष मोहादि अष्टादश दूषण जिसने सो जिन. ए द्वितीय नाम. (३) संसारके अथवा प्रयोजन जालके. (प्रयोजन मात्रके) पारंपर्य त छेहडेको गत (प्राप्त) हुया हे एतावता संसारमे जिनका कोइ प्रयोजन नही सो पारगतः ए तृतीय नाम. (४) जूत, जविष्य, वर्त्तमान, इन तीनों कालोंकूं जो जाणे सो त्रिकालवित्. ए चतुर्थ नाम. (५) क्षीणानि क्षय हूये हे आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म जिसके सो क्षीणाष्टकर्मा ए पंचम नाम. (६) परमेश्वर पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी परम उत्कृष्ट पदमे जो रहे है सो परमेष्ठि ए षष्ठ नाम. (७) जगतका ईश्वर (स्वामी) सो अधीश्वर ए सप्तम नाम. (८) शं शास्वतं सुखं तिसमे जो होवे सो शंजु ए अष्टम नाम. (९) स्वयं आपही आपणी आत्मा करके तथा जव्यत्वादि सामग्रीके प

रिपक्क होणोसे परंतु परके उपदेशसे नही यह तिसही नवकी अपेक्षाका कथन् है ऐसाजो होवे सो स्वयंभू ए नवम नाम. (१०) भग शब्दके चौदह अर्थ है तिनमेंसे अर्क औ योनि ए दो अर्थ वर्जके शेष बारां अर्थ ग्रहण करणा तिसका नाम कहते है. (१) ज्ञानवंत, (२) माहात्म्यवंत, (३) शास्वत वैरीयांके वैर उपशमनेतें यशस्वि, (४) राज्य लक्ष्मीके त्यागणेसे वैराग्यवंत, (५) मुक्तिवंत, (६) रूपवंत, (७) अनंतबल होणेसें वीर्यवंत, (८) तप करनेमे उत्साह वान होनेसे प्रयत्नवंत, (९) इच्छावंत सो संसार सेती जीवांका उद्धार करणेमे इच्छावंत, (१०) चौतीश अतिशय रूप लक्ष्मी करी विराजमान होणेसे श्रीमंत, (११) धर्मवंतः, (१२) अनेक देव कोटि करी सेव्यमान होनेसें ऐश्वर्यवंत ए बारां अर्थ करी संयुक्त सो भगवान् ए दशम नाम. (११) जगत प्रभु ए एकादशम नाम. (१२) तरीये संसार समुद्र जिस करेके सो तीर्थ प्रवचनका आधार चार प्रकारका संघ अथवा प्रथम गणधर तिसके करणेका है शील जिसका सो तीर्थंकर, एद्वादशम नाम, (१३) रागादिकोंके जीतनेहारे जिन (केवली) तिनका जो ईश्वर सो जिनेश्वरः ए त्रयोदशम नाम. (१४) स्यात् एहजो अव्यय है सो अनेकांतका वाचक है वस्तुकों अनेकांत पणे अनेक स्वरूपे कहणेका शील है जिनका सो स्याद्वादि ए चतुर्दशम नाम. (१५) अभयद भय जो है सो सात प्रकारका है (१) मनुष्यादिकोकों मनुष्यादि स्वजातीयसे अर्थात् एक मनुष्यकूं अन्य मनुष्य सेति जो भय होवे सो इहलोक भय, (२) विजातीय तिर्यंच देवतादिक सेंती जो भय होवे सो परलोक भय, (३) आदान भय सो आदान कहियें धन तिस धनके कारणे चोरादिक सेती जो भय होवे सो आदान भय, (४) बाहिरले निमित्त विना घरादिकों विषे बैठेकूं रात्रि आदिक विषे जो भय होवे सो अकस्मात् भय, (५) आजीविका भय सो में निर्द्धनहुं कैसे दुर्भिक्षादिकमे अपने आपकूं धारण करुंगा ऐसाजो भय सो आजीविका भय, (६) मरणसे जो भय सो मरणभय एह प्रसिद्धहै. (७) अश्लाघा भय अयशका भय जो मै ऐसे करुंगा तो मेरा बड़ा अयश होगा अयशके भयसें प्रवर्त्ते नही सो अश्लाघा भय, ए सात प्रकारका भय इसका जो विपक्षी सो अभय सो क्या वस्तु है विशिष्ट आत्मा

का स्वास्थपणा निश्रेयस धर्मनिबंधन नूमिकानूत तिस गुणके प्रकर्षतें अचिंत्य शक्ति युक्त होणेसें सर्वथा परहितकारी होणेसें ऐसा अजय देवे सो अजयद ए पंचदशम नाम. (१६) सार्वाः सर्व प्राणीयोंके तांइ जो हित सो सार्वा ए षोडशम नाम. (१७) सर्वज्ञ सर्वजो जाणे सो सर्वज्ञ. ए सप्तदशम नाम. (१८) सर्वजो देखे सो सर्वदर्शि, ए अष्टादशम नाम. (१९) सर्वथा प्रकारें कर्मावरणके दूर होनेसें, जो चेतन स्वरूप प्रगट नया "केवल" केवलज्ञान है इसके सो केवली. ए एकोनविंसतिम नाम. (२०) देवताओंका जो अधिपति सो देवो देवाधिदेव ए विंसतिम नाम. (२१) बोधिः जिनप्रणीत धर्मकी प्राप्ति तिसकूं जो देवे सो बोधिद ए एकविंसतिम नाम. (२२) पुरुषा मांहे उत्तम सहज तथा नव्यत्वादि नव करी श्रेष्ट सो पुरुषोत्तम ए द्वाविंसतिम नाम. (२३) वीतो गतो रागो अस्मात् इति वीतराग ए त्रयोविंसतिम नाम. (२४) आप्त हितोपदेशक होणेसें आप्त कहीयें ए चतुर्विंसतिम नाम. इत्यादिक हजारो नाम परमेश्वरके है ए पूर्वोक्त सर्व परमेश्वरका स्वरूप श्रीहेमचंद्राचार्य कृत ग्रंथोके अनुसार नथा समवायांग राजप्रश्नीय प्रमुख शास्त्रोंके अनुसार लिखे है अन्यथा जिनसहस्रनाम ग्रंथमे तो एकहजार आठ नाम अन्वयार्थ सहित कहे है, सर्व नाम व्युत्पत्ति सहित अर्हंत परमेश्वरके है, सो अर्हंत पद तो एक अनादि अनंतहै, परंतु इसपदके धारक जीव अनंत अतीत कालमे होगये है क्युंके एकैक उत्सर्प्पिणि अवसर्प्पिणि कालमे नारत वर्षमे चोवीश चोवीश जीव अर्हंत पदकूं धारकर पीछे सिद्धपदकूं प्राप्त हो गये है.

इस वर्त्तमान अवसर्प्पिणिसें पिछलि उत्सर्प्पिणीमें जो जीव अर्हंत पदके धारक हुये है. तिनके नाम (१) केवलज्ञानी (२) नीर्वाणी (३) सागर (४) महायश (५) बिमल नाथ (६) सर्वानुनूति (७) श्रीधर (८) दत्त (९) दामोदर (१०) सुतेज (११) स्वामि (१२) मुनिसुव्रत (१३) सुमति (१४) शिवगति (१५) अस्ताग (१६) नेमीश्वर (१७) अनिल (१८) यशोधर (१९) कृतार्थ (२०) (जिनेश्वर (२१) शुद्धमति (२२) शिवकर (२३) स्यंदन (२४) संप्रति ॥

अथ वर्त्तमान चोवीश अर्हंतका नाम. (१) श्री ऋषननाथ (२) श्री अजितनाथ (३) श्री संजवनाथ (४) श्री अजिनंदननाथ (५) श्री सुमतिनाथ (६) श्री पद्मप्रज (७) श्री सुपार्श्वनाथ (८) श्री चंद्रप्रज (९) श्री सुविधिनाथ अपर नाम पुष्पदंत (१०) श्री शीतलनाथ (११) श्री श्रेयांसनाथ (१२) श्री वासुपूज्यस्वामि (१३) श्री बिमलनाथ (१४) श्री अनंतनाथ (१५) श्री धर्मनाथ (१६) श्री शांतिनाथ (१७) श्री कुंथुनाथ (१८) श्री अरनाथ (१९) श्री मल्लिनाथ (२०) श्री मुनिसुब्रतस्वामि (२१) श्री नमिनाथ (२२) श्री अरिष्टनेमि (२३) श्री पार्श्वनाथ (२४) श्री महावीर.

अथ चोवीश तीर्थंकर जगवंतोके जो नाम है, सो नाम किस किस कारणसें हुये है, तिन नामोका एकतो सामान्यार्थहै, जो सब तीर्थंकरोमे पावे और दूजा विशेषार्थ है जो एकही तीर्थंकरके नामका निमित्त है सो लिखते है.

"ऋषति गच्छति परमपदमिति ऋषनः" जावेजो परम पदकू सो ऋषन एह अर्थ सब तीर्थंकरोमें व्यापक है अथ विशेषार्थ "उर्वोर्वृषजलांछनमजूजगवतो जनन्याचतुर्दशानां स्वप्नानामादौ वृषनोदृष्टः तेन ऋषनः" जगवानकी दोनो साथलोमे बैलका लांछनथा, अथवा जगवंतकी माता मरुदेवीने. चौदह स्वप्नकी आदिमे बैलका स्वप्नदेखाथा, तिस कारणसेंति ऋषज ऐसा नाम दीया. ऐसेही सर्व तीर्थंकरोका प्रथम सामान्यार्थ और दूसरा विशेषार्थ जानना.

२ "परीसहादिजिर्नजित इत्यजितः" परीसहे बावीश आदि शब्दसे चार कषाय, आठकर्म, चार प्रकारका उपसर्ग, इनो करके जो न जीत्या गया सो अजित तथा "यद्वा गर्नस्थे ऽस्मिन् द्युतेराज्ञाजननी न जितेत्यजितः" जब जगवान गर्नमे थे, तब जूआ खेलता राजा राणीकू न जीत शका. इस हेतुसे अजित नाम दीया ॥ २ ॥

३ "शंसुखंनवत्यस्मिन्स्तुतेसशंनवः" शं नाम सुखका है, सुखहोवे जिन्ह की स्तुतिके कर्यां सो संजवः "यद्वागर्नगतेप्यस्मिन्नज्यधिकसस्यसंनवात्संजवोपि" अथवा जगवान् जब गर्नमे थे तब पृथविमे अधिक धान्यका संजव होनेसें संजव ॥ ३ ॥

४ "अजिनंद्यतेदेवेंद्रादिजिरित्यजिनंदनः" जिनकी स्तुति करीये है देवेंद्रा

दिकों करी, सो ऽनिनंदन "यद्वागर्जात्प्रनृत्येवाजीक्ष्णं शक्रेणा ऽनिनंदनादनि नंदनः" अथवा जिसदिन नगवान गर्नमे आये नसदिनसेलैके शक्रेंद्रके वार वार स्तुति करनेमें अनिनंदन॥ ४ ॥

५ "शोननामतिरस्येतिसुमतिः" नलिहै बुद्धि इसके, सो, सुमति, "यद्वा गर्नस्थेजनन्याः सुनिश्चितामतिरनूदिति सुमतिः" अथवा नगवान्के गर्नमे आये माताकी बहुत निर्मल निश्चित बुद्धि हुइ इस हेतुसें सुमति नाम ॥ ५ ॥

६ "निष्पंकतामंगीकृत्यपद्मस्येवप्रनाऽस्यपद्मप्रनः" विषय तृष्णा कर्म कलंक रूप कीचड करी रहित पद्मकी तरे प्रनाहै इनकी, सो पद्मप्रना "यद्वापद्मशयनदोहदोमातुर्देवतयापूरितइतिपद्मवर्णश्चनगवानितिपद्मप्रनः" अथवा पद्म शयन दोहदो दोहला माताकूं नत्पन्नहूया सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे पद्मप्रन अरु पद्म कमल सरीखा नगवानके शरीरका वर्णथा इस हेतुसेनी पद्मप्रन ॥ ६ ॥

७ "शोननौपार्श्वावस्यसुपार्श्वः" शोननिक हैं दोनो पासे इसके, सो सुपार्श्व तथा "यद्वागर्नस्थेनगवतिजनन्यपिसुपार्श्वानूदिति सुपार्श्वः" गर्नमें स्थितहूयां नगवान्के माताके दोनो पासे बहुत सुंदर होगये, इस कारणसें सुपार्श्व ॥ ७ ॥

८ "चंद्रस्येवप्रनाज्योत्स्नासौम्यलेश्याविशेषाऽस्यचंद्रप्रनः" चंद्रमाकी तरें है सौम्य लेश्या इसकी सो चंद्रप्रनः तथा "गर्नस्थेदेव्याचंद्रपानदोहदोऽनूत् इति चंद्रप्रनः" गर्नमें जद नगवानथे तद माताकूं चंद्रमा पीनेका दोहद नत्पन्न हूयाथा. इस कारणसें चंद्रप्रन ॥ ८ ॥

९ "शोननोविधिविधानमस्यसुविधिः" नली है विधि इसकी सो सुविधि तथा "यद्वागर्नस्थेनगवति जनन्यप्येवमिति सुविधिः" गर्नमें नगवानके रहणेसें, मातानि शोननिक विधि वाली होती नइ, इस कारणसें सुविधि ॥ ९ ॥

१० "सकलसत्वसंतापहरणात्शीतलः" सर्व जीवोंका संताप हरणेसें, शीतल तथा "गर्नस्थेनगवतिपितुः पूर्वोत्पन्नाचिकित्स्यपित्तदाहोजननीकरस्पर्शादुपशांत इति शीतल" नगवतके गर्नमें आनेसें, नगवतके पिताके शरीरमें पित्तदाह रोगथा, वैद्योसें शांति नहुइ नगवतकी माताके हाथका स्पर्श होताही राजेका शरीर शीतल हो गया इस कारणे शीतल ॥ १० ॥

११ "श्रेयान्समस्तभुवनस्यैवहितकरः प्राकृतशैल्यागंदसत्वाच्चश्रेयांसइत्युच्यते" सर्व जगतको जो हित करे सो श्रेयांस तथा "यद्वागर्भस्थेअस्मिन् केनापिनाक्रांत पूर्वीदेवताधिष्ठितशय्याजनन्याआक्रांततेतिश्रेयोजातमितिश्रेयांसः" नगवान् जब गर्नमेंथे, तदा नगवतके पिताके घरमे देवताधिष्ठित शय्याथी उस उपरि जो बैठताथा उसहीकू असमाधि उत्पन्न होतीथी, नगवतकी माताकूं उसी शय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न हूया, माताउसी शय्या उपरि सूती देवता शांति नया उपद्रव नकरया इस हेतुसें श्रेयांस ११

१२ "तत्रवसूनांपूज्यःवसुपूज्यः वसवोदेवा" वसुओंकर जो पूज्यनीक होवे सो वसुपूज्यः वसु कहिये देवता "वसुपूज्यनृपतेरपत्यं वासुपूज्यः" वसुपूज्य नामा राजेका जो पुत्र सो वासुपूज्य "वासवो देवराया तस्स गप्नगयस्स अनिस्कणं अनिस्कणं जणणीए पूयंकरेति तेणवासुपुज्जोति अहवा वसूणि रयणाणि वासवो वेसमणो सो गप्नगए अनिस्कणं अनिस्कणं नं रायकुलं रयणेहिं पूरेयत्ति वासुपुज्जोत्ति ॥ अस्यार्थः—वासव नाम इंद्रका है सो नगवान् जब गर्नमें आये तदा वार वार इंद्रने नगवतकी माताकूं पूज्या, इस कारणसें वासुपूज्य अथवा वसु कहिये रतन अरुवासव नाम है वैश्रमणका सो वैश्रमण यदा नगवान् गर्नमेंथे तदा वार वार तिस राजाके कुलकूं रत्ना करी पूरण करता नया इस हेतुसें वासुपूज्य ॥ १२ ॥

१३ "विगतोमलोऽस्यविमलः विमलज्ञानादियोगाद्वाविमलः" दूरहूआ है अष्ट कर्म्मरूप मल जिसका सो विमल अथवा निर्मल ज्ञानादि योगसें विमल "यद्वागर्नस्थेमातुर्मतिस्तनुश्चविमलाजातेतिविमलः" तथा नगवान् यदा गर्नमेंथे, तदा माताकी बुद्धि अरु शरीर ए दोनुं निर्मल हो गये इस कारणे "बिमल" नाम जानना ॥ १३ ॥

१४ "नविद्यतेगुणानामंतोऽस्यअनंतः अनंतकर्मांशजयाद्वानंतः अनंतनिवाज्ञानादीनियस्येत्यनंतः" नही जाणिये है गुणका अंत जिसका सो अनंत, अथवा अनंत कर्म्मांस जीतनेसें अनंत, अथवा अनंत है ज्ञानादि गुण जिसके सो अनंत " रयणविचित्तं रयण, खवियं अणंतं अतिमह पमाणं ॥ दामं सुमिणे जणणीए, दिठं तउ अणंतोत्ति" रत्न विचित्र रत्नजडि

त अति मोटी दाम माला स्वप्नमे माताने देखी तिस कारणे अनंत॥१४॥

१५ "दुर्गतौ प्रततं सत्वं संघातं धारयतीतिधर्म्मः" दुर्गतिमें पडतां जीवांके समूहकूं जो धारण करे सो धर्म तथा "गर्न्नस्थेजननीदानादिधर्म्मपराजातेति धर्मः" परमेश्वरके गर्नमे आवणेसे माता दानादिक धर्ममे तत्पर नयी इस कारणे धर्म नाम॥ १५ ॥

१६ "शांतियोगात्तदात्मकत्वात्तत्कर्तृकत्वाच्चायंशांतिः" शांतिके योगसें वा शांति रूप होणेसें वा शांति करणेसें शांति तथा "गर्नस्थेपूर्वोत्पन्नाशिवं शांतिरनूदितिशांतिः" तथा गर्नमे नगवान्के उत्पन्न होणेसे पूर्वे जो अशिव उत्पन्नथा, सो शांति होगया इस कारणे शांति नाम ॥ १६ ॥

१७ "कुःपृथ्वी तस्यांस्थितिवानितिकुंथुः पृषोदरादित्वात्" कु नाम पृथ्वीका है तिस पृथ्वीमे जो स्थित होता नया सो कुंथु तथा "गर्नस्थे नगवति जननीरत्नानां कुंथुंराशिदृष्टवतीतिकुंथुः" नगवतके गर्नमे स्थित हूया माता रत्नमयी कुंथुओंकी राशि देखती नइ इस हेतुसें कुंथु ॥ १७ ॥

१८ "सर्वोत्तममहासत्वः, कुलेयउपजायते तस्यानिवृद्धायवृद्धै,रसारवरउदाहृतः ॥१॥ इतिवचनादरः" सर्वसें उत्तम महासात्विक कुलमे जो उत्पन्न होवे, और तिस कुलकी वृद्धिके ताइ है तिसकुं वृद्ध पुरुष, प्रधान अर कहते हे तथा "गर्नस्थेनगवतिजनन्यास्वप्नेसर्वरत्नमयोऽरोदृष्टइत्यपरः" तथा नगवतके गर्नमे स्थित होया माताने स्वप्नमे सर्व रत्न मयी अर देख्या इस कारणसे अर इति नाम ॥ १८ ॥

१९ "परीसादिमल्लजयनान्निरुक्तान्मल्लि" परीसहादि मल्लोके जीतनेमें मल्लिः तथा "गर्नस्थे नगवतिमातुः सुरनिकुसुममाल्यशयनीयदोहदोदेवतया पूरितइति "मल्लिः" तथा नगवतके गर्नमे स्थित हूया नगवतकी माताकूं सुगंध वाले फूलोंकी मालाकी सय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न नया, सो देवताने पूरण कीया इस कारणसें मल्लि ॥ १९ ॥

२० "मन्यतेजगतस्त्रिकालावस्थामितिमुनिः शोननानिव्रतान्यस्येतिसुव्रतः मुनिश्चासौसुव्रतश्चमुनिसुव्रतः" मानेजो जगतकूं तीनोही कालमे सो "मुनि" नले हे व्रत जिसके सो सुव्रत ए दोनो पद एकठे करणेसें मुनिसुव्रत तथा

"गर्भस्थेजननीमुनिवत्सुव्रताजातेतिमुनिसुव्रतः" तथा भगवतके गर्भमें स्थित हूयां माता मुनिकी तरें भले व्रत वाली होतीभइ इस हेतुसें मुनिसुव्रत ॥२०

२१ "परीसहोपसर्गादीनांनामनात्नमेस्तुवेतिविकल्पेनोपांत्यस्यैकाराना वपक्षेनमिः" परीसह उपसर्गांकूं नमावणेसें नमि तथा "यद्वागर्भस्थे भगवति परचक्रनृपैरपिप्रणतिः कृतेतिनमिः" भगवतके गर्भमे स्थित होया वैरी राजायोंनेभी नमस्कार करी इस कारणसें नमि ॥ २१ ॥

२२ "धर्मचक्रस्यनेमिवन्नेमिः" धर्मचक्रकी धारावत् सो नेमि तथा "गप्न गएतस्समायाए, रिष्ठरयणामउमहतिमहालउ नेमि॥ उप्पयमाणो सुमिणे, दिठोत्ति तेणसेरिठनेमित्ति नामंकयंति" तथा भगवतके गर्भगत हूया माताने अरिष्ट रत्नमय वडा मोटा नेमी (चक्रधारा) आकाशमे उत्पत मान स्वप्नमें देख्या तिस कारणे अरिष्ट नेमि नाम कहा ॥ २२॥

२३ "स्पृशतिज्ञानेनसर्वभावानितिपार्श्वः" स्पर्शे जाणे सर्व पदार्थांकूं ज्ञान करी सो पार्श्व तथा "गर्भस्थेजनन्यानिशिशयनीयस्थयांऽधकारेसर्प्पो दृष्टइतिगर्भानुभावोयमितिपश्यतीतिनिरुक्तात्पार्श्वः पार्श्वेअस्यवैयावृत्यकरोयक्षस्तस्यनाथः पार्श्वनाथः भीमोभीमसेनइतिन्यायाद्वापार्श्वः" तथा भगवतके गर्भमे स्थित होणेसे माता निशि रात्रिमे शय्या उपर बैठीनें अंधेरेमे जाता हूया सर्प्प देख्या माता पिताने विचार्या जो ए गर्भका प्रभाव है देखे सो पार्श्वः अथवा पार्श्व नामा वैयावृत्त करणहारा देवता तिसका जो नाथ सो पार्श्व नाथ ॥ २३ ॥

२४ "विशेषेणईरयतिप्रेरयतिकर्माणीतिवीरः" विशेष करके प्रेरेजो कर्मांकूं सो वीर तथा वडे उग्र परीसह उपसर्ग सहणेसें, देवताने नाम कर्या श्रमण भगवान् महावीर तथा माता पिताका नाम दीया वर्द्धमान ॥२४॥

इस प्रकार यह अवसर्प्पिणीमे जो तीर्थंकर हो गये तिनोंके नाम अरु किस हेतुसें यह नाम रखेगये सो समाप्त हूये.

यह चोवीश तीर्थंकर है इनमें सुं बावीश अर्हंततो इक्ष्वाकु कुलमे उत्पन्न हूये है एतावता ऋषभ देवकी संतानमे है, इक्ष्वाकु कुल ऋषभदेवहीसें प्रसिद्ध है, यह स्वरूप आगें चलकर लिखेंगे और एक तो वीशमें मुनि

सुव्रत स्वामी तथा दूसरा बावीशमें श्रीअरिष्टनेमि जगवान्, ए दोनो तीर्थंकर हरिवंशमे उत्पन्न हूये थे तथा इन चोवीसों तीर्थंकरोंमे छहा पद्मप्रज और बारहवा वासुपूज्य ए दोनो तीर्थंकर रक्तवर्ण शरीर वाले हूये है तथा आठवां चंद्रप्रज ओर नवमे सुविधिनाथ (पुष्पदंत) ए दोनो तीर्थंकर, स्वेत वर्ण स्फटिक वत् उज्वल शरीर वाले हूये है, तथा उन्नीसवा मल्लिनाथ ओर तेइसवां पार्श्वनाथ ए दोनो तीर्थंकर, हरित वर्ण शरीर वाले हूये है, तथा वीसवां मुनिसुव्रत स्वामी ओर बावीसवां अरिष्टनेमि जगवान् ए दोनो तीर्थंकर स्यामवर्ण अलसीके फूलवत् रंगवाले शरीरके धारक हूये है अरु शेष शोलां तीर्थंकर सुवर्णवर्ण शरीरवाले हूये हैं.

अथ चोवीश तीर्थंकरोंके चिन्ह उनके दक्षिण पगोंमे रहे हूये वा उनकी ध्वजामे ए चिन्ह होते है अबजी इनकी प्रतिमाके आसनमे ए चिन्ह होते है, सो कहेते है (१) रुपजदेवजीके बैलका चिन्ह. (२) अजितनाथजीके हाथीका चिन्ह. (३) संजवनाथजीके घोडेका चिन्ह. (४) अजिनंदनजीके वंदरका चिन्ह. (५) सुमति नाथजीके क्रोंच पक्षीका चिन्ह. (६) पद्मप्रजजीके कमलका चिन्ह. (७) सुपार्श्वनाथजीके साथीयेका चिन्ह. (८) चंद्रप्रजजीके चंद्रमाका चिन्ह. (९) सुविधिनाथ (पुष्पदंतजी) के मकरका चिन्ह. (१०) शीतलनाथजीके श्रीवत्सका चिन्ह. (११) श्रेयांसनाथजीके गैंमेका चिन्ह. (१२) श्रीवासुपूज्यजीके महिषेका चिन्ह. (१३) श्रीविमलनाथजीके सूअरका चिन्ह. (१४) अनंतनाथजीके बाजका चिन्ह. (१५) धर्मनाथजीके वज्रका चिन्ह. (१६) शांति नाथजीके हरिणका चिन्ह. (१७) कुंथुनाथजीके बकरेका चिन्ह. (१८) अरनाथजीके नंदावर्त्तका चिन्ह. (१९) श्रीमल्लिनाथजीके कुंजका चिन्ह. (२०) मुनिसुव्रत स्वामीजीके कछुका चिन्ह. (२१) नमीनाथजीके नीले कमलका चिन्ह. (२२) अरिष्टनेमिजीके शंखका चिन्ह. (२३) श्रीपार्श्वनाथजीके सर्प्पका चिन्ह. (२४) श्रीमहावीरजीके सिंहका चिन्ह. यह चिन्ह चोवीश तीर्थंकरोंके पगोंमे होते है.

अथ चोवीश तीर्थंकरोंके पितायोंके नाम तथा मतायोंके नाम कहतेहैं.

१ नाजिनहात्यन्यायिनोह्कारादिजिर्नीतिजिरितिनाजिरंत्यकुलकरः, (२)

जिताःशत्रवोऽनेनजीतशत्रुः (जीतेहै शत्रु जिसने सो जितशत्रु) (३) जिताअरयोऽनेनजितारिः (जीतेहै वैरी जिसने सो जितारि) (४) संवृणोतींद्रियाणिसंवरः (वस करीया है इंद्रिया सो संवर, (५) सकलसत्वसंतापहरणात् मेघइवमेघः (सकल जीवांका संताप हरणेसें मेघकी तरें मेघ, (६) धरतिधात्रीमितिधरः (धारण करे जो पृथ्वीकुं सो धर, (७) प्रतितिष्ठति धर्मकार्ये प्रतिष्ठः (धर्मके कार्य कार्यमें जो रहे सो प्रतिष्ट, (८) महतोपूज्यासेनाऽस्यमहासेनः (मोटी पूजने योग्य है सेना जिसकी सो महासेन) सचासौनरेश्वरश्च महासेननरेश्वरः, (९) शोभनाग्रीवाऽस्यसुग्रीवः (भली है ग्रीवा जिसकी, सो सुग्रीव, (१०) दृढोरथो, स्यदृढरथः (दृढ (बलवान) है रथ जिसका सो दृढरथ, ११) विवेष्टिवलैः पृथिवीविष्णुः (विवेष्टन कीया है पृथवीकुं सेना करी जिसने सो विष्णु, (१२) अन्यैराजभिर्वसुभिर्धनैः पूज्यते इतिवसुपूज्यः सचासौराट्च वसुपूज्यराट् (दूसरे राजाउने धन करी पूज्या सो वसुपूज्य राजा, (१३) कृतंवर्मानेन कृतवर्मा (कर्‍यो है सनाह जिसने सो कृतवर्मा, (१४) सिंहवत्पराक्रमवतीसेनास्य सिंहसेनः (सिंहकीतरे है पराक्रम वाली सेना जिसकी सो सिंहसेन, (१५) भातित्रिवर्गेणभानुः सोभे है जो अर्थ काम अरु धर्म करके सो भानु, (१६) विश्वव्यापिनीसेनाऽस्यविश्वसेन (जगतमे व्यापने वाली सेना है जिसके सो विश्वसेन सचासौराट्चविश्वसेनराट् (१७) तेजसासूरइवसूरः (तेज करके सूर्यवत् सो सूर, (१८) शोभनदर्शनमस्यसुदर्शनः (भला है दर्शन जिसका सो सुदर्शन, (१९) गुणपयसामाधारभूतत्वात् कुंभइव कुंभः (गुणरूप पाणीका आधारभूत होणेसे कुंभकी तरे कुंभ, (२०) शोभनानिमित्राणिअस्यसुमित्रः (भले है मित्र जिसके सो सुमित्र, (२१) विजयते शत्रुनितिविजयः (जीते है शत्रुओंकूं सो विजय, (२२) गांभीर्येणसमुद्रस्यापिविजेतासमुद्रविजयः (गांभीर्यता करी समुद्रकूं जीतने वाला समुद्रविजय, (२३) अश्वप्रधानासेनास्यअश्वसेनः (घोडों करी प्रधान है सेना जिसकी सो अश्वसेन, (२४) सिद्धार्थाःपुरुषार्था अस्यसिद्धार्थः॥ ए ऋषभ आदि चोवीस तीर्थकरोके क्रम करके चोवीस पिताओंके नाम कहे.

अथ चोवीश तीर्थंकरोकी माताओंके नाम लिखते हैं. (१) मरुद्भिर्दि व्यतेस्तूयतेमरुदेवा पृषोदरादित्वात् तल्लोपःमुरदेव्यपि स्यात् (देवतां करी जो स्तवीये सा मरुदेवा मुरदेवी एसाभी नाम है. (२) विजयतेविजया (ज यवंतविजया, (३) सहअनेनजितारिस्वामिनावर्त्ततेसेना (जितारिराजा के साथ जो वर्त्ते सा सेना. (४) सिद्धोऽर्थोऽस्याःसिद्धार्थाः (सिद्धहूया है अर्थ जिसका सा सिद्धार्थाः (५) मंगलहेतुत्वात्मंगला (मंगलके हे तुजूत होनेसें मंगला, (६) शोजनासीमामर्यादाऽस्याः सुसीमा(जली है मर्यादा जिसकी सा सुसीमा, (७) स्थेम्नापृथ्वीवपृथ्वी (स्थिर है पृथ्वी की तरे पृथ्वी, (८) लक्ष्मीशोजाऽस्त्यस्याः लक्ष्मणा (लक्ष्मीकीतरें शोजा है जिसकी सा लक्ष्मणा, (९) धर्मकृत्येषुरमतेरामा (धर्मकृत्यमें जो रमे सा रामा, (१०) नंदतिसुपात्रेणनंदा (वृद्धिवान् होवे जो सुपा त्रदान देणेसें सा नंदा, (११) विवेष्टिगुणैर्जगदिति विष्णुः (लपेटे जो गु णा करी जगत् सा विष्णु, (१२) जयतिसतीत्वेनजया (उत्कृष्टपणेवर्त्ते है सती पणे करी सा जया, (१३) श्यामवर्णत्वात्श्यामा (श्यामवर्ण होनेसें श्यामा, (१४) शोजनंयशोऽस्याःसुयशा (जला है यश जिसका सा सुयशा, (१५) शोजनंव्रतमस्याःसुव्रतापतिव्रतत्वात् (जला है व्रत जिसके सा सुव्रता, (पतिव्रता होनेसें सुव्रता, (१६) नचिरयतिधर्मका र्येष्वऽचिराः (नही चिर करती धर्मकार्यों विषे सा अचिरा, (१७) श्रीरि वश्रीदेवीवदेवीप्रजाऽस्त्यस्याःश्री (लक्ष्मीकी तरे प्रजा है जिसकी सा श्री,(१८) देवीकी तरे प्रजा है जिसकी सा देवी, (१९) प्रजावतीप्रजावती, (२०) पद्मइवपद्मावती (पद्मकी तरे पद्मावती, (२१) धर्मबीजमितिवप्रा, (२२) शिवहेतुत्वात्शिवा (निरुपद्रव होणेके हेतुसें शिवा, (२३) मनोज्ञत्वा द्वामा पापकार्येषुप्रतिकूल्याद्वामा (मनोज्ञ होणेसें वामा) अथवा पापकार्यों विषे प्रतिकूल होनेसें वामा, (२४) त्रिणिज्ञानदर्शनचारित्राणिशलयति प्राप्नोतीतित्रिशला (तीन ज्ञान दर्शन औ चारित्रकूं प्राप्ति होवे सा त्रिशला, इस क्रम करकें ऋषजादि चोवीश तीर्थंकरोंके माताओंका नाम है ॥ अथ वा सुगमताके कारण चोवीश तीर्थंकरोंके साथ बावन बोलका संबंध है तिसका स्वरूप यंत्र बंध लिखते है प्रथम बावन बोलका नाम लिखे है.

बावन बोलका नाम कहेते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरका नाम.	२८	गणधरोंकी संख्या.
२	चवणतिथि.	२९	साधुओंकी संख्या.
३	किस विमानसें आये.	३०	साधवीयोंकी संख्या.
४	किस नगरीमें जन्म हूये.	३१	वैक्रिय लब्धिवंतोंकी संख्या.
५	जन्म तिथि.	३२	अवधि ज्ञानीयोंकी संख्या.
६	पिताओंका नाम.	३३	केवल ज्ञानीयोंकी संख्या.
७	माताओंका नाम.	३४	मनःपर्यवज्ञानीयोंकी संख्या.
८	किस नक्षत्रमें जन्मे.	३५	चौदह पूर्वधारियोंकी संख्या.
९	जन्मराशि.	३६	वादिओंकी संख्या.
१०	लांछनका नाम.	३७	श्रावकोंकी संख्या.
११	शरीरके उच्च पणेका मान.	३८	श्राविकायोंकी संख्या.
१२	आयुके वर्षका प्रमाण.	३९	शासनके यक्षोंका नाम.
१३	शरीरका वर्ण.	४०	शासनके यक्षणीयोंका नाम.
१४	पदवी.	४१	प्रथम गणधरका नाम.
१५	विवाहे के कुमारे ?	४२	प्रथम आर्याका नाम.
१६	कितने जनोंके साथ दीक्षा लीई.	४३	मोक्ष होनेका स्थान.
१७	दीक्षा कोनसी नगरीमें लीई.	४४	मोक्ष पोहोचनेकी तिथि.
१८	दीक्षा दिने कितना तप.	४५	मोक्ष दिने तप.
१९	प्रथम पारणे क्या आहार मिला	४६	मोक्ष जानेके आसन.
२०	प्रथम पारणेका घर.	४७	परस्पर अंतरका मान.
२१	कितने दिनाका पारणा.	४८	गण नाम.
२२	दीक्षाकी तिथि.	४९	योनि नाम.
२३	छद्मस्थ पणेका कालमान.	५०	मोक्ष परिवार.
२४	किस नगरीमें केवलज्ञान प्राप्त हूया	५१	सम्यक्त्वपायां पीछे महोटे भव.
२५	ज्ञानोत्पत्ति दिने क्या तप.	५२	किस कुलमें उत्पन्न हूया.
२६	किस वृक्षके हेठ दीक्षा लीनी.	५३	गर्भवासका कालमान.
२७	किस तिथिमें ज्ञान उत्पन्न हूया.		

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहेते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१ श्रीऋषभदेव.	२ श्रीअजितनाथ.	३ श्रीसंभवनाथ.
२	चवणतिथि.	आषाढवदि ४	वैशाखसुदि १३	फाल्गुनसुदि ८
३	विमाननाम.	सर्वार्थसिद्ध	विजयविमान	उपरलाग्रैवेयक
४	जन्मनगरी.	विनीताभूमि	अयोध्या	सावत्थी
५	जन्मतिथि.	चैत्रवदि ८	माहसुदि ८	माहसुदि १४
६	पिताका नाम.	नाभिकुलकर	जितशत्रु	जितारि
७	माताका नाम.	मरुदेवी	विजया	सेना
८	जन्मनक्षत्र.	उत्तराषाढा	रोहिणी	मृगशिर
९	जन्मराशि.	धन	वृष	मिथुन
१०	लांछननाम.	वृषभ	हस्ती	अश्व
११	शरीरमान.	५००)धनुष	४५०)धनुष	४००)धनुष
१२	आयुमान.	८४)लक्षपूर्व	७२)लक्षपूर्व	६०)लक्षपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवी राजकी.	राजपदवी	राजपदवी	राजपदवी
१५	पाणिग्रहण.	विवाह हूया	विवाह हूया	विवाह हूया
१६	कितनेसाथ दीक्षा.	४०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	विनीता	अयोध्या	सावत्थी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	इक्षुरस	परमान्नक्षीर	परमान्नक्षीर
२०	पारनेका स्थान.	श्रेयांसके घरें	ब्रह्मदत्तके घरें	सुरेंद्रदत्तके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	एकवर्षपीछे	दो दिन पीछे	दो दिनपीछे
२२	दीक्षातिथि.	चैत्रवदि ८	महावदि ९	मगसिरसुदि १५
२३	छद्मस्थकाल.	१०००)वर्ष	१२)वर्ष	१४)वर्ष
२४	ज्ञाननगरी.	पुरिमताल	अयोध्या	सावत्थी
२५	ज्ञानतप.	तीनउपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	वटवृक्ष	सालवृक्ष	प्रियालवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	फागुणवदि ११	पोषवदि ११	कार्त्तिकवदि ५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	८४)	९५)	१०२)
२९	साधुओंकी संख्या	८४०००)	१०००००)	२०००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	३०००००)	३३००००)	३३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	२०६००)	२०४००)	१९८००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	१२६५०)	१२४००)	१२०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	९०००)	९४००)	९६००)
३४	केवलीसंख्या.	२००००)	२२०००)	१५०००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	१२७५०)	१२५५०)	१२१५०)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४७५०)	३७२०)	२१५०)
३७	श्रावकसंख्या.	३५००००)	२९८०००)	२९३०००)
३८	श्राविकासंख्या.	५५४०००)	५४५०००)	६३६०००)
३९	शासनयक्षनाम.	गोमुखयक्ष	महायक्ष	त्रिमुखयक्ष
४०	शासनयक्षणी.	चक्रेश्वरी	अजितबला	दुरितारि
४१	प्रथमगणधरनाम.	पुंडरीक	सिंहसेन	चारु
४२	प्रथमआर्यानाम.	ब्राह्मी	फाल्गु	श्यामा
४३	मोक्षस्थान.	अष्टपद	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	माघवदि १३	चैत्रशुदि ५	चैत्रशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा.	६ उपवास	एक मास	एक मास
४६	मोक्षआसन.	पद्मासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतर मान.	५०लाखकोटीसा	३०लाखकोटीसा	१०लाखकोटीसा
४८	गणनाम.	मानवगण	मानवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	नकुलयोनि	सर्प्पयोनि	सर्प्पयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१००००)	१०००)	१०००)
५१	भवसंख्या.	तेर भव कथा	तीन भव कथा	तीन भव कथा
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	नवमासचारदिन	८मास पच्चीशदि.	नवमास ६दिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थंकरनाम.	४ श्रीअभिनंदन	५ श्रीसुमतिनाथ	६ श्रीपद्मप्रभ
२ चवणतिथि.	वैशाखशुदि ४	श्रावणशुदि २	माघवदि ६
३ विमाननाम.	जयंतविमान	जयंतविमान	उवरिमग्रैवेयक
४ जन्मनगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
५ जन्मतिथि.	माघशुदि २	वैशाखशुदि ८	कार्त्तिकवदि १२
६ पिताका नाम.	संबरराजा	मेघराजा	श्रीधरराजा
७ माताका नाम.	सिद्धार्था	मंगला	सुसीमा
८ जन्म नक्षत्र.	पुनर्वसु	मघा	चित्रा
९ जन्मराशि.	मिथुन	सिंह	कन्या
१० लांछनका नाम.	बंदरका	क्रौंचपक्षीका	पद्मकमलका
११ शरीरमान.	३५०)धनुष	३००)धनुष	२५०)धनुष
१२ आयुमान.	५०)लाखपूर्व	४०)लाखपूर्व	३०)लाखपूर्व
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	रक्तवर्ण
१४ पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५ पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६ कितनेसाथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७ दीक्षानगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	नित्य भक्त	एक उपवास
१९ प्रथमपारणेकाआ०	क्षीर	क्षीर	क्षीर
२० पारनेका स्थान.	इंद्रदत्त घरें	पद्म घरें	सोमदेव घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दोदिन (२)	दोदिन (२)	दोदिन (२)
२२ दीक्षातिथि.	माघशुदि १२	वैशाखशुदि ९	कार्त्तिकवदि १३
२३ छद्मस्थकाल.	अठारहवर्ष	वीशवर्ष	छ मास
२४ ज्ञाननगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
२५ ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	चोथ भक्त
२६ दीक्षावृक्ष.	प्रियंगु वृक्ष	साल वृक्ष	छत्र वृक्ष
२७ ज्ञानतिथि.	पोषवदि १४	चैत्रशुदि ११	चैत्रशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८ गणधरसंख्या.	११६)	[illegible])	१०७)
२९ साधुओंकीसंख्या.	३०००००)	[illegible]००००)	३३००००)
३० साध्वीओंकीसंख्या.	६३००००)	५३००००)	४२००००)
३१ वैक्रियलब्धिवंत.	१९०००)	१८४००)	१६१०८)
३२ वादीओंकीसंख्या.	११०००)	१०४००)	९६००)
३३ अवधिज्ञानीसंख्या.	९८००)	११०००)	१००००)
३४ केवलीसंख्या.	१४०००)	१३०००)	१२०००)
३५ मनःपर्यवसंख्या.	११६५०)	१०४५०)	१०३००)
३६ चौदहपूर्वीसंख्या.	१५००)	२४००)	२३००)
३७ श्रावकसंख्या.	२८८०००)	२८१०००)	२७६०००)
३८ श्राविकासंख्या.	५२७०००)	५१६०००)	५०५०००)
३९ शासन यक्ष नाम.	नायक यक्ष	तुंबरु यक्ष	कुसमय यक्ष
४० शासनयक्षणीनाम.	कालिका	महाकाली	श्यामा
४१ प्रथमगणधरनाम.	वज्रनाभ	चरम	प्रद्योतन
४२ प्रथमआर्यानाम.	अजिता	काश्यपी	रति
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षतिथि.	वैशाखशुदि ८	चैत्रशुदि ९	मगसिरवदि ११
४५ मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन.	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७ अंतरमान.	९लाखकोडीसा.	९०हजारकोडीस	९हजारकोडीसा.
४८ गणनाम.	देवगण	राक्षसगण	राक्षसगण
४९ योनिनाम.	छागयोनि.	मूषकयोनि	महिषयोनि
५० मोक्षपरिवार.	१०००)	१०००)	३०८)
५१ भवसंख्या.	तीनभवकीया	तीनभवकीया	तीनभवकीया
५२ कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३ गर्भकालमान.	८मास२८दिन	नवमास६दिन	नवमास६दिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थंकरनाम.	७श्रीसुपार्श्वनाथ	८ श्रीचंद्रप्रभ	९ श्रीसुविधिनाथ
२ चवणतिथि.	भाद्रववदि ८	चैत्रवदि ५	फागणवदि ९
३ विमाननाम.	मध्यिमग्रैवेयक	विजयंत	आनतदेवलोक
४ जन्मनगरी.	वणारसी नगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकंदीनगरी
५ जन्मतिथि.	ज्येष्ठशुदि १२	पोषवदि १२	मगसिरवदि ५
६ पिताका नाम.	प्रतिष्ठराजा	महासेनराजा	सुग्रीवराजा
७ माताका नाम.	पृथिवीमाता	लक्ष्मणामाता	रामाराणीमाता
८ जन्मनक्षत्र.	विशाखानक्षत्र	अनुराधानक्षत्र	मूलनक्षत्र
९ जन्मराशि.	तुलराशि	वृश्चिकराशि	धनराशि
१० लांछननाम.	साथीयाकालंछन	चंद्रकालंछन	मगरमच्छकालंछन
११ शरीरमान.	२००)धनुष	१५०)धनुष	१००)धनुष
१२ आयुमान.	२०)लाखपूर्व	१०)लाखपूर्व	२)लाखपूर्व
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण
१४ पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५ पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६ कितनेसाथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७ दीक्षानगरी.	बनारसीनगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकंदीनगरी
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरकाभोजन	क्षीरकाभोजन	क्षीरका भोजन
२० पारणेका स्थान.	माहेंद्र घरें	सोमदत्त घरें	पुष्प घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि.	ज्येष्ठशुदि १३	पोषवदि १३	मगसिरवदि ६
२३ छद्मस्थकाल.	नव मास रह्या	त्रण मास रह्या	चार मास रह्या
२४ ज्ञाननगरी.	बणारसी नगरी	चंद्रपुरी नगरी	काकंदी नगरी
२५ ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृक्ष.	सरीसवृक्ष	नागवृक्ष	सालीवृक्ष
२७ ज्ञानतिथि.	फागणवदि ६	फागणवदि ७	कार्त्तिकशुदि ३

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	९५)गणधर	९३)गणधर	८८)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	३०००००)	२५००००)	२०००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	४३००००)	३८००००)	१२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१५३००)	१४०००)	१३०००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	८४००)	७६००)	६०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	९०००)	८०००)	८४००)
३४	केवलीसंख्या.	११०००)	१००००)	७५००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	९१५०)	८०००)	७५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	२०३०)	२०००)	१५००)
३७	श्रावकसंख्या.	२५७०००)	२५००००)	२२९०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४९३०००)	४७९०००)	४७१०००)
३९	शासनयक्षनाम.	मातंगयक्ष	विजययक्ष	अजिता यक्ष
४०	शासनयक्षणीनाम	शांता	भृकुटी	सुतारिका
४१	प्रथमगणधरनाम.	विदर्भ	दिन्न	वराहक
४२	प्रथमआर्यानाम.	सोमा	सुमना	वारुणी
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	फागणवदि ७	भाद्रवावदि ७	भाद्रवाशुदि ९
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान.	एसोकोडीसागर	९०कोडीसागर	एकोडीसागर
४८	गणनाम.	राक्षसगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	मृगयोनि	मृगयोनि	वानरयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५००)	१०००)	१०००)
५१	भवसंख्या.	तीन भव कीया	तीन भव कीया	तीन भव कीया
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिन १९	मासनवदिनसात	मास ८ दिनछवीस

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहेते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरनाम:	१० शीतलनाथ	११ श्रेयांसनाथ	१२ श्रीवासुपूज्य
२	चवणतिथि.	वैशाखवदि ६	ज्येष्ठवदि ६	ज्येष्ठशुदि ए
३	विमाननाम.	अच्युतदेवलोक	अच्युतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	नद्दिलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
५	जन्मतिथि.	महावदि १२	फागणवदि १२	फागणवदि १४
६	पिताका नाम.	दृढरथराजा	विष्णुराजा	वसुपूज्यराजा
७	माताका नाम.	नंदामाता	विष्णुमाता	जयामाता
०	जन्मनक्षत्र.	पूर्वाषाढा	श्रवणनक्षत्र	शतभिषानक्षत्र
ए	जन्मराशि.	धनराशि	मकरराशि	कुंभराशि
१०	लांछननाम.	श्रीवत्सकालांछन	गेंडाका लांछन	पाडाका लांछन
११	शरीरमान.	नेवुं धनुष	अंशीधनुष	सीत्तेर धनुष
१२	आयुमान.	एकलाख पूर्व	(०४)लाख वर्ष	(७२)लाख वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	लालवर्ण
१४	पदवी राजकी.	राजा	राजा	कुमार
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा.	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(६००) साधु
१७	दीक्षानगरी.	नद्दिलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
१०	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१ए	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान.	पुनर्वसुके घरें	नंदके घरें	सुनंदके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	महावदि १२	फागणवदि १३	फागणशुदि १५
२३	छद्मस्थकाल.	तीन मासरह्या	दो मासरह्या	एक मासरह्या
२४	ज्ञाननगरी.	नद्दिलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	प्रियंगुवृक्ष	तंडुकवृक्ष	पाडलवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पौषवदि १४	महावदि ३	महाशुदि २

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	८१)गणधर	७६)गणधर	६६)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या.	१०००००	८४०००	७२०००
३०	साधवीयोंकीसंख्या.	१००००६	१०३०००	१०००००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१२०००	११०००	१००००
३२	वादीओंकीसंख्या.	५८००	५०००	४७००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	७२००	६०००	५४००
३४	केवलीसंख्या.	७०००	६५००	६०००
३५	मनःपर्यवसंख्या.	७५००	६०००	६५००
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	१४००	१३००	१२००
३७	श्रावकसंख्या.	२८९०००	२७९०००	२१५०००
३८	श्राविकासंख्या.	४०८०००	४४८०००	४३६०००
३९	शासन यक्ष नाम.	ब्रह्मायक्ष	जक्षेटयक्ष	कुमारयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	अशोका	मानवी	चंमा
४१	प्रथमगणधरनाम.	नंद	कश्यप	सुभूम
४२	प्रथमआर्यानाम.	सुयशा	धारणी	धरणी
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	चंपापुरी
४४	मोक्षतिथि.	वैशाखवदि २	श्रावणवदि ३	आषाढशुदि १४
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतरमान.	एककोडीसागर	चोपनसागर	त्रीशसागर
४८	गणनाम.	मानवगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	नकुलयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१०००)परिवार	१०००)परिवार	६००)परिवार
५१	भवसंख्या.	तीन भव कथा	तीन भव कथा	तीन भव कथा
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनव दिन ८	मासनव दिन ८	मास८ दिन २०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१३ विमलनाथ	१४अनंतनाथ	१५ श्रीधर्मनाथ
२	चवणतिथि.	वैशाखशुदि १२	श्रावणवदि ७	वैशाखशुदि ७
३	विमाननाम.	सहस्रारदेवलोक	प्राणतदेवलोक	विजयविमान
४	जन्मनगरी.	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरीनगरी
५	जन्मतिथि.	महाशुदि ३	वैशाखवदि १३	महाशुदि ३
६	पिताका नाम.	कृतवर्मराजा	सिंहसेनराजा	नानुराजा
७	माताका नाम.	श्यामामाता	सुयशामाता	सुवृतामाता
८	जन्म नक्षत्र.	उत्तरानाड्पद	रेवतीनक्षत्र	पुष्यनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मीनराशि	मीनराशि	कर्कराशि
१०	लांछनका नाम.	वराहका लांछन	सींचाणाका लां०	वज्र लांछन
११	शरीरमान.	शाठ धनुष	पचाशधनुष	पीस्तालीशधनुष
१२	आयुमान.	शाठलाखवर्ष	त्रीशलाखवर्ष	दशलाखवर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	कंपिलपुर	अयोध्या	रत्नपुरी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन
२०	पारनेका स्थान.	जयराजाकेघरें	विजयराजाकेघरें	धनसिंहके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	महाशुदि ४	वैशाखवदि १४	महाशुदि १३
२३	छद्मस्थकाल.	दो मास	तीन वर्ष	दो वर्ष
२४	ज्ञाननगरी.	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	जंबूवृक्ष	अशोकवृक्ष	दधिपर्णवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पौषशुदि ६	वैशाखवदि १४	पौषशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	५७)गणधर	५०)गणधर	४३)गणधर
२९	साधुओंकी संख्या	६८०००)	६६०००)	६४०००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	१००८००)	६२०००)	६२४००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	९०००)	८०००)	७०००)
३२	वादिओंकी संख्या.	३६००)	३२००)	२८००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	४८००)	४३००)	३६००)
३४	केवलीसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	११००)	१०००)	९००)
३७	श्रावकसंख्या.	२०८०००)	२०६०००)	२०४०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४२४०००)	४१४०००)	४१३०००)
३९	शासनयक्षनाम.	षण्मुखयक्ष	पातालयक्ष	किन्नरयक्ष
४०	शासनयक्षिणी.	विदिता	अंकुशा	कंदर्पा
४१	प्रथमगणधरनाम.	मंदरगणधर	जस गणधर	अरिष्ट
४२	प्रथमआर्यानाम.	धरा	पद्मा	आर्यशिवा
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	आषाढवदि ७	चैत्रशुदि ५	ज्येष्ठशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान.	नवसागरोपम	चारसागरोपम	तीनसागरोपम
४८	गणनाम.	मानवगण	देवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	छागयोनि	हस्तियोनि	मंजारयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	६००)	७००)	१०८)
५१	जवसंख्या.	तीनजवकख्या	तीनजवकख्या	तीनजवकख्या
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मास ८ दिन २१	मासनवदिन	छमास८दिनछवीश

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१६ श्रीशांतिनाथ	१७ श्रीकुंथुनाथ	१८ श्रीअरनाथ
२	चवणतिथि.	भाद्रवावदि ७	श्रावणवदि ९	फागणशुदि २
३	विमाननाम.	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
४	जन्मनगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
५	जन्मतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १४	मगशिरशुदि १०
६	पिताका नाम.	विश्वसेन	सूरराजा	सुदर्शन
७	माताका नाम.	अचिराराणी	श्रीराणी	देवीराणी
८	जन्मनक्षत्र.	भरणीनक्षत्र	कृत्तिकानक्षत्र	रेवतीनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मेषराशि	वृषराशि	मीनराशि
१०	लांछननाम.	हरिणका लांछन	बकराका लांछन	नंदावर्त्तकालांछन
११	शरीरमान.	४० धनुष	३५ धनुष	३० धनुष
१२	आयुमान.	एकलाखवर्ष	(९५०००)वर्ष	(८४०००) वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी.	चक्रवर्त्ती	चक्रवर्त्ती	चक्रवर्त्ती
१५	पाणिग्रहण.	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री
१६	कितनेसाथदीक्षा.	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(१०००) साधु
१७	दीक्षानगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारणेका स्थान.	सुमित्रघरें	व्याघ्रसिंहघरें	अपराजितघरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	ज्येष्ठवदि १४	चैत्रवदि ५	मगसिरशुदि ११
२३	छद्मस्थकाल.	एकवर्ष	शोलवर्ष	तीनवर्ष
२४	ज्ञाननगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	नंदीवृक्ष	भीलकवृक्ष	आंबाकावृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पौषशुदि ९	चैत्रशुदि ३	कार्त्तिकशुदि १२

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	३६ गणधर	३५ गणधर	३३ गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	६२०००	६००००	५००००
३०	साधवीयोंकीसंख्या	६१६००	६०६००	६००००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	६०००	५१००	७३००
३२	वादिओंकीसंख्या.	२४००	२०००	१६००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	३०००	२५००	२६००
३४	केवलीसंख्या.	४३००	३२००	२८००
३५	मनःपर्यवसंख्या.	४०००	३३४०	२५५१
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	८००	६७०	६१०
३७	श्रावकसंख्या.	१५००००	१७९०००	१८४०००
३८	श्राविकासंख्या.	३९३०००	३८१०००	३३२०००
३९	शासनयक्षनाम.	गरुडयक्ष	गंधर्वयक्ष	यक्षेंद्रयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	निर्वाणी	बला	धरणा
४१	प्रथमगणधरनाम.	चक्रयुध	सांब	कुंभ
४२	प्रथमआर्यानाम.	सुचि	दामिनी	रक्षिता
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १	मगशिरशुदि १०
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान.	० ॥ पल्योपम	० । पल्योपम	१०००क्रोडवर्ष
४८	गणनाम.	मानवगण	राक्षसगण	देवगण
४९	योनिनाम.	हस्तियोनि	छागयोनि	हस्तियोनि
५०	मोक्षपरिवार.	९०० परिवार	१००० परिवार	१००० परिवार
५१	भवसंख्या.	बारांभव कथा	तीनभव कथा	तीनभव कथा
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिनछ	मासनवदिनपांच	मासनवदिन ८

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१ए श्रीमल्लीनाथ	२०श्रीमुनिसुब्रत	२१श्रीनमीनाथ
२	चवणतिथि.	फागुणशुदि ४	श्रावणशुदि १५	आशोशुदि १५
३	विमाननाम.	जयंतविमान	अपराजितविमा.	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
५	जन्मतिथि.	मगशिरशुदि ११	ज्येष्टवदि ७	श्रावणवदि ७
६	पिताका नाम.	कुंजराजा	सुमित्रराजा	विजयराजा
७	माताका नाम.	प्रजावती	पद्मावती	विप्राराणी
७	जन्मनक्षत्र.	अश्विनीनक्षत्र	श्रवणनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र
ए	जन्मराशि.	मेषराशि	मकरराशि	मेषराशि
१०	लांछननाम.	कलशका लांछन	कूर्मपका लांछन	कमलका लांछन
११	शरीरमान.	पचीशधनुष	वीशधनुष	पंदरधनुष
१२	आयुमान.	५५०००) वर्ष	३००००)वर्ष	१००००)वर्ष
१३	शरीरका वर्ण	नीलावर्ण	श्यामवर्ण	पीलावर्ण
१४	पदवी राजकी.	कुमार	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	नहीं परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा.	३००) साधु	१०००) साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	मिथिलानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
१७	दीक्षातप.	तीन उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१ए	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन
२०	पारनेका स्थान	विश्वसेन	ब्रह्मदत्त	दिन्नकुमार
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	मगशिरशुदि ११	फागणशुदि १२	आषाढवदि ए
२३	छद्मस्थकाल.	एक अहोरात्र	इग्यार मास	नव मास
२४	ज्ञाननगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	अशोकवृक्ष	चंपकवृक्ष	बकुल वृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	मगशिरशुदि ११	फागणवदि १२	मगशिरशुदि ११

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

२८ गणधरसंख्या.	२८)गणधर	१८)गणधर	१७)गणधर
२९ साधुओंकीसंख्या	४००००	३००००	२००००
३० साधवीयोंकीसंख्या	५५०००	५००००	४१०००
३१ वैक्रियलब्धिवंत.	२९००	२०००	५०००
३२ वादिओंकीसंख्या.	१४००	१२००	१०००
३३ अवधिज्ञानीसंख्या.	२२००	१८००	१६००
३४ केवलीसंख्या.	२२००	१८००	१६००
३५ मनःपर्यवसंख्या.	१७५०	१५००	१२५०
३६ चौदहपूर्वीसंख्या.	६६८	५००	४५०
३७ श्रावकसंख्या.	१८३०००	१७२०००	१७००००
३८ श्राविकासंख्या.	३७००००	३५००००	३४८०००
३९ शासनयक्षनाम.	कुबेरयक्ष	वरुणयक्ष	भृकुटीयक्ष
४० शासनयक्षिणीनाम.	धरणप्रिया	नरदत्ता	गंधारी
४१ प्रथमगणधरनाम.	अभीक्षकगणधर	मल्लीगणधर	शुभगणधर
४२ प्रथमआर्यानाम.	बंधुमती	पुष्पमती	अनिला
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षतिथि.	फागुणशुदि १२	ज्येष्ठवदि९	वैशाखवदि १०
४५ मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७ अंतरमान.	५४०००००वर्ष	६००००० वर्ष	५०००००)वर्ष
४८ गणनाम.	देवगण	देवगण	देवगण
४९ योनि नाम.	अश्वयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
५० मोक्षपरिवार.	५०० परिवार	१००० परिवार	१००० परिवार
५१ भवसंख्या.	तीनभवकरया	तीनभवकरया	तीनभवकरया
५२ कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागवंशकुल	हरिवंशकुल	इक्ष्वागवंशकुल
५३ गर्भकालमान.	मासनवदिनसात	मास नव दिन	८ मासनवदिनआठ

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

१ श्रीतीर्थंकरनाम.	२२श्रीनेमिनाथ	२३श्रीपार्श्वनाथ	२४श्रीमहावीर.
२ चवणतिथि.	कार्त्तिकवदि१२	चैत्रवदि४	आषाढशुदि६
३ विमाननाम.	अपराजित	प्राणतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४ जन्मनगरी.	सोरीपुर	बणारसी	क्षत्रीकुंड
५ जन्मतिथि.	श्रावणशुदि५	पौषवदि१०	चैत्रवदि१३
६ पिताका नाम.	समुद्रविजय	अश्वसेन	सिद्धार्थराजा
७ माताका नाम.	शिवा देवी	वामादेवी	त्रिशलादेवी
८ जन्मनक्षत्र.	चित्रानक्षत्र	विशाखानक्षत्र	उत्तराफाल्गुनी
९ जन्मराशि.	कन्याराशि	तुलराशि	कन्याराशि
१० लंछननाम.	शंखलंछन	सर्पलंछन	केशरीलंछन
११ शरीरमान.	दश धनुष	नव हाथ	सात हाथ
१२ आयुमान.	हजार वर्ष	शो वर्ष	बहोंत्तेर वर्ष
१३ शरीरका वर्ण	श्यामवर्ण	नीलावर्ण	पीलावर्ण
१४ पदवी राजकी.	कुमारपदवी	कुमारपदवी	कुमारपदवी
१५ पाणिग्रहण.	नहीं परण्या	परण्या	परण्या
१६ कितने साथ दीक्षा.	१०००) साधु	३००)साधु	एकाकी दीक्षा
१७ दीक्षानगरी.	सौरीपुर	बणारसी	क्षत्रीकुंड
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२० पारनेका स्थान	वरदिन्न	धन्यनाम	बहुलब्राह्मण
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि.	श्रावणशुदि६	पौषवदि११	मगसिरवदि११
२३ छद्मस्थकाल.	चौपनदिन	चौराशीदिन	बारां वर्ष
२४ ज्ञाननगरी.	गिरनार	बणारसी	ऋजुबालुकानदी
२५ ज्ञानतप.	तीन उपवास	तीन उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृक्ष.	वेडसवृक्ष	धातकीवृक्ष	सालवृक्ष
२७ ज्ञानतिथि.	आशोवदि०)	चैत्रवदि४	वैशाखशुदि१०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

२८	गणधरसंख्या.	११)गणधर	१०)गणधर	११)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या.	१८०००)	१६०००)	१४०००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	४००००)	३८०००)	३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१५००)	११००)	७००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	८००)	६००)	४००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	१५००)	१०००)	१३००)
३४	केवलीसंख्या.	१५००)	१०००)	७००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	१०००)	७५०)	५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४००)	३५०)	३००)
३७	श्रावकसंख्या.	१६९०००)	१६४०००)	१५९०००)
३८	श्राविकासंख्या.	३३६०००)	३३९०००)	३१८०००)
३९	शासनयक्षनाम.	गोमेधयक्ष	पार्श्वयक्ष	मातंगयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम.	अंबिका	पद्मावती	सिद्धायिका
४१	प्रथमगणधरनाम.	वरदत्त	आर्यदिन्न	इंद्रभूति
४२	प्रथमआर्यानाम.	यक्षदिन्ना	पुष्पचूडा	चंदनबाला
४३	मोक्षस्थान.	गिरनार	समेतशिखर	पावापुरी
४४	मोक्षतिथि.	आषाढशुदि८	श्रावणशुदि८	कार्त्तिकवदि०)
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	दोउपवास करा
४६	मोक्षआसन.	पद्मासन	काउस्सग्ग	पद्मासन
४७	अंतरमान.	८३७५०)वर्ष	२५०)वर्ष	चर्मजिनेश्वर
४८	गणनाम.	राक्षसगण	राक्षसगण	मानवगण
४९	योनि नाम.	महिषयोनि	मृगयोनि	महिषयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५३६)परिवार	३३)परिवार	एकाकी आप
५१	भवसंख्या.	नव भव करा	दश भव करा	सत्तावीशभवक०
५२	कुलगोत्रनाम.	हरिवंश	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनव दिन ८	मास नव दिन ८	मासनवदिन७॥

इस यंत्रके अनुसार एकैक तीर्थंकरके साथ बावन बावन बोलका संबंध जान लेनां. इनमेंसूं मातादिक कितनेक द्वार जो प्रथम न्यारे लिखे गये हैं, सो व्युत्पत्तिके कारणसें लिखे हैं.

इन चोवीश तीर्थंकरोंमें नववां, दशवां, इग्यारवां, बारवां, तेरवां, चौदवां अरु पंदरवां, ए सात तीर्थंकरोके निर्वाण हुवा पीछें इन सातोंका शासन जो द्वादशांग वाणीरूप शास्त्र अरु साधु तथा साधवी, श्रावक, औ श्राविका. ए चतुर्विध श्रीसंघरूप तीर्थ सो कितनेक काल तांइ प्रवृत्त होकर पीछेसें व्यवछेद गया, तब तो भारत वर्षमें जैन मतका नामभी न रहा था, तबहीसें अनेक मत मतांतर और कुशास्त्रोंकी प्रायें प्रवृत्ति भयी सो अबतांइ होतीही चली जाती है, बहुत लोकोने स्वकपोल कल्पित शास्त्र बना करकें पूर्व मुनि, वा रुषि, वा ईश्वरप्रणीत प्रसिद्ध करे हैं असे तीनसो त्रेशठ मत प्रवृत्त कर दीये अरु आर्य चारों वेद व्यवछेद हो गये अरु नवीन वेद बना लीये उन नवीनोकोंभी कइ वार लोकोने नवी नवी रचनासें बना कर उलट पुलट कर दीये जो कुछ बन बनाके शेष रहे उनकीभी अनेक तरेंके भाष्य, टीका, दीपिका रच कर अर्थोंकी गड बड कर दीनी सो अबतांइ करतेही चले जाते हैं; ए सर्व स्वरूप जहां वेदोंकी उत्पत्ति लिखेंगे तहां स्पष्ट करके लिखेंगे बेद जो नाम है सोतो बहुत प्राचीन कालसें है, अरु जिन पुस्तकोंका नाम वेद अब प्रसिद्ध है सो पुस्तक प्राचीन नहीं है, इसका प्रमाण आगें चलके लिखेंगे ॥ इति श्री तपगछीये मुनि श्री बुद्धिविजय शिष्यमुनि आंनदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे प्रथमः परिछेदः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयः परिछेद प्रारंभः ॥

अब दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप लिखते हैं, कुदेव उसकुं कहते हैं जो भगवान् तो नहीं परंतु लोकोंने अपनी बुद्धिसें परमेश्वरका आरोप कर लीया है सो कुदेवका स्वरूप तो उक्त देव स्वरूपसें विपर्यय सर्व बुद्धिमान् आपही जान लेंगे, परंतु विस्तारसें लिखाही जो समझ सक्ते हैं तिनोंके तांई लिखते हैं.

॥श्लोक॥ ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादि, रागाद्यंककलंकिताः ॥ निग्रहानुग्रहपरा,

स्तेदेवास्पुर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाटयाट्टहाससंगीता, द्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥ लं नयेयुः पदं शांतं, प्रपन्नान्प्राणिनः कथं ॥२॥ इति योगशास्त्रे ॥ अस्यार्थः ॥ जिस देवके पास स्त्री होवे तथा तिसकी प्रतिमाके पास स्त्री होवे क्युंकि जैसा पुरुष होता है उसकी मूर्त्तिनी प्रायें वैसीही होती है. आज काल सर्व चित्रोमें वैसाही देखनेमें आता है, सो मूर्त्ति द्वारा देवकाजी स्वरूप प्रगट हो जाता है इस कारणें मूर्त्तिद्वारा तथा मतावलंबी पुरुषोंके ग्रंथानुसार समझ लेनां तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होवे तथा अक्षसूत्र, जपमाला,आदि शब्दसें कमंमल प्रमुख होवे, फेर कैसा वो देव होवे? राग द्वेषादि दूषणोंका जिनमें चिन्ह होवे अरु स्त्रीकूं जो पास रखेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसें नोग करनेवाला होगा. इस्सें अधिक रागी होणेका दूसरा कौनसा चिन्ह है? इसी काम रागके वश होकर कुदेवोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, अरु पुत्रकी बधू प्रमुखसें अनेक कामक्रीडा कुचेष्टा करी है.

अब जो पुरुष मात्र होकर परस्त्री गमन करता है उसकूं आज कालके मतावलंबीयोमेंसें कोइनी अच्छा नहीं कहता, तो फेर परमेश्वर हो कर जो परस्त्रीसें काम कुचेष्टा करे, तो उसके कुदेव होनेमें कोइनी बुद्धिमान् शंका नहीं कर सक्ता; जो आपणी स्त्रीमें काम सेवन करता है औ परस्त्रीका त्यागी है उसकूंनी परस्त्रीका त्यागी, धर्मी गृहस्थ, लोक कह सक्त हें, परंतु उसको मुनि वा ऋषि वा ईश्वर कनी नहीं कहेंगे क्युंकि जो आपही कामाग्निके कुंममें प्रज्ज्वलित हो रहा है तिसमें कनी ईश्वरता नहीं हो सक्ती. इस हेतुमें जो रागरूप चिन्ह करी संयुक्त है, सो कुदेव है. पुनः जो द्वेषके चिन्ह करी संयुक्त है वोनी कुदेव है. द्वेषके चिन्ह शस्त्रादि धारण करणां क्युं के जो शस्त्र, धनुष, चक्र, त्रिशूल प्रमुख रखेगा उसने अवश्य किसी वैरीकुं मारणा है,नहींतो शस्त्र रखणेसें क्या प्रयोजन है? तो जिसकूं वैर विरोध लगा हुवा है सो परमेश्वर नहीं हो सक्ता है; जो ढाल वा खड्ग रखेगा वह नयकरी अवश्य संयुक्त होगा अरु जो आप ही नय संयुक्त है तो उसकी सेवा करनेसें हम निर्नय कैसें हो सक्ते है? इस हेतुसें द्वेष संयुक्तकों कौन बुद्धिमान्, परमेश्वर कह सक्ता है? परमेश्वर जो है सो तो वीतराग है अरु जो राग द्वेष करी संयुक्त है सो कुदेव है.

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणिकियों बिना भी जपकी संख्या कर सक्ता, अरु जो जपकों करता है, सोभी अपणेसें उच्चका करता है, तो परमेश्वरसें उच्च कौन है जिसका वो जप करता है? इस हेतुसें जो मालासें जप करता है सो कुदेव है.

तथा जो शरीरकूं भस्म लगाता है, औ धूणी तापता है, नंगा होकर कुचेष्टा करता है; भांग, अफीम, धतूरा, मदिरा प्रमुख पीता है तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है; वा हस्ती, ऊंट, बैल, गर्दभ प्रमुखकी जो असवारी करता है सोभी कुदेव है, क्युंकि जो शरीरकों भस्म लगाता है, अरु जो धूणी तापता है सो किसी वस्तुकी इच्छा वाला है, सो जिसका अभीतक मनोरथ पूरा नहीं हूआ सो परमेश्वर नहीं वो तो कुदेव है.

अरु जो नशे, अमलकी चीजें खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनंद और हर्ष ढूंढता है, अरु परमेश्वर तो सदा आनंद औ सुखरूप है. परमेश्वरमें वो कौनसा आनंद नहीं था जो नशा पीनेसें उसकूं मिलता है? इस हेतुसें नशा पीने वाला अरु मांसादि अशुद्ध आहार करने वाला जो है सो कुदेव है.

और जो असवारी है सो परजीवोंकूं पीडाका कारण है, अरु परमेश्वर तो दयालु है, सो पर जीवोंकूं पीडा कैसें देवे? इस हेतुसें जो असवारी करे, सो कुदेव है.

और जो कमंडल रखता है, सो शुचि होणेके कारण रखता है अरु परमेश्वर तो सदाही पवित्र है उनकूं कमंडलसें क्या काम है?

यतः ॥ श्लोक ॥ स्त्रीसंगः काममाचष्टे, द्वेषं चायुधसंग्रहः ॥ व्यामोहं चाक्षसूत्रादि, रशौचं च कमंडलुः ॥ १ ॥ अर्थः—स्त्रीका जो संग है सो कामकूं कहता है, शस्त्र जो है सो द्वेषकूं कहता है, जपमाला जो है सो व्यामोहकूं कहती है, अरु कमंडलु जो है सो अशुचिपणेकूं कहता है तथा निग्रह जो (जिसके उपर क्रोध करे) तिसकूं बध, बंधन, मारण, रोगी, शोकी, अतीष्ट वियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, क्षीण करे, सोभी कुदेव है. और जो जिसके उपरि अनुग्रह (तुष्टमान) होवे तिसकूं इंद्र, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोंकों राज्यादि पदवीका वर देवे तथा

सुंदर स्वर्गसदृश स्त्रीका संयोग, पुत्र परिवारादिकोंका संयोग जो करें, सो कुदेव है, क्युंकि जो ऐसा रागी द्वेषी है वो मोक्षके तांइ कजी नहीं हो सक्ता, सो तो जूत, प्रेत, पिशाचादिकोंकी तरे क्रीडाप्रिय देवता मात्र है. ऐसा देव अपणे सेवकोंकूं कैसें मोक्ष दे सक्ता है? आपही यदि वो रागी, द्वेषी, कर्म परतंत्र है, तो सेवकोंका क्या कार्य सार सक्ता है? इस हेतुसें वोजी कुदेव है.

पुनः कुदेवके लक्षण लिखते हैं. जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनके रसमें मग्न है वाद्यंत्र (बाजा) बजाता है अरु आप नृत्य करता है तथा औरोंको नचाता है, आप हसता अरु कूदता है, विषयी रागोंकों गाता है, अरु संगीत बोलता है इत्यादिक मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता है, स्वजाव जिसका अस्थिर हो रहा है, जो आपही ऐसा है तो फेर सेवकोंकूं शांतिपद कैसें प्राप्त कर सक्ता है? जैसें एरंमवृक्ष कल्पवृक्षकी तरें इछा नहीं पूर सक्ता, किसी मूढ पुरुषने जो एरंमकूं कल्पवृक्ष मान लीया तो क्या वो कल्पवृक्षका सारा काम दे सक्ता है? ऐसेंही किसी मिथ्यादृष्टि पुरुषने जो कुदेवकूं परमेश्वर मान लीया तो क्या वो परमेश्वर हो सक्ता है? कजी नहीं हो सक्ता. इसी वास्ते प्रथम परिछेदमें जो लक्षण परमेश्वरके लिखे हें तिनही लक्षणों वाला परमेश्वर देव है शेष सर्व कुदेव हें.

प्रश्नः—हमने तो ऐसा सुण रक्खा है जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते, उनका जो मत है, सो अनीश्वरीय है और तुमने तो प्रथम परिछेदमें कइ जगे अर्हंत जगवंत परमेश्वर लिखा है अरु प्रथम परिछेद तो जगवान्हीके स्वरूपकथनमें समाप्त किया है, यह कैसें संजव हो सक्ता है?

उत्तरः—हे जव्य! जे केइ कहते हैं कि जैनमतावलंबी ईश्वरको नहीं मानते ऐसा कहणा उनका मिथ्या है उनोंने कजी जैनमतका शास्त्र पढा वा सुना न होगा तथा किसी बुद्धिमान् जैनीका संसर्गजी न करा होगा, जेकर जैनमतका शास्त्र पढा, वा सुना होता तो कजी ऐसा न कहता, जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते, जेकर जैनी ईश्वरको न मानते तो यह जो श्लोक लिखे जाते हें, वो किसकी स्तुतिके हें ॥श्लोक॥ त्वामव्ययंविजुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं, ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम् ॥ योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ॥ १॥ अस्यार्थः—हे जिन! (संतः) सत्पुरुष (त्वां) तेरे प्रति (अव्ययं) अव्यय (प्रवदंति) कहते हैं अव्यय अपचयकूं जो न प्राप्ति होवे

सो द्रव्यार्थ नयके मतसें अव्यय तीनो कालोंमें एक स्वरूप है. विजातिः—शो भता है परमेश्वर पणा करी सो (विभु) अथवा विभवतिः—समर्थ होवे कर्मोन्मूलन करकें सो (विभु) अथवा इंद्रादिक देवताओंका जो स्वामी सो विभु, सत्पुरुष इसवास्ते तुजकूं विभु कहते हैं. पुनः कैसें तुजकुं? (अचिं त्यं) अध्यात्म ज्ञानीभी तुजकूं चिंतवन करनेकूं समर्थ नहीं फेर कैसें तुजकूं? (असंख्यं) गुणाकी संख्या (गिणती) नहीं कि इतने गुण है भगवान्‌में इस हेतुसें सत्पुरुष तुजकूं असंख्य कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (आद्यं) आदिमें जो होवे सर्व लोक व्यवहारके प्रवर्त्तावणेसें, संत तेरेकूं आद्य क हते हैं, अथवा अपने तीर्थकी आदि करणेसें आद्यं. फेर कैसें तुजकूं? (ब्रह्माणं) अनंत आनंद करी जो सर्वसें अधिक वृद्धि वाला है सो ब्रह्म, सत्पुरुष तुजकूं ब्रह्म कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (ईश्वरं) सर्व देवताओंमें ठाकुर कहते है. फेर कैसें तुजकूं? (अनंतं) अनंत ज्ञान दर्शनके योगतें अ नंत अथवा नही है अंत जिसका सो अनंत कहते हैं अथवा अनंत चारों करी संयुक्त १ अनंतज्ञान, २ अनंतबल, ३ अनंतसुख, ४ अनंतजीवन, सो अनंत कहते हैं. फेर कैसे तुजकूं? (अनंगकेतुं) कामदेवकूं केतुके उदय समान नाशकारक सो अनंगकेतु कहते हैं अथवा नहीं है अंग औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस, कार्मण शरीर रूपी चिन्ह जिसके सो अनंग केतु. भविष्य नैगमके मत करी कहते है. फेर कैसे तुजकूं? (योगीश्वरं) योगी जो चार ज्ञानके धरनारे तिनोंका ईश्वर कहते हैं. फिर कैसे तुजकूं? (विदितयोगं) जाण्या है सम्यक् ज्ञानादिरूप जिसने अथवा योगो (ध्यानादि जाण्या है जिसने) अथवा विशेष करकें दितः खंडित कीया है कर्मका सं योग जीवके साथ जिसने सो विदितयोग कहते हैं, फेर कैसे तुजकूं? (अनेकं) ज्ञान करकें सर्वगत होनेसें अथवा अनेक सिद्धोंके एकत्र रहनेसें अथवा गुण पर्यायकी अपेक्षा करकें अथवा रूपभादि व्यक्ति भेदसें अने क कहते हैं फिर कैसे तुजकूं? (एकं) अद्वितीय उत्तमोत्तम अथवा जीव द्रव्यापेक्षया एक कहते हैं. फेर कैसे तुजकूं? (ज्ञानस्वरूपं) ज्ञान क्षायिक केवल है स्वरूप जिसका. सो ज्ञानस्वरूप कहते है. फेर कैसे तुजकूं? (अ मलं) नहीं है अष्टादश दोषरूप मल जिसके सो अमल कहते है, ए पूर्वो क्त पंदरा विशेषण ईश्वरके मतांतरोमें प्रसिद्ध है.

तथा श्लोक "बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोसि भुवन त्रयशंकरत्वात् ॥ धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोसि ॥ २ ॥ अर्थः—हे विबुधार्चित! विबुध जो देवताओं करी पूजिता सातो सुगतामेसें कोइएक सुगत, तिसकूं बुद्ध कहीयें, सो बुद्ध तुंही है,किस कारणसें? धर्मबुद्धि प्रगट करणेसें फेर तूं शंकर है किस कारणसें? तीन भुवनमें शं जो सुख करे सो शंकर. हे धीर! त्वं धाता (ब्रह्मा है) किस कारणसें? शिव मोक्ष तिसका मार्ग जो ज्ञान, दर्शन,चारित्र रूप तिसकी विधिकरणेसें तूं विधाता है. हे भगवन्! तूं व्यक्त प्रगट पुरुषोमें उत्तम है ॥२॥ इत्यादि लाखों श्लोक परमेश्वरकी स्तुतिके है, जे कर जैनी ईश्वरको न मानते तो इन श्लोकोसें उनोने किसकी स्तुति करी है? इस कारणसें जो कहते हैं कि जैनी लोग ईश्वरकूं नहीं मानते, वे प्रत्यक्ष मृषावादी हैं.

प्रश्नः—बहुत अछा हूआ जो मेरे मनका संशय दूर हूआ परंतु एक बातका संशय मेरे मनमें है जो तुमने ईश्वर तो मान्या,परंतु जगत्का कर्त्ता ईश्वर जैनमतमें तुमनें मान्या है वा नहीं?

उत्तरः—हे भव्य! जगत्का कर्त्ता जो ईश्वर सिद्ध हो जावें तो जैनी क्युं नहीं माने? परंतु सर्व वस्तुका कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता.

प्रश्नः—जे कर किसी प्रमाणसें ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध नहीं होता तो (१) नवीन वेदांती, (२) नैयायिक, (३) वैशेषिक, (४) पातंजल, (५) नवीन सांख्य, (६) ईसाइ, (७) मुसलमान प्रमुख अनेक मतावलंबी पुरुष ईश्वरको जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता मानते है. क्या इनमेसूं कोइभी ईश्वरकूं जगत्का कर्त्तापणामें निषेध करनेवाला समज वार न भया?

उत्तरः—हे भव्य! (१) जैन, (२) बौद्ध, (३) प्राचीन सांख्य, (४) पूर्वमीमांसाकारक जैमनीय मुनिके संप्रदायी भट्ट प्रभाकर इत्यादिक अनेक मतावलंबीयोमेंसें कोइभी समजवार न भया जो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता स्थापन करता.

प्रश्नः—जैन बौद्ध अरु प्राचीन सांख्यादि उक्त मतावलंबी सर्व अज्ञानी हूवे हैं इस हेतुसें ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता नहीं मानते?

उत्तरः—नवीन वेदांती, नैयायिक अरु वैशेपिकादि यहभी सर्व अज्ञानी हूवे है, जो इश्वकूंर जगत्का कर्त्ता मानते है.

प्रश्नः– ईश्वर जगत्का वा सर्व वस्तुका कर्त्ता है, ऐसें जो मानियें, तो क्या दूषण है ?

उत्तरः–ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेसें बहुत दूषण आते हैं.

प्रश्नः–तुम तो अपूर्व बात सुणाते हो, हमने तो कदेइ नहीं सुना जो ईश्वरकूं जगत् कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेमें दूषण आता है? अब तो आपकूं कहनां चाहियें जो जगत्का कर्त्ता माननेसें ईश्वरकूं क्या दूषण आता है?

उत्तरः–हे जव्य! प्रथम तुम यह बात कहो की तुम कोणसा ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानता हो ?

प्रश्नः–क्या ईश्वरजी कइक तरेंके हैं, जो आप हमसें ऐसा पूछते हो ?

उत्तरः–क्या तुम नहीं जानते जो दो तरेंके ईश्वर मतावलंबीयोंने माने हैं ? एक तो जगदुत्पत्तिसें पहिलां केवल एकही ईश्वर था जगत्का उपादानादिक कोइनी कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी, एकही शुद्ध बुद्ध सच्चिदानंदादि स्वरूप युक्त परमेश्वर था. एकेक जीवोंके तो ऐसा ईश्वर, जगत् वा सर्व वस्तुका रचने वाला अनिमत है, और दूसरोंने तो (१) जीव. (२) परमाणु. (३) आकाश, (४) काल, (५) दिशादि सामग्री वाला, एतावता एक तो ईश्वर उक्त विशेषण संयुक्त. और दूसरी सामग्री जिससें जगत् रचा जावे. ए दोनो वस्तु अनादि हैं. एतावता एक तो ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करणेकी सामग्री. ए दोनो किसीने वणाये नहीं ऐसे माने है, तुमकूं इन दोनो मतोंमेंसूं कोनसा मत सम्मत है ?

पूर्वपक्षः–हमकूं तो प्रथम मत सम्मत है. क्युं के वेदादि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है. "एतस्मादात्मनआकाशः संजूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिन्योऽन्नं अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः सवा एषपुरुषोन्नरसमयः" यह तैत्तिरीय शाखाकी श्रुति है,तथा "सदेव सौम्येवमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तदैक्षत बहुःस्यां प्रजायेयेति" यह श्रुति गंदोग्य उपनिषद्की है, तथा "नासदासीन्नो सदासीत्तदानीन्नासीद्रजोन व्योमपरोयत् किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्नः किमासीद्गहनं गजीरं" यह श्रुति ऋग्वेदकी है, "आत्मा वा इदमग्रआसीन्नान्यत् किंचिन्मिषत् स ईक्षत लोकानुसृजइति" यह ऐत्तरेय ब्राह्मणकी श्रुति है. इत्यादि अनेक श्रुतियोंसें सिद्ध

होता है, जो सृष्टिसें पहेलें एक केवल ईश्वरही था, न जगत् था और न जगत्का कारण था, एकही ईश्वर शुद्ध स्वरूप था, तथा ईसाइ वा मुसलमान मतवालेभी ऐसे ही मानते हैं. इस हेतुसें हम प्रथम पक्ष मानते हैं.

उत्तरः—हे पूर्वपक्षी ! तुमारा यह कहनां ईश्वरकूं बडा कलंकित करता है?

पूर्वपक्षः—जगत्के रचनेसें ईश्वरकूं क्या कलंक प्राप्त होता है ?

उत्तरपक्षः—प्रथम तो जगत्का उपादान कारण है नहीं, इस हेतुसें जगत् कदेभी उत्पन्न नहीं हो सक्ता, जिसका उपादान कारण नहीं है, सो कार्य कदापि उत्पन्न नहीं हो सक्ता; जैसें गधेका सींग.

पूर्वपक्षः—ईश्वरनें अपणी शक्ति, नामांतर कुदरतसें जगत्कूं रचा है ईश्वरकी जो शक्ति है, सोइ उपादान कारन है.

उत्तरपक्षः—ईश्वरकी जो शक्ति है सो ईश्वरसें भिन्न है, वा अभिन्न है ? जे कर कहोगे भिन्न है, तो फेर जड है वा चेतन है ? जेकर कहोगे जड है. तो फेर नित्य है, वा अनित्य है ? जेकर कहोगे नित्य है, तो फेर यह जो तुमारा कहनां था जो सृष्टिमें पहिलें एक केवल ईश्वर था दूसरा कुछभी नहीं था; यह ऐसा हुवाकि जैसें उन्मत्तोंका बचन, अपने ही बचनकुं आपही जूठ करा. जे कर कहोगे अनित्य है. तो फेर उसका उपादान कारण, और ईश्वरकी शक्ति हुइ तिस शक्तिकी उत्पन्न करणे वाली और शक्ति हुई, इसी तरें करतां अनवस्थादूषण आता है, जे कर कहोगे चेतन है, तो फिर नित्य है, वा अनित्य है ? दोनोही पक्षोमें पूर्वोक्त अपरापरस्ववचनव्याहत अरु अनवस्था दूषण है, जेकर कहोगे ईश्वर शक्ति ईश्वरसें अभिन्न है, तो सर्व वस्तुकों ईश्वरही कहनां चाहियें, जब सर्व वस्तु ईश्वरही हो गइ, तो फेर अछा और बुरा, नरक और स्वर्ग, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म, ऊंच नीच, रंक राजा, सुशील और दुःशील, राजा और प्रजा, चोर और साध, (संत) सुखी और दुःखी. इत्यादिक सर्व कुछ ईश्वरही आप बना, तब तो ईश्वरने जगत् क्या रचा, आपही आपणा सत्तानाश कर लीया, ए प्रथम कलंक ईश्वरकूं लगता है. (२) तथा जब ईश्वर आपही सब कुछ बन गया, तो फेर वेदादिक शास्त्र क्युं बनाये? अरु उनके पढणेसें क्या फल हुआ? ए दूसरा कलंक. (३) तथा जब वेदादिक बणाये तब आपणे आपकूं ज्ञानी होणे वास्ते पहिलें तो अज्ञानी था ए तीसरा कलंक. (४) तथा शुद्धसें अ

शुद्ध बना, जो जगतूरूप होणेकी मेहनत करी, सो निष्फल हुई. ए चोथा कलंक. (५) कोइ वस्तु जगत्में अच्छी वा बूरी नहीं ए पांचवा कलंक. (६) क्युं आपणे आपकूं संकटमें माला? ए छठा कलंक. इत्यादि अनेक कलंक तुम ईश्वरकूं लगाते हो.

पूर्वपक्षः—ईश्वर सर्व शक्तिमान् हैं, इस हेतुसें ईश्वर, विनाही उपादान कारणसें जगत् रच सक्ता है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहना है सो प्यारी जार्या, वा मित्र मानेगा परंतु प्रेक्षावान् कोइजी नहीं मानेगा, क्युंकि इस तुमारे कहनेमें कोइजी प्रमाण नहीं परंतु जिसका उपादान कारण नहीं वो कार्य कदेजी न हो सक्ता. जैसे गद्धेका सींग, ऐसा प्रमाण तुमारे कहनेकूं बाधने वाला तो है, परंतु साधने वाला कोइजी नहीं, जेकर हठ करकें स्वकपोलकल्पितहीकूं मानोगे तो परीक्षा वालोकी पंक्तिमें कदेजी नहीं गिने जाउगे. तथा इस तुमारे कहनेमें इतरेतराश्रय दूषणरूप वज्रका प्रहार पडता है, यथा सृष्टिसें पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध, एक ईश्वर सिद्ध हो जावे तो सर्वशक्तिमान् सिद्ध होवे, जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तो सृष्टिसें पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, इन दोनोमेंसूं जब तक एक सिद्ध न होवे तब तक दूसरा कजी सिद्ध नहीं होता, तथा इस तुमारे कहनेमें चक्रकदूषण होता है, सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होवे, तदा सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे. जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तब सृष्टिसें पहिलें सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, तब सृष्टिकर्त्ता सिद्ध होवे. ऐसे प्रगट, चक्रक दूषण है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरतो प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध है, फेर तुम उसकूं सृष्टिकर्त्ता क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्षः—जे कर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध होवे, तो किसीकूंजी अमान्य न होवे, औ तुमारा हमारा ईश्वर विषयिक विवाद कजी नहीं होवे, क्युंकि प्रत्यक्षमें विवाद नहीं होता है, तथा ईश्वरका प्रत्यक्ष देखणांजी तुमारे वेद मंत्रसें विरुद्ध है. तथा च वेदमंत्रः॥ अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः शृणोत्यकर्णः॥ स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता,

तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ इस मंत्रसें कहता है ईश्वरकों जानने वाला कोइजी नहीं.

पूर्वपक्षः—बिना कर्त्ताके जगत् कैसें हो गया? इस अनुमान प्रमाणसें ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होता है, सो तुम क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्षः—इस तुमारे अनुमानकूं दूसरे ईश्वरपक्षमें खंमन करेंगे, ऐसे उक्त प्रकारसें एक केवल उपादानादि सामग्री रहित, ऐसे सृष्टिमें पहिलें परमेश्वर नहीं सिद्ध हुआ, तोजी हम आगें चलते हैं कि जब ईश्वरने इन जीवोंकूं रचे थे तब (१) निर्मल रचे थे? (२) पुण्य वाले रचे थे? (३) पाप वाले रचे थे? (४) मिश्रित पुण्य पाप अर्द्धो अर्द्ध वाले रचे थे? (५) पुण्य थोडा पापाधिक ऐसें रचे थें? (६) किंवा पुण्याधिक पाप थोडे वाले रचे थे? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करो गे तो जगत्में सर्व जीव निर्मलही चाहियें, फेर वेदादि शास्त्रों द्वारा उनकूं उपदेश करना वृथा है. अरु वेदादि शास्त्रोंका कर्त्ताजी मूढ सिद्ध हो जावेगा, क्युंकि जब आगेंही जीव निर्मल हैं तो उसके वास्ते शास्त्र काहेकूं रचने थे, जो वस्त्र निर्मल होता है तिसकूं कोइजी बुद्धिमान् धोता नहीं. जे कर धोवे तो महामूढ है. इस कारणसें जो निर्मल जीवोंके उपदेश निमित्त शास्त्र रचे सोजी मूढ है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरनेंतो जीवोंकूं शुद्ध निर्मल एतावता अछाही बनाया था, परंतु जीवोनें अपणी इछासें अछा वा बुरा (जूंमा) काम कर लीया है, इसमें ईश्वरकूं कुछ दोष नहीं?

उत्तर पक्षः—जब ईश्वरने जीवोंमें अछा वा बुरा काम करणेकी शक्ति नहीं रची, तो फेर जीवोंकूं पुण्य वा पाप करणेकी शक्ति कहांसें आई?

पूर्वपक्षः—शक्तियां तो जीवमें सर्व ईश्वरनेही रचियां है. परंतु जीवोंकूं बुरा काम करणेमें प्रवृत्त नहीं करता, बुरे कामोंमें जीव आपही प्रवृत्त हो जाता है,जैसें कोइ गृहस्थने अपणे प्रिय पुत्र बालककूं खेलणे वास्ते एक खिलोना दीया है, परंतु जो वो बालक, उस खिलोनेसें आपणी आंख निकाल लेवे तो माता पिताका क्या दूषण है? तैसेंही जीवोंकूं ईश्वरने जो हाथ, पग, प्रमुख वस्तु दइ है, सो नित्य केवल धर्म करणेके कारणे दइ हैं. पीछें जो जीव उनसें अपणी इछासें पाप कर लेवे तो इसमें ईश्वरकूं क्या दूषण है?

उत्तरपक्षः—हे नव्य ! यह जो तुमने बालकका दृष्टांत दीया सो यथा र्थ नहीं, क्युंकि बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान नहीं है, जो हम इस बालकके खेलणे वास्ते खिलोना देते हैं, सो हमारा बालक इस खिलो नेसें अपणी आंख फोड लेगा जेकर बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान होता जो हमारा बालक, इस खिलोनेसें अपणी आंख फोड लेगा तो माता पिता कभी उसके हाथमें खिलोनां न देते, जे कर जान करकें देवें तो वो माता पिता नहीं किंतु ? उस बालकके परम शत्रु है, इसीतरें ईश्वर, माता पिता तुल्य है अरु तुम हम उसके बालक हैं,जे कर ईश्वर जानता था जो मैं इ सकूं रचा इसके तांइ हाथ, पग, मन, इंद्रियादि सामग्री दीनी है,इस जीवने इस सामग्रीसें बहुत पाप करकें नरक जाना है तो फेर ईश्वरने उस जीवकूं क्युं रचा ? जे कर कहोगे ईश्वर यह बात नहीं जानता था जो मेरी धर्मकरणेकी दीनी हुइ सामग्रीसें पाप करकें यह जीव नरक जावेगा, तो फेर ईश्वर तु मारे कहनेहीसें अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध होता है. जेकर कहोगे ईश्वर जान ता था जो यह जीव मेरी देइ हुइ सामग्रीसें पाप करकें नरकें जायगा तो फेर हमारा रचने वाला ईश्वर, परम शत्रु हुआ के नहीं ? बिना प्रयोजन रंक जीवोंकूं सामग्रीद्वारा पाप करायकें क्युं उनकूं नरकमें डाले ? जब साम ग्रीद्वारा प्रथम पाप करानां और पीछें नरकपात करनेका दंड देना इस तुमारे कहनेसें ईश्वरसें अधिक अन्यायी कोइ नहीं क्युं के उस जीवकूं प्रथम तो रचा. फेर नरकमें डाला, बस येही तुमने ईश्वरकूं अन्यायी, असर्वज्ञ, निर्द यी, अज्ञानी, वृथा मेहनतीरूप कलंक दीने, इस वास्ते निर्मल जीव ईश्वर ने नहीं रचा. ए प्रथम पक्षोत्तर.

अथ दूसरा पक्षोत्तरः—जेकर कहोगे ईश्वरने पुण्य वालेही जीव रचे हैं तो यहभी कहनां तुमारा मिथ्या है. क्युंकि जब पुण्यही वाले सर्व जीव थे तो गर्भमेंही अंधे, लंगडे, लूले. बहिरे होनां, बूंडा रूप,नीच वा निर्धन के कुलमें उत्पन्न होनां, जाव जीव दुःखी रहनां, खाने पीनेकों पूरा न मि लनां, महा कष्ट कारक मेहनत करकें पेट भरनां,यह पुण्यके उदयसें नहीं हो सकें, अरु बिनाही करे पुण्यके जीवोंकू ईश्वरने पुण्य क्युं लगा दीया ? जेकर बिनाही कर्या जीवोंकूं ईश्वरने पुण्य लगा दीया तो असे बिनाही धर्म कर्या जीवोंकूं स्वर्ग तथा मोक्ष क्युं नहीं पहूंचाय देता ? शास्त्रोप

देश करायकें, भूखें मारकें, तृष्णा बुडायकें, राग द्वेष मिटायकें, घर बार छुडायकें, साधु बनायकें, टुकडे मंगायकें, दया, दम, दान, सत्यवचन, चोरीका त्याग, स्त्रीका त्याग, इत्यादिक अनेक साधन करायकें, पीछे स्वर्ग मोक्षमें पहुंचानां,यह संकट ईश्वरने व्यर्थ खडा करकें क्युं जीवोंकूं दुःख दीना इस बातसें तो अैसा प्रतीत होता है, जो ईश्वरकूं कुछनी समझ नहीं. इति.

अथ तृतीय पक्षोत्तरः–जे कर कहोगे ईश्वरने पाप संयुक्त ही जीव रचे हैं, तो फेर बिनाही जीवोंके कर्यां पाप लगा दीया तो फेर जब ईश्वरने ही हमारा सत्यानाश करा, तो हम किस आगें विनति करें जो बिना गुनाह हमकूं यह ईश्वर पाप लगाता हे, तुम इसकूं मने करो, जो बिनांही करे पाप लगा देवे,अैसें अन्यायी ईश्वरकातो कन्नी नामही न लेनां चाहियें. तथा जेकर ईश्वरने पाप संयुक्तही सर्व जीव रचे है, तो राजा, आमात्य (मंत्री) श्रेष्ठ, सेनापति, धनवानोके घरमें उत्पन्न होनां, नीरोगकाय, सुंदर रूप, सुंदर संहनन, घरमें आदर, बाहिर यशोकीर्त्ति, पंचिंद्रियविषय नोग, इत्यादिक सामग्री पापसें कदेइ संनव नहीं होती. इस वास्ते जीवोंकूं केवल पापवान् ईश्वरने नहीं रचे ॥ इति तृतीय पक्षोत्तर ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ पक्षोत्तरः–जेकर कहोगे अर्द्धोऽर्द्ध पुण्य पाप वाले जीव ईश्वरने रचे हैं यह पक्षनी अछा नहीं, क्युंकि आधे सुखी आधे दुःखी अैसे नी सर्व जीव देखनेमें नहीं आते ॥ इति चतुर्थपक्षोत्तर ॥

अथ पंचमपक्षोत्तरः–पांचवा पक्ष सोनी ठीक नहीं.सुख थोडा और दुःख बहुत अैसेनी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते, परंतु सुख बहुत अरु दुःख अल्प, अैसें बहुत जीव देखणेमें आते हैं ॥ इति पंचमपक्षोत्तर ॥

अथ षष्ठ पक्षोत्तरः–छठा पक्षनी समीचीन नहीं, सुख बहुत अरु दुःख थोडा अैसेंनी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते हे, दुःख बहुत अरु सुख अल्प, अैसे बहुत जीव देखणेमें आते हैं. इन हेतुओंमें ईश्वर जीवोंकूं किसी व्यवस्था वाला नहीं रच सक्ता, तो फेर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता क्युं कर सिद्ध हो सक्ता हे? कन्नी नहीं हो सक्ता. तथा जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकूं क्या दुःख था? अरु जब सृष्टि रची तब क्या सुख हुआ.

पूर्वपक्षः–ईश्वर तो सदाही परम सुखी है, क्या ईश्वरमें कुछ न्यूनता

है जो उस न्यूनताके पूर्ण करणेकूं सृष्टि रचे? वो तो जगत्में अपणी ईश्वरता प्रगट करणेकूं सृष्टि रचता है.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं थी अरु जब सृष्टि रची तब ईश्वरता प्रगट भइ, तो प्रथम जब ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं भइ थी तब तो ईश्वर बडा उदास अरु असंपूर्ण मनोरथ ईश्वरताकों प्रगट करणेमें विव्हल था. इस हेतुसें अवश्य ईश्वरकूं दुःख होनां चाहियें. जब ईश्वर सृष्टिसें पहिलें असा दुःखी था तब तो खाली क्युं बैठ रहा था? इस सृष्टिसें पहिले अपर सृष्टि क्युं नहीं रचकें अपणा दुःख दूर करा?

पूर्वपक्षः—ईश्वरने जो सृष्टि रची हैं सो जीवोसें धर्म करकें उनकूं अनंत सुख देगा इस परोपकारकें वास्ते ईश्वरने सृष्टि रची है.

उत्तरपक्षः—धर्म करायकें जीवोंकूं सुख देनां यह तो तुमारे कहनेसें परोपकार हुआ परंतु जो पाप करकें नरक गये उनके उपरि क्या उपकार करा? उनकूं दुःखी करणेसें क्या ईश्वर परोपकारी हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः—उनकूं नरकसें निकालकें फेर स्वर्गमें स्थापन करेगा.

उत्तरपक्षः—तो फेर प्रथमही नरकमें क्युं जाने दीये?

पूर्वपक्षः—ईश्वरही सर्व कुछ पुण्य पापादि कराता है, जीवके अधीन कुछभी नहीं. ईश्वर जो चाहता है सो कराता है, जैसें काठकी पुतलीकूं बाजीगर जैसें चाहता है, तैसें नचाता है, पुतलीके कुछ अधीन नहीं.

उत्तरपक्षः—जब जीवके कुछ अधीन नहीं, तो जीवकूं अछे बुरेका फलभी नहीं चाहियें. क्युं के जो कोइ सिरदार किसी नौकरकूं कहै जो तुम यह काम करो, फेर नौकर सिरदारके कहनेसें वो काम करे, अरु वो काम अछा वा बुरा है तो क्या फेर वो सिरदार उस नौकरकूं कुछ दंम दे सक्ता? कुछभी नहीं दे सक्ता. असेंही ईश्वरकी आज्ञासें जब जीवने पुण्य वा पाप करे, तो फेर पुण्य पापका फल जीवकूं नहीं चाहियें. जब पुण्य पाप जीवके करे न हुए तब स्वर्ग अरु नरक एभी जीवकूं न होंगे, तब जीवकूं नरक, स्वर्ग, तिर्यग् अरु मनुष्य, ए चार गतिभी न होगी. जब चार गति न होवेगी, तब संसारभी न होगा, जब संसार न होगा तब तो वेद, पुराण, कुरान, तौरे, तजबूर, इंजील प्रमुख शास्त्रभी न होंगे. जब शास्त्र न

होंगे तब शास्त्रका उपदेशकभी न होगा जब शास्त्रका उपदेशकभी नहीं तो ईश्वरभी नहीं. जब ईश्वरही नहीं तो फेर सर्व शून्यता सिद्ध भइ. ए कलंक क्युंकर मिटेगा?

पूर्वपक्षः—यह जो जगत् है सो बाजीगरकी बाजीवत् है. अरु ईश्वर इसका बाजीगर है, सो इस जगत्कूं रच कर ईश्वर इस खेलसें खेलता, (क्रीडा करता) है, नरक, स्वर्ग, पुण्य, औ पाप कुछ नहीं.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने क्रीडाहीके वास्ते जगत् रचा, तो क्रीडाहीमात्र फल होनां चाहियें, परंतु इस जगत्में तो कुष्ठी, रोगी, शोकी, धनहीन, बलहीन, महादुःखी, महाप्रलाप कर रहे हैं, जिनकूं देखनेसें दयाके वश होकर हमारे रोंघटे (रोम) खडे होते हैं, तो क्या फेर ईश्वरकूं इन दुःखीयांकूं देख कर दया नहीं आती? जब ईश्वरकूं दया नहीं तो फेर निर्दयीभी कदेइ ईश्वर हो सक्ता है? अरु जो क्रीडा करने वाला है, सो बालककी तरें रागी, द्वेषी, अज्ञ होता है, जब राग द्वेष है, तो उसमें सर्व दूषण हैं. जब आपही औगुणोंसें भखा है, तो वो ईश्वर काहेका? वोतो संसारी जीव है. अरु जब राग, द्वेष वाला होवेगा तब सर्वज्ञ कदापि न होवेगा, जब सर्वज्ञ नहीं तो उसकूं ईश्वर कौन कह सक्ता है?

पूर्वपक्षः—जीवोंके करे हूये पुण्य पापके अनुसार ईश्वर दंड देता है इस हेतुसें ईश्वरकूं क्या दोष है? जैसा जिसने कीया,वैसाही उसकूं फल दीया.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें यह संसार अनादि सिद्ध हो गया. अरु ईश्वर कर्त्ता नहीं, ऐसा सिद्ध हुआ. वाह रे मित्र! तैने अपणे हाथमें अपणां मुंह काला किया, क्युं के जे जीव अब हैं, अरु जो कुछ इनकूं इहां फल मिला है, सो पूर्व जन्ममें करा हुआ ठहरा अरु जो पूर्व जन्म था उसमें जो दुःख सुख जीवकूं मिला था, वो उससें पूर्व जन्ममें करा था. इसी तरें पूर्व पूर्व जन्ममें दुःख सुख करणां अरु उत्तरोत्तर जन्ममें सुख दुःखका भोगणां इसी तरें संसार अनादि सिद्ध होता है. अब शोचो कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर कैसें सिद्ध हूआ?

पूर्वपक्षः—हम तो एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप मानते हैं.

उत्तरपक्षः—जे कर एकही परम ब्रह्म सद्रूप है, तो फेर यह जो सरल,

रसाल, प्रियाल, हंताल, ताल, तमाल, प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामि पणे करकें जो प्रतीत होते हैं, ते क्युं कर सत् स्वरूप नहीं है?

पूर्वपक्षः—ए पूर्वोक्त जो पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सर्व मिथ्या है तथा च अनुमान प्रपंच मिथ्या है, प्रतीत होणेसें जो असा है, सो असा है. यथा सीप, चांदी रूप, तेसाही यह प्रपंच है, इस अनुमानसें प्रपंच मिथ्यारूप है, अरु एक ब्रह्मही पारमार्थिक सद्रूप है.

उत्तरपक्षः—हे पूर्वपक्षी! इस अनुमानके कहनेसें तूं तीक्ष्ण बुद्धिमान् नहीं है, सोइ बात कहते हैं, यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है सो मिथ्या तीन तरेंका होता है, एक तो अत्यंत असत् रूप, अरु दूसरा है तो कुछ ओर, अरु प्रतीति होवे ओरतरें. अरु तीसरा अनिर्वाच्य इन तीनोंमेंसूं कोनसा मिथ्यारूप प्रपंचकूं माना है?

पूर्वपक्षः—इन तीनो पक्षोमेंसें प्रथम दो पक्ष तो मेरे स्वीकारही नहीं इस कारण मैं तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानता हूं, सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्यारूप है.

उत्तरपक्षः—प्रथम तो तुम यह कहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है? ए तावता तुम अनिर्वाच्य किस वस्तुकूं कहते हो? (१) क्या वस्तुका कहने वाला शब्द नहीं है? (२) वा शब्दका निमित्त नहीं है? प्रथम विकल्प तो कल्पनाही करने योग्य नहीं है? यह सरल है, यह रसाल है, असा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है. अथ दूसरा पक्ष है तो शब्दका निमित्त ज्ञान नहीं है? वा पदार्थ नहीं है? प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं. सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान तो प्राणी प्राणी प्रत्यें प्रतीत है, सर्व जीव देखने वाले जानते है जो सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान हमकूं है. अथ दूसरा पक्ष तो पदार्थ, भावरूप नहीं है? कि अभावरूप नहीं है? जे कर कहोगे पदार्थ भावरूप नहीं अरु प्रतीत होता है, तो तुमकूं विपरीता ख्याति मानणी पडी अरु अद्वैतवादीयोंके मतमें विपरीताख्याति मानणी महा दूषण है. अथ दूसरा पक्ष. जो पदार्थ अभावरूप नहीं तो भावरूप सिद्ध भया. तब तो सत् ख्याति मानणी पडी अरु जब अद्वैतवाद मतांगीकार कीया, अरु सतख्याति मानणी पडी, तब तो सत् ख्यातिके माननेसें अद्वैत मतकी जडकूं कूहाडेसें काटा. कदापि अद्वैतमत नहीं सिद्ध होगा.

पूर्वपक्षः—नावरूप तथा अनावरूप ए दोनोही प्रकारें वस्तु नहीं.

उत्तरपक्षः—हम तुमकूं पूछते है जो नाव अरु अनाव इन दोनोका अर्थ जो लौकिकमें प्रसिद्ध है वही तुमने माना है? वा इससें विपरीत और तरें का अर्थ, नाव अरु अनावका तुमने माना है? जे कर प्रथम पक्ष मानोगे तो जहां नावका निषेध करो गे तब तो तहां अवश्यमेव अनाव कहनां पडेगा, अरु जहां अनावका निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव नाव कहनां पडे गा, जो परस्पर विरोधी है, तिसमें एकका निषेध करोगे तो दूसरेकी विधि अवश्य कहनी पडेगी. अनिर्वाच्यता तो जडामूलसें नष्ट हो गइ. अथ दूस रा पक्षः—तब तो हमारी कुछ हानी नहीं, क्युं के अलौकिक एतावता तुमा रे मनःकल्पित शब्द अरु शब्दका निमित्त जो नष्ट हो जावेगा. तो लौकिक शब्द अरु लौकिक शब्दका निमित्त कदापि नष्ट नहीं होगा, तो फेर अनि र्वाच्य प्रपंच किस तरें सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्य न सिद्ध हुआ, तो प्रपंच मिथ्या कैसें सिद्ध हुआ? तब एकही अद्वैत ब्रह्म कैसें सिद्ध हुआ?

पूर्वपक्षः—हम तों जो प्रतीत न होवे, उसकूं अनिर्वाच्य कहते हैं.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें तो बहुत विरोध आवे है, जे कर प्रपं च प्रतीत नहीं होता तो तुमने अपणे प्रथम अनुमानमें जो प्रपंचकों प्र तीयमान हेतु स्वरूप पणे क्युं कर ग्रहण कीया? अरु प्रपंचकूं अनुमान करती वेलां धर्मीपणे क्युं कर ग्रहण कीया? जे कर कहोगे धर्मी पणे वा प्रतीयमान हेतुपणे प्रपंचकूं ग्रहण करणेमें क्या दूषण है? तो फेर तुमने यह जो उपर प्रतिज्ञा करी थी, कि हम तो जो प्रतीत नहीं होवे, उसकूं अनिर्वाच्य कहते है, तो फेर प्रपंच अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध हुआ? जब प्रपंच अनिर्वाच्य नहीं तब या तो नावरूप प्रपंच सिद्ध होगा, या तो अनावरूप प्रपंच सिद्ध होगा. इन दोनोही पक्षोमें एकरूप प्रपंचके माननेसें पूर्वोक्त विपरीताख्याति तथा सत्ख्याति रूप दोनो दूषण फेर तु मारें गलेमें रस्सी नाखते हैं, अब नाग कर कहां जावोगे? हम फेर तुम कों पूछते है कि यह जो तुम इस प्रपंचकूं अनिर्वाच्य मानते हो, सो प्र त्यक्ष प्रमाणसें मानते हो? वा अनुमान प्रमाणसें मानते हो? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इस प्रपंचकूं सत्स्वरूपही सिद्ध करता है, जैसा जैसा पदार्थ है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है. अरु प्रपंच जो है सो पर

स्पर (आपसमें) न्यारी न्यारी जो वस्तु है सो अपणे अपणे स्वरूपमें जाव रूप है. अरु दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षासें अन्नाव रूप है, इस इतरे तर विविक्त वस्तुओंकूंही प्रपंच रूप माना है, तो फेर प्रत्यक्ष प्रमाण प्रपंचकूं अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध कर सक्ता है?

पूर्वपक्षः—पूर्वोक्त जो हमारा पक्ष है, तिसकूं प्रत्यक्ष प्रतिक्षेप नहीं कर सक्ता, क्युं कि प्रत्यक्ष तो विधायकही है, जे कर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूपका निषेध करे, तो हमारे पक्षकूं बाधक ठहरे, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाण तो ऐसा है नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाणतें इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूप निषेध करणेकुं कुंठ है.

उत्तरपक्षः—यहन्नी तुमारा कहनां असत्य है अन्य वस्तुके स्वरूपके बिना निषेध्यां वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होगा, पीतादिक वर्णों करी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होगा. तथा जब प्रत्यक्ष प्रमाण करी यथार्थ वस्तु स्वरूप ग्रहण कीया जायगा, तब तो अवश्य अपरवस्तुके स्वरूपका निषेधन्नी तिहां जाना जायगा. जे कर अन्य वस्तुके निषेधकूं अन्य वस्तुमें प्रत्यक्ष न जानेगा तो तिस वस्तुके विधि स्वरूपकूंन्नी प्रत्यक्ष न जान सकेगा, केवल जो वस्तुके स्वरूपकूं ग्रहण करणा है, सोइ अन्य वस्तुके स्वरूपका निषेध करनां है. जब प्रत्यक्ष प्रमाण, विधि अरु निषेध दोनोंहीकूं ग्रहण करता है, तब तो प्रपंच मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा, जब प्रपंच मिथ्यारूप प्रत्यक्ष प्रमाणसें न सिद्ध नया, तब तो परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसें सिद्ध नया? तथा जो तुम प्रत्यक्षकूं नियम करकें विधायकही मानोगे, तब तो विद्यावत् अविद्याकीन्नी विधि तुमकूं माननी पडेगी. सो यह ब्रह्म अविद्यारहित प्रत्यक्ष प्रमाणसें ग्रहण कीया, तब तो अविद्यान्नी प्रत्यक्षसें निषेध ग्रहण होगी. फेर जो तुमारा यह कहनां है की 'प्रत्यक्ष जो है, सो विधायकही है, परंतु निषेधक नहीं.' ऐसे बचन कहने वालेकूं क्युं न उन्मत्त कहनां चाहियें? अब जो आगें अनुमान कहेंगे, तिस करकेंन्नी पूर्वोक्त तेरे अनुमानका पक्ष बाधित है, सो अनुमान हमारा ऐसे है, प्रपंच मिथ्या नहीं है, असतसें विलक्षण होणेसें जो असतसें विलक्षण है, सो ऐसा है. यथा आत्मा तैसा ही यह प्रपंच है, तथा प्रतीयमान जो तुमा

रा हेतुं है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यनिचारी है, जैसें ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है, जे कर कहोगे कि ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है तो बचनगोचर न होगा, जब वचनगोचर नहीं तब तो तुमकूं गुंगे बनना ठीक है, क्युं कि ब्रह्म बिना अपर तो कुछ है नहीं, अरु जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नहीं, तो फेर तुमकूं हम गुंगेके बिना और क्या कहे? प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दीया था, सो साध्य विकल है, क्युं कि जो सीप है सोनी प्रपंचके अंतर्गत है. अरु तुम तो प्रपंचकूं मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो, यह कनी नहीं हो सक्ता है, जो साध्य होवे सोइ दृष्टांतमें कहा जावे, जब सीपकानी अनीतक सत् असत् पणा सिद्ध नहीं, तो उसकूं दृष्टांतमें काहेकूं लानां? तथा हम तुमकूं पूछते है कि यह जो तुमने प्रथम अनुमान, प्रपंचके मिथ्या साधनेकूं कीना था सो अनुमान, इस प्रपंचसें निन्न है वा अनिन्न है? जे कर कहोगे निन्न है, तो फेर सत्य है, वा असत्य है? जे कर कहोगे सत्य है, तो तिस अनुमान सत्यकी तरें प्रपंचनी सत्यही स्वरूप है. जे कर कहोगे असत्य स्वरूप है, तो फेर क्या शून्य है? वा अन्यथा ख्यात है? वा अनिर्वचनीय है? प्रथम दोनो पक्ष तो कदापि साध्यके साधक नहीं है, मनुष्यके शृंगकी तरें, तथा सीपके रूपेकी तरें. अरु तीसरा जो अनिर्वचनीय पक्ष है तिसका तो संनवही है नहीं; सो अपणे साध्यकूं कैसें साधेगा?

पूर्वपक्षः—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहार सत्य है. इस कारणों असत्य नहीं, फेर आपणे साध्यकूं क्युं कर नहीं साध्य सक्ता? अपितु साध्यही सक्ता है.

उत्तरपक्षः—हम तुममें पूछते हैं कि जो यह व्यवहारसत्यका क्या स्वरूप है? व्यवहतीति (व्यवहारः) असें जो व्युत्पत्ति करियें तब तो ज्ञानका ही नाम व्यवहार ठहरा, ज्ञानसें जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है, इस पक्षमें सत् ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुवा. जब प्रपंच सत् सिद्ध हुवा, तब तो एकही परम ब्रह्म सद्रूप अद्वैततत्त्व किसी तरहनी सिद्ध नहीं हो सक्ता, जे कर कहोगे व्यवहार नाम शब्दका सत्य है, तो फेर हम तुमकूं पूछते है जो व्यवहार नाम शब्दका है, तो फेर शब्द, स्वरूपसें सत्य है?

वा असत्य है? जे कर कहोगे शब्द सतुस्वरूप है तो शब्दकी तरे प्रपंचनी सत् स्वरूप है, जे कर कहोगे असतुस्वरूप शब्द है, तो फेर ब्रह्मादि श ब्दसें कहे हुये, कैसें सत् स्वरूप हो सकेंगे? क्युं कि जो आपही असत् स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करणे वा कहनेका हेतु कनी न हो सक्ता.

पूर्वपक्षः—जैसे खोटा रूपक सत्य रूपकके क्रय विक्रयादिक व्यवहारका जनक होणेसें सत्य रूपक माना जाता है, तैसें ही अनुमान हमारा य द्यपि असत् स्वरूप है तोनी जगतूमें सत् व्यवहार करकें प्रवर्त्तक होणेसें व्यवहार सत् है, इस वास्ते आपणे साध्यका साधक है.

उत्तरपक्षः—हे नव्य! इस तुमारे कहनेसें तुमारा अनुमान पारमार्थिक असत् स्वरूप है. फेर तो जो दूषण असत् पक्षमें दीने हैं, सो सर्व इहां पडेंगे, जे कर कहोगे कि हम प्रपंचसें अनेद अनुमानकूं मानते है, तब तो प्रपंचका तरें अनुमाननी मिथ्यारूप ठहरा, तब तो आपणे साध्यकूं कैसें साध सकेगा? इस पूर्वोक्त विचारमें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु आत्मा की तरें सतूरूप है, तो फेर एक ही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है यह तुमारा क हनां क्युं कर सत्य हो सक्ता है? कनी नहीं हो सक्ता.

पूर्वपक्षः—हमारी उपनिषदोंमें तथा शंकर स्वामीका शिष्य आनंदगिरि, शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखता है कि "परमात्मा जगडुपा दानकारणमिति" परमात्मा जो है, सोइ इस सर्व जगतूका कारण है, कारणनी कैसा उपादान रूप है. उपादान कारण उसकूं कहते है कि जो कारण होवे सोइ कार्यरूप हो जावे, इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ जो कुछ जगतूमें है, सो सर्व कुछ परमात्मा ही आप बन गया, तब तो जग तू परमात्मा रूप ही है. फेर तुम सृष्टि कर्त्ता ईश्वर क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्षः—वाह रे नास्तिक शिरोमणि! तुम अपणे कहणेकूं कनी विचार शोच कर कहते हो, वा नहीं? इस तुमारें कहनेसें तो पूर्ण नास्तिक पणा तुमारे मतमें सिद्ध होता है, यथा जब सर्व कुछ जगत् स्व रूप परमात्मरूपही है, तब तो न कोइ पापी है, न कोइ धर्मी है, न कोइ ज्ञानी है, न कोइ अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, साधुनी नहीं, अरु चोर नी नहीं, सतूशास्त्र नी नहीं, अरु मिथ्या शास्त्रनी नहीं, तथा जैसा गोमांसनक्षी, तैसाही अन्ननक्षी है, जैसा स्वनार्यासें कामनो

ग सेवन कीया तैसा ही माता, बहिन, बेटीसें कीया, जैसा चंमाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा गद्दा, तैसा संन्यासी, क्युं के जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही ठहरा, तब तो सर्व जगत् एकरस एक स्वरूप है, दूसरा तो कोइ है नहीं.

पूर्वपक्षः–हम एक ब्रह्म मानते है, अरु एक माया मानते है, सो तुम ने जो उपर बहुतसें आल जंजाल लिखे है. सो सर्व मायाजन्य है अरु ब्रह्म तो सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप है.

उत्तरपक्षः–हे अद्वैतवादी! यह जो तुमने पक्ष माना है सो बहुत अ समीचीन है यथा. माया जो है सो ब्रह्मसें भेद है, वा अभेद है? जेकर भेद है तो जड है, वा चेतन है? जे कर जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है, तो अद्वैत मतकें मूलहीकूं दाह क रती है, क्युंकि जब ब्रह्मसें भेद रूप हुइ, अरु जड रूप भइ, अरु नित्य हुइ, फेर तो तुमने द्वैतपंथ आपही आपणे कहनेसें सिद्ध कर लीया. अरु अद्वैत पंथ जड मूलसें कट गया, जे कर कहोगे कि अनित्य है, तो द्वै तता दूर कभी नहीं होगी, क्युंकि जो नाश होने वाला है, सो कार्य रूप है, अरु जो कार्य है, सो कारण जन्य है, तो फेर उस मायाका उपादान कारण कौन है? सो कहनां चाहियें. जे कर कहोगे अपर माया तब तो अनवस्था दूषण है, अरु अद्वैत तीनो कालोमें कदापि सिद्ध नहीं होगा. जे कर ब्रह्महीकूं उपादान कारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्व कुछ बन गया, तब तो पूर्वोक्त दूषण आया. जे कर मायाकों चैतन्य मानोगे, तोभी यही पूर्वोक्त दूषण होगा, जे कर कहोगे माया ब्रह्मसें अभेद है तब तो ब्रह्मही कहनां चाहियें, माया नहीं कहनां चाहियें.

पूर्वपक्षः–हम तो मायाकूं अनिर्वचनीय मानते है.

उत्तरपक्षः–इस अनिर्वचनीय पक्षकूं उपर खंमन कर आये हैं, तैसें खंमन करणां, इहांभी कह देनां तथा अनिर्वचनीय जो शब्द है तिसमें निस् जो उपसर्ग है, तिसका अर्थ तो निषेध रूप कीया है. कलापक व्या करणमें शेष जो शब्द है, सो या तो भावका वाचक है या अभावका वा चक है? जब भावकूं निषेध करोगे, तब तो अभाव आ जावेगा, अरु जे कर अभावकूं निषेधोगे, तब तो भाव आ जावेगा. ए भावाभाव दोनो वर्ज

के तीसरा वस्तुका रूप कोइ नहीं. इस वास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो दंभी पुरुषोनें छलरूप रचा प्रतीत होता है, इस कहनेसें तो द्वैत ही सिद्ध होता है, अद्वैत नहीं.

पूर्वपक्षः–यह जो अद्वैत मत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी है जिनोंने सर्वमतोंकूं खंडन करकें अद्वैत मत सिद्ध कीया है, तो फेर असे शंकर स्वामी साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उनोंके अद्वैत मतकों खंडने वाला कौन है?

उत्तरपक्षः–हे वल्लभ मित्र! तुमारी समज मूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है, परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिने शंकरदिग्विजय के अठावनवे प्रकरणमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढनेसें तो असा प्रतीत होता है, जो शंकरस्वामी सर्वज्ञ नहीं, अरु कामी है, अरु अज्ञानी है, अरु असमर्थ है, तिस लिखनेमें असाभी प्रतीत होता है कि वेदांतीयोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान जब तांइ यह स्थूल देह रहेगी, तब तांइ रहेगा. परंतु इन शरीरके छूट्या पीछें किसी वेदांतीयोंकों ब्रह्म ज्ञान नहीं रहेगा.

पूर्वपक्षः–वो कौनसा शंकरस्वामीका वृत्तांत है जिस्सें तुमारी पूर्वोक्त बातें सिद्ध होती है?

उत्तरपक्षः–जो तुमकूं वृत्तांत सुनना है, तो हमारे क्या ढील है, हम इसी जग्गे लिख देते हैं. जब शंकरस्वामीने मंडनमिश्रकूं जीता, तब मंडनमिश्रने यतिव्रत लीया, अरु मंडनमिश्रकी नार्या जिसका नाम सरसवाणी था, सो सरसवाणी आपणे पतिकूं यतिव्रत लीया देख कर आप सरसवाणी ब्रह्मलोककूं चली, सरसवाणीकूं जातीकूं देख कर शंकरस्वामी जीवन दुर्गामंत्र करकें दिग्बंधन करते हुये, तिसके पीछें हे सरसवाणी! तुं ब्रह्म शक्ति है, ब्रह्मके अंशभूत मंडनमिश्रकी तूं नार्या है, उपाधि करकें सर्वकूं फलित है, तिस कारणसें मेरे साथ प्रसंग करकें फेर तुमकूं जाणां योग्य है. असे शंकरस्वामीने कहा. पीछें सरसवाणी शंकरस्वामी प्रतें कहती हुई किः–पतिके संन्यासतें प्रथम ही वैधव्य होणेके भयसें मैनें पृथिवी त्यागी है, तिस कारणसें फेर मैं पृथिवीका स्पर्श न करुंगी. हे यति! तूं तो पृथिवीमें स्थित हैं कैसें तेरे प्रसंगके तांइ एक विषय स्थिति होवे, असे शंकरस्वामीकूं कहती प्रतें फेर शंकरस्वामी कहते भये किः–हे माता!

तोजी नूमिकाके उपरि ठ हाथ प्रमाण उंची आकाशमें रहो मेरे साथ सर्व वचनका प्रपंच संचार करकें, पीछेसें जानां. ऐसें आदर पर होकर शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषे वेद, इतिहास, पुराणों विषे समय प्रसंग करकें पीछें शंकरकूं तिरस्कारके तांइ जिसमें दुःखें प्रवेश है, ऐसा जो कामशास्त्र, तिस विषे नायिका, अरु नायक, इनके नेद विस्तारमें सर सवाणी शंकरकों पूछे. तब तो शंकरस्वामी इस विषयकूं जानते नहीं थे, तातें शंकरस्वामी उत्तर न दे सके, मौनी होते नये. तिस पीछें सर सबाणी शंकरस्वामीकूं सत्य करकें कहती हुइ किः—तुमारे जाननेमें यह शास्त्र नहीं आया, निश्चय करकें तिस शास्त्रकूं मेंही जानती हूं, कालका जानकार शंकरस्वामी सरसबाणी प्रति कहते हुये किः—हे माता! तुम इहांही ठ महीने रहो, पीछे में सर्व अर्थोंका निश्चय करकें तेरे कहेका उत्तर कहुंगा. ऐसे कह कर शंकरस्वामी आग्रह पूर्वक सरसबाणीकूं तिहांही आकाश मंफलमें स्थापन करकें सर्व शिष्योंकूं यथास्थान नेज करकें चार शिष्यो सहित (१) हस्तामलक. (२) पद्मपाद, (३) विधिवत्, (४) आनंदगिरि, ए चार नामक प्रधान शिष्यों करी सेव्यमान तिस नगरमें पश्चिमदिशा नाम गढमें गये, सरसबाणीके प्रश्नोके उत्तर जानने के तांइ उस नगरका राजा मर गया था, उसका शरीर तिस अवसरमें चितामें जलानेके वास्ते रखा था, उस शरीरकूं देख कर शंकरस्वामीने अपणां शरीर उस नगरकें प्रांत एक पर्वतकी गुफामें स्थापन करकें, शिष्योंकूं कह दीया कि तुमने इस शरीरकी रक्षा करनी. अरु आप शंकरस्वामी परकाय प्रवेश विद्या करकें, लिंगशरीर संयुक्त अनिमान सहित उस राजाके शरीर में ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश कर गये, तब तो राजाजी उठ शीतोपचार करा, औ उत्सवसें नगरमें ले आये, राजा मरा नहीं था यह बात प्रसिद्ध कर दीनी, तब तो शंकरस्वामीकूं लोकोनें राजसिंहासन उपर बिठलाया. पश्चात् राजसिंहासनसें उठ कर स्वामीजी बडी राणीके घरमें गये. तहां जाकर उस राणीसें काम क्रीडा करने लगे, तब तो शंकरस्वामीकी कुशलतामें तिसके आलिंगन करनेसें उत्पन्न हुआ जो सुख संजोग ताकरिके शंकरस्वामीने उस राणीके मुखके साथ तो अपणा मुख जोडा, औ अपणी ठाती उस राणीके दोनो कुंचों (स्तनां) के उपर जोडी, तैसेंही उस राणीकी

नाभीसें अपनी नाभी जोडा, औ अपणे पगों करकें राणीके पग संकोचे. एतावता जंघोमें जंघा फसाइ अर्थात् एक शरीरवत् हो गये, दोनो जने बहुत गाढा आलिंगन करनेमें तत्पर हुये, तब तो शंकरस्वामी राणीके कक्षा स्थानो विषे हाथों करी स्पर्श करते हुये, बहुत सुखमें मग्न हुये, तब तो राणी उनकी आलाप, चतुराइ देख कर चित्तमें बिचार करनें लगी कि देह मात्र करी तो मेरा भर्त्ता है, परंतु इसका जीव मेरा भर्त्ता नहीं, एतो कोइ सर्वज्ञ है. ऐसा बिचार करकें राणीने आपणे नौकरोकूं चारों दिसामें भेजा, अरु कह दीया कि जो पर्वतोमें, वा गुफाउमें बारह योजनोके बिचमें जितने शरीर जीव रहित होवे सो सर्व शरीर चितामें रख कर जला दिउ. शंकरस्वामी तो विषयमें मूर्छित हो गये, तब तो राणीके नौकरोनें चार शिष्योंकूं रक्षक देख कर शंकरस्वामीके शरीरकूं चितामें रख कर उनके शरीरकूं अग्नि करकें दाह करने लगे, तब तो शंकरस्वामीके चारों शिष्य, उस नगरमें गये, जिहां शंकरस्वामी थे, उहां शंकरस्वामिकूं काम लोलुपी अति विषयमें बद्धबुद्धि देख कर शंकर राजाकें आगें नाटक करने लगे, शंकरस्वामीकूं परोक्ति करकें प्रतिबोध करने लगे सो यह है, जो लिखते हैं:—

(१) "यत्सत्यमुख्यशब्दार्थानुकूलं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (२) नह्येतत्त्वं विदितं नृपु भावं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (३) विश्वोत्पत्त्यादिविधिहेतुतत्त्वं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (४) सर्वचिदात्मकं सर्वमद्वैतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (५) परतार्किकैरीश्वरसर्वहेतु, स्तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (६) यद्वेदांतादिभिर्ब्रह्मसर्वस्थं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (७) यज्जैमिनिनोक्तमखिलकर्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (८) यत्पाणिनिः प्राह शब्दस्वरूपं तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (९) यत्सांख्यानां मतहेतुभूतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (१०) अष्टांगयोगेन अनंतरूपं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन! (११) सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (१२) नह्येतदद्दश्यप्रपंचं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन! (१३) यद्ब्रह्मणोब्रह्मविषावीश्वराह्यनवन्, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन! (१४) त्वद्रूपमेवमस्मानिर्विदितं राजन्! तव पूर्वयत्याश्रमस्थम् " ॥ इन परोक्तियां करकें राजा प्रतिबोध हुआ, सर्वके सन्मुख तिस राजाकी देहसें निकल कर जब गये तब तो उस पर्वतकी कंदरामें

अपणे शरीरकूं न प्राप्ति हुवे तब तो अपणे शरीरकूं चितामें देखा. देख कर कपालमध्यमें हो कर प्रवेश करा; तब शरीरके चारो ओर अग्नि प्रज्वलित हो रही थी. तब तो निकलनां डुष्कर हो गया, फेर शंकरस्वामीने लक्ष्मी नृसिंहकी स्तुति करी तब लक्ष्मीनृसिंहने शंकरस्वामीकूं जीता, अग्निमेंसें बाहिर निकाला॥ इति कथा समाप्ता॥ अब हे जव्य! तूं विचार कर देख जो में पूर्वें तुजकूं वार्त्ता कही थी सो सर्व सत्य है या नहीं? क्युंकि (१) जब सरस बाणीके कहनेके प्रश्नका उत्तर नहीं आया, तब तो शंकरस्वामीकूं सर्वज्ञ कौन बुद्धिमान् निष्पक्षी मान सक्ता है? कोइजी नहीं मानेगा, (२) अरु जब राजाकी राणीमें विषय सेवन करा, तब तो कामी होणेमें कोइ शंकाजी रहती है? (३) अरु जब शिष्योंने आकर प्रतिबोध करा. तब तो अज्ञानी अवश्य हो चूके, (४) जब चितामेंसें न निकल सके, तब लक्ष्मीनृसिंहकी स्तुति करी तब नृसिंहने आय करकें ज्वलती अग्निमेंसें निकाले, तब शंकरस्वामी असमर्थ सिद्ध हो गये, जब शंकरस्वामीने फेर आकर सरसबाणीके प्रश्नोका उत्तर दीया, तब तो सरसबाणीने कहा: हे स्वामी! तूं सर्वज्ञ है. क्या मृतकके शरीरमें प्रवेश करकें उसकी राणीके साथ विषय सेवन करकें राणी पासों कछुक कामशास्त्रकी बातां शीखके सर्वज्ञ हो सक्ता है? सर्वज्ञ तो नहीं हो सक्ता, परंतु गर्द्द खुरकणी तो हो गइ. सरसबाणीकूं उसने सर्वज्ञ कह दीया. अरु शंकरकूं सरसबाणीने सर्वज्ञ कह दीया. वाह क्याही सर्वज्ञोंकी जोडी मिली है? सरसबाणी तो ब्रह्मकी शक्ति हो कर फेर स्त्री बन कर मंडनमिश्रमें विषय सेवन करती रही, अरु सर्वज्ञजी बन बेठी. अरु शंकरस्वामी परस्त्रीमें विषयसेवन करकें अरु कछुक काम शास्त्र शीख कर सर्वज्ञ बन बेठे, क्या यह गर्द्द खुरकणी न होइ तो और क्या हुआ? जब शंकरस्वामी, अपणां स्थूल शरीर गेड कर राजाके शरीरमें गये, अरु ब्रह्मविद्या सर्व जूल गये, जे कर न जूले होते तो उनके शिष्य काहेकूं तत्त्वमसिका उपदेश करते? जब शंकरस्वामी स्थूल शरीरके बदल जाने परब्रह्म विद्या जूल गये, तब तो ब्रह्मविद्याका संबंध, न तो लिंग शरीरके साथ रहा, न आत्माके साथ संबंध रहा. किंतु स्थूल शरीरहीके साथ रहा, इस्सें यह सिद्ध हुआ कि:—जब वेदांती मर जाते हें, तब उनका ज्ञानजी नष्ट हो जाता है, अरु स्थूल शरीरहीके

साथ ज्ञानका संबंध रहा परंतु आत्माके साथ नहीं. अरु जो तुमने कहा था किः—शंकरस्वामीके प्रगट कथन कीये अद्वैत मतकूं कौन खंडन कर सक्ता है? सो हे नव्य! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फेर उनके कहे हुये मतकूं कौन सयौक्तिक समज सक्ता है?

पूर्वपक्षः—"पुरुषएवेदं" इत्यादि श्रुतियोंमें अद्वैतही सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां असत् है. क्युंकि जो पुरुष मात्र रूप अद्वैततत्त्व होवे तब तो यह जो दिखलाइ देता है कोइ सुखी, कोइ दुःखी, ए सर्व परमार्थमें असत् हो जावेंगे. जब असें होगा तब तो यह जो कहनां है, "प्रमाणतोऽधिगम्य संसारनैर्गुण्यं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि" अस्यार्थः—संसारका निर्गुणपणा प्रमाणसें जान कर, तिस संसारसें विमुख बुद्धि हो करकें तिस संसारके उच्छेदके तांइ प्रवृत्ति करे. यह जो कहनां है, सो आकाशके फूलकी सुगंधिका वर्नन करने सरिखा है. क्युं कि जब अद्वैत रूपही तत्त्व है, तब तो नरकादि नवभ्रमण रूप संसार कहां रहा? जिस संसारकूं निर्गुण जान कर तिसके उच्छेद करणेकी प्रवृत्ति होवे.

पूर्वपक्षः—तत्त्वतः पुरुष अद्वैत मात्रही है. अरु यह जो संसार निर्गुण वर्णन करा है. सो सदा सर्व जीवोंकूं जो प्रतिभासन हो रहा है, सो सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उंचे नीच जैसें प्रतीत होते है, तैसे सर्व संसार प्रतीत होता है. परंतु सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्च नीचकी तरे भ्रांतिरूप है वा भ्रांतिजन्य है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहनां है सो असत् है. इस बातमें कोइ वास्तव्य प्रमाण है नहीं. तत् यथा जे कर अद्वैत सिद्ध करणे वास्ते कोइ पृथग्भूत प्रमाण मानोगे, तब तो द्वैतापत्ति होगी. क्युंकि प्रमाणके विना किसीकाभी मत नहीं सिद्ध होता. जे कर प्रमाणके विनाही सिद्ध मानोगे तब तो सर्ववादी अपणे अपणे अभिमतकूं सिद्ध कर लेवेंगे. तथा भ्रांतिभी प्रमाणभूत अद्वैतसें भिन्नही माननी चाहियें. अन्यथा प्रमाणभूत अद्वैत अप्रमाणही हो जावेगा. भ्रांति जब अद्वैतकाही रूप हुइ तब तो पुरुषका रूप हुइ. तातें भ्रांतिस्वरूपवाला पुरुषही है नहीं, तब तो तत्त्वव्यवस्था कुछभी सिद्ध न होइ. जे कर भ्रांति भिन्न मानोगे, तब

तो द्वैतापत्ति होवेगी, अद्वैत मतकी हानि हो जावेगी, जेकर स्थंनकूं कुंना दिकोंसें नेद माननां इसीकूं भ्रांति कहोगे, तब तो निश्चय करकें सत्स्वरूप कुंनादिक किसी जगें तो जरूर होंगे. अभ्रांतिके देखे बिना कदापि भ्रांति देखनेमें नहीं आवेगी, पूर्वें जिसने सच्चा सर्प्प नहीं देखा, तिसकूं रज्जुमें सर्प्पकी भ्रांति कदापि न होवेगी ॥ तडुक्तं ॥ श्लोक ॥ नादृष्टपूर्वसर्प्पस्य, रज्ज्वां सर्प्पमतिः क्वचित् ॥ ततः पूर्वानुसारित्वाद्भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥ इस कहनेसेंनी अद्वैत तत्त्व खंमन हो गया तथा पुरुष अद्वैतरूप तत्त्व अवश्य करकें दूसरेकूं निवेदन करनां. अपणे आपकूं नहीं. आपणेमें तो व्यामह है नहीं जे कर कहने वालेमें व्यामोह होवे तब तो अद्वैतकी प्रतिपत्ति कबीनी नहीं होवेगी.

पूर्वपक्षः—जब आत्माकूं व्यामोह है तब ही तो अद्वैत तत्त्वका उपदेश कीया जाता ?

उत्तरपक्षः—जब आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा अवश्य अवस्थांतरकूं प्राप्ति होगी, जब अवस्था बदलेगी, तब तो अवश्य द्वैतापत्ति हो जावेगी. तथा जब अद्वैत तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकूं उपदेश करेगा, तब तो परकूं अवश्य मानेगा, फेर अद्वैत तत्त्व परकूं निवेदन करनां अरु अद्वैत तत्त्व माननां, यह तो ऐसें हुआ के, जैसें मेरा पिता कुमार ब्रह्मचारी है, इस बचनके कहनेमें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है. जेकर अपणेकूं अरु परकूं इन दोनोकूं जब मानेगा, तब तो द्वैतापत्ति अवश्य होगी, इस कारणसें जो अद्वैत माननां है, सो युक्ति विकल है.

पूर्वपक्षः—परमब्रह्मरूप सिद्धही सकल नेद ज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबन पणेकी सिद्धि है.

उत्तरपक्षः—ए कथन नी तुमारा ठीक नहीं है, क्युंकि परम ब्रह्महीकी सिद्धि नहीं है. जे कर है तो स्वतः सिद्धि है. वा परतःसिद्धि है ? नहीं स्वतःसिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किसीकानी विवाद न रहे, जे कर कहोगे परतःसिद्धि है, तो क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है? जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनसा है ? कहो.

पूर्वपक्षः—सो अनुमान यह है कि विवादरूप जो अर्थ है सो प्रतिनासांत प्रविष्ट ब्रह्मनासके अंतर है, प्रतिनाससमान होणेसें जो जो प्रतिना

समान है सो सो प्रतिभासांत प्रविष्टही देखा है, जैसें प्रतिभास आत्मा प्रतिभासमान है सकल अर्थ सचेतन अचेतन विवादरूप है तिस कारणसें प्रतिभासांत प्रविष्ट है, घटपटादि यह अनुमान है.

उत्तरपक्षः—यह अनुमान तुमारा सम्यक् नहीं है, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिभासांत प्रविष्ट होणेसें साध्यरूपही हुये.

पूर्वपक्षः—तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोके न होनेसें अनुमानही नहीं बन सक्ता. जे कर कहोगे कि, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, ए तीनो प्रतिभासांत प्रविष्ट नहीं है, तो इनोंहीके साथ हेतु, व्यभिचारी होगा. जे कर कहोगे अनादि अविद्या वासनाके बलसें हेतु दृष्टांत जो है, सो प्रतिभासके बाहिरकी तरें निश्चय करते हैं, जैसें प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सभा, सभापति जनकी तरें तिस कारणसें अनुमानभी हो सक्ता है, अरु जब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर हो जावेगा, तब तो प्रतिभासांत प्रविष्टही प्रतिभास होगा. विवादभी न रहेगा, प्रतिपाद्य प्रतिपादक, साध्य साधन भावभी नहीं रहेगा, तब तो अनुमान करनेकाभी कुछ फल नहीं, आपही अनुभवमान परम ब्रह्मके होते हुये देश काल अव्यवछिन्न स्वरूपके होयां निर्व्यभिचार, सकल अवस्था व्यापकपणे वालेमें अनुमानका कुछ प्रयोगभी नहीं चाहियें है.

उत्तरपक्षः—जो अनादि अविद्या प्रतिभासांत प्रविष्ट है, तब तो विद्याही हो गइ, तब तो असतरूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत आदिक भेद कैसें दिखा सके? जे कर कहोगे प्रतिभासके बाहिरभूत है, तब तो (१) अविद्या प्रतिभासमान है? वा (२) अप्रतिभासमान है? तिस अविद्याकूं प्रतिभासमान रूप होणेसें अप्रतिभासमान तो नहीं. जे कर कहोगे प्रतिभासमान है, तो तिसहीके साथ हेतु व्यभिचारी है तथा प्रतिभासके बाहिरभूत होणेसें तिसके प्रतिभासमान होणेसें जेकर तुमारे मनमें ऐसा होवेकी अविद्या जो है, सो नतो प्रतिभासमान है, न अप्रतिभासमान, न प्रतिभासके बाहिर, न प्रतिभासके अंदर प्रविष्ट है, न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यभिचारिणी है, न अव्यभिचारिणी है, सर्वथा विचारके योग नहीं सकल विचा

रांतर अतिक्रांत स्वरूप है. रूपांतरके अभावसें अविद्या जो है, सो निरूपता लक्षण है, यहभी तुमारी बडी अज्ञानताका विस्तार है, तैसी निरूपता स्वभावकूं यह अविद्या है, यह अप्रतिभासमान है. असें कौन कथन करनेकूं समर्थ है? जे कर कहोगे यह अविद्या प्रतिभासमान है, तो फेर क्युंकर अविद्या नीरूपसिद्ध होगी, जो वस्तु, जिस स्वरूप करकें प्रतिभासमान है, सो तिसही वस्तुका रुप है; तथा अविद्या जो है सो विचार गोचर है, वा विचार गोचर रहित है? जे कर कहोगे विचार गोचर है तब तो नीरूप नहीं, जे कर विचार गोचर नहीं, तब तो तिसके मानने वाला महा मूर्ख है. जब विद्या अविद्या दोनोही सिद्ध है, तब तो एक परमब्रह्म अनुमानसें कैसें सिद्ध हुआ? इस कहने करकें जो उपनिषद्में एक ब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है सोभी खंमन हो गइ, तथा "सर्वंखल्विदंब्रह्मेत्यादि" वचनकूं परमात्माके अर्थांतर होणेसें द्वैतापत्ति हो जावेगी, जे कर कहोगे अनादि अविद्यासें असा प्रतीत होता है तब तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा, तिस वास्ते अद्वैतकी सिद्धि वंध्याके पुत्रकी शोभावत् है. इस कारणसें अद्वैतमत युक्तिविकल है. इस हेतुसें एकही ईश्वर जगतुमें प्रथम था, यह कहनां मिथ्या है. यह प्रथम ईश्वरके माननेवालोंके मतका खंमन हुआ.

अथ दूसरा ईश्वर जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर अरु दूसरी सामग्री, ए दो पदार्थ अनादि है. तिन दोनोमेंसें सामग्री जो है, सो असे है, (१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु इन चारोंके परमाणु, (५) आकाश, (६) दिशा, (७) आत्मा, (८) मन, (९) काल, ए नव वस्तु नित्य है, अनादि है, किसीके बनाइ होइ नहीं सो ईश्वर इस पूर्वोक्त कारणोसें इस सृष्टिकों रचता है. अथ मतावलंबीयोंने जिस रीतिसें ईश्वरकों जगत्का कर्त्ता माना है, सो रीती इहां लिखते है.

उपजातिछंद ॥ कर्त्तास्ति कश्चिज्जगतः सचैकः, ससर्वगः सस्ववशः सनित्यः ॥ इमाः कुहेवाकविडंबनास्यु, स्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥ अस्यार्थः—जगत् जो है,सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करकें लक्ष्यमाण (दीसता) है, चराचर रूप तीनो जगत्का कोइक जिसका स्वरूप कह नहीं सक्के असा पुरुष विशेष रचनेवाला है, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानने वाले

वादी अैसें अनुमान करते हैं किः—पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व, बुद्धिवाले कर्त्ताके करे हुये है, कार्य होणेमें जो जो कार्य हैं, सो सो सर्व बुद्धिवालेके करे हुये हैं, जेसें घट तेसेंही यह जगत् है, तिस कारणसें जगत् बुद्धि वालेका रचा हुआ है, जो बुद्धिवाला है, सोही भगवान् ईश्वर है, अैसाभी मत कहनां, जो यह तुमारा हेतु असिद्ध हैं, किस कारणसें असिद्ध है? सो कहते हैं किः—पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक अपणे अपणे कारणके समूह करकें उत्पन्न होये हैं, इस वास्ते कार्य रूप है तथा अवयवी है, इस करकें कार्यरूप है; सर्व वादीयोकूं निश्चित है. तथा अैसेंभी न कहनां जो यह तुमारा हेतु अनेकांतिक है तथा विरुद्ध है क्युंकि हमारा हेतु विपक्षमें अत्यंत हटा हुआ है, तथा अैसेभी मत कहनां जो यह तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, क्युंकि प्रत्यक्ष अनुमान आगम करकें बाध्या नहीं है. धर्म धर्मी अनंतर कहनेसें. तथा यहभी मत कहनां जो तुमारा हेतु प्रकरण सम है, क्युं कि अनुमानमें जो साध्य है, तिसका शत्रुभूत दूसरे साध्यके साधने वाले अनुमानके अभावमें. तथा अैसेंभी मत कहनां जो ईश्वर, पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिकोंका कर्त्ता नहीं है, बिना शरीरके होणेसें मुक्त आत्माकी तरें. यह पीछले तुमारे अनुमानका वैरी अनुमान है, सो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होणे देता; क्युं कि तुमने तो ईश्वरकूं शरीर रहित सिद्ध करकें जगत्का अकर्त्ता सिद्ध कीया, परंतु हमने तो ईश्वर शरीरवाला माना है इस कारण तुमारा अनुमान असत्य है, अरु हमारा जो हेतु है, सो निरवद्य है. तथा ईश्वर जो है सो एक है, क्युं कि जो बहूत ईश्वर मानीयें, तब तो एक कार्य करनेमें ईश्वरोंकी न्यारी न्यारी बुद्धि हो जावे, तब तो इनके मने करने वाला तो और कोइ है नहीं, फेर कार्य कैसें उत्पन्न होवे? कोइ ईश्वर तो अपणी इछासें चार पगवाला मनुष्य रच देवे, अरु दूसरा ईश्वर छ पग वाला रच देवे, तथा तीसरा दो पग वाला रच देवे, अरु चौथा आठ पग वाला रच देवे, इसी तरें सर्व वस्तुकूं विलक्षण विलक्षण रच देवे. तब तो सर्व जगत् असमंजस रूप हो जावे. परंतु सो है नहीं. इस हेतुसें ईश्वर एकही होनां चाहियें, तथा ईश्वर सर्वगत् सर्वव्यापी है, जे कर ईश्वर सर्व व्यापक न होवे, तब तो तीन भुवनमें एक साथ जो उत्पन्न होणे वाले कार्य है, सो सर्व एक कालमें कभी

उत्पन्न न होगे. जैसे कुंनारादिक जहां होवेंगे, तहांही कुंनादिक कर सकेंगे, परंतु देशांतरमें कनी कार्य न कर सकेंगे. तथा ईश्वर जो है, सो सर्वज्ञ है, जे कर सर्वज्ञ न होवेगा तब तो सर्व कार्योंका उपादान कारण कैसें जानेगा? जब कार्योंके उपादान कारणकूं न जानेगा, तब तो जगत् विचित्र कैसें रच सकेगा? तथा स्ववशः ईश्वर जो है, सो स्वतंत्र है किसि दूसरेके अधीन नहीं. ईश्वर अपणी इडासें सर्व जीवोकूं सुख डुःख का फल देता है ॥ उक्तं च॥ ईश्वरप्रेरितोगढेतु, स्वर्गं वा स्वभ्रमेव वा ॥ अन्यो जंतुरनीशोय. मात्मनः सुखडुःखयोरिति ॥ १ ॥ अस्यार्थः—ईश्वरहीकी प्रेरणाहीसें जगत्वासी जीव, स्वर्ग तथा नरकमें जाता है, क्युं कि ईश्वरके बिना और सर्व जीव आपणे आपकूं सुख डुःखका फल देनेकूं समर्थ नहीं है, जे कर ईश्वरकूं नी परतंत्र (पराधीन) मानीयें, तब तो मुख्य कर्ता ईश्वर न रहेगा, अपर अपरके अधीन माननेमें अनवस्था दूषणनी लग जावेगा, इस हेतुसें ईश्वर अपणेही वश है. परंतु पराधीन नहीं तथा "सनित्यः" (सो ईश्वर) नित्य है जेकर ईश्वर अनित्य होवे तब तो निसके उत्पन्न करने वाला कोइ और चाहियें. सोतो है नहीं, इस हेतुमें ईश्वर नित्यही है. असें पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त ईश्वर (नगवान्) जगत्का कर्त्ता है, इति पूर्वपक्षः

उत्तरपक्षः—हे वादी! जो तुमारा यह कहना है पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक बुद्धिवाले कर्त्ताके रचे हुये हैं, सो अयुक्त है. क्युं के इस तुमारे अनुमानमें व्याप्तिका ग्रहण नहीं हो सक्ता है, अरु हेतु जो होता है, सो सर्वत्र व्याप्तिमें प्रमाण करकें सिद्ध हुया होयाही अपणे साध्यका गमक होता है, इस कहनेमें सर्व वादियोंकी सम्मति है.

अथ प्रथम तुम यह कहो जब ईश्वर जगतकूं रचता है, तो ईश्वर शरीर वाला है? वा शरीर रहित है? जेकर कहोगे ईश्वर शरीर वाला है, तो हमारा सरीखा दृश्य शरीर अर्थात् दिखलाइ देने वाला शरीर है अथवा पिशाच आदिकोकी तरे अदृश्य (न दिखलाइ देने वाले) शरीर करी संयुक्त है? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तब तो प्रत्यक्ष बाधा है तिस ईश्वरके बिनाही अब नी उत्पन्न होते हुये तृण, वृक्ष, इंद्रधनुष, बादल प्रमुख का

योंके देखनेसें, जैसें "अनित्यशब्दप्रमेयत्वात्" जैसें यह प्रमेयत्व हेतु साधारण अनेकांतिक है, तैसें ही यह कार्यत्व हेतुसाधारण अनेकांतिक है.

२ जेकर दूसरा पक्ष मानोगे, तब जो ईश्वरका शरीर नहीं दिखलाइ देता (१) सो ईश्वरके माहात्म्य करकें नहीं दिखलाइ देता? (२) वा हमारी बुरी अदृष्टका प्रभाव है? एतावता हमारे खोटे कर्मके प्रभावसें नहीं दिखलाइ देता है? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे जो ईश्वरके माहात्म्यसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, इस पक्षमें कोइ भी प्रमाण नहीं है, जिससें ईश्वरका माहात्म्य सिद्ध होवे परंतु हे वादी! जे कर त्रपु (जिस्त) तपा कर पीवें औसी सच्ची धीज करे तो कदाचित् मान भी लेवे, अन्यथा नहीं. अरु इस तुमारे कहनेमें इतरेतर आश्रय दूषण भी है जब माहात्म्य विशेष सिद्ध हो जावे तब अदृश्यशरीर वाला सिद्ध होवे, जब अदृश्य शरीरवाला सिद्ध होवे, तब माहात्म्य विशेष सिद्ध होवे. इतीतरेतराश्रय दूषण. जे कर दूसरा पक्ष पिशाचादिकोंकी तरे अदृश्य शरीर ईश्वरका है औसे मानोगे, तब तो संशय की निवृत्ति न होवेगी सो कैसें कि:—क्या ईश्वर है नहीं जिस करकें उसका शरीर नहीं दीख पडता? तब तो बांझके पुत्रके शरीरकी तरें, किंवा हमारे पूर्व पापोंके प्रभावमें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता; यह संशय कभी दूर न होवेगा. जे कर कहोगे हमारा ईश्वर शरीर रहित है, तब तो दृष्टांत अरु दार्ष्टांतिक यह दोनो विषम हो जावेंगे और हेतु विरुद्ध हो जावेगा. क्युं कि घटादिक कार्योंका कर्त्ता शरीरवालाही कुंभारादिक दीख पडता है, अरु ईश्वरकूं जब शरीर रहित मानोगे तब तो ईश्वर कुछभी कार्य करणेकूं समर्थ न होवेगा, आकाशकी तरें नित्यव्यापक अक्रिय जो है, सो अकर्त्ता है, इस हेतुसें शरीर सहित तथा शरीर रहित ईश्वरके साथ कार्यत्व हेतुकी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है, तथा तेरा हेतु कालात्ययापदिष्टभी है, तेरे साध्यके धर्मीका एक देश, वृक्ष, वीजली, बादल, इंद्रधनुषादिकोंका अबभी कोइ बुद्धिमान् कर्त्ता नहीं दीख पडता है, इस वास्ते प्रत्यक्ष करकें बाधित होयां पीछे तुमने अपणा हेतु कह्या, इस वास्ते तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, इस तुमारे कार्यत्वहेतुसें बुद्धिमान (बुद्धिवाला) ईश्वर जगत्का कर्त्ता कभी सिद्ध नहीं होता है.

तथा दूसरी तरें जगत् कर्त्ताके खंडन करनेका स्वरूप लिखते हैं; जो

कोइ ईश्वरवादी यह कहते हैं. जगत् सर्व ईश्वरका रचा हुआ है, यह उनका कहनां समीचीन नहीं है. काहेतें कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण है. तथाहि जो ठहर ठहर करकें अभिमत फलके संपादन करनेके तांइ प्रवृत होवे, तिसका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर होनां चाहियें. जैसे बसोला आरी प्रमुख शस्त्र, काष्ठके दो टुकडे करणेमें प्रवर्त्ततें हैं. तैसेंही ठहर ठहर कर सर्व जगत्कूं सुख दुःखादिक जे फल देते हैं तिनका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर चाहियें है, तुमने ऐसें न कहनां जो बसोला आरी प्रमुख आपही काष्टके दो टुकडे करणेमें प्रवृत्त होते हैं, क्युं कि वो तो अचेतन हैं आपही कैसें प्रवृत्त हो सकें? जे कर कहोगे बसोलाआरि प्रमुख स्वभावसें प्रवृत्त होते हैं तब तो तिनकूं सदाही प्रवृत्त होना चाहियें, बीचमें कभी ठहरनां न चाहियें, परंतु ऐसें है नहीं, इस पूर्वोक्त हेतुसें जो ठहर ठहर कर अपणे अपणे फलके साधनेवाले जीव हैं. तिनका अधिष्ठाता ईश्वर (भगवान्) ही सिद्ध हो सक्ता है. तथा दूसरा अनुमान जो परिमंडलादिक, वृत्त, त्र्यंश, चतुरंश, संस्थान वाले गाम, नगरादिक है; वे सर्व ज्ञानवानके करे हुये हैं, जैसें घटादिक पदार्थ, तैसेंही पूर्वोक्त संस्थान संयुक्त पृथिवी, पर्वत प्रमुख हैं. इस अनुमानसेंभी जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है, इति पूर्वपक्षः ॥

उत्तरपक्षः—जिस अनुमानसें तुमने जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध करा है, सो तुमारा अनुमान अयुक्त है. क्योंकि यह तुमारा पूर्वोक्त अनुमान हमारे मतमें जैसें आगें सिद्ध है, तैसेंही सिद्ध करता है, इस वास्ते सिद्धसाधन दूषण तुमारे अनुमानमें होता है, जैसें हमारे मतमें आगेंही सिद्ध है तैसें लिखते हैं:—संपूर्ण यह जगत्की विचित्रता जो है सो सर्व कर्मके फलसें है, ऐसें हम मानते हैं, क्योंकि यह जो भारतवर्षमें अनेक देशोमें, अनेक टापुओंमें, अनेक हेमवंत आदिक पर्वतोंमें, अनेक प्रकारके मनुष्यादि प्राणी जो वास करते हैं. अरु जो उनकूं सुख दुःखादिक अनेक तरेंकी अवस्था बण रही है, तिन सर्व अवस्थायोंका कारण कर्म ही जानने. दूसरा कोइ नहीं. अरु देखनेमेंभी कर्मही कारण हो सके हैं,

क्योंकि जब कोइ पुण्यवान् राजा राज करता है, तब उसके राजमें सुका ल, निरुपद्रव देशोमें होता है, तो वो उस राजाके शुन कर्मका प्रजाव है, इस कारणमें जो उहर उहर जीवोंकूं फल देते हैं सो कर्म हैं कर्म जो हैं सो जीवोंके आश्रय हैं, अरु जीव जो हैं सो चेतन होणेसें बुद्धि वाले हैं तब तो बुद्धिवालेके अधीन हो कर कर्म उहर उहर कर फल देते हैं. इस कारणसें सिद्ध साधन दूषण है. जे कर कहोगे हम तो विशिष्ट बुद्धिवाला ईश्वरही सिद्ध करते है; परंतु सामान्य बुद्धिवाले जीव नहिं सिद्ध करते? तब तो तुमारा दृष्टांत साध्यविकल है, वसोला आदि प्रमुख विषे ईश्वर अधिष्ठितका व्यापार, नहीं उपलंन होता है, किंतु कुंनकारादिकोंका व्या पार तहां तहां अन्वयव्यतिरेक करके उपलब्ध होता है.

पूर्वपक्षः—वर्द्धक्यादिकनी ईश्वरकी प्रेरणाहीसें तिस तिस काममें प्रवृत्त होते है. इस वास्ते हमारा दृष्टांत साध्य विकल नहीं है.

उत्तरपक्षः—तब तो ईश्वरनी और ईश्वरकी प्रेरणाहीसें प्रवृत्त होवेगा प रंतु आप नहीं प्रवृत्त होता, सोनी ईश्वर दूसरे ईश्वरकी प्रेरणासें प्रवृत्त होगा, तब तो अनवस्था दूषण होगा.

पूर्वपक्षः—बढइ प्रमुख जीव तो सर्व अज्ञानी हैं, इस वास्ते ईश्वरकी प्रेरणाहीसें अपणे अपणे काममें प्रवृत्त होते हैं, अरु ईश्वर (जगवान) तो सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, इस वास्ते अनवस्था दूषण नहीं है.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि इस तुमारे कहनेमें इतरेतर दूषण होता है, प्रथम ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप ज्ञाता सिद्ध हो जावे. तब अन्यकी प्रेरणा बिना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है असा सिद्ध होवे. जब अन्यकी प्रेरणा बिना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है अैसें सिद्ध हो जावे तब तो ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप जान नेवाला सर्वज्ञ सिद्ध होवे, जब तांइ दोनोमेंसें एक सिद्ध न होवे, तब तांइ दूसरेकी सिद्धि कनी न होगी. तथा हे ईश्वरवादी! हम तुमकूं पूछ ते हैं जे कर ईश्वर सर्वज्ञ अरु वीतराग है तो काहेकूं और जीवोंकूं अ सत् व्यवहारमें प्रवर्त्तावे है? क्योंकि जो विवेकी होते है वे मध्यस्थही होते हैं, फेर तो जीवोंकूं सत्व्यवहारहीमें प्रवृत्त करनां चाहियें. परंतु असत् व्यवहारमें नहीं प्रवृत्त करनां चाहियें अरु ईश्वर तो असत् व्यवहा

(परमेश्वर) सर्वज्ञके ज्ञानमें जासन होता है. निमित्त बिना कोइजी फल न हीं जोग सक्ता, इस वास्ते ईश्वर फलदाता कल्पना व्यर्थ है. क्या यहजी बुद्धिमानोका कहना है कि जो रोटी पका तो सक्ता है, परंतु आप खा नहीं सक्ता, तथा ईश्वरकूं फलदाता कल्पना करनेसें एक औरजी कलंक तुम परमेश्वरकूं लगाते हो, जैसें किसी पुरुषकूं किसी दूसरे पुरुषने खड्गा दि शस्त्रसें मारे, तब तो मरने वालेने जो संकट पाया. सो किसके यो गसें? किसकी प्रेरणासें पाये? जे कर कहोगे ईश्वरने उस शस्त्र वालेकूं प्रेरा, तब तिसने उसकूं मारा, तो फेर उस मारने वालेकूं फांसी क्युं मिलती है? क्या ईश्वरका यही न्याय है, जो प्रथम पुरुषके हाथसें उसकूं मरवा डालनां, अरु पीछे फेर उस मारने वालेकूं फांसी देनां. इस तुमारी सम झने ईश्वरकूं बडा अन्यायी सिद्ध करा है जे कर कहोगे ईश्वरकी प्रेरणा के बिना ही उस पुरुषने दूसरे पुरुषकूं मारा, अरु दुःखदीया. तब तो नि मित्तहीमें सुख दुःखका जोगनां सिद्ध हो गया. फेरजी ईश्वर फलदाता कल्पना करनां यह अल्प बुद्धिवालोंका काम है. तथा हे ईश्वर वादी! तुमकूं एक ओर बात पूछते हैं कि जो धर्मका फल है कि उन्मत्त देवांगना ओंके सुकुमार शरीरका स्पर्श करना सो तो जीवोंकूं सुखका कारण है. इस वास्ते ईश्वरने यह फल तो जीवोंकूं दीया. परंतु जो अधर्मका फल घोर न रकके कुंडमें पडनां, नाना प्रकारके दुःख.(संकट) त्रास कुंजीपाक चर्मउत्क र्तन, अग्निमें ज्वलना, इत्यादि महा दुःख ईश्वर उस जीवकूं क्यों देता है?

पूर्वपक्षः–उस जीवने जो पाप करे थे. उनका फल उस जीवकूं जरू र होनां चाहियें इस वास्ते ईश्वर फल देता है.

उत्तरपक्षः–इस तुमारे कहनेमें तो ईश्वर व्यर्थ ही जीवोंकूं पीडा देता है, क्योंकि जब ईश्वर उस जीवकूं पापका फल न देगा. तब तो जीव क र्मका फल आप तो जोग सक्ता नहीं. फेर नतो शरीर धारेगा अरु नवी न पापजी न करेगा; फेर वैठे बेगायें ईश्वरकूं क्या गुदगुदी उठती है जो फेर उन जीवोंकूं नरकमें माल देता है? जो मध्यस्थ जाव वाला अरु प रम दयालु होता है. वो किसी जीवकूं कजी निरर्थक पीडा नहीं देता.

पूर्वपक्षः–ईश्वर (जगवान्) अपणी क्रीडाके वास्ते किसीकूं नरकमें माल ता है, किसीकूं तिर्यंचयोनिमें उत्पन्न करता है. किसीकूं मनुष्य जन्ममें,

किसीकूं स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीटते, विलाप करते हैं, तब ईश्वर अपणी रची हुइ बाजीका तमासा देखता है, इस वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः—जब ऐसें है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नहीं है, क्युं कि उसकी तो क्रीडा होती है, अरु रंक जीव तडफ तडफके महा करुणास्पद हो कर मर रहे हैं. तो फेर ईश्वरकूं दयालु माननां यह कैसी तुमारी अज्ञानता है ? क्योंकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते हैं, वे कदापि किसी जीवोंकूं दुःख दे कर क्रीडा नहीं करते, तो फेर ईश्वर क्रीडार्थी कैसें हो सक्ता है ? तथा क्रीडा जो है, सो सरागीकूं होती है अरु ईश्वर (जगवान्) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (जगवान्कूं) क्रीडा रसमें मग्न होणा कैसें संजवे ?

पूर्वपक्षः—हमारा जो ईश्वर है सो रागी द्वेषी है, इस कारणसें उसमें क्रीडा करणेका संजव हो सक्ता है.

उत्तरपक्षः—तब तो तुमने मुख चोपडनेके बदले आपणा मुख काला कर लीया, क्योंकि जब रागी द्वेषी होगा, तब तो ईश्वर शेष जीवोंकी तरें सरागी हुवा वीतराग न हुवा, अरु सर्वज्ञनी न हुवा, तव तो हमारे सरीखा हुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यों कर हो सक्ता है ?

पूर्वपक्षः—हम तो ईश्वरकूं राग द्वेष संयुक्त सर्वज्ञ मानते हैं, इस वास्ते सर्व जगत्का कर्त्ता है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें कोइनी प्रमाण नहीं है. जिस प्रमाणमें ईश्वर रागी, द्वेषी, सर्वज्ञ सिद्ध होवे ?

पूर्वपक्षः—ईश्वरका स्वनाव ही ऐसा है, जो रागी द्वेषीनी होनां, अरु सर्वज्ञनी रहनां, स्वनावमें कोइ तर्क नहीं हो सकी जैसें अग्नि तो दाहक है, परंतु आकाश दाहक क्यों नहीं ? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया जायगा जो अग्निमें दाहक स्वनाव है, आकाशमें नहीं. इसी तरें ईश्वर नी स्वनावसेंही रागी, द्वेषी अरु सर्वज्ञ है.

उत्तरपक्षः—ऐसें तो कोइक वादी नी कह सक्ता है जो यह हमारे सन्मुख गधा खडा है, सो सर्व जगत्का रचने वाला है. जे कर कोइ वादी पूछेकि किस हेतुसें यह गर्दन जगत्का रचने वाला है ? तब तो तिसकूं

अैसा उत्तर दीया जायगा जो इस गर्दभका स्वभाव ही अैसा है, जो जगत्कूं रचके राग द्वेष वाला सर्वज्ञ हो कर फेर गर्दभ बन जाता है, इसी तरें महिष आदिक सर्व जीव जगत्के कर्त्ता वादी सिद्ध कर देवेंगे, तब तो ईश्वर क्या हुआ जो कुछ अपने मनमें मान्या सो बना लीया, यह तो ईश्वरकूं बडा कलंक लगाना है. इस हेतुसें ईश्वर (भगवान्) सर्वज्ञ अरु वीतराग है, फेर क्रीडाके अर्थं कभी जगत्कूं न रचेगा, तथा हे ईश्वरवादी! तेरे कहनेसें जब ईश्वरनेही सर्व कुछ रचा है तब तो सर्व तीनसो त्रेशठ पाखंड मतके सर्व शास्त्रभी ईश्वरहीने रचे हैं. अरु शास्त्र सर्व आपसमें विरुद्ध हैं, तब तो अवश्य कितनेक शास्त्र सत्य अरु कितनेक असत्य हैं, तब तो झूठ अरु सत्य दोनोंका उपदेशक ईश्वर ही ठहरा, तब तो ईश्वर आपही सर्व मतांतरीयोंकों आपसमें लडाता है. हजारों लाखों मनुष्य इन मतोंके झगडोंमें मर जाते हैं, तब तो ईश्वरने शास्त्र क्या रचे? एक जगत्में बडा उपद्रव रचा, अैसे झूठे सच्चे शास्त्र रचनेवालेकूं महा धूर्त कहनां चाहियें, नतु ईश्वर. जे कर कहोगे ईश्वरने तो सच्चे शास्त्र ही रचे हैं, झूठे नहीं रचे झूठें तो जीवोंनें आपही बना लीयें हैं. तब तो ईश्वरने जगत् भी नहीं रचा होगा, जगत् भी जीवोंने ही रचा होगा, क्योंकि ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध हुआ नहीं.

तथा तुमने जो पूर्वं दूसरा अनुमान करा था, कि जो जो आकार वाली वस्तु है, सो सो सब बुद्धिवालेकी रची हुइ है, जैसें पुराना कूवा देखेंगे यद्यपि कारीगर तहां नहींभी उपलब्ध होता. तोभी कारीगर ही कर्त्ता अनुमानमें सिद्ध होगा. जैसें नवे कूवेका कर्त्ता उपलब्ध होता है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां समीचीन नहीं, क्यों कि आकार वाला हेतु, तुमारा संध्या, बादल, सर्पकी बंबी प्रमुख संस्थान वालोंमें है, परंतु बुद्धिवाला कर्त्ता कोइ नहीं है. जे कर कहोगे बादल, इंद्रधनुष, सर्पकी बंबी प्रमुख संठाण वाले बुद्धिमान्के करे हुये नहीं माने जाते हैं तैसें ही पृथिवी, पर्वत भी बुद्धिमान्के करे हुये नहीं मानने चाहियें.

इन पूर्वोक्त प्रमाणोसें किसी तरें भी ईश्वर जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता. अब जे पुरुष, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानते है, उनसें हम यह कहेते है, कि जब तक इन हमारी युक्तियोंका उत्तर सर्वथा न दीया जावे,

तब तांई ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता न मानना चाहियें. जब कोइ ईश्वरवादी इन युक्तियोंका उत्तर, पूरा दे देवेगा, तब तो हमजी जगत्का कर्त्ता ईश्वर मान लेवेंगें, अन्यथा कजी नहीं माना जायगा.

पूर्वपक्षः—ईश्वर तो जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, परंतु एक ईश्वर है ऐसा तो सिद्ध होता है कि नहीं?

उत्तरपक्षः—ईश्वर एकही है, यह बात सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है, तब तो ईश्वर एक सिद्ध कैसें होवे?

पूर्वपक्षः—ईश्वरके एकत्व सिद्ध होणेमें यह प्रमाण है, कि जहां बहुते एकठे हो कर एक कामकूं करने लगते हैं, तब तो अन्य अन्य मति होणेसें एक कार्यजी नहीं बन सक्ता, ऐसेही जब ईश्वर अनंत होंगे, तब तो सृष्टि प्रमुख एकही कार्यके करनेमें न्यारी न्यारी मति होणेमें असमंजस कार्य उत्पन्न होवेगा. इस वास्ते ईश्वर एकही होना चाहियें.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे प्रमाणसें तो ईश्वर, एक नहीं सिद्ध होता है, क्यों कि ईश्वर तो किसी वस्तुका कर्त्ता उक्त प्रमाणोंमें सिद्ध नहीं होता है. तथा एक मधुछत्तेके बनानेमें सर्व मक्षीयोंका एक मता तो हो जाता है.अरु ईश्वर, परमात्मा, निर्विकार, निरुपाधिक, ज्योतिःस्वरूपोंका एक मता नहीं हो सक्ता, यह बडे आश्चर्यकी बात है? क्या तुमने ईश्वरोंकूं कीडोंसेंजी बुद्धिहीन, अनिमानी, अरु अज्ञानी बना दीया. जो उन सर्वका एक मता नहीं हो सक्ता?

पूर्वपक्षः—मक्षिका जो बहुत एकठी हो कर एक मधुछत्ता आदिक कार्य बनाती हैं, तहांजी एक ईश्वरहीके व्यापारसें एक मधुछत्ता बनता है.

उत्तरपक्षः—तब तो घडा बनानां, चोरी करनां, परस्त्रीगमन करनां, इत्यादिक सर्व काम, ईश्वरके व्यापारसें बने सिद्ध होंगे, अरु जीव सर्व, अकर्त्ता सिद्ध हो जावेंगे; फेर पुण्य पापका फल किसकूं होगा? अरु नरक स्वर्गमें जीव, क्यों नेजे जायगे.

पूर्वपक्षः—जीव, कुंनारादिक चोरादिक सर्व स्वतंत्रतासें अपना अपना कार्य करते हैं, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है.

उत्तरपक्षः—क्या मक्षीयोंहीने तुमारा कुछ अपराध करा है, जो उनकूं स्वतंत्र नहीं कहते हो? इस तुमारे एक ईश्वरके माननेसें तो ऐसाजी प्र

तीत होता है;जे कर अनंत ईश्वर माने जावें, तब जो कदाचित् एक सृष्टि रचनेमें विवाद हो जावे, तो फेर उस विवादकूं दूर कौन करे? शिर, पंच तो कोइ है नहीं; तथा एक ईश्वरकूं देख के दूसरा ईश्वर ईर्ष्या करेगा, जो यह मेरे तुल्य क्युं है? इत्यादिक अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जावेंगे; इस वास्ते ईश्वर एकही मानना चाहियें, यहजी तुमारी समज अज्ञानरूपी घुणकी खाइ हुइ है, क्युं कि जब ईश्वर (जगवान्) सर्वज्ञ है, तब तो सर्वज्ञ के ज्ञानमें एकही सरीखा जान होनां चाहियें, तो फेर विवाद क्यों कर होगा? तथा ईश्वर तो राग, द्वेष, ईर्ष्या, अजिमानादि सर्व दूषणोसें रहित है,तब तो दूसरे ईश्वरकूं देख कर ईर्ष्या अजिमान क्यों कर करेंगे? जे कर ईश्वर हो करजी आपसमें विवाद,जगडे,ईर्ष्या, अजिमान करेंगे, तो तिन पामरोंकूं ईश्वरही कैसें माना जायगा? जब जगत्कर्त्ताही ईश्वर सिद्ध नहीं होता, तब तो विवाद जगडाही ईश्वरोंका आपसमें काहेकूं होगा? इस वास्ते ईश्वर अनंते माननेमें कुबजी दूषण नहीं. तथा "सर्वगतत्वं" ईश्वर सर्व व्यापक है, यहजी जो मानते है, सो जी प्रामाणिक नहीं है. क्योंकि जब ईश्वरकूं सर्व व्यापक, वादी मानते हैं, तब शरीर करकें व्यापक मानते हैं? वा ज्ञान स्वरूप करकें व्यापक मानते हैं? जे कर शरीर करकें ईश्वरकूं व्यापक मानेंगे, तब तो ईश्वरका शरीरही सर्व जगा समा जायगा, दूसरे पदार्थोंके रहने वास्ते कोइजी अवकाश न मिलेगा? इस वास्ते ईश्वर देह करकें तो सर्वत्र व्यापक नहीं है.

प्रश्नः—क्या ईश्वरकेजी शरीर है, जो तुम ऐसे विकल्प करते हो?

उत्तरः—हे जव्य! ऐसेजी इस जगत्में मत है, जो ईश्वरकूं देहधारी मानते हैं.

प्रश्नः—वो कौनसें मत है, जिनोंने शरीरधारी ईश्वर माना है?

उत्तरः—तौरेतनामा ग्रंथ है, जिसमें ऐसें लिखा है, जो ईश्वरने अब्राहामके यहां रोटी खाइ, इस लिखनेसें, तथा याकूबके साथ कुस्ती करी, इस लिखनेसें प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है तथा शंकरदिग्विजयके दूसरे प्रकरणमें शंकरस्वामीका शिष्य, आनंदगिरि जो कि इसी ग्रंथकी आदिमें लिखता है, जो मैं सर्वज्ञ हुं सो लिखता है कि जब नारदजीने देखा कि इस लोकमें बहुत कपालकल्पित मत उत्पन्न हो गये हैं, अरु सनातन धर्म लुप्त हो गया है, तब तो नारदजी शीघ्रही ब्रह्मा

जीके पास पहुंचे, अरु जा कर कहने लगे कि हे पिताजी! तुमारा मत तो प्रायः नहीं रहा, अरु लोकोने अनेक मत बना लीयें हें. सो इस बातका कुछ उपाय करनां चाहियें. तब तो ब्रह्माजी बहुत काल तांइ चिंता करकें पुत्र, मित्र, भक्त जनोंकूं साथ ले कर अपणे लोकसें चल कर शिवलोक में प्रवेश करते हुये. आगें क्या देखते हें कि जैसे मध्यान्हमें कोटि सूर्यों का तेज तथा कोटि चंद्रमा समान शीतल, और पांच जिसके मुख हें, चंद्रमा मुकुट हे, बिजलीवत् पिंगल जटाका धारक, औ पार्वती जिसके वामाई अंगमें हे, सर्वका ईश्वर महादेव देखा. फेर ब्रह्माजीनें नमस्कार करकें स्तुति करी, और कहते हुये कि जो महादेव, सर्वज्ञ, सर्वलोकेश, सर्व साक्षी. सर्वमय, सर्वकारण, इत्यादि इस लिखनेसें प्रगट प्रतीत होता हे जो ईश्वर देहधारी हे. जे कर देहधारी ईश्वर न होवे, तो फेर पांच मुख कैसें होवे? इस लिखनेमें ईश्वर शरीर रहित नहीं सिद्ध हो सक्ता हे. अब जे कर शरीरधारी ईश्वर होवे तब तो इस लोकमें एकिला ईश्वरही व्यापक हो कर रहेगा, दूसरे पदार्थोंके वास्ते कोइ दूसरा लोक रहनेकूं चाहियें? जे कर कहोगे ज्ञानात्मा करकें ईश्वर सर्व व्यापक हे, तब तो सिद्ध साध्य नहीं हे, हमनी तो ज्ञानस्वरूप करकें भगवान्कूं सर्वव्यापी मानते हें, परंतु जे कर तुमारे वेदसें न विरोध होवे? क्युंकि वेदोमें शरीर करकेही सर्व व्यापक कहा हे॥ तथाच॥ "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पादित्यादि श्रुतेः" इस श्रुतिमें सिद्ध हे. जो ईश्वर शरीर करकें सर्व व्यापक हे, फेर तो पूर्वोक्त दूषण हें, इस वास्ते ईश्वर व्यापक नहीं. तथा तुम कहते हो जो ईश्वर सर्वज्ञ हे, परंतु तुमारा ईश्वर सर्वज्ञ भी नहीं. क्यों के हम जो ईश्वर सृष्टिकर्त्ताके खंडने वाले हे, सो उससें विपरीत चलते हें, फेर हमकूं उसने क्यों रचा? जे कर कहोगे जन्मांतरोंमें उपार्जित जो जो तुमारे शुभाशुभ कर्म, तिनोंके अनुसारसें तुमकूं ईश्वर फल देता हे, तो फेर तुमारे कहनेहीसें ईश्वरके स्वतंत्रपणेकूं जलांजलि दीनी गइ, क्यों कि जब हमारे कर्मोंके बिना ईश्वर फल नहीं दे सका, तब तो ईश्वरके कुछ अधीन नहीं, जैसें हमारे कर्म होंगे, तैसा हमकूं फल मिलेगा. जे कर कहोगे ईश्वर जो इछे, सो करे, तब तो क्यों न जानता हे जो ईश्वर क्या करेगा, धर्मीयोंकूं नरकमें, पापीयोंकूं स्वर्गमें भेजेगा? जे कर

कहोगे परमेश्वर न्यायी है, जैसा जैसा जो करेगा, उसकूं वैसा वैसा फल देता है, तो फेरजी वोही परंतत्रतारूप दूषण ईश्वरमें लगता है, तथा ईश्वर नित्य है, यह जी कहनां उनका अपणे घरहीमें सुंदर लगता है, क्यों कि नित्य तो उस वस्तुकूं कहते हैं, जो तीनों कालोंमें एक रूप रहे, जब ईश्वर नित्य है, तो क्या जगत्को बनानेवाला स्वजाव है वा नहीं? जे कर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वजाव है, तब तो ईश्वर निरंतर जगत्कूं रचाही करेगा, कदापि रचनेसें न बंध होगा, क्योंकि जगत्के रचनेका स्वजाव तो ईश्वरमें नित्य है. जेकर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वजाव नहीं है, तब तो ईश्वर कदापि जगत्कूं न रचेगा. क्योंकि जगत् रचनेका स्वजाव ईश्वरमें हैही नहीं. तथा जे कर ईश्वरमें एकांत नित्य जगत् रचनेका स्वजाव है, तब तो प्रलय कदेइ न होगी, क्यों कि ईश्वरमें प्रलय करनेका स्वजाव नहीं है. जे कर कहोगे ईश्वरमें रचनेकी अरु प्रलय करनेकी दोनोंही शक्तियां नित्य है, तब तो न कदापि जगत् रचा जायगा अरु न कदेइ प्रलय होगी, क्योंकि दो शक्तियां परस्पर विरुद्ध एक जगे एक कालमें कदापि नहीं रहेगी; जे कर रहेगी, तब तो जगत् न रचा जावेगा, न प्रलय करा जयगा, क्योंकि जिस कालमें रचने वाली शक्ति रचेगी, तिसी कालमें प्रलय करनेवाली शक्ति प्रलय करेगी, अरु जिस कालमें प्रलयशक्ति प्रलय करेगी, तिसी कालमें रचने वाली शक्ति रच देवेगी, असें जब शक्तियोंका परस्पर विरोध होगा, तब तो न जगत् रचा जावेगा, न प्रलय कीया जावेगा, तब तो हमाराही मत सिद्ध हो गया, क्योंकि न किसीने जगत् रचा है, अरु न इस जगत्की कदेइ प्रलय होती है, तातें यह जगत् अानादि, अनंत सिद्ध हो गया. जे कर कहोगे ईश्वरमें दोनोंही शक्तियां नहिं है, फेरजी तो जगत् न रचा, न प्रलय किया जायगा, तब तो अनादि, अनंत सिद्ध हुवा. जेकर कहोगे ईश्वर जब चाहता है, तब रचनेकी इछा कर लेता है, अरु जब प्रलय करता है, तब प्रलयकी इछा कर लेता है, इसमें क्या दूषण है? तब तो ईश्वरकी शक्तियां अनित्य होवेगी, सो सुखेन अनित्य होवे इसमें हमारी क्या हानी है? जे कर ईश्वरकी शक्तियों अनित्य है, तब तो ईश्वर जी अनित्य हो जावेगा, क्यों कि ईश्वर अपणी शक्तियोंसें अजेद है. जे कर कहोगे शक्तियां ईश्वरसें

नेदरूप है, तबनी शक्तियांके नित्य होणेसें जगत् न रचा जायगा, न प्रयत्न कीया जायगा, अरु ईश्वर अकिंचित्कर सिद्ध हो जावेगा, क्यों कि जब ईश्वर सर्व शक्तियोंसें रहित है, तब तो ईश्वर कुबनी करने समर्थ नहीं है; फेर जगत् रचनेमें क्यों कर समर्थ होवेगा? अरु शक्तियोंका उपादान कारण कौन होवेगा? अरु ईश्वरका अनाव हो जावेगा. क्योंकि जब ईश्वरमें शक्तिही कोइ नहीं, तब तो ईश्वर काहेका? वो तो आकाशके फूल समान असत् है, फेर जगत्का कर्त्ता किसकूं मानोगे?

अथाग्रे खरड ज्ञानीयोंका ईश्वरवाद लिखते हें. खरडज्ञानी कहता है, कि जगत्में जितने पदार्थ है, उनके विलक्षण विलक्षण संयोग, आकृति, तथा गुण, और स्वनाव, दीख पडते हें, जे कर इनका तथा इनके नियमोंका कर्त्ता कोइ न होगा, तो ये नियम कनी न बनेंगे, क्योंकि जड पदार्थोंमें तो मिलने वा जुदे होनेकी यथावत् समर्थता नहीं, इस हेतुसें ईश्वर कर्त्ता अवश्य होनां चाहियें.

उत्तरः—प्रथमही हम जगत् कर्त्ता ईश्वरका खंमन कर चूके है, तो फेर आप जगत् कर्त्ता क्यों कर मानते है? अरु जो तुमने लिखा है कि जगत्के पदार्थोंमें न्यारे न्यारे स्वनाव दीख पडते है. इस्सें ईश्वर सिद्ध होता है, इस कहनेमें ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं सिद्ध होता, क्यों कि सर्व पदार्थोंमें अनंत शक्तियां हें. सो अपणी अपणी शक्तियोंमें सर्व पदार्थ अपणें अपणें कार्यकूं करते हें, इनके मिलनेमें निमित्त यह है, एक तो काल, दूसरा पदार्थका स्वनाव, तीसरी नियती, चउथा जीवोंका कर्म, पांचवा जीवोंका उद्यम, इन पूर्वोक्त पांचों निमत्त बिना कोइनी और निमित्त नहीं है, इन पांचोंका स्वरूप, आगें चल कर लिखेंगे?

प्रत्यक्षमेंनी इन पांचोंके निमित्तसें ही सर्व कुछ उत्पन्न होता है. जैसें बीजांकुर जब बीज बोया जाता है, तब कालही यथानुकूलही होना चाहियें, अरु बीज तथा जल, पृथिवी, इत्यादिकोंका स्वनावनी अवश्य होनां चाहियें. तथा नियतीनी जी जो पदार्थोंका स्वनाव है, तिन पदार्थोंका तथा तथा जो परिणाम होता है, तिसका नाम नियती है, सोनी कारण है. तथा अष्टविध कर्मनी कारण है तथा पुरुषाकार (जीवोंका उद्यमनी) कारण हैं. ए पांचों वस्तु अनादि है, कीसीनेनी प्रथम रची

नहिं है, क्योंकि जो जो वस्तुका स्वजाव है, सो सो सर्व अनादिसें है. जे कर वस्तुमें अपणा अपणा स्वजाव न होवेगा, तब तो वस्तुही कोइ सत्रूप न रहेगी. सर्व शशशृंगवत् असत् हो जायगी; अरु प्रत्यक्ष जो दृष्ट पृथिवी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, आदि पदार्थ दीख पडते है, सो इसी तरें अनादि रूपसें सिद्ध हैं, अरु पृथ्वी उपर जो जो रचना दीखती है, सो सर्व प्रवाहमें अैसेंही चली आती है; अरु जो जो जगत्के नियम है, वे सर्व इन पांचो निमित्तोंके बिना नहीं हो सक्ते हैं. इस वास्ते सर्व पदार्थ अपणे अपणे नियममें है, जे कर तुम द्रव्यकी शक्तिकूं ईश्वर मान लोगे, तब तो हमारी कुछ हानी नहीं; क्यों कि हम द्रव्यकी अनादि शक्तिका नाम ईश्वर रख लेवेंगे, अरु तुम अनादि द्रव्यकी शक्तिकूं ईश्वर मान लेवेंगे, तब तो तुमारा हमारा विवाद दूर हो जावेगा. अरु तुमने लिखा जो जडमें यथावत् मिलनेकी शक्ति नहीं है, यहनी तुमारा कहनां मिथ्या है, क्यों कि जगत्में अनेक तरेंके जड पदार्थ आपमें आप ही इन पूर्वोक्त पांच निमित्तोंमें आपसमें मिल जाते हैं, जैसे सूर्यके किरणां बादलोंमें पडती है, तब इंद्रधनुष बन जाता है, तथा संध्याका होनां, पांच वर्णके वादलोंकी चिनी हुइ घटा, चंद्रमा सूर्यके गिरद कुंमला, आकाशमें पवनोंके मिलनेमें जल, और अग्निका उत्पन्न होनां, अरु वर्षाके होनेसें उन पूर्वोक्त पांचों निमित्तोंमें अनेक प्रकारके घास तृणादि अनेक प्रकारकी बनस्पति, तथा अनेक प्रकारके कीट पतंग प्रमुख जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इन पांचो निमित्तोंके बिना किसी वस्तुको बनाता हुआ ईश्वर नहीं दिखलाइ देता; जरा पक्षपात छोड कर बिचार कर देखो के, ईश्वर कर्त्ता किस तरेंसे हो सक्ता है? क्यों कि पृथिवी, आकाश, चंद्र, सूर्य, इत्यादिक तो द्रव्यार्थिक नयके मतमें अनादि हैं. फेर इनके वास्ते पूछना कि यह किसने बनाये हैं? तो फेर हम पूछते हैं, ईश्वर किसने बनाया? जे कर कहोगे ईश्वर तो, किसीनेही बनाया नहीं, वो तो अनादिसें बना बनायाही है, तो फेर पृथिवी प्रमुख कितनेक पदार्थनी बने बनाये अनादिसेंही है, अैसे माननेमें क्युं लज्जा करते हो?

खरड ज्ञानी कहते है की स्वजावसें जगत्की उत्पत्ति जो मानते हैं, उनके मतमें यह दोष आवेंगे. यह पृथिवी स्वजावसें होती, तो इसका कर्त्ता और

नियंता न होता, इस पृथिवीसें निन्न दशमे कोश अंतरिक्षमें दूसरा आपमें आप पृथिवी बन जाती, सो आज तक नहीं बनी, इस्सें जाना जाता है, जो ईश्वर कर्त्ता है.

उत्तरः–तुमकूं कुछ विचार है, वा नहीं? जे कर है, तो पूर्वोक्त तुमारा कहनां अयुक्त है, क्यों कि जब हम तो यह कहते है, जो पृथ्वी आदिक अनादि है, किसीनें नहीं बनाये अरु तुम कहते हो आकाशमें ऊंची दश कोशके अंतरे दूसरी पृथिवी क्यों नहिं बन जाती? अब विचारो यह तुमारा प्रश्न मूर्खताइका है, वा नहीं? तथा इस प्रश्नके उत्तरमें जो कोइ तुमकूं पूछे, जो ईश्वर स्वनावमें बना होवे. तब तो ईश्वरमें अलग दूसरा ईश्वर क्यों नहीं उत्पन्न होता? जे कर कहोगे ईश्वर तो अनादि है, वो क्यों कर नवा दूसरा ईश्वर बन जावे? इस तरे हमनी कह सक्के हैं जो पृथ्वी अनादि है, नवीन नहीं बनती, तो फेर दश कोश आकाशमें क्यों कर बन जावे?

पूर्वपक्षः–जे कर आपमें आपही वस्तु बनती होवे, तब सर्व परमाणु एकठे क्यों नहीं मिल जाते? अथवा एकेक हो कर विखर क्यों नहीं जाते?

उत्तरपक्षः–हमारी कुछ आज्ञा जड नहीं मानते है, जो हमारे कहेसें एकठे होकर एकरूप हो जावे, अथवा एक एक हो कर विखर जावे, पूर्वोक्त पांच निमित्त मिलनेके जहां होंगे, तहां मिल जावेंगे, जहां निमित्त नहीं होवेंगे, तहां नहीं मिलेंगे.

पूर्वपक्षः–सर्व परमाणुओंके एकत्र मिलनेके पांच निमित्त क्यों नहीं मिलते?

उत्तरपक्षः–जो अनादि संसारकी नियतीरूप मर्यादा है, वो कदापि अन्यथा नहीं होती, जे कर हो जावे. तब तो संसारमें जो जीव जन्म लेते हैं, सो सर्व, स्त्रीयोंहीके वा पुरुषोंकेही रूपसें क्यों नहीं उत्पन्न होते? जे कर कहोगे जैसें जैसे कर्म करे थे, वैसा वैसा ही उनकूं फल मिलता है, फेर एक स्त्री आदिक स्वरूपमें कैसें उत्पन्न होवे? तब हम यह पूछते है, जो सर्व जीवोंने स्त्री होनेके वा पुरुष होनेके न्यारे न्यारे कर्म क्यों करे? एकही सरीखे कर्म क्यों न करे? जे कर कहोगे संसारमें यह सनातनसें रीति है, जो सर्व जीव, एक सरीखे कर्म कदापि नहीं करते. तब तो परमाणुओंमेंनी यही सनातन स्वनाव है, जो एकत्र करेही न मिलनां, तथा एक एक हो कर विखरनी नहीं जानां? हे पूर्वपक्षी! यह तुमारा ई

श्वर जगत् जो रचता है, सो तुमारे कहनेसें आगें अनंत सृष्टियां रच चुका है, अरु एकैक जीवकूं अशुन कर्मोंका फल, अनंत बेर दे चूका है, तो नी वो जीव आज तांइ पाप करतेही चले जाते हैं, तो फेर दंम देनेमें ईश्वरकूं क्या लान हुआ? जो अनंत कालसें इसी विडंबनामें फस रह्या है? तथा ईश्वरकूं सृष्टि रचनेसें क्या प्रयोजन था?

पूर्वपक्षः—ईश्वरकूं सृष्टि नहीं रचनेका क्या प्रयोजन था?

उत्तरपक्षः—वाह रे बडडेके बाबा! यह तूंने क्या उत्तर दीया, क्या यह उत्तर देखके विद्वान् तेरा उपहास्य न करेंगे? ईश्वर जे कर सृष्टि रचे, तो ईश्वरताही नष्ट हो जावे, यह वृत्तांत उपर अछी तरेंसे लिख आये हैं.

पूर्वपक्षः—ईश्वरकी जो सर्व शक्तियां हैं, सो सर्व अपनां अपनां कार्य करती हैं, जैसें आंख देखनेका काम करती है, कान सुननेका काम करते है, तैसेही जो ईश्वरमें रचना शक्ति है, सो रचनेसेंही सफल होती है, इस वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः—जब तुमनें ईश्वरकूं सर्व शक्तिमान् माना, तब तो ईश्वरकी सर्व शक्तियां सफल होनी चाहियें, तब तो ईश्वर एक सुंदर पुरुषका रूप रच कर १ सर्व जगत्की सुंदर सुंदर स्त्रीयोंमें नोग करे, अरु २ चोर बन कर चोरी करे, ३ विश्वास घातीपना करे, ४ जीवहत्या करे, ५ जूठ बोले, ६ अन्याय करे, ७ अवतार हो कर गोपीयोंसें कल्लोल करे, ८ अरु कुब्जासें नोग करें, ९ दूसरेकी मांगकूं नगा कर ले जावे, १० तथा शिरपर जटा रखे, ११ तीन आंख बनावे, १२ बैल उपर चढे, १३ तनमें विनूति लगावे, १४ एक स्त्रीकूं वामार्द्धंगमें रखे, १५ किसी मुनिके आगें नंगा हो कर नचे, १६ किसीकूं वर देवे, १७ किसीकूं शाप देवे, इसी तरें १८ चार मुख बनाके एक स्त्री रखे, अरु १९ अपनी पुत्रीमें नोग करे, तथा २० संग्राम करे, २१ स्त्रीकों चोर ले जावे, तो पीछें उस स्त्रीके वास्ते रोता फिरे, २२ एक अपना नाइ बनावे, उसकूं जब संग्राममें कोइ शस्त्र लगे, तब नाइके दुःखसें बहुत रोवे, २३ अपणे आपकों तो अज्ञानी समजे, २४ नाइकी चिकित्सा वास्ते वैद्य बुलावे, २५ सर्व कुछ खावे, २६ पीवे, २७ नाचे, २८ कूदे, २९ रोवे, ३० पीटे, पीछेसें ३१ निर्मल, ३२ ज्योतिःस्वरूप, ३३ निरहंकार, ३४ सर्वव्यापक, बन बैठे. इत्यादिक पूर्वोक्त शक्तियां ई

श्वरमें है, वा नहीं? जे कर है तो इतने पूर्वोक्त सर्व काम ईश्वरकूं करने पडेंगे जे कर न करेगा, तब तो ईश्वरकीयां सर्व शक्तियां सफल न होवेगी? तब तो ईश्वर महा दुःखी हो जावेगा? क्योंकि जिसने नेत्र तो पाये है, अरु देखना उसकूं न मिले. तो वो कैसा दुःखी होता है? जे कर कहोगे पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां ईश्वरमें नहीं है, तब तो सर्व शक्तिमान् ईश्वर है, ऐसे फिर कदापि न कहनां चाहियें. जे कर कहोगे कि योग्य शक्तियांकी अपेक्षा हम सर्व शक्तिमान् मानते है, तब तो जगत् रचनेकीभी शक्ति अयोग्यही है, यह भी परमात्मामें नहीं. इस शक्तिकी अयोग्यता उपर लिख आये है. तथा हे पूर्वपक्षी! जब ईश्वरने प्रथमही सृष्टि रची थी, तब तो स्त्री पुरुषादिक थे नहीं, तब तो माता पिताके बिना मनुष्य क्यों कर उत्पन्न होये होंगे?

पूर्वपक्षः—जब ईश्वरने सृष्टि रची थी, तबही बहुत पुरुष, अरु बहुत स्त्रीयों, माता पिताके बिनाही रच गये थे, उनके आगें फिर गर्भसें उत्पन्न होने लगे.

उत्तरपक्षः—यह अप्रामाणिक कहनां कोइभी विद्वान् नहीं मानेगा, क्योंकि माता पिताके बिना कभी पुत्र नहीं उत्पन्न हो सक्ता है? जेकर ईश्वरने प्रथम माता पिताके बिनाहि मनुष्य, स्त्री, उत्पन्न करे थे, तो अब भी घडे घडाये, बने बनाये, स्त्री पुरुष क्यों नहीं भेज देता? गर्भ धारण कराणां, स्त्री पुरुषका मैथुन कराणां, गर्भवासका दुःख भोगानां, योनियंत्र द्वारा खैंचके निकालनां. इत्यादि संकट काहेकूं रचने थे? अनंत वार ईश्वरने सृष्टि रची, अरु प्रलय करी. तब तो ईश्वर थाका नहीं, तो क्या मनुष्योंहीके बनानेमें थकेंवा चड गया? जो घडे घडाये, बने बनाये, नहीं भेज सक्ता? यह कभी नहीं हो सक्ता, जो माता पिताके बिना पुत्र उत्पन्न हो जावे. इस हेतुसेंभी जगत्का प्रवाह अनादिसें इसी तरें तारतम्य रूपसें चला आता सिद्ध होता है.

पूर्वपक्षः—जे कर ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता न होवे, अरु जीवही कर्त्ता होवे, तब तो जीव आपही शरीर धारण कर लेवेगा, अरु शरीरकूं कदेइ न छोडेगा, अरु आपणे आपकूं अच्छा फल लगा लेलेंगे, फेर तो कभी मरेंगे नहीं.

उत्तरपक्षः—जो तुमने कहा है सो सर्व, कर्मोंके बश है, परंतु जीवके अधीन नहीं, जे कर कहोगे कर्मभी तो जीवनेही करे थे, तब क्यों जीवने अशुभ कर्म करे? क्योंकि कोइ भी अपणो बुरे करणेमें नहीं है, इस

का उत्तर तो दीया गया है, परंतु तुमारी समझ थोडी है, जो नहीं समझो. क्यों कि जो जो अवस्था जीवोंकी शुभ अशुभ है, सो सर्व कर्मोंका फल है. तथा जीव जो है, सो कर्म करणेमें तो प्रायः स्वतंत्रही है, परंतु फल जोगनेमें स्ववश नहीं. क्योंकि जैसें कोइ जीव धनुपसें तीर चलावे, अरु फिर उस तीरकूं पकडने सामर्थ्य नहीं. तथा कोइ जीव विष खावे, सो तो स्ववश है, परंतु उस विषवेगके रोकणेमें जीव समर्थ, नहीं असेही जीव कर्म तो स्वतंत्रतासे प्रायः करता है, परंतु फल जोगनेमें जीव पर वश है, जैसें वर्तमानमें रेलगाडी सर्व जीवोंहीने इस तरेंकी बनाइ है, परंतु उस चलती हुइ रेलके तथा तारके वेगकूं जितना चिर, उस कलकी प्रेरणाशक्ति नहीं हटती, इतना चिर, कोइ जीव नहीं रोक कर सक्ता. असेही कर्मफल वेगके रोकणेकूं जीवजी समर्थ नहीं है, तथा जीव कूं जवांतरमें कौन ले जाता है? तथा जीवके शरीरकी रचना आंखोके पडदे तथा नाना प्रकारके रंग वरंगके हाड, चाम, लोहु, वीर्य, इत्यादिक रचना कौन रचता है? इसका पूर्ण स्वरूप जहां कर्म प्रकृति (१४८) का स्वरूप लिखेंगे, तहांसें जाननां. इस हेतुमें ईश्वर जगत् कर्त्ता किसी तरेंजी सिद्ध नहीं होता. विशेष करकें जगत् कर्त्ता ईश्वरका खंमन देखनां होवे, तो श्री (१) सम्मतितर्क, (२) द्वादशसार नयचक्र (३) स्याद्वादरत्नाकर. (४) अनेकांतजयपताका, (५) शास्त्रसमुच्चय स्याद्वादकल्पलता. (६) स्याद्वादमंजरी, (७) स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, (८) सूत्रकृतांग, (९) नंदीसिद्धांत, (१०) शब्दांजोनिधिगंधहस्तीमहाजाष्य, (११) प्रमाणसमुच्चय, (१२) प्रमाणपरीक्षा, (१३) प्रमाणमीमांसा, (१४) आप्तमीमांसा, (१५) प्रमेयकमलमार्त्तंम, (१६) प्रमेयग्नमार्त्तंम, (१७) न्यायावतार, (१८) धर्मसंग्रहणी, (१९) तत्त्वार्थ, (२०) षट्दर्शनसमुच्चय. इत्यादि जैनमतके ग्रंथ देख लेने. इस वास्ते जो कामी, क्रोधी, छली, धूर्त, परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, नाचने वाला, गाने बजाने वाला, रोने पीटने वाला, जस्म लगाने वाला, माला जपने वाला, संग्राम करने वाला, तथा मभरु आदिक बाजे बजाने वाला. वर वा शापके देने वाला, विना प्रयोजन अनेक संक्लेशोंमें फसने वाला, इत्यादिक जो अगरह दूषण करी सहित है, सो कुदेव है, उसकूं ईश्वर मानना सोइ मिथ्यात्व है,

इन कुदेवोंकूं मानने वाले पछरकीं नावो उपर बैठे है, इस वास्ते लिखनेका प्रयोजन इतना ही है, जो कुदेवकूं कदेइ अर्हंत नगवंत परमेश्वर करी न माननां ॥ इतिश्री तपागछीयेमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्यमुनिआनंदविजयआत्मारामविरचिते, जैनतत्त्वादर्शे, कुदेवनिर्णयनामा द्वितीयःपरिछेदःसंपूर्णः २

॥ अथ तृतीयपरिछेद प्रारंनः ॥

॥ यह तीसरे परिछेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहते है, जैनमतमें गुरुके लक्षण ऐसे लिखे हैं ॥ अनुष्टुप् वृत्तं ॥ महाव्रतधरा धीरा, नैक्ष्यमात्रोपजीविनः ॥ सामायिकस्था धर्मोप, देशकागुरवो मताः ॥१॥ अस्यार्थः–अहिंसादि पांच महाव्रतका धारने पालने वाला होवे, अरु आपदा आ पडे, तब धीर साहसिकपणा करे. अपणे जो व्रत हैं, तिनकूं दूषण लगा के कलंकित न करे, तथा बेंतालीश दूषण रहित, निक्षावृत्ति माधुकरीवृत्ति करी, अपणे चारित्र धर्मके तथा शरीरके निर्वाह वास्ते नोजन करे, नोजननी पूरा पेट नर कर न करे, नोजनके वास्ते अन्न, पाणी, रात्रिकूं न राखे, तथा धर्मसाधनके उपकरण वर्जके और कुठनी संग्रह न करे तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह न राखे. तथा राग, द्वेषके परिणाम रहित, मध्यस्थ वृत्ति हो कर, सदा वर्त्ते, तथा "धर्मोपदेशक" जो धर्म, जीवोंके उद्धार वास्ते सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप परमेश्वर, अर्हंत, नगवंतें स्याद्वादअनेकांत स्वरूप निरूपण कीया है, उस धर्मकूं जो नव्य जीवोंके तांइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्ट प्रकारका निमित्त शास्त्र. तथा वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवा आदिक अनेक शास्त्र, जिनसें धर्मकूं बाधा पहुंचे, तिनका उपदेशक न होवे, क्यों कि लौकिक जो शास्त्र है. सो तो बुद्धिमान् पुरुष वर्त्तमानमेंनी बहुत सीखते है, तथा नवीन नवीन अनेक सांसारिक विद्याके पुस्तक बनाते हुये चले जाते है, तथा अंगरेजोकी बुद्धि देख कर इस देशके लोकनी बहुत सांसारिक विद्यामें निपुण होते चले जाते हैं. इस वास्ते साधुकूं धर्मोपदेश ही करनां चाहियें, क्यों कि धर्मही जीवोकूं पाना कठिन है; ऐसे गुरुके लक्षण जेन मतमें हैं.

तथा प्रथम जो पांच महाव्रत साधुकुं धारने कहे हैं, सो कोन कोन सें वे पांच महाव्रत हैं ? सो कहते हैं:-श्लोक ॥ अहिंसा सूनृतास्तेय, ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ॥ पंचभिः पंचभिर्युक्ता, भावनाभिर्विमुक्तये ॥ २ ॥ अस्यार्थः-(१) अहिंसा, (जीवदया,) (२) सूनृत, (सत्य बचन बोलनां,) (३) अस्तेय (साधुके उचित, वस्तुकूं बिना दीयां न लेनां,) (४) ब्रह्मचर्यका पालनां, (५) सर्व परिग्रहका त्याग, इन पांचोंका नाम महाव्रत कहते हैं, तथा ए पांच महाव्रतोंमें एकैक महाव्रतकी पांच पांच भावना हैं, यह पांच महाव्रत, अरु पच्चीश भावना, ए सर्व मोक्षके वास्ते पाले.

अब इन पांचो महाव्रतोंमेंसूं प्रथम महाव्रतका स्वरूप लिखीये हैं ॥ ॥ श्लोक ॥ न यत् प्रमादयोगेन, जीवितव्यपरोपणं ॥ त्रसानां स्थावराणां च, तदहिंसाव्रतं मतं ॥ ३ ॥ अस्यार्थः-त्रस, (द्वींद्रियादिक जीव) अरु स्थावर, (१) पृथवीकाया, (२) अप्काया. (३) अग्निकाया, (४) पवनकाया, (५) बनस्पतिकाया, ए पांचोकूं स्थावर जीव कहते हैं. इन सर्वे पूर्वोक्त जीवोंकूं प्रमाद वश हो कर मारे नहीं. प्रमाद नाम है, राग, द्वेष, असावधानपणा, अज्ञान, मन वचन कायाका चंचल पणा, धर्मके विषे अनादर, इत्यादि प्रमादके वश हो कर जो प्राणातिपात करना, इसका जो त्याग करणां, इसका नाम अहिंसा व्रत है.

अब दूसरे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ प्रियं पथ्यं वचस्तथ्यं, सूनृतव्रतमुच्यते ॥ तत्तथ्यमपि नो तथ्य, मप्रियं चाहितं च यत् ॥ ॥ ४ ॥ अस्यार्थः-जिस बचनके सुननेमें दूसरा जीव हर्ष पावे. तिस बचनकूं प्रिय बचन कहियें, तथा जो बचन जीवोंकूं पथ्यकारी होवे, परिणामसुंदर होवे, एतावता जिस बचनसें जीवके आगें बहुत सुधारा होवे, तथा जो वचन सत्य होवे. ऐसा जो बचन बोले, सो सूनृतव्रत कहियें, इस व्रत विषे कछुक विशेष लिखते हैं, जो बचन व्यवहारमें चाहो सत्यही होवे, परंतु जो आगले जीवकूं दुःखदायी होवे, ऐसा बचन न बोले, जैसे काणेकूं काणा कहनां, चोरकूं चोर कहनां, कुष्ठीकूं कुष्टी कहनां, इत्यादिक जो बचन दूसरेकूं दुःख दायी होवे, सो न बोले, तथा जो बचन जीवोंकूं आगें अनर्थका हेतु होवे, वसुराजावत् सोभी न बोले. जे कर

यह दोनों बचन बोले, तब तो उस साधुके सूनृत व्रतमें कलंक लग जावें, क्योंकि ए दोनो बचन जूठहीमें गिने हैं.

अब तीसरा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ अनादानमदत्तस्या, स्तेयव्रतमुदीरितं ॥ बाह्याः प्राणानृणामर्थो, हरतात्तहताहिते ॥ ५ ॥ अस्यार्थः—अदत्त, मालिकके बिना दीया ले लेणां, तिसका जिसके नियम है, सो अस्तेय व्रत कहीयें, अचोरीव्रत नामांतर है, अदत्तादान चार प्रकारका है. (१) जो वस्तु साधुके लेने योग्य है, अचित्त जीवरहित वस्तु तृण, काष्ट, पाषाणादिक वस्तुयोंके स्वामीकूं बिना पूछे ले लेनां. सो स्वामी अदत्त. (२) तथा जैसें कोइ भेड. बकरी. गौ प्रमुख कोइ इनका स्वामी दूसरे हिंसक जीवकूं मोल लेकर दे देवे, अथवा बिना मोल दे देवे, अरु लेने वालेने देइ होइ वस्तु लीनी है, परंतु उस जीवने तो अपणा शरीर नहीं दीया है, इस हेतुसें जीवअदत्त. (३) तथा जो जो वस्तु आधाकर्मादिक आहार, अचित्त जीव रहितभी है, अरु दीनीभी उस वस्तुकें स्वामीने है, परंतु तीर्थंकर भगवंतें निषेध करी है, फेर जो साधु उस वस्तुकूं लें लेवे, सो तीर्थंकर अदत्त. (४) तथा जो वस्तु निर्दोष है, वस्त्र आहारादिक. अरु उस वस्तुके स्वामीने वो दीनी है, अरु तीर्थंकर भगवंतें निषेध नहीं करी है, परंतु गुरुकी आज्ञा विना वो वस्तुकूं साधु ले लेवे, सो गुरु अदत्त. इस महाव्रतमें ए चार प्रकारका अदत्त न लेणां. जितने व्रत नियम हैं, वे सर्व अहिंसाव्रतकी रक्षा वास्ते बाडी समान हैं, यह पूर्वोक्त तिसरे व्रतका जो पालनां है, सो अहिंसा व्रतहीकी रक्षा होती है. अरु जो तीसरा महाव्रत न पाले तो अहिंसा व्रतकूं दूषण लगे है, यही बात कहते हैं ॥ "बाह्याः प्रणा नृणां" मनुष्योंका अर्थ, (लक्ष्मी) जो है, सो बाहिरला प्राण है. जब कोइ किसीकी चोरी करता है, सो निश्चय करकें उसके प्राणोंहींका नाश करता है. इसी हेतुसें चोरी करनां महा पाप है, सर्व चोरीका जो त्याग करना है, इसीका नाम तीसरा अदत्तादान त्यागरूप महा व्रत है.

अब चोथे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ दिव्यौदारिककामानां, कृतानुमतिकारितैः ॥ मनोवाक्कायतस्त्यागो, ब्रह्माष्टदशधा मतम् ॥ ६ ॥ अस्यार्थः—दिव्य (देवताके) वैक्रिय शरीर संबधि जो काम भोग, अरु औदारिक शरीर तिर्यंच मनुष्यका, तिन संबंधी जो काम भोग, एतावता वैक्रिय

शरीर अरु औदारिक शरीर, ए दोनोंके साथ विषय सेवन करनां, और दूसरायोंसें विषय सेवन करावणां, विषय सेवन जो करे उसकूं अछा जाननां, ए ७ जेद मन करकें, ७ बचन करकें, अरु ७ काया करकें, एवं अठारह प्रकारका जो मैथुन सेवनका त्याग करे, उसकूं ब्रह्मचर्य व्रत कहते हैं.

अब पांचवा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वजावेषु मूर्छाया, स्त्यागस्यादपरिग्रहः ॥ यदि सत्स्वपि जीयेत, मूर्छया चित्तविप्लवः ॥ ७ ॥ अस्यार्थः—सर्व संपूर्ण जो अछाजाव पदार्थ, इव्य, क्षेत्र, कालजावरूप वस्तु, तिस विषे जो मूर्छा, ममत्वजाव मोह, तिसका जो त्याग करे, तिसका नाम अपरिग्रह व्रत कहियें, परंतु जिसके पास अपणे शरीरके बिना दूसरी कोइ वस्तु नहीं, तोजी तिसकूं निष्परिग्रहपणा न कहियें. किंतु जिसकी मूर्छा, ममत्व, सर्व बस्तुमें दूर जावे, उसीको निष्परिग्रह व्रत कहियें, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नहीं, अरु अण होइ वस्तुकी जिसकूं चाहना लग रही है, वो त्यागी नहीं, जे कर ज्ञानद्वारा मूर्छा त्यागे बिना, त्यागी हो जावे, तब तो कुत्ते अरु गर्द्दजी त्यागी होना चाहियें. अरु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास धर्म साधनके किननेक उपकरणजी हैं, तोजी मूर्छाके न होनेसें वो परिग्रह नहीं.

अब इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ जावनाजिर्जावितानि, पंचजिः पंचजिः क्रमात् ॥ महाव्रतानि नो कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अस्यार्थः—यह जो पांच महाव्रतोंकी पच्चीश जावना हैं, जो कोइ इन जावना करकें अपणे अपणें महाव्रतकूं रंजित वासित करे, एतावता पांच पांच जावना पूर्वक अखंम महाव्रत पाले तो ऐसा कोइ जीव नही है, जिसकूं ए महाव्रत मोक्षपदमें न पहुंचावे?

अब प्रथम महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ मनोगुप्त्येषणादाने, र्याजिः समितिजिः सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे ना हिंसा जावयेत्सुधिः ॥१॥ अस्यार्थः—मनकूं पापके काममें न प्रवर्त्तावे, किंतु पापके कामसें अपणे मनकूं हटा लेवे, इसका नाम मनोगुप्ति कहते हैं. जे कर पापके काममें मनकूं प्रवर्त्तावे, अरु चाहो बाह्यवृत्ति करकें हिंसा नहींजी करता, तोजी प्रसन्नचंद्र राजर्षिकी तरें सातमी नरकके जाने योग्य कर्म उत्पन्न कर लेता है, इस वास्ते मुनिकूं अवश्य मनोगुप्ति करनी चाहियें, ए

प्रथम भावना. दूसरी भावना एषणासमिति. सो आहारादिक चार वस्तु आधाकर्मादिक बेंतालीश दूषण रहित लेवे, बेंतालीश दूषणका पूरा स्वरूप देखनां होवे, तो पिंमनिर्युक्ति शास्त्र (७०००) श्लोक प्रमाण है, सो देख लेनी, ए दूसरी भावना. तीसरी भावना आदाननिक्षेप नामा है, जो कुछ पात्रक. दंम, फलक प्रमुख लेना पडे, तथा भूमिकाके उपरि रखना पडे, तब प्रथम नेत्रोसें देख लेनां, पीछें रजोहरण करकें पूंज लेवे, पीछे में लेना अरु रखना करें, क्योंकि विछु सर्पादिक अनेक जहेरी जीव, जे कर उस उपकरणके उपर बेठे होवें, तब तो काट खावें, अरु दूसरा जीव बिचारा अनाथ कोइ बेठा होवे, तो हाथके स्पर्शसें मर जावे, तब तो जीवहत्याका पाप लग जावे. इस वास्ते जो काम करनां, सो यत्नपूर्वक करनां, ए तीसरी भावना. चोथी भावना जब चलनेका काम पडे, तब अपणी आंखोंसें चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा देख कर चलता है, उसकूं इस लोकमें कितनेक गुण प्राप्त हो जाते है, प्रथम तो पगकूं ठोकर नहीं लगती. दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे, उसकूं गिरा पडा पैसा. रूपक. आदि मिल जावे, तीसरे लोकमें भला मनुष्य किसीकी बहू बेटीकूं देखता नहीं, ऐसा प्रसिद्ध हो जाता है, चोथे जीवकी रक्षा करनेमें धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चोथी भावना. पांचमी भावना जो अन्न, पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगामें लेवे, अंधकार वाली जगामें न लेवे, क्योंकि अंधकारवाली जगामें एक तो जीव नहीं दीख पडता, और दूसरा साप विछुके काटनेका भर रहेता है, तथा गृहस्थका कोइ आभूषण प्रमुख जाता रहै, तब उसके मनमें शंका उत्पन्न हो जावे, कि क्या जाने अंधेरेमेंसें साधुही ले गया होगा? तथा अंधेरेमें सुंदर साधुकूं देख कर कदा चित् कोइ उत्कट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु उस बखत कोइ दूसरा देखता होवे, तो धर्मकी बडी निंदा होवे, तथा साधुहीका मन अंधेरेमें स्त्रीकूं देख कर बिगड जावे, साधु स्त्रीकूं पकड लेवे, स्त्री पुकार कर देवे, तब तो बडी धर्मकी हानी, होवे तथा साधुओंकी अप्रीति हो जावे, इस वास्ते अंधेरेकी जगामें साधु अन्नादिक न लेवे, ए पांचमी भावना. ए प्रथम महाव्रतकी पांच भावना हैं.

अब दूसरे महाव्रतकी पांच भावना लिखते हैं॥ श्लोक॥ हास्यलोभभ

यक्रोधः,प्रत्याख्यानैर्निरंतरम् ॥ आलोच्य नाषणमपि,नावयेत्सूनृतं व्रतं ॥१॥ अस्यार्थः–प्रथम तो किसीकी हांसी न करे, हांसीका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष किसीकी हांसी करेगा, वो अवश्य जूठ बोलेगा, ए जो परकी हांसी करणी है, सो बडा अनर्थका कारण हो जाती है, श्रीहेमचंद्र सूरिकृत रामायणमें लिखा है, कि रावणकी बहिन शूर्पनखाकी श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजीने हांसी करी थी, तब शूर्पनखा क्रुद्ध हो कर अपने नाइ रावणके पास जा कर सीताका वर्णन करा, फेर रावण सीताकूं हर कर ले गया, एह बडा संग्राम हुआ, आज तांइ लोक नकल बनाते हैं, इस सारी रामायणका निमित्त शूर्पनखाकी हांसी है, इस वास्ते पर हास्यका त्यागरूप प्रथम नावना जाननी. दूसरी नावना लोनका त्याग करनां, क्योंकि जो लोनी होगा सो अवश्य अपने लोनके वास्ते जूठ बोलेगा, क्योंकि यह बात सर्वे लोकोमें प्रसिद्ध है, जो लोनी होगा, वो जरूर जूठ बोलेगा, ए दूसरी नावना. तथा नय न करनां, क्योंकि नयवंत पुरुषनी जूठ बोल देता है, ए नय त्यागरूप तिसरी नावना. तथा क्रोध करनेका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष क्रोधके वश होगा, वो दूसरायोंके हूवे अणहूवे दूषण जरूर बोलेगा. इस वास्ते क्रोध त्यागरूप चोथी नावना. तथा प्रथम मनमें विचार कर लेवे, पीछेसें बोले क्यों कि जो विचार करे विना बोलेगा वो अवश्य जूठ बोलेगा, इस वास्ते विचार पूर्वक बोलनां. ए पांचमी नावना. ए दूसरे महाव्रतकी पांच नावना है.

अब तीसरे महाव्रतकी पांच नावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ आलोच्यावग्रहयाञ्चा, नीक्ष्णावग्रहयाचनं ॥ एतावन्मात्रमेवैत, दित्यवग्रहधारणं ॥ १ ॥ समानधार्मिकेन्यश्च, तथावग्रहयाचनं ॥ अनुज्ञापि तथा नाम्ना, सनमस्तेयनावना ॥ २ ॥ अस्यार्थः–जिस मकानमें साधुने रहणा होवे, तो प्रथम उस मकानके स्वामीकी आज्ञा लैणी, घरका स्वामी यही है, ऐसा जान कर आज्ञा लैणी, जे कर स्वामीकीआज्ञा विना रहे, तो चोरी लगे अरु रात्रिमें कदाचित् घरका स्वामी क्रोध करकें साधुकूं वांहांसें निकाल देवे, तब साधु रात्रिमें कहां जावे? इत्यादि अनेक क्लेश उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते मकानके स्वामीकी आज्ञा ले कर उसके मकानमें रहनां. ए प्रथम नावना. दूसरी नावना उपाश्रयके स्वामीकी वार वार आज्ञा लेनी, क्योंकि कदाचित् कोइ साधु रोगी हो जावे, तब जंगल पुरीष मूत्र करनेकूं

जरूर जगा चाहियें, गृहस्वामीकी आज्ञाके बिना जो उसके मकानमें मल मूत्र करे, तो चोरी लगे. इस वास्ते गृहस्वामीकी आज्ञा वारं वार लेनी, ए दूसरी जावना. तीसरी जावना उपाश्रयकी जूमिकाकी मर्यादा कर लेवे, कि इतनी जगा तक हमारेकूं तुमारी आज्ञा रही, जे कर मर्यादा न कर लेवे तो अधिक जूमिकाकूं काममें लानेसें चोरी लगती है. इस वास्ते प्रथमही मर्यादा कर लेवे, ए तीसरी जावना. तथा चोथी जो साधु समान धर्मी होवे, अरु वो किस जगामें प्रथम उतर रहा है. पीछें दूसरे साधु जो उस मकानमें उतरा चाहे, तो प्रथम साधुकी आज्ञा बिना न रहनां, जे कर प्रथम साधुकी आज्ञा न लेवे, तो स्वधर्मी अदत्त लागे, ए चोथी जावना. पांचमी जावना साधु जो कुछ अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, शिष्यादिक लेवे, सो सर्व गुरुकी आज्ञासें लेवे, जे कर गुरुकी आज्ञा बिना कोइ वस्तु ले लेवे, तो गुरु अदत्त लागे. ए पांचमी जावना. ए तिसरे महाव्रतकी पांच जावना हैं.

अब चौथे महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥श्लोक॥ स्त्रीषंढपशुमद्वेश्मा, सनकुड्यांतरोज्झनात् ॥ सरागस्त्रीकथात्यागात्, प्राग्गतस्मृतिवर्जनात् ॥ १ ॥ स्त्रीरम्यांगेक्षणस्वांग, संस्कारपरिवर्जनात् ॥ प्रणीतात्यशनत्यागात्, ब्रह्मचर्यं तु जावयेत् ॥ २ ॥ अस्यार्थः—जिस घरमें अथवा आसनमें अथवा जीतके अंतरे देवी अथवा मनुष्यकी स्त्री वसे, (रहे,) अथवा देवांगनाकी वा स्त्रीकी लेप, चित्राम प्रमुखकी मूर्ति होवे, तथा पंढ नपुंसक तीसरे वेद वाला जिस घरमें रहता होवे, तथा पशु, गाय, महिषी, घोडी, बकरी. जेड प्रमुख तिर्यंच स्त्री जिस मकानमें रहती होवे, तथा जिस मकानमें काम सेवन करती स्त्रीका शब्द तथा दूसरा कोइ मोह उत्पन्न करनेका शब्द, तथा आजूषणोंका शब्द, सुणाइ देवे, इन पूर्वोक्त विशेषणों संयुक्त मकानमें तथा एक जीतके अंतरेमें साधु न रहे, ए प्रथम जावना. तथा सराग (प्रेम सहित) स्त्रीके साथ वार्त्तालाप न करे, अथवा सराग स्त्रीके साथ वार्त्ता न करे तथा स्त्रीके देश, जाति, कुल, वेष, जाषा, स्नेह, शृंगार प्रमुखकी कथा सर्वथा न करे, क्योंकि सराग स्त्रीके साथ जो पुरुष स्नेह सहित कामशास्त्र प्रमुखकी कथा करेगा, सो अवश्य विकार जावकूं प्राप्त होगा, इस वास्ते सराग स्त्रीसें कथा न करे, ए दूसरी जावना. तथा दीक्षा लेनेसें पहिले गृहस्थावस्थामें जो स्त्रीके साथ कामक्रीडा, वद

नचुंबन, चौरासी कामासनसें विषयसेवन प्रमुख क्रीडा करी होवे, तीसकों फेर मनमें कदेइ न स्मरण करणां, क्योंकि पूर्व क्रीडास्मरणरूप इंधनसें कामाग्नि फिर धुखने लग जाती है, ए तीसरी भावना. तथा अविवेकी जनोंकूं देखने, अरु वांछने योग्य स्त्रीके अंग जो मुख, नयन, स्तन, जघन, होठ प्रमुख तिनोंकों सराग दृष्टिसें देखनां तथा अपूर्व विस्मय रसके पूरमें मग्न होकर आंख फाड देखनां वर्जे, परंतु जो राग रहित दृष्टि करी कदाचित् देखने में आ जावें, तो दोष नहीं. तथा अपणे शरीरकूं संस्कार करणां, स्नान, विलेपण, धूप करणी, नख, दांत,केश,समा रचनां, कंगी सुरमासें विभूषा करणी, इत्यादिक शरीरसंस्कार न करे, क्योंकि स्त्रीके रमणिक अंग देखनेसें जैसें दीप शिखामें पतंगीया जल जाता है, अैसें कामी पुरुषभी कामाग्निमें जल जाता है, क्यों कि शरीर जो है, सो सर्व अशुचिका मूल है, इसका जो शृंगार करणां है, सो अज्ञानता है, जैसे मलिन वस्तुकी कोथलीके उपर जे कर चंदन घस कर लगा दिया, तो क्या वह कोथली सुगंधित हो जाती है ? यह शरीर अंतमें मशानकी एक मुठी राखकी बन जायेगी, फिर किस वास्ते इस शरीरकी शोभा करणेमें व्यर्थ काल खोवे है ? ए चोथी भावना. तथा प्रणीत, स्निग्ध, मधुरादि रस, इनका अधिक आहार करणां, तथा रूखा भोजनभी कंठ उदर पूर कर खानां, ए दोनोंही प्रकारके आहारका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष, निरंतर स्निग्ध, मधुर रसका आहार करेगा, उसके जरूर धातुपुष्ट होवेगी, तब तो वेदोदय करी अवश्य कुशील सेवेगा. अरु रूक्ष भिक्षावृत्तिका भोजनभी प्रमाणसें अधिक नहीं करणां, क्योंकि रूक्ष भोजन अधिक करणेसें काम उत्पन्न हो जाता है, अरु अधिक खानेमें शरीरकूं पीडा उत्पन्न हो जाती है, विशूचिका प्रमुख रोग हो जाते हैं, इस वास्ते प्रमाणसें अधिक भोजनभी न करे. पूर्व पुरुषोंने खानेकी अैसें मर्यादा लिखी हैं कि ॥यतः॥ अद्धमसणस्स सवं, जणस्स कुज्जा दवस्स दो भागे ॥ वाउपविआरणठा, छब्भाय कणगं कुज्जा ॥ १ ॥ अस्य तात्पर्यार्थः—बुद्धि करिकें अपणे उदरके छ भाग करणे.तिनोमें तीन भाग तो अन्नसें भरने, अरु दो भागमें पानी, एक भाग खाली रखणां,जिस्सें सुखें सुखें उश्वास निःश्वास आता रहे,ए पांचमी भावना. ए चोथे व्रतकी पांच भावना.

अब पांचमे महाव्रतकी पांच भावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ स्पर्शे रसे च

गंधे च, रूपे शब्दे च हारिणि ॥ पंच स्वहींद्रियार्थेषु, गाढं गाऽर्ध्यस्य वर्जनं ॥ १ ॥ एतेष्वेवामनोज्ञेषु, सर्वथा द्वेषवर्जनं ॥ आकिंचन्यव्रतस्यैवं, नावना पंच कीर्त्तिताः ॥ २ ॥ युग्मं ॥ अस्यार्थः—स्पर्शादिक मनोहर पांच विषयोंमें जो अत्यंत गृद्धिपणा सो वर्जनां, अरु स्पर्शादिक अमनोज्ञ पांच विषयोंमें द्वेष न करणां. ए पांचमे महाव्रतकी पांच नावना. एवं पूर्वोक्त पांच महाव्रत, अरु पच्चीश नावना जिसमें होवे, सो गुरु. तथा चरणसित्तरी अरु करणसित्तरी करकें संयुक्त होवे, सो जैनमतमें गुरु है.

अथ चरण सित्तरीके सित्तर नेद लिखते हैं ॥ गाथा ॥ वय समण धम्मसंजम, वेयावच्चं च बंन गुत्तीर्ज ॥ नाणाइ तियं तव को, ह निग्गहाइ चरणमेयं ॥ १ ॥ अर्थः—व्रत पांच प्रकारका, श्रमणधर्म दश प्रकारका, संयम सत्तर प्रकारका, वैयावृत्त्य दश प्रकारका, ब्रह्मचर्य गुप्ति नव प्रकारकी, ज्ञान, दर्शन. चारित्र, ए तीन प्रकारका. तप बार प्रकारका, निग्रह क्रोधादिक चार प्रकारका, ए सर्व सित्तर हुये, तीनमेंसूं पांच व्रतका स्वरूप तो उपर नावना संयुक्त लिख आये हैं, सो जाननां.

तथा श्रमणधर्म दश प्रकारका लिखीयें हैं ॥ गाथा ॥ खंतिय मद्दव ऊव, मुत्ती तव संजमे य बोधवा ॥ सच्चं सोयं आकिं,चणं च बंनं च जइधम्मो ॥ १ ॥ अस्यार्थः—(१) क्षांतिः (क्षमा) करणी. चाहो सामर्थ्य होवे, चाहो असामर्थ्य होवे, परंतु दूसरेके डुर्वचन सहनेके जो परिणाम मनोवृत्ति है, तिसका नाम क्षमा कहते हैं, सर्वथा क्रोधका त्याग क्षमा, (२) कोमल कहीयें अहंकार रहित, तिसका जो नाव, वा कर्म सो कहियें मार्दव, नीचा हो कर अनिमान रहित होणां, (३) ऋजु कहियें मन, वचन, काया करी सरल, तिसका जो नाव, वा कर्म, सो आर्जव, मन वचन कायाकी कुटिलताइसें रहित, (४) मोचनं मुक्तिः बाहिर, अंदर, तृष्णाका त्याग लोनका त्याग, (५) रसादिक धातु अथवा अष्ट प्रकार कर्म, जिस करकें तपे सो तप अनशनादि बारा प्रकारका, (६) संयम, आश्रवकी त्यागवृत्ति, (७) सत्यं, मृषावाद विरति जूठका त्याग, (८) शौच, अपणी संयमवृत्तिमें कोइ कलंक न लगावनां, (९) नहीं है किंचित् मात्र ड्व्य जिसके पास सो आकिंचन, (१०) नव ब्रह्मचर्यकी गुप्ति, ए दश प्रकारका यतिधर्म, तथा मतांतरमें दश प्रकारका

यतिधर्म औसेनी कहते हैं ॥गाथा॥ खंत्ती मुत्ती अज्जव, मद्दव तह लाघवे तवे चेव ॥ संजम वियोग किंचण, बोधव्वे बंनचेरेय ॥१॥ अस्यार्थः सुगमः ॥

अथ सत्तर नेद संयमके लिखते हैं ॥ गाथा ॥ पंचासवाविरमणं, पंचिंदिय निग्गहो कसाय जउ ॥ दंमत्तयस्स विरई, सत्तरसहा संजमो होइ ॥ १ ॥ अथवा ॥ पुढवि दग अगणि मारुय, वणसइ बि ति चउ पणिंदि अजीवा ॥ पहु प्पेहपमज्जण, परिठवण मणो वई काए ॥२॥ इनोंका अर्थः— उत्पन्न करीयें कर्म इनों करकें सो आश्रवाः सो आश्रव पांच प्रकारका है, जो पांच महाव्रतोमें त्यागने लिखे हैं. (१) हिंसा, (२) जूठ, (३) चोरी, (४) अब्रह्म, (५) परिग्रह, ए पांच आश्रवका त्याग करे, तथा स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु अरु श्रोत्र, ए पांचों इंद्रियका स्पर्शादिक पांचों विषयोंविषे लंपटपणा त्यागे. तथा क्रोध, मान, माया अरु लोन, इन चारों कषायका जीतनां. इन चारोंके उदय होयाकूं निःफल करणां, अरु जो नहीं उदय आये उनकूं उत्पन्न न करणां तथा दंमीयें चारित्र धर्मरूप लक्ष्मी जीव पासों इनों करकें सो खोटा मन, खोटा बचन, खोटी काया, इन तीनों दंमकी विरति करणी. एवं सत्तर नेद करिकें संयम है, अथवा प्रकारांतर करकें सत्तर नेदसें संयम कहते हैं,(१) पृथिवी, (२) उदक, (३) अग्नि, (४) पवन, (५) वनस्पति, (६) द्वींद्रियजीव, (७) त्रींद्रियजीव, (८) चतुरिंद्रिय जीव, (९) पंचेंद्रिय जीव, इन पूर्वोक्त नवविध जीवोंकूं मन, वचन, अरु काया करी करणां,करावणां,अरु करणे वालेकूं नला जाननां, सरंन समारंनाऽरंन, इन नव विकल्पोमें पूर्वोक्त नवविध जीवोंकी हिंसा त्यागनी, ए नव प्रकारका संयम. जो प्राणीके प्राणकूं बिनाशनेका संकल्प करणां, इसका नाम सरंन है. जीवके प्राणकूं जो परिताप करनां, (पीडा देनी) इसका नाम समारंन है, तथा जीवोंका प्राणका जो विध्वंस करनां, इसका नाम आरंन है; तथा (१०) अजीव संयम जिस अजीव वस्तुके राखणेसें संयम कलंकित हो जावे, जैसें मांस, मदिरा, सुवर्ण प्रमुख सर्व धातु, मोति आदिक सर्व रत्न, अंकुशादिक सर्व शस्त्र, इत्यादिक अजीवके रखनेसें संयममें कलंक होवे, सो अजीव वस्तु न रखणी; तथा अजीव रूप जो पुस्तक, अरु शरीरोपकरणादि, सो दुःखमादि दोषसें तैसी बुद्धि नहीं, आयु लंबी नहीं, श्रद्धा, संवेग, उद्यम, बल, ए सर्व हीन हो

गये हैं, विद्या कंठ रहती नहीं, इस वास्ते इस कालमें जो पुस्तक रखणां, सो प्रतिलेखणा, प्रमार्जनापूर्वक यतनोसें राखणां, ए दसवा अजीव संयम. (११) प्रेक्षासंयम. सो नेत्रोंसें देख करकें बीज, हरि प्रमुख जीवों करी रहित स्थानमें सोनां, बैठणां, चलनां, इत्यादिकके करणेसें प्रेक्षासंयम. तथा (१२) उपेक्षासंयम सो गृहस्थकूं पापका व्यापार करतेकूं उपेक्षणां सो (उपदेश देणां) कि यह काम तुम ऐसें करो, एसें जो गृहस्थकूं कहनां, सो उपेक्षा संयम, अथवा केइ साधु संयमसें चलायमान हो गया होवे, उसकूं हित करकें जो उपदेश करनां, सो प्रेक्षासंयम, तथा पार्श्वस्थादिक जो साधुकी समाचारीमें भ्रष्ट हो गये हैं, अरु वो भ्रष्ट साधु कोइ अनुचित काम कर रहा है, अरु साधुजी अपणे मनमें जान जावे जो इसकूं उपदेश करुंगा, तो इसने माननां नहीं है, इस वास्ते जो औदासीन्य रहणां, उसका नाम उपेक्षासंयम, (१३) प्रमार्जन संयम, सो देखे हुये स्थानमें वस्त्र पात्रादिक जो लेने, वा रखने पडे. तब प्रथम रजोहरणादिकसें प्रमार्जन करकें पीछेसें लेनां, रखनां, सोनां, बैठनां करे, तब प्रमार्जना संयम, तथा (१४) भात, पाणी, वस्त्र, पात्रादिक जिसमें जीव पड गये होवे. तब तिनकूं जीवों रहित शुद्ध भूमिकामें शास्त्रोक्त विधि कर जो परिष्ठापना करे, सो परिष्ठापनासंयम, तथा (१५) मनमें द्रोह, ईर्ष्या, अभिमान, तो न करणां, अरु धर्मध्यानादिकमें मन प्रवृत्त करणां, सो मनःसंयम. तथा (१६) हिंसाकारी कठोर बचनकों त्यागनां, अरु शुभ बचनमें प्रवृत्त होनां, सो वचनसंयम, तथा (१७) गमनागमन करणेमें अरु अवश्यकरणे योग्य कामोंमें उपयोग पूर्वक जो कायाकूं प्रवृत्तावे, सो कायासंयम. ए सत्तरभेद संयमके जाननां.

अथ वैय्यावृत्तके दश भेद कहते हैं ॥ गाथा ॥ आयरिय उवझाए, तवस्सि सेहे गिलाण साहुसु ॥ समणोन्न संघ कुल गण, वेयावच्चं हवइ दसहा ॥१॥ अर्थः—(१) ज्ञानादिक पांच आचारकूं जो पाले, सो आचार्य, तथा सेवीयें जो, सो आचार्य तथा (२) जिनके समीप आ कर पढीयें, सो उपाध्याय, तथा (३) तप जो करे, सो तपस्वी, तथा (४) जिसनें नवाही साधुपणा लीया है, सो शिष्य, तथा (५) ज्वरादि रोग वाला जो साधु सो ग्लान, तथा (६) जो धर्मसें डिगतेकूं स्थिर करे, सो स्थविर, साधु

तथा (७) जिस साधुकी अपणे समान एक समाचारी होवे, सो समनोज्ञ, तथा (८) साधु, साधवी, श्रावक अरु श्राविका इन चारोंको जो समुदाय सो संघ, तथा (९) बहुते एक सरिखे गछोंका सजातियोंका जो समूह,सो कुल चंद्रादिक जानना, तथा (१०) एक आचार्यकी वाचनावाले साधुवोंको समूह, सो गण गछ कौटिकादिक. इन पूर्वोक्त आचार्यादिक दसोंका अन्न, पाणी, वस्त्र, पात्र, मकान, पीठ, फलक, संस्तारक प्रमुख धर्म साधनों करकें जो साहाय्य करणां, शुश्रूषा करणी, भेषज करणी. उजाड (जंगल) में रोग उत्पन्न होनेसें. तथा नाना प्रकारके उपसर्गोमें पालना करणी, इसका नाम वैय्यावृत्त है.

अथ जो शीलवान् साधु होवे, सो नव वाड सहित शील पाले, उनकूं नवविध ब्रह्मचर्यकी गुप्ति कहते हैं, सो लिखते हैं ॥गाथा॥ वसहि कह निसिज्जिंदिय,कुड्डंतर पुव्वकीलिय पणीए ॥ अइमायाहार विभू,सणाइ नव बंभ गुत्तीउ ॥१॥ अर्थः—१(वसहि के०) वस्ती सो जो ब्रह्मचारी साधु होवे सो स्त्री,पशु,पंडक इनों करी, संयुक्त जो वस्ती होवे,तहां ब्रह्मचारी न रहे,तिनमें सूं प्रथम तो स्त्री जो है.सो दो तरेंकी है, एक तो देवी. दूसरी मनुष्यणी, इन दोनोके दो दो भेद हैं, एक तो असल, और दूसरी इनकी मूर्त्ति. वा चित्रामकी मूर्त्ति, यह दोनो प्रकारकी स्त्री जहां न होवे, तिस वस्तिमें रहे. तथा पशु जो तिर्यंचिणी, गौ, महिषी, घोडी, बकरी, भेड प्रमुख जिस वस्ति में नहीं रहे, तहां रहे, तथा पंडक सो नपुंसक, तीसरे वेद वाला, महा मोहवाला काम करनेहारा, स्त्री अरु पुरुष, इन दोनोंके साथ विषय सेवने वाला, जिस वस्तिमें रहता होवे. तहां ब्रह्मचारी न रहे, क्योंकि इन तीनों करी संयुक्त वस्तिमें रहते थके उनोंकी कामविकारकी चेष्टा देखनेसें, ब्रह्मचारीके मनमें विकार उत्पन्न होनेसं ब्रह्मचर्यकूं बाधा होती है, जैसे मूषा अरु बिल्ली दोनु एक जगे रहे, तो मूषेकूं सुख नहीं; तैसेही इन तीनो संयुक्त वस्तिमें रहणेसें शीलकूं उपद्रव होवे, ए प्रथम ब्रह्मचर्य गुप्ति.

२ तथा (कह के०) कथा सो केवल स्त्रीयोंहीकूं तथा एकली स्त्रीकूं धर्मदेशना बचनका प्रबंधरूप कथा न कहे, तथा स्त्रीकी कथा नकरे ॥ यथा ॥ कर्णाटी सुरतोपचारचतुरा, लाटी विदग्धा प्रिया ॥ इत्यादिक कथा न करे, क्योंके यह कथा जो है, सो राग उत्पन्न करनेकी हेतु है, जो स्त्रीके देश, जाति,

कुल, वेष, भाषा, गति, (चलनां) विभ्रम, इंगित, हास्य, लीला, कटाक्ष, स्नेह, रति, कलह, शृंगार, इत्यादिक जो विषयरसकी पोखने वाली कामि नीकी कथा है, सो कदेइ न करे. जे कर करे, तो अवश्य मुनिकाभी मन वि कारकूं प्राप्त हो जावे. ए दूसरी ब्रह्मचर्यकी गुप्ति है.

३ तथा (निसिज्ज के०) आसन सो स्त्रीयोंके साथ एक आसन उपर न बै ठनां, तथा जिस जगेसें स्त्री उठी होवे, उस आसन वा स्थानमें दो घडी तक साधु न बैठे. क्यों कि उस जगे तत्काल बैठनेसें स्त्रीकी स्मृति होती है, औ स्त्रीके बैठनेसें शय्या वा आसन. मैलसें मलिन होता, स्त्रीके स्पर्शवाले आसनादि स्पर्शसें विकार उत्पन्न हो जाता है. ए तीसरी ब्रह्मचर्यगुप्ति.

४ तथा (इंदिय के०) इंद्रिय सो अविवेकी लोकोंकूं देखने योग्य, स्त्रीयोंके अंगोपांग जो नाक, स्तन, जघन प्रमुख है, उसकूं ब्रह्मचारी साधु अपूर्व रसमें मग्न हो कर, नेत्र फाड कर, न देखे, कदाचित् दृष्टि पड जाय, तो पीछेसें औसी चिंतवनाभी न करे, जैमें कि बडे सुंदर लोचन है! नासिका बहुत सीधी है! बांछने योग्य दोनो कुच हैं! जे कर स्त्रीके पूर्वोक्त अंगोपांग एकाग्र रस मग्न हो कर चिंतवना करे, तो अवश्य मन मोहे, तथा विकारकूं प्राप्त होवे.

५ तथा(कुड्डंतर के०) कुड्यांतर सो जिन भींतके, तट्टीके, कनातके, अंतर बीचमें होनेसें स्त्री पुरुष, मैथुन करते होवें, अरु उनका शब्द सुणाइ देवे, तहां साधु ब्रह्मचारी न रहे. ए पांचमी गुप्ति.

६ तथा (पुव्वकीलिय के०) पूर्वक्रीडा सो पूर्वगृहस्थ अवस्थामें स्त्रीके साथ जो विषय भोग क्रीडा करी होवे, तीसकूं स्मरण न करे; जे कर करे, तो कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाता है, ए छठी गुप्ति.

७ तथा (पणीय के०) प्रणीत सो अति चीकणा, मीठा, दूध, दधि प्र मुख अति धातुपुष्ट करनेवाला आहार निरंतर न करे; जे कर करे, तो बीर्यकी वृद्धि होनेसें अवश्य वेदोदय होगा, फेर जरूर विषय सेवेगा, क्योंकि जो बोदी कोथलीमें बहुत रूपिये भरेगा, तो जरूर फाट जायगी.

८ तथा (अइमायाहार के०) अतिमात्राहार, सो रूखो भिक्षाभी प्रमा णसें अधिक न खावे, क्यों कि अधिक खानेसें विकार हो जाता है, अरु शरीरकूं पीडा विशूचिकादिक होनेका कारण है, ए आठमी गुप्ति.

९ तथा (विभूसणाइ के०) विभूषणादि शरीरकी विभूषा सो स्नान, विले

पन, धूप, नख, दांत, केश, इनकी सुंदरताइके वास्ते समारणां, तथा तिलक, सुरमा, कज्जल, विनूषाके वास्ते नेत्रोमें गेरनां, तथा कावेंसें पग मांजने, साबु, तेल प्रमुख मसल कर गरम पाणीसें सुकोमलताइके वास्ते धोनां, इत्यादिक शरीरकी विनूषा न करे, ए नवमी ब्रह्मचर्यगुप्ति. ए नव प्रकारकी गुप्ति सो ब्रह्मव्रतकी रक्षा रूप नव वाड है.

अथ ज्ञानादि तीन कहेते हैं, उसमें यथार्थ वस्तुका जो बोधक सो ज्ञान, सो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षय तथा क्षयोपशमके होनेमें जो उत्पन्न हूया है बोध, तिसका हेतु जो द्वादशांग औ द्वादशोपांग, तथा प्रकीर्णक उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहियें. तथा दूसरा दर्शन सो १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा. ८ बंध, ९ मोक्ष, इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमें श्रद्धा (रुचि) करनी, जैसेंकी ए नव तत्त्व तथ्य हैं, मिथ्या नहीं, ऐसी तत्त्वरुचि तिसका नाम दर्शन है, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसें ज्ञान, श्रद्धान पूर्वक जो निवृत्त होनां, इसका नाम चारित्र है, इस चारित्रकेन्नी दो नेद हैं, एक देशविरतिचारित्र, दूसरा सर्व विरतिचारित्र; उसमें देशविरति चारित्र तो जहां गृहाश्रम धर्मका स्वरूप लिखेंगें, तहांसें जान लेनां, अरु जो सर्वविरति चारित्र है, तिसकाही स्वरूप, इसी गुरुतत्त्वमें लिखने लग रहे हैं, ए ज्ञानादिक तीन जाननां.

अथ बारा प्रकारका तप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ अणसण मूणोयरिया, वित्तीसंखेवणरसच्चाउ ॥ कायकलेसो संली, णया य बज्जो तवो होइ ॥१॥ पायच्छित्तं विणउं, वेयावच्चं तहेव सप्ताउं ॥ ज्ञाणं उस्सग्गोविय, अप्रिंत रउ तवो होइ ॥ २ ॥ इनका अर्थः—१ व्रत करणां, २ थोडा खाणां, ३ नाना प्रकारके अनिग्रह करणे, ४ रस जो दूध, दहीं, घृत, तेल, मीठा पक्वान्न, इनोका त्याग करनां, ५ कायक्लेश, वीरासन, दंमासन आदिक करी अनेक तरेंका कायक्लेश करनां, ६ पांचो इंद्रियोंकूं अपणे अपणे विषयोंसें रोकनां, ए ढ प्रकारका बाहिर तप है, १ जो कुछ अयोग्य काम करा अरु पीछेसें गुरुके आगें आपणा पाप जैसें करा था, वैसेही प्रगट पणे कहना, आगेकूं फेर वो पाप न करनां, अरु पूर्वें जो करा है, उसकी निवृत्तिके वास्ते गुरु पासों यथा योग्य दंम लेनां, इसका नाम प्रायश्चित तप है, तथा २ अपनेसें गुणाधिककी विनय करनी, तथा ३ वैय्यावृत्त नक्ति करनी,

तथा ४ एक आप दूसरायोंकों पढानां, दूसरा संशय उत्पन्न हूया गुरुकूं पूछनां, तीसरा अपने सीखे हूयेकूं वारंवार उच्चारन करनां, चौथा जो कुछ पढा है, उसके तात्पर्यकूं एकाग्रचित्त करकें चिंतनां, इसका नामअनुप्रेक्षा है. पांचमी धर्मकथा करनी, ए पांच प्रकारका स्वाध्याय तप है, तथा ५ एक आर्त्तध्यान, दूसरा रौद्रध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्यान, इन चारोंमेंसूं आर्त्तध्यान अरु रौद्रध्यान, ए तो दोनो त्यागने, औ धर्मध्यान अरु शुक्लध्यान, ए दोनो अंगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६ सर्व उपाधियोंकों त्याग देनां सो व्युत्सर्ग्ग तप है, ए छ प्रकारका अभ्यंतर तप है, ए सर्व मिल कर बारा प्रकारका तप हैं.

क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारोंका निग्रह करनां. यह पांच व्रत, दश श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका संयम, दश प्रकारका वैय्यावृत्त, नव प्रकारकी ब्रह्मचर्यगुप्ति, तीन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बारां प्रकारका तप, अरु क्रोधादिक चारका निग्रह, ए सर्व मिल कर सित्तर भेद चारित्रके हैं, इस वास्ते इनकूं चरणसित्तरी कहते हैं.

अथ करणसित्तरीके भेद लिखते हैं ॥ गाथा ॥ पिंडविसोही समिई, भावण पडिमाय इंदिय निरोहो ॥ पडिलेहण गुत्तीउ, अभिग्गह चेव करणं तु ॥ १ ॥ इसका अर्थः—पिंडविशुद्धि सो एक आहार, दूसरा उपाश्रय, तीसरा वस्त्र, चौथा पात्र, ए चार वस्तुकूं साधु. बेंतालीश दूषण करकें रहित लेवे, तिसका नाम पिंडविशुद्धि है. बेंतालीश दूषणका जो पूरा स्वरूप देखनां होवे, तब तो पिंडनिर्युक्ति ग्रंथ भद्रबाहुस्वामिकृत उसकी मलयगिरिसूरि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी. तथा पिंडविशुद्धि ग्रंथ जिनवल्लभसूरिकृत औ उसकी जिनपतिसूरिकृत टीकासें जान लेनां, तथा प्रवचनसारोद्धार श्रीनेमिचंद्रसूरिकृतसूत्र, तथा उसकी सिद्धसेनसूरिकृतटीकासें जान लेनां, तथा श्रीहेमचंद्र सूरि कृत योग शास्त्रसें जान लेनां.

अथ समिई सो पांच समिति, उसका स्वरूप लिखते हैं. प्रथम ईर्या समिति, सो चलनेका नाम ईर्या कहते है, अरु समिति कहियें सम्यक् आगमके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहियें. त्रस स्थावर जीवोंकूं अभयदान दाता जो मुनि है, तिस मुनिकूं अवश्य प्रयोज

नके वास्ते चलनां पडे, तब किस रीतिसें चलनां? प्रथम तो प्रसिद्ध रस्तेमें चलनां, जो रस्ता सूर्यकी किरणोसें प्रतप्त होवे, प्रासुक जीव रहित होवे. जिसमें स्त्री पुरुषका संघट्ट न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा अपने शरीरकी रक्षा निमित्त पगके अंगूठेसें ले कर चार हाथ प्रमाण नूमिका आगेसें देख कर चलनां, इसका नाम ईर्यासमिति है. इस रीतिसें जो साधु चले, तथा दूसरा कोइ काम करे, तिस काममें कदाचित् कोइ जीव मरजी जावे, तोनी साधुकूं पाप नहीं लगता, क्योंकि उसका उपयोग बहुत शुन है, यह प्रथम ईर्यासमिति. तथा पाप सहित नाषा, तथा कठोर नाषा, जैसें के तूं धूर्त है, कामी है, राक्षस है. चार्वाक प्रमुखके कहे शब्दोकों न कहे, जो शब्द, जगत्में निंदनिक होवे सो न बोले, परकूं सुखदाइ बोलने में थोडा बहुत प्रयोजनोंका साधनेवाला संदेह रहित ऐसा बचन बोले सो दूसरी नाषासमिति. तथा बेंतालीश दूषण रहित आहारादिक ग्रहण करे, सो तीसरी एषणासमिति, तथा आसन, संस्तारक, पीठ, फलग, वस्त्र, पात्र, दंमादिककों नेत्रोंसें देख कर उपयोग पूर्वक लेनां, अरु रखनां, करनां, सो चौथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रश्रवण, थूक, नाकका श्लेष्म, शरीरमल वस्त्र, अन्न, पानी, जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकूं जीव रहित नूमिकामें स्थापन करनां, सो पांचमी परिस्थापना समिति, यह पांच समिति कही.

अथ बार नावना लिखते हैं. प्रथम अनित्यनावना, दूसरी अशरण नावना, तीसरी संसारनावना, चौथी एकत्वनावना, पांचमी अन्यत्वनावना, बठी अशुचित्वनावना, सातमी आश्रवनावना, आठमी संवरनावना, नवमी निर्ज्जरानावना, दशमी लोकस्वनावनावना, अग्यारमी बोधिडुर्लनत्व नावना, बारमी धर्मका कथन करने वाला, अर्हन् है. यह बारा नावना जिस तरेसें नावने योग्य रात दिनमें है, तैसें अन्यास करनां, इन बारां नावनायोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं,

१ अनित्यनावना. सो जिनका वज्रकी तरें सार अरु कठिन शरीर था, वोनी अनित्य रूप राक्षसेने नक्षण कर लीये, तो फेर केलेके गर्नकी तरें निःसार जो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप राक्षससें कैसें बचेंगे? तथा लोक, बिजलीकी तरें आनंदित हो कर, विषय सुखका

दूधकी तरें स्वाद लेते हैं, परंतु लाठीकी मारकूं नहीं देखते हैं, भावार्थः- विषयसुख भोग कर आनंद तो मानते है, परंतु जन्मांतरमें नरकपतन रूप संकटसें नहीं मरते है, तथा जीवोंका शरीर तो पाणीके बुल बुलेकी तरें है, अरु जीवोंका जो जीवित है, सो ध्वजाकी तरें चंचल है, तथा लावण्य, स्त्री, परिवार, आंखकी पापण, (भांफण) की तरें चंचल है, अरु यौवन जो है, सो हाथीके कानकी तरें चंचल है, तथा स्वामीपणा जो है. सो स्वप्नश्रेणीकी तरें है, अरु लक्ष्मी जो है सो चपला (बीजली) की तरें चपल है, इसी तरें सर्व पदार्थोंकूं अनित्य पणा विचारता प्यारा पुत्रादिकभी मर जाये, तोभी अपणे मनमें शोच न करे, तथा जो मूर्ख जीव सर्व भावकूं नित्य माने है, वो जीर्ण पत्रोकी झोंपडीके भंग होनेसें रात दिन रुदन करता है; तिस वास्ते तृष्णाका नाश करकें ममत्व रहित शुद्ध बुद्धि वाला जीव, अनित्य भावना भावे ॥ इति प्रथम भावना ॥ १ ॥

२ दूसरी असरण भावनाका स्वरूप कहते हैं. पिता, माता, पुत्र, भार्या, प्रमुखके आगें बहुत आधि व्याधिके समूह रूप शृंखलामें बंधा हुये रुदन करते हुयेकूं कर्मरूप योद्धानें यमके (कालके) मुखमें प्रक्षेप करता थकां बडा दुःख है, जो लोक शरण रहित अनाथ है, वे क्या करेंगे? तथा नाना प्रकारके शास्त्र विषयोंकूं जो जानते हैं, तथा नाना प्रकारके मंत्र यंत्रोंकी क्रिया जो जानते है. तथा जो ज्योतिषविद्याकूं जानते हैं, तथा जो नाना प्रकारकी औषधि, रसायन प्रमुख वैद्यक क्रियाओंमें कुशल हैं, ए सर्व विद्यावानोंकी क्रिया कालके आगें कुछभी करनेकूं समर्थ नहीं है, तथा नाना प्रकारके शस्त्रों वाले उद्भटयोद्धोंओंकी सेना करकें परिवेष्टितभी है, नाना प्रकारके मदझर हाथीयोंकी वाडभी है. असे इंद्र, वासुदेव, चक्रवर्त्ती सरीखे बलवान्भी कालके घरमे खैंचे हुये चले जाते हैं. बडा दुःख है कि जो प्राणियोंकूं कोइभी त्राण नहीं. तथा जो मेरुका दंम अरु पृथ्वीका छत्र करनेकूं समर्थ थें, अरु थोडाभी जिनकूं क्लेश नहीं था, असें अनंतबली तीर्थंकरभी लोकोंकूं कालसें बचानेकूं समर्थ नहीं, तो फेर दूसरा कौनसा समर्थ है? स्त्री, मित्र, पुत्रादिकोके स्नेहरूप भूतके दूर करणे वास्ते शुद्धमति जीव अशरण भावना भावे. ए दूसरी अशरण भावना.

३ तीसरी संसार भावना कहते हैं. बुद्धिमान् तथा बुद्धि रहित, सुखी,

दुःखी, रूपवान तथा कुरूपवान, स्वामी तथा दास, प्यारा तथा वैरी, राजा तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक, इत्यादिक अनेक प्रकारके कर्मोंके वशसें सांग धार कर, इस संसार रूप अखाडेमें यह जीव नाटक करता है, तथा अनेक पाप बांध करकें महारंन, मांस नक्षण, मदिरापानादिक कारणों करकें, महा अंधकार जहां कुछ नहीं दीखता, ऐसी नरकनूमिकामें जा करकें पडता है, तिहां अंग छेदन, अग्निमें बलनादि क्लेशरूप महा दुःख जो जीवकूं होते हैं, उन दुःखोंकूं केवलीनी कथन नहीं कर सक्ता. यह प्रथम नरकगति कही. तथा छल, जूवादिक कारणोंसें प्राणी तिर्यंच गतिमें सिंह, बाघ, हाथी, मृग, बैल, बकरे प्रमुखके शरीर धारण करता है. अरु तिस तिर्यंच गतिमें क्षुधा, तृषा, वध, बंधन, ताडन, रोग, हल प्रमुखमें वहनां. इत्यादिक दुःख सदा जो जीव सहता है, वो दुःख कौन कहनेकूं समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यग्गति कही.

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी, गमन करनेमें एक समान निःशुकता वर्त्तन है, तहां जो अनार्य मनुष्य हैं, वोतो निरंतर जीवघात, मांस नक्षण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख कारणों करकें बडा नारी पापकर्म महा दुःखोंका देने वाला उत्पन्न करते है, तथा आर्यदेशमेंनी क्षत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो हैं, वेनी अज्ञान, दरिद्र, कष्ट, दौर्नाग्य, रोगादिक करकें पीडत हैं. दूसरोंका काम करणां, माननंग, अपमान प्रमुख अनेक दुःख निरंतर नोग रहे हैं, तथा अग्निवत् रक्त रंग है जिनका ऐसीयों सूइयों एक एक रोममें एकेक सूइ किसी जुवान पुरुषके एक कालमें चोनेसें जैसा उसकूं दुःख होवे तिस दुःखमें आठ गुणा दुःख जीव स्त्रीके गर्नमें जब रहता है तब पाता है, इस दुःखसें अनंत गुणां दुःख जन्म समय होते है, तथा बाल अवस्थामें मूत्र, पुरीष, धूलिमें लोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्‌की निंदा, यौवनमें धन अर्जन करनां, इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका संयोग, अरु वृद्ध अवस्थामें शरीरका कंपनां, नेत्रोंका बलहीन हो जानां, श्वास, खांसी प्रमुख करकें महा दुःखी होनां तोवो कौनसी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइनी नहीं यह मनुष्यगति कही. तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसें जो जीव देवता होता है, सोनी शोक, विषाद, मत्सर, नय, थोडी ऋद्धि करकें ईर्ष्या, काम, मद,

क्षुधा प्रमुख करकें पीडित हो कर,आपणां आयु दीनमन हो कर पूर्ण करते हैं. यह देवगति कही. इस तरेसें मोक्षाभिलाषी पुरुष तीसरी संसार भावना भावे.

४ चोथी एकत्व भावना कहते हैं. एकलाही जीव उत्पन्न होता है, अरु एकलाही मृत होता है, एकलाही कर्म करता है, अरु एकलाही तिनका फल भोगता है, तथा जो जीवने बहुत कष्ट करकें धन उपार्ज्या है, सो धन, स्त्री, मित्र, पुत्र, भाइ प्रमुख खा जावेंगे अरु जो पाप कर्म उपार्ज्या है, उसका फल तो करने वाला जीव एकलाही नरक, तिर्यंच गतिमें जाकर भोगता है, देखो यह कैसा आश्चर्य है! तथा यह जो जीव इस देहके वास्ते रात दिन फिरता है, अरु दीनपणा अवलंबन करता है, धर्मसें भ्रष्ट होता है, अपणे हितकूं ठगाता है, न्यायसें दूर होता है, सो देह इस आत्माके साथ एक पग तकभी परभवमें न चलेगी, तो फेर यह देह क्या करेगी? क्या साहाय्य देगी? अरु स्वजन जो हैं, सो अपने स्वार्थमें तत्पर हैं, तेरा वास्तवमें कोइभी नहीं. इस वास्ते हे बुद्धिमान्! तूं अपने हितके वास्ते धर्म करनेमें प्रयत्न कर. इस तरेसें चोथी एकत्व भावना भावे.

५ पांचमी अन्यत्वभावना कहते हैं, जीव इस देहकूं छोड कर परलोककूं जाता है, इस वास्ते इस शरीरसें जीव भिन्न है, तो फिर नाना प्रकारका सुगंधि लेपन करनां व्यर्थ है, इस वास्ते इस शरीरकूं कोइ दंभादिक करकें मारे तो समता रस पीना चाहियें क्रोध न करनां, जो पुरुष अन्यत्वभावना भावे, तिसकूं शरीर, धन, पुत्रादिकके वियोग होनेसेंभी शोक नहीं होता है. यह पांचमी अन्यत्व भावना कही.

६ छठी अशुचि भावना लिखते हैं. जैसें लूणकी खानमें जो पदार्थ पडता है वो सर्व लूण हो जाता है, तैसेही इस कायामें जो कुछ आहार पडता है सो सर्व मलरूप हो जाता है, ऐसी यह काया अशुचि है, तथा यह काया लोहि, अरु शुक्र इन दोनोके मिलनेसें गर्भ उत्पन्न होता है, जरा करकें वेष्टित होता है, जो कुछ माता खाती है, उसीके रससें वो गर्भ, वृद्धिकूं प्राप्त होता है, अरु स्थिल धातुयों करी पूर्ण है, ऐसी देहकूं कौन बुद्धिमान् शुचि मानता है? तथा जो सुस्वाद, शुभ गंध वाले मोदक, दहीं, दूध, इक्षुरस, शालि, उदन, द्राक्ष, पापड, अमृता, घेउर, आंब प्रमुख खाता है, सो तत्काल मलरूप हो जाता है, ऐसी अशुचि कायाकूं

महा मोहांध पुरुष, शुचि माने हैं. तथा पानीके सौ (१००) घडोंसें स्नान करकें सुगंधि, पुष्प, कस्तूरि प्रमुख द्रव्यों करकें बाहिरली त्वचा तो कितनेक कालतांइ मुग्धजीव शुचि सुगंधित करते हैं, परंतु विष्टेका कोठ मध्य नागमें कैसें शुचि होवे ? तथा बडे हर्ष वृद्धिवाले द्रव्य करकें वासित है, दिशा, तथा चंदन, कस्तूरी, कपूर, अगरु, कुंकुम प्रमुख वस्तुका शरीरके साथ जब संबंध होता है, तब ए पूर्वोक्त सर्व वस्तु दुर्गंध रूप क्षण मात्रमें हो जाती है, फेर इस कायाकूं कौन बुद्धिमान् शुचि मानता है ? असे शरीरकी अशुचिरूपता बिचार करकें बुद्धिमान् पुरुष, इस शरीरकी ममत्व न करे. यह छठी अशुचि नावना कही.

७ सातमी आश्रवनावना कहते है. मन, वचन, औ कायाके योग करकें शुनाशुन कर्म जो जीव ग्रहण करते हैं, तिसका नाम आश्रव, जिनेश्वर देव कहते हैं. सर्व जीवों विषे मैत्र नावना, गुणाधिक जीवमें प्रमोद नावना, अविनीत शिष्यादिकमें मध्यस्थ नावना, दुःखी जीवोंमें कारुण्यनावना. इन चारो नावनाओं करकें जिस पुरुषका अंतःकरण निरंतर वासित होवे, वो पुण्यवान् जीव, बेंतालीश प्रकारका पुण्य उपार्ज्जन करता है. तथा रौद्रध्यान. आर्त्तध्यान, पांच प्रकारका मिथ्यात्व, शोल प्रकारकी कषाय, पांच प्रकारका विषय, इनो करकें जिनोका मन वासित है, वे जीव, ब्याशी प्रकारका अशुन कर्म उपार्जन करते हैं, तथा सर्वज्ञ अर्हंत नगवंत, गुरु, सिद्धांत द्वादशांग, चार प्रकारका संघ, इन सर्वका जो गुणानुवाद कीर्त्तन करता है, अरु सत्य वचन हितकारी बोलता है, वे जीव, शुनकर्म उपार्ज्जन करते हैं. तथा श्रीसंघ,गुरु सर्वज्ञ, धर्म, अरु धर्म्मी इन सबके जो अवर्णवाद बोले, जूठे मतका, वा कपोल कल्पित मतका जो उपदेश करे, वो जीव अशुन कर्म उपार्ज्जन करता है. तथा जो पुरुष वीतराग देवकी पुष्पादिकें करी पूजा करे तथा साधुकी नक्ति, विश्रामण प्रमुख करे, तथा पापसें काया गुप्त करे. वो जीव, शुन कर्म उपार्जन करता है. तथा जो, जीव, मांसनक्षण, सुरापान, जीवघात, चोरी, जूआ, परस्त्रीगमनादिक करे, वो अशुन कर्म उपार्ज्जन करता है. ए अनुक्रमसें मन, वचन, काया करकें शुनाशुन आश्रव उपार्ज्जन करता है, इस प्रकारसें यह आश्रव नावना जो जीव नावे है, सो अनर्थ परंपराकूं त्याग देता है, अरु महानंदस्व

रूप, दुःख दावानलकूं मेघसमान ऐसी शर्मावलि मोक्षकी देने हारी अंगीकार करता है. इस तरेसें सातमी आश्रवनावना नावे.

८ आठमी संवरजावना कहते है, सो आश्रवोंका जो निरोध करनां, तिसकूं संवर कहते हैं, सो संबर दो प्रकारका होता है, एक देशसंवर, दूसरा सर्व संवर. उसमें सर्व करिकें संवर तो अयोगी केवलीमें होता है, अरु जो देशसें संवर है. सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने वालेमें होता है. तथा वली संवर दो प्रकारका है, एक द्रव्यसंवर, दूसरा नावसंवर. उसमें जो कर्मपुजल आश्रव करकें जीव ग्रहण करता है, तिनका जो देशसें वा सर्वसें छेदन करनां, सो द्रव्यसंवर अरु जो नव हेतु क्रियाका त्याग, सो नावसंवर. मिथ्यात्व कषाय प्रमुख आश्रवोंकों जो बुद्धिमान् उपाय करकें निरोध करे, अरु आर्त्त, रौद्र ध्यान जो बुद्धिमान वर्ज्जे, धर्मध्यान शुक्लध्यान ध्यावे, क्रोधकूं क्षमा करकें जीते, मानकूं मृडुनाव करकें जीते, मायाकूं सरलता करकें जीते, लोनकूं संतोष करकें जीते, इंद्रियोंके विषय इष्टानिष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसें जीते, इस प्रकारसें जो बुद्धिमान् संबरजावना नावे, तो स्वर्ग मोक्षरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीनूत हो जाती है.

९ नवमी निर्ज्जरा नावना लिखते हैं. संसारकी हेतुनूत जो कर्मकी संतति है, तिसकी अतिशय करकें जो हानी करे, तिसका नाम निर्ज्जरा है. सो निर्ज्जरा दो प्रकारकी है. एक सकाम निर्ज्जरा, दूसरी अकाम निर्ज्जरा, इन दोनोमेंसूं जो सकाम निर्ज्जरा है, सो उपशांति चित्तवाले साधुकूं होती है, अरु अकामनिर्ज्जरा, शेष जीवोंकूं होती है. शेष जीवोंकूं जो अकाम निर्ज्जरा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायमें नी कर्मका पाक होता है, जैसें आंबका फल स्वयमेवही वृक्षकी मालीमें लगा हूवाही पक जाता है, अरु कोड्वादिक पलाल गर्त्ताक्षेप करनेमेंनी पक्क हो जाता है, ऐसेही निर्ज्जरानी दो प्रकारकी है. हमारे कर्मोंकी निर्ज्जरा होवे ऐसे आशय वाले पुरुष जो तप प्रमुख करते हैं, उनोंके सकाम निर्ज्जरा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकूं विशेष ज्ञान तो नहीं परंतु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, छेदन, नेदनादिक करकें सदा जो वो कष्ट नोगनेसें कर्म निर्ज्जरा होती है, उसका नाम अकाम निर्ज्जरा है, ऐसें तप प्रमुख करकें जो निर्ज्जराकी वृद्धि करे, सो नवमी निर्ज्जरा नावना जाननी

१० दशमी लोकस्वनाव नावना कहते हैं. यह पृथिवी, चंड, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, स्वर्ग प्रमुख सर्वकूं मिलाके एक लोक कहनेमें आता है, तिस संपूर्ण लोकका आकार जैनमतके सिद्धांतमें ऐसें लिखा है. जैसें कोइ पुरुष जामा पहिरकें कमरमें दोनो हाथ लगा कर खडा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसाही लोकका आकार है, षट्द्रव्य करकें पूर्ण है, उत्पत्ति, स्थिति, अरु व्यय, इन तीनों स्वरूपों करी संयुक्त है, अनादि अनंत है, किसीका रचा हूआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक, इन तीन स्वरूपोमें बढा हूया है जो जीवपुद्गल, सब इसीके अंदर है, बाहिर नहीं. लोकसें बाहिर तो केवल एक आकाशही है, वो आकाशनी अनंत है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोमें अलोक नाम करके लिखा है, अधोलोकमें न्यारी न्यारी हेठ उपरि सात पृथिवी हैं, उनमें नरकवासी जीव रहते हैं, अरु किसी जगे नवनपति व्यंतरनी रहते हैं, तिरछे लोकमें मनुष्य अरु तिर्यंच और व्यंतर रहते हैं, ऊर्ध्व लोकमें देवता रहते हैं, विशेष करकें जो लोकस्वरूप देखनां होवे, तो लोकनाडी द्वात्रिंशतिकासें तथा लोकप्रकाश ग्रंथसें जान लेनां. इसतरें लोकके स्वरूपका जो चिंतन करनां है, सो दशमी लोकस्वनावनावना है.

११ अगीयारमी बोधिदुर्लनत्व नावना कहते हैं, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, बनस्पति, इनमें अपणे करे हूये क्लिष्ट कर्मों करकें जीव भ्रमण करता है, इस नयानक संसारमें अनंतानंत पुद्गलपरावर्त्तन करता हूवा यह जीव अकाम निर्ज्जरा करकें, अरु पुण्य उपार्ज्जन करकें, बेंद्रिय, त्रींद्रिय, चउरिंद्रिय, पंचेंद्रिय रूप त्रस पणा पावै है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, नला कुल, रोग रहित शरीर, संपदा, बडा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्त्वातत्वके विवेचन करने वाली, बोधबीजके बोने वाली, कर्मक्षय करकें मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी श्री सर्वज्ञ अर्हंतकी देशना मिलनी बहुत दुर्लन है, जे कर जीव एक वारनी सम्यक्स्वरूप बोधि पालता, तो इतने काल तांइ कदापि संसारमें पर्यटन न करता, जो अतीत कालमें सिद्ध हूये, जो वर्त्तमानमें सिद्ध होते है, अरु जो अनागत कालमें सिद्ध होवेंगे, वें सर्व बोधिहीके माहात्म्य है, इस वास्ते नव्य जीवकूं बोधिकी प्राप्तिमें यत्न करनां चाहियें; क्योंकि कि

तनेक जीवोंने अनंत वार द्रव्य चारित्र पाया है, परंतु बोधिके बिना सर्व निष्फल हूवा. यह अगीआरमी भावना कही.

१२ बारमी धर्म कथाके कथन करनेवाला अर्हन् है यह भावना लिखते हैं. जो पुरुष परहित करनेमें उद्यत है, अरु वीतराग है, वो किसी ज गामेंभी जूठ न बोलेगा. ईस वास्ते उसके कहे हूये धर्ममें सत्यता है, अैसा तो लोकालोककूं केवलज्ञान करकें प्रकाश करनहार, अर्हंतही हो सक्ता है, दूसरा नहीं. क्षांत्यादि दश प्रकारका धर्मकूं जिनेश्वर कहते हूये उस धर्म करकें जीव, संसार समुद्रमें डूबता नहीं. जो अर्हंतकी वाणी है, सो पूर्वापर अविरुद्ध है, अरु तिन बचनोंमें हिंसाका उपदेश नहीं. बचन जो कहते है, सो निर्ज्जरा वास्ते. दूसरेका उपदेश बिना वि चित्र तरेंसें कह जाते है, तथा कुतीर्थीयोंके जो बचन है सो सर्व सन्न तिके वेरी हैं, क्यों के यज्ञादिकोंमें पशुवध रूप हिंसा करकें क लंकित है, पूर्वापरविरोधी है, निरर्थक बचनभी बहुत है. इस वास्ते जो कुतीर्थी धर्म कहते हैं, वोभी धर्माभास है, धर्म नहीं. ईस हेतुसें तिनका बचन किस तरें प्रमाण हो सक्ता है? अरु जो जो कुतीर्थीयोंके शास्त्रोंमें कहीं कहीं दया सत्यादिकोंका कथन है, सोभी कहनेही मात्र है, परंतु तत्त्वमें वोभी कुछ नहीं है. क्यों के यथार्थ ईनका स्वरूप वे जानते नहीं हैं, अरु यथार्थ पालते नहीं है. प्रथम तो उन शास्त्रोंके जो उपदेशक हैं, वेही सर्व कामाग्निमें प्रज्वलित थे, यह बात सर्व सुज्ञ जनोंकों वि ज्ञात है, ईस वास्ते अर्हंत भगवंतही सत्यार्थके उपदेशक हैं, तथा बडे मदझर हाथीयोंकी घटा संयुक्त जो राज्यका पावनां, औ सर्व जनोंकों आ नंद देने वाली संपदाका पावनां, तथा जो चंद्रमाकी तरें निर्मल गुणका समूह पावनां, अरु जो उत्कृष्ट सौभाग्यका विस्तार पावनां, यह सर्व धर्म हीका प्रभाव है, तथा समुद्र जो पृथिवीकूं अपणी कल्लोलां करी वहाता नहीं है, तथा मेघ जो सर्व पृथिवीकूं रेल पेल नहीं करता, अरु चंद्रमा, सूर्य, जो उदय होते हैं, सर्व अंधकारका विछेद करते हैं, सो सर्व जय वंत धर्महीका प्रभाव है. जिसका भाई नहीं, जिसका मित्र नहीं, जिस रोगीका कोई वैद्य नहीं, जिसके पास धन नहीं, जिसका कोई नाथ नहीं, जिसमें गुण नहीं, ईन सर्वेका भाई, मित्र, वैद्य, धन, नाथ, गुणोंका निधान,

धर्म है. तथा यह जो अर्हंतका कथन कीया हूया धर्म है, सो महापुण्य है, ऐसें जो नव्य जीव मनमें ध्यावे, सो धर्ममें दृढतर होवे. एकही निर्मल धर्म नावनाकूं निरंतर जो जीव नावे, सो नव्य, अशेष पापकर्म नाश करकें अनेक जीवोंकूं उपदेश द्वारा सुखी करकें, परम पदकूं प्राप्त होता है, तो फेर जो बारांही नावना नावे, तिसके परमपद प्राप्ति होनेमें क्या आश्चर्य है? यह बारां नावना समाप्ति हागइ हैं ॥ १२ ॥

अथ बारां प्रतिमा लिखते हैं. एक माससें ले कर सात मास पर्यंत एक एक मासकी वृद्धि जान लेनी, ए सात प्रतिमा होती हैं. जैसें प्रथम एक मासकी, दूसरी दो मासकी, ऐसेंही एक एक मास वृद्धि कर सात मास पर्यंत सात प्रतिमा होती हैं, औ आठमी सात दिन रातकी, नवमी सात दिन रातकी, दशमी सात दिन रातकी, अग्यारमी एक दिन रातकी, अरु बारमी प्रतिमा एक रात्रि प्रमाण जाननी एवं बारा प्रतिमा. अनिग्रह, अरु प्रतिज्ञा, ए एकही नाम है.

अथ जो साधु, इन बारां प्रतिमाकूं अंगीकार कर सक्ता है, तिसका स्वरूप लिखते हैं. "संहनधृतियुक्तः" तहां जिसका संहननवज्रऋषननाराच होवे, सो परीषह सहनेमें अत्यंत समर्थ होता है, "धृति" सो चित्तका स्वस्थपणा होवे, तो रति, अरति करकें पीडित नहीं होता है, "महासत्त्वः" महासात्त्विक जो होवे, सो अनुकूल, प्रतिकूल, उपसर्ग सहनेमें विषादकों नहीं धरता है, "नावितात्मा" सद्भावना करकें वासित अंतःकरण होवे, तिसकी नावना पांच हैं तिनका विस्तार, व्यवहार नाष्यटीकासें जानना. ए नावना कैसें नावे? जैसें आगममें हैं, तथा जैसें गुरु आचार्य आज्ञा देवे, जे कर गुरुही प्रतिमा अंगीकार करे, तदा नवीन आचार्य स्थापन करकें उसकी आज्ञासें, तथा गछकी आज्ञा ले कर करे, तथा प्रथम आपणे गछमेंही रह कर प्रतिमा अंगीकार करणेका प्रतिकर्म करे, सो प्रतिकर्म यह हैः—

मासादिक सात जो प्रतिमा हैं, तिनका प्रतिकर्मनी तितनाही है, वर्षाकालमें ए प्रतिमा नहिं अंगीकार करी जाती है, अरु परिकर्मनी वर्षाकालमें नहीं करणां तथा आदिकी दो प्रतिमा एक वर्षमें होती हैं, तीसरी एक वर्षमें, चौथी एक वर्षमें, शेष पांचमी, छठी, सातमी, इन तीनों प्र

तिमाओंका एक वर्षमें परिकर्म एक वर्षमें प्रतिमा, ऐसें नव वर्षमें आदिकी सात प्रतिमा समाप्त करिये हैं.

अथ जो यह प्रतिमा अंगीकार करता है, उसकूं कितना ज्ञान होता है? यावत् किंचित् न्यून दश पूर्व होता है, क्युंकि जिसकूं पूर्ण दश पूर्वकी विद्या होती है. उसका वचन अमोघ होता है. इस वास्ते उसकूं धर्मोपदेश देना चाहियें. उसके उपदेशसें बहुत भव्योंकूं उपकार अरु तीर्थकी वृद्धि होनेसें प्रतिमादि कल्प करना चाहियें; अरु प्रतिमा अंगीकार करने वालोंकों जघन्य ज्ञान नवमे पूर्वकी तीसरी वस्तु, आचार वस्तु जिसका नाम हैं, तहां तांइ होवे. इतना ज्ञान सूत्र तथा अर्थ, दोनोही पूरे होवें. क्योंकि निरतिशय ज्ञानी होनेसें कालादिककों नहीं जान सकेगा, तथा "व्युत्सृष्ट" शरीरकी सार संभाल त्यागी है, देवतादिकका उपसर्ग सहे, जिनकल्पीकी तरें उपसर्ग सहे, तथा एषणापिंमग्रहण प्रकार, भिक्षाग्रहण विधि, गछसें बाहिर रहे. इत्यादि शेष वर्णन देखना होवे तो प्रवचनसारोद्धारकी बृहद्वृत्ति देख लेनी. ए बारां प्रतिमा कही ॥ १२ ॥

अथेंद्रियनिरोध कहते है. "स्पर्शनं रसना घ्राणं चक्षुः श्रोत्रं चेति." यह पांच इंद्रिय. अरु स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, ए पांच, पूर्वोक्त पांच इंद्रियोंके यथाक्रम विषय हैं, इन पांचों विषयोंका निरोध करनां, क्यों के जो इंद्रिय वशमें न होंगी. तो बडी अनर्थकारी होगी, अरु क्लेश सागरमें गेरेंगी॥ यदन्यधायि ॥ आर्या वृत्तं ॥ सक्तः शब्दे हरिणः, स्पर्शे नागो रसे च वारिचरः ॥ कृपणपतंगो रूपे, भुजगो गंधेन च विनष्टः ॥१॥ पंचसु सक्ताः पंच, विनष्टा यत्र गृहीतपरमार्थाः ॥ एकः पंचसु सक्तः, प्रयाति भस्मां ततां मूढः ॥ २ ॥ तुरंगैरिव तरतरलै, र्दुर्दतैरिंद्रियैः समाकृष्य ॥ उन्मार्गे नीयंते, तमोघने दुःखदे जीवः ॥ ३ ॥ अनुष्टुब्वृत्तं ॥ इंद्रियाणां जये तस्मा, यत्नः कार्यः सुबुद्धिभिः ॥ तज्जयो येन भविनां, परत्रे हचशर्मणे ॥४॥

अथ प्रतिलेखना जैन साधुओमें प्रसिद्ध हैं, उस वास्ते नहीं लिखी.

अथ तीन गुप्ति लिखते हैं. मनोगुप्ति, बचनगुप्ति, कायागुप्ति. ए तीन गुप्ति है. इनका स्वरूप ऐसे है कि अशुभ मन, बचन, कायाका निरोध करणां, अरु अछी मन, बचन, कायाकी प्रवृत्ति करणी. अभिप्राय यह हैकि, मनोगुप्ति तीन प्रकारकी हैं, आर्त्त, रौद्र ध्यानानुबंधी, कल्पनाका वियोग, ए प्रथम म

नोगुप्ति. शास्त्रानुसारी, परलोकके साधनेवाली धर्मध्यानानुबंधवाली, माध्यस्थ परिणति करणी, ए दूसरी मनोगुप्ति. संपूर्ण शुभाशुभ मनोवृत्तिका निरोध, अयोगी गुणस्थान अवस्थामें स्वात्मारामरूपता, ए तीसरी मनो गुप्ति.

बचनगुप्ति दो प्रकारकी है. उसमें मुख, नेत्र, भ्रूविकार, अंगुलीमोटन, ऊंचा होना, खांसी करणी, हुंकारा करणां, पत्थर फेंकणा, इन पूर्वोक्त हेतुवोंसें अपणा सूचन कराणा वर्ज्जनां, ए प्रथम बचनगुप्ति. क्यों के जब चेष्टाद्वारा सर्व कुछ सूचन करा दीया, तब मौन रहनां व्यर्थ है. बोलनां, दूसरेके प्रश्नका उत्तर देनां, सो लोकसें अरु आगमसें अविरोध होवे, और वस्त्रादिकसें मुखका यत्न करकें बोलनां, ए दूसरी बचनगुप्ति, इन दोनों भेदों करकें बचनका निरोध अरु सम्यक् भाषण रूप बचनगुप्ति जाननी.

कायागुप्ति दो प्रकारसें है. एक चेष्टाका निःषेध, दूसरी आगमानुसारें चेष्टाका नियम करणां. तहां देवता मनुष्यादि उपसर्गोंमें क्षुधा तृषादि परीसहोंके संभव होयां, जो कायोत्सर्ग करणादि करकें कायाकूं निश्चल करणां, तथा अयोगी अवस्थामें जो सर्वथा कायाकी चेष्टाका निरोध करणां, ए प्रथम कायगुप्ति. तथा गुरु प्रछन्न शरीर संस्तारक, भूम्यादि प्रतिलेखन, प्रमार्जनादि, जैसें शास्त्रमें है, तिसी तरें क्रियाकलाप पूर्वक शयनादिक साधुकूं करणी, शयनासन लेनां, रखनां, इन सर्व कृत्योंमें स्वछंद चेष्टाका त्याग देनां, मर्यादा सहित कायाकी चेष्टा करणी. ए दूसरी कायगुप्ति.

अथ अभिग्रह प्रतिज्ञा लिखते हैं. सो अभिग्रह द्रव्य, क्षेत्र, काल अरु भाव करि चार प्रकारके हैं, इसका विस्तार प्रवचनसारोद्धार वृत्तिमें है, ए करणसित्तरीको गणती कहते है. यद्यपि आहारादिकके बेंतालीस दूषण हैं, तथापि पिंड, शय्या, वस्त्र, पात्र, ए चारही वस्तु सदोष नहीं ग्रहण करणी. इस वास्ते संख्यामें ए चारही दूषण लिये हैं. तथा पांच समिति, बारा भावना, बारा प्रतिमा, पांच इंद्रियनिरोध, पच्चीश प्रतिलेखना, तीन गुप्ति, चार अभिग्रह, ए सर्व एकठे करेसें सित्तरे, करण सित्तरीके भेद हैं.

प्रश्नः—चरण सित्तरी औ करण सित्तरी, ए दोनोमें क्या विशेष है?

उत्तरः—जो नित्य करनां सो चरण, अरु जो प्रयोजन हुया तो कर लेनां, औ प्रयोजन नहीं होवे तदा न करणां, सो करण यह इनका भेद है. ए चरण सित्तरी औ करण सित्तरीके भेद समाप्ति हुये हैं.

इत्यादि जैनमतके गुरु तत्त्वके स्वरूप लिखनेमें लखों श्लोक लिखे जायगे. तोजी संपूर्ण जैनमतके गुरुका स्वरूप नहीं जाना जायगा, इस वास्ते थोडाहीसा स्वरूप लिखा है. जेकर विशेष जाननेकी इछा होवे, तदा श्रीउंघनिर्युक्ति, श्रीआचारांग, दशवैकालिक, बृहत्कल्पजाष्य वृत्ति, पंचकल्प चूर्णी, जितकल्पवृत्ति, महाकल्पसूत्र, कल्पसूत्र, निशीथजाष्यचूर्णी, महा निशीथसूत्र, इत्यादि पदविजाग समाचारीके शास्त्र देख लेने.

प्रश्नः—जैसा जैनमतके शास्त्रोमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्तिवाला कोइजी जैनका साधु देखनेमें नहीं आता है, तो फेर जैनमतके साधुओंकों इस कालमें गुरु क्युं कर माननां चाहियें?

उत्तरः—तुमने किसी गीतार्थकी संगत नहीं करी होगी, क्योंकि जे कर जैनमतके चरण करणानुयोगके शास्त्र पढे होते, अथवा किसि गीतार्थ गुरुके मुखारविंदसें वचन रूप अमृत पान करा होता, तो पूर्वोक्त संशय रूप रोगकी कसमसी कदापि न उत्पन्न होती? क्योंकि जैनमतमें ७ प्रकारके निर्ग्रंथ कहे हैं. इस कालमें जो जैनके साधु हैं, वे सर्व पूर्वोक्त ७ प्रकारमेंसें दो प्रकारके है. क्योंकि श्रीजगवती सूत्रके पच्चीशमें शतकके ७ठे उद्देशेमें लिखा है, कि पंचम कालमें दो तरेंके निर्ग्रंथ होगें, उनोंसें तीर्थ चलेगा. कषाय कुशील निर्ग्रंथ तो किसिमें परिणामापेक्षा होगा, मुख्य तो दोही रहेंगे. अरु जो जैन शास्त्रोमें गुरुकी वृत्ति लिखी है, सो प्रायः उत्सर्ग मार्गकी अपेक्षा है, और इस कालमें तो प्रायः अपवाद मार्गकी प्रवृत्ति है, सो उत्सर्गवृत्तिवाले मुनि इस कालमें क्योंकर हो जावे? कदाचित् होइ नहीं सक्के हैं. क्योंकि न तो वो संहननवज्रऋषजनाराच हैं, न मनोबल वैसा है, न जीवोंकें वैसी श्रद्धा है, न वैसा देश काल हैं, न धैर्य है, तो फेर इस कालके जीव वैसी उत्सर्ग वृत्ति कैसें कर सके?

प्रश्नः—जे कर वैसी वृत्ति इस कालमें नहीं तो उनकूं साधुजी काहेकूं कहनां चाहिये?

उत्तरः—यह तुमारा कहनां बहुत बे समजका है, क्यों के व्यवहारसूत्र जाष्यमें ऐसें लिखा है ॥ गाथा ॥ पोस्करिणी आयारे, आणयण ते गाय गीयछे ॥ आयरिय उएए, आहरण हुंति नायवा ॥ १ ॥ सछ परिस्सुत्रकाय, अहिगमो पिंम उत्तरिछाए ॥ रुस्के वसहे जूहे, जोहे सोहीय पु

स्करिणी ॥१॥ "दार गाहा दो" इन दोनो द्वार गाथाका व्याख्यान नाष्य कारने पंदरा नाष्यगाथा करकें कीया है, जे कर नाष्यगाथा देखनेकी इछा होवे, तो व्यवहारनाष्य देख लेनी, इहां तो उन पंदरां गाथाओंका अर्थ नाषामें लिख देता हुं, अर्थः—जैसीयों पूर्वकालमें सुगंधित फूलों वा लियों पुस्करिणीयों बावडीयों थी, वैसे फूलो वालीयों अब है नहीं, तोनी पुस्करिणीयों बावडीयों तो हैं; लोक इन सामान्य बावडीयोंसें अपना कार्य करते हैं ॥ १ ॥ तथा संपूर्ण आचारप्रकल्प, नवमे पूर्वमें था, उस नवमे पूर्वसें उद्धार करकें पूज्यपाद वैशाख गणिनें निशीथ रचा, तो क्या उस निशीथकूं आचारप्रकल्प न कहनां चाहियें ? ॥ २ ॥ पूर्वकालमें तालो द्घाटिनी, अवस्वापिनी आदिक विद्याके धारक चोर थे, औ इस कालमें वो विद्या तो नहीं है, तो फिर क्या चोरी करने वालोंकूं चोर न कहनां चा हियें ? ॥३॥ पूर्वकालमें तो चौदह पूर्वके पाठीकूं गीतार्थ कहते थे. तो इस कालमें जघन्य आचार प्रकल्प, निशीथ औ मध्यम आचार प्रकल्प बृहत्कल्पके पढे हूयेकूं इस कालमें क्या गीतार्थ न कहनां चाहियें ? ॥४॥ पूर्वकालमें श्रीआचारांगका शस्त्रप्रज्ञा अध्ययनके पढनेसें, छेदोपस्थापनीय चारित्रमें स्थापन करते थे, तो क्या अब दशवैकालिकके छ जीवनीय अ ध्ययनके पढनेसें न स्थापन करना चाहियें ? ॥ ५ ॥ दूसरे ब्रह्मचर्यके पां चमे उद्देशमें जो आमगंधी सूत्र है, उस सूत्रानुसार पूर्वे मुनि आहार ग्र हण करते थे, तो क्या अब पिंमैषणा अध्ययन अनुसारें न करना चाहि यें? ॥ ६ ॥ पूर्वे आचारांगके पीछे उत्तराध्ययन पढते थे, तो क्या अब द शवैकालिकके पीछे न पढना चाहियें ? ॥ ७ ॥ पूर्वे मत्तांगादिक दश प्रका रके वृक्ष थे, तो क्या अब अंबादिक वृक्ष न कहने चाहियें ? ॥ ८ ॥ पूर्वे बहुत गौवोंके समूहवाले नव गोपकूं ग्वाल कहते थे. तो क्या अब थोडी गौवों वालेकूं ग्वाल न कहनां चाहियें ? ॥ ९ ॥ पूर्वे सहस्र मल्ल योद्धे थे, तो अब क्या किसीकूं योद्धा न कहनां चाहियें ? ॥ १० ॥ पूर्वे छ मासी तपका प्रायश्चित्त था, तो क्या उसके बदले निवी प्रमुख प्राय श्चित्त न लेनां चाहियें ? ॥ ११ ॥ इसी तरें जो पूर्वकाल मुनियोंकी वृत्ति नहीं, तो क्या आचार्य वा साधु न कहनां चाहियें ? किंतु जरूरही साधु माननां चाहियें. तथा जीवानुशासन सूत्रकी वृत्तिमेंनी लिखा है कि पांच

मे कालमें साधु ऐसाजी होवे, तोजी संयमी कहनां चाहियें. तथा नि शीथमेंजी लिखा है ॥ जाष्य गाथा ॥ जा संजमया जीवे, सु ताव मूले गु णुत्तर गुणाय ॥ इत्तरियछेय संजम, नियंठवउ सा पडिसेवी ॥ १ ॥ इस गाथाकी चूर्णीकी जाषा लिखते हैं, छकायोंके जीवों विषे जब तांइ दयाके परिणाम है. तब तांइ बकुश निर्ग्रंथ औ प्रतिसेवना निर्ग्रंथ रहेंगे, इसवास्ते प्रवचन शून्य औ चारित्र रहित पंचमकाल कदापि न होवे गा, तथामूलोत्तरगुणोमें दूषण लगनेसें तत्काल चारित्र नष्टजी नहीं होता. मूलगुणजंगमें दो दृष्टांत है, उत्तरगुण जंगमें मंमपका दृष्टांत है, निश्चयनयमें एक व्रत जंग हूया सर्व व्रत जंग हो जाता है, परंतु व्यवहारनयके मतसें जो व्रत जंग होवे, सोइ जंग होवे. दूसरे नहीं. इस वास्ते बहुत अतिचारके लगनेसें संयम नहीं जाता, परंतु जो कुशील सेवे, अरु धन रखे, औ कच्चा सचित्त पानी पीवे, प्रवचन अनपेक्ष, वो साधु नहीं. जहां तांइ छेद प्रायश्चित्त लगे, तहां तांइ संयम सर्वथा नहीं जाता. तथा जो इस कालमें साधु न माने, सो मिथ्यादृष्टि है, क्यों कि स्थानां गसूत्रमें लिखा है, जो अतिचार बहुत लगते देखके औ आलोचना प्रा यश्चित्त यथार्थ कोइ लेता देता नहीं है, इस वास्ते साधु कोइ नहीं जो ऐसे कहे के वो चारित्र जेदिनी विकथाका करनेवाला है, तथा श्रीजगवती सू त्रके पच्चीशमे शतकके छठे उद्देशेकी संग्रहणीकार श्रीमदजयदेवसूरि, इन दोनो निर्ग्रंथोका जो स्वरूप है सो लिखते हैं, सो इहां जाषामें प्रगट लिखा जाता है ॥ गाथा ॥ बउसं सबलं कब्बर, मेगठंतमिह जस्स चारि त्तं ॥ अइयार पंकजावा, सो बउसो होइ निग्गंथो ॥ १ ॥ व्याख्याः—बकु श, शबल, कर्बुर, ए तीनो एकार्थ हैं एकही वस्तुकों कहते हैं, ऐसा है चारित्र जिसका, अतिचार रूपपंक होनेसें सो बकुशनामा निर्गंथ है, इस जारत वर्षमें इसकालमें बकुश औ कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ हैं, शेष तीनो तो व्यवछेद हो गये हैं ॥ तथा चोक्तं परम मुनिजिः ॥ "बकुश कुशी ला दो पुण, जातिछं तावहो हंति इति ॥" इसका अर्थ बकुश कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ जहां लग तीर्थ रहेगा तहां तक रहेंगे,

अब जो बकुश निर्ग्रंथ है, तिसके दो जेद हैं, सो कहते हैं. तहां जो वस्त्र पात्रादि उपकरणकी विजूषा करे सो उपकरण बकुश, ए प्रथम जेद

औ जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अवयवोंकी विभूषा करे, सो शरीरबकुश, ए दूसरा भेद जाननां. ए दोनों भेदोंके पांच भेद हैं ॥ गाथा ॥ उवगरणसरीरेसु, सो दुहा दुविहोवि होइ पंचविहो ॥ अभोग अणाभोग, असंवुड संवुडे सुहुमे ॥ १ ॥ अर्थः—इसमें दो पदोंका अर्थ तो उपर लिखा है, अगले दो पदोंका अर्थ लिखते हैं. साधुकूं यह करने योग्य नहीं, ऐसें जानताभी है, तोभी उस कामकों जो करे, सो प्रथम आभोग बकुश, और जो अजाण पणोंसें करे सो दूसरा अनाभोग बकुश. मूलगुण, उत्तर गुणोमें जो छिप कर छाना दोष लगावे, सो तीसरा संवृत बकुश, जो मूलगुण उत्तरगुणोंमें प्रगट दूषण लगावे, सो चौथा असंवृत बकुश. नेत्र, नासिका, मुखादिककी जो मल दूर करे, सो पांचमा सूक्ष्म बकुश जाननां.

अथ जो उपकरन बकुश है, तिसका स्वरूप लिखते हैं ॥गाथा॥ जो उवगरणे बउसो, सो धुवइअ पाउसे विवत्थइ ॥ इच्छइय लण्हुयाइं, किंचिविभूसाइ भुंजइय ॥ १ ॥ व्याख्याः—जो उपकरण बकुश है, सो प्रावृट् (पावस) ऋतु विनाभी जल क्षारसें वस्त्र धोता है, पावस ऋतुमें तो सर्व गच्छवासी साधुवोंकूं आज्ञा है; जो एक वार वर्षासें पहिले आपणें सर्व उपकरण जल क्षारसें धो लेवे, नहीं तो वर्षाऋतुमें मलके संसर्गसें निगोदादिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावेगी, औ यह जो बकुशनिर्ग्रंथ है. सो पावस ऋतु बिना अन्य ऋतुवोंमेंभी जल क्षारसें वस्त्रादिक धो लेता है. औ बकुश निर्ग्रंथ, सुंदर, सुकुमाल, वस्त्रभी वांछता है, और उपकरण विभूषा शोभाके वास्तेभी कबुक पहिरता है॥ गाथा ॥ तह पत्त दंडयाई, घठं मठं सिणेह कयतेय ॥ धारेइ विभूसाए, बहुं च पत्थेई उवगरणं ॥ १ ॥ व्याख्याः—तथा पात्र, दंड प्रमुख घोटेसें घोटकें सुकुमार करे, तथा घी. तेल प्रमुख करी चोपडके तेजवंत चमकदार करकें रक्खे, अरु विभूषाके वास्ते बहुत उपकरण रखने चाहे, एतावता रक्खे.

अथ शरीर बकुशका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ देह बउसो अकज्जे, करचरण नहाइयं विभूसेइ॥ दुविहोवि इमो इड्ढिं, इच्छइ परिवार पभिईय॥१ व्याख्याः—देहबकुश जो है, सो विना कारण हाथ, पग, नखादिककी विभूषा करे, जलादिसें धोवे, ऐसे उपकरण औ शरीर ए दोनो प्रकारका ब

कुश निर्ग्रंथ परिवार प्रमुखकी ऋद्धि वांछता है ॥ गाथा ॥ पंमिच्च तवाइ क यं, जसं च इच्छेइ तंमि तुस्सइय ॥ सुहसीलो नयवाढं, जयइ अहोरत्त किरियासु ॥ १ ॥ व्याख्याः—पंमितपणे करी तथा तपादि करकें यशकी इच्छा करे, तिस यशके हुवे थके बहुत खुशी माने. औ सुखशीलिया होवे, औ दिन रात्रिकी क्रिया समाचारीमें बहुत उद्यमीभी नहीं होवे ॥ गाथा ॥ परिवारो य असंजम, अविविक्तो होइ किंचि एयस्स ॥ घंसिय पाउ तिल्लाइ, मासणि कित्तरिय केसो ॥ १ ॥ व्याख्याः—इसका जो परिवार होवे, सो असंयमी कहते असंयम वाला होवे, वस्त्र पात्रादिकके मोहमें वस्त्र पात्रादिकमें दूर न जावे. पग, जोजावे आदिकसें औ तैलादिक चोपडके सुकुमार करे, औ शिर, दाढी, मूछके बाल. कतरणीसें कापे, (कतरे) एतावता लोचकी जगें उस तरें, वा कतरणीमें बाल दूर करे, परंतु लोच न करे ॥ गाथा ॥ तह देस सव्वछेयारि, देहिं सबलेहीं संजुउ बउसो ॥ मोहस्कयछ मष्ट्र,छिउय सुत्तंमि नणियं च ॥ १ ॥ व्याख्याः—तथा देशछेद सर्वछेद योग्य दोषों करी जिसका चारित्र कर्बुर है, परंतु मनमें उसके मोहक्षय करनेकी इछा है, एतावता मनमें संयम पालनेमें उत्साह है, परंतु पूर्ण संयम पाल नहीं सक्ता, इन पूर्वोक्त कृत्यों करी संयुक्त होवे, उसकूं बकुशनिर्ग्रंथ कहियें. औ सूत्रमेंभी कहा है, सो यह आगें लिखते हैं ॥ गाथा ॥ उवगरण देह चुस्का, रिद्धि रसगारवासिया निच्चं ॥ बहु सबल छेय जुत्ता, निग्गंथा बउसा नणिया ॥ १ ॥ आनोगो जाणंतो, करेइ दोसं अयाण मण नोगे ॥ मूलुत्तरेहि संवुम, विवरिय असंवुमो होइ ॥ २ ॥ अछि मुह मज्जमाणो, होइ अहा सुहमउ तहा बउसो ॥ सीलं चरणं जं जस्स. कुछियं सो इह कुसीलो ॥ ३ ॥ पडिसेवणा कसाए, डुहा कुसीलो डुहावि पंचविहो ॥ नाणे दंसण चरणे, तवेय अह सुहुमए चेव ॥ ४ ॥ इह नाणाइ कुसीलो, उवजीवं होइ नाण पनिईए ॥ अह सुहुमो पुण तुस्सई, एस तवस्सि संसए ॥ ५ ॥ इन पांचो गाथाओंकी व्याख्याः—उपकरण देह शुद्ध रखे, ऋद्धि, रश, साता, ए तीनो गारवमें नित्य आश्रित होवे, उपकरणोंसें अविविक्त रहे, परिवार जिसका छेद योग्य शबल चारित्र संयुक्त सो निर्ग्रंथ बकुश कहते है ॥१॥ साधुओंके यह करने योग्य नहीं, ऐसें जानताभी है, तोभी उस कामकूं करता है, सो प्रथम आभोग बकुश कहियें. अरु अनजानपणेसें अकृत करे, तिसकूं अ

नाजोग बकुश कहियें, ए दूसरा नेद. मूलोत्तर गुणों करी संयुक्त है, लोक ऐसें जानते हैं, परंतु गाना (गुप्त) दोष लगावे है, तिसकूं संवृत बकुश कहियें. ए तीसरा नेद. अरु जो प्रगट मूलोत्तर गुणमें दोष लगावे, तिसकूं असंवृत बकुश कहियें. ए चौथा नेद ॥ २ ॥ तथा जो आंख मुखादि मांजे, मलादि दूर करे, सो यथा सूक्ष्मबकुश कहियें. ए पांचमा नेद.

अथ कुशील निर्ग्रंथका स्वरूप लिखते हैं, शील कहियें चारित्र सो चारित्र जिसका कुत्सित है, सो कुशील निर्ग्रंथ, इसके दो नेद हैं ॥३॥ एक प्रतिसेवना कुशील, दूसरा कषायों करी कुशील, सो संज्वलनकी कषायों करकें जो कुशील सो कषाय कुशील, ए दोनोही नेद पांच प्रकारसें हैं, सो कहते हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूक्ष्मतः ॥४॥ इहां ज्ञानादि कुशील तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अरु तप, यह चारो आजीविकाके वास्ते करे, सो इन चारोंका प्रतिसेवना कुशील तथा एह तपस्वी है, इत्यादि प्रशंसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा यथासूक्ष्मप्रतिसेवना कुशील जाननां. तथा जो १ ज्ञान. २ दर्शन, ३ तपांसि तप, संज्वलन, कषायके उदय करकें इनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्रका कषाय कुशील जाननां. जो कषाय कुशील है. सो कषायके वश हो कर कें शाप दे देता है, मन करकें जो क्रोधादिकोंकों सेवे, सो यथासूक्ष्मकषायकुशील, अथवा कषायों करकें जो ज्ञानादिकोंकों विराधे, सो ज्ञानादिक कुशील जाननां. कोइक आचार्य, तप कुशीलके स्थानमें लिंगकुशील कहते हैं, यह दो प्रकारके निर्ग्रंथ पांचमे आरेके पर्यंत तक रहेंगे. जो कोइ इस तरेके साधुकूं साधु वा गुरु न माने, वो जीव, मिथ्यादृष्टि बहुल संसारी जिनमतका उत्थापक है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी संगतभी करनी योग्य नहीं ॥

इतिश्री तपगच्छीये मुनिश्री बुद्धिविजयशिष्य मुनिआनंदविजय आत्माराम विरचिते, जैनतत्त्वादर्शे गुरुतत्त्वस्वरूपनिर्णयनामा तृतीयःपरिच्छेदःसंपूर्णः॥३

॥ इति तृतीय परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थपरिछेद प्रारंभः ॥

॥ यह चतुर्थ परिछेदमें कुगुरु तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वाभिलाषिणः सर्व, जोजिनः सपरिग्रहाः ॥ अब्रह्मचारिणो मिथ्यो, पदेशागुरवोमताः ॥ १ ॥ अस्यार्थः-(सर्वाभिलाषिणः) सर्व जो स्त्री, धन, धान्य, हिरण्य, (सोना) रूपादि सर्व धातु तथा क्षेत्र, वास्तु क्षेत्र(खेत) हाट, हवेली, चतुःपदादिक अनेक प्रकारके पशु, इन सर्वकी अभिलाषा करनेका शील है जिसका, सो सर्वाभिलाषी, तथा (सर्वभोजिनः) सो सर्व मद्य, मांसादिक बावीश अभक्ष्य, तथा बत्तीस अनंतकाय, तथा अपर जो अनुचित आहारादिक है, इन सर्वका भोजन करनेका शील है जिसका सो सर्वभोजिनः (सपरिग्रहाः) जो पुत्र, कलत्र, बेटा, बीटी प्रमुख करी सहित वर्ते, सो सपरिग्रह. इसी वास्ते अब्रह्मचारी है. जो अब्रह्मचारी होता है, तिसमें महा दोष होते है, इस वास्ते अब्रह्मचारी ऐसा न्यारा उपन्यास कस्या है, अथ अगुरुपणेका असाधारण कारण कहियें है, (मिथ्योपदेशाः) मिथ्या (वितथ) आप्तके उपदेश विना धर्मका उपदेश है जिनका सो अगुरु है, जे कर इहां कोइ ऐसी तर्क करे जो धर्मोपदेशका दाता है, सो गुरु है, तो फेर निःपरिग्रहादि गुणोंका काहेकूं अन्वेषण करणां? इस शंकाके दूर करणे वास्ते दूसरा श्लोक फेर कहते हैं.

॥ श्लोक ॥ परिग्रहारंभमग्ना, स्तारयेयुः कथं परान् ॥ स्वयं दरिद्रो न पर, मीश्वरीकर्तुमीश्वरः ॥ २ ॥ अर्थः-परिग्रहः स्यादि आरंभ जीवोंकी हिंसा सर्वाभिलाषीपणा, औ सर्व भोजिपणां इन दोनो वस्तुओंमें जो मग्न है, औ भवसमुद्रमें डूबा हूआ है, वो किसतरेंमें दूसरे जीवोंकूं संसार सागरमें तार सक्ता है? इस बातमें दृष्टांत कहते हैं, कि जो पुरुष आपही दरिद्री है, वो दूसरोंकों क्युं कर धनाढ्य कर सक्ता है? प्रथम श्लोकके चोथे पदमें "मिथ्योपदेशागुरवोमताः" इस पदका विस्तार लिखते हैं, कुगुरु जो हैं, उनका उपदेश इस प्रकारसें मिथ्या है इस मिथ्या उपदेशके स्वरूपहीमें प्रथम तीन सौ त्रेशठ मतका स्वरूप लिखते है, उनमें एक सौ अस्सी मत तो क्रियावादीके है, औ चौरासी मत, अक्रियावादीके हैं, औ सदसठ मत, अज्ञानवादीके है, अरु बत्तीस मत, विनयवादीके हैं, ए पूर्वोक्त सर्व मत एकत्र करनेमें तीन सौ त्रेशठ होते हैं.

तीनमें जो क्रियावादी हैं सो ऐसे कहते है कि कर्त्ताके विना पुण्यबंधादिलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो आत्माके साथ समवाय संबंधवाली है, ऐसे कहनेका शील स्वभाव है जिनका सो क्रियावादी हैं. यह जो क्रियावादी हैं, सो आत्मादिक नव पदार्थोंकों एकांत अस्तिस्वरूप पणे माने हैं, तिस क्रियावादीके एक सौ अस्सी मत इस उपाय करकें जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रव, ४ बंध. ५ संवर, ६ निर्ज्जरा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य. ९ मोक्ष, यह नव पदार्थ अनुक्रम करकें पट्टी पत्रादिकमें लिखने. फेर जीव पदार्थके हेठ स्वतः अरु परतः यह दो भेद स्थापन करने. फेर इन स्वतः परतःके हेठ न्यारे न्यारे नित्य अरु अनित्य यह दो भेद स्थापन करने फेर नित्य अनित्यके इन दानोके हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, यह पांच स्थापन करने, पीछेसें विकल्प कर लेनें, सो आगें लिखते हैं. यंत्रस्थापना ॥

जीव.			
स्वतः		परतः	
नित्य.	अनित्य.	नित्य.	अनित्य.
१ काल.	१ काल.	१ काल.	१ काल.
२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.
३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.
४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.
५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं. अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतइत्येकोविकल्पः ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा निश्चय अपणे रूप करकें कालसें उत्पन्न हुइ है, कालवादीके मतमें यह विकल्प है, कालवादी उसकूं कहते हैंकि जो कालहीसें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति अरु प्रलय मानते हैं, तैसेंही कालवादी कहते है कि चंपक, अशोक, सहकार, नीब, जंबू, कदंबादि जो बनस्पति है, सो कालके विना फूलोंका लगनां, फलका बंधादिक नहीं हो सक्ता है, तथा हिमकण संयुक्त शीतका पडणां, तथा नक्षत्र गर्भका धारण, वर्षाका होणां, यह काल बिना

नहीं होते हैं, तथा षट् ऋतुवोंका विभाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ पलितादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सकी हैं, जो जो प्रति नियत काल विभागादिक हे, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर कालकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीभी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूंग रांधता है. सो भी काल बिना नहीं रांधे जाते हें. नहीं तो हांमी इंधनादि सामग्रीके संयोगसें प्रथम समयेहीमें मूंग रंध जाते? तिस वास्ते जो करता हे, सो कालही करता है. तथाचोक्तं ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्भबाल शुभादिकं॥ यत्किंचिज्जायते लोके, तदसौ कारणं किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुद्गपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्थाल्यादि सन्निधानेऽपि, ततःकालादसौ मतः ॥ २ ॥ कालभावे च गर्भादि,सर्वं स्याद व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसद्भाव, मात्रादेव तदुद्भवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका भावार्थ उपर लिख आये हें तथा ॥ कालः पचति भूतानि. कालः संहरते प्रजाः ॥ कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालोहि दुरतिक्रमः ॥ ४ ॥ इहां परेष्ट हेतुके सद्भाव मात्रादिकसें दूसरायोंने जो मान्या हे, कि स्त्री पुरुषके संयोग मात्र हेतुसें गर्भकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं हो जाते हे? इस वास्ते कालही गर्भकी उत्पत्तिका हेतु है,तथा जब स्त्रीकूं गर्भ होनेमें ऋतुकाल हे तिसके बिना स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं गर्भ होता हे? तथा कालही पकाता हे, औ कालही पृथिवी आदिक भूतोंकों परिणामांतरकों पहुंचाता है, तथा "कालः संहरते प्रजाः" कालही पूर्व पर्यायसें पर्यायांतरमें लोकोंकों स्थापन करता हे तथा "कालः सुप्तेषु जागर्त्ति" कालही सूते हूये जनोंकी रक्षा करता हे. तिस वास्ते प्रगट हे कि काल दुरतिक्रम हे, कालकों दूर करणेमें कोइभी समर्थ नहीं हे, यह कालवादीका विकल्प हे ॥ १ ॥

इसी तरें दूसरा विकल्पभी कह देनां परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां "यथा अस्ति जीवः स्वतो नित्यः ईश्वरतः" जीव, अपणे स्वरूप करकें नित्य हे परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा हूया मानते हें, ईश्वर उसकूं कहते हैं, कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वतः सिद्ध होवें, अरु जीवोंकों स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्तं ॥

ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्म्मश्च, सहसिद्धं च तुष्टयम् ॥ १ ॥ अज्ञोजंतुरनीशोय, मात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वरः प्रेरितो गच्छे, त्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ इत्यादि ॥ २ ॥

तीसरा विकल्प आत्म वादीयोंका है. आत्मवादी उनको कहते हैं कि जो " पुरुष एवेदं सर्व मित्यादि " (जो कुछ दीखता) है, सो सर्व पुरुषही है. असें मानते है॥ ३ ॥

चौथा विकल्प नियतवादीयोंका है. वो नियतवादी असें कहते हैं कि पदार्थोंमें एक असी सामर्थ्य है कि जिसकी सामर्थ्यसें सर्व पदार्थ अपणे अपणे स्वरूप नियमों करकें वैसे वैसेही होते हैं, परंतु अन्यथा पणे नहीं होते हैं, सोइ कहते है, जो पदार्थ जिसकालने जिस करिकें होता है, सो पदार्थ तिस कालने तिस करिकें नियत रूप करकेंही होता दीखता है. अन्यथा नहीं, तो कार्य कारण नावकी व्यवस्था नियामकके अनावमें कदापि न होवेगी, तिस वास्ते असें कार्य नियततामें प्रतीत होती है जो नियति, तिसकों कौन पुरुष प्रमाणपंथका कुशल है जो बाध सक्ता है ? जे कर नियति बाधित हो जावेगी तो और जगेनी प्रमाण मिथ्या हो जावेंगे. तथा चोक्तं ॥ नियते नैव रूपेण, सर्वे नावा नवंति यत् ॥ ततो नियतिजा ह्यते, तत्स्वरूपानुवेधतः ॥ १ ॥ यद्यदेव यतो यावत्, तत्तदेव ततस्तथा॥ नियतं जायते न्यायात्, क एनां बाधितुं क्षमः ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थ उपर लिख दीया है ॥ ४ ॥

पांचमा विकल्प, स्वनाववादीयोंका है, वो स्वनाववादी असें कहते है कि इस संसारमें सर्व पदार्थ स्वनावहीमें उत्पन्न होते है, सो कहते हैं कि माटीसें घट होता है, परंतु वस्त्र नहीं होता है, अरु तंतुओंसें वस्त्र होता है, परंतु घटादिक नहीं होता है. यह जो मर्यादा संयुक्त होनां है सो स्वनाव बिना कदापि नहीं हो सक्ता है, तिस वास्ते यह जो कुछ होता है. सो सर्व स्वनावसेंही होता है, तथा अन्यकार्य तो दूर रहो, परंतु यह जो मूंगोका रंध जाणा है, सोनी स्वनाव विना नहीं रंधते हैं, तथाहि हांमी, इंधन, कालादि सामग्रीका संनवनी है तोनी कोकडु (कठिनमूंग) नहीं रंधते हैं, तिस वास्ते जो जिसके होयां होवे, जिसके न होयां जो

न होवे, सो सो अन्वय व्यतिरेक करकें तिसका कर्त्ता है, स्वन्नावहीसें मूंग रं धते है, इस वास्ते स्वन्नावही सर्व वस्तुका हेतु है, ए पांचमा विकल्प ॥ ५ ॥

यह पांच विकल्प स्वतः ईशपद करकें होते हैं, ऐसेही पांच परतः ईश पद करकें उपलब्ध होते हैं, परतः शब्दका अर्थ तो ऐसा है, कि पर पदा र्थोमें व्यावर्त्त रूप करकें यह आत्मा निश्चय करकें है. ऐसें नित्य शब्द करकें दश विकल्प हूये हैं, ऐसेही अनित्य पद करकेंन्नी दश विकल्प होते हैं. सर्व विकल्प एकठे करेंसें वीश होते हैं. यह वीश विकल्प जीव पदार्थ करकें होते हैं, ऐसेही अजीवादिक पदार्थोंके साथ, न्यारे न्यारे वीश विकल्प जान लेनें. तब वीशकों नवसूं गुणाकार कर्यां सब मिलिके एक शो अस्सी मत क्रियावादीके होते हैं ॥ इति क्रियावादी ॥

अथ अक्रियावादीके चौरासी मत लिखते हैं. अक्रियावादी कहते हैं कि क्रिया, पुण्य पाप रूपादि नहीं है, क्योंकी क्रिया, पुण्य पाप रूपादि स्थि र पदार्थकों लगती है, अरु स्थिर पदार्थ तो जगत्‌में कोइ न्नी नहीं है, क्यों के उत्पत्त्यनंतरही पदार्थका विनाश हो जाता है. ऐसें जो कहते हैं, सो क्रियावादी ॥ तथा चाहुरेके ॥ श्लोक ॥ क्षणिकाः सर्वसंस्कारा, अस्थिराणां कुतः क्रिया ॥ नूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थः— सर्व संस्कार पदार्थ क्षणिक हैं, इस वास्ते अस्थिर पदार्थोंकूं पुण्य पापादि क्रिया कहांमें होवे? पदार्थोंका जो होणा है, सोइ क्रिया है, सोइ कारक है, इस वास्ते पुण्यापुण्यादि क्रिया नहीं. यह जो अक्रियावादी हैं, सो आत्माकूं नहीं मानते हैं, तिनके चौरासी मत जाननेका यह उपाय है कि १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रय, ४ संवर, ५ निर्ज्जरा, ६ बंध, ७ मोक्ष, यह सात पदार्थ लिखने, पीछे यह जीवादि सातो पदार्थोंकें हेठ न्यारे न्यारे स्व अरु पर यह दो विकल्प लिखने. फेर इन दोनोके हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वन्नाव, ६ यदृछा, यह छे लिखने. इहां नित्यानित्य यह दो विकल्प इस वास्ते नहीं लिखे हैं कि जब आत्मादि पदार्थही नहीं हैं, तो फेर नित्य अनित्यका संन्नव कैसें होवे? तथा जो यह यदृछावादी हैं, सो सर्व नास्तिक अक्रियावादी हैं, इस वास्ते क्रिया वादी यदृछावादी नही हैं, इस वास्ते क्रियावादीके मतमें यदृछा पद नहीं ग्रहण कीया है, इस मतके चौरासी न्नेद इसी रीतिसें जानने सो कहते हैं.

"नास्ति जीवः स्वतः कालतइत्येकोविकल्पः" नहीं है जीव अपणे स्वरूप करकें कालसें उत्पन्न हूया, यह एक विकल्प, असेही ईश्वरादिसें ले कर यदृच्छा पर्यंत सर्व छे विकल्प हूये इनका अर्थ पीछली तरें जाननां, परंतु इतना विशेष है जो यहां यदृच्छावादी अधिक हैं.

प्रश्नः–यदृच्छावादीयोंका क्या मत है? उत्तरः–जो पदार्थोंकूं संतान की अपेक्षा नियत कार्य कारण भाव नहीं मानते, किंतु "यदृच्छया" जो कुछ होता है, सो सर्व यदृच्छासें होता है. एतावता कार्य कारण भाव नहीं यदृच्छाहीसें होता है, यदृच्छावादी असें कहते हैं, कि नहीं है नियम करकें पदार्थोंकों आपसमें कार्य कारण भाव, क्यों कि कार्य कारण भाव प्रमाणसें ग्रहण नहीं कस्या जाता है, तथाही मृतक मींडकसेंभी मींडक उत्पन्न होता है अरु गोबरसेंभी मींडक उत्पन्न होता है अग्निसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है. अरणीके काष्ठसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है. धूमसेंभी धूम उत्पन्न होता है, अरु अग्निसेंभी धूम उत्पन्न होता है. कदलीके कंद सेंभी केला उत्पन्न होता है, अरु केलेके बीजसेंभी केला उत्पन्न होता है, बीजसेंभी वटवृक्ष उत्पन्न होता है. अरु वटवृक्षकी शाखासेंभी वट वृक्ष उत्पन्न होता है. इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण भाव किसी जगेंभी नहीं देखणेमें आता है. इस वास्ते यदृच्छा करीकें किसी जगें कुछ होता है. असें माननां चाहियें. क्योंकि जब जान लीया कि जो कुछ होता है, सो यदृच्छासें होता है. तो फेर काहेकों बुद्धिमान् कार्य कारण भावकों माने, औ आत्माकों क्लेश देवे यह जैसें स्वतःके साथ छे विकल्प करे है, असेंही नास्ति परतःके साथभी छे विकल्प होते हैं, यह जब सर्व विकल्प मिलाइयें तब बारा विकल्प होते हैं, इन बारांकूं जीवादिक सात पदार्थों करकें सात गुणा कस्या चौरासी भेद अक्रिया वादीके होते हैं ॥ इति अक्रियावादी ॥ २ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका भेद कहते है, कि कुत्सित ज्ञान है, जिनका सो अज्ञानवादी जाननां, अथवा अज्ञान करकें जो प्रवर्त्ते, सो अज्ञानिकाः अज्ञानवादी, असें कहते हैं कि ज्ञान अछी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब होवेगा, तब परस्पर बिवाद होगा, जब बिवाद होगा तब चित्त मलिन होगा, जब चित्त मलिन हूवा, तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जैसें किसी पुरुषने को

इ वस्तु उलटी कही, तब जो ज्ञानीने सुण करकें ज्ञानके अनिमानसें उस पुरुषके उपर बहुत मलिन चित्त करकें उसके साथ विवाद करणे लगा, विवाद करते थके अत्यंत तीव्रचित्त मलिन अरु अहंकार बढा. उस अहंकार औ चित्तकी मलिनतासें महा पाप कर्म उत्पन्न हूवा, तिस पापसें दीर्घतर संसारकी वृद्धि हूइ, इस वास्ते ज्ञान अछी वस्तु नहीं. अरु जब अज्ञानी अपणेकों मानीयें, तब तो अहंकारका संजव नहीं होता है, अरु दूसरोंके उपर चित्तका मलिन पणाजी नहीं होता है, तिस वास्ते कर्मका बंधनी नहीं होता है, तथा जो कार्य विचार करीयें है, तिसमें महा कर्मका बंध होता है, उसका फलजी महा जयानक होता है, अरु जो काम, मनोव्यापार बिना करीयें है, तथा मनोव्यापार बिना किसी जीवका वध करीये हैं, तिसका फल अवश्यमेव जोगनेमें नहीं आता है, अरु जो उस काममें किंचित् कर्मबंध होता है, सोजी चूने गजनींतके उपरि वालु (रेतिकी) मुष्टिकें संबंधवत् स्पर्शमात्र है, परंतु बंध नहीं होता है. इस वास्ते अज्ञानही मोक्षगामीयों पुरुषोंकों अंगीकार करणां श्रेय है, परंतु ज्ञान अंगीकार करणां श्रेय नहीं है. यह अज्ञानवादी कहते हैं की ज्ञान हम मानजी लेवें, जे कर ज्ञानका निश्चय करणेमें सामर्थ्य होवें ? क्योंकि प्रथम तो ज्ञान सिद्धही नहीं हो सक्ता है, तथाहि जितने मतावलंबी पुरुष है, सो सर्व परस्पर निन्नही ज्ञान अंगीकार करते हैं, इस वास्ते क्यों कर निश्चय करणेमें समर्थ होवे ? जो इस मतका ज्ञान सम्यग् है, अरु इस मतका ज्ञान सम्यग् नहीं है; जे कर कहोगे कि जो सकल वस्तुके समूहकों साक्षात् कारी ऐसे ज्ञानवाला जो जगवान् है, तिसके उपदेशसें जो ज्ञान होवे सो सम्यग् ज्ञान है. अरु जो इसके विना दूसरे मत हैं, उनका ज्ञान सम्यग् नहीं. क्योंकि उनके मतमें जो ज्ञान है. सो सर्वज्ञका कथन कीया हुआ नहीं है.

अज्ञानवादी कहते हैं कि यह तुमारा कहनां है, सो तो सत्य है, किंतु सकल वस्तु समूहका साक्षात् करणेवाला ज्ञानी सुगत, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मादिककों हम माने ? किंवा जगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामीकों सकल वस्तु समूहके साक्षात् करणे वाला माने ? फेरजी वोही संशय रहा, निश्चय न हूआ, जो कौन सर्वज्ञ है ? जे कर कहोगे कि जिस जगवान्के पादार

बिंद सुगज सर्व देवता, इंड, परस्पर अहं पूर्वक विशिष्ट विशिष्टतर विनूति युति करकें संयुक्त, सैंकडों विमानोमें बेठ करकें सकल आकाश मंमलकों आछादित करते हूये पृथिवीमें उतर करकें पूजते नये हैं, सो नगवान् वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ है. परंतु सुगत, शंकर, विष्णु, ब्रह्मादिक नहीं; क्योंकि सुगतादिक सर्व, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य हूये हैं, इस वास्ते वो देव नहीं हूये हैं; जे कर सुगतादिकनी सर्वज्ञ होते, तो तिनकीनी देवता, इंड, पूजा करते, परंतु किसीनी देवता, इंडने पूजा नहीं करी. इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं हूये हैं. हे जैन! यह जो तुमने बात कही है, सो अपणे मतके राग करकें कही है, परंतु इस बातसें इष्टसिद्धि नहीं है, क्योंकि वर्द्धमान स्वामीकी देवता, इंड, देवलोकसें आ करकें पूजा करते थे, यह तुमारा कहनां हम क्योंकर सच्चा मान लेवे? नगवान् श्री महावीरकों तो बहुत काल हूयांकों हो गया है, उनके सर्वज्ञ होणेमें कोइनी साधक प्रमाण नहीं है? जे कर कहोगे कि संप्रदायसें एतावता महावीरके शासनसें महावीर सर्वज्ञ सिद्ध होता है, तो इसमें यह तर्क होगी कि यह जो तुमारी संप्रदाय है, सो कौन जाने किसी धूर्त्तकी चलाइ हुइ है? वा किसी सत्पुरुषकी चलाइ हुइ है. हम क्यों कर जान सके? इस बातके सिद्ध करने वाला कोइनी प्रमाण नहीं है, अरु विना प्रमाणके हम मान लेवे, तो हम प्रेक्षावान् काहे के? तथा मायावान् पुरुष आप सर्वज्ञ नहींनी होते तोनी अपणे आपकूं जगत्में सर्वज्ञ होनां प्रगट कर देते हैं. इंडजालके (२४) पीठ है, तिनमेंसूं कितनेक पीठोंके पाठक अपणे आपकों तीर्थंकरका रूप अरु इंड, देवता, पूजा करते हूये बना सके हैं, तो फेर देवताओंका आगमन पूजा देखनेसें सर्वज्ञ पणा क्यों कर सिद्ध होवे, जो हम श्रीमहावीरजीकूं सर्वज्ञ मान लेवे? तुमारे मतका आचार्य समंतनड स्तुतिकारनी कहता है ॥ श्लोक ॥ देवागमननोयान, चामरादिविनूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते, ह्यतस्त्वमसि नो महान् ॥१॥ इस श्लोकका नावार्थः—देवताओंका आगमन आकाशमें चलनां, छत्र चामरादिककी विनूति, यह सर्व आमंबर, इंडजालीयमेंनी हो सक्ता है, इस हेतुसें तो हे नगवन्! तूं हमारा महान् स्तुति करणे योग्य नहीं हो सक्ता है. तथा हे जैन! तेरे कहनेसें महावीरही सर्वज्ञ होवे, तोनी यह जो आचारांगादिक शास्त्र हैं, सो म

हावीर सर्वज्ञहीके कथन करे हूये हैं, यह क्योंकर जाना जाये ? क्या जाने किसी धूर्त्तने रच करकें महावीरका नाम रख दीया होवेगा ? क्योंकि यह बात इंद्रिय ज्ञानका विषय नहीं है, अरु अतींद्रिय ज्ञानकी सिद्धिमें कोइजी प्रमाण नहीं है.

जला कदी यहजी होवे कि जो आचारांगादिक शास्त्र हैं सो महावीर सर्वज्ञहीके कहे हुये हैं, तोजी श्रीमहावीरजीके कहे हुये शास्त्रका यही अजिप्राय, यही अर्थ है, और अर्थ नहीं, यह क्योंकर जान्या जाय ? क्योंकि शब्दोंके अनेक अर्थ है, सो इस जगत्में प्रगट सुननेमें आते हैं, क्या जाने इनही अक्षरों करकें श्रीमहावीर स्वामीजीने कोइ अन्यही अर्थ कह्या होवे, अरु तुमारी समजमें उनही अक्षरों करकें कछु और अर्थ जासन होता होवे, फेर निश्चय क्यों कर होवे जो इन अक्षरोंका यही अर्थ जगवानने कह्या है, जे कर तुमने यह मान रक्खा होवे कि जगवानके समयमें गौतमादिक मुनि थे, उनोने जगवानके मुखारविंदसें साक्षात् जो अर्थ सुना था, सोइ अर्थ आज तांइ परंपरासें चला आता है, इस वास्ते आचारांगादिक शास्त्रोंका यही अर्थ है, अन्य नहीं. यहजी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि गौतमादिकजी छद्मस्थ थे, अरु छद्मस्थकों दूसरेकी चित्तवृत्तिका ज्ञान नहीं होता है, दूसरेकी चित्तवृत्ति तो अतींद्रिय ज्ञानका विषय है, छद्मस्थ तो इंद्रिय द्वारा जान सक्ता है, इंद्रियज्ञानी सर्वज्ञके अजिप्रायकों क्यों कर जान सके, जो सर्वज्ञका यही अजिप्राय है ? इस अजिप्रायसें सर्वज्ञनें यह शब्द कह्या है ? इस वास्ते जगवान्का अजिप्राय तो गौतमादिक नहीं जान सक्ते है, केवल जो वरणावली जगवान् कहते जये सोइ वरणावली जगवानके पीछे लगे हूये गौतमादिक उच्चारण करते आये, परंतु जगवान्का अजिप्राय किसीने नहीं जाना, जैसें आर्य देशोत्पन्न पुरुषके शब्द उच्चारणसें म्लेछजी वैसा शब्द उच्चार सक्ता है, परंतु तात्पर्य कुछ नहीं जानता, ऐसेही महावीरके शब्दके अनुवादक गौतमादिक हैं, परंतु महावीरका अजिप्राय नहीं जानते, इस वास्ते सम्यग् ज्ञान किसी मतमेंजी सिद्ध नहीं होता है. एक तो ज्ञान होणेसें पुरुष अजिमानसें बहुत कर्म बांध कर दीर्घ संसारी हो जाता है, दूसरा सम्यग् ज्ञान किसी मतमें है नहीं, इस वास्ते अज्ञानही श्रेय है,

॥ इत्यज्ञानवादीका श्रद्धान ॥सो अज्ञानी सडसठ प्रकारके हैं, तिनके जान नेका यह उपाय है कि जीवादिक नव पदार्थ किसी पट्टादिकमें लिखने, अरु दशमे स्थानमें उत्पत्ति लिखनी, तिन जीवादि नव पदार्थोंके हेठ न्यारे न्यारे सत्त्वादिक सात पद स्थापन करणे,सो यह हैं कि:—१ सत्वं, २ असत्त्वं, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्त्वं, ५ सदवाच्यत्वं, ६ असदवाच्यत्त्वं, ७ सदसदवाच्यत्वं, तहां १ सत्त्वं, सो स्वरूप करकें विद्यमान पणां, २ असत्त्वं, सो पररूप करकें अविद्यमान पणां, ३ सदसत्त्वं, सो स्वरूप पररूप करकें विद्यमान पणां. तहां यद्यपि सर्व वस्तु स्वपररूपों करकें सर्वदाही स्वजावसें सदसत् स्वजाव है, तोजी किसी जगे कदाचित् उद्भूत रूप करकें विवक्षा करियें हैं, तिस हेतुसें यह तीन विकल्प होते हैं, तथा ४ सोइ सत्त्व असत्त्व, जब युगपत् एक शब्द करकें कहनेकी इछा करियें, तदा तिसका वाचक कोइजी शब्द नहीं है, इस वास्ते अवाच्यत्त्वं. यह चारों विकल्प सकलादेशा ऐसा नाम कहीयें, क्यों के यह चारों सकल वस्तु विषयकों ग्रहण करते है, ५ अरु यदा एक जागमें सत्, दूसरे जागमें अवाच्य, युगपत् विवक्षा करियें, तदा सदवाच्यत्त्वं, ६ यदा एक जागमें असत्, दूसरे जागमें अवाच्य, तदा असत् अवाच्यत्त्वं, ७ यदा एक जागमें सत्, दूसरे जागमें असत्, तीसरे जागमें अवाच्य युगपत् कल्पना करियें, तदा सदसदवाच्यत्त्वं. इन सातों विकल्पोंमें अन्य (दूसरा) विकल्प कोइजी नहीं है, जे कर कोइ करजी लेवे, तो इन सातोंहीके अंतरजाव हो जायंगे, परंतु सातोंसें अधिक विकल्प कदापि न होवेंगे, यह जो सात विकल्प कहे हैं इन सातोंकों नव गुणा करे, तब त्रेशठ होतेहैं, अरु उत्पत्तिके चार विकल्प आदिकेही होते हैं. १ सत्त्वं. २ असत्त्वं, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्वं, यह चार विकल्प त्रेशठमें प्रक्षेप करीयें, तब सडसठ मत अज्ञानवादीके होते है. अब इन सातों विकल्पोंका अर्थ लिखते हैं, कि कौन जानता है जो जीव सत्य है,यह एक विकल्प हूया. कोइजी नहीं जानता है सत् जीव है इसका ग्रहण करनेवाला प्रमाण कोइजी नहीं है जे कर कोइ जाणजी लेवेगा जो जीव सत् है तो कौनसे पुरुषार्थकी सिद्धि हो गइ क्यों कि जब ज्ञान हो जावेगा तब अजिनिवेश,अजिमान, चित्त मलिन लोकोंसें विवाद,जगडा,

बढ जावेगा, तब तो ज्ञानवान् बहुत कर्म बंध करकें दीर्घतर संसारी हो जावेगा, असेंही असत् आदिक शेष विकल्पोंकाजी अर्थ जान लेनां ॥इति॥

विनय करकें जो प्रवर्त्ते, सो वैनयिकाः इन विनयवादीयोंके लिंग अरु शास्त्र नहीं होता है, केवल विनयहीसें मोक्ष मानते हैं, तिन विनय वादीयोंके बत्तीस मत हैं, सो इस तरेंसे हैं, कि १ सुर, २ राजा, ३ जाति, ४ ज्ञाति, ५ स्थविर, ६ अधम, ७ माता, ८ पिता, इन आठोंकी मन करकें, वचन करकें, काया करकें ,अरु देशकाल उचित दान देने करकें विनय करे, इन चारोंसें आठकों गुण्या बत्तीस हूये ॥ इति विनयवादी ॥ ४ ॥

ए सब मिल कर तीनसौ त्रेशठ मत हुये. ए सर्व मतधारी तथा इन मतोंके प्ररूपणे वाले सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि यह सर्व मत मिथ्यादृष्टियोंके है, यह सब एकांतवादी हैं, परंतु स्याद्वादरूप अमृत स्वादसें रहित हैं, इनका जो अनिमत तत्त्व है, सो प्रमाण करकें बाधित है, इनके मतोंकों पूर्वाचार्योंने अनेक युक्तियोंसें खंमन करा है, सो जव्य जीवोंके जानने वास्ते मैं जी पूर्वाचार्योंकी युक्तियां इन जाषाग्रंथमें किंचित् मात्र नीचें लिखता हुं.

प्रथम जो कालवादी कहेते हैंकि सर्व वस्तुका कालही कर्त्ता है, तिसका खंमन लिखता हुं. हे कालवादी! यह जो काल है सो क्या १ एक स्वजाव नित्य व्यापी है? २ किंवा समयादिक रूप करकें परिणामी है? जे कर आदि पक्ष मानोगे सो तो अयुक्त है, क्योंकि असे कालकों सिद्ध करने वाला कोइजी प्रमाण नहीं है. जैसा आद्य पक्षमें तूनें काल मान्या है, तैसा काल. प्रत्यक्ष प्रमाणसें उपलब्ध नहीं होता है, अरु असे कालका कोइ लिंगजी अविनाजावरूप नहीं दीखता, इस वास्ते अनुमानसेंजी सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्षः—क्योंकर अविनाजावलिंगका अजाव कहते हो? क्योंकि दिखता हैकि जरत रामचंद्रादिकों विषे पूर्वापर व्यवहार सो पूर्वापर व्यवहार वस्तुरूप मात्र निमित्त नहीं है? जे कर वस्तुरूप मात्र निमित्त होवे, तदा वर्त्तमानकालमें वस्तु रूपके विद्यमान होणे करकें तैसें व्यवहार होनां चाहियें, तिस वास्ते जिस करकें यह जरत रामादिकोविषे पूर्वापर व्यवहार है, सो काल है, तथाहि पूर्वकालयोगी, पूर्व जरतचक्रवर्त्ती, अपरकालयोगी अपर रामादि.

उत्तर पक्षीकी तर्कः—जे कर जरत रामादिकोंविषे पूर्वापर कालके योग सें पूर्वापर व्यवहार है, तो कालका पूर्वापर व्यवहार कैसें सिद्ध होगा?

पूर्वपक्षीका समाधान. कालका जो पूर्वापर व्यवहार है, सो अन्य दूसरे कालके योगसें है.

उत्तरपक्षः—जे कर दूसरे कालके योगसें प्रथम कालका पूर्वापर व्यवहार है, तब तो दूसरे कालका पूर्वापर व्यवहार तीसरे कालकें योगसें हुवा, ऐसेंही करते जाइयें, तब अनवस्था दूषणका प्रसंग होता है.

पूर्वपक्षः—यह दूषण हमकूं नहीं लगता है, क्यों कि हम तो तिस कालहीके स्वयमेव पूर्वापर विजाग मानते हैं, किसी कालादिक योगसें नहीं मानते हैं, तथा चोक्तं ॥ पूर्वकालादि योगी यः, पूर्वादिव्यपदेशजाक् ॥ पूर्वापरत्वं तस्यापि, स्वरूपादेव नान्यतः ॥ १ ॥ अस्यार्थः—जो पूर्वापर कालके योगी जरत रामादि है, सो जरत रामादि पूर्वापर व्यपदेश वाले हैं, अरु कालका जो पूर्वापर विजाग है, सो स्वतःही है, परंतु अन्यकालादि योगसें नहीं है.

उत्तरपक्षः—हे पूर्वपक्षीः—यह तुमारा कहनां ऐसा है कि जैसा कंठलग मदिरा पीके मदिरा पानीका प्रलाप, तैसा है, क्योंकि तुमनें प्रथम पक्षमें काल एकांत एक नित्य व्यापी मान्या है, तो फेर कैसें तिस कालका पूर्वापर व्यवहार होवे?

पूर्वपक्षः—सहचारिके संगसें एक वस्तुकाजी पूर्वापर कल्पनामात्र व्यवहार हो सका है, जैसें सहचारि जरतादिकोंका पूर्वापर व्यवहार है, तैसेंही जरतादि सहचारियोंके संगसें कालकाजी कल्पनामात्र पूर्वापर व्यपदेश होता है, सहचारियों करकें व्यपदेश सर्व तार्किकोंके मतमें प्रसिद्ध है, यथा "मंचाः क्रोशंतीति" जैसें मंचा गालीयां देता है.

उत्तरपक्षः—यहजी मूर्खोंहीका कहना, है क्योंकि इस कहनेमें इतरेतर दोषका प्रसंग है सोइ कहते हेंकि सहचारि जरतादिकोंको कालके योगसें पूर्वापर व्यवहार हुआ अरु कालकों पूर्वापर व्यवहार, सहचारि जरतादिकोंके योगसें हुआ, जब एक सिद्ध नहीं होवेगा तब दूसराजी सिद्ध नहीं होगा ॥ उक्तंच ॥ एकत्वव्यापितायांहि, पूर्वादित्वं कथं जवेत् ॥ सहचारिवशात्चे, दन्योन्याश्रयतागमः ॥ १ ॥ सहचारिणां हि पूर्वत्वं, पूर्वकाल स

मागमात् ॥ कालस्य पूर्वादित्वं च, सद्द्चार्थवियोगतः ॥ २ ॥ प्रागसिद्धा वेकस्य, कथमन्यस्य सिद्धिरिति ॥ इस वास्ते प्रथम पक्ष श्रेय नहीं है.

अथ दूसरा पक्ष मानोगे, सोजी अयुक्त है. क्योंकि समयादिक रूप परिणामी काल विषे काल एकजी है. तोजी विचित्र पणा उपलब्ध होता है, तथाहि एक कालमें मूंग रांधता कोइ रंधता है ? कोइ नहीं रंधता है. तथा समकालमें एक राजाकी नौकरी करते थके एक नौकरकूं थोडेही कालमें नौकरीका फल मिल जाता है,अरु दूसरेकूं बहु कालांतरमेंजी वैसा फल नहीं मिलता है, तथा समकालमें खेती करतां एक जाटके तो बहु धान्य उत्पन्न हो जाते हैं, अरु दूसरेकूं थोडा फूटा हुआ खंमित उत्पन्न होता है, तथा समकालमें कौडीयोंकी मूठी जर कर जूमिकामें गेरीयें, तब कितनीक कौडीयां सूधी पडती हैं, अरु कितनीक ओंधी पडती है. अब जे कर कालही एकला कारण होवे, तब तो सर्व मूंग एकही कालमें रंध जाते, परंतु सर्व रंधते नहीं हैं, इस वास्ते निःकेवल कालही जगत्के विचित्रताका कर्त्ता नहीं है. किंतु कालादि सामग्रीके मिलनेसें कर्म कारण हैं, यह सिद्ध पक्ष है ॥ इति प्रथम कालवादीके मतका खंमन ॥ १ ॥

अथ दूसरा ईश्वरवादी अरु तीसरा अद्वैतवादी, ए दोनो मतोंका खंमन ईश्वरवादमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां ॥ ३ ॥

अब चौथा मत नियतिवादीका है, तिसका खंमन लिखते हैं कि नियतिवादी जो कहते हैं, कि सर्व पदार्थोंका करता नियति है, नियति उसकूं कहते हैं जो तत्त्वांतर होवे, सोजी नियति, ताडयमान अति जीर्ण वस्त्रकी तरें विचार रूप ताडनाकूं असहमान सैंकडे टुकडोंकों प्राप्ति होती है, सोइ कहते हैं हे. नियतवादी! तेरा जो नियतिनाम तत्वांतर है, सो जावरूप है, किंवा अजाव रूप है? जे कर कहोगे कि जावरूप है. तो फेर एकरूप है, वा अनेक रूप है? जे कर कहोगे कि एक रूप है, तो फेर नित्य है,वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है,तो किस तरें पदार्थोंकी उत्पत्त्यादिकमें हेतु है? क्योंकि नित्य जो होता है, सो किसीकाजी कारण नहीं होता है, सोइ कहते हैं कि नित्य जो होता है सो सर्व कालमें एकरूप होता है, नित्यका लक्षण "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावतया नित्यत्वस्य व्यावर्णात्" नित्यका लक्षणतो ऐसा है, जो क्षरे नहीं अरु उत्पन्नजी न होवे, स्थिर एक

स्वनाव करकें रहे, सो नित्य. तब तो नियति तिस नित्य रूप करकें जे कर कार्य उत्पन्न करे, तब तो सर्वदा तिसही रूप करकें कार्य उत्पन्न करे, क्योंकि तिसके रूपमें कोइनी विशेष नहीं है, एकही रूप है, अरु सर्वदा तिसही रूप करकें तो कार्य उत्पन्न नहीं करती है, क्योंकि कन्नी कैसा अरु कन्नी कैसा कार्य उत्पन्न होता दीख पडता है, तथा एक औरनी बात है कि, जो दूसरे तीसरे आदि क्षणमें नियतिने कार्य करणे हैं, वो सर्वेही कार्य प्रथम समयहीमें उत्पन्न कर लेवे, क्योंकि तिस नियतिका जो नित्य करण स्वनाव द्वितीयादि क्षणमें है सो स्वनाव प्रथम समयमेंनी विद्यमान है, जे कर प्रथम क्षणमें द्वितीयादि क्षणवर्ती कार्य करणेकी शक्ति नहीं तो द्वितीयादि क्षणमेंनी कार्य न होनां चाहियें, क्यों कि प्रथम द्वितीयादि क्षणमें कुछनी विशेष नहीं, जे कर प्रथम द्वितीयादि क्षणमें नियतिके रूपमें परस्पर विशेष मानोगे तबतो जोरा जोरी नियतिके रूपमें अनित्यता आ गइ. "अतादवस्थ्यमनित्यतां ब्रूमः इतिवचन प्रामाण्यात्" ॥ जो जैसा है वो तैसा न रहे इस वचन प्रमाणसें उसकों हम अनित्य कहते हैं.

पूर्वपक्षः—नियति नित्य विशेष रहितनी है, तोनी तिस तिस सहकारिकी अपेक्षा करकें कार्य उत्पन्न करती है, अरु जो सहकारि है, सो प्रतिनियति देश काल वाले हैं, तिस वास्ते सहकारियोंके योगसें कार्य क्रम करकें होता है.

उत्तरपक्षः—यह नी तुमारा कहनां असमीचीन है, क्योंकी सहकारिजो हैं, सोनी नियति करकेही प्राप्त होते है, अरु नियति जो है, सो प्रथम क्षणमेंनी तिसके करणेवाले स्वनाव वाली है, जेकर द्वितीयादि क्षणमें दूसरे स्वनाववाली नियति मानोगे, तब तो नित्यपणेकी हानी हो गइ, तिस वास्ते प्रथम क्षणमें सर्व सहकारियोंके संनव होणेमें प्रथम क्षणमेंही सर्व कार्य करणेका प्रसंग हो गया. तथा एक औरनी बात है. कि सहकारियोंके होणेंसें कार्य हूआ, अरु सहकारियोंके न होणेंसें कार्य न हूआ, तब सहकारियांहीकों अन्वय व्यतिरेक देखनेसें कारण कल्पना करनी चाहियें. परंतु नियति कारण नहीं हुइ, क्यों कि नियतिमें व्यतिरेकका असंनव है, उक्तं च ॥श्लोक॥ हेतुनान्वयपूर्वेण, व्यतिरेकेण सिद्ध्यति ॥ नित्यस्याव्यतिरेकस्य, कुतो हेतुत्वसंनवः ॥ अथ जे कर इन पूर्वोक्त दूषणोंके नयसें अनित्य पक्ष

मानोगे, तब तो तिस नियतिके प्रतिक्षण अन्य अन्य रूप होणेसें नियतियां बहुत हो गइयां, तब तो जो तुमनें नियति एकरूप मानी थी, तिस प्रतिज्ञाका व्याघात होनेका प्रसंग हो गया, अरु जो पदार्थ क्षणक्षयी होता है, वो किसीका कार्य कारण नहीं हो सक्ता है, तथा एक औरजी बात है कि जे कर नियति एकरूप होवे, तदा तिससें जो कार्य उत्पन्न होवेंगे सो सर्व एकरूपही होने चाहियें, क्योंकि विना कारणके जेद हूयां कार्य जेद कदापि नहीं हो सक्ता है, जे कर हो जावे, तब तो वह कार्यजेद निर्हेतुकही होवेगा, अरु हेतुविना किसी कार्यका जेद नहीं है, जे कर अनेकरूप नियति मानोगे, तब तो तिस नियतिसें अन्य नानारूपी विशेषण विना नियति नानारूप कदापि न होवेगी, जैसें मेघका पानी, काली, पीली, उखर जूमिके संबंध विना नानारूप नहीं हो सक्ता है, यदुक्तं "विशेषणं विना यस्मा,न्न तुल्यानां विशिष्टतेति वचनप्रामाण्यात्" तिस वास्ते अवश्य तिस नियतिसें अन्य नानारूप विशेषण नियतिके जेद मानने चाहियें. तिन नानारूप विशेषणोंका जो होणा है, सो क्या तिस नियतिसेंही होता है अथवा किसी दूसरेसें होता है? जे कर कहोगे कि नियतिसें ही होता है, तब तो तिस नियतिकों स्वतः एकरूप होणेसें कैसें तिस नियतिसें हूये होये विशेषणोंकों नानारूपता होवे ?

अथ विचित्र कार्यकी अन्यथानुपपत्ति करकें नियतिजी विचित्र रूपही मानते हैं, तब तो नियतिकी विचित्रता बहुत विशेषणों विना नहीं होवेगी, तिस वास्ते तिस नियति विषे विशेष्य बहुत अंगीकार करणे चाहियें, अब तिन विशेषणोंका जो जाव है, सो तिस नियतिहीसें होता है, अथवा किसी दूसरेसें ? इत्यादि. सोइ फेर आ गया, इस वास्ते अनवस्था दूषण होता है.

अथ जे कर कहोगे अन्यसें होता है, तो यहजी पक्ष अयुक्त है, क्यों के नियति बिना और किसीकों तुमने हेतु नहीं मान्या है, यह तुमारा कहना किसी कामका नहीं है, तथा अनेक रूप नियति है, जे कर तुम ऐसे मानोगे, तब तो तुमारे मतके वैरी दो विकल्प हम तुमकूं जेट करते हैं, तुमारी नियति अनेकरूप जो है, सो मूर्त्ति है? वा अमूर्त्त है ? जे कर कहोगे कि मूर्त्ति है, तब तो नामांतर करकें कर्मही तुमने माने, क्यों

कि कर्म जो है, सो पुद्गलरूप होणेंसे मूर्त्तिनी है, अरु अनेक रूपनी है,तब तो तुमारा हमारा एकही मत हो गया, क्योंकि हम जिनकूं कर्म मानते हैं; उनहीं कर्मोंका नामांतर तुमने नियति मान लीया, परंतु वस्तु एकही है. अथ जे कर नियतिकूं अमूर्त्त मानोगे, तब तो नियति सुख दुःखका हेतु अमूर्त्त होनेसें न होवेगी. जैसें आकाश अमूर्त्त है, परंतु सुख दुःखका हेतु नहिं है, पुद्गलही मूर्त्ति होनेसें सुख दुःखका हेतु हो सक्ता है, जे कर तुम ऐसे मानोगे कि आकाशनी देश नेद करकें सुख दुःखका हेतु है, जेसें मारवाड देशमें आकाश दुःखदायी है, शेष सजल देशोमें सुखदायी है, यहनी तुमारा कहनां असत् है. तिन मारवाडादि देशोमेंनी आकाशमें रहे हूये जो पुद्गल हैं, उन पुद्गलोंही करी दुःख सुख होते हैं, तथाहि मरुस्थली जो है, सो प्रायः जल करकेंर हित है अरु वालु (रेति)नी बहुत है, अरु रस्तेमें चलतां पग वालुमें धस जाते हैं, तब तो पसीना बहुत आ जाता है, अरु उष्णकालमें सूर्यकी किरणोंसें वालु तप जाता है. तब बहुत संताप होता है, अरु जलनी पीनेकों पूरा नहीं मिलता है, तिसके खननेमें कोइ प्रयत्न करनां पडता है, इस वास्ते उन देशोंमें बहुत दुःख है अरु सजल देशोमें पूर्वोक्त कारण नहीं है, इस वास्ते पूर्वोक्त दुःखनी नहीं है, इस हेतुसें पुद्गलही सुख दुःखका हेतु है, परंतु आकाश नहीं.

अथ जे कर नियतिकूं अनावरूप मानोगे, तो यहनी तुमारा पक्ष अयुक्त है. क्योंकि अनाव जो है सो तुब्छरूप है, शक्ति रहित है, औ कार्य करणेमें समर्थ नहीं, क्यों कि कटक कुंमलादिकोंका जो अनाव है, सो कटक कुंमल उत्पन्न करनेकूं समर्थ नहीं, तैसेंही देखनेमें आता है, जेकर कटक कुंमलादिकोंका अनाव कटक कुंमलादिक उत्पन्न करे, तब तो जगतूमें कोइनी दरिद्री न रहे.

पूर्वपक्षः—घटानाव जो है सो मृत्पिंम है, तिस माटीके पिंमसें घट उत्पन्न होता है, तो फेर हमारे कहनेमें क्या अयुक्तता है? अरु जो माटीका पिंम है सो तुब्छरूप नहीं है क्योंकि वो अपणे स्वरूप करकें विद्यमान है, तो फेर अनाव पदार्थकी उत्पत्तिमें हेतु क्यों नहीं हो सक्ता?

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा पक्ष असमीचीन है,क्योंकि जो माटीके पिंमका नाव स्वरूप है सो नावानावका आपसमें विरोध होनेसें अनाव रूप नहीं

हो सका, क्योंकि जे कर नावरूप है तो अनाव कैसें हुआ? जे कर अनाव रूप है,तो नाव कैसें हुआ? जे कर कहोगे कि स्वरूप अपेक्षा नावरूप है,अरु पररूपापेक्षा अनावरूप है, तिस वास्ते नावानाव दोनोके न्यारे निमित्त होनेसें कुछनी दूषण नहीं, इस कहनेसें तो माटीका पिंम नावानावरूप अनेकांतात्मिकरूप तुमारेकूं प्राप्त हुआ, परंतु यह अनेकांतात्मपणा जैनोंहीके मतमें शोनता है, क्योंकि जैनमतवालेही सर्व वस्तुकूं स्वपरनावादि स्वरूप करकें अनेकांतात्मिक मांनते हैं, परंतु तुमारे सरीखे एकांतग्रहग्रस्त मतवालोंकों नहीं शोनता है, जे कर कहोगे कि मृत्पिंममें जो पररूपका अनाव है, सो तो कल्पित है, अरु जो नावरूप है, सो तात्विक है, इस वास्ते अनेकांतात्मिक वाद हमारे मतमें नहीं आता है, तब तो तिस मृत्पिंमसें कैसें घट होवेगा? क्यों कि तिस मृत्पिंममें परमार्थसें घटके प्राग्नावका अनाव है, जे कर प्राग् अनाव विनानी तिस मृत्पिंमसें घट हो जावे, तब तो सूत्र पिंमादिकसेंनी घट क्यों नहीं होजावे? जैसा मृत्पिंममें घट प्राग्नावका अनाव है, तैसाही सूत्रपिंमादिकमेंनी घट प्राग्नावका अनाव है, तथा तिस मृत्पिंमसें खरशृंग क्यों नहीं हो जाता है? इस वास्ते यह तुमारा कहनां कुछ नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि जो वस्तु जिस अवसरमें जिससेंति होवे है,सो कालांतरमेंनी सोई वस्तु तिस अवसरमें तिसतें नियतरूप करकें होती हुई दीखती है, यह तो तुमारा कहनां ठीक है, क्योंकि कारण सामग्रीके अनादि नियमोसें कार्यनी तिस अवसरमें तिसतें नियतरूप करकेंही होता है, जब कारण शक्तिके नियमसें कार्य हो गया, तब कौन असा प्रेक्षावान् प्रमाणपंथका कुशल है जो प्रमाण बाधित नियतिकों अंगीकार करे? ॥इति नियति खंमनं॥

अथ पांचमा स्वनाववादीका खंमन लिखते हैं. स्वनाववादी ऐसे कहते हैं कि इस संसारमें सर्व नावपदार्थ स्वनावहीसें उत्पन्न होते हैं, यह स्वनाववादीयोंका मत नियतिवादके खंमनसेंही खंमन हो गया, क्योंकि जो दूषण, नियतिवादीके मतमें कहे हैं, वे सर्व दूषण, प्रायः यहांनी समानही हैं, सोई कहते हैं, कि यह जो तुमारा स्वनाव है, सो नावरूप है? अथवा अनावरूप है? जे कर कहोगे कि नावरूप हैं, तो क्या एक रूप है? वा अनेक रूप है? इत्यादि सर्व दूषण नियतिकी तरें कह देने.

एक औरजी बात है, कि स्वजाव आत्माके जावकों कहते हैं, सो स्व जाव कार्यगत हेतु है? वा कारण गत है? कार्य गत तो नहीं हैं, क्यों कि जब कार्य हो जावेगा तब कार्यगत स्वजाव होवेगा परंतु विना कार्य के हूये कार्य गत कैसें होवे? अरु जब कार्य हो गया, तब तिसका हेतु स्व जाव कैसें होवे? जो जिसके अलब्ध लाज संपादनमें सामर्थ्य होवे, सो तिसका हेतु है, अरु कार्य तो निष्पन्न होने करकें लब्ध आत्मलाज है. न हीं तो तिस स्वजावहीकूं अजावका प्रसंग हो जावेगा, तब तो वो स्वजाव कैसें कार्यका हेतु होवेगा? जे कर कहोगेकि कारणगत हेतु है, यह तो ह मकूंजी संमत है, सो स्वजाव प्रति कारण जिन्न है, तिस करकें माटीसें घट होता है, परंतु माटीसें पटादि नहीं होता है. माटीके पिंममें पटादि होनेका स्वजाव नहीं है, अरु तंतुओंसें पटही होता है, घटादि नहीं होते हैं, क्योंकि तंतुओंमें घट होनेका स्वजाव नहीं है, तिस वास्ते जो तुमने कहा था कि माटीसें घटही होता है, पटादि नहीं होता, सोतो सर्व का रणगत स्वजाव माननेसें सिद्धहीकों साध्या है. यह पक्ष, हमारे मतका वाधक नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि मूंगोंमें रंधनेका स्वजाव है, को कडुमें नहीं? इत्यादि सोजी कारणगत स्वजाव अंगीकार कर्यां सर्वही स मीचीन हो जाता है, जैसें एक कोकडु मूंग है, स्वकारण वशतें तैसे रूप वाले हूये हैं; हांमी, इंधन, कालादि सामग्रीका संयोगजी है, तोजी नहीं रंध ते है, अरु स्वजाव जो है सो कारणसें अजेद है, इसतें सर्व वस्तु सकार णही हैं, यह सिद्ध पक्ष है ॥ यह क्रियावादीयोंका मत तो खंमन हो चुका ॥

अथ अक्रियावादीयोमें जो यदृच्छावादी हैं, तिनोंनें जो कहा था कि व स्तुओंका नियम करकें कार्य कारणजाव नहीं है, इत्यादि. सोजी कहनां कार्य कारणके विवेचने वाली बुद्धिसें रहित होनेका सूचक है, क्यों कि कार्य कारणकों प्रतिनियतताका संजव होनेमें है, सोई कहते हैं कि जो शा लूकसें शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा शालूकहीसें उत्पन्न होता है, प रंतु गोबरसें नहीं. अरु जो गोबरसें शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा गो बरहीसें उत्पन्न होता है, परंतु शालूकसें नहीं, अरु इन दोनों शालुकयों कों शक्तिवर्णादि वैचित्रतासें औ परस्पर जात्यंतर होनेसें एकरूपजी नहीं हैं, अरु जो अग्निसें अग्नि उत्पन्न होता है, सोजी सदैव अग्निहीसें उत्प

न्न होता है, परंतु अरणीके काष्ठसें नहीं होता, अरु जो अरणीके काष्ठसें अग्नि उत्पन्न होता है, सो सदा अरणीकाष्ठसेंही उत्पन्न होता है, परंतु अग्निसें नहीं होता, अरु जो कहा था कि बीजसेंभी केला उत्पन्न होता है, इत्यादिक सोभी परस्पर विभिन्न होनेसें सोइ उत्तर है कि जो उपर लिख आये हैं. एक औरभी बात है, कि जो केला कंदसें उत्पन्न होता है, सो भी परमार्थसें बीजहीसें होता है, तातें परंपरा करकें बीजही कारण है, ऐसेही वटादिकभी शाखाके एक देशतें उत्पन्न होते हूये परमार्थसें बीजसेंही उत्पन्न होते हैं, सोइ कहते हैं कि शाखासें शाखा होती है, परंतु उस शाखाकी हेतु शाखा है, ऐसा लोकमें व्यवहार नहीं है, काहेतें कि वट बीजहीकूं सकल शाखा प्रशाखा समुदाय रूप वटका हेतु होने करकें प्रसिद्ध है, ऐसेंही शाखाके एक देशसेंभी उत्पन्न होता हूआ वट परमार्थसें मूल, वटशाखारूपही है, इसतें सोभी मूल बीजहीसें उत्पन्न हूया माननां चाहियें, तिस वास्ते किसी जगेसेंभी कार्य कारण भाव व्यभिचारी नहीं है ॥ इति यदृच्छावादि मतखंमनं ॥

अथ अज्ञानवादी मत खंमन लिखते हैं. अज्ञानवादी जो कहते हैं कि ज्ञान श्रेय नहीं है, क्योंकि जब ज्ञान होता है, तब परस्पर विवादके योगसें चित्तमें कलुष पणेसें दीर्घतर संसारकी वृद्धि होती है, इत्यादि. यह जो अज्ञान वादीयोंनें कहा है, सो भी मूर्खताका सूचक है, सोइ दिखाते हैं, कि और बात तो रहो परंतु प्रथम हम तुमकों दो बातें पूछते हैं सो यह बातें है कि ज्ञानका जो तुम निषेध करते हो, सो क्या ज्ञानसें करते हो? वा अज्ञानसें करते हो? जे कर कहोगे कि ज्ञानसें करते हैं, तो फेर कैसें कहते हो कि अज्ञान श्रेय है? इस कहनेसें तो ज्ञानही श्रेय हूआ, ज्ञानके बिना अज्ञानकों कोई स्थापन करने समर्थ नहीं है, जे कर उक्त कहनेको मानोगे, तो तुमारी प्रतिज्ञाका व्याघात प्रसंग होगा, जे कर कहोगे कि अज्ञानसें निषेध करते हैं, सोभी अयुक्त है, सो अज्ञानकों ज्ञान निषेधनेका सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि अज्ञान किसीकेभी साधने बाधनेमें समर्थ नहीं है, अज्ञान होनेसें जब अज्ञान निषेधनेमें सामर्थ्य न हूआ तब सिद्ध हूआ कि ज्ञानही श्रेय है, अरु जो तुमने कहा था कि जब ज्ञान होगा, तब परस्पर विवादके

योगमें चित्त कालुष्यादि जावकूं प्राप्त होगा, इत्यादि. सोजी विना विचारे कहनां है, हम परमार्थसें ज्ञानी उसकों कहते हैं कि जिसकी आत्मा विवेक करके पवित्र होवे, अरु जो ज्ञानका गर्व न करे, अरु जो थोडासा ज्ञानी हो कर कंठ लग मद्य पी कर जैसें उन्मत्त बोलता है तैसें बोले, अरु सकल जगत्कों तृणोंकी तरें माने, सो परमार्थसें अज्ञानीही है, क्यों कि उनकों ज्ञानका फल नहीं है. ज्ञानका फल तो राग द्वेषादि दूषणोंका त्यागनां है. जब यह नहीं हूवा, तब तो परमार्थसें ज्ञानही नहीं "उक्तं च ॥ तत् ज्ञानमेव न जवति, यस्मिन्नुदिते विजाति रागगणः ॥ तमसः कुतोस्ति शक्ति,र्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुं ॥१॥" ऐसा ज्ञानी विवेक करके पवित्र आत्मा वाला परजीवोंके हित करणेमें एकांत रसीया होवे, जेकर वो वादजी करेगा, सोजी परजीवोंके उपकार वास्ते करेगा, अरु राजा आदिक परीक्षक निपुण बुद्धिवालोंकि परिषदामें करेगा, अन्यथा नहीं करेगा. ऐसेंही तीर्थंकर गणधरोनें वाद करणेकी आज्ञा दीनी है. जब ऐसें हूवा तब कैसें चित्तकी मलिनता करकें कर्मका बंध होनेसें दीर्घतर संसारकी वृद्धि होवे? केवल ज्ञानवान्का जो वाद है, सो वादी नरपति परीक्षकोंके अज्ञानके दूर करणेके वास्ते है, सम्यक् ज्ञानके प्रगट होनेसें बडा उपकार होता है, इस वास्ते ज्ञानही श्रेय है.

अरु जो अज्ञानवादी कहता है, कि तीव्राध्यवसाय करकें जो कर्म उत्पन्न होते हैं, उनसें दारुण विपाक फल होता है, सो तो हम मानते हैं, परंतु जो अशुजाध्यवसाय है, तिनका हेतु ज्ञान नहीं है, क्योंकि अशुजाध्यवसायोंका अज्ञानजी हेतु देखनेमें आता है, केवल इतनी बात तो है कि ज्ञानके होते हूया जे कर कदाचित् कर्म दोषतें अकार्यमें प्रवृत्तिजी होवेगी, तोजी ज्ञानके बलसें प्रतिक्षण संवेग जावनासें तीव्र अशुद्ध परिणाम नहीं होते हैं, सोइ दिखाते हैं.

जैसें कोईक पुरुष राजादिकोंके दुष्ट नियोगसें विषमिश्रित अन्न है, ऐसें जानता उता जयजीत मन करकें जीमेगा, तैसेंही सम्यक् ज्ञानीजी कथंचित्कर्म दोषसें अकार्यजी आचरेगा, तोजी संसारके दुःखों करकें जयजीत मनवाला होवेगा, परंतु निःशंक नहीं होवेगा. अरु जो संसारसें जयजीत होता है, तिसहीका नाम संवेग कहते है, तबतो संवेगवान् तीव्र अशुजा

ध्यवसायवाला नहीं होता है, अरु जो तुमने कहा था कि अज्ञानही सत्पुरुषोंको मोक्ष जाने वास्ते श्रेय है, परंतु ज्ञान श्रेय नहीं, यह जो कहनां है, सो मूढताका सूचक है, जिसका नामही अज्ञान है. वो श्रेय क्यों कर हो सक्ता है? अरु जो तुमने कहाथा कि हम ज्ञानकूं मानजी लेवे,जो ज्ञानका निश्चय करणेमें कोइ समर्थ होवे, सोजी मूर्खोंका कहनां है, क्योंकि यद्यपि सर्व मतों वाले परस्पर जिन्नही ज्ञान अंगीकार करते हैं, तोजी जिसका वचन दृष्टेष्ट बाधित नहीं अरु पूर्वापर व्याहत नहीं है, सोइ सम्यक् रूप जाननां. तैसा वचन तो जगवानहीका कह्या हूआ हो सक्ता है, सोइ प्रमाण है, शेष नहीं. अरु जो कहा था कि बौधजी अपनें बुद्ध जगवानकों सर्वज्ञ मानते हैं, इत्यादि सोजी असत् है, क्योंकि दृष्टेष्टकरकें तिनका बचन बाधित है, इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं है, तिनका बचन जैसें बाधित है, तैसें आगें लिखेंगे.

तथा जो तुमने कहाथा कि जो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ होवे,तोजी तिस वर्द्धमान स्वामीहीका कह्या हूआ यह आचारांगादि शास्त्र हैं, सो क्योंकर प्रतीत होवे? यहजी तुमारा कहनां दूर हो गया, क्योंकि और किसीका असा दृष्टेष्ट बाधा रहित बचन है नहीं. अरु जो तुमने कहाथा कि यहजी तुमारा कहनां होवेकि आचारांगादि यह जो शास्त्र है, सो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञके कहे हूये हैं तोजी वर्द्धमान स्वामीके उपदेशका यही अर्थ है अन्य नहीं है इत्यादि. सोजी अयुक्त है क्योंकि जगवान् जो है,सो वीतराग है, अरु जो वीतराग होता है, सो किसीकूं कपट उपदेश देकर जूलाता नहीं है. क्योंकि विप्रतारणेका हेतु जो रागादि दोषोंका समूह सो जगवानमें नहीं है, अरु जो सर्वज्ञ होता है, सो जानता है, जो इस शिष्यने विपरीत समजा है, अरु इसने सम्यक् समजा है, तब तो जिसने विपरीत समजा है, तिसकूं मनाकर देते है, अरु जगवानने तो गौतमादिकोंकों मने नहीं करा, इस वास्ते गौतमादिकोने सम्यगही जाना है, अरु जो कहाथा कि गौतमादि छद्मस्थ हैं, इत्यादि. सोजी असार है, क्योंकि छद्मस्थजी उक्त रीति करकें जगवानके उपदेशसेंही यथार्थ वक्ता निश्चय हो सक्ता है, तथा विचित्र अर्थोंवाले शब्दजी जगवाननेही कहे हैं, सो शब्द जैसें जैसें प्रकरण होगा, तैसें तैसें ही अर्थका प्रतिपादक हो सक्ता है, इस वास्ते कोइजी दूषण

नहीं क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारें तिस तिस अर्थका निश्चय हो जाता है, अरु गौतमादिकोंनें जिस जिस जगे जिस जिस शब्दका जैसा जैसा अर्थ करा है, सो जगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेजी जाना जाता है, जो गौतमादिकने यथार्थही जाना है, अरु यथार्थही शब्दोंका अर्थ करा है, अरु जो कुछ गौतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविछिन्न परंपरा करकें अब ताइ तैसेही अर्थका अवगम होता है, ऐसेंजी न कहना कि आचार्योंकी परंपरा हमकूं प्रमाण नहीं? क्यों कि अविपरीतार्थ कहने करकें आचार्योंकी परंपराकों कोइजी जूठी करने समर्थ नहीं.

एक औरजी बात है, कि तुमारा जो मत है, सो आगम मूल है? वा अनागम मूल है? जे कर कहोगे कि आगम मूल है, तब तो आचार्योंकी परंपरा क्योंकर अप्रामाणिक हो सकि है? आचार्योंकी परंपरा बिना, आगमका अर्थही क्योंकर जाना जाये? जे कर कहोगे कि अनागममूल है, तब तो उन्मत्तके विरचित बचनवत् प्रामाणिक न होवेगा.

पूर्वपक्षः-यद्यपि हमारा मत अनागम मूल है, तोजी युक्ति संयुक्त है, इस वास्ते हम मानते हैं.

उत्तरपक्षः-अहो "डुरंतः स्वदर्शनानुरागः" कैसा जारी अपणे मतका राग है, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध जाषण तो अज्ञान मतका जूषण है?

पूर्वपक्षः-किसी तरें हमारा पूर्वापर विरुद्ध बोलनाही हमारे मतका जूषण है?

उत्तरपक्षः-युक्तियां जो होतीयां हैं, सो ज्ञानमूलही होतीयां हैं; अरु तुम तो अज्ञानहीकूं श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें सत् युक्तियों का कैसें संजव होवे? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके जाषक हो, इस हेतुसें तुमारा मत किसीजी कामका नहीं है॥इति अज्ञानवादि मत खंमनं॥

अथ विनयवादीके मतका खंमन लिखते हैं. अब जो विनयहीसें मोक्ष मानते हैं सोजी एकांत वादके मोहसें हैं, क्योंके विनय मुक्तिका अंग है, जो मुक्ति मार्गमें चलते हैं, तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः इति बचनात्" सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, अरु सम्यक् चारित्र रूप है, ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण है, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार जूत जो बहुश्रुतादिक

पुरुष है, तिनकी जो विनय करे, बहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, सो परंपरा करकें मुक्तिका अंग हो सक्ता है; परंतु जो सुर, नरपति आदिककी विनय है, सो संसारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय करता है, वो उसके गुणोंकों बहु मान देता है; अरु सुर, नरपति, प्रमुखोंमें तो विषय जोगनेका प्रधान गुण है, जब उनकी विनय करी, तब तो उनके जोगोंकूं बहु मान दीया, जब जोगोकूं बहु मान दीया, तब दीर्घ संसारपथकी प्रवृत्ति कर लीनी. इस वास्ते एकांत विनयसें जो मोक्ष मानते हैं, सोजी असत् वादी हैं, क्योंकी ज्ञानादिकोंमें रहित विनय साक्षात् मुक्तिका अंग नहीं है. ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें रहित पुरुष, केवल पादपतनादिक विनयमें मुक्ति नहीं पा सक्ता है. किंतु ज्ञानादिक सहितही पा सक्ता है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अंग हूये विनय नहीं.

पूर्वपक्षः—कैसे हम जानीयें जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अंग है ?

उत्तरपक्षः—इस संसारमें मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोही करकें कर्म वर्गणाका संबंध आत्माकों होता है, अरु कर्मकालका जो क्षय होना है, सोइ मोक्ष है. “ मुक्तिः कर्मक्षयादिष्टेति वचनप्रामाण्यात् ” अरु कर्मका क्षय तो तब होगा. जब कर्मबंधका कारण उछेद होगा, अरु कर्मका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है, इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष सम्यक् दर्शन है, अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरतिका प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र है, जब इन तीनोकों सेवता हुवा, यह तीनो प्रकर्ष जावकों प्राप्त होगे, तब सर्वथा कर्मोंका कारण दूर होवेगा. जब कारण उछेद होवेगा, तब निर्मूल कर्मोछेदके होनेसें मोक्ष होवेगी, इस वास्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अंग है, परंतु विनय मात्र नहीं. अरु जो ज्ञानादिकों विषे विनय करता हूवा परंपरा करकें मुक्ति अंग है, अरु साक्षात् मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोंमें केइ जगें लिखा है कि “ सर्वकल्याणजाजनं विनयः ” सो ज्ञानादिकोंकी प्रवृत्ति वास्ते है, अरु जे कर विनयवादीजी इसी तरें मानता है, तब तो विनयवादीजी हमारे मतमेंही वर्त्ते है, तब तो विवादकाही अजाव है ॥ इति विनयवादी मत खंमनं ॥ यह समुच्चय (३६३) मतका किंचित् मात्र स्वरूप लिखा है.

अथ जव्य जीवोंके शीघ्र बोध होनें वास्ते षट् दर्शनोंका किंचित् स्वरू

प लिखते हैं. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं, बौद्ध मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक मूंमया हुवा, २ चामका टूकडा, ३ कमंमलु, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उन का वेष है. अरु शोचक्रिया बहुत है, कोमल शय्यामें सोनां, सबेरे उठक र पेया पीनां, मध्यान्ह कालमें जात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, डाक्षा, खंम, मिसरी. अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका चलन है, तथा मनगमता जोजन करनां, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी अछी सामग्रीसें मुनि अछा ध्यान करता है. अरु जिक्षा पात्रमें जो कुछ पड जावे, सो सर्व शुद्ध, ऐसे मान करकें मांसजी खा लेते हैं, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते हैं. यह उनका आचार है, १ धर्म्म, २ बुद्ध, ३ संघ, यह तीनोंकों रत्नत्रय कह ते हैं, अरु शासनके विघ्नोके नाश करने वाली तारा देवी मानते हैं, अरु विपश्यादिक सात बौद्धावतार जिनोंकी मूर्त्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं जगवान मानते हैं. तिसकूं सर्वज्ञ मानते हैं.

अरु बुद्ध जगवानकों जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं, १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्म्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बोधि सत्त्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान, १२ षडजिज्ञ, १३ दशार्ह, १४ दशजूमिग, १५ चतुस्त्रिंशज्जातकज्ञ, १६ दशपा रमिताधर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशबल, १९ त्रिकाय, २० श्रीघन, २१ अद्वय, २२ समंतजद्र, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मा रजित्, २७ लोकजित्, २८ सुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्रक, ३१ महामैत्र, ३२ मुनींद्र. यह बत्तीस नाम, बुद्ध जगवानके कहते हैं. अरु सात बुद्ध मानते है, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वजू, ४ क्रकुछंद, ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. पीछला जो शाक्यसिंह बुद्ध है, उ सके नाम, १ शाकसिंह, २ अर्कबांधव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्थसिद्ध, ५ गौतम, ६ मायासुत, ७ शुद्धोदनसुत, ८ देवदत्ताग्रज. तथा १ जिक्षु, २ सौगत, ३ शाक्य, ४ शौद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवादी बौ द्धोंके नाम हैं. तथा १ शौद्धोदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्चट, ४ धर्मकीर्त्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ दिग्नाग, ७ रामट. इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हैं. तथा

१ तर्कभाषा, २ न्यायबिंदु, ३ हेतुबिंद, ४ अर्वट, ५ तर्ककर्मजशैत, ६ न्यायप्रवेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बोद्धोंकी शाखा चार है. सो कहते हैं, १ वैनाषिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बोद्धमतं. बोद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखतेहैं, १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ संस्कारस्कंध. ५ रूपस्कंध. इन पांचो विना अपर कोइभी आत्मादिक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, रसविज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान है, सो विज्ञान स्कंध, २ सुखा दुःखा. अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोंसें होती है, ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध, ४ पुण्य अपुण्यादिक धर्म समुदाय जो है, सो संस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्रबोधमें पूर्व अनुभवका स्मरणादिक होता है. ५ पृथिवी, धातु आदिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोसें अतिरिक्त आत्मादिक कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे सर्व एक क्षणमात्र रहते हैं. नित्यभी नहीं है, अरु कितनेक काल तांइ रहनेवालेभी नहीं है, यह दुःख तत्त्वके पांच भेद कहे.

अथ दुःख तत्त्वका कारणभूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं, जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है? कि "आत्माआत्मीयभावाख्यः" मैं हूं, यह मेरा है, ऐसा जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो संबंध. सोइ है नाम जिसका इस करकें जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते है, तिसका नाम समुदायतत्त्व है. अथ दुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों हैं, सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु है.

अब इन दोनोंके जो विपक्षभूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं. कि "परमनिःकृष्ट कालःक्षणं" तिसमें जो होवे. सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं, आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं. पूर्वक्षणके नाश होनेसें तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वासना सो उत्तर ज्ञानमें शक्ति है, अरु क्षणोंकी परंपरा करकें जो मान

सी प्रतीति होवे, तिसका नाम मार्ग्ग है, सो निरोधका कारण जाननां. अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते हैं, निरोध नामा तत्त्व मोक्षकों कहते हैं. चित्तकी जो निःक्लेश अवस्था तिस्का नाम निरोध तत्त्व है, नामांतर करिकें मोक्ष कहते हैं, यह दुःखादि चारकों आर्यसंत्त्व कहते हैं, अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे हैं, सो सौतांत्रिक बौद्धमतकी अपेक्षा है.

अरु जेकर भेद रहित समुच्चय बौद्धमतकी विवक्षा करियें, तब तो बौद्धमतमें बारा पदार्थ होते हैं, उसमें १ श्रोत्र, २ चक्षु, ३ घ्राण, ४ रसन, ५ स्पर्शन. यह पांच तो इंद्रिय, अरु इन पांचों इंद्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है, सुख दुःखादि तिनका जो आयतन (घर) सो क्या है? कि शरीर है यह सर्व द्वादश तत्त्वोंका नाम आयतन कहते हैं, अरु यह बारा आयतन क्षणिक हैं, उक्त प्रकारसें. चार तत्त्व तो सौतांत्रिकके मतके, अरु सामान्य प्रकारसें बौद्धमतके बारा आयतन कह करकें अब बौद्धमतके प्रमाण लिखते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण मानते हैं ॥ इति संक्षेप मात्र बौद्धदर्शनं ॥ १ ॥

अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं. नैयायिक मतका अपर नाम यौगमतभी कहते हैं; इन नैयायिकोंके गुरु १ दंभ रखते हैं. २ बडी कौपीन पहेरतें हैं, ३ कांबली उढते हैं, ४ जटा राखते हैं. ५ शरीरकों भस्म लगाते हैं. ६ नीरस आहार करते हैं, ७ बांहके मूलमें तूंबी राखते हैं, ८ प्रायः करकें वनोमें रहते है, ९ आतिथ्य कर्ममें तत्पर होते हैं. १० कंद, मूल, फल, खाते हैं. ११ कितनेक स्त्री रखते हैं, औ कितनेक नहीं रखते हैं, १२ जो स्त्री नहीं रखते हैं, सो तिनमें उत्तम गणे जाते हैं, १३ पंचाग्नि तापते हैं, १४ जटामें प्राणलिंग धरते हैं, १५ उत्तम संयम अवस्थामें जब प्राप्त होते है, तब नग्न हो कर भ्रमण करते हैं, १६ सवेरे दंत पादादि शौच करकें शिवका ध्यान करते हैं, १७ भस्म करकें तीन तीन वार अंगकूं स्पर्श करते हैं, १८ जो उनका भक्त बंदना करता है, सो " ॐ नमः शिवाय " कहता है, अरु १९ गुरु भक्तके तांइ " शिवाय नमः " ऐसे कहता है. उनका कहना ऐसाभी है, कि जो पुरुष शैवी दीक्षा बारां वर्षपाल करकें छोड देवे, जे कर पीछे वो दास दासीभी होवे, तोभी निर्वाण

पद पाता है, अरु शंकर इनका देव है, सो शंकर कैसा हैकिः—सर्व सृष्टि का संहारका कर्त्ता है.

तिस शंकरके अगारह अवतार मानते हैं, तिसका नाम लिखते हैं. १ नकुलीश, २ कौशिक, ३ गार्ग्य, ४ मैत्र, ५ कौरुष, ६ ईशान, ७ अपर गार्ग्य, ८ कपिलांड, ९ मनुष्यक, १० अपर कुशिक, ११ अत्रि, १२ पिंगलाक्ष. १३ पुष्पक, १४ बृहदाचार्य, १५ अगस्ति, १६ संतान, १७ राशिकर, (१८) विद्यागुरु, यह अठारह उनके तीर्थेश हैं, इनकी बहुत सेवा करते हैं, इनका पूजन, अरु प्रणिधान तिनके शास्त्रोंसें जान लेनां.

अरु इनका अक्षपाद मुनि अर्थात् गौतम मुनि गुरु है, तिनके मतमें भरट पूजनिक है. सो कहते हैं, देवतावोंके सन्मुख हो कर नमस्कार न करणी, जैसा नैयायिक मतमें लिंग, वेष, देवादि स्वरूप है, तैसाही वैशेषिक मतमेंभी जान लेनां, क्योंकि नैयायिक वैशेषिकोंके प्रमाण अरु तत्त्वोंमें थोडासा भेद है. इस वास्ते यह दोनो मत तुल्य ही है,इन दोनों हीकों तपस्वी कहते हैं, अरु तिनके शैवादिक चार भेद हैं, एक शैव, दूसरा पाशुपत, तीसरा महाव्रतधर, चौथा कालमुख. इनके अवांतर भेद भरट. भक्तलिंगिक, तापसादिक है, भरटादिकोंकों व्रत ग्रहणेमें ब्राह्मणादि वर्णोका नियम नहीं, किंतु जिसकी शिव विषे भक्ति होवे, सो व्रती भरटादिक होता है, परंतु नैयायिक जो है, सो सर्व सदाशिव भक्त होनेमें उनका नाम शैव कहते है. अरु वैशेषिकोंकों पाशुपत कहते है.

इन नैयायिकोंके मतमें १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शाब्द, यह चार प्रमाण मानते है, अरु १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क. ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२ वितंडा, १३ हेत्वाभास, १४ छल. १५ जातय, १६ निग्रहस्थान. यह सोला पदार्थ मानते हैं, इनका विस्तार बहुत है, इस वास्ते नहीं लिखा, अरु आत्यंतिक दुःखोंका जो वियोग तिसकूं मोक्ष कहते हैं. इनके १ न्यायसूत्र. अक्षपाद मुनि कर्त्ता. २ भाष्य, वात्स्यायन मुनि कर्त्ता, ३ न्याय वार्त्तिक, उद्योतकर कर्त्ता, ४ तात्पर्य टीका, वाचस्पति कर्त्ता, ५ तात्पर्य परिशुद्धि, उदयन कर्त्ता, ६ न्यायालंकार वृत्ति, श्रीकंठाभयतिलकोपाध्याय कर्त्ता, ७ भासर्वज्ञप्रणीत,

न्यायसार. तिसविषे अगारह टीका है, तिनमेंसूं न्यायनूषण नामक टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि यह सब इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ हैं, यह नैयायिकदर्शन. संक्षेपसें लिखा.

अथ वैशेषिकनी यही लिख देते हैं. कि वैशेषिकोंका मत नैयायिकों के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अरु अनुमान यह दो प्रमाण मानते हैं. अरु १ द्रव्य. २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष. ६ समवाय, यह नावरूप ७ तत्त्वों मानते हैं, इन सबका विस्तार देखनां होवे. तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोमें देख लेनां, तथा तपागच्छाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित षट्दर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका देख लेनी. अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ हैं. सो कहते हैं, एक तो ६००० श्लोक प्रमाण, कंदली श्रीधर आचार्य कर्त्ता, वैशेषिक सूत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर नाष्य, ७०० श्लोक मान. व्योमशिवाचार्यकृत व्योममतीटीका, ९००० श्लोक मान, उदयनकी करी हूइ किरणावली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यकृत लीलावती टीका ६००० श्लोकमान, अरु एक आत्रेय तंत्र था. सो व्यवच्छेद हो गया है. यह वैशेषिक मतवाले कहते हैं की शिवजीने उलूकका रूप करके कणाद मुनि के आगें यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका नाम औलूक्य मतनी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मतं ॥

अथ सांख्यमत लिखते हैं. प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जाननें वास्ते उनका लिंगादिक लिखते हैं. सो त्रिदंडी होते हैं. कोपीन पहरते हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते हैं. कोइ शिर उपर शिखा रखते हैं. अरु कोइ जटा रखते हैं, कोइ मस्तक क्षुरमुंड कराते हैं. मृगचर्मका आसन रखते हैं. द्विजके घरका अन्न खाते हैं. केइ पांचही ग्रास खाते हैं. अरु बारा अक्षरका जाप करते हैं, तिनके नक्त, जब गुरुकूं वंदना करता है, तब "ॐ नमो नारायणाय" असे कहते हैं, तब गुरु उनकूं "नमो नारायणाय" असे कहते हैं, अरु महानारतमें जिसका नाम "वाटा" असा लिखा है. यह काष्ठकी मुखवस्त्रिका मुखके निःश्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, जिसमें मुखश्वासमें जीवहिंसा न होवे. यदाहुः ॥ श्लोक ॥ तेप्राणादनुयातेन, श्वासनैकेन जंतवः ॥ हन्यंते शतशो ब्रह्म, ऋणुमात्राक्षरवादिनः ॥ १ ॥ ते सांख्य गुरु, ज

लके जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके छानने वास्ते गलनां राख ते है, अरु अपनें नकोंकूं पाणीके छानने वास्ते तीस अंगुल प्रमाण लां बा और वीश अंगुल प्रमाण चौडा. दृढ छलना राखनेका उपदेश करते है, अरु जो जीव पानीके छाननेमें निकले. वो उसी पाणीमें पीछे प्रक्षेप करने, क्योंकि मीठे पाणी करकें खारे पाणीके पूरे मर जाते हैं, अरु खारे पा णीके मिलनेमें मीठे पाणीके पूरे मर जाते है, इस वास्ते परस्पर पानी योंका मेल न करनां, वहुत सूक्ष्म पाणीके एक बिंदुमें इतने जीव है कि जे कर भ्रमर समान त्रस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे जीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमांसायां ॥

यह सांख्यभी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, असे दो तरेंके हैं, नवीनोका दूसरा नाम पातंजलभी कहते है. इनमेंसूं प्राचीन सांख्य ईश्वरकों नहीं मानते है. अरु नवीन सांख्य ईश्वरकों मानते है, जो निरीश्वर है वो ना रायण पर है, अरु उनके जो आचार्य है, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैत न्य प्रमुख शब्दों करकें कहे जाते है. अरु सांख्य मत कहने वाले यह आचार्य है सो लिखते है. कपिल. आसुरी. पंचशिख, भार्गव, उलूक, ईश्वर, कृष्ण.यह शास्त्रोंके कर्त्ता है. सांख्यमत वालोंकों कापिलाभी कहते है. तथा कपिलाका परमर्षि एसा दूसराभी नाम है. इस वास्ते तिनकों पारमर्षाभी कहते है, वाणारसोमें सो बहुत होते है.मासोपवासभी करते है, अरु ब्रा ह्मण जो है, सो अर्चिमार्गमें विरुद्ध धूममार्गानुगामी है, अरु सांख्य जो है. सो अर्चिमार्गानुयायी है, तिस वास्ते ब्राह्मणोको तो वेद प्यारे है. अरु यज्ञमार्गानुयायी है. अरु सांख्य जो है सो हिंसा करकें पूर्ण. असे जो वेद. तिनोंसें निवर्त्त हूये है, अध्यात्मवादी है सो सांख्य अपने मतकी महिमा असी मानते है. माठर शास्त्रके प्रांतमें लिखा है ॥श्लोक॥ हस पिब लल खाद मोदं,नित्यं भुंक्ष्व च भोगान् यथाऽभिकामं॥ यदि विदितं कपिलमतं,तत्प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अस्यार्थः—जे कर तुमने कपिल मत जाना है तो हसो, पीयो, खेलो, खाओ. सदा खुशी रहो, जैसें रुचि होवे, तैसें भोगोंको सदा भोगो, तो तुमकों थोडेसे कालमें मुक्ति सुख प्राप्त होवेगा. शास्त्रांतरमेंभी कहा है ॥ श्लोक ॥ पंचविंशति तत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ शिखी मुंडी जटी वापि, मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥

अस्यार्थः—पच्चीश तत्वोंका जो जानकार होवे,सो चाहो किसी आश्रममें रहे, शिखावाला होवे, या मुंमित होवे, अथवा जटावाला होवे, वे सर्व उपाधिसें छुट जाते हैं, इसमें संशय नहीं.

अब सांख्यमतमें सर्वसांख्य पच्चीश तत्त्व मानते हैं,जब पुरुष तीन दुःखोसें अनिहत होता है, तब तिन दुःखोंके दूर करणे वास्ते जिज्ञासा उत्पन्न होती है, सो तीन दुःख यह हैं १ आध्यात्मिक, २ आधिदैविक, ३ आधिजौतिक, यह तीन दुःख हैं, आध्यात्मिक जो आधि है, सो दो प्रकारकी है, एक शारीरी, दूसरी मानसी. तहां जो वायु, पित्त, श्लेष्म, इन तीनोकी विषमतासें देहमें जो अतिसारादिक होते हैं, सो शारीरिक है. अरु काम, क्रोध, लोज, मोह, ईर्ष्या, विषयोंके देखनेसें जो होवे, सो मानसी. यह दोनोही आंतर उपायसें दूर हो सकि हैं इस वास्ते इसकूं आध्यात्मिक दुःख कहते हैं, २ अरु जो बाह्य उपाय करकें साध्या जावे सो दुःख दो प्रकारके हैं, एक आधिजौतिक, दूसरा आधिदैविक, तहां जो दुःख मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सर्प, स्थावर आदिके निमित्त करिकें होता है ताकूं आधिजौतिक कहते हैं. ३ अरु यक्ष, राक्षस, जूतादिकका प्रवेश हो जाना, तथा महामारी अनावृष्टि अतिवृष्टिका होना तिसका नाम आधिजौतिक है. इन तीनों दुःखो करकें रज परिणामके जेद करकें प्राणीयोंकों दुःखोंके दूर करणे वास्ते तत्त्वोंके जाननेकी इच्छा होती है, सो तत्त्व, पच्चीश प्रकारके हैं.

अब प्रथम पच्चीश तत्त्वोंका स्वरूप लिखते है. तिनमें प्रथम सत्त्वादि गुणोंका स्वरूप कहते हैं. १ प्रथम सत्त्वगुण सुखलक्षण. २ दूसरा रजोगुण दुःख लक्षण, ३ तीसरा तमोगुण मोहलक्षण, इन तीनो गुणोंके यह लिंग हैं. १ सत्त्वगुणका चिन्ह प्रसन्नता, २ रजोगुणका चिन्ह संताप, ३ तमोगुणका चिन्ह दीनपणा, अब १ प्रसाद, २ बुद्धिपाटव, ३ लाघव, ४ प्रश्रय, ५ अनजिष्वंग, ६ अद्वेष, ७ प्रीत्यादय, यह सत्त्वगुणके कार्यलिंग हैं, १ ताप, २ शोष, ३ जेद, ४ चलचित्त, ५ स्तंज, ६ उद्वेग, यह रजोगुणके कार्य लिंग हैं, १ दैन्य, २ मोह, ३ मरण, ४ असादन, ५ बीनत्सा, ६ ज्ञानगौरवादि, यह तमोगुणके कार्यलिंग हैं. इन कार्यों करकें सत्त्वादि गुण जाने जाते हैं ॥ तथाहि ॥ लोकमें जो कुछ सुख उपलब्ध होता है,

सो १ आर्जव, २ मार्दव, ३ सत्य, ४ शौच, ५ लज्जा, ६ बुद्धि, ७ क्षमा, ८ अनुकंपा, प्रसादादि, यह सर्व सत्त्व गुणके कार्य्य हैं. अरु जो कुछ दुःख उपलब्ध होता है, सो १ द्वेष, २ द्रोह, ३ मत्सर, ४ निंदावचन, ५ बंधन, तापादि स्थान हैं, सो रजोगुणके कार्य्य हैं. अरु जो कुछ मोह, उपलब्ध होता है, सो १ अज्ञान, २ मद, ३ आलस्य, ४ भय, ५ दैन्य, ६ कृपणता, ७ नास्तिकता, ८ विषाद, ९ उन्माद स्वप्नादि, यह तमोगुणके कार्य्य हैं. यह सत्त्वादिक परस्परोपकारी तीन गुणों करकें सर्व जगत् व्याप्त है, परंतु ऊर्ध्व लोकमें देवतायों विषे बाहुल्य करकें सत्त्वगुण हैं, औ अधोलोक तिर्यंच नरकों विषे बाहुल्य करकें तमोगुण है, औ मनुष्यों में बहुलता करकें रजो गुण है, इन तीनो गुणों की जो सम अवस्था है, तिसका नाम प्रकृति है, तिस प्रकृतिकों प्रधान, अव्यक्त शब्दों करकेंभी कहते हैं, सो प्रकृति नित्य स्वरूप है, "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं कूटस्थं नित्यं" यह नित्यका लक्षण है. अरु यह जो प्रकृति है सो अन्वय, वा असाधारणी, अशब्दा, अस्पर्शा, अरसा, अरूपा, अगंधा, अव्यया, कहते है. अरु जो मूल सांख्यमती है, वे एकैक आत्माके साथ न्यारा न्यारा प्रधान मानते हैं, अरु जो नवीन सांख्य है, वे सर्वात्माओमें एक, नित्य, प्रधान मानते हैं, प्रकृति अरु आत्माके संयोगसें सृष्टि होती है, इस वास्ते सृष्टि होनेका क्रम लिखते हैं.

तिस प्रकृतिसेंभी बुद्धि उत्पन्न होती है, गौ आदिकोंके आगें दीखनें सें यह गौही है घोडा नहीं, यह स्थाणुही है, परंतु पुरुष नहीं, ऐसा जो निश्चयरूप अध्यवसाय होता है, तिसका नाम बुद्धि कहते हैं, दूसरा तिसका नाम महत्तभी कहते है. तिस बुद्धिके आठ रूप हैं. १ धर्म, २ ज्ञान, ३ वैराग्य, ४ ऐश्वर्य, यह चार तो सात्विक बुद्धिके रूप है, १ अधर्म, २ अज्ञान, ३ अवैराग्य, ४ अनैश्वर्य्य, यह चारो तामसी बुद्धिके रूप है. तिस बुद्धिसें अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसेंभि सोला गुणका समूह उत्पन्न होता है, सो गुण यह है, १ स्पर्शनं (त्वक्) २ रसनं जिव्हा, ३ घ्राणं नासिका, ४ चक्षु लोचनं, ५ श्रोत्र श्रवणं. इन पांचोकों बुद्धींद्रिय कहते हैं, क्योंकि यह पांचों अपणे अपणे विषयकों जानती है, अरु पांच कर्मेंद्रिय है. १ पायु गुदा, २ उपस्थ स्त्री पुरुषका चिन्ह, ३

कंठादि आठस्थानोसें जो शब्द उच्चारियें है, सो वच, ४ हाथ, ५ पग, इन पांचोसें पांच काम होते हैं. १ मलोत्सर्ग, २ संजोग, ३ वचन, ४ पकडनां, ५ चलनां, इस वास्ते इन पांचोंकों कर्मेंद्रिय कहते हैं. अरु अगीआरवा मन, यह मन जो हैं, सो बुद्धींद्रियोंसें मिलता है, तब बुद्धींद्रियरूप हो जाता है, अरु जब कर्मेंद्रियोंसें मिलता है, तब कर्मेंद्रिय रूप हो जाता है, अरु यह मन जो है, सो संकल्पवृत्ति है, तथा अहंकारसेंती पांच तन्मात्रा जिनकी सूक्ष्म संज्ञा है, सो उत्पन्न होते हैं, तहां १ रूप तन्मात्रा सो शुक्ल कृष्णादिरूप विशेष, २ रस तन्मात्रा सो तिक्तादि रस विशेष, ३ गंध तन्मात्रा सो सुरभ्यादि गंध विशेष, ४ शब्दतन्मात्रा, सो मधुरादि शब्द विशेष, ५ स्पर्श तन्मात्रा, सो मृदु काठिन्यादि स्पर्श विशेष, यह षोडशका गण है. अथ पांच तन्मात्राओंसें पांच भूत उत्पन्न होते हैं, सो कहते हैं. १ रूप तन्मात्रा सूक्ष्म संज्ञामें अग्नि उत्पन्न होता है, २ रस तन्मात्रासें जल उत्पन्न होता है. ३ गंध तन्मात्रामें पृथिवी उत्पन्न होती है, ४ औ शब्द तन्मात्रासें आकाश उत्पन्न होता है. तथा ५ स्पर्श तन्मात्रासें वायु उत्पन्न होता है. ऐसें पांच तन्मात्राओंमें पांच भूत उत्पन्न होते हैं, ऐसें यह सब मिल कर चोवीश तत्त्व रूप सांख्य मतमें प्रधान निवेदन कीया. "औ अकर्त्ता विगुण भोक्ता" ऐसा पुरुष तत्त्व नित्य चिद्रूप मानते हैं, चोवीश तत्त्वरूप प्रधान ऐसे हैं कि १ प्रकृति, २ महान, ३ अहंकार, ८ पांच ज्ञानेंद्रिय, १३ पांच कर्मेंद्रिय, १४ मन, १९ पांच तन्मात्रा, २४ पांच भूत, यह चोवीश तत्त्व हैं. तिनमेंसें प्रथम एक प्रकृति है. ऐमें अनुत्पन्न होनेसें बुद्धि आदिक सात अगलोंके तो कारण हैं, अरु पीछलोंके कार्य हैं, इस वास्ते इन सातोंको प्रकृति विकृति कहते हैं, अरु षोडशका गण सो कार्यरूप होणेसें विकृति रूप है, अरु पुरुष जो है, सो न प्रकृति है, न विकृति है. न किसीमें उत्पन्न हूआ है, न किसीकों उत्पन्न करता है, इस हेतुसें ॥ तथाचेश्वरः कृष्णः सांख्यसप्ततौ, ॥ " मूलप्रकृतिरविकृति,र्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ॥ षोडशकश्चविकारो.विकृतयः न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुष इति ॥ अर्थः—तथा ईश्वर कृष्ण सांख्यमतका आचार्य सांख्यसप्तति ग्रंथमें लिखता है, कि मूल प्रकृति अविकृति है, महत् आदिक सात प्रकृति विकृति हैं, षोडशक विकार

विकृति हैं. न प्रकृति है, न विकृति है, सो पुरुष है. तथा महदादिक, प्रकृतिका विकार है, सो व्यक्त हो कर फेर अव्यक्तनी हो जाते है, सो अनित्य होनेसें अपणे स्वरूपसें भ्रंश हो जाते हैं, अरु प्रकृति जो है, सो अविकृतिरूप है, सो कदापि अपणे स्वरूपसें भ्रंश नहीं होती है. तथा महत् आदिकोंका अरु प्रकृतिका स्वरूप सांख्यमतवाले ऐसें मानते हैं. १ हेतुमत्, २ अनित्य, ३ अव्यापक, ४ सक्रिय, ५ अनेक, ६ आश्रित, ७ लिंग, ८ सावयव, ९ परतंत्र, १० व्यक्त, इनसें विपरीत प्रकृति है. तहां १ हेतुमत् कारण वाले हैं, महत् आदिक २ अनित्य, उत्पत्ति धर्मवाले हैं. ३ बुद्ध्यादिक अव्यापी है, सर्वगत नहीं, ४ अध्यवसाय करकें संयुक्त वर्त्ते हैं, इस हेतुमें सक्रिय सव्यापार चलने वाले हैं. ५ अनेक, तेवीस प्रकारके हैं इस वास्ते, ६ आश्रित. आत्माके उपकार वास्ते प्रधानकों अवलंब करिकें रहे हैं. ७ लिंग, जो जिससेतें उत्पन्न होते हैं. सो तिसहीमें "लयं कृयं गछतीति लिंगं," तहां पांच भूत, पांच तन्मात्राओमें लय होते हैं, औ पांच तन्मात्रा, अरु दश इंद्रिय, अरु मन, यह अहंकारमें लय होते हैं, अरु अहंकार बुद्धिमें लय होता है, अरु बुद्धि प्रकृतिमें लय होती है, औ प्रकृति किसीमेंनी लय नहीं होती हैं. ८ सावयव, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादिकों करकें संयुक्त है, ९ परतंत्र, कारणके अधीन होनेसें, १० ऐसेंही महत् आदिक व्यक्त हैं, प्रकृति इनमें विपरीत है, सो सुगम है, आपही समझ लेनी. यह थोडासा स्वरूप लिखा है, जे कर विस्तार देखना होवे तदा सांख्य सप्तति आदिक, तिनोंके शास्त्रोंसें जान लेनां.

अथ पच्चीशवा पुरुष तत्त्वका स्वरूप कहते हैं, पुरुषजो है सो "अकर्त्ताविगुणोनोक्ता नित्यचिदन्युपेतश्च" पुरुष तत्त्व आत्माकों कहते हैं, १ आत्माजो है, सो विषय सुखादिक तिनका कारण पुण्यादिक नहीं करता है, इस वास्ते "अकर्त्ता" है, क्योंकि आत्मा तृण मात्रनी तोडने समर्थ नहीं है, औ कर्त्ता जो है, सो प्रकृति है, क्योंकि प्रकृतिमें प्रवृत्ति स्वनाव है, तथा २ "विगुणः" सत्त्वादि गुणरहित है; क्योंकि सत्वादिक जो हैं सो प्रकृतिके धर्म हैं, तथा ३ "नोक्ता" आत्मा नोक्ता नोगने वाला है, नोक्तानी साक्षात् नहीं किंतु प्रकृतिका विकार नूत उनय मुख दर्प्पणाकार जो बुद्धि है, तिसमें संक्रमण होय हुवे सुख दुःखोंको पुरुष स्वात्म निर्मलविषे प्रतिबिंबोदय मात्र

करकें "नोक्ता" कहियें है, "बुद्ध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतत" इति वचनात् ॥ जैसें जाइकें फूलोंके सन्निधानके वशसें स्फटिकमें रक्तादि कहेनेंमें आता है, तैसें प्रकृतिके निकट होनेसें पुरुषनी सुख दुःखोंका नोक्ता कह्या जाता है, सांख्यमतका वाद महार्णवनी कहता है, उक्तंच "बुद्धिदर्प्पणसंक्रांतं, समर्थप्रतिबिंबकं ॥ द्वितीयदर्प्पणं कल्पे, पुंसिअध्यारोहति ॥ तदेव नोक्तृत्व मस्य नत्वात्मनोविकारापत्तिरिति" ॥ इसका तात्पर्यार्थ उपर लिखा जानना.

तथा च कपिलका शिष्य आसुरिनी कहता है ॥ श्लोक ॥ विवक्ते दृक्परिणतौ, बुद्धौ नोगोऽस्य कथ्यते ॥ प्रतिबिंबोदयः स्वछे,यथा चंद्रमसोंनसि ॥१॥ तथा विंध्यवासी सांख्याचार्य आत्माकों असें नोक्ता कहता है, कि पुरुष जो है, सो अविकृतात्माही है, स्वनिर्जास अचेतनमन करता है, तिस मनकी निकटतासें उपाधि स्फटिकवत् दिखलाइ देती है, तथा "नित्या या चिच्चेतना तयाऽन्युपेतः" इस कहने करकें पुरुषही चैतन्य स्वरूप है, "नतु ज्ञानस्य" (परंतु ज्ञान को नहीं) क्योंकि ज्ञानकों बुद्धिधर्म होनेसें. तथा पतंजलीनी असेही कहता है. तथा "पुमान्" यह जो एक वचन है, सो जातिकी अपेक्षा है, परंतु आत्मा अनंत है, क्योंकि जन्म मरण कारणोंके नियम देखनेसें. तथा धर्मादिक प्रवृत्ति नाना देखनेंसें. सो सर्व अनंत आत्मा सर्वगत अरु नित्य है ॥ उक्तंच॥ अमूर्त्तिश्चेतनो नोगी,नित्यः सर्वगतोऽक्रियः॥अकर्त्ता निर्गुणः सूक्ष्म,आत्माकापिलदर्शनइति

सांख्यमतमें प्रमाण तीन मानते है, १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शाब्द, इस मतका नाम सांख्य वा शांख्य किस वास्ते कहते हैं? तिसका हेतु कहियें हैं. संख्या प्रकृति तत्त्व पच्चीश रूप तिनकों जो जाने, वा पढे, इति सांख्य. तथा जे कर तालवी शकारसें बोलियें तब शांख्य, तिनके मतमें शंख ध्वनि है असी वृद्धोंकी आम्नायसें यह नाम है, तथा शंख नामक कोइ आद्य पुरुष हूआ है, "तस्यापत्यं पौत्रादिरिति गर्गादित्वादयस्त्रीप्रत्यये शांख्यास्तेषामिदं दर्शनं सांख्यं शांखं वा ॥ इति सांख्यमतं संक्षेपतःसंपूर्णं ॥

अथ मीमांसक मत लिखते हैं. इसका दूसरा नाम जैमिनीयानी कहते हैं, इस मत वाले सांख्यमतकी तरें एकदंमी, त्रिदंमी होते हैं, धातु रक्त वस्त्र पहिरते हैं, मृगचर्मके आसन उपर बैठते हैं, कमंमल रखते हैं, शिर मुंमित रखते हैं, संन्यासी प्रमुख द्विज इस मतमें होते हैं, ति

नका वेदही गुरु है, परंतु और वक्ता गुरु कोइ नहीं. सो आपणे आपकों सन्नस्तं सन्नस्तं कहते हैं, यज्ञोपवीतको प्रक्षाल करकें तीन वार जल पीते हैं, सो मीमांसक दो प्रकारके हैं. एक याज्ञिकादि हैं, ते पूर्व मीमांसक हैं, दूसरे उत्तर मीमांसावादी हैं, कुकर्मके वर्जक यजनादिक षट् कर्मके करणहार, ब्रह्मसूत्रके धारक, गृहस्थाश्रममें स्थित,शूद्रका अन्नादिक वर्जते हैं, तिनकेभी दो भेद हैं, एक भट्ट, दूसरे प्रभाकर, उसमें भट्ट छै प्रमाण मानते हैं, अरु प्रभाकर पांच प्रमाण मानते हैं, अरु जो उत्तरमीमांसक है, सो वैदांतिक है, ब्रह्माद्वैतही मानते हैं, "सर्वमेवेदं ब्रह्मेति भापंते" तिस पर प्रमाण देते हैं, कि एकही आत्मा सर्व शरीरोंमें उपलब्ध होता है ॥ श्लोक ॥ एकएव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ "पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यमिति वचनात्" ॥ आत्माहीमें लय होना मुक्ति मानते हैं, और कोइ मुक्ति नहीं मानते सो, मीमांसक द्विजही भगवत्जिनका नाम है, सो चार प्रकारके हैं, १ कुटीचर, २ बहूदक, ३ हंस, ४ परमहंस. तिन मेंसूं १ त्रिदंडी. सशिखा, ब्रह्मसूत्री. गृहत्यागी, यजमान, परिग्रही, एक वार पुत्रके घरमें भोजन करता है, कुटीमें वसता है, तिनकों कुटीचर कहते हैं. २ तुल्य वेष, पूर्वोक्त विप्रके घरमें नीरस भिक्षाभोजी, विष्णुजाप पर नदीके तीरमें रहता है. तिसकों बहूदक कहते हैं, ३ ब्रह्मसूत्र शिखा करकें रहित, कषाय वस्त्र, दंडधारी, ग्राममें एक रात्रि अरु नगरमें तीन रात्रि रहता है, धूम रहित जब अग्नि हो जावे, तब ब्राह्मणके घरमें भोजन करता है, अरु तप करकें शोषित शरीर, देशोमें फिरता रहता है, तिसकूं हंस कहते हैं, हंसकूंही जब ज्ञान हो जाता है, तब चारों वर्णोंके घरमें भोजन कर लेता है, अपनी इच्छासें दंड रखता है, ईशानदिशाके सन्मुख जाता है, जे कर शक्ति हीन हो जावे, तब अनशन ग्रहण करता है, ४ वेदांतैकध्यायी तिसकूं परमहंस कहते है, इन चारोंमेंसूं परःपरोऽधिक यह चारोंही केवल ब्रह्माद्वैतवाद साधनेमें व्यसनी हैं, इत्यादिक इस मतका स्वरूप हैं.

अथ पूर्वमीमांसा वादीयोंका मत विशेष करकें लिखते हैं. जैमिनी मत वाले कहते है, कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, सृष्ट्यादिकका कर्त्ता,इन

पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त कोइजी देव नहीं है, जिस देवका बचन प्रामाणिक होवे,प्रथम तो देवही वक्ता कोइ नहीं,जिसका कह्या हूआ बचन प्रमाण होवे, अनुमानं पुरुष सर्वज्ञ नहीं, मनुष्य होनेसें, रथ्या पुरुषवत्.

पूर्वपक्षः—किंकर हो कर जिसकी असुर, सुर, सेवा करते हैं, औ तीन लोकके ऐश्वर्यके सूचक, छत्र चामरादि जिसकी विभूति है, सो सर्वज्ञ विना क्यों कर हो सक्ती है ?

उत्तरपक्षः—यह विभूति तो इंद्रजालीयाजी बना सक्ता है, क्योंकि इस बातका साक्षी जैनमतका समंतभद्र आचार्यजी है ॥श्लोक॥ देवागमनभोयान,चामरादिविभूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते,ह्यतस्त्वमसि नो महान् ॥१॥

पूर्वपक्षः—जैसें अनादि सुवर्णका मल, क्षार मृत्पुटपाकादिकोंकी क्रिया विशेषसें शोध्यमान सुवर्णको सर्वथा निर्मलता हो जाती है, ऐसें आत्माभी निरंतर ज्ञानादिकोंके अभ्यासमें निर्मल होनेसें सर्वज्ञ पणेका संभव क्यों कर न होवे ? किंतु होही जावेगा.

उत्तरपक्षः—यह कहनांभी तुमारा ठीक नहीं है. क्योंकि अभ्यास करनेसेंभी शुद्धिकी तारतम्यताही होती है, परंतु परम प्रकर्ष अवस्था नहीं होती है, क्योंकि जो पुरुष चलनेका अभ्यास करे, एतावता कूदनेका, छलांक मारनेका, फाल मारनेका अभ्यास करेगा, वो दश हाथ कूद जावेगा. वीश हाथ कूद जावेगा,परंतु शत योजन कूदनेका अभ्यास कदापि न होवेगा, सर्व लोककूं कूदके जानेका अभ्यास कदापि न होवेगा,ऐसे आत्माभी अभ्यास द्वारा सर्वज्ञ नहीं हो सक्ता है.

पूर्वपक्षः—मनुष्यकों सर्वज्ञता मत होवो, परंतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिकोंको तो सर्वज्ञता होवे, क्योंकि तिनको तो जगत् ईश्वर मानता है, इस बातकों कुमारिलभी कहता है. अथापि दिव्य देह होनेसें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनकों सर्वज्ञता होवे, मनुष्यकों सर्वज्ञता क्यों कर होवे ?

उत्तरपक्षः—जो राग द्वेषमें मग्न हैं, औ निग्रह अनुग्रहमें ग्रस्त है, काम सेवनमें तत्पर है, ऐसे लक्षण वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्यों कर सर्वज्ञ हो सक्ते हैं ? क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणभी सर्वज्ञका साधक नहीं है, कारणके इंद्रियों वर्त्तमान वस्तुहीकों ग्रहण करती हैं. अरु अनुमानसेंभी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्व

कही प्रवृत्त हो सक्ता है, अरु आगमजी सर्वज्ञकी सिद्धि करणेवाला कोइ नहीं. क्योंकि आगम सर्व विवादास्पद हैं. उपमानजी नहीं, क्योंकि दूसरा सर्वज्ञ कोइ होवे, तब उपमान बने, तैसेंही अर्थापत्तिसेंजी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अन्यथा अनुपपद्यमान औसा कोइ पदार्थ नहीं है, जिसके होनेसें सर्वज्ञ सिद्ध होवे. जब जावग्राहक पांच प्रमाणों सें सिद्ध न हूआ, तब सर्वज्ञ अजाव प्रमाणका विषय हूआ, यह अनुमानजी सर्वज्ञकी नास्ति सिद्धकर्त्ता प्रयोग नहीं है. सर्वज्ञ प्रत्यक्षादि गोचरके अतिक्रांत होनेसें शशशृंगवत् जब कोइ सर्वज्ञ देव नहीं, अरु उस सर्वज्ञ देवका कह्या हूआ कोइ शास्त्र नहीं,तब अतींद्रिय अर्थका ज्ञान केसें होवे? औसी मनमें आशंका करकें जैमिनी कहता हैकि "तस्मात्" तिस कारणसें, "अतींद्रिय" इंद्रियोंकी विषय रहित जो आत्मा, धर्माधर्म, काल, स्वर्ग, नरक, परमाणु प्रमुख जो पदार्थ है. तिनका साक्षात् करतलामलकवत् देखने वाला कोइ नहीं. इस हेतुसें नित्य जो वेद वाक्य हैं, तिनोंहीमें यथार्थ तत्त्वका निश्चय होता है, क्योंकि वेद जो हैं, सो अपौरुषेय हैं. एतावता किसीकेजी रचे हूये नहीं. अनादि नित्य है. तिन वेद वचनोंमेंही अतींद्रिय पदार्थोंका ज्ञान होता है. परंतु किसी सर्वज्ञके कहे हूये आगममें नहीं होता है, क्योंकि सर्वज्ञ कोइजी न हुआ है,न वर्त्तमानमें है,न आगें कोइ होवेगा ॥ यथाहुस्ते ॥ अतींद्रियाणामर्थानां, साक्षाद्रष्टा न विद्यते ॥ वचनेनहि नित्येन. यः पश्यति स पश्यति ॥१॥

प्रश्नः—अपौरुषेय वेदांतका अर्थ कैसें जाना जाये?

उत्तरः—अव्यवछिन्न जो हमारी परंपरा तिससें जाना जाता है,इसी वास्ते सर्वज्ञादिकोंके अजाव होनेसें प्रथम वेदोंहीका पाठ प्रयत्नसें करना चाहियें. वेद चार हैं, १ ऋग्. २ यजुर्,३ साम.४ आथर्व. इन चारोंका पाठ करकें तिसके पीछें धर्मकी जिज्ञासा करनी चाहियें. धर्म जो है, सो अतींद्रिय है, अरु जो धर्म है, सो कैसा है? अरु किस प्रमाणसें हम जानेंगे? औसी जो जाननेकी इछा है, तिसका नाम जिज्ञासा है. सो करणी कैसी है? वो जिज्ञासा धर्मसाधनी (धर्मसाधनेका) उपाय है. तब तिस नोदनाके निमित्त दो हैं, एक जनक, दूसरा ग्राहक, इहां ग्राहक निमित्त जाननां. इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं.

प्रेरीयें श्रेय साधक इव्यादिकों विषे जीवोंकों, इस करकें सो नोदना वेदवचनकी करी हूइ प्रेरणा है ॥ इत्यर्थः॥ धर्मजो है, सो नोदना करकें जानीयें है. इस वास्ते नोदना लक्षणधर्म है, धर्मकों अतींद्रिय होने करकें नोदनाहीसें जानीयें है, और किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाणोसें नहीं जाना जाता है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक विद्यमानके उपलंनक है, अरु धर्म जो है, सो कर्त्तव्यतारूप है, अरु कर्त्तव्य जो है, सो त्रिकाल स्वनाव वाली है, तिस कर्त्तव्यताका ज्ञान नोदनाही उत्पन्न कर सक्ती है, यह मीमांसकोंका अन्युपगम है.

अथ नोदनाका व्याख्यान करिये हैं. अग्निहोत्र, सर्व जीवोंकी अहिंसा दानादिक क्रिया, इनोके करने वास्ते जो प्रवर्त्तक प्रेरक वेदोंके वचन हैं, सोइ नोदना है. जैसे " अग्निहोत्रं जुहूयात्स्वर्गकामः " असा जो प्रवर्त्तक वेदबचन है, सो नोदना जाननी. " यथा ॥ न हिंस्यात् सर्वनूतानि, तथा न वैहिंस्रो नवेत्" इन वचनों करकें प्रेरया हूआ इव्य, गुण कर्मोंकरकें जो हवनादिक विषे प्रवर्त्त होता है, सो धर्म है, अरु इन वेद वचनों करकें प्रेरया हूआनी जो न प्रवर्त्ते, वा विपरीत प्रवर्त्ते, तिसकों नरकादि अनिष्ट फल होता है. शाबर नाष्यमेंनी असेही कहता है.

यह जैमनी षट् प्रमाण मानता है. १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शब्द, ४ उपमान, ५ अर्थापत्ति, ६ अनाव, इनका विस्तार षट्दर्शन समुच्चय की टीकासें जानना ॥ इति संक्षेपतो मीमांसमतं ॥ ५ ॥

यह पांच दर्शन आस्तिक कहे जाते हैं, अरु उठा जैन दर्शन है, तिसका स्वरूप अगले परिछेदमें लिखा जायगा, तथा नास्तिक जो है, सो दर्शनमें नहीं. " नास्तिकं तु नदर्शनमिति राजशेखर सूरिकृत षट्दर्शन समुच्चय वचनात् " तोनी नव्य जीवोंके जानने वास्ते कछुक स्वरूप लिखते हैं.

कपाली, नस्म लगाने वाले, योगी, ब्राह्मणादि, अंत्य जातिके लोक, जिनकों लोक वाममार्गी कहते हैं, तथा कौलिक, इत्यादिक नास्तिक हैं, तिनके मतका नाम नास्तिक चार्वाक कहते हैं, वो जीव पुण्य पापादिक कछु नहीं मानते हैं, चार नौतिक देह मानते हैं, तथा सर्व जगत्ही चार नौतिक मानते हैं.

अरु कोइ चार्वाकैकदेशीया आकाशकों पांचमा नूत मानते हैं, पांच

जूतात्मक जगत् है, ऐसें कहते हैं, तिनोंके मतमें जूतोंसेंतीही मद्यशक्तिवत् चैतन्य उत्पन्न होता है, पाणीके बुलबुलेंकी तरें जो शरीर है, सोही जीव है, इस मत वाले मद्य मांस खाते हैं, माता, बहिन, बेटी, आदिक जो अगम्य है, तिनकोंजी गमन कर लेते हैं, ते नास्तिक वामी, वर्ष वर्ष विषे एक दिनमें सर्व एक जगा एकठे होते हैं, स्त्रीकों नंगी करकें उसकी योनिकी पूजा करते हैं, अरु विषय सेवनजी करते हैं, इत्यादि ऐसा बुरा काम करते हैं, जो इस पुस्तकमें लिखते मुझकों लज्जा आती है, इस वास्ते नहीं लिखा है, सो नास्तिक,कामसें अपर (दूसरा) कोइ धर्म नहीं मानते हैं, किंतु कामहीकूं धर्म मानते हैं.

इस मतकी उत्पत्ति जैनमतके शीलतरंगिणी नामक शास्त्रमें ऐसें लिखी है, सो कहते हैं. एक बृहस्पतिनामा ब्राह्मण था, दूसरा उसका नाम देवव्यासजी था, उसकी एक बहिन थी, वो उसकी बहिन बाल विधवा हो गइ थी, उसके सासरोमें ऐसा कोइ न था, जिनके आश्रयसें वो अपना जीवितव्य संपूर्ण करती, तातें निराधार हो कर, अपनें जाइके घरमें आ रही, वो अत्यंतरूप अरु यौवनवंत थी, अरु जो उसका जाइ था तिसकी जार्या मृत्युकों प्राप्त हो गइ थी, तब तो बृहस्पतिकों कामनें अत्यंत पीडा दीनी, तब उनकूं आपनी बहिनके साथ विषय सेवनकी इछा जइ, अपनी बहिनसें प्रार्थना करी कि हे जगिनी! मेरे साथ तुं संजोग कर, तब तिसकी बहिनने कहा कि हे जाई! यह बात उजय लोक विरुद्ध है,सो में क्योंकर करुं? क्यों कि प्रथम तो मैं तेरी बहिन हूं,जे कर जाइके साथ विषय जोग करुं तो अवश्यमेव नरकमें जाउंगी,अरु यह बात जो जगत्में प्रसिद्ध हो जावेंगी, तब तो लोक मुझकों धिक्कार देवेंगे. ऐसी बात सुन कर बृहस्पतिने अपने मनमें शोचा कि जब तक इसके मनसें पाप अरु नरकादिकोंका जय दूर न होवेगा, तब तक यह मेरे साथ कजी संजोग न करेगी? ऐसा विचार करकें बृहस्पति सूत्र रचे, तिन सूत्रोंसें पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरकका अजाव,सिद्ध करकें अपनी बहिनकों शास्त्र सुना करकें प्रतिबोध करा. तब तो तिसकी बहिननें अपने मनमें विचार करा कि यह जो शरीर है, सोतो पांच जौतिक है, अरु इस शरीरसें अतिरिक्त आत्मा नामक कोइ पदार्थ नहीं है, तब तो पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, कु

जनी सिद्ध नहीं होता है, तो फेर मैं इन मूर्ख लोकोंकी लज्जा करकें अप ना यौवन वृथा काहेकों खोऊं? ऐसे विचार करकें अपने जाइके साथ विषयजोग करनेमें लुब्ध हो गई, जब लोकोंकों यह बात जान पडी, तब लोक निंदा करने लगे, तब तो बृहस्पति निर्लज्ज हो कर लोकोंकों नास्तिक मतका उपदेश करने लगा, तब तो जो अत्यंत विषयी अरु अज्ञानी जन थे, वे उसके शिष्य होते नये, कितनेक काल पीछें उनके शिष्योंने अपने मतकों बडा करनेके वास्ते कहते नये कि यह जो हमारा मत है, सो देवतावोंका गुरु जो बृहस्पति नामक आकाशमें ग्रह है, तिसने प्रवृत्त करा है, अरु बृहस्पतिसेंति अन्य कोइ दूसरा बुद्धिमान् नहीं है, इस वास्ते हमारा मत सच्चा है, इस बृहस्पतिका होना हमारे चोवीशमे तीर्थंकर श्रीमहावीरसें पहिलें सिद्ध है, क्योंकि श्रीमहावीरके कथन करे हूये शास्त्रोंमें चार्वाकमतका निरूपण है. ऐसें चार्वाक मतकी उत्पत्ति है, इस मतका नाम चार्वाक, लोकायितादि है, "चर्व अदनें चर्वंति, जक्षयंति तत्त्वतो न मन्यंते पुण्यपापादिकं परोक्षवस्तुजातमिति चार्वाकाः ॥ मयाकश्यामाकेत्यादि सिद्ध है, मोणादि दंमकेनशब्दनिपातनं. लोका निर्विचाराः सामान्या लोकास्तद्वदाचरंति स्मेति लोकायिताः लोकायितकाइत्यपि ॥ बृहस्पतिप्रणीतमतत्त्वेन बार्हस्पत्याश्चेति" चर्व जो धातु है. सो नक्षण अर्थमें है, चर्वण (नक्षण) जो करे, तात्पर्यार्थसें जो पुण्य पापादिक परोक्ष वस्तु समूहकों न माने, सो चार्वाक, मयाक श्यामाक इत्यादि सिद्ध है. हेमव्याकरणके उणादिदंमक करकें निपातसें सिद्ध है, तथा लोक निर्विचार है.सामान्य लोकोंकी तरें जो आचरण करते नये हैं, ते लोकायिता लोकायितका ऐसेंनी है. तथा बृहस्पतिके प्ररूपणेसें इस मतका नाम बार्हस्पत्यनी कहते हैं.

अथ चार्वाकका मत लिखते है. नास्तिक ऐसें कहते है कि, जीव चेतना लक्षण परलोकमें जानेवाला नहीं, पांच महाजूतसें जो चेतन उत्पन्न होता है, सोनी इहांही जूतोंके नाश होनेसें नाश हो जाता है, जेकर जीव परलोकसें आया होवे, तब परलोकका स्मरण होना चाहियें, परंतु सो तो होता नहीं, इस वास्ते जीव न परलोकसें आया है, अरु न परलोकमें जाने वाला है. तथा जीव स्थानमें जो देव ऐसा पाव मानीयें, त

व सर्वज्ञादि विशेषण विशिष्ट कोइ देव नहीं, तथा मोक्षभी नहीं, धर्माध में नहीं, पुण्य पाप नहीं, पुण्यपापका जो फल नरक, स्वर्ग, सोभी नहीं, "तथाच तन्मतं ॥श्लोक॥ एतावानेव लोकोयं, यावानिंद्रियगोचरः ॥ भद्रे वृकपदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुताः ॥१॥ अस्यार्थः–इतनाही मनुष्य लोक है, जितना प्रत्यक्ष देखनेमें आता है. क्योंकि जो पदार्थ इंद्रियोंसें ग्रह्या जाता है, सोइ पदार्थ है, और दूसरा कोइभी पदार्थ नहीं है, यहा लोक शब्द की जगें लोकमें जो रहे हूये पदार्थ हैं, सो ग्रहण करणे. अरु सो इस लोकमें परे हें, जीव, पुण्य, पाप, अरु तिनका फल जो स्वर्ग नरकादिक सो अप्रत्यक्ष होनेसें नहीं है. जे कर अप्रत्यक्षभी माने जावे तब तो शशशृंग वंध्यापुत्रादिभी होने चाहियें, पंचविध प्रत्यक्ष करकें यथाक्रम १ मृदु कठोरादि वस्तु २ तिक्त, कटु, कषायादि द्रव्य, ३ सुरभि दुरभिरूप गंध, ४ भू, भूधर, भुवन, भूरुह, स्तंभ, कुंभ, अंभोरुहादि, नर, पशु, श्वा पदादि, स्थावर, जंगम प्रमुख पदार्थोंका समूह, ५ विविध, वेणु वीणादि ककी ध्वनि, इन पांचोंके विना और कुछभी नहीं प्रतीत होता है, पांच भूतोंसें व्यतिरिक्त नरक स्वर्गके जाने वाला जीव जब प्रत्यक्ष प्रमाणसें न सिद्ध भया, तब तो जीवोंके सुखदुःखोंका कारण धर्माधर्म है, अरु तिन धर्माधर्मके उत्कृष्ट फल भोगनेकी भूमि स्वर्ग नरक है, अरु सर्वथा पुण्य पापके क्षय होनेसें मोक्ष सुख जो वर्णन करते हें, यह सर्व पूर्वोक्त वर्णन ऐसा है, कि जैसा आकाशमें चित्राम करणां है. क्योंकि जीव नतो किसी ने स्पर्शा है, न किसीने खा कर स्वाद चखा है, न किसीने सूंघा है, न किसीने देखा है, न किसीने शब्दवत् सुना है, फेर मूढमति किसतरें जीव कों मान करकें स्वर्गादि सुखोंकी इछा करकें शिर. दाढी, मौंछ, मुंडवा करकें नाना प्रकारका दुःकर तप करकें शीत, आतप सह करकें वृथाही इस श रीरकी विडंबना करकें इस मनुष्य जन्मकों खराब कर रहे हें? यह उनकी समझकी विडंबना है॥ तदुक्तं ॥श्लोक॥ तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो भोग वंचना ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥१॥ यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, तावद्वैषयिकं सुखं ॥ भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः ॥ १ ॥ इत्यादि. तिस वास्ते यह सिद्ध हूआकि जो इंद्रियगोचर है, सोइ तात्त्विक है.

अथ जो परोक्ष प्रमाण, अनुमानागमादिकों करकें जीव, अरु पुण्य

पापादिकोंकूं व्यवस्थापन करते हैं, अरु कदाचित् स्थापन करनेसें हटते नहीं है, तिनकें प्रतिबोधने वास्तें दृष्टांत कहते हैं " जडे वृकपदं पश्यत्य आर्यं संप्रदायः " कोइक पुरुष नास्तिक मत करकें वा स्वस्यांतःकरण अपणी नार्याकों आस्तिक मत विषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करकें अपणे शास्त्रोक्त युक्तियों करकें " प्रत्यहं " प्रतिबोध करता है, जब वो प्रतिबोध नहीं होती, तब उसने विचारा जो यह इस उपाय करकें प्रतिबोध होवेगी, ऐसें स्वचित्तमें चिंतन करकें रात्रिके पीछले प्रहरमें तिस स्त्रीके साथ नगरसें निकल करकें तिस आपणी नार्याकों कहता हूआ, हे वल्लजे! यह जो इस नगरके वसने वाले लोक परोक्ष पदार्थोंकों अनुमानादि प्रमाणों करकें सिद्ध करते हैं, अरु लोकमें बहुत शास्त्रोंके पढे हूये कहलाते हैं, अब तूं तिनको चातुर्य देख, ऐसें कह कर नगरके दरवाजेसें ले कर चौंक तक सूक्ष्म धूलीमें अपणे हाथों करकें नेडीयेंके पंजोंका आकार कर दीया, तस पीछें प्रातःकालमें ते नेडीयेंके पंजे देख कर बहुत लोक राजमार्गमें मिलते नये, तब तो बहुश्रुतजी तहां आ गये, सो बहुश्रुत लोकोंकों कहने लगे कि नो लोको! नेडीयेंके पगोंकी अन्यथा अनुपपत्ति करकें निश्चयही कोईक नेडीया रात्रिमें बनसेंती इहां आया था, तब तो वो नास्तिक मती तिनकों तैसें कहते हूआंकों देख करकें निज नार्याकों कहता हूआ कि हे नडे? "वृकपदं" (नेडीयेंका पंजा) तूं देख, जिस पंजेकूं नेडीयेंका पंजा अबहुश्रुत कहते हैं, लोक रूढीसें यह बहुश्रुत कहलाते है, परंतु परमार्थसें महा गोठ हैं, क्योंकि ये परमार्थ तो कुछ जानते नहीं हैं, केवल देखा देखी रौला करने लग रहे हैं, परमार्थसें इनका बचन मानने योग्य नहीं है, ऐसेंही बहुत मतोंवाले धार्मिक, छद्म (धूर्त्त) दूसरोंके ठगनेमें तत्पर सो कछुक अनुमान आगमादि करकें दृढपणेसें जीवादिकी अस्ति सिद्ध करकें वृथाही नोले लोकोंकों स्वर्गादि सुखोंका लोन दिखा कर नक्ष्यानक्ष्य, गम्यागम्य, हेयोपादेयादि, संकटोमें गेरते हैं, बहुत मूर्खोंकों धार्मिक पणेका व्यामोह उत्पन्न करते हैं, इस वास्ते बुद्धिमानोंकों उनका बचन मानना न चाहियें. तब तो तिसकी नार्या अपने पतिके सर्व बचन मानती नई, तिसके पीछें तिसका पति जो अपनी नार्याकूं उपदेश देता नया, सो इहां लिखते हैं.

॥ श्लोक ॥ पिब खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि भीरु गतं निवर्त्तते, समुदायमात्र मिदं कलेवरं ॥१॥ व्याख्याः—हे चारुलोचने! शोभन (सुंदर) आंखवाली "पिब" पी, तूं पेयापेयकी व्यवस्था छोड कर मदिरापान कर. न केवल मदिराही पी, "खाद च" भक्षाभक्षकी निरपेक्षा करकें मांसादिक खा, तथा गम्यागम्यका विभाग त्याग कर भोगों कों भोग कर अपना यौवन सफल कर, जो कुछ यौवनादि अतिक्रांत, (व्यतीत) हो गया है! हे वरगात्रि! हे प्रधानांगि! फेर वो तुझकों न मिलेगा, अति काम राग जनावनेके वास्ते बहुत संबोधन पद कहे हैं, इस वास्ते पुनरुक्ति दोष नहीं है. किसीकी आशंका मनमें ला कर बृहस्पति मत वाला कहता हैं, कि अपनी इछा करकें जो खान, पान, भोग, विलास करेगा, उसकूं परलोकमें कष्ट परंपरा पावणी बहुत सुलभ है, औ जो सुकृत करेंगे, उनकों भवांतरमें सुख यौवनादिक पावनां सुलभ है, असी परकी आशंका दूर करने वास्ते बृहस्पति कहता है. नहीं हे भीरु! परके कहने मात्र करकें नरकादि दुःखोंकी प्राप्ति, इस लोकके यौवनादिको सें निवर्त्त होनां, एतावता इस लोकमें विषयभोग करकें यौवनका सुख तो नहीं लेनां, अरु परलोकमें हमकों यौवनादिक फेर मिलेगा, असे परलोकके सुखोंकी इछा करकें तपश्चरणादि कष्ट क्रिया करकें जो इस लोकके सुखोंकी उपेक्षा करनी है, सो महा मूढताका चिन्ह है.

अथ शुभाशुभ कर्मके वश करकें इस जीवने अवश्य परलोकमेंभी स्वकर्म हेतुक सुख दुःखादि वेदना होवेगी, असी आशंका मनमें ला करकें बृहस्पति कहता है कि "समुदायमात्रं" समुदायभूत चारोंका संयोग मात्रही यह "कलेवरं" (शरीर है,) परंतु चारों भूतोंके संयोग मात्रसें अपर दूसरा भवांतरमें जानेवाला, शुभाशुभ कर्मविपाकका भोगने वाला, असा जीव नामक कोइभी पदार्थ नहीं, अरु चारों भूतका जो संयोग है, सो विजलीके उद्योतकी तरें क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है, इस वास्ते परलोकका भय मत कर. हे हरिणाक्षि! जैसे मन माने, असा खा, पी, भोग विलास कर.

अथ प्रमेय प्रमाण दोनो कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्वी जलं तथा तेजो, वायुर्भूतचतुष्टयं ॥ आधारो भूमिरेतेषां, मानं त्वक्षजमेव हि ॥ १ ॥ अर्थः—१ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, यह चारभूत हैं, अरु इन

चारोंकी आधार पृथ्वी है, अरु किसी जगें ऐसा पाठ है कि "चैतन्यभूमिरे तेषां" इन चारोंकों चैतन्यभूमि कहते हैं, यह चारों एकठे हो के रसें चैतन्य उत्पन्न करते हैं. तथा इन चार्वाकोंके मतमें यह चारों भूत प्रमाणकी भूमिका प्रमाणका विषय तात्त्विक है, अरु इन चार्वाकोंके मतमें, प्रमाण तो एक प्रत्यक्षही है.

अथ भूतचतुष्टयसें देहकों चेतनता क्यों कर हो जाती है? ऐसी आशंका करकें कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्व्यादिभूतसंहत्या, तथा देहपरीणतेः ॥ मदशक्तिः सुरांगेभ्यो, यद्वत्तद्विदात्मनि ॥ १ ॥ अर्थः—"पृथिव्यादीनि" पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तिनकी जो "संहतिः" संयोग तिस करकें जो देहकी परिणाम, तिसतें जैसें मदिराके अंगोसें (गुड धातकी आदिकोंसें) उन्माद शक्ति उत्पन्न होती है, ऐसेंही इस देहमें चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है, परंतु देहसें अन्य जीव पदार्थ नहीं होते, औ आदि शब्दसें पर्वतादि सर्व पदार्थ चार भूतोंसेंही उत्पन्न है. इस वास्ते दृष्ट सुखोंका त्याग न करनां. अरु अदृष्ट सुखोंमें प्रवृत्त होनां, यह तो लोकोंकी बडी मूर्खता है, अरु जो शांतिरसमें मग्न हो कर मोक्ष सुखका वर्णन करते हैं, वेभी महा मूढ है. क्योंकि काम (मैथुन) सेवनसें अधिक न कोइ धर्म है. अरु न कोइ मोक्ष है. न कोइ सुख है ॥ इति चार्वाकमतं संक्षेपतः संपूर्ण ॥

यह जो उपर मत लिखे हैं, इनके जो उपदेशक है, वे सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि जो इनोंके मत हैं, वे युक्तिप्रमाणसें खंडित हो जाते हैं, अरु पूर्वापर व्याहत है, पूर्वापर विरोधी है.

पूर्वपक्षः—अहो जैन! अरिहंतके कहे हूये तत्त्वका तुझकों बडा राग है, इस करकें तुम अपने मतको तो निर्दोष ठहराते हो, अरु हमारे मतोंकों पूर्वापर विरोधी कहते हो, परंतु हमारे मतोंमें कुछभी पूर्वापर व्याहतपणां नहीं है, क्योंकि हमारे जो मत हैं, सो निर्दोष हैं. उनकों जो पूर्वापर व्याहत (कलंक) देना है, सो ऐसा है कि जैसा अमृतके पुंजमें मक्खीका बिंडु गेर देनां.

उत्तरपक्षः—हे वादीयो! तुम अपने अपने मतका पक्षपात छोड कर मध्यस्थपणेको अवलंबन करकें अरु निरभिमान हो करकें सुंदर बुद्धिकों

धार करकें सुनो. में तुमारे मतोमें पूर्वापर व्याहत पणा दिखलाता हूं. प्रथम बौद्धमें पूर्वापर विरोध उद्भावन करते हैं.

प्रथम तो बौद्ध मतमें सर्व पदार्थ क्षणभंगुर कह करकें पीछेसें ऐसें कहा है. "नाननुकृतान्वयव्यतिरेकं कारणं नाकारणं विषय इति" अस्याय मर्थः—ज्ञान अर्थके होते हूयांही उत्पन्न होता है,परंतु अर्थके बिना नहिं होता है. ऐसें अनुकृत अन्वयव्यतिरेक अर्थज्ञानका है अरु कारण जिस थकी अर्थज्ञान उत्पन्न होता है, तिस कारणहीकों विषय करता है. इस कहनेमें अर्थकों दो क्षण स्थिति वाला कहा ॥ तद्यथा ॥ अर्थरूप कारणमें ज्ञान कार्य उत्पन्न होता है, अरु एकही समयमें कारण, कार्य, उत्पन्न नहीं होते हैं, तब तो ज्ञान अपने जनक अर्थहीकों ग्रहण करता है. "नापरं नाकारणं विषय इति वचनात्" ॥ जब ऐसें हूआ तब तो अर्थकों दो समयकी स्थिति जोरा जोरी हो गइ. अरु बौद्ध मतमें द्वय समय स्थिति वाला कोइ पदार्थ नहीं, एक तो यह पूर्वापर विरोध है.

तथा "नाकारणं विषय इत्युक्तं" जो पदार्थ ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है, उस पदार्थकों ज्ञान विषयभी नहीं करता है, ऐसें कह कर फेर योगी प्रत्यक्ष ज्ञानकों अतीत अनागत पदार्थोंका जानने वाला कहा है, अरु अतीत पदार्थ तो नष्ट हो गये है, तथा अनागत पदार्थ उत्पन्न नहीं हूये हैं, इस वास्ते अतीत अनागत पदार्थ ज्ञानके कारण नहीं हो सके हैं, तब अकारणकों योगी प्रत्यक्षका विषय कहना. यह दूसरा पूर्वापर विरोध है.

ऐसेही साध्य साधनोंकी व्याप्ति औ ग्राहक व्याप्ति ग्रहण करानें वालेकूं कारण पणेके अभावसें त्रिकालगत अर्थकों विषय कहने वालेकों क्यों नहीं पूर्वापर व्याघात होवेगा? क्योंकि कारणहीकों प्रमाणका विषय मान्या है. इस वास्ते तीसरा पूर्वापर विरोध है.

तथा क्षण क्षय अंगीकार करणेमें जिनका काल भिन्न भिन्न है, ऐसे जो अन्वयव्यतिरेक तिनकी प्रतिपत्ति नहीं संभव होती है, तब तो साध्य साधनोंके त्रिकाल विषय व्याप्ति ग्रहण मानने वालेकों पूर्वापर व्याहति क्यों नहीं? यह चोथा पूर्वापर विरोध है.

तथा सर्व पदार्थोंकों क्षणक्षयी मान करकें पीछेसें बुद्धनें ऐसें कहा

है ॥ श्लोक ॥ इतएकनवते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषोहतः ॥ तेन कर्मविपाकेन, पादे विद्धोस्मि भिक्षवः ॥ १ ॥ इस श्लोकमें जन्मांतरविषेमें शब्द का प्रयोग करणे करके विरुद्ध बोलता हूआ बुद्ध, क्यों कर पूर्वापर विरोध न कहनां चाहियें ? यह पांचमा पूर्वापर विरोध है.

तथा "निरंश सर्व वस्तु है" ऐसें प्रथम कह कर फेर " हिंसा विरति दान चित्तस्वसंवेदनं अरु स्वगतं सद्व्यचेतनत्व स्वर्गप्रापण शक्त्यादिकं गृ ह्णदपि स्वर्गप्रापण शक्त्यादेरंशस्येति सांशतां पश्चाद्वदतः सौगतस्य कथं पूर्वापरविरुद्धं वचो न स्यात् ॥ " यह छठा विरोध है.

ऐसेही निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रमाण नीलादिक वस्तुओंकों सर्व प्रकार करकें ग्रहण करता हूआनी नीलादिक अंश विषे निर्णय उत्पन्न करता है, परंतु नीलादि अर्थगत क्षणक्षय अंशविषय निर्णय नहीं उत्पन्न करता है, ऐसें सांशताकों कहता हूआं सौगतकों पूर्वापर वचन विरोध सुबोधही है. यह सातमा विरोध है.

तथा हेतुकों तीन रूप वाला मानता है, अरु संशयकों दो उल्लेख वाला मानता है, अरु कहता है फेर सांश वस्तुकों नहीं मानता है, यहनी आठमा पूर्वापर विरोध है.

तथा परस्पर अनमिले हुये परमाणु निकटता संबंध वाले एकठे हो कर घटादि रूपपणे प्रतिभास होते हैं, परंतु आपसमें अंगांगीभाव रूप करकें कोइनी कार्य नहीं आरंभ करते, यह बौद्धोंका मत है, तिसमें यह दूषण है कि आपसमें परमाणुओंके अनमिलनेसें घटका एक देश जब हम हाथसें पकडेंगे, तब संपूर्ण घटकों नहीं रहनां चाहियें, तथा घटके उठानेसेंनी एक देशही घटका उठना चाहियें. परंतु संपूर्ण घट नहीं उठना चाहियें, तथा जब घटकों कांठा पकडके हम खेंचेंगे तबभी घटका एक देशही हमारे पास आना चाहियें, परंतु संपूर्ण घट नहीं, अरु जलादि धारण रूप घटका अर्थ क्रियालक्षण सत्व अंगीकार करणे करकें सौगतोंनें परमाणुओंका मिलना मान्या है, अरु तिनके मतमें परमाणुओंका मिलना है नहीं, तिस वास्ते यह नवमा पूर्वापर विरोध है. इत्यादि बौद्ध मतमें अनेक पूर्वापर विरोध है.

अथ बौद्धमतका खंडननी थोडासा लिखते हैं. इन बौद्धोंका यह

मत है कि सर्व पदार्थ नैरात्म्य है, एतावता आत्मस्वरूप आपणे स्वरू
प करकें सदा स्थिर रहनेवाले नहीं है, ऐसी जो भावना, तिसका नाम
नैरात्म्य भावना है, यह जो नैरात्म्य भावना है, सो रागादि क्लेशोंके ना
श करने वाली है, तथाहि जब नैरात्म्य भावना होवेगी, तब अपणे आ
प विषे तथा पुत्र, भाइ, भार्या, आदिकोंविषेभी आत्मीय अभिनिवेश
नहीं होवेगा. एतावता 'यह मेरे हैं' ऐसा मोह न होवेगा. क्योंकि जो आ
प उपकारी है, सो आत्मीय है, अरु जो आपणा प्रतिघातक है, सो द्वे
ष है, जब आत्माही नहीं है, किंतु पूर्वापर क्षण टूटे हूयांका अनुसंधान
है, पूर्व पूर्व हेतु करकें जो प्रतिबद्ध है ज्ञानक्षण, सोइही तैसें तैसें उत्प
न्न होते हैं. तब कौन किसीका उपकर्त्ता अरु उपघातक है? क्योंकि क्ष
णोंकों क्षण मात्र रहने करकें परमार्थमें उपकार अनुपकार नहीं कर स
के हैं. इस वास्ते तत्त्ववेदीयोंकों अपने पुत्रादिकोंमें आत्मीय अभिनिवे
श नहीं है. अरु वैरीयों विषे द्वेष नहीं है, अरु जो लोकोंकों अनात्मीय
पदार्थोंमें आत्मीय अभिनिवेश है, सो अतत्त्व मूल होनेमें अनादि वास
नाके परिपाकने करा है, ऐसें जाननां.

प्रश्नः—यदि परमार्थमें उपकार्युपकारक भाव नहीं, तब तो ऐसें तुम
कैसें कहते हो कि भगवान् सुगत, करुणा करकें सकल जीवोंके उपकार
वास्ते देशना करता हूआ? अरु क्षणिक पणाभी जे कर एकांतही है. त
ब तो तत्त्ववेदी एक क्षण पीछें नष्ट हो गया, अरु तत्त्ववेदी जान
ता था जो मैं पीछें नहीं था अरु आगेंकों मैंने होनां नहीं, तो फेर काहे
कों मोक्ष वास्ते यत्न करे?

उत्तरः—जो तुमने कहा, सो हमारा अभिप्राय न जाननेसें अयुक्त है.
भगवान् जो है, सो प्राचीन अवस्था विषे अवस्थित है, अरु सकल जग
तुकों राग द्वेषादि दुखों करकें संकुल जानता थका कैसें यह सकल जग
तुका दुःख मेरेकों दूर करणां योग्य है? ऐसी दया उत्पन्न होनेसें नैरा
त्म्य क्षणिकत्वादिक जानता हूआभी तिन उपकार्य जीवोंके निःक्लेश क्षण
उत्पन्न करनेके वास्ते स्वप्रजा हित राजेकी तरें अपणी संतति बुद्धि विषे
सकल जगत् साक्षात् करण समर्थ अपणी संततिगत विशिष्ट क्षणकी
उत्पत्तिके वास्ते यत्न आरंभ करता है. क्योंकि सकल जगत् साक्षात्कार

करे विना सर्वकों अक्षण विधान उपकार करणेंकों अशक्य होनेसें तिस वास्ते समुत्पन्न केवल ज्ञान पूर्वस्थापन कृपाके विशेष संस्कार वशतें ज गवान् कृतार्थभी है, तोभी देशना देवेमें प्रवृत्त होता है, तब तो देशना सु न करकें निर्मल बुद्धि नैरात्म्य तत्त्व विचारता हूआ जीवकों जावना प्रकर्ष विशेषसें वैराग्य उत्पन्न होता है, तिससेंती मुक्तिलाज होता है. अरु जो आत्माकों मानता है, तिसकों मुक्तिका संजव नहीं, क्योंकि परमार्थ सेंती आत्माके होते हूयां तिस आत्मामें स्नेह वर्त्तेगा, तिस स्नेहके वश सें तिस आत्माके सुखी होनेकी तृष्णा वाला होता है, अरु तृष्णाके व शसें सुखोंके साधना विषे प्रवृत्त होता है, जब गुण उत्पन्न हूये, तब गुणोमें राग करता है, तिस रागसें यावत्काल आत्माजिनिवेश रहेगा, तावत् काल संसार है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ ये पश्यंत्यात्मानं,तत्रास्याह मि ति शाश्वतः स्नेहः ॥ स्नेहात्सुखेषु तृष्यति, तृष्णा दोषास्तिरस्कुरुते ॥१॥ गु णदर्शिपरितृष्यन्, ममेति तत्साधनान्युपादत्ते ॥ तेनात्माजिनिवेशो. यावत्ताव त्ससंसारः ॥ २ ॥ इति बौद्धमत पूर्वपक्षः ॥

अथ जैनमतकी तरफसें उत्तरपक्षः—यह सर्व कहनां तुमारा अंतःकर णमें वास करणेवाले महा मोहका मोटा विलास है, क्योंकि आत्माके अ जाव हूये बंध मोक्षादिकोंका एकाधिकरणत्व नहीं होवेगा, सोइ दिखाते है.

हे बौद्धो ! तुम आत्मा नहीं मानते हो, किंतु पूर्वापर क्षण टूटाका अनुसंधान ज्ञान क्षणादीको मानते हो, जब ऐसें माना,तब अन्यकों बंध हूआ, अरु अन्यकों मुक्ति हुई,औ क्षुधा औरकों लगी, अरु तृप्ति औरकों हो गइ, तैसेही अनुजवता और हूआ, अरु स्मर्त्ता और हो गया, जुलाब औरने लीया, अरु रालीरोग रहित तो और हो गया, तपः क्लेश तो औरने करा, अरु स्वर्गादिकका फल औरने जोगा, औ पढनेका अन्यास और करने लगा, अरु और कोई पढ गया, यह बात अतिप्रसंग होनेमें कोइ युक्तिसंग त नहीं है, जे कर कहोगे कि संतानकी अपेक्षा करकें बंध मोक्षादिकोंका एक अधिकरण हो सक्ता है, सोजी ठीक नहीं, क्योंकि संतानजी तुमारे मत में नहीं हो सक्ता है, संतान जो है सो संतानीसें जिन्न है ? वा अजिन्न है ? जे कर कहोगेकि जिन्न है, तब तो फेर दो विकल्प तुमारी जेट करते हैं, सो संतान नित्य है ? वा अनित्य है ? जे कर कहोगेकि नित्य है,तब तो तिसकों

बंधमोक्षादिकका संजव नहीं है, क्योंकि सर्वकाल एक स्वजाव होने कर कें तिसके अवस्था विचित्र नहीं हो सक्ती है, अरु तुम तो नित्य मानते नहीं हो, "सर्वं क्षणिकमिति वचनात्" अथ जे कर कहोगे कि क्षणिक है, तब तो वोही प्राचीन बंध मोक्षादि वैय्यधिकरण दूषण प्राप्त हूआ, जे कर कहोगे कि अजिन्न है, तब तो तिससें अजिन्न होनेसें तिसके स्वरूपकी तरें संतानीही हूआ, संतान नहीं जई. जब ऐसें हूआ, तब तो तदवस्थही पूर्वला दूषण है, जे कर कहोगे कि क्षणासेंति अन्य संतान कोइ नहीं. किंतु जो कार्य कारण जाव प्रबंध करकें क्षण जाव है, सोइ संतान है, तिस वास्ते दोष कोइ नहीं है, यहजी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि तुमारे मतमें कार्य कारण जावजी नहीं घटता है, सोइ दिखाते हैं, कि प्रतीत्य समुत्पादमात्र कार्य कारण जाव है, तिसनें यथाविवक्षित घट क्षणानंतर घट क्षण है, तैसें पटादि क्षणजी है, अरु जैसें घट क्षणसें पहिला अनंतर विवक्षित घटक्षण है, तैसें पटादि क्षणजी है, तब तो कैसें प्रतिनियत कार्य कारण जावका अवगम होवे?

एक औरजी दूषण है, सो यह है कि:—कारणसेंती उत्पन्न होता हूआ जो कार्य, सो सत् उत्पन्न होता है? वा असत् उत्पन्न होता है? जे कर कहोगेकि सत् उत्पन्न होता है, तब तो कार्योत्पत्ति कालमेंजी कारण सत् हूआ, अरु तब कार्य कारणकों समकालताका प्रसंग हूआ, अरु एक कालमें दो पदार्थोंका कार्य कारण जाव मान्या नहीं है, अन्यथा माता पुत्रका व्यवहार न होवेगा, घट पटादिकोंकाजी परस्पर कार्य कारण जावका प्रसंग हो जावेगा. जे कर असत् पक्ष मानोगे, तो सोजी अयुक्त है, क्योंकि जो असत् है, सो कार्य नहीं हो सक्ता है, अन्यथा खरशृंगसेंतीजी कार्य उत्पन्न होनां चाहियें, अरु अत्यंताजाव, प्रध्वंसाजाव. दोनोंही जगे वस्तुसत्ताका संजव होनेसें इन दोनोका कोइजी विशेष न हूआ, जे कर कहोगेकि प्रध्वंसाजावमें वस्तु थी, इस करकें हेतु है, तब तो जब थी तब हेतु नहीं, अन्यदा हेतु हुआ; ऐसें तो बहुत अच्छी तत्त्वव्यवस्था जइ.

एक औरजी बात है, कि तद्भावे जाव ऐसे अवगममें कार्य कारण जावका अवगम है, सो जो तद्भावे जाव है, सो क्या प्रत्यक्ष करकें प्रतीत होता है? वा अनुमान करकें प्रतीत होता है? प्रत्यक्ष करकें तो

नहीं, क्योंकि पूर्व वस्तुगत प्रत्यक्ष करकें पूर्ववस्तु परिछिन्न हुइ, अरु उत्तर वस्तुगत करकें उत्तर वस्तु हुइ, अरु ये दोनो परस्पर स्वरूपकों जानते नहीं, अरु इन दोनोंका अनुसंधान करने वाला अैसा तीसरा एक स्वरूप कोइ मानते नहीं हैं, तिस वास्ते इसके अनंतर इसका भाव है, अैसें किस तरें अवगम होवे? सो तो तिसकूंभी प्रत्यक्षपूर्वक होनेसें अनुमान करकेंभी नहीं होवे, अरु अनुमान जो है, सो लिंग लिंगी संबंध ग्रहणपूर्वक प्रवृत्त होता है, अरु लिंग लिंगीका संबंध तो प्रत्यक्ष करकें ग्राह्य है, जे कर अनुमानसें संबंध ग्रहण करियें, तब अनवस्थादूषण आता है. अरु कार्य कारण भाव विषे प्रत्यक्ष प्रवृत्त होता नहीं, तिस वास्ते अनुमानकी भी प्रवृत्ति नहीं, अैसेंही ज्ञानके दोनो क्षणोंकोंभी परस्पर कार्य कारण भावका अवगमभी निषेध हुआ जाननां. तहांभी स्वसंवेदन करकें अपणे अपणे रूपके ग्रहणेमें परस्पर स्वरूप अनवधारणसें तदनंतरमें उत्पन्न हूआ हूं, अरु इसका मैं जनक हूं, अैसी अवगतिके न होनेसें तुमारे मतमें कार्यकारण भाव नहीं है. अरु तिसका अवगमभी नहीं है, तिसतें मृषा ही यह तुमारा कहनां है कि एक संतति पतित होनेमें बंध मोक्षका एकाधिकरण है, इस कहने करकें जो कहते है कि उपादेयोपादान क्षणोंका परस्पर वास्यवासक भाव होनेसें, उत्तरोत्तर विशिष्ट विशिष्टतर क्षणोत्पत्तिसें मुक्तिका संभव है, सोभी उपादानोपादेय भावका उक्तरीतिसें अनुपपद्यमान होनेसें प्रतिक्षिप्त जाननां, अरु जो वास्यवासक भाव कह्या है, सोभी तिल फूलोंकी तरें एक कालमें दोनो होवे तब हो सक्ता है, "उक्तंचान्यैरपि ॥ अवस्थिताहि वास्यंते, भावाभावैरवस्थितैः" तब कैसें उपादेयोपादान क्षण दोनोंकों परस्पर असाहित्य होनेसें वास्यवासक भाव होवे? उक्तं च ॥ श्लोक ॥ वास्यवासकयोश्चैव, मसाहित्यान्न वासना ॥ पूर्वक्षणैरनुत्पन्नो, वास्यते नोत्तरः क्षणः ॥ १ ॥ उत्तरेण विनष्टत्वान्न च पूर्वस्य वासना ॥ इति ॥

एक औरभी बात है, कि वासना वासकसें भिन्न है? वा अभिन्न है? जे कर कहोगे कि भिन्न है, तब तो तिस वासना करकें शून्य होनेसें अन्यकों वस्त्वंतरवत् कदापि वासित न करेगी, जे कर कहोगे कि अभिन्न है, तब तो वास्यक्षणमें वासनाका संक्रम कदापि नहीं होवे, अैसें तिसके स्वरूपकी

तरें तिससें अभिन्न होनेसें वासककीभी संक्रांति है, जे कर कहोगे कि सं क्रांति है, तब अन्वयका प्रसंग होवेगा, इस वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है, अरु जो तुमनें कह्या था कि सकलही जगत् राग द्वेषा दि दुःख संकुल जानता हुवा सकल जगत्कों दुःखोंसें कैसें में उद्धार करुं? इत्यादि. सोभी पूर्वापर असंबंध है, क्योंकि तुमारे मत क्षणही पूर्वापर टूटे हूये परमार्थसें सत् है, अरु क्षणोंके रहनेका कालमान एक परमाणुके व्यतिक्रम मात्र है, इस वास्ते उत्पत्तिसें व्यतिरिक्त तिनकी कोइ क्रिया नहीं उपपद्यमान होती. "भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते ॥ इति वचनात्" तिसतें ज्ञान क्षणोंकों उत्पत्ति अनंतर न गमन है, न अवस्थान है, न पूर्वापर क्षणोमेंभी अनुगम है, तिस वास्ते तिनोंकूं परस्पर स्वरूपावधारण नहीं. अरु न कोइ उत्पत्ति अनंतर व्यापार है, तब कैसें मेरे सन्मुख यह अर्थ साक्षात् प्रतिभासता है? इस प्रकारसें अर्थके निश्चयमात्र करणेमेंभी अनेक क्षणोंका संभव है, अनुस्यूत हो कर उत्पन्न होते हैं, अरु तिस अनुस्यूतके अभावमें कहांसें सकल जगत् राग द्वेषादिक दुःख संकुलता करकें विचारणां है? अरु कहांसें दीर्घतर कालके अनुसंधान करकें शास्त्रार्थका चिंतन है? जिसके प्रभावसें सम्यक् उपाय जान करकें दया विशेषसें मोक्षके वास्ते घटना होवे?

पूर्वपक्षः—यह जो सर्व व्यवहार है, सो ज्ञान क्षणोंकी संततिकी अपेक्षा करकें है, फेर तुम क्यों इस पक्षमें दूषण देते हो?

उत्तरपक्षः—"सुकुमारप्रज्ञोदेवानां प्रियः सदैव सप्त घटिका मध्यमिष्टान्न भोजन मनोज्ञाशयनीय शयनाभ्यासेन सुखैधितो" परंतु वस्तुके यथार्थ तत्त्व विचारनेमें तेरी बुद्धि क्लेशित नहीं हुइ है, तिस करकें हमारा कह्या तेरी समजमें नहीं आता है, क्योंकि ज्ञान क्षण संततिविषेभी वोही दूषण है, जो हमने उपर कह्या है. सोइ दिखाते है, कि वैकल्पिक, अरु अवैकल्पिक, जो ज्ञान क्षण है, सो परस्पर अनुगमके अभावसें परस्पर स्वरूप नहीं जानते. अरु क्षणमात्रसें उपरांत रहते नहीं, तब तो कैसें पूर्वापर अनुसंधान रूप दीर्घकालिक सकल जगत् दुःखिताका विचार शास्त्र विचारण रूप यह व्यवहार होवे? आंखों मीच करकें विचारो तो सही? इत्यादि बौद्धमतका खंडन, नंदीसिद्धांत, तथा सम्मतितर्क, द्वादशा

२ नयचक्र, अनेकांत जयपताका, स्याद्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकराव तारिका प्रमुख अनेक शास्त्रोमें अछी तरें कीया है, सो देख लेनां॥ इति बौद्ध मत खंडनं ॥ १ ॥

१ अथ द्वितीय नैयायिक मतमें पूर्वापर व्याहतपणां लिखते हैं, कि सत्ता योगसें सत्त्व है. ऐसें कह कर सामान्य विशेष समवाय इन पदार्थोंकों सत्ता के योगसें विनाही सत् कहतेकों क्यों नहीं पूर्वापर व्याहत वचन होवेगा?

२ ज्ञान आपणे आपकों नहीं जानता, आपणे आप विषे क्रियाका विरोध है, इस वास्ते ऐसें कह करकें फेर कहिते हैं कि ईश्वरका जो ज्ञान है, सो आपणे आपकों जानता है, अरु स्वात्माविषे क्रियाका विरोध मानते नहीं है, तो फेर क्योंकर स्ववचन विरोध न हूआ?

३ अरु दीपक जो है, सो अपणे आपको आपही प्रकाश करता है, अरु इस जगे स्वात्म विषे क्रिया विरोध मानते नहीं, यह पूर्वापर वचन व्याहत है.

४ दूसरोंके ठगने वास्ते छल, जाति, निग्रह, स्थान, इनको तत्त्वरूप पणे करकें उपदेश करते हुवा अक्षपाद ऋषिका वैराग्य वर्णन करनां ऐसा है कि जैसा अंधकारकों प्रकाशवाला कहनां. यह क्यों कर पूर्वापर व्याहत नहीं है?

५ आकाशको निरवयवी स्वीकार करकें फेर तिसका गुण शब्द जो है, सो एक देशमें सुणाइ देता है, सर्वत्र नहीं. तब तो आकाशको सांशता हो गइ. यह पूर्वापर व्याहत पणा है.

६ सत्तायोगसें सत्त्वं अरु योग जो है सो सर्व वस्तुवोंके सांशता होने हीसें होता है, अरु सामान्यकों निरंश एक मानते हैं, तब कैसें पूर्वापर व्याहत वचन न होवे?

७ समवाय, नित्य एकस्वनाव मानते हैं, अरु सर्व समवायी पदार्थोंके साथ संबंध नैयत्य करकें होता हूआ समवाय, अनेक स्वनाव वाला हो गया, तब तो पूर्वापर विरोध हो गया.

८ "अर्थवत्प्रमाणं" अर्थ सहकारी है, जिसका सो अर्थवत् प्रमाण, यह कह करकें फेर योगी प्रत्यक्षकों अतीताद्यर्थ विषय कहतेकों क्यों नहीं पूर्वापर विरोध है? क्योंकि अतीतादिक जो है, सो विनष्ट अनुत्पन्न होने सें सहकारी नहीं हो सक्ते हैं.

९ तथा स्मृतिगृहीतग्राही होने करकें प्रमाण नहीं मानते हैं, "अनर्थ जन्यत्वेन" विना अर्थके होने करकें अरु गृहीतग्राही होनेसें प्रमाण नहीं, अरु धारावाही ज्ञानभी गृहीतग्राही है, तिनकोंभी अप्रमाणता होनी चाहियें, परंतु धारावाही ज्ञानकों नैयायिक औ वैशेषिक प्रमाण मानते हैं, अरु अनर्थजन्य होने करकें स्मृतिकों जब अप्रमाण मान्या, तब अतीतानागत अनुमानभी अनर्थजन्य होने करकें प्रमाण न हूआ, अरु अनुमानकों शब्दकी तरें त्रिकाल विषयक मानते हैं. क्योंकि धूम करकें वर्त्तमान अग्नि अनुमेय है, अरु मेघोन्नति करकें भविष्यत् वृष्टि, अरु नदीका पूर देखनेंसें अतीत वृष्टिका अनुमान, यह दोनोही अनर्थ जन्य हैं, तो फेर धारावाही ज्ञान, अरु अनर्थ जन्य अनुमान, इन दोनांको तो प्रमाण माननां अरु स्मृतिकों अप्रमाण नहीं माननां. यह पूर्वापर विरोध है.

१० ईश्वरका सर्वार्थ विषय प्रत्यक्ष जो है, सो इंद्रियार्थ सन्निकर्ष निरपेक्ष मानते हो? वा इंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हो? जे कर कहोगे कि इंद्रियार्थ सन्निकर्ष निरपेक्ष मानते हैं, तब तो "इंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमित्यत्र सूत्रे" सन्निकर्षोपादान निरर्थक होवेगा, क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्ष ज्ञान सन्निकर्षके विनाभी हो सक्ता है, जे कर कहोगे कि ईश्वर प्रत्यक्ष इंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हैं, तब तो ईश्वरके मनकों अणु मात्र प्रमाण होनेसें युगपत् सर्व पदार्थोंके साथ संयोग न होवेगा? तब तो ईश्वर जब एक पदार्थकों जानेगा, तब दूसरे पदार्थ होते हूयांकोंभी नहीं जानेगा तब तो हमारेकी तरें तिस ईश्वरकों कदापि सर्वज्ञता न होवेगी, क्योंकि सर्व पदार्थोंके साथ युगपत् सन्निकर्ष नहीं हो सक्ता है, जे कर कहोगे कि सर्व पदार्थोंको क्रम करकें जाननेंसें सर्वज्ञ है, तब तो बहुत काल करकें सर्व पदार्थोंके देखने करकें ईश्वरकी तरें हमकूंभी सर्वज्ञ कहनां चाहियें. एक औरभी बात है कि अतीत, अनागत जो पदार्थ हैं, सो विनष्ट अनुत्पन्न होनेसें मनके साथ सन्निकर्ष नहीं हो सक्ता है, होतेही पदार्थोंका संयोग होनेसें, अरु अतीत अनागत तो तिस अवसरमें दोनो असत् है, तब किस तरें महेश्वरका ज्ञान अतीत अनागत अर्थका ग्राहक होवे? अरु तुम तो ईश्वरका ज्ञान सर्वार्थका ग्राहक मानते होत,

ब तो पूर्वापर विरोध सहजहीमें हो गया, ऐसेंही योगीयोंकोंजी सर्वार्थ ग्राहक ज्ञानका दुर्धर विरोध जान लेना.

११ कार्य द्रव्यके प्रथम उत्पन्न होनेसें तिसका जो रूप है,सो पीछेसें उत्पन्न होता है, विना आश्रयके गुण क्योंकर उत्पन्न होवे? यह कह करकें पीछेसें यह कहते हैंकि कार्य द्रव्यके विनाश हूये पीछे तिसका रूप नष्ट होता है, यह पूर्वापर विरोध है, क्योंकि जब कार्यद्रव्य नाश हो गया, तब रूप आश्रय विना पीछे क्यों कर रह सकेगा?

१२ नैयायिक औ वैशेषिक जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हैं, यह बातजी एक महामूढताका चिन्ह है, क्योंकि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं हो सक्ता है, यह जगत् कर्त्ताका खंमन दूसरे परिछेदमें अछी तरें विस्तार पूर्वक लिख आये हैं, तोजी नव्य जीवोंके ज्ञान वास्ते थोडासा इहांजी लिख देते हैं.

कोइक कहते हैं कि साधुवोंके उपकार वास्ते अरु दुष्टोंके संहार वास्ते ईश्वर युग युगमें अवतार लेता है, अरु सुगतादिक कितनेक यह बात कहते हैं कि मोक्षकों प्राप्त हो करकें अपने तीर्थकों क्लेशमें देख कर फेर जगवान् अवतार लेता है,"यदाहुरन्ये॥ ज्ञानिनोधर्मतीर्थस्य,कर्त्तारः परमं पदं॥ गत्वा गछंति जूयोपि, जवंतीर्थनिकारत इति॥ १॥" जो फिर संसारमें अवतार लेता है, वो परमार्थसें मोक्षरूप नहीं हूआ है, क्योंकि उसके सर्व कर्म क्षय नहीं हूये है,जे कर मोहादिक कर्मक्षय हो जाते, तो वो काहेकों अपने मतका तिरस्कार देखके पीडा पाता, अरु अवतार लेता, जे कर साधुवोंके उपकारार्थ अरु दुष्टोंके संहार वास्ते अवतार लेता है, तब तो असमर्थ हूआ, क्योंकि विनाही अवतारके लीयां वो यह काम नहीं कर सक्ता था, जे कर कर सक्ता था, तो फेर काहेकों गर्जावासमें पडा? इस वास्ते सर्व कर्म क्षय नहीं हुये, जे कर क्षय हो जाते तो कबीजी अवतार न लेता॥ यदुक्तं॥ दग्धे बीजे यथात्यंतं,प्राडुर्जवति नांकुरः॥ कर्म्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति जवांकुरः॥ १॥ उक्तंच श्रीसिद्धसेन दिवाकर पादैरपि॥ जवाजिगामुकानां, प्रबलमोहविजृंजितं॥ श्लोक॥ दग्धेंधनः पुनरुपैति जवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितजीरनिष्टं॥ मुक्तः स्वयं कृततनुश्च परार्थशूर, स्त्वछासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यं॥ १॥ इत्यलंविस्तरेण॥

पूर्वपक्षः—सुगतादिक ईश्वर मत होवो, परंतु सृष्टिका कर्त्ता तो महादेव ईश्वर है, सो क्यों नहीं मानते?

उत्तरपक्षः—जगत् कर्त्ता ईश्वरकी सिद्धिमें प्रमाणका अन्नाव है, इस वास्ते नहीं मानते.

पूर्वपक्षः—जगत् कर्त्ताकी सिद्धिमें प्रमाण है. पृथिव्यादिक किसी बुद्धिवानके करे हूये हैं घटादिवत् कार्यरूप होनेसें यह हेतु असिद्ध नहीं है, पृथिव्यादिकोंको सावयव होने करिकें कार्यत्वकी प्रसिद्धि होनेसें. तथाहि पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व सावयव होनेसें घटवत् कार्यरूप है. अरु यह हेतु विरुद्धन्नी नहीं है, निश्चित कर्तृक घटादिकों विषे कार्यत्व हेतुके देखनेसें अरु जिनोंका कर्त्ता नहीं है, उनसें व्यावृत्त होनेसें अनेकांतिकन्नी नहीं है, अरु प्रत्यक्ष आगम करकें अबाधित विषय होनेसें कालात्ययापदिष्टन्नी नहीं है,इस निर्दोष हेतुसें जगत्कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः—तहां प्रथम पृथिवीआदिक बुद्धिमान्के बनाये हूये हैं, इस सिद्धिके वास्ते जो तुमनें कार्यत्व हेतु कहा था, सो हेतु क्या सावयवत्व है? वा प्राग्वत् स्वकारण सत्ता समवाय है? वा 'कृतं' असे प्रत्ययका विषयत्व है? वा विकारित्व है? इन चारों विकल्पोंमेंसूं कार्यत्व हेतुका कौनसा स्वरूप है? जे कर कहोगेकि सावयवत्व स्वरूप है, तो यह सावयवपणा अवयवों विषे वर्त्तमानत्व है? वा अवयवों करकें आरन्यमाणत्व है? वा प्रदेशत्व है? वा सावयव असी बुद्धिविषयत्व है?

तहां आद्य पक्षविषे अवयव सामान्य करकें यह हेतु अनेकांतिक है, तथा अवयवों विषे वर्त्तमानन्नी निरवयव अरु अकार्य कहते हैं, तथा दूसरे पक्षमें हेतु साध्यके समान है, जैसा पृथिव्यादिकोंको कार्यत्व साध्य है, असेही परमाणु आदिकोंको अवयव आरन्यत्व पणा है, तथा तीसरे पक्षमें आकाशके साथ हेतु अनेकांतिक है, क्योंकि आकाश प्रदेश वाला तो है, परंतु कार्य नहीं है. तथा चउथे पक्षमेंन्नी आकाशके साथ हेतु व्यन्निचारी है, क्योंकि जो व्यापक होता है, सो निरवयव नहीं होता है, अरु जो निरवयव होता है, सो परमाणुवत् व्यापक नहीं होता है.

तथा प्रागसतः स्वकारण सत्तासमवाय कार्यत्वन्नी नहीं, क्योंकि तिसकों नित्य होने करकें तिसके लक्षणके न होनेसें. जे कर तिसका लक्षण

होवेगा, तब तो पृथिव्यादिकोंके कार्यत्वकोंभी नित्यताका प्रसंग होवेगा, तब बुद्धिमत्का बनाया हूआ क्या सिद्ध करोगे ? एक औरभी दूषण है कि योगीयोंके अशेष कर्मके क्षय हूआं थकां पक्षांतपातिविषे अप्रवृत्त होने करकें यह हेतुभागा असिद्ध है, क्योंकि योगी प्रत्यक्षकों प्रध्वंसा भाव रूप होने करकें सत्ता स्वकारण समवाय इन दोनोंके अभावसें.

तथा "कृतं" ऐसे प्रत्ययका जो विषयत्व है सोभी कार्यत्व नहीं हो सक्ता है, खनन उत्सेचनादिक करकें कृतं आकाशं ऐसें अकार्य आकाशमें भी वर्त्तमान होने करकें अनेकांतिक है.

तथा विकारत्वकोंभी कार्यत्वका अनुषंग है, सत् वस्तुकों जो अन्यभाव है, सो विकारित्व है. तब तो ईश्वरकोंभी विकारित्व पणा है, अपर बुद्धि मत् हेतुकत्व प्रसंग होनेसें अनवस्था हो जावेगी, जे कर कहोगेकि ईश्वर विकारी नहीं तब तो कार्यका कारित्व पणा दुर्घट है, ऐसें कार्य स्वरूप कों विचारता थकां उपपद्यमान न होनेसें "कार्यत्वात्" यह हेतु असिद्ध है,एक औरभी दूषण है कि कदे होनां कदे न होनां, लोकमें उसकों कार्य त्वकी प्रसिद्धि है. अरु यह जो जगत् है, सो तुमारे महेश्वरकी तरें सदा सत्व होनेसें कैसें कार्यत्व होवे ?

पूर्वपक्षः—तिस जगत्के अंतर्गत तृणादिकोंकों कार्यत्व होनेसें जगत् कोंभी कार्यत्त्व है.

उत्तरपक्षः—महेश्वर अंतर्गत बुद्धिआदिकोंकों तथा परमाणु आदिकोंके अंतर्गत पाकज रूपादिकोंकों कार्यत्व रूप होनेसें महेश्वरकों तथा परमाणु आदिकोंकों कार्यत्वका अनुषंग होवेगा, तब तो इस ईश्वरकों अपर बुद्धिम त् हेतुकत्व प्रसंगसें अनवस्था दूषण आता है, अरु अपसिद्धांतका अनु षंग है, तथा हे ईश्वरवादि ! जैसे तैसें करकें जगत्कों कार्यत्वपणा होवो, तोभी कार्यमात्र इहां हेतु तुमने माना है ? वा कार्य विशेष हेतु माना है?

जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तिससेंभी बुद्धिमत्कर्तृ विशेष सिद्धि नहीं. क्योंके तिसके साथ व्याप्तिकी सिद्धि नहीं, किंतु कर्तृ सामान्यकी सिद्धि होती है. जे कर ऐसेंही मानोगे, तब तो हेतु अकिंचित्कर है, साध्यसें विरुद्ध साधनेसें हेतु विरुद्ध है, तिस वास्ते कार्यत्वकृत बुद्धि उत्पादक बुद्धिमत् कर्त्ताका गमक नहीं, अरु जे कर सर्व सारूप्य मात्र करकें गमक

त्व होवे, तब तो बाष्पादिकोंकोंजी अग्नि प्रतिगमकत्वका प्रसंग होवेगा, अरु महेश्वर आत्मत्व करकें सर्व जीवोंके सदृश होनेसें १ संसारिपणा, २ किंचित् ज्ञत्वपणा, ३ संपूर्ण जगत्का अकर्तृत्वपणेके अनुमापकका अनुषंग है, क्योंकि तुल्य अक्षेप समाधान होनेसें. तिस वास्ते बाष्प अरु धूम इन दोनोकों किसी अंश करकें साम्यजी है, तोजी कोइक अैसा विशेष है, जिस करकें धूम अग्निका गमक है, परंतु बाष्पादिक नहीं. तैसेही पृथिव्यादिकोंको इतर कार्योंसेंजी कछुक विशेष अंगीकार करो.

जे कर दूसरा पक्ष मानोगे, तब हेतु असिद्ध है, कार्य विशेषके अजावसें. जावे वा जीर्ण कूप प्रासादादिकोंकी तरें अक्रिया देखने वालेकोंजी कृतबुद्धि उत्पादकका प्रसंग है, जे कर कहोगेकि समारोपसें प्रसंग नहि होता है, सोजी दोनों जगें एक सरीखा होनेसें क्यों नहीं होता है? दोनों जगें कर्त्ताकों अतींद्रियत्वके अविशेषसें. पूर्वपक्ष प्रामाणिककों है, यहां कृतबुद्धि. उत्तरपक्ष कैसें तहां तिसकों कृतत्त्वका अवगम होवे? इस अनुमान करकें अथवा अनुमानांतर करकें आद्य पक्षमें परस्पर आश्रय दूषण है. तथाहि सिद्ध विशेषण हेतुमें इस अनुमानका उत्थान है, तिसके उत्थानके होयां हेतुके विशेषणकी सिद्धि है. अरु दूसरे पक्षमें अनुमानांतरकोंजी सविशेषण हेतुमें उत्थान होवेगा, तहांजी अनुमानांतरसें तिसकी सिद्धि. इसी तरें अनवस्था दूषण होता है, इस वास्ते कृत बुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण सिद्धि नहीं, तब तो विशेषण असिद्ध हेतु है.

अरु जो कहते हैं कि खातप्रतिपूरित पृथिवीके दृष्टांत करकें कृतकोंकों आत्मविषे कृतबुद्धि उत्पादकत्वका अजाव है, सोजी असत् है. तहां आकृति जूनागादि सारूप्यकों तिसके उत्पादकके अजावसें, तिसके अनुत्पादककी उत्पत्तिसें.

अरु अैसेंजी न कहनांकि पृथिव्यादिकोंमेंजी अकृत्रिम संस्थान सारूप्य है, जिस करकें आकृतिमत्व बुद्धि उत्पन्न होती है, तिसहीके न माननेसें अपसिद्धांतकी प्रसक्ति होवेगी, अैसें कृतबुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण असिद्ध होनेसें हेतु विशेषण असिद्ध है, सो सिद्ध होवो, तोजी यह हेतु घटादिकोंकी तरें शरीरादि विशिष्टकोंही बुद्धिमत् कर्त्ताका इहां प्रसाधनसें हेतुविरुद्ध है.

प्रश्नः–ऐसे दृष्टांत दार्ष्टांतिक साम्य अन्वेषणमें सर्व जगें हेतुवोंकी अनुपपत्ति होवेगी.

उत्तरः–ऐसें नहीं है धूमादि अनुमानमें महानस इतर साधारण अग्निकी प्रतिपत्तिसें, यहांभी ऐसेही बुद्धिमत् सामान्य प्रसिद्धिसें हेतु विरोध नहीं, ऐसेंभी कहनां अयुक्त है, क्योंकि दृश्य विशेष आधारकोंही तिस सामान्यकों कार्यत्व हेतुकी प्रसिद्धि है, परंतु अदृश्य विशेषाधारकों नहीं, तिसकी स्वप्नेमेंभी प्रतिपत्ति नहीं है, तिस सामान्य वालेका खरशृंग आधार है, तिस वास्ते जैसे कारणसें जैसा कार्य उपलब्ध होता है, तैसाही अनुमान करने योग्य है, यथावत् धर्मात्मक अग्निसें यावत् धर्मात्मकस्य धूमकी उत्पत्ति है, सुदृढ प्रमाणसें प्रतिपन्न है, तैसेही धूमसें तैसेंही अग्निका अनुमान है, ऐसें कहने करकें साध्य साधन दोनोंका विशेषण करकें व्याप्तिविषे ग्रहण करतां हूआ, सर्वानुमानकी उच्छेद प्रसक्ति है, इत्यादि जो कहनां है, सोभी खंडन हो गया.

तथा विना बीजके बोयां जो तृणादिक उत्पन्न होते हैं तिनके साथ यह कार्यत्व हेतु व्यभिचारी है, बहुतसें कार्य देखनेमें आते हैं, उनमेंसूं कितनेक तो बुद्धिमान्के करे हुये दीखते हैं, जैसें घटादिक.

अरु कितनेक उक्तसें विपरीत दिखाइ देते हैं, जैसें विना बोयां तृणादिक. जे कर कहोगेकि हम सर्वेकों पक्षमें कर लेवेंगे तब तो "स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्" इत्यादिभी गमक होने चाहियें, तब तो कोइभी हेतु व्यभिचारी न होवेगा. जहां जहां व्यभिचार होवेगा, तहां तहां तिसकों पक्षमें कर लेनेसें तथा यह हेतु ईश्वर बुद्धि आदिकों करकेंभी व्यभिचारी है, ईश्वर बुद्ध्यादिकोंकों कार्यत्वके होयां हूयांभी समवायि कारणसें ईश्वरादिकोंसें भिन्न बुद्धिमत्पूर्वकत्वके अभावसें, जे कर यहांभी इसी तरें मानोगे, तब अनवस्थादूषण होवेगा, तथा यह कार्यत्व हेतु कालात्यया पदिष्टभी है, विना बोयां उत्पन्न हुये तृणादिको विषे बुद्धिमत् कर्त्ताका अभाव प्रत्यक्ष प्रमाणसें अग्निके अनुष्णत्व साध्यविषे द्रव्यत्व हेतुवत् दीख पडता है.

पश्नः– अंकुर तृणादिकोंकाभी अदृश्य ईश्वर कर्त्ता है.

उत्तरः–यहभी ठीक नहीं, तहां अदृश्य ईश्वरका होनां इसी प्रमाणसें

हैं? अथवा और किसी प्रमाणसें है? प्रथम पक्षमें चक्रक दूषण है, इस प्रमाणसें तिसका सद्भाव सिद्ध होवे, तब अदृश्य होने ईश्वरके अनुपलंनकी सिद्धि होवे, तिसकी सिद्धिके होयां कालात्ययापदिष्टका अनाव सिद्ध होवे, तिसके पीछें इस प्रमाणकी सिद्धि होवे. दूसरा पक्षनी अयुक्त है, ईश्वरके नावावेदिक प्रमाणकें अनावसें होवे, तहां प्रमाणका सद्भाव तोनी १ ईश्वरके अदृश्य होनेमें क्या शरीरका न होनां कारण है? २ वा विद्यादि प्रनाव हैं? ३ वा जाति विशेष है? प्रथम पक्षमें अशरीरी होनेसें मुक्त आत्मावत् कर्त्तापणेकी अनुपपत्ति है.

प्रश्नः– शरीरके अनाव करकेंनी ज्ञानेछा प्रयत्नाश्रयत्व करकें शरीर उत्पन्न करकें ईश्वर कर्त्ता हो सक्ता है.

उत्तरः–यहनी विना विचारहीका तुमारा कहनां है, क्योंकि शरीर संबंध करकेंही तिसकी प्रेरणा होनेमें शरीरके अनाव हूयां मुक्त आत्मवत् तिसका असंनव होनेसें अरु शरीरके अनावसें ज्ञानादि आश्रयित्वकानी असंनव है. तिसकी उत्पत्तिमें इसकों निमित्त होनेसें अन्यथा मुक्तात्माकोंनी तिसकी उत्पत्ति होवेगी. अरु विद्यादि प्रनावकों अदृश्यपणेमें हेतु हूयां कदाचित् यह दीखना चाहियें, परंतु सर्वदा नहीं. क्योंकि विद्यावान् सदा अदृश्य नहीं रहते हैं, पिशाचादिकोंकी तरें जाति विशेषनी अदृश्यमें हेतु नहीं, क्योंकि ईश्वर एक है, एकमें जाति नहीं होती है, जाति जो होती है, सो अनेक व्यक्ति निष्ठ होती है. नलेंही ईश्वर दृश्य अथवा अदृश्य होवे. तोनी १ क्या सत्ता मात्र करकें? २ वा ज्ञानवत्त्व होने करकें? ३ वा ज्ञानेछा प्रयत्नवत्त्व करकें? ४ वा तत्पूर्वक व्यापार करकें? ५ वा ऐश्वर्य करकें पृथिव्यादिकोंका कारण है?

तहां आद्य पक्षमें कुलालादिकोंकोंनी सत्त्वके अविशेष होनेसें जगत्कर्तृकाअनुषंग होवेगा. दूसरे पक्षमें योगीयोंकोनी जगत् कर्त्ताकी आपत्ति होवेगी, तीसरा पक्षनी ठीक नहीं, क्योंकि अशरीरकों प्रथमही ज्ञानादि आश्रयत्वका प्रतिषेध करनेमें. चतुर्थेकानी संनव नहिं क्यों कि अशरीरकों काय वचनके व्यापारवत्त्वका असंनव होनेसें. अरु ऐश्वर्यनी ज्ञातपणा है? अथवा कर्त्तापणा है? अथवा और कुछ है? जे कर कहोगे कि ज्ञातपणा है, तब क्या ज्ञातृत्वमात्र है? अथवा सर्वज्ञातृ पणा है? आद्यपक्षमें ज्ञाताही होवेगा,

परंतु ईश्वर न होवेगा. अस्मदाद्यन्यज्ञातृयोंकी तरें. दूसरे पक्षमें सर्वज्ञ पणा इसकों होवेगा परंतु सुगतादिवत् ईश्वरपणां न होवेगा.

अथ जे कर कहोगे कि कर्तृत्वपणा है तब तो कुंनकारादिकोंकोंनी अनेक कार्य करने वालोंकों ऐश्वर्यकी प्रसक्ति होवेगी, अरु इछा प्रयत्नके बिना और कोइनी वस्तु ईश्वरके ऐश्वर्यकी निबंधन नहीं है.

एक औरनी बात है, कि ईश्वरकें जगत् बनानेमें यथारुचि प्रवृत्ति है? वा कर्मके वश हो करकें है? वा दया करकें है? वा क्रीडा करकें है? वा निग्रहानुग्रह करने वास्ते है? वा स्वनावसें है? आद्य विकल्पमें कदाचित् और तरेंकी सृष्टि हो जावेगी, दूसरे पक्षमें ईश्वरकी स्वतंत्रताकी हानी होवेगी, तीसरे पक्षमें सर्व जगत् सुखीही करना था.

पूर्वपक्षः–ईश्वर क्या करे? जैसें जैसें जीवोंने कर्म करे हें, तिन कर्मोंके वशसें ईश्वर तैसा तैसा डुःख सुख देता है.

उत्तरपक्षः–तब तो तिसका क्या पुरुषाकार है? जब कर्महीकी अपेक्षा करकें कर्त्ता है, तब तो ईश्वरकी कल्पना करकें क्या करना है? कर्महीके बलसें सब कुछ हो जावेगा, तथा चउथे पांचमे विकल्पमें ईश्वर, रागी द्वेषी हो जावेगा, तब तो ईश्वर क्यों कर सिद्ध होवेगा? तथाहि क्रीडा करनेमें बालवत् रागवान् ईश्वर है? तथा ईश्वर अनुग्रह निग्रह करनेमें राजाकी तरें राग द्वेष वाला है?

जे कर कहोगे कि ईश्वरका स्वनावही जगत् करने (रचनेका) है, तब तो जगत् स्वनावसेंही हूआ है, ऐसें मान लेवो फेर ईश्वरकी कल्पना का हेकों करते हो? इस वास्ते कार्यत्व हेतु बुद्धिमत् कर्त्ता ईश्वरकों नहीं सिद्ध कर्त्ता है, इस वास्ते नैयायिक, वैशेषिक जो जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हें, सो मूर्खताका सूचक है, विशेष करकें जगत् कर्त्ताका खंमन देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क ग्रंथ देखनां.

अरु जो नैयायिकोंने सोला पदार्थ माने हें, सोनी बालकोंकी खेल है, क्योंकि सोला पदार्थ घटते नहीं है, सोलां पदार्थ यह है उसका नाम कहते हें. १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२

वितंमा, १३ हेत्वाजास, १४ छल, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान, य ह सोला पदार्थ कहे हैं.

तहां, हेय उपादेय प्रवृत्तिरूप करकें जिस करकें पदार्थोंकी परिछित्ति क रियें हैं, "तत्त्वमीयतेऽनेनेति प्रमाणं" सो प्रमाण, सो प्रमाण १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द जेदसें चार प्रकारका है, "तत्रेंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यजिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं इति गौतम सूत्रं ॥" इसका यह तात्पर्य है कि इंद्रिय अरु अर्थका जो संबंध तिससेंती जो उत्पन्न हूआ व्यपदेश रहित व्यजिचार रहित निश्चयात्मक तिसकों प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणका यह लक्षण नहीं है, तथाहि जहां आत्मा अर्थ ग्रहण प्रति साक्षात् व्यापारियें, सोइ प्रत्य क्ष प्रमाण है, सो अवधि, मनःपर्यव, अरु केवल है, अरु यह जो प्रत्य क्ष नैयायिकोने कह्या है, सो उपाधि द्वारा प्रवृत्ति होनेसें अनुमानकी त रें परोक्ष है, जो उपचार प्रत्यक्ष माने, तब तो है, परंतु तत्त्वचिंतामें उपचारका व्यापार नहीं होता है.

अरु अनुमान प्रमाण तीन जेद करिकें मानते हैं, १ पूर्ववत्, २शेषवत्, ३ सामान्यतोदृष्ट. तहां कारणसें कार्यका जो अनुमान, सो पूर्ववत्, तथा कार्यसें कारणका जो अनुमान, सो शेषवत्, तथा एक आंबका वृक्ष फूला देख कर आंब, जगत्में फूले है, ऐसें जाननां; अथवा देवदत्तादिकोंमें गति पूर्वक स्थानसें स्थानांतरकी प्राप्ति देख कर सूर्यमेंजी गतिका अनुमान क रनां इसका नाम सामान्यतो दृष्ट है, तहांजी अन्यथानुपपत्तिही गमक है, नतु कारणादिक. क्योंकि अन्यथानुपपत्तिकें बिना कारणकों कार्य प्रति व्य जिचार होनेंसें. अरु जहां अन्यथानुपपत्ति है, तहां कार्य कारणादिकों के विनाजी गमकजाव देखीयें है, सोइ दिखाते हैं. कृत्तिकाके देखने सें रोहिणीका उदय होवेगा ॥ तडुक्तं ॥ श्लोक ॥ अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ नान्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ तथा एक औरजी वात है कि जब प्रत्यक्ष प्रमाणही नैयायिकका कह्या प्रमाण न हूआ तब प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान जो है सो क्योंकर प्रमाण होवे ? तथा "प्रसिद्ध साधर्म्यात्" अर्थात् प्रसिद्ध साधर्म्यसें जो साध्यका सा धन है, सो उपमान है, जैसा गौ है तैसा रोज है, यहांजी संज्ञा संज्ञी

संबंधकी प्रतिपत्ति उपमानका अर्थ है, इहांजी अन्यथानुपपत्तिके सिद्ध होनेसें उपमानजी अनुमानके अंतरनावही है, परंतु पृथग् प्रमाण नहीं. जे कर कहोगे कि इहां अन्यथानुपपत्ति नहीं है, तब तो व्यनिचारी होनेसें उपमान प्रमाणही नहीं है, शाब्दजी सर्व प्रमाण नहीं है, किंतु जो आप्त प्रणीत आगम है, सोइ प्रमाण है, अरु अर्हंत बिना दूसरा कोइ आप्त नहीं. इस बातका निर्णय देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, नंदीसिद्धांत, आप्तमीमांसादि शास्त्र देख लेने. तथा एक औरनी बात है, कि यह चारों प्रमाण आत्माका ज्ञान है, अरु ज्ञान वस्तुके गुणोंकों पृथग् पदार्थ मानीयें, तब तो रूपरसादिकोंजी पृथग् पदार्थ माननां चाहियें. जे कर कहोगे कि प्रमेयके ग्रहणे करकें, औ इंद्रियार्थ होने करकें तेजी ग्रहण कीये जाते हैं, यहजी तुमारां कहनां युक्ति युक्त नहीं है, क्योंकि इव्यसें पृथग् गुणोंका अनाव है, इव्यके ग्रहण करनेसें गुणोंकाजी ग्रहण सिद्ध है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ माननां ठीक नहीं.

२ तथा प्रमेयका नेद, १ आत्मा, २ शरीर, ३ इंद्रिय, ४ अर्थ, ५ बुद्धि, ६ मन, ७ प्रवृत्ति, ८ दोष, ९ प्रेत्यनाव, १० फल, ११ दुःख, १२ अपवर्ग. तहां १ आत्मा सर्वका देखने वाला अरु नोक्ता है,अरु इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान, इन करकें अनुमेय है, सो तो हमने जीवतत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु २ शरीर जो है, सो आत्माका नोगायतन है, इंद्रिय नोगोंके साधन हैं, अरु ३–४ इंद्रियार्थ नोग्य हैं,येनी शरीरादिक जीवाजीव के ग्रहण करकें हमने ग्रहण करे हैं, अरु ५ बुद्धि जो है, सो उपयोग रूप ज्ञान विशेष है, सो बुद्धि जीवके ग्रहणहीमें आ गइ, एतावता जीव तत्त्वमेंही ग्रहण हो गइ, अरु ६ सर्व विषय अंतःकरण है, युगपत् ज्ञान का न होनां यह मनका लिंग है, तहां इव्य मन तो पौजलिक है, सो अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु नावमन जो है सो ज्ञानरूप आत्माका गुण है, सो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु ७ आत्माकी इच्छाका नाम प्रवृत्ति है, सो सुख दुःखोंके होनेमें कारण है, सो ज्ञानरूप होणेसें जीवतत्त्वमें ग्रहण करी है, ८ आत्माके जो अध्यवसाय राग, द्वेष, मोहादि दोष हैं, यह दोषजी जीवके अनिप्राय रूप होनेसें जीवतत्त्वमेंही ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ नहीं. ९ प्रेत्यनाव, पर

लोकका सद्भाव होनां सोजी जीवाजीवके बिना और कुछ नहीं है, तथा १० फल, जो सुख दुःखका जोगनां है, सोजी जीव गुणोंके अंतर्भाव है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ कहनां ठीक नहीं, तथा ११ दुःख, यहजी फलसें न्यारा नहीं, अरु १२ जन्म मरण प्रबंध उछेदरूप करकें सर्व दुःखोंकों दूर करणां, ऐसा मोक्षका लक्षण है, सो हमने नवतत्त्वमें मान्याही है.

३ तथा यह क्या है? ऐसा अनिश्चयरूप प्रत्ययको संशय कहते हैं, सोजी निर्णय ज्ञानवत् आत्माहीका गुण है.

४ तथा जिस करकें प्रयुक्त हूआ होयां प्रवर्त्ते है, तिसका नाम प्रयोजन है, सोजी इछा विशेष होनेसें आत्माका गुण है.

५ तथा अविप्रतिपत्ति विषयमें प्राप्त है, अर्थ सो दृष्टांत है, सोजी जीवाजीवपदार्थोंसें न्यारा नहीं है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं है. क्योंकि अवयवग्रहणेमेंजी आगें इसका ग्रहण हो जावेगा.

६ तथा सिद्धांत चार प्रकारका है, १ सर्वतंत्राविरुद्धः सर्व शास्त्रोमें अविरुद्ध जैसें स्पर्शनादि इंद्रिय है, अरु स्पर्शादि इंद्रियार्थ है, तथा प्रमाणों करकें प्रमेयका ग्रहण होता है, २ समानतंत्रसिद्धः, परतंत्रासिद्धः. प्रतितंत्रासिद्धांतः, जैसें सांख्य मत वालोके असत् आत्म लाजको प्राप्त नहीं होता है, अरु सत्का सर्वथा विनाश नहीं है, तथा ३ जिसकी सिद्धिके हूयां औरजी अर्थ अनुषंग करकें सिद्ध हो जावे, सो अधिकरणसिद्धांत है. तथा ४ "अपरीक्षितार्थाभ्युपगमत्वात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धांतः" जैसें किसीने कहा शब्द क्या वस्तु है? कोइक कहता है शब्द द्रव्य है, सो शब्द नित्य है? वा अनित्य है? इत्यादि विचार यह चार प्रकारका सिद्धांत ज्ञान विशेषसें अतिरिक्त नहीं है, अरु ज्ञानविशेष आत्माका गुण है गुणीके ग्रहणेसें ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं.

७ अथावयवाः प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, यह पांचो अवयवकों जे कर शब्दमात्र मानीयें, तब तो पुजल रूप होनेसें अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं. जे कर ज्ञानरूप मानीयें, तब तो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहनां ठीक नहीं, जे

कर ज्ञान विशेषकों पृथक् पदार्थ मानीयें, तब तो पदार्थ बहुत हो जावेंगे, क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारकें हैं.

८ संशयसें उपरि नवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक तिसकों तर्क कहते हैं, जैसें कि यह स्थाणु अथवा पुरुष जरुर होवेगा, यहनी ज्ञान विशेषही है, ज्ञानविशेष जो है, सो ज्ञातामें अनिन्न है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

ए संशय अरु तर्कसेंती उत्तर काल नावी निश्चयात्मक ऐसा जो ज्ञान, तिसका नाम निर्णय है, यहनी ज्ञानविशेष है, अरु निश्चयरूप हो एसें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अंतर्नाव होनेंमें पृथक पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

१०-११-१२ तथा वाद,जल्प,वितंमा,तहां प्रमाण तर्क साधन उपालंन सिद्धांत अविरुद्ध पंचावयव करकें संयुक्त पक्ष प्रतिपक्षका जो ग्रहण करणा, तिसका नाम वाद है. सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु आचार्यका होता है, अरु सोइ वाद जिसकों जीतना होवे, तिसके साथ छल, जाति, निग्रह स्थान करकें साधनोपलंन, सो जल्प है, तथा सो वादही प्रतिपक्ष स्थापना करकेंही वितंमा है, यह वाद, जल्प, वितंमा, इन तीनोका नेद ही नहीं हो सक्ता है, क्योंकि तत्त्वचिंताविषे तत्त्वके निर्णयार्थ वाद क रनां चाहियें, परंतु छल जाति आदिक करकें तत्त्वका निश्चय नहीं होता है, क्योंकि छलादिक जो हैं, सो परके वंचने वास्ते करियें हैं, तिनसें त त्त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती है, जे कर इनका नेदनी मानोंगे, तोनी ये पदार्थ नहीं हो सक्के हैं, क्योंकि जो परमार्थमें वस्तु है, सोइ पदार्थ है. अरु वाद जो है,सो पुरुषकी इछाके अधीन है. नियतरूप नहीं है. इस वास्ते पदार्थ नहीं, तथा एक औरनी बात है, कि कुक्कड, लाल, मींट, इ नके वादमेंनी पक्ष प्रतिपक्ष ग्रहण करते हैं, तिनांकोंनी तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनी चाहियें, परंतु यह तुम नहीं मानते हो.इस वास्ते वाद पदार्थ नहीं है.

१३ तथा १ असिद्ध, २ अनेकांतिक, ३ विरुद्ध, यह तीनो हेत्वानास हैं. हेतु तो नहीं, परंतु हेतुकी तरें नासन होते हैं, इस वास्ते हत्वानास कहते हैं. जब सम्यक् हेतुवोंकीही तत्त्वव्यवस्थिति नहीं, तो हेत्वानासों का तो क्याही कहनां है ? क्योंकि जो नियत स्वरूप करकें रहे, सो वस्तु

है, अरु हेतु तो किसी साध्यवस्तुमें हेतु है, दूसरे साध्यमें अहेतु है, इस वास्ते नियतस्वरूप वाला नहीं.

१४–१५–१६ तथा छल, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनो पदार्थ नहीं. क्योंकि यह तीनोही वास्तवमें कपटरूप हैं. जिनोंने इनकों तत्त्व करकें कथन करे हैं, उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहनां है? इस संसारमें जो चोरी, ठगी, हथफेरी प्रमुख सिखावे, तिसकोंजी तत्त्वज्ञानका उपदेशक मानना चाहियें? यह नैय्यायिकमतके सोला पदार्थोंका खंमन कीया. जे कर विशेष करकें देखनां होवे, तो न्यायकुमुदचंद्र देख लेनां. यह खंमन, सूत्रकृतांग सिद्धांतमें लिखा है, जे कर विशेष देखनां होवे, तब बारहवा अध्ययन देख लेनां ॥ इति नैयायिक दर्शन खंमनं संपूर्णम् ॥

अथ वैशेषिक मत खंमन लिखते हैं. वैशेषिकोंके कहे हूये तत्त्वजी तत्त्व नहीं हैं, सोइ दीखाते हैं. १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोंने यह ६ तत्त्व माना है. तहां १ पृथिवी, २ अप्, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ९ मन, यह नव द्रव्य हैं. तिनमें पृथिवी, अप, तेज, अरु वायु, इन चारोंकों निन्न निन्न द्रव्य माननेमें ठीक नहीं. क्योंकि परमाणु जो हैं, सो पर्याय निश्चमा करकें पृथिवी आदिकोंके रूपपणे परिणमतेजी हैं, तोजी अपणे द्रव्य पणेकों नहीं त्यागते है, अरु अति प्रसंग होनेसें अवस्था नेद करकें द्रव्यका नेद माननां युक्त नहीं हैं. अरु आकाश, तथा कालकों तो हमनेंजी द्रव्य माना है, अरु दिशा जो है, सो आकाशका अवयवजूत है, इस वास्ते पृथग् द्रव्य नहीं. अरु आत्मा शरीर मात्र व्यापी उपयोग लक्षण तिसकों हमजी द्रव्य मानते हैं, अरु द्रव्य मन जो है, सो पुजलद्रव्यके अंतर्जाव है, तथा जावमन जो है, सो जीवका गुण होनेसें, आत्माके अंतर्जाव है, यद्यपि वैशेषिक कहते हैं, कि जैसें पृथिवीत्वके योगसें पृथिवी है, यहजी उनका कहनां स्वप्रक्रिया मात्र है, क्योंकि पृथिवीमें अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नहीं है, जिसके योगसें पृथिवी होवे, अपि तु सर्वही जो कुछ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, नरसिंहाकारवत् उनयस्वजाव है.

तथा चोक्तं ॥ श्लोक ॥ नान्वयः सहि नेदत्वान्न, नेदोन्वयवृत्तितः ॥ मृ

भेदद्वयसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ इसका नावार्थः–घट जो है तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध्न उदराकारादिकों करकें इस हेतुसें नेद है, अरु अन्वयवर्त्ति होनेसें घटका मृत्तिकासें एकांत नेदनी न हीं है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोंके मिलने सें घडा जो है, सो जात्यंतर रूप है, एतावता मृत्तिकासें कथंचित् नेदा नेद रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नरः सिंहरूपत्वा, न्नसिंहो नररूपतः ॥ शब्दविद्ज्ञानकार्याणां, नेदो जात्यंतरं हि सः ॥ १ ॥ नावार्थः–सिंहरूप होनेसें नर नहीं है, अरु नररूप होनेसें सिंहनी नहीं है, तो क्या है, १ शब्द, २ विज्ञान, ३ कार्य, इनके नेद होनेसें नरसिंह जो है सो तीसरी जाति है.

२ अथ रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूपी द्रव्यमें इनकी प्रवृत्ति है. अरु विशेष गुण है, तथा १ संख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ संयोग, ५ विनाग, ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण हैं, इनकी सर्व द्रव्यमें वृत्ति है. त था १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इच्छा, ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म, ८ अधर्म, ९ संस्कार, ये आत्माके गुण हैं. तथा गुरुत्व, पृथिवी पाणीमें है, द्रव्यत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है, वेग नाम संस्कार ये मूर्त्त द्रव्योंमें हैं, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें संख्या दिक सामान्य गुण रूपादिवत् द्रव्यस्वनाव होने करकें, अरु परोपाधिसें गुणही नहीं है, क्योंकि जब गुण, द्रव्यसें पृथग् हो जावेंगे, तब द्रव्यके स्वरूपकी हानी हो जावेगी. "गुणपर्यायवद्द्रव्यं" इस कहने करकें गुण जो है, सो द्रव्यसें न्यारे नहीं हैं, द्रव्यके ग्रहणहीसें गुणका ग्रहणां न्या य है, परंतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आका शका गुण नहीं है, क्योंकि यह तो पौजलिक है, अरु आकाश तो अ मूर्त्त है, अरु शेष जो वैशेषिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन दूष णोंका अंग नहीं हैं.

३ अरु कर्मनी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है.

४ अथ सामान्य दो प्रकारके है, एक पर, दूसरा अपर. तिनमें पर सा मान्य महासत्ता नाम है, इव्यादि तीन पदार्थोंमें व्यापी हैं, अरु जो अ पर है, सो द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्वादिक है, तिनमें महासत्ताकों पृथक् पदा र्थ माननां अयुक्त है. क्योंकि सत्तामें जो सत् यह प्रत्यय है, सो और

किसी सत्ताके योगसें है? वा स्वरूप करकें है? जे कर कहोगे कि और स त्ताके योगसें है, तब तो तिस सत्तामें सत् प्रत्यय, और सत्ताके योगसें होनां चाहियें? ऐसें करतां अनवस्था दूषण आता है, अरु जे कर क होगेकि स्वरूप करकें सत् है, तब तो द्रव्यादिकभी स्वरूप करकें सत् हैं, तब तो अजाके गलेके स्तनोकी तरे निःफल सत्ताके कल्पनेसें क्या प्रयो जन है? एक औरभी बात हैकि द्रव्यादिक जो हैं, सो सत्ताके योग होने सें सत् कहे जाते हैं? अथवा सत्ताके संबंध विनाही सत् स्वरूप हैं? जे कर कहोगेकि स्वतः ही सत् स्वरूप हैं, तब तो सत्ताकी कल्पना करनी व्य र्थ है. जे कर कहोगे कि सत्ताके योगसें सत् है, तब तो शशविषाणभी सत्ताके योगसें सत् होनां चाहियें ॥ तथा चोक्तं ॥ श्लोक ॥ स्वतोऽर्थाः संतु सत्ताव,त्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैषास्या, त्सर्वथा ति प्रसंगतः ॥ १ ॥ इत्यादि येही दूषण तुल्य योग क्षेम होनेसें अपर सामा न्यमेंभी जोड लेनें. तथा हमभी सामान्य विशेष रूप होनेसें वस्तुकों कथंचित् सामान्यरूप मानतेही हैं, इस वास्ते द्रव्यके ग्रहण करनेसें सामान्यकाभी ग्रहण हो गया, इस हेतुमें सामान्य जो है, सो कुछ द्र व्यसें पृथक् पदार्थ नहीं.

५ अथ विशेष जो है, सो अत्यंत व्यावृत्ति बुद्धिके हेतु होने करकें वैशेषिकोंनें माने हैं. तहां यह विचार करते हैं कि तिन विशेषोंनें जो विशेष बुद्धि है, सो अपर विशेषों करके है? वा स्वतःही स्वरूप करकें है? अपर विशेष हेतुक तो नहीं है, अनवस्था अरु विशेषमें विशेषका अंगी कार नहीं है, जे कर कहोगेकि स्वतःही विशेष बुद्धिके हेतु हैं, तब तो द्रव्यादिकभी स्वतःही विशेष बुद्धिके हेतु है, तो फेर विशेषोंकों द्रव्यसें अतिरिक्त पदार्थ कल्पने व्यर्थ हैं. अरु द्रव्योंसें अव्यतिरिक्त विशेषोंकों स र्व वस्तुओंकों सामान्य विशेषात्मक होनेसें हमभी मानते है.

६ अरु समवाय जो है, सो अयुत सिद्ध आधार आधेय भूतोंका जो इह प्रत्ययका हेतु है, सो समवाय कहते हैं, अरु समवाय जो है, सो नित्य अरु एक है, ऐसें वैशेषिक मानते हैं. तिस समवायके नित्य होनेसें समवायीभी नित्य होने चाहियें. जे कर समवायी अनित्य हैं. तो समवा यभी अनित्य होना चाहियें? क्योंकि समवायका आधार समवायी है,इस

वास्ते. तथा समवायके एक होनेसें समवायीभी एकही होने चाहियें. अथवा समवायीयोंके अनेक होनेसें समवायभी अनेक रूप होना चाहियें, तथा यह जो समवाय पदार्थोंका समवायी संबंध करता है, सो समवाय उन पदार्थोंके साथ अपणा संबंध अपर समवायके योगसें करता है? किंवा आपही अपणा संबंध करता है? जे कर कहोगे कि अपर समवायसें करता है, तब तो अनवस्थादूषण है. अरु समवायभी दूसरा है नहीं, जे कर कहोगे कि आपही आपणा संबंध करता है, तब तो गुण क्रियादिकभी द्रव्यसें स्वरूप करके तथा अविष्वंगभाव संबंध करके संबंधी है, तब तो समवायभी कल्पना व्यर्थही है.

ऐसें वैशेषिक मतमेंभी सम्यक् पदार्थोंका कथन आप्तोक्त नहीं. तथा नैयायिक वैशेषिक मतमें जो मोक्ष मानी है, सोभी प्रेक्षावानोंको मानने योग्य नहीं है, क्योंकि जब आत्मा ज्ञानसें रहित होवे. एतावता जडरूप हो जावे. तब आत्माको मोक्ष मानते है. ऐसी मोक्षको कौन बुद्धिमान् उपादेय मानता है? क्योंकि ऐसा कौन बुद्धिमान् है. जो सर्व सुख और ज्ञानसें रहित पाषाण तुल्य आपणी आत्माको करना चाहे? इसी वास्ते किसीने वैशेषिकोंका उपहास्यभी करा है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ वरं वृंदावने रम्ये. क्रोष्टृत्वमभिवांछति ॥ नतु वैशेषिकीं मुक्तिं, गौतमोगंतुमिच्छति ॥ १ ॥ अस्यार्थः—स्वर्गके जो सुख हैं. सो सोपाधिक. सावधिक, परिमितआनंद रूप हैं, अरु मोक्ष जो है. सो निरुपाधिक, निरवधिक, अपरमितानंद ज्ञानसुख स्वरूप, विचक्षण पुरुष कहते है. जब मोक्ष होना पाषाण के तुल्य है, तब तो ऐसी मोक्षमें कुछ प्रयोजन नहीं. इस्सेंतो संसारही अच्छा है कि जिस संसारमें दुःख करके कलुषित सुख भोगनमें आता है, जरा विचार तो करो, कि थोडे सुखका भोगनां अच्छा है? या सर्व सुखोंका उच्छेद अच्छा है? इत्यादि विशेष चर्चा स्याद्वादमंजरीकी टीकासें जाननी. इस वास्ते नैयायिक मत. अरु वैशेषिक मत उपादेय नहीं है ॥ इति ॥

अथ सांख्य मतका खंडन लिखते है. सांख्य मतका स्वरूप तो उपरलिखा है,सो जान लेनां,सांख्यका मत ठीक नहीं है,क्योंकि परस्पर विरोधी सत्त्व, रजो. तम, गुणोंका प्रकृति रूपोंका गुणीके बिना एकत्र अवस्थान अर्थात् रहणां युक्त नहीं है, जैसें कृष्ण श्वेतादि गुण गुणी बिना एकत्र नहीं रह

सके हैं, तथा महदादि विकारके होनेमें प्रकृतिमें विषमता उत्पन्न करनेमें कोइभी कारण नहीं है, क्योंकि प्रकृतिके विना और वस्तु, सांख्य कोइ मानते नहीं है, अरु आत्माकों अकर्त्ता अकिंचित् कर मानते हैं, जे कर स्वभावसें वैषम्य मानेंगे. तब निर्हेतुकताकि आपत्ति होवेगी, क्योंकि जो कार्य कभी होवे, अरु कभी न होवे, वो हेतुके विना नहीं हो सक्ता है, अरु जो खरशृंगादि नित्य असत् हें, तथा आकाशादिनित्य सत् हें, सो हेतुमें नहीं होते हें॥ उक्तंच॥ श्लोक॥ नित्यसत्त्वमसत्त्वं वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षातोहि भावानां, कदाचित्त्वसंभवः ॥ १ ॥

तथा स्वभाव प्रकृतिमें भिन्न है? वा अभिन्न है? भिन्नतो नहीं. क्योंकि प्रकृति विना सांख्योंने अपर कोइ वस्तु मानी नहीं है, जे कर कहोगे कि अभिन्न है, तब तो प्रकृति है "नतुस्वभाव" (स्वभाव नहीं है.)

तथा एक औरभी बात है कि महत् अरु अहंकार ज्ञानसें भिन्न हम नहीं देखते हें. सोइ दिखावते हें. कि बुद्धि जो है सो अध्यवसायमात्र है, अरु अहंकार जो है सो अहं सुखी. अहं दुःखी, असें स्वरूप वाला है, इन दोनोंकों चिद्रूप होनेमें आत्माका गुणत्व पणा है, परंतु जडरूप प्रकृतिका विकार नहीं.

तथा यह जो तन्मात्रोंमें भूतोंकी उत्पत्ति मानते है, कि जैसें १ गंध तन्मात्रात् पृथिवी, २ रसतन्मात्रासें जल, ३ रूप तन्मात्रामें अग्नि, स्पर्श तन्मात्रामें वायु. ५ शब्दतन्मात्रामें आकाश, यहभी माननां युक्ति नहीं है, जे कर बाह्यभूतकों अपेक्षा करके कहते हो सो अयुक्त है. इन बाह्य पांच भूतोंके सदाही होनेमें उत्पत्ति नहीं "न कदाचिदनीदृशं जगत् इति वचनात्" अर्थात् यह जगत् प्रवाह करकें अनादि कालमें असाही चला आता है.

जे कर कहोगेकि प्रति शरीरकी अपेक्षा हम कहते हें. तिनमेंसूं त्वचा, हाड. कठीन लक्षणा पृथिवी है. श्लेष्म. रुधिर द्रव लक्षण आप. (जल) है. पंक्ति लक्षण अग्नि है, पानापान लक्षण वायु है, शुषिर अर्थात् पोलाड लक्षण आकाश है. यहभी कहनां ठीक नहीं है, क्योंकि तिनमेंभी कितने शरीरोंकी उत्पत्ति पिताका शुक्र. अरु माताके रुधिरसें होती है, तहां तन्मात्राओंकी गंधभी नहीं है, अरु अदृष्ट वस्तुकों कारण कल्पनेमें अति प्रसंग

दूषण है, अरु अंमज, उद्भिज्ज, अंकुरादिकोंकीनी उत्पत्ति अपरही वस्तुसें होती दीख पडती है, इस वास्ते महदहंकारादिकोंकी उत्पत्ति जो सांख्यों नें अपनी प्रक्रिया करकें मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल अपने मतके रागसेंही यह माननां है. अरु आत्माकों अकर्त्ता माने हैं, तब तो कृतनाश अकृताभ्यागम दूषण है, अरु बंध मोक्षका अनाव है, अरु निर्गुण होनेसें आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व पूर्वोक्त बालप्रलापमात्र है.

अथ सांख्यमतकी मोक्ष विचारियें हैं, "प्रकृतिपुरुषांतरपरिज्ञानात् मुक्तिः" अर्थात् प्रकृति पुरुषसें अन्य है, ऐसा जब ज्ञान होता है, तब मुक्ति होती है. सोइ दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ शुद्धचैतन्यरूपोयं, पुरुषः पुरुषार्थतः ॥ प्रकृत्यंतरमज्ञात्वा, मोहात्संसारमाश्रितः ॥ १ ॥ नावार्थः— पुरुष जो है, सो परमार्थसें शुद्ध चैतन्यरूप है, अपणें आपकों प्रकृतिसें एकमेक समझता है, इस मोहसें संसारकों आश्रित हो रहा है, तिस हेतुसें प्रकृतिसुखादि स्वनावसें जहां लगि विवेक करकें न ग्रहण करेगा, तहां लगि मुक्ति नहीं. अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसें मुक्ति है, यहनी असत् है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो हैं, सो उत्पाद व्यय स्वनाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म संसर्गसें आत्मामेंतो प्रकृतिका नेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नहीं?

अथ यही तो संसारी विचार नहीं करता है, इस वास्ते मुक्ति नहीं. जे कर ऐसें कहोगे तब तो तुमारे कहनेसें कदापि मुक्ति नहीं होवेगी, ऐसा विवेकाध्यवसाय संसारीकों कदापि नहीं हो सक्ता है, सोइ दिखाते हैं.

जहां लग संसारी है, तहां लग विवेक परिनावना करकें संसारी पणा दूर नहीं होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अनावसें कदापि संसारसें छूटनां नहीं है.

एक औरनी बात है, कि इस सृष्टिके पहिला केवल आत्मा है, ऐसे तुम मानते हो, तब फेर आत्माकों संसार कहांसें लिपट गया? जे कर कहोगेकि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोक्ष हूआ पीछें फेरनी संसार लिपट जायगा, तब तो मोक्षनी क्या हूइ, एक विमंबना खमी हो गई.

पूर्वपक्षः—सृष्टिसें पहिलां आत्माकों दिदृक्षा नइ, तब तिस दिदृक्षाके वशसें प्रधानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तब संसारी हो गया, अरु जब प्रकृतिका दुष्टपणा विचारमें आया, तब प्रकृतिसें वैराग्य हुआ, फेर प्रकृतिविषे दिदृक्षा नहीं, तब संसारभी नहीं.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहनां स्वकृतांत विरोध होनेसें अयुक्त है, सोई दिखाते हैं. दिदृक्षा सो देखनेकी अभिलाषाका नाम है, सो अभिलाषा पूर्व देखे हूये पदार्थोंमें तथा स्मरणसें होता है, अरु प्रकृति तो पूर्वें कदापि देखी नहीं है, तब कैसें तिस विषे स्मरण अभिलाषा होवे? जे कर कहोगेकि अनादि वासनाके वशसें प्रकृतिमेंही स्मरण अभिलाषा है, सोभी असत् है, क्योंकि वासनाभी प्रकृतिका विकार होने करकें प्रकृतिके पहिलां नहीं थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वभावरूप है, तब तो आत्मस्वरूपवत् वासनाका कदापि अभाव नहीं होवेगा, अरु मोक्षभी कदापि नहिं होवेगी. तब तो सांख्यका मतभी बालकोंका खेल जैसा हो गया ॥ इति सांख्यमत खंडनं समाप्तम् ॥

अथ मीमांसक मतका खंडन लिख्यते ॥ इस मतका स्वरूप उपर लिख आये हैं. अरु वेदांतियोंके ब्रह्म (अद्वैत) का खंडन ईश्वर वादमें अछी तरेमें कर चुके हैं. इस वास्ते यहां नहीं लिखा. इति मीमांसक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खंडन लिखते हैं. जैमिनीया ऐसें कहते हैं, कि जो "हिंसागार्ध्यात्" अर्थात् इंद्रियोंके रस वास्ते अथवा कुव्यसन करकें करियें सोइ हिंसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसें शौनिक लुब्धकादिकोंकी तरें. अरु वेदोमें जो हिंसा कही है, सो हिंसा नहीं है, किंतु धर्मका हेतु है, देवता, अतिथि, पितरोंके प्रीतिसंपादक होनेसें तथाविध पूजा उपचारवत्. अरु यह प्रीति संपादकत्व असिद्ध नहीं है, क्योंके कारीरी प्रभृति यज्ञोंके स्वसाध्य विषे वृष्ट्यादि फलोंका जो अव्यभिचारी पणा है, सो यज्ञ करनेसें जो देवता तृप्त होते है, वो वृष्ट्यादिकोंके हेतु हैं, ऐसेही "त्रिपुरार्णववर्णित छगल" अर्थात् बकरेके मांसका होम करनेसें परराष्ट्रका जो वश होनां है, सोभी उस मांसकी आहुतीयोंसें तृप्त हूये होय देवताओंकाही अनुभाव है, अरु अतिथि प्रीतिभी "मधुसंपर्कसंस्कारादिसमास्वादजा" प्रत्यक्षही दीख पडता है, अरु पित

रोंके तांइ जो श्राद्ध करते हैं, उस करकें पितर तृप्त हुवे होयें, स्वसंतानकी वृद्धि प्रत्यक्षही करते दीखते हैं, अरु इस बातमें आगमभी प्रमाण देता है, आगममें देव प्रीत्यर्थ अश्वमेध, नरमेध, गोमेधादिक करणे कहे हैं, अरु अतिथि विषय "महोक्षं वा महाजं वा, श्रोत्रियाय प्रकल्पयेदिति" ऐसा कहा है, अरु पितरोंकी प्रीति वास्ते यह श्लोक है ॥ श्लोक ॥ द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन, त्रीन् मासान् हारिणेन तु ॥ औरभ्रेणाथ चतुरः, शाकुनेनेह पंच तु ॥ १ ॥ षण्मास छागमांसेन, पार्षतेनेह सप्त वै ॥ अष्टावेणस्य मांसेन, रौरवेण नवैव तु ॥ २ ॥ दशमासांस्तु तृप्यंति, वराहमहिषामिषैः ॥ शशकूर्मयोर्म्मांसेन, मासानेकादशैव तु ॥ ३ ॥ संवत्सरं तु गव्येन, पयसा पायसेन तु ॥ वार्ध्रीणशस्य मांसेन, तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ॥ ४ ॥ यह श्लोक स्मृतिके हैं, इनका अर्थ कहते हैं.

जे कर पितरोंकों मत्स्यका मांस देवे. तो पितर दो मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर हरिणका मांस पितरोंकों देवे, तो पितर तीन मास लग तृप्त रहते हैं. जे कर मींढेका मांस पितरोंको देवे, तब चार मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर जंगली कूकडका मांस पितरोंकों देवे, तो पितर पांच मास तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥ जे कर बकरेका मांस देवे, तो पितर छमास लग तृप्त रहते हैं, जे कर पृषतबिंदु करकें युक्त जो हरिण होवे, उसकों पार्षत कहते हैं, तिसका मांस जो पितरोंकों देवे, तो पितर सात मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर एण मृगका मांस देवे, तो आठ मास लग पितर, तृप्त रहते हैं. जे कर बडे काले मृगका मांस देवे, तो नव मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर सूवर अरु महिषका मांस देवे, तो दश मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर शश अरु कछु, इन दोनोंके मांस देवे, तो अग्यारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर गोका दूध अथवा खीर देवे, तो बारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, तथा वार्ध्रीण कहते हैं जो अति बूढा बकरा होवे तिसका मांस देवे, तो बार वर्ष लग पितर तृप्त रहते हैं, यह मीमांसक मानते हैं.

अब इसका खंडन लिखते हैं. कि हे मीमांसक! वेदोमें जो हिंसा कही है, सो धर्मका हेतु कदापि नहीं हो सक्ती है, इस तुमारे कहनेमें प्रगट स्ववचनविरोध है, तथाहि. जे कर धर्मका हेतु है, तब तो हिंसा क्यों कर

है ? अरु जे कर हिंसा है,तो धर्मका हेतु क्यों कर हो सक्ती है ?॥श्लोक॥ श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यतां ॥ आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥१॥ इत्यादिक जे धर्म कहे हैं, तो हिंसा क्यों कर है? क्यों के माताजी है, अरु वंध्याजी है, ऐसा कभी नहीं होता है.

पूर्वपक्षः–हिंसा कारण है, अरु धर्म तिसका कार्य है.

उत्तरपक्षः–यहभी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जो जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक वाला होता है, सो तिसका कार्य होता है, जैसें मृत्पिंमादिकोंका घटादिक कार्य है, तो कुछ धर्म हिंसाही करनेसें नहीं होता है, क्योंकि तप, दान, पढनादिकभी धर्मके कारण हैं.

पूर्वपक्षः–हम सामान्य हिंसाकों धर्म नहीं कहते हैं, किंतु विशिष्ट हिंसाकों धर्म कहते हैं, सो विशिष्ट हिंसा वोही है, जो वेदोमें करनी कही है.

उत्तरपक्षः–जे कर वेदकी हिंसा धर्मका हेतु है, तो क्या जो जीव यज्ञादिकोंमें मारे जाते हैं, वो मरते नहीं है? इस वास्ते धर्म है? अथवा क्या उनके मरणेमें उनको आर्त्तध्यानका अभाव है, इस वास्ते धर्म है? अथवा जो यज्ञादिकोमें मारे जाते हैं, वो मरके स्वर्गकों जाते हैं? इस वास्ते धर्म है? इसमें आद्य पक्ष तो ठीक नहीं, क्योंकि प्राण त्यागते हूये तो वो जीव प्रत्यक्ष दीख पडते हैं. तथा दूसरा पक्षभी असत् है, क्योंकि दूसरेके मनका ध्यान दुर्लक्ष है, इस वास्ते आर्त्तध्यानका अभाव कहनां, यहभी परमार्थ शून्य वचनमात्र है, आर्त्तध्यानका अभाव तो क्या होना था? बल्कि हा दुःखी है? है कोइ करुणारस भरा जो हमकूं छुडावे? ऐसा अपनी भाषामें कहते हूये अरु अपनी भाषा करकें विरस आरराट करता हूआ वदन दैन्य, नयन तरलादिक लिंग देखनेसें स्पष्ट उन विचारोंके आर्त्तध्यान उपलब्ध होता है.

पूर्वपक्षः–जैसें लोहेका गोला पानीमें डूबनें वालाभी है, तोभी तिसके सूक्ष्म पत्र कर दीये जाय तो जलके उपर तरेंगे, परंतु डूबेंगे नहीं, तथा विष जो है सो मारणे वालाभी है, तोभी मंत्रो करकें संस्कार करा हूआ गुण करता है, तथा जैसे अग्नि दाहक स्वभाव वालाभी है, तोभी सत्य शीलादिकके प्रभावसें दाह नहीं करता है. ऐसेंही वेद मंत्रादिकों करकें संस्कार करी हुइ जो हिंसा सो दोषका कारण नहीं, अरु वैदिकी हिं

सा निंदनीय कभी नहीं है, क्योंकि तिस हिंसाके करने वाले याज्ञिक ब्राह्मणोंकों जगत्में पूजनिक देखते हैं.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि जितने दृष्टांत तुमने कहे हैं, सो सर्व वैषम्य है इस वास्ते सिद्धि कुछभी नहीं कर सक्के हैं, लोहेका जो पिंड, पत्रादि रूप होनेसें जलके उपरि तरता है, सो परिणामांतर होनेसें तरता है, परंतु वेद मंत्रोसें संस्कार करकें जब पशुकों मारते हैं, तब उसमें क्या परिणामांतर होता है ? क्या उस परिणामांतरसें उन पशुओंकों मारते दुःख नहीं होता है ? दुःख करकें तो वे प्रगट अरराट शब्द करते हैं, तो फेर लोह पत्रका दृष्टांत कैसें समीचीन हो सक्ता है ?

पूर्वपक्षः—जो पशु यज्ञमें मारे जाते हैं, वो सर्व देवता हो जाते हैं, यह यज्ञ करनेमें परोपकार है.

उत्तरपक्षः—इस बातमें कौनसा प्रमाण है ? तिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो इंद्रिय संबंध वर्त्तमान वस्तुकाही ग्राहक है, “ संबंधोवर्त्तमानं च, गृह्यते चक्षुरादिनेति वचनात् ” अरु अनुमानभी नहीं है, क्योंकि तत्प्रतिबद्धलिंग कोइभी नहीं दीखता है, अरु आगम प्रमाणभी नहीं. क्योंकि आगम तो झगडेका घर है, इस वास्ते सिद्ध हूआ नहीं है. तथा अर्थापत्ति अरु अनुमान यह दोनो अनुमानकेही अंतर्गत है, तो अनुमानके खंडनेसें यहभी दोनुं खंडन हो गये.

पूर्वपक्षः—जैसें तुम जिनमंदिर बनाते हूये पृथिवीकायादि जीवोंकी हिंसाको परिणाम विशेष करकें पुण्यके तांइ कल्पते हो, ऐसें हमभी यज्ञमें जो हिंसा करते हैं, सो पुण्यके वास्ते है, क्योंकि वेदोक्त विधि विधान रूप परिणाम विशेष इहांभी निःसंदेह होनेसें पुण्य क्यों कर नहीं होता ?

उत्तरपक्षः—परिणाम विशेषभी वेही पुण्यका कारण होते हैं, जहां और कोइ उपाय न होवे. अरु यत्नसें प्रवृत्त होवे, ऐसी प्रवृत्ति जिनमंदिरमें हो सक्ती है, क्योंकि जिनमंदिरके बिना श्रीभगवान्की प्रतिमा रहती नहीं. जहां प्रतिमा रहेगी उसीका नाम जिनमंदिर है, जे कर कहोगेकि जिनप्रतिमा पूजनेसें क्या लाभ है ? तो हम तुमकूं पूछते हैं कि जो पुस्तकमें ककारादि अक्षर लिखते हो, इनके लिखनेसें क्या लाभ है ? जे कर कहोगे कि ककारादि अक्षरोंकी स्थापना देखनेसें वस्तुका ज्ञान होता है, तो तै

सेंही जिनप्रतिमा देखनेसेंभी श्रीजिनेश्वर देवके स्वरूपका ज्ञान होता है,जे कर कहोगेकि प्रतिमा तो कारीगरने पाषाणकी बनाइ है, इससें क्या ज्ञान होता है? तो हम पूछते है कि बेद, कुरान, इंजील, प्रमुख पुस्तक लिखा रीयोंने स्याही, और कागजोंके बनाये हैं, इनसें क्या ज्ञान होता है? जे कर कहोगेकि ज्ञान तो हमारी समझसें होता है, अक्षरोंकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है, तैसेही जिनेश्वरदेवका ज्ञान तो हमारी समझ सें होता है परंतु उस स्वरूपका निमित्त प्रतिमा है. क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष, किसी वस्तुका नकशा नहीं देखेगा, अर्थात् चित्र नहीं देखेगा, वो कभी उस वस्तुका स्वरूप नहीं जान सकेगा? इस वास्ते जो बुद्धिमान् है, वो अवश्य स्थापना मानता है.

जे कर कहोगेकि परमेश्वर तो निराकार, ज्योतिःस्वरूप,सर्व व्यापक है, तिसकी मूर्त्ति क्योंकर बन सक्ती है?

उत्तरः—यह तुमारा कहनां बडे उपहास्यका कारण है, क्योंकि जब तुमने परमेश्वरका रूप आकार (मूर्त्ति) नहीं मानी, तब तो बेद, वा इंजील, वा कुरान, इनकों परमेश्वरका बचन माननां क्यों कर सत्य हो सकेगा? विना मुखके साक्षर शब्द कदापि नहीं हो सक्ता है.

जे कर कहोगेकि ईश्वर, विनाही मुखके शब्द कर सक्ता है, तो इस बात कहेनेमें कोइ प्रमाण नहीं. इस वास्ते जो साक्षर शब्द है, सो विना मुखके नहीं, अरु शरीरके विना, मुख नहीं हो सक्ता है, इस वास्ते जो कोइ वादी किसी पुस्तककों ईश्वरका बचन मानेगा, वो जरुर ईश्वरका मुख और शरीरभी मानेगा, अरु जब शरीर माना, तब भगवान्‌की प्रतिमाभी जरुर माननी पडेगी. जब प्रतिमा सिद्ध हो गइ, तब मंदिरभी जरुर बनानां पडेगा, इस वास्ते जिनमंदिरका बनानां जो है, सो आवश्यक है, अरु जो बनानें वाला है, सो यत्न पूर्वक बनाता है, अरु पृथिवी कायादिकके जो जीव हैं, सो अस्पष्ट चैतन्य हैं. उनकी हिंसामें अल्प पाप अरु बहुत निर्ज्जरा है, अरु तुमारे पक्षमें तो श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास प्रमुखोंमें यम नियमादिकों करकेंभी स्वर्गकों होनां कह्या है, तो फेर कृपण, दीन, अनाथ, ऐसें पंचेंद्रिय जीवोंका वध काहेकों यज्ञमें करते हो? इस्सें यही सिद्ध होता है कि जो तुम निरपराध, कृपण, दीन, अनाथ,

जीवोंकों यज्ञादिकोंमें मारते हो, तिस्सें संपूर्ण पुण्यका नाश करकें अन श्य दुर्गतिमें जाओगे, शुनपरिणामका होनां तुमकों बहुत डुर्लन है.

जे कर कहोगेकि जिनमंदिर बनानेमेंनी हिंसा होती है, इस वास्ते जिनमंदिर बनानेमेंनी पुण्य नहीं है.

उत्तरः–यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि जिनमंदिर, जिनप्रतिमा के देखनेंसें उनके दर्शनसें नगवान्के गुणानुराग करकें कितनेक नव्यजी वोंकों बोधिलान होता है, अरु पूजातिशय देखनेंमें मनः प्रसाद होता है, तिस मनःप्रसादसें समाधि होती है, पीछें क्रम करकें निःश्रेयस अर्था त् मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ तथा च नगवान् पंचलिंगीकारः ॥ पुढवाइया ण जइविहु, होइ विणासो जिणालयाहिं तो ॥ तव्विसयावि सुदिछिस्स, नि यमओ अछि अणुकंपा ॥ १ ॥ एआहिं तो बुद्धा, विरिया रस्कंति जेण पु ढवाइ ॥ इत्तो निव्वाण गया, अबाहया आनव मणंतं ॥ २ ॥ रोगसिरावे हो इव, सुविज्ज किरियाव सुप्पउत्ताउ ॥ परिणाम सुंदरच्चिय, चिठासे वाह जोगेवित्ति ॥ ३ ॥ इनका नावार्थ लिखते हैं. यद्यपि जिनमंदिर बनानेमें पृथिवीआदिक जीवोंकी हिंसा होती है. तोनी सम्यक् दृष्टिकी तिन जी वों उपर निश्चयही अनुकंपा है ॥ १ ॥ इनकी हिंसासें निवर्त्त हो कर ज्ञानी निर्वाणकों प्राप्त होये हैं. कैसें निर्वाणकों? अव्याहत. अनंत काल लगि ॥ २ ॥ जैसें रोगीकी नाडीकों बडे यत्नमें वैद्य वींधता है. उस वैद्यके असे परिणाम अछे हैं कि कदाचित् वो रोगी मरनी जावे, तोनी वैद्यकों पाप नहीं, तैसेंही जिनमंदिरके बनानेमें यत्नपूर्वक प्रवर्त्तमान पुरुषोकों उ नजीवोंके उपर अनुकंपाही है, अरु वेदके कहे मुजब बंध करनेमें किंचित् मात्रनी पुण्य हम नहीं देखते हैं.

पूर्वपक्षः–ब्राह्मणोंके तांइ पुरोमाशादि प्रदान करनेसें पुण्यानुबंधी गुण होता है.

उत्तरपक्षः–यहनी तुमारा कहनां ठीक नहीं. क्योंकि पवित्र सुवर्णादि प्रदान मात्रसेंनी पुण्योपार्जनेका संनव होता है. अरु जो कृपण, दीन, अनाथ, पशु गणकों मारणां, अरु तिनके मांसका दान करनां, यह केवल तुमारी निर्दयता अरु मांस लोलुपताहीका चिन्ह है.

पूर्वपक्षः– हम निःकेवल प्रदान मात्रही पशुवध क्रियाका फल नहीं करते हैं, किंतु नूत्यादिकं अर्थात् लक्ष्मी आदिन्नी होती है, यदाह श्रुतिः " श्वेतवायव्यामजमालनेत् नूतिकामइत्यादि " नावार्थः–श्वेतवर्णका जिसका वायु देवता स्वामी है असें बकरेकों आलजेत् हिंसेत् अर्थात् मारे. कौन मारे ? लक्ष्मीका कामी मारे.

उत्तरपक्षः–यहन्नी तुमारा कहनां व्यनिचार पिशाच करी ग्रस्त होनेसें अप्रामाणिक है,क्योंकि नूति जो है,सो अन्य उपाय करकेंन्नी साध्यमान है.

पूर्वपक्षः– तहां यज्ञमें जो बागादिक मारे जाते हैं वे मरके देवगतिकों प्राप्त होते हैं, यह यज्ञ करनेमें उन जीवों उपरि उपकार हैं.

उत्तरपक्षः–यहन्नी तुमारा कहनां प्रमाणके अनावसें वचन मात्र है, क्योंकि यज्ञमें मारे गये पशुयोंमेंसूं सजतिके लान होनेसें मुदित मन हो करकें कोइन्नी पशु पीबा आ करकें अपणे स्वर्गके सुखोंका निरूपण नहीं करता है.

पूर्वपक्षः–इस कहनेमें आगम प्रमाण है ॥ यथा ॥ औषध्यः पशवोवृक्षा,स्तिर्यंचःपक्षिणस्तथा ॥ यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः,प्राप्नुवंत्युच्छ्रितं पुनरित्यादि ॥ नावार्थः–औषधियो. अजादिक पशु, किंजल्कादि पक्षी, जो ये यज्ञमें मारे जाते हैं, वे फेर उच्छ्रितं अर्थात् उन्नतिकों प्राप्त होते हैं.

उत्तरपक्षः–यहन्नी तुमारा कहनां ठीक नहीं. तुमारा आगम पौरुषेय अपौरुषेय विकल्पों करकें हम आगें खंमन करेंगे अरु श्रोत्रविधि करकें पशुओंके मारनेसें जे कर स्वर्गप्राप्ति होती होवे, तब तो कसाइ (खटीक) प्रमुख न्नी स्वर्गवासी हो जावेंगे ॥ तथा च पठंति पारमर्षाः ॥ यूपं छित्वा पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिरकर्दमं ॥ यद्येवं गम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ॥ १ ॥ एक औरन्नी बात है, जे कर अपरिचित, अस्पष्ट चैतन्य, अनुपकारी पशुओंके मारनेसें त्रिदिव पदवी प्राप्त होवे, तदा परिचित, स्पष्ट चैतन्य, परमोपकारी, माता पितादिकोंके मारनेसें याज्ञिकोंकों अधिकतर पदकी प्राप्ति होवेगी? यहन्नी करनां चाहियें.

पूर्वपक्षः–" अचिंत्योहि मणिमंत्रौषधीनां प्रनाव इति वचना त् " इस वास्ते वैदिक मंत्रोंकी अचिंत्य शक्ति होनेसें उन मंत्रों करकें संस्कार करा हूआ पशुके मारनेसें अवश्य स्वर्ग प्राप्ति होती है.

उत्तरपक्षः—यहनी कहनां व्यनिचारी है. क्योंकि इह लोकमें विवाह, गर्नाधान, जातकर्मादिकोंके विषे तिन मंत्रोंका व्यनिचार देखनेमें आता है, तो अदृष्ट स्वर्गादिकोंमेंनी तिनोके व्यनिचारका अनुमान करते हैं. क्यों कि वेदोक्त मंत्रो करिकें संस्कार करे हूये विवाहसेंनी अनंतरही स्त्री, विधवा, अल्पायुष्या, दारिद्र्यादि उपद्रव करकें विधुर होते हूये, देखनेमें आते हैं, अरु वेद मंत्रोंके संस्कार विनानी कितनेक विवाह करने वाले सुखी, धनी, आदिक दीखते हैं.

पूर्वपक्षः—जिस विवाहादिकोंमें विधवादि हो जाती हैं तहां क्रियाकी वैगुण्यतासें विसंवाद होता है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें यह संशय कनी दूर नहीं होवेगा, क्या तहां क्रियाकी वैगुण्यता विसंवादका हेतु है? किंवा वेदमंत्रोकी असमर्थता विसंवादका हेतु है?

पूर्वपक्षः—जैसे तुमारे मतमें "आरोग्ग बोहिलानं समाहिवरमुत्तमं दिंतु" इत्यादिक वचनोंका कालांतरमेंही फल चाहते (वांछते) हैं, ऐसें हमारे अनिमत वेद वचनोंकानी इस लोकमें फल नहीं कल्पना करते हैं, किंतु लोकांतरमें फल होता है. इस वास्ते विवाहादिकका उपालंनावकाश नहीं.

उत्तरपक्षः—अहो वचन वैचित्री! जैसें वर्त्तमान जन्मविषे विवाहादिकोंमें प्रयुक्त मंत्र, संस्कारों करकें आगम जन्ममें तिसका फल है, ऐसे हीं द्वितीयादि जन्ममेंनी विवाहादिकोंके पुण्य हेतु माननेमें अनंत नवोंका अनुसंधान होवेगा, ऐसें तो कदापि संसारकी समाप्ति नहीं होवेगी, तब तो किसीकोंनी मोक्षप्राप्ति नहीं. इस्से यही सिद्ध हूआ जो वेदही अपर्यवसित संसार वल्लरीका मूल (कंद) है, अरु आरोग्यादि प्रार्थना जो है, सो असत्य अमृषा नाषा है, परिणाम विशुद्धिका कारण होनेसें दोषके वास्ते नहीं, क्योंकि तहां नाव आरोग्यादिककीही विवक्षा है, अरु वो जो आरोग्यपणा है, सो चातुर्गतिक संसार लक्षण नावरोग परिक्षय रूप होनेसें उत्तम फल है, तिस विषयक जो प्रार्थना है, वो कैसें विवेकवानोंकों आदरणीय नहीं? ऐसेंनी मत कहनां जो परिणाम शुद्धिसें तिस फलकी प्राप्ति नहीं, क्योंकि सर्व वादीयोंके नावशुद्धिसें फल पानेमें विवाद नहीं. ऐसेंनी मत कहनां जो वेदविहित हिंसा बुरी नहीं, क्यों

कि सम्यक् दर्शन ज्ञान संपन्न अर्चिमार्गप्रतिपन्न वेदांतवादीयोनेंजी निंदी है. “तथा च तत्त्वदर्शिनः पठंति ॥ श्लोक ॥ देवोपहारव्याजेन, यज्ञव्याजेन वाथवा ॥ घ्नंति जंतून् गतघृणा, घोरां ते यांति दुर्गतिं ॥ १ ॥ वेदांतिका अप्याहुः ॥ अंधे तमसि मज्जामः, पशुनिर्ये यजामहे ॥ हिंसा नाम नवेद्धर्मो, न जूतो न नविष्यति ॥१॥ “तथा अग्निर्मामेतस्मात् हिंसाकृतादेनसोमुंचतु बांदसत्वान्मोचयतु इत्यर्थः” व्यासेनाप्युक्तं ॥ ज्ञानपालिपरिक्षिप्ते, ब्रह्मचर्यदयांजसि ॥ स्नात्वातिविमले तीर्थे, पापपंकापहारिणि ॥ १ ॥ ध्यानाग्नौ जीवकुंमस्थे, दममारुतदीपिते ॥ असत्कर्मसमित्क्षेपै, रग्निहोत्रं कुरुत्तम ॥२॥ कषायपशुनिर्दुष्टै, धर्मकामार्थनाशकैः ॥ शममंत्रहुतैर्यज्ञं, विधेहि विहितं बुधैः ॥ ३ ॥ प्राणिघातात्तु यो धर्म, मीहते मूढमानसः ॥ स वांछति सुधावृष्टिं, कृष्णाहिमुखकोटरात् ॥ ४ ॥ इत्यादि.

अरु जो यज्ञ करने वालोंकों पूजनिक पणा तुम कहते हो, सोनी असार है, क्योंकि अबुद्ध जनही उनकों पूजते हैं, नतु विविक्त बुद्धिमान्. अरु मूर्खोंका जो पूजनां है, सो प्रामाणिक नहिं, क्योंकि मूर्ख तो कुत्ते औ गद्धकोंनी पूजते हैं.

अरु जो तुमने कहा था कि देवता, अतिथि, पितृ प्रीति संपादक होने सें वेद विहिता हिंसा, दोषके तांइ नहीं, यहनी जूठ है, क्योंकि देवताओंके संकल्प मात्रमेंही अनिमत आहारके रसका स्वाद, प्राप्त हो जाता है, अरु देवताओंका शरीर वैक्रियरूप है, सो तुमारी जुगुप्सित पशुमांसादि आहुतिके लेनेकों उनकी इछाही नहीं हो सक्ती है, क्योंकि औदारिक शरीर वालेही तिन मांसादिकोंके ग्राहक है, जे कर देवताओंकोनी कवल आहारी मानोगे, तब तो देवताओंका शरीर तुमने मंत्रमय माना है, तिसके साथ विरोध होवेगा, अरु अन्युपगमकी बाधा है, देवताओंका शरीर मंत्रमय तुमारे मतमें असिद्ध नहीं है, “चतुर्थ्यंतं पदमेव देवता इति जैमिनीय वचनप्रामाण्यात् ॥ तथा च ॥ मृगेंद्रः शब्देतरत्वे युगपद्भिन्नदेशेषु यष्टृषु नसा प्रयाति सांनिध्यं मूर्त्तत्वादस्मादिवदिति”

तथा जिस वस्तुकी आहुति देवताओंकों देते हं, वोतो नस्मीनावमात्र हो जाती है, तो फेर देवता क्या उस नस्म अर्थात् राखकों खाते हैं? इस वास्ते तुमारा कहनां प्रलापमात्र है.

तथा एक औरजी बात है, यो यह त्रेताग्नि है, सो तेतीस कोटि देवताका मुख है, "अग्निमुखा वै देवा इति श्रुतेः" तब तो उत्तम, मध्यम, अधम, सर्व देवता एकही मुख करकें खाने वाले सिद्ध हूये. अरु सर्व आपसमें जूठ खाने वाले बन गये, तब तो तुरकोंसेंजी अधिक हो गये. क्यों कि तुरकजो एक पात्रमें एकठे खाते हैं, परंतु एक मुख करकें सर्व नहीं खाते हैं.

एक औरजी दूषण है, एक शरीरमें मुख बहुत हैं, यह बात तो हम आगेंजी सुनते थे, परंतु अनेक शरीरोंका एक मुख, यह तो बडा आश्चर्य है. जब सर्व देवताओंका एक मुख माना, तब तो किसी पुरुषने जब एक देवताकी पूजादि करकें आराध्या, अरु अन्य देवताओंकी निंदादि करकें विराध्या, तब तो एक मुख करकें युगपत् अनुग्रह, निग्रह, वाक्यके उच्चारणमें संकरका प्रसंग होवेगा.

तथा एक औरजी बात है कि, मुख जो है सो देहका नवमा जाग है, तो जब उन देवताओंका मुखही दाहात्मक है, तब एक एक देवताका शरीर दाहात्मक होनेसें तीनो जवनही जस्मीजूत हो जाने चाहियें? इत्यलमतिचर्चया ॥

अरु जो कारीरी यज्ञादिकोमें वृष्ट्यादि फलका अव्यजिचार है, तिस फलमें आहुति करकें प्रीणीत देवताका अनुग्रह जो तुम कहते हो सोजी अनेकांतिक है. किसी जगे व्यजिचारजी देखनेमें आता है, अरु जहां व्यजिचार नहीं, तहांजी आहुतिके जोजन करनेमें अनुग्रह नहीं. किंतु वो देवता विशेष अतिशय ज्ञानी हैं, स्वउद्देश्य पूजोपचारकों देख करकें, अपणे स्थानमेंही स्थित हूये थके पूजा करनें वाले प्रति प्रसन्न हो कर उसका कार्य, अपणी इच्छासें कर देता है, अनुपयोग करकें अनजानता अथवा जानता थकाजी पूजकके अजाग्य करकें कार्य नहींजी करता? क्योंकि इव्य, क्षेत्र, काल, जावादि सहकारियों करकें कार्यका होनां दीख पडता है, अरु वो जो पूजा उपचार है, सो निःकेवल पशुओंहीके मारनेसें नहीं हो सक्ती, दूसरी तरेसेंजी हो सक्ती है, तो फेर पाप एक फल रूप शौनिकवृत्ति करनेसें क्या है?

अरु जो छगल अर्थात् बकरेके मांस होमनेसें परराष्ट्र वश करने वाली सिद्धादेवीके परितोष होनेका जो अनुमान है, तो इसमें क्या आश्चर्य है?

क्योंकि कितनेक क्षुद्र देवताकों तैसेंही प्रीति है, तहांनी वें क्षुद्र देव तो अपनी पूजा देखके राजी होते हैं, परंतु मलिन (बीजत्स) मांसके खानेसें नहीं राजी होते. जे कर होम करी हूइ वस्तुकों खाते हैं, तब तो निंबपत्र, कडुवा तेल, आरनाल, धूमांशादिनी हूयमान इव्यनी तिनका नोजन हो जावेगा, वाह क्याही तुमारे देवता सुंदर नोजन करते हैं!

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो संस्कार संपन्न पक्वान्नादिक करकेंनी हो सक्ती है, तो फेर तिनके अर्थे महोक्ष महाजादिकोंका कल्पनां सो निःकेवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है.

अरु श्राद्धादिकोंके करनेसें पितरोंकी जो प्रीति है, सोनी अनेकांतिक है, क्योंकी कितनेक श्राद्ध नहींनी करते हैं, तोनी तिनकी संतानवृद्धि देखते हैं. गर्त्तशूकरादिके जैसें वृद्धि है. तिस वास्ते श्राद्धादिकोंका जो करणां है, सो मुग्ध जनोंकों विप्रतारणमात्रही फल है. जो पितर लोकांतरमें प्राप्त हूये हैं, सो अपणे सुकृत दुःकृत कर्मोंके अनुसार सुर नारकादि गतियोंमें सुख दुःख नोग रहे हैं, तो फेर पुत्रादिकोंके दीये हूये पिंमोंकों क्योंकर नोगनेकी इछा कर सक्ते हैं? "तथा च युष्मद्यूथिनः पठंति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जंतूनां, श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणं ॥ तं निर्वाणप्रदीपस्य, स्नेहः संवर्द्धयेच्छिखामिति ॥

तथा श्राद्ध करनेसें पुण्य क्यों कर उस पितरोंके पास चला जाता है? क्योंकि वो पुण्य तो औरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप है, औ पगोंसें रहित है. जे कर कहोगेकि उद्देशतो पितरोंहीका है, परंतु पुण्य, श्राद्ध करनेवाले पुत्रादिकोंकों होता है, यहनी कहनां ठीक नहीं पुत्रादिकोंकों पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकोंके मनमें यह वासना नहीं जो हम पुण्य करते हैं, इसका फल हमकों मिलेगा, तो बिना पुण्यकी नावनासें पुण्य फल नहीं होता है, इस हेतुसें नतो पितरोंकों, अरु न पुत्रादिकोंकों श्राद्ध करनेका फल है, किंतु बिचमेंही त्रिशंकुके दृष्टांत करिकें विलीन हो गया.

अरु पापानुबंधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसें पाप रूपही है, जे कर कहोगे कि ब्राह्मण जो कुछ खाते हैं, वो उनकों मिलता है, तो इस कहनेकी तुमकोंही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोंहीका मोटा उदर दिखला

इ देता है, परंतु उनके पेटमें प्रवेश करकें पितर खाते हूये कदापि नहीं दिखते हैं, भोजनावसरमें ब्राह्मणोंके उदरमें प्रवेश करते हूये पितरोंका कोइभी लिंग हम नहीं देखते हैं,केवल ब्राह्मणोंहीकों तृप्त होते देखते हैं.

अरु जो तुमने कहाथाकि हमारे पास आगम प्रमाण है, सो तुमारा आगम पौरुषेय है? वा अपौरुषेय है? जे कर कहोगेकि पौरुषेय है,तो क्या सर्वज्ञका करा हूआ है? वा असर्वज्ञका करा हूआ है? जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तुमारे मतकी व्याहति होवेगी, क्योंकि तुमारा यह सिद्धांत है, " अतींद्रियाणामर्थानां, साक्षाद्दृष्टा न विद्यते ॥ नित्येभ्यो वेदवाक्येभ्यो, यथार्थत्वविनिश्चयः ॥ १ ॥ दूसरे पक्षमें दूषण वाले करता के करे हूये शास्त्रका विश्वास नहीं होता है; जे कर कहोगेकि अपौरुषेय है, तब तो संभवही नहीं हो सक्ता है, स्वरूप निराकरणेसें तुरंगशृंगवत् पुरुषक्रियानुगत रूप इसका है. पुरुष क्रियाके विना यह क्योंकर हो सक्ता है? इस वास्ते जो साक्षर वचन है, सो पौरुषेयही है, कुमारसंभवादि वचनवत्. वचनात्मकही वेद है, " तथा चाहुः ॥ ताल्वादिजन्मा ननु वर्ण वर्गो, वर्णात्मको वेद इति स्फुटं च ॥ पुंसश्च ताल्वादिरतः कथं स्या,दपौरुषेयोयमिति प्रतीतिः ॥१॥ इति श्रुतिकों अपौरषेयत्व " अंगीकार करकेंभी तुमने तदर्थव्याख्यान पौरुषेयही अंगीकार करी है, अन्यथा " अग्निहोत्रं जुहूयात् स्वर्गकामः" इसका अर्थ " श्वमांसं भक्षयेत् इति" नियामकके अभावसें ऐसें क्यों न हो जावे? तिस वास्ते यही अछा है जो शास्त्रकों पौरुषेय माननां होवे. तुमारे हठसें अपौरुषेय वेद माने, तोभी तिसकों प्रमाणता नहीं, क्योंकि प्रमाणता जो है, सो आप्त पुरुषाधीन है, जब वेद प्रमाण न हूये, तब तिन वेदोंका कह्या हूआ तथा वेदानुसारी स्मृतिभी प्रमाणभूत नहीं, हिंसात्मक याग श्राद्धादिविधि प्रामाण्य विधुरही है.

पूर्वपक्षः—जो यह कहा है कि "न हिंस्यात् सर्वभूतानीत्यादि" करकें जो हिंसाका निषेध करा है, सो औत्सर्गिक मार्ग है, अर्थात् सामान्य विधि है, अरु वेदविहिता जो हिंसा है, सो अपवाद विधि है, अर्थात् विशेष विधि है, तब तो अपवाद करकें उत्सर्गकी बाधा होनेसें वैदिकी हिंसा दोषका कारण नहीं " उत्सर्गापवादयोरपवादविधिर्बलीयानिति न्यायात् " तुमारे जैनोंके मतमेंभी एकांत हिंसाका निषेध नहीं है, कितनेक कारणोके

होनेसें पृथिव्यादिक जीवोंकी हिंसा करनेकी आज्ञा है, अरु जब साधु रोग पीडित होता है, "असंस्तरे" अर्थात् असामर्थ्य होता है, तब आधाकर्मादि आहारके ग्रहणेकीभी आज्ञा है, ऐसेही हमारे मतमें याज्ञिकी हिंसा जो है, सो देवता अतिथिकी प्रीतिके वास्ते पुष्टालंबनरूप होनेसें अपवाद रूप है, इस वास्ते दोष नहीं.

उत्तरपक्षः—अन्यकार्यके वास्ते उत्सर्ग वाक्य, अरु अन्य कार्यके वास्ते अपवाद पद कहनां, यह उत्सर्ग, अपवाद, कदा भी नहीं हो सक्ता है, किंतु जिस अर्थके वास्ते शास्त्रमें उत्सर्ग कह्या है, तिसी अर्थके वास्ते अपवाद होवे, तबही उत्सर्ग अपवाद हो सक्ता है, तिन दोनोंहीकों उन्नत निम्नादि व्यवहारवत् परस्पर सापेक्ष होनेसेंही एकार्थके साधक हो सक्ते हैं, जैसें जैनोंके संयम पालनेके अर्थ नवकोटि विशुद्ध आहारकों ग्रहणां, सो उत्सर्ग है. तैसेंही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, आपत्में पडनेसें गत्यंतरके अभावसें पंचकादि यत्ना करकें अनेषणीयादि आहारकों जो ग्रहण करनां, सो अपवाद है, सोभी संयमहीके पालने वास्ते है, ऐसेंभी मत कहनां कि जिस साधुकों मरणाही एक शरण है,तिसकों गत्यंतर अभाव की असिद्धि है ॥ उक्तं चार्षभिः ॥ सव्वछ संजमं सं,जमाउ अप्पाणमेव रक्खिज्जा ॥ मुच्चइ अइवायाउ, पुणो विसोही नयाविरई ॥१॥ इत्यागमात् ॥ इसका भावार्थः—सर्वत्र संयम करणां, जे कर संयमके दूषित होनेसें प्राण रहित होवे, तो संयममें दूषणभी लगा कर प्राणोंकी रक्षा करणी, प्राणोके रहणेमें प्रायश्चित्त द्वारा उस पापसें छूट करकें शुद्ध हो जावेगा, अरु अविरतिभी नहीं रहेगी. तथा आयुर्वेदमें भी जो वस्तु किसी रोगमें किसी अवस्थामें अपथ्य है, सोइ वस्तु उसी रोगमें उसी अवस्थामें अवस्था, देश, काल. देख कर देवे, तो पथ्य हैं. देशादि अपेक्षा करकें ज्वर वालेकों दहीं खानेकों देते हैं॥ तथाच वैद्याः ॥ कालाविरोधिनिर्दिष्टं, ज्वरादौ लंघनं हितं ॥ ऋतेऽनिलश्रमक्रोध, शोककामकृतज्वरात् ॥ १ ॥ जैसें प्रथम अपथ्यका परिहार करनां, अरु जो तहांही अवस्थांतरमें तिसीकों भोगनां, सो दोनोंही जगे रोगके दूर करनेका प्रयोजन है. इस्सें यह सिद्ध हूआ जो एकही वस्तुविषयक उत्सर्ग अपवाद है.

अरु तुमारे तो उत्सर्ग, और अर्थ वास्ते है, तथा अपवाद,और अर्थ

वास्ते है, क्योंकि तुमारे तो "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" यह जो उत्सर्ग है सो दुर्गतिके निषेध वास्ते है, अरु जो तुमारी अपवाद हिंसा है, सो देवता, अतिथि, पितरोंकी प्रीति संपादनेके अर्थे है, इस वास्ते परस्पर निरपेक्ष होनेसें उत्सर्ग अपवाद विधि नहीं हो सक्ती है. तब कैसें तुमारा अपवाद, उत्सर्ग विधिकों बाधा कर सक्ता है?

ऐसेंजी मत कहनां कि वैदिक हिंसाकी जो विधि है, सो स्वर्गहेतु होनेसें दुर्गति निषेधार्थही है, वैदिकहिंसा स्वर्गका हेतु नहीं है, यह उपर अछी तरेसें लिख आये हैं, वैदिक हिंसाके विनाजी स्वर्गकी प्राप्ति हो सक्ती है, गत्यंतरके अजावमेंही अपवाद हो सक्ता है, कुछ हमही नहीं यज्ञ करनेसें स्वर्गका निषेध करते हैं, किंतु तुमारा व्यासजीजी कहता है. यदाह व्यास महर्षिः ॥ पूजया विपुलं राज्य,मग्निकार्येण संपदः ॥ तपः पापविशुद्ध्यर्थं, ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदं ॥१॥ यहां अग्निकार्य शब्दवाच्यस्य यागादिविधि उपायांतर करकें जो साध्य है संपदा, तिसहीका हेतु कहता हूआ आचार्य तिस यागकों सुगतिका हेतु अर्थात् ही कदर्थन करता हूआ है, तथा सोइ व्यासजी जावाग्निहोत्र "ज्ञानपाली" इत्यादि श्लोकों करकें स्थापन कर गया है ॥ इति मीमांसकमतखंमनम् ॥ ५ ॥

अथ चार्वाकमत खंमन लिखते हैं ॥ चार्वाक कहता है की आत्माही नहीं है, तब किस वास्ते मतावलंबी पुरुष, वचनकलहा करते हैं? जब आत्माही नास्ति है. तब जैन, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, अरु जैमिनीय, यह जो षट् दर्शन है, सो निःकेवल लोकोंकों ज्रममें माल करकें जोग विलास छुडा देते हैं; वास्तवमें आत्मानामा कोइ वस्तु नहीं. इस वास्ते हमारा मत अछा है, जे कर आत्मा है,तो कैसें तिसकी सिद्धि है?

उत्तरपक्षः—प्रतिप्राणी स्वसंवेदन प्रमाण चैतन्यकी अन्यथानुपपत्तिसें सिद्ध है, तथाहि यह जो चैतन्य है, सो जूतोंका धर्म नहीं है, जे कर जूतोंका धर्म होवे, तब तो पृथिवीकी कठीनताकी तरें सर्वत्र सर्वदा उपलंज होनां चाहियें, सो सर्वत्र सर्वदा उपलंज होता है नहीं, क्योंकि लोष्टादिकोंमें अरु मृत् अवस्थामें चैतन्य उपलंज नहीं होता.

पूर्वपक्षः—लोष्टादिकोंमें अरु मृत् अवस्थामेंजी चैतन्य है, केवल शक्तिरूप करिकें है, तिस वास्ते नहीं उपलंज होता है.

उत्तरपक्षः—दो विकल्पके न उल्लंघनेंसें यह तुमारा कहनां अयुक्त है, तथाहि वो शक्ति, चैतन्यसें विलक्षण है? अथवा चैतन्यही है? जे कर कहोगेकि विलक्षण है,तब तो शक्तिरूप करकें चैतन्य है ऐसा मत कहो, क्योंकि नहीं पटके विद्यमान हूआ पटरूप करकें घट रहता है, "आह च ॥ प्रज्ञाकरगुप्तोपि ॥ श्लोक ॥ रूपांतरेण यदि त, त्तदेवास्तीति मास्टीः ॥ चैतन्यादन्यरूपस्य, भावे तद्विद्यते कथम् ॥१॥ जे कर दूसरा पक्ष मानोगे,तब तो चैतन्यही वो शक्ति है,तो फेर क्युं नहीं उपलंभ होती? जे कर कहोगेकि आवृत्त होनेसें उपलंभ नहीं होती, तो यहभी ठीक नहीं, क्योंकि आवृत्ति नाम आवरणका है, सो आवरण क्या विवक्षित परिणामका अभाव है? अथवा परिणामांतर है? अथवा भूतोंसें अतिरिक्त और वस्तु है? उसमें विवक्षित परिणामोंका अभाव तो नहीं हैं, क्योंकि एकांत तुछ होने करकें तिस विवक्षित परिणाम अभावकों आवरण शक्ति नहीं है, अन्यथा तिसकों अतुछ रूप होनेमें सोभी भावरूप हो जावेगा. अरु जब भावरूप हूआ, तब तो पृथिवी आदिकोंमेंसूं अन्यतम हूआ,क्योंकि "पृथिव्यादीन्येव भूतानि तत्त्वमिति वचनात्" अरु पृथिवी आदिक जो भूत है, सो चैतन्यके व्यंजक हैं, परंतु आवरक नहीं. तब कैसें आवरकत्व सिद्ध होवे?

अथ जे कर कहोगेकि परिणामांतर है,सोभी अयुक्त है, क्योंकि परिणामांतरकों भूत स्वभाव होने करकें भूतोंकी तरें चैतन्यका व्यंजकही हो सक्ता है, आवरक नहीं.

अथ जे कर कहोगेकि भूतोंसें अतिरिक्त वस्तु है, यह कहनां बहुत ही असंगत है, क्योंकि भूतोसें अतिरिक्त वस्तु माननेसें "चत्वार्येव पृथ्व्यादि भूतानि तत्त्वमिति" इस कहनेंसें तत्त्वसंख्याका व्याघात हो जावेगा.

एक औरभी बात हैकि यह जो चैतन्य है, सो एक एक भूतका धर्म है? वा सर्व भूत समुदायका धर्म है? एक एक भूतका धर्म तो नहीं, क्योंकि एक एक भूतमें दीखता नहीं औ एक एक परमाणुमें संवेदन उपलंभ नहीं होता है. जे कर प्रति परमाणुमें होवे, तब तो पुरुष, सहस्र चैतन्य वृंदकी तरें परस्पर भिन्न स्वभाव होवेगा, परंतु एक रूप चैतन्य नहीं होवेगा, अरु देखनेमें एक रूप आता है. "अहं पश्यामि" अर्थात् मैं देखता हूं, मैं करता हूं, ऐसें सकल शरीरका अधिष्ठाता एक उपलंभ होता है.

जे कर समुदायका धर्म मानोगे सोजी प्रत्येकमें अनाव होनेसें असत् है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामें असत् है, वो समुदायमेंजी नहीं होसक्ता है, जैसें रेणुकायोंमें तैल.

जे कर कहोगेकि मद्यांगोमें मद शक्ति नहीं है समुदायमें हो जाती है, ऐसें चैतन्यजी हो जावे, तो क्या दोष है? यहजी अयुक्त है, क्योंकि प्रत्येक मद अंगोमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते हैं, तथाहि ॥ दीखता है माधुर्यादि इक्षुरसमें धातकी फूलोंसें थोडीसी विकलता उत्पादक शक्ति, ऐसें चैतन्य, सामान्य प्रकारसें जूतोमें नहीं उपलंज होता है, तब कैसें जूत समुदायमें चैतन्य हो सक्ता है? जे कर प्रत्येक अवस्थामें असत् समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुछ हो जानां चाहियें. यह अति प्रसंग होवेगा.

एक औरजी बात है, कि जे कर तुमने चैतन्य धर्म माना है, तब तो अवश्य धर्मके अनुरूप धर्मीजी मानना चाहियें, जे कर अनुरूप न मानोगे, तब तो जल अरु कठिनता इन दोनोकों धर्म धर्मी माननां चाहियें, ऐसेंजी मत कहनां जो जूतही धर्मी हैं, क्योंकि जूत, चैतन्यसें विलक्षण हैं, तथाहि चैतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त्त है, अरु जूत इससें विलक्षण हैं, तब कैसें परस्पर धर्म धर्मी जाव हो सक्ता है? अरु यह चैतन्य जूतोंका कार्यजी नहीं है, अत्यंत वैलक्षण्य होनेसें कार्य कारण जाव कदापि नहीं होता है ॥ उक्तंच ॥ काठिन्याबोधरूपाणि, जूतान्यध्यक्षसिद्धितः ॥ चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं जवेत् ॥ १ ॥

एक औरजी बात हैकि जे कर जूतकार्य चेतना होवे, तब तो सकल जगत् प्राणीमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विशेष सद्भावके अनावसें सकल जगत् प्राणिमय नहीं होता है, तो वो परिणति विशेष सद्भाव सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होती है? सोजी परिणति जूतमात्र निमित्तकही है, तब कैसें तिसका किस जगें होनां न होनां सिद्ध होवे? तथा वो परिणति विशेष किस स्वरूपवाली है, जे कर कहोगेकि कठिनादि रूप है, सो इ दिखाते हैं कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते हूये काष्ठादिकोंमें दीखते हैं तिस वास्ते जहां कठिनत्वादि विशेष है, सो प्राणिमय हैं, शेष नहीं. यहजी व्यजिचार देखनेसें असत् है तथाहि अविशिष्टजी कठिनत्वादि विशेषके

हूया कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, अरु किसी जगे कठिनत्वादि विशेषके बिनाभी संस्वेदज घने आकाशमें संमूर्छिम उत्पन्न होते हैं.

एक औरभी बात है कि कितनेक जीव समानयौनिकभी विचित्रवर्ण संस्थान वाले दीखते हैं, तथाहि गोवर आदि एक योनिवालेभी कितनेक नीले शरीर वाले हैं, अपर पीत शरीर वाले हैं, अन्य विचित्र वर्ण वाले हैं, अरु संस्थानभी इनका परस्पर भिन्न है, जे कर भूतमात्र निमित्त चैतन्य होवे, तब तो एक योनिक सर्व एक वर्ण संस्थान वाले होने चाहियें, परंतु सोतो होते हैं नहिं, तिस वास्ते आत्माही तिस तिस कर्मके वश तैसें उत्पन्न होती है, यही सिद्ध माननां चाहियें.

जे कर कहोगेकि आत्मा होवे, तब जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध होता? केवल देहके हुवांही संवेदन उपलब्ध होता है, अरु देहके अभाव होयां भस्म अवस्थामें नहीं दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नहीं. किंतु संवेदन मात्रही एक है, सो संवेदन देहका कार्य है, देहहीमें आश्रित है, भींतके चित्रवत्. चित्र, भींतके विना नहीं रह सक्ता है,अरु दूसरी भींत उपर संक्रमणभी नहीं होता है. किंतु भींत उपर उत्पन्न हूआ है, अरु भींतके साथही विनाश हो जाता है, संवेदनभी ऐसेही जान लेनां.यहभी असत् है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करकें अमूर्त्त है,अरु आंतर शरीर अति सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नहीं ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अंतराभावदेहोपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते ॥ निःक्रामन् प्रविशन् वात्मा,नाभावोऽनीक्षणादपि ॥ १ ॥ तिस वास्ते आंतःशरीर युक्तभी आत्मा आता जाता हूआ नहीं दीखता है, परंतु लिंगसें उपलब्ध होता है, तथाहि तत्काल उत्पन्न हूआभी कृमी जीवकों अपने शरीर विषे ममत्व है, घातककों जान करकें दौड जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वले ममत्वके अभ्यास पूर्वक है, तैसेही देखनेसें. अरु जितना चिर, किसी वस्तुके गुण दोष नहीं जानता, उतना चिर, उस वस्तुमें किसीकोंभी आग्रह नहीं होता है, तब तो जन्मकी आदिमें जो शरीरका आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अभ्यासपूर्वक संस्कार निबंधन है, इस वास्ते आत्माका जन्मांतरसें आवनां सिद्ध हूआ ॥ उक्तं च ॥ शरीरग्रहरूपस्य, चेतसः संभवोयदा ॥ जन्मादौ देहिनां दृष्टः, किन्न जन्मांतरा गतिः ॥ १ ॥

अथ आगति प्रत्यक्षसें नहीं दीखती है, तब कैसें तिसका अनुमानसें बोध होवे? यह तुमारा कहनां कुछ दूषण नहीं, क्योंकि अनुमेय अर्थ विषे प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती है, परस्पर विषयकों परिहार करकें प्रत्यक्ष अनुमानका प्रवर्त्तनां बुद्धिमान् मानते हैं, तब कैसें यह तुमारा दूषण है? आह च ॥ अनुमेयेस्ति नाध्यक्ष, मिति कैवात्र दुष्टता ॥ अध्यक्षस्या!नुमानस्य, विषयो विषयो नहि ॥ १ ॥

अरु जो चित्रका दृष्टांत तुमने कहा था. सोजी विषम होनेमें अयुक्त है, तथाहि चित्र जो है सो अचेतन है अरु गमन स्वजाव रहित है, औ आत्मा जो है सो चैतन्य है सो कर्मोंके वशसें गति आगति करता है. तब कैसें दृष्टांत अरु दार्ष्टांतकी साम्यता होवे? जैसें देवदत्त किसी विवक्षित ग्राममें कितनेक दिन रह करकें फेर ग्रामांतरमें जाता रहता है,तैसेंही आत्माजी विवक्षित जवमें देहकों त्याग कर जवांतरमें देहांतर रच कर रहता है.

अरु जो तुमने कहा था कि संवेदन देहका कार्य है, सोजी ठीक नहीं. क्योंकि चक्षुषादि इंड्रियद्वारें उत्पन्न होनेमें चाक्षुषादि संवेदन कथंचित् देहसेंजी उत्पन्न होता है. परंतु जो मानस ज्ञान है, वो कैसें देहका कार्य हो सक्ता है? तथाहि सो मानस ज्ञान देहमें उत्पद्यमान होता हुवा इंड्रियरूपसें उत्पन्न होता है? वा अनिंड्रिय रूपसें उत्पन्न होता है? वा केश नखादि लक्षणमें उत्पन्न होता है? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं. जेकर इंड्रियरूपमें उत्पन्न होवे, तब तो इंड्रिय बुद्धिवत् वर्त्तमानार्थकाही ग्राहक होनां चाहियें. इंड्रियज्ञान जो है, सो वर्त्तमान अर्थही ग्रहण कर सक्ता है, इस सामर्थ्यसें उपजायमान मानस ज्ञानजी इंड्रियज्ञानवत् वर्त्तमान अर्थकाही ग्रहण कर सकेगा.

अथ जब चक्षुरूप विषय व्यापार करता है, तब रूप विज्ञान उत्पन्न होता है, शेष काल नहीं. तब वो रूपविज्ञान वर्त्तमानार्थ विषय है, क्योंकि वर्त्तमानार्थ विषयही चक्षुका व्यापार होनेमें. अरु रूप विषय व्यावृत्तिके अजावमें मनोज्ञान है, तिस वास्ते नियत काल विषयक नहीं है, ऐसेंही शेष इंड्रियमेंजी जान लेनां, तब कैसें मनोज्ञानकों वर्त्तमानार्थ ग्रहण प्रसक्ति होवे? उक्तं च ॥ अक्षव्यापारमाश्रित्य, जवदक्षजमिष्यते ॥ तद्व्यापारोन तत्रेति, कथमक्षजवं जवेत् ॥ १ ॥

अथ अनिंद्रिय रूपसें है, सोजी तिसकों अचेतन होनेसें अयुक्त है, अरु केश नखादिक तो मनोज्ञान करकें स्फुरत चिद्रूप नहीं उपलंन होते हैं, तब कैसें तिनसेंती मनोज्ञान होवे? आह च ॥ चेतयंतो न दृश्यंते, केशश्मश्रुनखादयः ॥ ततस्तेज्यो मनोज्ञानं, जवतीत्यतिसाहसं ॥ १ ॥

जे कर केश, नखादिकों करकें प्रतिबद्ध मनोज्ञान होवे, तब तो तिनोंके उच्छेद हूया मूलसेंही मनोज्ञान नहीं होवेगा? अरु केश, नखादिकोंको उपघात हूआं ज्ञानजी उपहत होनां चाहियें, परंतु सोतो होता है नहीं. इस वास्ते यह तीसरा पक्षजी ठीक नहीं.

एक औरजी बात है, कि मनोज्ञानके सूक्ष्म अर्थ चेतृत्व अरु स्मृतिपाटवादि विशेष जो हैं, सो अन्वयव्यतिरेक करकें अन्यासपूर्वक देखे हैं, तथाहि वोही शास्त्र, इहा अपोहादि प्रकार करकें जे कर वार वार विचारियें, तब सूक्ष्म सूक्ष्मतर अर्थावबोध उल्लास होता है, अरु स्मृति पाटव अपूर्व वृद्धि होती है, ऐसें एक शास्त्रविषे अन्याससेंतो सूक्ष्मार्थ चेतृत्व शक्तिके होयां, अरु स्मृतिपाटवके हूयां अन्य शास्त्रोमेंजी सहजमेंही सूक्ष्मार्थावबोध, अरु स्मृतिपाटव उल्लास होती है, ऐसें अन्यास हेतुक सूक्ष्मार्थ चेतृत्वादिक मनोज्ञानके विशेष देखे हैं, अरु किसीकों अन्यासके विनाजी देखियें है, तिस वास्ते अवश्य परलोकका अन्यास हेतु है, सो काहेतें? कि कारणके साथ कार्यका अन्यथानुपपन्न पणा है, तिस प्रतिबंधमें अदृष्ट तिसके कारणकीजी सिद्धि है, तिस वास्ते जीवका परलोकमें जानां सिद्ध हूआ.

अरु देह, क्षयोपशमका हेतु है, इस वास्ते देहजी कथंचित् ज्ञानकों उपकारी हम मानते है. नहीं देहके दूर होनेसें सर्वथा ज्ञानकी निवृत्ति होती. जैसें अग्नि करकें घटकों कुछ विशेषता है, परंतु अग्निकी निवृत्ति हूया घट मूलसेंही उच्छेद नहीं हो जाता है, केवल कछुक विशेष दूर हो जाता है, जैसें सुवर्णकी इवता. ऐसें इहांजी देहकी निवृत्ति हूआ कोइक ज्ञानविशेष तत्प्रतिबद्धही निवृत्त होता है, परंतु समूल ज्ञानका उच्छेद नहीं होता है, जे कर देहही ज्ञानका निमित्त मानेंगे, अरु देहकी निवृत्तिसें ज्ञान निवृत्तिवाला मानोगे, तब तो स्मशानमें देहके जस्म हूयां तो ज्ञान न होवे, परंतु देहके विद्यमान हूआ मृत अवस्थामें किस वास्ते नहीं होता?

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानभी ज्ञानके हेतु हैं, तिनके अभावसें ज्ञान नहीं होता है, यहभी कहनां ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान ज्ञानके हेतु नहीं हो सके हैं, किंतु ज्ञानहीसें तिनकी प्रवृत्ति होनेसें. तथाहि जब प्राणापानका करने वाला मंद इच्छा करता है, तब मंद होता है, अरु जब दीर्घकी इच्छा करता है, तब दीर्घ होता है, जे कर देहमात्र नैमित्तिक प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तब तो इच्छाके वशसें प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी; क्योंकि जिनका निमित्त देह है, ऐसी जो गौरता औ श्यामता, वो इच्छाके वशसें प्रवृत्त नहीं होती है, जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके थोडे वा बहुतेके होनेसें ज्ञानभी थोडा वा बहुत होनां चाहियें, क्योंकि जिसका कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यभी हीन अधिक होवेगा. जैसें माटीका पिंड बडा किंवा छोटा होवेगा, तब घटभी बडा अरु छोटा होवेगा. अन्यथा वो कारणभी नहीं. तुमारेभी तो प्राणापानके न्यून अधिक होनेसें ज्ञान, न्यून अधिक नहीं होता है. किंतु कथंचित् होता तो दीखता है क्योंकि मरणावस्थामें प्राणापान अधिकभी [illegible]का कहे, तोभी विज्ञान घट जाते है.

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करकें देहके विगुणी हो जानेसें प्राणापानकी वृद्धिसेंभी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है, ऐसेंही मृतावस्थामेंभी देहके विगुणीभूत होनेसें चेतनता नहीं है, यहभी असमीचीन है, जे कर ऐसें होवे, तब तो मरा हूआभी जिंदा होनां चाहियें॥ तथाहि ॥ "मृतस्य दोषाः समीभवंति" अर्थात् मरण पीछें वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, औ ज्वरादि विकारके न देखनेमें दोषोका न रहना प्रतीत होता है, अरु जो दोषोका समपणा है, सोइ आरोग्यता है, "तेषां समत्वमारोग्यं, क्षयवृद्धिविपर्ययः॥ इति वचनात्" ॥ आरोग्य लाभसें देहको फेर जिंदा होनां चाहियें, अन्यथा देह कारणही नहीं, चित्तके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं. जे कर मारा हुवा जी उठे, तो हम देहकों कारणभी मान लेवे.

पूर्वपक्षः—यह फेर जी उठनेका प्रसंग तुमारा अयुक्त है, क्योंकि यद्यपि दोष, देहकों वैगुण्य करकें निवृत्त हो गये हैं, तोभी तिनका वैगुण्य पणा

करा हुआ नहीं निवृत्त होता है, जैसें अग्निका करा हुआ काष्ठमें विकार अग्निके निवृत्त होनेसेंजी नहीं निवृत्त होता है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां अयुक्त है,क्योंकि विकारजी दो प्रकारका है, एक निवृत्त होता है. एक नहीं निवृत्त होता है,अनिवृत्त विकार जैसें काष्ठमें अग्निका करा हूआ श्यामता मात्र अरु निवृत्त विकार जैसें अग्नि कृत सुवर्णमें द्रवता. वायु आदिक जो दोष हैं, सो निवृत्त विकार है, चिकित्सा प्रयोग देखनेसें. जे कर वायु आदि दोषजी अनिवृत्त विकार होवे, तब तो चिकित्सा वैफल्य हो जावेगी, ऐसेंजी मत कहनां मरणेंसें पहिलां दोषनिवृत्त विकारारंजक है, अरु मरण कालमें अनिवृत्त विकारारंजक है, क्योंकि एककों एक जगें निवृत्त अनिवृत्त विकार दो रूप नहीं हो सक्ते हैं,

पूर्वपक्षः—व्याधि दो प्रकारकी लोकमें प्रसिद्ध है, एक साध्य, दूसरी असाध्य, उसमें साध्य जो है, सो चिकित्सासें दूर हो सक्ती है, अरु दूसरी दूर नहीं होती है, तब दो प्रकारकी व्याधि क्यों नहीं सिद्ध हो सक्ती है?

उत्तरपक्षः—यहजी असत् है, क्योंकि तुमारे मतमें असाध्य व्याधिही नहीं हो सक्ती है. तथाहि व्याधिका जो असाध्यपणा है, सो आयुके क्षय होनेसें होता है, क्योंकि तिसी व्याधिमें समान औषध वैद्यके योगसें जी कोइ मर जाता है, कोइ नहीं मरता है, अरु जो प्रतिकूल कर्मोंके उदय करकें चित्रादि व्याधि है, वो हजार औषधसेंजी साधी नहीं जाती है, यह दोनों प्रकारकी व्याधि परमेश्वरके बचनोंके जानने वालोंके मतमेंही सिद्ध होती हैं, परंतु तुमारे जूतमात्र तत्त्ववादीयोंके मतमें नहीं हो सक्ती है. कहीक आसाध्य व्याधि इस वास्ते हो जाती है, दोषकृत विकारके दूर करणेमें समर्थ औषधि, अरु वैद्यके अजावमें जब औषधि अरु वैद्यके अजावसें व्याधि वृद्धिमान हो कर सकल आयुकों उपक्रम करती है, अर्थात् क्षय कर देती है. तथा कोइक दोषोंके उपशम होनेसें अकस्मात् मर जाता है. अरु कोइक अति डुष्ट दोषोंके होनेसेंजी नहीं मरता है. यह बात तुमारे मतमें नहीं हो सक्ती है॥ आह च ॥ श्लोक ॥ दोषस्योपशमेऽप्यस्ति, मरणं कस्यचित्पुनः ॥ जीवनं दोषडुष्टत्वे, प्येतन्न स्याद्भवन्मते ॥ १ ॥ हमारे मतमें तो जहां लगि आयु है, तहां लगि दोषों करकें पीडितजी जीता रहता है, अरु जब आयु क्षय हो जाता है, तब

दोषोंके विकार विनाभी मर जाता है. इस वास्ते देह,ज्ञानका निमित्त नहीं है,

एक औरभी बात है कि देह जो तुम ज्ञानका कारण मानते हो, सो सहकारी कारण मानते हो? वा उपादान कारण मानते हो? जे कर सहकारी कारण मानते हो. तब तो हमभी देहकों क्षयोपशमका हेतु मानते है, कथंचित् विज्ञानका हेतु मानते है, जे कर उपादान कारण मानोगे तब तो अयुक्त है, उपादान वो होता है कि जिसके विकारी होनेसें कार्यभी विकारी होवे, जैसें मृत्तिका और घट. देहके विकार करकें संवेदन विकारी नहीं होता है, अरु देह विकारकें विनाभी भय शोकादिकों करकें संवेदनकों विकारी देखते हैं. इस वास्ते देह, संवेदनका उपादान कारण नहीं॥ उक्तं च ॥ अधिकृत्य हि यद्वस्तु, यः पदार्थो विकार्यते ॥ उपादानं न तत्तस्य, युक्तं गोगवयादिवत् ॥१॥ इस कहने करकें जो कहते हैं, कि माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यका उपादान कारण है,सोभी खंडन हो गया. तहां माता पिताके विकारी होनेसें पुत्र विकारी नहीं होता है, अरु जो जिसका उपादान होता है, सो अपने कार्यमें अभेद होता है. जैसें माटी और घट. जब माता पिताका चैतन्य,पुत्रके चैतन्यके साथ अभेदरूप हूआ, तब तो पुत्रका चैतन्य,माता पिताके चैतन्यमें अभेद होनां चाहियें. इसी वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है. इस हेतुसें भूतोंका धर्म वा भूतोंका कार्य चैतन्य नहीं है, इस वास्ते आत्मा सिद्ध है. विशेष करकें चार्वाकमतका खंडन देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, स्याद्वाद रत्नाकरादि शास्त्र देख लेनां ॥ इति चार्वाक मत खंडनं ॥ इस परिछेदमें जो कुगुरुके लक्षण कहे हैं, वे लक्षण चाहो जैनके साधुमें होवें, चाहो अन्यमतके साधुमें होवे, उन सर्वकों कुगुरु कहनां चाहियें ॥ इतिश्री तपगछीये मुनि श्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आनंदविजयआत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे कुगुरुस्वरूपनिर्णयनामा चतुर्थः परिछेदः संपूर्णः ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्थ परिछेदः संपूर्णः ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचम परिछेद प्रारंभः ॥

यह पंचम परिछेदमें धर्मतत्त्वका स्वरूप लिखते हैं. धर्म उसकों कहते हैं, जो दुर्गति जाते हुवे आत्माकों धरी राखे, एतावता दुर्गतिमें न जाने देवे, उसकूं धर्म कहते हैं. तिस धर्मके तीन भेद हैं. १ सम्यक् ज्ञान, २ सम्यक् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र, इन तिनोमेंसूं प्रथम ज्ञानका स्वरूप संक्षेपमें लिखते हैं ॥श्लोक॥ यथावस्थिततत्त्वानां, संक्षेपाद्विस्तरेण वा ॥ योवबोधस्तमत्राहुः, सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः ॥ १ ॥ अस्यार्थः- यथावस्थित नय प्रमाणों करकें प्रतिष्ठित है स्वरूप जिनका, ऐसें जो जीव.अजीव,आश्रव, संवर, निर्ज्जरा, बंध. मोक्ष रूप सप्त तत्त्व, तथा प्रकारांतरें पुण्य पापके अधिक होनेसें नव तत्व होते हैं. इनका जो अवबोध, अर्थात् ज्ञान सो सम्यक् ज्ञान जाननां. अरु वह जो ज्ञान है, सो क्षयोपशमके विशेषसें किसी जीवकों संक्षेप करकें अरु किसी जीवकों विस्तार करकें होता है. इन नव तत्त्वोंमें प्रथम जो ज़ीवतत्त्व है तिसका स्वरूप ऐसा है कि जीव कहो अथवा आत्मा कहो यह दोनो एकही वस्तुके नाम है.

प्रश्नः- जैनमतमें आत्माका क्या लक्षण है ?

उत्तरः- चैतन्य लक्षण है.

प्रश्नः- जैनमतमें जीव प्राणी आत्मा किसकों कहते है ?

उत्तर.-॥ श्लोक ॥ यः कर्त्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफलस्य च ॥ संसर्त्ता परिनिर्वाता, सह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥ इस श्लोकसें जान लेनां. इसका भावार्थ कहते हैं, कि जो मिथ्यात्वादिकों करकें कलुषित अर्थात् मैला हो करकें वेदनीयादिक कर्मोंका कर्त्ता,(करनेवाला) अरु तिन अपने करे हूये कर्मोंका जो फल सुख दुःखादिक तिनोंका भोगनेवाला, अरु नारकादि भावों विषे कर्म विपाकके उदय करकें जो भ्रमण करनेवाला अरु सम्यक्दर्शनादि तीन रत्नोंके उत्कृष्ट अभ्यास करकें संपूर्ण कर्मांशको दूर करकें जो निर्वाण रूप होनेवाला, सोइ प्राणी है, सोइ जीव है, सोइ आत्मा है, यह नंदीसूत्रमें लिखा है. आत्माकी सिद्धि चार्वाकमतखंडनमें लिख आये हैं. जे कर आत्माकी सिद्धि विशेष करकें देखनी होवे, तदा सुधांभोनिधि, गंधहस्ती महाभाष्य देख लेनी. यह आत्मा सर्व व्यापीभी नहीं है, औ एकांत नित्य, कूटस्थभी नहीं है. एकांत अनित्यक्षणिकभी नहीं है,किंतु

शरीरमात्रव्यापी कथंचित् नित्यानित्य रूप है. इनका खंमन मंमन स्याद्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, अनेकांतजयपताका प्रमुख शास्त्रोंसें देख लेनां. इस वास्ते मैनें नहीं लिखा है. जो ग्रंथ बडा नारी हो जावेगा, अरु पढनेवाले आलस कर जायेंगे.

तहां जे जीव हैं सो दो प्रकारके हैं. एक मुक्त रूप, दूसरा संसारी. यह दोनोंही प्रकारके जीव अनादि अनंत है. अरु ज्ञान दर्शन इनका लक्षण है, अरु जो मुक्त स्वरूप आत्मा है वो सर्व एक स्वनाव है. जन्मादि क्लेशों करकें वर्जित है अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य, औ अनंत आनंदमय स्वस्वरूपमें स्थित है, निर्विकार निरंजन ज्योतिःस्वरूप है.

अरु जो संसारी जीव हैं, सो दो प्रकारकें हैं. एक स्थावर, दूसरा त्रस, उसमें स्थावरके पांच नेद हैं. १ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय. तथा त्रस जीवके चार नेद हैं. १ दोइंद्रिय, २ तीनइंद्रिय, ३ चारइंद्रिय, ४ पांचइंद्रिय. स्थावर जो हैं सो सर्व एकही स्पर्शेंद्रिय वाले है. कृमी, गंमोला, जलोक, सुंमी, इत्यादि जीव एक स्पर्शन अर्थात् शरीर इंद्रिय, दूसरा रसनेंद्रिय अर्थात् मुख, इन दो इंद्रिय वाले हैं. कीडी, जू, सुरसली, ढोरा, इत्यादि जीव, दो पूर्वोक्त अरु एक नासिका, यह तीन इंद्रियवाले हैं. माखी. ज्रमर, सहेतकी माखी, मंगू, धमोडी, बिछू, इत्यादि जीव, तीन पूर्वोक्त, अरु चउथा नेत्र. इन चार इंद्रिय वाले हैं. नारक, तीर्यंच, मनुष्य, अरु देवता, ये पंचेंद्रिय जीव हैं. यह सर्व स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान, इन पांच इंद्रिय वाले हैं. स्थावर जीवजो दो तरेंके हैं, एक सूक्ष्म नामकर्मके उदयवाले सूक्ष्म, दूसरा बादर नामकर्मके उदय वाले बादर, यह जो स्थावर अरु त्रस जीव है. सो समुच्चय ठे पर्याप्ति वाले हैं. इन ठे पर्याप्तिका नाम लिखते हैं. १ आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इंद्रियपर्याप्ति, ४ श्वासोछ्वासपर्याप्ति, ५ जाषापर्याप्ति, ६ मनःपर्याप्ति.

अथ पर्याप्तिका स्वरूप लिखते हैं. आहार (जोजन) तिसके ग्रहणेकी जो शक्ति, तिसका नाम आहारपर्याप्ति कहते हैं. २ शरीर रचनेकी जो शक्ति, तिसका नाम शरीरपर्याप्ति कहते हैं. ३ इंद्रिय रचनेकी शक्ति, सो इंद्रियपर्याप्ति है. असेंही सर्वत्र जान लेनां. जिस जीवके पूर्वोक्त ठे शक्ति, अधूरी हैं, उसकूं अपर्याप्ति कहते हैं. स्थावर जीवोंमें आदिकी चार पर्या

प्ति है अरु दोइंद्रिय, तीनइंद्रिय, चौरिंद्रिय, इन जीवोंमें एक मन विना पांच पर्याप्ति हैं. पंचेंद्रिय जीवोंमें छही पर्याप्ति है. १ पृथिवीकाय, २ जलकाय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, (पवन) इन चारोमें असंख्य जीव हैं. तथा बनस्पतिकायमें जो प्रत्येक बनस्पति है, उसमें तो असंख्यजीव हैं. अरु साधारण वनस्पतिमें अनंत जीव हैं. इन स्थावर अरु त्रसोंके जघन्य तो चौदह नेद हैं. मध्यम (५६३) नेद हैं. अरु उत्कृष्ट अनंत नेद हैं. तिनमें मध्यम चौदह नेद नरक वासीयोंके हैं. अडतालीश नेद तिर्यंच गतिवालोंके हैं, औ तीनसो तीन नेद मनुष्यगति वालोंके हैं. (१९८) नेद देवगति वालोंके हैं. यह सर्व मध्यम नेद (५६३) हैं. इनका विचार पूरा देखनां होवे, तदा प्रज्ञापन्न सिद्धांत, तथा जीव समास प्रकरणादि शास्त्रोंसें देख लेनां.

प्रश्नः— हे जैन! दो इंद्रियादिक जीव तो जीव लक्षण संयुक्त होनेसें जिव सिद्ध हो जाते हैं, परंतु पृथिवीआदि पांच स्थावरोमें जीव कैसें हम मान लेवे? क्योंकि पृथिवी आदिकोमें जीवका कोइनी चिन्ह उपलब्ध नहीं होता है.

उत्तरः—यद्यपि पृथिवी आदिकमें प्रगट जीवके होनेका चिन्ह नहीं दीखता, तोनी अव्यक्तपणेमें जीवके चिन्हसें जीव सिद्ध होते हैं. जैसें धत्तूरेके तथा मदिरापानादिकके नशे करकें मूर्छित हूये जीवोंके व्यक्त लिंगके होनेसेंनी जीवपणा है; तैसेंही पृथिवी आदिककोंनी सजीव माननां चाहियें.

प्रश्नः—मदिरेकी मूर्छामें उद्धासादिकोंके देखनेंसें अव्यक्तमेंनी चेतना लिंग है परंतु पृथिवी आदिकोंमें तैसा चेतनताका लिंग कोइनी नहीं. तिनकों कैसें चैतन्य माना जावे?

उत्तरपक्षः—जैसें तुमने कहा है, सो ऐसें है नहीं. क्योंकि पृथिवीकायमें प्रथम स्व स्व आकारमें रहे हूये लवण, विद्रुम, पाषाणादिकोंकों अर्श मांस अंकुरकी तरें समान जातीय अंकुरउत्पत्ति पणा है. बनस्पतिकी तरें चैतन्यपणेका चिन्ह है, इस वास्ते अव्यक्त उपयोगादि लक्षणके होनेसें पृथिवी सचेतन है यह सिद्ध हुआ.

प्रश्नः—विद्रुम पाषाणादि पृथिवी कठिन रूप है, तो फेर कठिन रूप होनेसें कैसें पृथिवी सचेतन हो सक्ती है?

उत्तरः—जैसें शरीरमें अस्थि अर्थात् हाड अनुगत है, सो कठिनभी हे तोभी सचेतन हे,ऐसेंही जीवानुगत पृथिवीका शरीरभी सचेतन है. अथ वा पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, इनके शरीर जीव सहित हें. छेद्य, भेद्य, उत्क्षेप्य, भोग्य. घ्रेय, रसनीय, स्पृश्य, द्रव्य होनेसें. सास्ना विषा णादि संघातवत् पृथिवी आदिकोंकों छेद्यत्वादि जो दिखते हैं, तिनकों को इभी गोप नहीं सक्ता है. अरु यहभी मत कहनां कि पृथिवी आदिकोंकों जीव शरीरत्व जो साधनां है, सो अनिष्ट है, क्योंकि सर्व पुद्गल द्रव्यकों हम द्रव्य शरीर मानते हें,अरु जीव सहित तथा जीव रहित जो विशेष है सो ऐसें है शस्त्र करकें अनुपहत जो पृथिवी आदिक हें सो हाथ पगके संघातवत्. संघात न होनेसें कदाचित् सचेतन हें, ऐसेंही कदाचित् शस्त्रोपहत होनेसें हाथादिकोंकी तरें अचेतनभी है, सो अचेतनही हे.

प्रश्नः—प्रश्रवणवत् अर्थात् मूत्रकी तरें जीवके लक्षण न होनेसें जल जीव नहीं है.

उत्तरः—हेतु असिद्ध होणेसें यहभी कहनां ठीक नहीं है, जैसेंक ह थीका शरीर कलल अवस्थामें (अधुना उत्पन्न होयेकों) द्रवपणा अरु सचेतन पणा देखते हें, ऐसेंही जलमेंभी जाननां. तथा अंडेमें रस मात्र है परंतु अवयव कोइ उत्पन्न हूआ नहीं. औ व्यक्त (हाथ पगादिक) भी नहीं, तोभी सचेतन है, इस उपमासें जलभी सचेतन हे. यह इसमें प्रयोग है. शस्त्र करकें अनुपहत हूआ द्रवरूप होनेसें हस्तिशरीरके उ पादानभूत कललवत् जल सचेतन है. इस हेतुमें विशेषणके उपादानसें अर्थात् ग्रहणेसें प्रश्रवण दूधादिकोंमें व्यभिचार नहीं. तथा अनुपहत द्रव होनेसें अंडेमें रहे कललवत् सात्मक जल है. तथा हिमादि किसीक अ वस्थामें अप्काय होनेसें इतर उदकवत् सचेतन है. तथा किसी जगे भूमि खननेसें स्वाभाविक संभव होनेसें मैंडकवत् सचेतन जल है, अथवा आकाशमें उत्पन्न हूआ जल बादलादि विकारके हुवा स्वतःही अर्थात् आ पही उत्पन्न हो करकें पडनेसें मत्स्यवत् सचेतन है तथा शीतकालमें बहु त शीतके पडते हूये नदी आदीकोंमें अल्पके हूआं अल्प अरु बहुतके हुआं बहुत.उष्मा देखते हैं,सो उष्मा सजीव हेतुकही है. अल्पबहुत मि लित मनुष्योंके शरीरोंसें जैसें अल्प बहुत उष्म होता है. जलमें शीत स्प

शीही हैं, ऐसें वैशेषिक कहते हैं, तथा शीतकालमें शीतके बहुत पडनेसें प्रातःकालमें तलावादिकोंके पश्चिम दिशामें खडे हो कर जब तलावादि देखियें, तदा तिस जलसेंती निकलता हूआ बाष्पका समूह दिखता है, सो नी जीवहेतुकही है, तिसका प्रयोग ऐसे हैं कि शीतकालमें जो वाष्प है, सो उष्ण स्पर्शवाली वस्तुसें होता है. वाष्प होनेसें शीत कालें शीत जल करकें सींचे हूए मनुष्य शरीर वाष्पवत् अरु जो उकुडिका कूडे कचवरमेंसें धूंआ बाष्प निकलता है. तहांनी हम पृथिवीकायके जीव मानते हैं. इन हेतुओंसें जल सजीव सिद्ध होता है.

प्रश्नः—तेजस्कायमें जीव किस तरें सिद्ध होता है ?

उत्तरः—जैसें रात्रिमें खद्योतका शरीर जीव शक्तिसें बना हूआ, प्रकाश वाला है. ऐसें अंगारादिकनी प्रकाशमान होनेसें सचेतन हैं. तथा जैसें ज्वरकी उष्मा जीवके प्रयोग विना नहीं होती. ऐसेंही अग्निमेंनी गरमी जीवोंके विना नहीं है. क्योंकि मृतकके शरीरमें ज्वर कदापि नहीं होता है. ऐसें अन्वय व्यतिरेक करकें अग्नि सचित्त जाननी. यहां यह प्रयोग है कि आत्माके संयोगसें प्रगट नया है अंगारादिकोंकों प्रकाश परिणाम शरीरस्थ होनेसें खद्योत देह परिणामवत्. तथा आत्मा संयोग पूर्वक शरीरस्थ होनेसें ज्वरोष्मवत् अंगारादिकोंमें उष्णता है. ऐसेंनी मत कहनां कि सूर्यके उष्मके साथ अनेकांतिक हेतु है, तो सूर्यादिकोंमें जो उष्मा है, सो नी आत्मसंयोग पूर्वकही हम मानते हैं, तथा अग्नि सचेतन है, क्योंकि यथायोग्य आहारके करनेंसें, वृद्धिआदि विकारके उपलंन होनेंसें पुरुषके शरीरवत् इत्यादि लक्षणों करकें अग्निकों सचेतनता है.

प्रश्नः—वायुकायमें (पवनमें) सचेतनताकी सिद्धि कैसें करोगे ?

उत्तरः—जैसें देवताका शरीर शक्तिके प्रनाव करकें. अरु मनुष्योंका शरीर अंजनादि विद्यामंत्रके प्रनाव करकें अदृश्य हो जानेसें नेत्रोंसें नहीं दिखता, तोनी विद्यमान चेतना वाला है, ऐसें सूक्ष्म परिणाम होनेंसें परमाणुकी तरें वायुकाय जो नेत्रोंसें नहीं दीखता तोनी विद्यमान चेतना वाला है. तथा अग्नि करकें दग्ध पाषाण खंमगत अग्निवत् प्रयोग यह है कि चेतनावान् वायु है, विना दूसरायोंके प्रेरणेसें, नियम करकें तिर्यग्ग

ति होनेसें, गवाश्वादिवत् तिर्यग्गतिके नियम करनेसें, परमाणुके साथ व्य भिचार नहीं. ऐसें वायु शस्त्र करकें अनुपहत सचेतन है.

५ अरु बनस्पतिमें तो प्रत्यक्ष प्रमाणसें जीव सिद्धही है. इस वास्ते यहां विस्तारसें नहीं लिखा. आगमजी सर्वज्ञका कथन करा हूआ पृथिवी, जल, अग्नि, पवन अरु बनस्पतिमें जीवका होनां कहता है. अरु जो कोइ द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय अरु पंचेंद्रियमें जीव नहीं मानते हैं, तो तिन मूढोंके न माननेसें कुछ हानी नहीं. यह संक्षेपसें जीवोंका स्वरू प लिखा है. जब विस्तारसें देखनां होवे, तब जैनमतके सिद्धांत देख लेने ॥ इति प्रथम जीवतत्त्वं संपूर्ण ॥

अथ दूसरा अजीव तत्त्व लिखते हैं. अजीव उसकों कहते हैं, कि जो जीवके लक्षणोंसें विपरीत होवे, जो ज्ञानसें रहित होवे,औ जो रूप,रस, गंध, अरु स्पर्शवाला होवे, नर अमरादि नवमें न जावे,अरु ज्ञानावरणीया दिक कर्मका कर्त्ता न होवे, अरु तिनोके फलका जोगने वाला न होवे, ज डस्वरूप होवे, तिसकों अजीव कहते हैं, सो अजीव द्रव्य पांच प्रकारकें हैं उसका नाम कहते हैं, १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आका शास्तिकाय, ४ पुद्गलास्तिकाय, ५ काल.

१ तिनमें जो धर्मास्तिकाय है, सो लोकव्यापी है. औ नित्य है. अव स्थित है, अरूपी है, असंख्य प्रदेशी है, जीव अरु पुद्गलकी गतिमें उपष्टं जक है, यद्यपि जीव अरु पुद्गल स्वशक्तिसें चलते हैं, तोजी चलनेंमें धर्मास्ति काय अपेक्षा कारण है. जैसें मछी जलमें तरती तो अपनी शक्तिसें है, प रंतु अपेक्षा कारण जल है. ऐसेंही जीव पुद्गलकों गति साहायक धर्मा स्तिकाया है. जहां लगि यह धर्मास्तिकाया है, तहां लगि लोककी मर्यादा है. जे कर धर्मास्तिकाया न मानीयें, तो लोकालोककी मर्यादा न रहेगी. अ रु जहां लगि धर्मास्तिकाया है, तहां लगि जीव पुद्गल गति करते हैं. इस का पूरा स्वरूप जैनमतके ग्रंथ पढेबिना नहीं जान सका है ॥ इति ॥ १ ॥

२ दूसरा अधर्मास्तिकाय द्रव्य है. इसका सर्व स्वरूप धर्मास्तिकायकी तरें जाननां. परंतु इतना विशेष है, कि यह द्रव्य, जीव पुद्गलकों स्थिति साहा यक है. जैसें पथिक जन जब चलता चलता थक जाता है, तब किसी वृ क्षादिककी छायामें बैठता है,सो बैठता तो वो आपही है,परंतु आश्रयबिना

नहीं बैठ सक्ता है ऐसेंही जीव पुद्गल स्थित तो आपही होते है, परंतु अपेक्षा कारण अधर्मास्तिकाय है ॥ इति अधर्मास्तिकाय ॥

३ तीसरा आकाशास्तिकाय द्रव्य है, इसका स्वरूपभी धर्मास्तिकायवत् जाननां, परंतु इतनां विशेष है कि यह द्रव्य लोकालोक सर्वव्यापी है, अरु अवगाह दान लक्षण है, जीवपुद्गलके रहनेमें अवकाश दाता है, यह तीनों द्रव्य आपसमें मिले हूये हैं. जहां लगि आकाशमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय है,तहां लगि लोक है,अरु जहां केवल एकला आकाशही है, और कोइ वस्तु नहीं, तिसका नाम अलोक है. इति आकाश द्रव्यं.

४ चउथा पुद्गलास्तिकाय द्रव्य है. पुद्गल नाम परमाणुओंकाभी है,अरु जो परमाणुओंका घट पटादि कार्य है, उसकोंभी पुद्गलही कहते हैं, एक परमाणुमें एक वर्ण है, एक रस है, एक गंध है, दो स्पर्श है, औ कार्यही जिनका लिंग है, वर्णसें वर्णांतर, रससें रसांतर, गंधसें गंधांतर, स्पर्शसें स्पर्शांतर हो जाते हैं. यह परमाणु द्रव्यरूप करकें अनादि अनंत है, पर्यायस्वरूप करकें सादि सांत है, इन परमाणुओंका जो कार्य है, सो कोइक प्रवाहसें तो अनादि अनंत है, अरु कोइ सादि सांतभी है, जो यह जड दीखता है, सो सर्व इन परमाणुओंका कार्य है. सूकी हुइ वनस्पति सर्व अरु अग्नि आदिक शस्त्रों करकें परिणामांतरकों प्राप्त हूये पृथिव्यादिक सर्व पुद्गल हैं. समुच्चय पुद्गल द्रव्यमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, पांच संस्थान, उसमें काला, नीला, रक्त, पीत, शुक्ल, यह पांच तो वर्ण है. तीक्ष्ण, कडुआ, कषाय, खाटा, मीठा, यह पांच रस है. सुगंध, दुर्गंध, यह दो प्रकारकी गंध है. खरखरा अर्थात् कठोर, सुकोमल, हलका, भारी, शीत, उष्ण, चीकणा, रूखा, यह आठ स्पर्श है. इनसें अधिक जो वर्णादि हैं, सो सर्व इनहीके मिलनेसें हो जाते हैं. इन पुद्गलोमें अनंत शक्तियां अनंत स्वभाव हैं. १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, इत्यादि तिस तिस निमित्तोंके मिलनेसें विचित्र परिणाम हो जाते हैं. इति पुद्गलद्रव्यं ॥ ४ ॥

५ पांचमा कालद्रव्य है, सो प्रसिद्ध है. यह पांच द्रव्य अजीव है, सो निमित्त जैन श्वेतांबराचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरकृत सम्मतितर्क ग्रंथमें पांच लिखे हैं. सो कहते हैं, १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, ४ पूर्वकृत

कर्म, ५ पुरुषाकार. इन पांचोंमेंसूं एककों माने, तो वो मिथ्याज्ञान अरु मिथ्यादृष्ट है, अरु इन पांचोंके समवायकों माने, तो सम्यक्ज्ञान अरु सम्यक्दृष्ट है, इन पांच निमित्तोमेंसूं १ काल, २ स्वनाव, ३ नियति, इन तिनों निमित्तोंका स्वरूप क्रियावादीके मतमें लिख आये हैं. अरु चउथा पूर्व कृत कर्म, उनका स्वरूप आगें कर्मोंके स्वरूपमें लिखेंगें. अरु पांचमा पुरुषाकार, सो जीवके उद्यमका नाम है. इन पांचों निमित्तोंसें जगत्की प्रवृत्ति निवृत्ति हो रही है, इन निमित्तोंहीसें नरकादि गतियोमें जीव जाते हैं, अरु सुख दुःखका फल जोगते हैं, इन निमित्तोंके विना फलका दाता ईश्वरादिक कोइजी नहीं, जे कर कोइ वादी इन पांचो निमित्तोंके समवायकों ईश्वर माने, तब तो हमजी ईश्वर कर्त्ता मान लेवेंगें, क्योंकि जैनमतकी तत्वगीतामें लिखा है, कि अनादि जो द्रव्यमें द्रव्यत्व शक्ति है, सोइ सर्व पदार्थोंकों उत्पन्न करती है, औ लयजी करती है, सो शक्ति चैतन्याऽचैतन्यादि अनंत स्वजाव वाली है, तिसकों कर्त्ता ईश्वर माननेंसें जैनमतकी कुछ हानी नहीं है ॥ इति अजीवतत्त्वं संपूर्णं ॥ २ ॥

३ अथ पुण्यतत्त्व लिखते हैं. प्रथम तो पुण्य उपार्जन करनेका नव कारण हैं, "उक्तं च स्थानांगसूत्रे ॥ अन्नपुन्ने पाणपुन्ने वत्थपुन्ने लेणपुन्ने सयणपुन्ने मणपुन्ने वयपुन्ने कायपुन्ने नमोक्कारपुन्ने इति सूत्रं ॥" व्याख्याः—१ पात्रकं तांई अन्नका दान करनेसें जो तीर्थंकर नामादि पुण्य प्रकृतिका बंध होवे, तिसका नाम अन्न पुण्य है. असेंही २ पीनेंकों जल देवे, ३ वस्त्र देवे, ४ रहनेकों स्थान देवे, ५ सोने बैठनेकों आसन देवे, ६ गुणिजनकों देख कर मनमें तोष धरे, ७ बचन करकें गुणिजनोंकी प्रशंसा करे. ८ काया करकें पर्युपासन अर्थात् सेवा करे, ९ गुणिजनकों नमस्कार करे. यह बात पुण्यकी जो कही, सो कुछ जैनीयोंकेही देनेसें नहीं, किंतु किसी मत वाला कोइ क्यों न हो, कोइजी अनुकंपा करकें जिसकों दान देवेगा, वो पुण्य उपार्जेगा, परंतु इतना विशेष है, कि पात्रकों जो दान देना है, सो पुण्य अरु मोक्ष इन दोनोकाही हेतु है, अरु जो अनुकंपा करकें सर्वजनोंकों देवेगा, सो केवल पुण्यही उपार्जेगा. जैनमतके किसी शास्त्रमें पुण्य करनां निषेध नहीं. क्योंकि जैनमतके ऋषजदेवादि चोवीश तीर्थंकर जये हैं, उनोंनेंजी दीक्षा लेनेसें पहिलां एक क्रोड, आठ लाख, सोनइये दिन दिन

प्रति एक वर्ष तांई दीये हैं. इसी कारणसें जैनमतमें प्रथम दानधर्म है. तथा जैनमतके शास्त्रमें औरजी केई तरेंसें पुण्यका उपार्जन लिखा है.

अथ पुण्यका फल बेंतालीस प्रकार करकें जोगनेंमें आता है, सो बैंतालीस प्रकार लिखते हैं. १ जिसके उदयसें जीव शाता जोगता है, सो शातावेदनीय, २ जिसके उदयसें जीव क्षत्रियादि उच्च कुलमें उत्पन्न होता है, सो उच्चगोत्र, ३ जिसके उदयसें जीव मनुष्य गतिमें उत्पन्न होता है, सो मनुष्यगति, ४ जिसके उदयसें जीव देवगतिमें उत्पन्न होता है, सो देवगति, ५ जिसके उदयमें जीव अपांतराल गतिमें नियतदेश अनुश्रेणी गमन करता है, अरु नियत मर्यादापूर्वक अंगोका विन्यास, अर्थात् स्थापपन करनेवाली नामकर्मकी प्रकृतिकों आनुपूर्वी कहते हैं, उसमें जो मनुष्य गतिमें आने वाली जीवके उदयमें है, सो मनुष्यानुपूर्वी, असेही ६ देवानुपूर्वी, ७ जिसके उदयसें जीव पंचेंद्रिय पणा पाता है, सो पंचेंद्रिय जाति. अथ पांच शरीर कहते हैं. ८ जिसके उदयसें जीव औदारिक वर्गणाके पुजलोंकों ग्रहण करकें औदारिक शरीरकी रचना करता है, अर्थात् औदारिक शरीर पणे परिणाम करता है, सो औदारिक शरीर नामकर्मकी प्रकृति है, असेही ए वैक्रियक, १० आहारिक, ११ तैजस, १२ कार्मण. इन पांचो शरीरोंकी प्रकृतियोंका अर्थ कर लेनां. तथा अंगोपांग तीन हे, उसमें अंग सो शिर प्रमुख, उपांग सो अंगुली प्रमुख हैं, शेष अंगोपांग हैं, यथा १ शिर, २ बाती, ३ पेट, ४ पीठ, ६ दो बाहु, ८ दो साथलां, यह आठ अंग हैं, तथा अंगुल्यादि उपांग है, शेष नखादि अंगोपांग है, जिसके उदयसें जीवकों आदिके तीन शरीरोंमें अंगोपांगकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम तिन शरीरके अंगोपांग है सो यह है, १३ औदारिक अंगोपांग, १४ वैक्रिय अंगोपांग, १५ आहारक अंगोपांग. १६ जिसके उदयसें जीव आदिका संहनन जिसका नाम वज्रऋषभनाराच है, तहां वज्र नाम कीलिका है, अरु ऋषभ नाम परिवेष्टन पट्ट अर्थात् उपर लपेटनेका हाड, तथा नाराच सो मर्कटबंध इन तीनों रूपों करकें जो उपलक्षित है, तिसकों वज्रऋषभनाराच संहनन कहते हैं. हाडके संचय सामर्थ्यका नाम संहनन है, यह संहनन औदारिक शरीर वालोमेंही होता है, १७ जिसके उदयसें जी

वकों आदिके समचतुरस्र संस्थानकी प्राप्ति होवें, तहां सम हैं चारों अस्र जिसके तुल्य शरीर लक्षण युक्त प्रमाण सहित, ऐसा आद्य संस्थान सुंदराकार मनोहर होवे, सो समचतुरस्र संस्थान नाम कर्मकी प्रकृति जाननी. अब वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, यह चारों कहते हैं. तिनमें जिसके उदयसें १८ वर्ण कृष्णादिक, १९ रस तिक्तादिक, २० गंध सुरभ्यादिक, २१ स्पर्श मृदुआदिक, यह चारों शुभ होवे, सो वर्णादि चार प्रकृति जाननी. २२ जिस कर्मप्रकृतिके उदयसें जीवका शरीर न तो भारी होवे, जिसकों जीव उठा न सके, अरु नतो हलका होवे, जो पवन करकें उड जावे, तिसका नाम अगुरु लघु है, तिसकी प्राप्ति होवे, सो अगुरु लघु नामकर्म, २३ जिसके उदयसें प्राणी परकों हणे, अरु शरीरकी आकृति ऐसी होवे जिसके देखनेसें दूसरोंकों अभिभव होवे, सो पराघात नामकर्म, २४ जिसके उदयसें उच्छ्वासन लब्धि अर्थात् उच्छ्वास लेनेकी शक्ति, आत्माकों होती है, सो उच्छ्वास नामकर्म, २५ जिसके उदयसें जीव प्रकाश अरु आतप शरीर पावे है. तिसका नाम आतप नामकर्म, २६ जिसके उदयसें जीव, उष्ण प्रकाशरूप उद्योत वाला शरीर पाता है, सो उद्योत नामकर्म, २७ जिस कर्मके उदयसें जीव विहायनाम आकाशका है, तिसमें जो गति सो विहायोगति, सो राजहंस सरखी गति होवे, सो सुविहायोगति नामकर्म, २८ जिसके उदयसें जीवके शरीरके अंगोपांगादिकोंकों नियतस्थानमें स्थापने वाला सूत्रधार (कारीगर) समान अर्थात् नसा, जाल, माथेकी खोपडीके हाड, आंख, कानके पडदे, केश, नखादि सर्व शरीरके अवयवोंकों रचनेवाला निर्माण नामकर्मकी प्राप्ति होवे, सो निर्माण नामकर्म, २९ जिसके उदयसें जीवकों त्रस पणेकी प्राप्ति होवे, उष्णादि करकें तप्त हूआ विवक्षित स्थानसें छायादिकमें जानां, और दो इंद्रियादिक पर्यायका जो फल भोगनां पावे, सो त्रस नामकर्म, ३० जिसके उदयसें जीव बादर अर्थात् स्थूल शरीर वाला होता है, सो बादर नामकर्म, ३१ जिस कर्मके उदयसें जीव ७ पर्याप्ति पीछे कही है वो पूर्ण करता है, सो पर्याप्तनामकर्म, ३२ जिसके उदयसें प्रत्येक एक एक जीवके एक एक शरीर होता है. सो प्रत्येक नामकर्म, ३३ जिसके उदयसें जीवकों हाडादि अवयव स्थिर निश्चल होते हैं, सो स्थि

र नामकर्म. ३४ जिसके उदयसें जीवके शिर प्रमुख अवयव शुन होते हैं, सो शुननामकर्म, ३५ जिसके उदयसें जीव सौनाग्यवान् होता है, सो सुनगनामकर्म, ३६ जिसके उदयसें जीवका स्वर कोकिलावत् रमणिक होवे, सो सुस्वर नामकर्म, ३७ जिसके उदयसें जीवका उपादेय बचन होवे. जो कुछ कहे, सो हो जावे, सो आदेय नामकर्म, ३८ जिसके उदयमें जीवकी विशिष्ट कीर्त्ति (यश) जगत्में विस्तरे, सो यशोनामकर्म, ३९ जिसके उदयमें जीवकों चोशठ इंद्र पूजा करते हैं, अरु उपदेश द्वारा धर्म तीर्थका कर्त्ता होवे. सो तीर्थंकर नामकर्म, ४० तिर्यंचोंका आयु, ४१ मनुष्यायु, ४२ देवायु. आयु उसकों कहते हं कि जिसके उदयमें तिर्यंचादि नवमें जीव जाता है.जिस्में यह पूर्वोक्त तीन आयुकी जीवकों प्राप्ति होती है, सो तीन आयुकी प्रकृति जाननी. यह बेंतालीस प्रकार करकें पुण्य फल नोगनेमें आता है ॥ इति पुण्यतत्त्वं संपूर्णं ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा पापतत्त्व लिखते हैं. पाप उसकों कहते हैं. कि जो आत्माका आनंद रस पीवे. यह पाप जो है, सो पुण्यसें विपरीत नरकादि फलका प्रवर्त्तक होनेसें अशुन है, आत्माके साथ संबंध है, कर्मपुजलरूप है. यद्यपि बंधतत्त्वके अंतर्नूतही पुण्य पाप है, तोनी न्यारे जो कहे हैं, सो पुण्य पाप विषे नानाविध परमतनेद निरासार्थ है, सो परमत यह है, सो कहते हैं. कोइक मत वालोंका यह कहना है, कि एक पुण्यही है, परंतु पाप नहीं. तथा कोइक मतवाले कहते हैं, कि एक पाप ही है, परंतु पुण्य नहीं. तथा कोइक कहते हैं कि पापपुण्य दोनों आपसमें अनुविद्ध स्वरूप हैं, मेचक मणि सरीखे, सो मिश्र सुख दुःख फलके हेतु हैं, इस वास्ते साधारण पुण्य पाप एक वस्तु है. कोइक असें कहते हैं कि मूलमेंतो कर्मही नहीं है, सर्व जगत्में स्वनावमेंही विचित्रता सिद्ध है. यह सर्व पूर्वोक्त मत मिथ्या हैं, क्योंकि सुख दुःख दोनों न्यारे न्यारे अनुनवमें आते हैं, तिस वास्ते तिनके कारणनूत पुण्य पापनी स्वतंत्रही अंगीकार करणे योग्य हैं, परंतु एकिला पाप वा एकिला पुण्य वा मिश्रित मानने ठीक नहीं.

अथ कर्मानाववादी नास्तिक अरु वेदांतिक कहते हैं.कि पुण्य पाप जो

हैं, सो आकाशके फूल सदृश असत् जानने; परंतु सत् नहीं, तो फेर पुण्य पापके फल जोगनेके स्थान नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे?

उत्तरः—पुण्य पापके अजावसें सुख डुःख निर्हेतुक होनेसें उत्पन्न होने चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध है, सोइ दिखाते हैं, मनुष्यपणा सदृश है, तो जी कोइ स्वामी है, कोइ दास है, कोइ अपणाही उदर जर सक्ते हैं, कोइ अपणाजी उदर नहीं जर सक्ते हैं, कोइ देवताकी तरें निरंतर सुख जोग विलास करते हैं, कितनेक नारकीकी तरें डुःख जोग रहे हैं, इस वास्ते अनुजूयमान सुख डुःखांके निबंधनजूत पुण्य पाप जरूर मानने चाहियें. जब पुण्य पाप माने, तब तिनोंके उत्कृष्ट फल जोगनेके स्थान जो नरक स्वर्ग है, सोजी माने गये, जे कर न मानोगे, तब अर्ध जरतीय न्यायका प्रसंग होवेगा, आधा शरीर बूढा,आधा जुवान. इसमें यह प्रयोग अर्थात् अनुमानजी है, सुख डुःख कारण पूर्वक हैं, अंकुरवत् कार्य होनेसें इसीवास्ते जे सुख डुःखके कारण हैं, सो मानने चाहियें. जैसें अंकुरका बीज.

पूर्वपक्षः—नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं. जैसें वे नीलादिक स्वप्रतिजासि अमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, ऐसेंही अन्न, फूल माला, चंदन, स्त्रीयादिक मूर्त्त दृश्यमानही सुख अमूर्त्तोंके कारण होवेंगे. सर्प विष, कंटकादिक सुखोंके कारण हैं, तो फेर काहेकों अदृष्ट पुण्य पापोंकी कल्पना करते हो?

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि इस कहनेमें व्यजिचार है, तथाहि ॥ दो पुरुषोंके पास तुल्य साधनजी है, तोजी फलमें बडा जेद दिखता है, तुल्य अन्नादिके जोगनेमेंजी किसीकों आल्हाद अर्थात् हर्ष दिखता है अरु दूसरेकों रोगोत्पत्ति देखते हैं,यह फलजेद अवश्य सकारण है, नहीं तो नित्य सत् नित्य असत् होनां चाहियें, क्योंकि जो वस्तु कार्य कदे होवे, कदे न होवे, सो कारणके बिना नहीं होता है, अथवा कारणानुमानसें कार्य पुण्य पाप जाने जाते हैं, तहां कारणानुमान यह है, कि दानादि शुजक्रियाका अरु हिंसादि अशुजक्रियाका फलजूत कार्य कारण होनेसें है.कृष्यादि क्रियावत्.जो इन क्रियायोंका फलजूत कार्य है, सो पुण्य पाप जानने. जैसें खेती करनेवालेकी क्रियाका फल शालि, यव, गेहुं, आदिक है.

पूर्वपक्षः—जैसें कृष्यादि क्रियाका दृष्ट फल शाल्यादिक है, तैसें दाना

दिक पशु हिंसादिक क्रियाकाजी श्लाघा मांसजक्षी निर्दय आदि दृष्ट फ जही है. तो फेर काहेकों अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करनां? क्योंकि जोक जो हैं सो बाहुल्यता करकें दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होते हैं, खेती व णिज्यादि हिंसादिक क्रियामें बहुत जोक प्रवृत्त होते हैं, अरु अदृष्ट दान फलादि क्रियामें थोडे जोक प्रवृत्त होते हैं. इस वास्ते कृषि हिंसादि अ शुज क्रियायोंका अदृष्टफल पापरूप हम नहीं मानते.

उत्तरपक्षः—जे कर तुमारा कहनां ठीक होवे, तब तो परजवमें फलके अजावसें मरणके अनंतरही सर्व जीव विना यत्नके मोक्ष हो जावेंगे, त ब तो प्रायः संसार, शून्य हो जावेगा, तब संसारमें दुःखी कोइजी न होवे गा, दानादि शुजक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुज फल जोगने वाले हो रहने चाहियें, परंतु संसारमें दुःखी बहुत दीखते हैं, अरु सुखी थोडे दीखते हैं, तिस करकें जाना जाता है कि जे कृषी, वाणिज्य, हिंसादिक्रि या निबंधन अदृष्टपाप रूप फल, यह दुःखित जीवोंकों है, अरु सुखी जीवोंकों दानादि अदृष्ट धर्मका फल है.

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिंसादि क्रियासें है, अरु जो दुः खी है, वो धर्म दानादिकके फलसें है. ऐसें क्यों न हो जावे?

उत्तरः—ऐसें नहीं होता है, क्योंकि अशुजक्रिया हिंसादिकके करने वालेही बहुत हैं. अरु शुजक्रिया दानादिकके करने वाले थोडे हैं, यह कारणानुमान है. अथ कार्यानुमान कहते हैं कि जीवोंकों आत्मत्वके अ विशेषजी हूआ नर पश्वादिकोंकी देहोंमें कार्य होनेसें विचित्रताका कारण है, जैसे घटका दंम, चक्र, चीवरादि सामग्री संयुक्त कुंजकार. तथा ऐसें जी मत कहनां कि दीखते जो है माता, पिता, सोइ इस देहके कारण है. नतु पुण्य पाप, ऐसेंजी मत कहनां क्योंकि माता, पिता, एक सरीखेजी है, तोजी पुत्रोंके देहमें विचित्रता देखते हैं, सो विचित्रता अदृष्ट (शुजा शुज कर्मके) विना नहीं हो सक्ती है. इस वास्ते जो शुज देह है, सो पु ण्यका कार्य है, अरु जो अशुज देह है, सो पापका कार्य है, यह कार्या नुमान है. सर्वज्ञके वचन प्रमाणसें पुण्य पापकी सत्ता सिद्धही है, विशे षार्थी पुरुषने विशेषावश्यककी टीका देख लेनी.

पाप अठारह प्रकारसें बंधाता हैं, सो ब्यासी प्रकारसें जोगनेमें आता

है. सो भेद यह है, कि पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, नव दर्शनावरण, मोहनीकी छवीश प्रकृति, नामकर्मकी चउत्तीस प्रकृति, एक अशातावेदनी, एक नरकायु, एक नीचगोत्र, यह सब मिल कर ब्यासी भेद हूये. इनका विवरा लिखते हैं.

अथ ज्ञानावरण कर्मकी पांच प्रकृति. प्रथम ज्ञान पांच प्रकारका है, उसमें मतिज्ञान, औ श्रुतज्ञान, ए दो अभिलाप प्लावितार्थ ग्रहणरूप ज्ञान हैं, तथा तीसरा इंद्रियोंकी अपेक्षा बिना आत्माकों साक्षात् अर्थके ग्रहणे वाला ज्ञान, सो अवधिज्ञान, चउथा मनमें चिंतित अर्थका साक्षात् करनेवाला ज्ञान, सो मनःपर्यवज्ञान, पांचमा केवल संपूर्ण निःकलंक जो ज्ञान, सो केवल ज्ञान. इन पांचों ज्ञानोंका जो आवरण सो ज्ञानावरण है, १ मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण. ३ अवधिज्ञानावरण, ४ मनःपर्यवज्ञानावरण, ५ केवलज्ञानावरण. उसमें १ जिसके उदयसें जीव निर्म्मति निःप्रतिभा होता है, सो मतिज्ञानावरण, २ जिसके उदयमें पठन करते जीवकों कुछभी न आवे, सो श्रुतज्ञानावरण, ३ जिसके उदयसें अवधिज्ञान न होवे, सो अवधिज्ञानावरण, ४ जिसके उदयमें मनःपर्यवज्ञान न होवे, सो मनःपर्यवज्ञानावरण, ५ जिसके उदयमें केवलज्ञान न होवे, सो केवल ज्ञानावरण यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति कहते हैं. १ जिसके उदयमें देनेवालीवस्तुभी है, गुणवान् पात्रभी है, दानका फलभी जाना है, परंतु दान नहीं दे सक्ता है,सो दानांतराय.२ जिसके उदयसें देने योग्य वस्तुभी है, अरु दाताभी बहुत प्रसिद्ध है, तथा मांगने वालाभी मांगनेमें बडा कुशल है,तोभी मांगने वालेकों कुछभी न मिले,सो लाभांतराय.३ जिसके उदयसें एक वार भोगने योग्य वस्तु जो आहारादिक, सो विद्यमानभी है, तोभी भोग नहीं सका. सो भोगांतराय, ४ जिसके उदयमें वारंवार भोगने योग्य वस्तु जो शयन अंगनादि, सो विद्यमानभी है, तोभी भोग नहीं सक्ता, सो उपभोगांतराय, ५ जिसके उदयमें अनुपहत पुष्टांगवालाभी शक्ति विकल हो जाता है, सो वीर्यांतराय यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृति लिखते हैं. इहां जो सामान्य बोध है,तिसका नाम दर्शन है,अरु जो विशेष बोध है,सो ज्ञान है,तहां ज्ञानका

जो आवरण, सो ज्ञानावरण, सो तो पूर्वें लिख आये हैं. अरु जो दर्शन का आवरण है, सो दर्शनावरण इनके नव भेद हैं, तिनमें जो आदिके चार भेद हैं, सो मूलसेंही दर्शन लब्धियोंके आवरक होनेसें आवरण शब्द करकें कहे जाते हैं. जैसें १ चक्षुदर्शनावरण, २ अचक्षुदर्शनावरण, ३ अवधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण. अरु निद्रादि जे पांच हैं, सो दर्शनावरण क्षयोपशम करकें लब्ध आत्मलाभका दर्शन लब्धियोंका आवरक है, इसका भावार्थ यह है कि चक्षु करकें सामान्यग्राही जो बोध, सो चक्षुदर्शन, सो जिसके उदय करकें तिसकी लब्धिका विघात करे, सो चक्षुदर्शनावरण. ऐसेंही अचक्षु करकें चक्षु वर्जके शेष चार इंद्रिय तथा पांचमा मन, इन करकें जो दर्शन, सो अचक्षुदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अचक्षुदर्शनावरण, तथा रूपी पदार्थोंका जो मर्यादापूर्वक देखनां, सामान्यार्थका ग्रहण करनां. सो अवधिदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अवधिदर्शनावरण. तथा वर, प्रधान, क्षायक होनेसें केवल अनंत ज्ञेयके होनेसें जो अनंत दर्शन, सो केवलदर्शन, तिनका जो आवरण,सो केवलदर्शनावरण. अरु जो चैतन्यकों सर्व तरसें अतिकुत्सित पणा करे, सो निद्रा. दर्शन उपयोग सामान्य ग्रहण रूप, तिसका विघ्न करने वाली, सो निद्रा जाननी. तिस निद्राके पांच भेद हैं. १ निद्रा, २ निद्रानिद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानार्द्धि. तहां १ निद्रा उसकों कहते हैं, कि जो चपटी बजानेसें जाग उठे,सो सुखप्रतिबोधनिद्रा, जिसके उदयसें ऐसी निद्रा आवे तिसका नाम निद्रा है. तथा २ अतिशय करकें जो निद्रा होवे, उसका नाम निद्रानिद्रा है. जैसेंकि बहुत हलानेसें दुःखें जागे, कपडे खेंचनेमें जागे, जिसके उदयसें ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मप्रकृतिका नाम निद्रानिद्रा है. तथा ३ जो बैठेकों खडेकों जो निद्रा आवे,तिसका नाम प्रचला है, जिस कर्मके उदयसें ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मका नाम प्रचला है, तथा ४ जो चलतेकों निद्रा आवे, तिसका नाम प्रचलाप्रचला है, जिस कर्मके उदयमें ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मकी प्रकृतिका नामभी प्रचलाप्रचला है, तथा ५ स्त्याना नाम है पिंडीभूतका सो पिंडीभूत है ऋद्धि आत्माकी शक्ति जिस निद्रामें सो स्त्यानर्द्धि, तिस निंदमें वासुदेवके बलसें आधा बल होता है, जिस कर्म

के उदयसें ऐसी निंद आवे, तिसका नाम स्त्यानर्द्धिकर्म है, इस निद्रा में कितनेक कार्यभी कर लेता है, परंतु उसकों कुछ खबर नहीं रहती है.

अथ मोहकर्मकी प्रकृति लिखतेहैं. मोहे तत्त्वार्थ श्रद्धानकों विपरीत करे, सो मोहनीय है. उसमें १ मिथ्यात्वही जो मोह, सो मिथ्यात्व मोहनीय कहीयें, मोह कर्मकी उत्तरप्रकृति मिथ्यात्व हें, यद्यपि यह मिथ्यात्व १ अभिग्रहिक, २ अनभिग्रहिक, ३ सांशयिक, ४ अभिनिवेशिक, ५ अनाभोगादि अनेक प्रकारसें है, तोभी यथावस्थित वस्तुतत्त्वके अश्रद्धानसें सर्वभेदोंका एकही मिथ्यात्वरूप गिना जाता है. यह प्रथम मिथ्यात्व मोह कर्मकी प्रकृति है, अरु सोला भेद, कषाय मोहनीयके हें. क्योंकि यह क्रोधादिकभी तत्त्वश्रद्धानसें भ्रष्ट कर देते हें, सो सोला भेद ऐसें हें, १ अनंतानुबंधी क्रोध, २ अनंतानुबंधी मान, ३ अनंतानुबंधी माया, ४ अनंतानुबंधी लोभ. ऐसेंही अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ. ऐसेंही प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ. ऐसेंही संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ. यह सर्व सोलह भेद कषायमोहनीयके हें.

जे क्रोधादिक अनंत संसारके मूल कारण हें, अरु अनंतभवानुबंधि जिनका शील है, उसमें जिसका स्वभाव ऐसा है, कि जैसी पथ्थरकी रेखा; जिसके साथ क्लेश हो जावे, फेर जहां लगि जीवे, तहां लगि रोष न छोडे, सो अनंतानुबंधि क्रोध है, तथा मान, पथ्थरके स्थंभ सरिखा कदापि नमे नहीं, तथा माया, बांसकी जड समान, कदापि सरल न होवे, तथा लोभ, कृमीके रंग समान, कदापि दूर न होवे, ऐसें क्रोध, मान, माया, अरु लोभ करकें संयुक्त जो परिणाम है, तिसका नाम अनंतानुबंधि क्रोधादिक कर्म प्रकृति है. तथा अप्रत्याख्यान यहां नञ् अल्पार्थ वास्ते है, सो थोडाभी प्रत्याख्यान जिसके उदय होनेमें नहीं होता है, उसकों अप्रत्याख्यान कहते हें. इसका स्वरूप कहते हैं क्रोध, पृथिवीकी रेखा समान, मान, हाडके स्थंभ समान, माया, मेषके सींग समान, लोभ, कर्दमके दाग समान, एक वर्ष तांइ रहता है. तथा जिसके उदयसें सर्व विरतिपणा जीवकों न आवे, सो प्रत्याख्यानावरण कषाय है. उसमें क्रोध, रेणुकी रेखा समान, मान, काष्ठके स्थंभ समान, माया, गौके मूतने समान, लोभ, खंजनके रंग समान. चार मास जिसकी रहनेकी स्थिति है. त

था संज्वलनका चार कषाय कहते हैं, क्रोध, पाणीकी लकीर समान, मान, तिनिशलताका स्थंन समान, माया, बांसकी छिलक समान, लोज, हरिद्रके रंग समान, यह चारों एक पक्षकी स्थिति वाले हैं, यह सोला कषायका स्वरूप लिखा. अथ नवनो कषाय कहते है.

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, जय, जुगुप्सा. यह नव नोकषाय मोहनीयकी प्रकृति है. नोशब्द सहकारी अर्थमें हैं. कषायोंके सहचारि जो होवे, उनकों नोकषाय कहते हैं. अब इन नव प्रकृतिका स्वरूप लिखते हैं. १ जिसके उदयमें स्त्री, पुरुषकी अजिलाषा करती है, जैसें पित्तके उदयमें मीठी वस्तुकी अनिलाषा होती है. फुंफक अग्नि समान स्त्रीवेदक उदय है, जैसें फुंफक अग्नि फोलनेसें वृद्धिमान् होती है. ऐसेंही स्त्रीके स्तन कक्षादिके स्पर्शनेमें स्त्रीवेदका प्रबल उदय होता है, तथा जिसके उदयमें पुरुष, स्त्रीकी अजिलाषा करता है, सो पुरुषवेद जाननां. जैसें कफकें उदयमें खाटी वस्तुकी अजिलाषा होती है. यह पुरुषवेदका विकार ऐसा है कि जैसी तृणकी अग्नि क्योंकि तृणकी अग्नि एक वारही प्रज्वलित होती है. अरु तत्काल शांतजी हो जाती है, ऐसें पुरुषवेदजी एक वारही तत्काल उदय हो जाता है, फेर शांतजी तत्काल हो जाता है. तथा जिसके उदयसें स्त्री, अरु पुरुष इनदोनोंकी अजिलाषा उत्पन्न होवे, सो नपुंसक वेद है, जैसें पित्त अरु कफकें उदयसें खट मीठी वस्तुकी अजिलाषा होती है. यह नपुंसक वेदका उदय ऐसा है कि जैसा मोटे नगरके दाहकी अग्नि, यह तीन वेद हैं. तथा जिसके उदयसें सनिमित्त निर्निमित्त हसनां आवे, सो हास्यनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसें रमणिक वस्तुओमें रमे, खुशी माने, सो रतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है. तथा इस्सें जो विपरीत होवे, सो अरतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है. तथा जिसके उदय करकें प्रियविप्रयोगादिमें विकल मन, शोचन, क्रंदन, परिदेवनादि करता है, सो शोकनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसें सनिमित्त अथवा विना निमित्तके जयजीत होवे, सो जयनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा गंदादि मलिन वस्तुके देखनेसें जो नाक चढानां है, तिसका जो हेतु है,

सो जुगुप्सानामा मोहकर्मकी प्रकृति है. यह नव नोकषाय मोहकर्मकी प्रकृति हैं, यह सर्व पैंतालीस भेद हुये.

अथ नामकर्मकी चउत्तिस प्रकृति पापरूप हैं, उसका नाम कहते हैं. १ नरक गति, २ तिर्यंचगति, ३ नरकानुपूर्वी, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ एकेंद्रिय जाति, ६ द्वींद्रियजाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रियजाति. १३ पांच संहनन, १८ पांच संस्थान. १९ अप्रशस्त वर्ण, २० अप्रशस्तगंध. २१ अप्रशस्त रस, २२ अप्रशस्त स्पर्श, २३ उपघात, २४ कुविहायोगति. २५ स्थावर. २६ सूक्ष्म. २७ अपर्याप्त. २८ साधारण. २९ अथिर. ३० अशुभ, ३१ असुभग, ३२ दुःस्वर, ३३ अनादेय, ३४ अयशःकीर्ति.

इनका स्वरूप ऐसे हैं. १ नरकगति उसकों कहते हं कि जिसके उदयसें नारकी नाम पडे, अरु नरकगतिमें ले जावे. २ ऐसेही तिर्यंचगतिभी जान लेनी, तथा ३ जिसके उदयसें नरकगतिमें जाते हूये जीवकों दो समयादि विग्रहगति करकें अनुश्रेणीमें नियत गमन परिणति होवे. सो नरकगतिके सहचारी होनेसें नरकानुपूर्वी कहियें. ४ ऐसेंही तिर्यंचानुपूर्वी भी जान लेनी. तथा ५ जिसके उदयसें एकेंद्रिय जो पृथिवी. जल, अग्नि, पवन, बनस्पति इनमें जीव उत्पन्न होता है, सो एकेंद्रिय जाति. ६ ऐसेही द्वींद्रिय जाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रिय जाति.

तथाआद्य संहनन वर्जके शेष, ऋषभनाराच, नाराच. अर्द्धनाराच. कीलिका, सेवार्त्त, यह पांचो. संहननोंके नाम हें. इनका स्वरूप ऐसा है कि "ऋषभ परिवेष्टनपट्टः नाराच उभयतोमर्कटबंधः" दोनो हाडोंकों दोनों पासें मर्कटबंधन बांधके पट्टेकी आकृति समान हाडकी पट्टी उपर वेष्टन जिसके है, सो दूसरा ऋषभनाराच संहनन है. तथा वज्र ऋषभ करकें हीन दोनों पासें मर्कटबंध युक्त, तीसरा नाराच नामक संहनन है, तथा एक पासें मर्कटबंध अरु दूसरे पासें कीलि करकें बांध्या हूआ हाड. यह चउथा अर्धनाराचनामा संहनन हैं. तथा ऋषभ अरु नाराच, इन करकें वर्जित मात्र कीलि करकें बींधे हूये दोनों हाड, ऐसा जो हाडका संचय, सो पांचमा किलिका नामा संहनन है, तथा दोनो हाडका स्पर्श पर्यंत लक्षण है जिसमें, अरु सूधी चांपी करानेमें आर्त्त (पीडित) सो सेवार्त्त नामा संहनन है.

तथा १८ आद्य संस्थान वर्जके १ न्यग्रोध परिमंडल, २ सादि, ३ वामन,

४ कुब्ज, ५ हुंमक, यह पांच संस्थान. इनका स्वरूप लिखते हैं. तहां १ न्यग्रोधवत् बडवृक्षकी तरें परिमंमल, न्यग्रोधपरिमंमल. जैसें बडवृक्ष उपरि संपूर्ण अवयववाला होता है, अरु हेठें तैसें नहीं होता है, तैसेंही यह संस्थान नाभिके उपरि तो विस्तार बाहुल्य संपूर्ण लक्षणवाला है, अरु नाभिके हेठे संपूर्ण लक्षण नहीं, सो न्यग्रोधपरिमंमल संस्थान दूसरा है. २ तथा सादि आदि इहां उंचपणा नाभिसें हेठला देहका विभाग, सो लक्षणों करकें पूर्ण, अरु नाभिसें उपरि लक्षण विसंवादी होवे, तिसका नाम सादिसंस्थानहै. तथा ३ हाथ, पग, शिर, ग्रीवा, यथोक्त लक्षणादि युक्त, अरु शेष उदरादिरूप कोष्ठ शरीरमध्य, लक्षणादि रहित, सो वामननामा संस्थान है. ४ तथा उर उदरादि, लक्षण युक्त होवे, अरु हाथ पगादि लक्षणों रहित होवे. सोकुब्जसंस्थान है, ५ तथा जिसके शरीरका एक अवयवभी सुंदर न होवे, सो हुंमसंस्थान जान लेनां यहपांचसंस्थान.

२२ जिसके उदयसें वर्णादि चार अप्रशस्त होवे, सो कहते हैं. कि जो अति बीभत्स दर्शन, कृष्णादि वर्ण वाला प्राणी होता है, सो अप्रशस्त वर्णनाम. सो वर्ण, कृष्णादि भेदों करकें पांच प्रकारका है, तिनों करकें जो जीव युक्त होवे, सो अप्रशस्त वर्णनाम. ऐसेंही जिसके उदयसें कुथित मृतमूशकादिवत् दुर्गंधता प्राणीयोंके शरीरमें होवे, सो अप्रशस्तगंधनाम. तथा जिसके उदयसें प्राणीयोंकी देहमें रसनेंद्रियकों दुःखदायी स्वभाववाला कौडीतोरीकी तरें तिक्त कटुकादि ऐसा असार रस होवे, सो अप्रशस्तरस नाम. तथा जिसके वशसें स्पर्शेंद्रियकों उपतापका हेतु ऐसा कर्कशादि स्पर्शविशेष, जीवोंके देहमें होवे, सो अप्रशस्तस्पर्शनाम. यहवर्णादिचार.

२३ तथा जिसके उदयसें अपणेही शरीरके अवयवों करकें प्रतिजिह्वा, गल, वृंद, लंबक, चोर दांतादिक शरीरके अंदर वर्द्धमान हो करकें शरीरहीकों पीडा देते हैं, तिसका नाम उपघातनाम. तथा २४ जिसके उदयसें जीवोंकों खर उंटादिककी तरें चलनां, अप्रशस्त होवे, सो कुविहायोगति नाम. तथा २५ जिसके उदयसें पृथिवी आदिक एकेंद्रिय स्थावरकायमें प्राणी उत्पन्न होता है, अरु स्थावरनामसें कहे जाते हैं, सो स्थावरनाम. २६ जिसके प्रभावमें लोकव्यापि सूक्ष्म, पृथिवी आदि जीवोमें जीव उत्पन्न होता है, सो सूक्ष्मनाम. २७ जिसके उदयसें आहार पर्याप्ति आ

दिक पूर्वोक्त पर्याप्ति पूरी न होवे, सो अपर्याप्तनाम. २८ जिसके उदयसें अनंत जीवोंका साधारण एक शरीर होवे, सो साधारण नाम. २९ जिसके उदयसें जिह्वादि अवयव, शरीरमें अस्थिर होवे, सो अस्थिर नाम. ३० जिसके उदयसें नाभिके हेठले अवयव अशुभ होवे, सो अशुभ नाम. क्योंकि किसीकों हाथ लग जावे, तो रोष नहीं करता, परंतु पग लगनेसें क्रोध करता है, इस वास्ते अशुभनाम है. ३१ जिसके उदयसें जीवकों जो जो देखे, तिस तिसकों वो जीव अनिष्ट लगे, उद्वेगकारी होवे, सो असुभगनाम. ३२ जिसके उदयसें कठोर, भिन्न, हीन, दीन, स्वर वाला जीव होवे, सो दुःस्वरनाम. ३३ जिसके उदयसें चाहो युक्तियुक्तभी बोले, तोभी तिसका कहनां कोइ न माने, सो अनादेय नाम. ३४ जिसके उदयसें जीव, ज्ञान विज्ञान दानादिक गुण युक्तभी है, तोभी जगत्‌में उसकी यश (कीर्त्ति) नहीं होती बलके उलटी निंदा जगत्‌में होती है, सो अयशःकीर्त्तिनाम ॥ इति नामकर्मकी चउत्तीस पापप्रकृति कही.

जिसके उदयसें जात्यादि करकें विकल जीव होता है, सो नीचगोत्र जाननां. नीचगोत्र उसकों कहते हैं, कि जो अधम कैवर्त्त,चांडालादि, "कुलं गूयते संशब्द्यतेऽनेन हीनोयमजातिरित्यादि शब्दैरिति गोत्रं कुलं नीचमिति विशेषणाऽन्यथानुपपत्त्या नीचैर्गोत्रमित्यर्थः"

प्रश्नः– यह जो तुम नीच गोत्रके उदयसें नीच कुल कहते हो, तिनोंके साथ खान, पान, नहीं करते हो, तिनोंकी छूत मानते हो, अरु निंदा जुगुप्साभी करते हो, यह तुमारी बडी अज्ञानता है, क्योंकि मनुषत्व धर्म करकें सर्व सरीखे हैं, एक सरीखे हाथ पगादि अवयव हैं, तो फेर एककों उंच माननां, तथा एककों नीच माननां, यह केवल ब्राह्मण, और जैनीयोंनें बुरी रसम,भारतवर्षमें जारी कर रक्खी है,इस बातमें क्या युक्तिका अंग है? क्योंकि भारत वर्षीयोंकों वर्जके और सर्व द्वीप द्वीपांतरमें तथा भारतवर्षमेंभी सर्व विलायतादिकमें कोइभी उंच नीच नहीं गिनते हैं, सर्व निवाले प्यालेमें एक है, यह निःकेवल तुमारी मूढता अर्थात् अंध परंपरा है, वास्तवमें उंच नीच कोइभी नहीं.

उत्तरः–यह तुमारा कहनां बहुत बे समझका है, क्योंकि तुम हमारे कहेका अभिप्राय नहीं जानते, हमारा अभिप्राय तो यह है, कि जो इस

जगत्में होता है, सो निमित्तके बिना नहीं होता है, यह जो भिल्ल, कोल, धांगड, धाणक, गधीले, चंमाल, थोरी, वाघरी, सांसी, कंजर प्रमुख असन्य जातिके लोक हैं, सो जंगलोंमें गामोंके बाहिर रहते हैं, अनेक प्रकारके क्लेष सहते हैं, काले, दुर्गंधवाले, रूपमें बुरे शरीर पाते है, सुंदर खानेकों नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है ? अथवा निमित्त नहीं ? जे कर कहोगेकि बिनाही निमित्तके होते हैं, तब तो तुम नास्तिक मती हो, इस नास्तिकमतीका खंमन हम पूर्वे लिख आये हैं,जे कर कहोगेकि सनिमित्तक हैं तब तो अैसे असन्य जातिके कुलमें उत्पन्न होनेका कारणनी जरुर चाहियें. जिसके उदयसें अैसे कुलमें उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रनावसें औरनी बहुत पाप प्रकृतियोंका उदय है, जिस्सें वे दुःखादि क्लेश पाते हैं. बुद्धिहीन, जालमस्वनाव, निर्दयता, कुत्सित आहार, पशुओंकी तरें जंगलोमें वास, धर्मकर्मसें पराङ्मुख, सत्संग रहित, गम्यागम्यके विवेक रहित, नक्ष्यानक्ष्य पेयापेया विचार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नीचगोत्र है, जैसेंही धनवान् और निर्द्धन ए दोनें एक सरीखे सर्वथा नहीं हो सके हैं, तैसें नीचगोत्र वाले उंचगोत्र वालोंके सदृश नहीं हो सके हैं.

जे कर कहोगे कि विलायतमें सर्व एक सरीखे हैं, तो इस बातमें क्या आश्चर्य है ? जहां उंच नीच पणा नहीं, तहां सर्व जीवोने एक सरीखा गोत्रकर्मका बंध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये हैं, परंतु जहां उंच नीचपणां माना जायगा, तहां अवश्यमेव उंच नीच गोत्रका व्यवहार जरुर होवेगा, अरु जो हीन जातियोंकों बुरे जानते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं, क्योंकि बुराइ तो खोटे कर्मोंके करनेसें होती है, जे कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हो कर खोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, परनिंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मांसनक्षण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुकर्म करेगा, हम उनकों जरुर बुरा मानेंगे, अरु नीच जातिवाला है, सोनी जे कर सुकर्म करेगा, दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसकों अछा कहेंगे, तो फेर हमारी समझ किसी रीतिसें बुरी है. अरु जो उसके साथ खाते नहीं है, यह कुलरूढी है, अरु जो नीच जातिवालोंकी निंदा (जुगुप्सा) करते हैं, वे अज्ञानी हैं, निंदा जु

गुप्सा तो किसीकीनी करनी न चाहियें. अरु जो तिनकी बूत मानते हैं, वोनी कुलारूढी है, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करकें सरीखे हैं, तोनी जैसें माता, बहिन, बेटी, नार्या, यह सब स्त्रीत्व स्वरूप करकें समान हैं, तोनी जैसें अगम्य गम्यका विनाग है, तैसेंही उंच नीचकानी विनाग है, यह व्यवहार ब्राह्मण, अरु जैनोने नहीं बनाया है, किंतु अछे बुरे कर्मोंके उदयसें है, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार मिश्रदेशमेंनी था, इस वास्ते उंच नीच गोत्रके प्रनावसेंही उंच नीच जाति होती है.

तथा आयुः कर्ममेंसूं नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती है,नरक शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है, "नरान् प्रकृष्टपापफलनोगाय गुरुपापकारिणः प्राणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कायंति शब्दयंतीति नरकास्तेष्वायुस्तन्नवप्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुनवकारणं प्राणधारणं यत्तन्नरकायुष्कं तद्विपाकवेद्यकर्म्मप्रकृतिरपि नरकायुष्कमिति ॥"

तथा वेदनीकर्मकी अशातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती है, सो अशाता नाम दुःखका है, जिसके उदयसें जीव दुःख नोगता है, तिसका नाम अशातावेदनी है.

यह ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी नव.मोहनी छवीस, नामकर्मकी चौत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अशातावेदनी एक, सब मिल कर व्यासी नेदें पाप फल नोगनेमें आता है ॥ इति पाप तत्त्वंसंपूर्णं॥

अथ आश्रवतत्त्व लिखते हैं. मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु हैं. १ असत् देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनों विषे सत् देव, सत् गुरु, अरु सत् धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व है. तथा हिंसादिकसें जो न निवृत्तनां, तिसका नाम अविरति है, तथा प्रमाद मद्यादि, तथा कषाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका व्यापार, ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अरु योग, यह पांच पुनर्बंधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंके बंधके हेतु हैं, इसकों जैन मतमें आश्रव कहते हैं. आश्रवें कर्म जिनोसेंती सो आश्रव. तब तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन,वचन,कायाका व्यापारही शुनाशुन कर्मबंधका हेतु होनेसें आश्रव होय. यह तात्पर्य है.

प्रश्नः—बंधके अनाव होये कैसें आश्रवकी उत्पत्ति है? जे कर कहोगे कि आश्रवसें पहिलां बंध है, तबतो वो बंधनी आश्रवहेतु विना नहीं

हो सक्ता है, क्योंकि जो जिसका हेतु है, सो तिसके अनाव हूया नहीं हो सक्ता है, जे कर होवेगा, तब अतिप्रसंग दूषण होवेगा.

उत्तरः–यह कहनां असत् है, क्योंकि आश्रवकों पूर्वबंध अपेक्षया कार्य पणा है, अरु उत्तरबंधापेक्षया कारणत्व है, ऐसेही बंधकोंनी पूर्वोत्तर आश्रवकी अपेक्षा करकें कार्यत्व कारणत्व जाननां, बीजांकुरकी तरें. बंधाश्रव दोनोंका परस्पर, कार्य कारण नावका नियम है, यहां इतरेतर दूषण नहीं है, प्रवाहापेक्षा करकें अनादि होनेमें.

यह आश्रव पुण्य पापका बंधहेतु होने करकें दो प्रकारें हैं, यह दोनों नेदोंके मिथ्यात्वादि उत्तर नेदोंके उत्कर्षापकर्ष, अर्थात् अधिक न्यून होनेसें अनेक प्रकार हैं. इस शुनाशुन मन वचन कायके व्यापार रूप आश्रवकी सिद्धि अपणी आत्मामें स्वसंवेदनादि प्रत्यक्षसें है, अरु दूसरोंमें बचन काय व्यापारकी प्रत्यक्षसें सिद्धि है, औ शेषकी तिसके कार्य प्रनव अनुमानसें जाननी. तथा आप्तप्रणीत आगममें जाननी.

अथ आश्रवके उत्तर नेद बेंतालीस हैं. सो लिखते हैं. पांच इंद्रिय, चार कषाय, पांच अव्रत, पच्चीश क्रिया, तीन योग, यह बेंतालीस नेद हैं.

जीवरूप तलावमें कर्मरूप पाणी जिस करकें आवे, सो आश्रव है, तहां इंद्रिय पांच हैं. तिनका स्वरूप कहते हैं, १ स्पर्शीयें स्वविषय स्पर्श लक्षण, जिस करकें सो स्पर्शनेंद्रिय, २ "रस्यते आस्वाद्यते रसोऽनयेति" आस्वादियें रस लीजीयें जिस करकें सो रसना (जिव्हा) इंद्रिय, ३ सूंघीयें गंध जिस करकें सो घ्राणेंद्रिय. (नासिकेंद्रिय,) ४ चक्षु (लोचन,) ५ सुणियें शब्द जिस करकें सो श्रोत्रेंद्रिय. यह पांच इंद्रिय मूलनेदकी अपेक्षासें पांच कारण आश्रवके हैं.

"क्रुध्यति कुप्यति" सचेतन अचेतन वस्तुमें क्रोध जो करे.सनिमित्त,निर्निम्मित्त येन जिस करकें प्राणी, सो क्रोधवेदनीय कर्म है, तिसका उदय नी उपचारसें क्रोध है. ऐसेही मान,माया,अरु लोनमेंनी कह देनां. इसमें मान आठ प्रकारका है, तिसका नाम कहते हैं. १ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ ज्ञानमद, ६ लानमद, ७ तपोमद, ८ ऐश्वर्यमद. १ जातिमद, उसकों कहते हैं जो अपणी माताके पक्षका अनिमान करेकि मेरी माता ऐसें बडे घरकी बेटी है, इस तरें आपकों उंचा माने,

अरु दूसरोंकों निंदे, इसका नाम जातिमद है, २ कुलमद सो है, कि जो अपने पिताके पक्षका अभिमान करे, जैसेंकि मेरे पिताका बडा उंच कुल है, इस तरें आपकों बडा माने, औरोंकों निंदे, तिसका नाम कुलमद है, ३ जो अपणे बलका अभिमान करे, अरु दूसरोंके बलकों निंदे, सो बलमद, ४ जो अपने रूपका अभिमान करे, दूसरोंके रूपकूं निंदे, सो रूपमद, ५ जो अपने आपकों बडा ज्ञानी जाने, अरु दूसरोंकों तुछमति जाने, सो ज्ञानमद, ६ जो अपणे आपकों बडा नसीबे वाला समझे, अरु दूसरोंकों हीण पुण्यी समझे, सो लाभमद, ७ जो तप करकें अभिमान करेकि मेरे समान तपस्वी कोइ नहीं, सो तपोमद, ८ जो अपणी ऐश्वर्यताका अभिमान करे, दूसरोंकों घासजू समझे, सो ऐश्वर्यमद. इस प्रकारसें मानके आठ भेद हैं. तथा तीसरी माया, सो "मयति गच्छति" अर्थात् जावे, तिस तिस विकारोंकों परवंचनेके अर्थे जीव, उसकों माया (कपट) कहते हैं. तथा जिस करकें परधनमें गृद्धी होवे, तिसकों लोभ कहते हैं. इन चारोंकों कषाय कहते हैं. यह चार कषाय हैं.

अथ पांच अव्रत कहते हैं, तहां पांच इंद्रिय, ६ मनोबल, ७ वचनबल, ८ कायबल, ९ उछ्वासनिःश्वास, १० आयु, यह दस प्राण हैं. इन दश प्राणोंके योगसें जीवकोंभी प्राण कहियें हैं. तिन प्राणोंका जो वध (हननां) अर्थात् मारनां सो प्रथम प्राणवध अव्रत जाननां. तथा २ झूठ बोलनेका नाम मृषावाद है. तथा ३ दूसरोंकी वस्तु चुराय लेनी, तिसका नाम अदत्तादान है, तथा ४ स्त्री पुरुषका जो जोडा, तिसका नाम मिथुन है, इन दोनोंके मिलनेसें जो कर्म, सो मैथुन. (अब्रह्म सेवनं) तथा ५ "परिगृह्यते" सर्व ओरसें अंगीकार करियें, चार गतिके निबंधन कर्म जिस करकें, सो परिग्रह, इन पांचोंके चार चार भेद हैं, सो कहते हैं.

१ एक द्रव्यें हिंसा है, परंतु भावें नहीं, २ एक द्रव्यें हिंसा नहीं, परंतु भावें है, ३ एक द्रव्येंभी हिंसा है, अरु भावेंभी हिंसा है, ४ एक द्रव्येंभी हिंसा नहीं, अरु भावेंभी हिंसा नहीं, यह प्रथम अव्रतके चार भेद कहे. तिसमें प्रथम भंगका स्वरूप ऐसें है कि साधुकी समाचारी प्रतिलेखना करनेसें, मार्गमें विहार करनेसें, नदी आदिकके लंघनेसें, नावमें बैठ कर नदी उतरनेसें, नदीमें साध्वी आदिकके काढनेसें, वर्षा वर्षतामें शोच जानेसें,

ग्लानि रोगीकी लघुशंकाकों मेघ वर्षतामें गेरनेसें, गुरुके शरीरमें वाय तथा थकेवा दूर करकें मूठी चांपी करनेसें, जो हिंसा होती है, सो सर्व द्रव्यहिंसा है, तथा श्रावककों जिनमंदिर बनानेसें, जिनपूजा करनेसें, सधर्म्मिवत्सल करनेसें, तीर्थयात्रा जानेसें, रथोत्सव. अठाइ उत्सव, प्रतिष्ठा अरु अंजनशलाका करनेसें, तथा भगवानके सन्मुख जानेसें, गुरुके सन्मुख जानेसें, इत्यादि कर्त्तव्यसें जो हिंसा होवे, सो सर्व द्रव्यहिंसा है, परंतु भावहिंसा नहीं. इसका फल अल्प पाप, अरु बहुत निर्जरा है. यह भगवती सूत्रमें लिखा है. यह हिंसा साधु आदि करते हैं परंतु उनका परिणाम उस अवसरमें खोटे नहीं है, इस वास्ते द्रव्यहिंसा है.

प्रश्नः—यज्ञादिमें जो गोमेध प्रमुख जीव मारे जाते हैं, यहभी द्रव्यहिंसा क्यों नहीं? इसका उत्तर, मीमांसक मत खंडनमें लिख आये हैं, सो देख लेनां यह प्रथम भंग.

दूसरे भंगमें द्रव्यहिंसा नहीं परंतु भाव हिंसा है, तिसका स्वरूप कहते हैं, कि जो पुरुष उपरसें तो शांतिरूप बना हूआ है परंतु परिणाम अंतःकरण जिसका खोटा है, वो ऐसा चाहता है कि मेरे शत्रुके घरमें आग लग जावे, मरी पड जावे, नदीमें डूब जावे, चोरी हो जावे, बंदीखानेमें पडे, तथा वेष बदलके भला मानस बनके ठग बाजी करे, तथा अगलेका बुरा करनेके वास्ते अनेक प्रकारसें उसकों विश्वास करावे, तथा फकीरीका वेष करकें लोकोंसें धन एकठा करे, इत्यादि. तथा साधुके गुण तो उसमें नहीं हैं, परंतु लोकोंमें अपने आपको गुण प्रकट करे, इत्यादिक काममें द्रव्य हिंसा तो नहीं करता, परंतु भावसें तो वो पुरुष, हिंसक है, इसका फल संसारमें भ्रमण करने सीवाय और कोइ फल नहीं. यह दूसरा भंग.

तीसरे भंगमें प्रकट इंद्रियोंकी विषयमें गृद्ध हो कर जीवहिंसा कसाइ, (खटिक) वागुरी. अहेडी, (शिकार मारनां) विश्वासघात, इत्यादि करकें जीवहिंसा करनी, अरु मनमें आनंद माननां, इसका फल दुर्गति है, यह द्रव्येंभी हिंसा है, अरु भावेंभी हिसा है, यह तीसरा भंग.

चौथा भंगमें द्रव्येंभी हिंसा नहीं, अरु भावेंभी हिंसा नहीं, उसकों हिंसा कहनां. यह भंग शून्य है, इस भंग वाला कोइभी जीव नहीं ॥इति॥

ऐसेंही कूठकेनी चार नेद हैं. तिसका स्वरूप कहते हैं. १ साधु, र स्तेमें चला जाता है, तिसके आगें हो कर एक जंगली गौआंका तथा मृगादि जानवरोंका टोला निकल जावे, तिसके पीछें शिकारी बंदूक प्रमुख शस्त्र लीयां चला आता है, उनके मारने वास्ते वो शिकारी साधुकों पूछे कि तुमने अमुक जीव जाते देखे हैं? तब साधु मौन कर जावे, जे कर मौन करेनी पीछा न छोडे, साधुकों मारे, तब साधु कह देवे, मैं नहीं देखे, यद्यपि यह द्रव्यें कूठ है, परंतु नावें कूठ नहीं, क्योंकि जो कोइ इंद्रियोंकी विषय वास्ते तथा अपने लोन वास्ते कूठ बोले, तब नावतः कूठ होवे, परंतु यह तो जीवोंकी दया वास्ते कूठ बोले है. वास्तवमें यह कूठ नहीं. इसी तरें और जगेंनी समक लेनां. यह प्रथम नंग.

तथा दूसरा नंगमें कोइ पुरुष मुखसें तो कुछ नहीं बोलता, परंतु दूसरों के ठगने वास्ते मनमें अनेक विकल्प करता है, यह दूसरा नंग. तथा तीसरे नंगमें तो द्रव्येंनी कूठ बोलता है. अरु नावेंनी कूठ बोलता है, तिसका अनिप्रायनी महा छल कपट करनेका है, क्योंकि मुखसेंनी कूठ बोलता है, अरु चित्तमेंनी दुष्टता संयुक्त है, यह तीसरा नंग. तथा चौथा नंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति कूठ स्वरूप.

अथ चोरीका यही चार नंग कहते हैं. तहां प्रथम नंगमें जैसें कोइ स्त्री शीलवान् है, औ कोइ दुष्ट राजा उसका शीलनंग करा चाहाता है, तब कोइ धर्मज्ञादि पुरुष रात्रिमें अथवा दिनमें उस स्त्रीके शीलकी रक्षा वास्ते उस राजसें बाहिर ले जावे, तो व्यवहारमें उस राजाकी उसने आज्ञा नंगरूप चोरी करी है, परंतु वास्तवमें वो चोर नहीं. इसी तरें और जगामेंनी जान लेनां. यह प्रथम नंग. दूसरे नंगमें चोरी तो नहीं करता, परंतु चोरी करनेका मन उसका है, तथा जो नगवान् वीतराग सर्वज्ञकी आज्ञा नंग करने वाला है, सोनी नावचोर है. यह दूसरा नंग. तथा तीसरे नंगमें चोरीनी करता है, अरु मनमेंनी चोरी करनेका नाव है, यह तीसरा नंगहै. अरु चउथा नंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति अदत्तादान नंग.

ऐसेंही मैथुनके चार नंग कहते हैं. जो साधु, जलमें डूबती साधवीकों देख कर काढनेके वास्ते पकडे, तथा धर्मी गृहस्थ छतसें गिरती अपनी बहिन बेटीकों पकडे, तथा बावरी होइ दौडतीकों पकडे, यह द्र

व्यें मैथुन है, परंतु नावें नहीं. यह प्रथम नंग. तथा इव्यें तो मैथुन नहीं सेवता है, परंतु मैथुन सेवनेकी बडी अनिलाषा करता है,सो नावें मैथुन है. यह दूसरा नंग. तथा तीसरे नंगमें तो इव्यें अरु नावें मैथुन सेवता है. अरु चौथा नंग पूर्ववत् शून्य है ॥ इति मैथुन स्वरूपं ॥

ऐसेंही परिग्रहका चार नंग कहते हैं, १ जैसें कोइ मुनि कायोत्सर्ग कर रहा है, उसके गलेमें कोइ हारादिक आनूषण गेर देवे. वो इव्यें तो परिग्रह दीखता है, परंतु नावें परिग्रह नहीं है. यह प्रथम नंग. तथा दूसरा इव्यें तो उसके पास कोडी एकनी नहीं है, परंतु मनमें धनकी बडी अनिलाषा रखता है, सो नावपरिग्रह है. तथा तीसरेमें धननी पास है, अरु अनिलाषानी है, सो इव्यनाव करकें परिग्रह है. तथा चौथा नंग पूर्ववत् शून्य है. इन सर्व नंगोमें दूसरा अरु तीसरा नंग निश्चय करकें अविरतिरूप है. यह पांच प्रकारकी अविरति.

अथ पच्चीस क्रियाका नाम अरु स्वरूप कहते हैं. १ काया (देह) करकें जो होवे. सो कायिकीक्रिया. २ आत्माकों नरकादिमें जाने वास्तें जीव अधिकारी करे, इस करकें सो अधिकरण परोपघात करनेसें वागुरादि गल कूटपाश करकें जो उत्पन्न होवे, सो अधिकरणकी क्रिया, ३ अधिक जो होवे दोष सो प्रदोष कहियें क्रोधादिक, तिनमें जो उत्पन्न होवे, सो प्रदोषक्रिया, ४ जीवकों परिताप देनेसें जो उत्पन्न होवे, सो पारितापनिकी क्रिया, ५ प्राणीयोंके विनाश करनेकी जो क्रिया. सो प्राणातिपातकी क्रिया, ६ पृथिवीआदिक कायाका उपघात करनां यह जिसका लक्षण है, ऐसें जो शुष्क तृणादि छेद, लेखनादि, तिनमें जो क्रिया होवे, सो आरंनकी क्रिया, ७ जो विविध उपायो करकें धन उपार्जन तथा धनरक्षण करणेमें मूर्छाके परिणाम, उसका नाम परिग्रह है. तिनमें जो उत्पन्न होवे क्रिया, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ मायाही है हेतु प्रत्यय जिसका मोक्षके साधनोंमें माया प्रधान प्रवृत्ति, सो माया प्रत्ययकीक्रिया, ९ मिथ्यात्वही है.प्रत्यय कारण जिसका सो मिथ्या दर्शन प्रत्ययकी क्रिया,१० संयमके विघातकारक कषायोंके उदयसें प्रत्याख्यानका न करनां, सो अप्रत्याख्यानकी क्रिया, ११ रागादि कलुषितका जो जीव अजीवको देखनां,

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह संयुक्त चित्तसें जो स्त्री आदिकोंके शरीरका स्पर्श करनां, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्वे अंगीकार करे हूये पापोपादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो प्रातीत्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थः १४ "समंतात्" सर्व ओरसें "उपनिपात" आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें नोजनादिकमें, सो समंतोपनिपात, तहां जो क्रिया उत्पन्न होवे. सो सामंतोपनिपातिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी जो नावसें अनुमोदना करे, सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपणे हाथ करकें जो करे, जैसें कोइ पुरुष बडे अनिमान करकें क्रोधित चित्त हूआ थका जो काम उसके नौकर कर सक्ते हैं, उस कामकों अपने हाथसें करे, सो स्वाहस्तिकीक्रिया, १७ नगवत् अर्हतकी आज्ञा उल्लंघन करकें अपणी बुद्धिमें जीवाजीवादि पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८ दूसरायांके अण होये खोटे आचरणका प्रकाश करणां, उनकी पूजाका नाश करनां, तिस करनेसें जो उत्पन्न होवे, सो वैदारणिका क्रिया, १९ आनोग नाम है उपयोगका, तिस्में जो विपरीत होवे, सो अनानोग है, तिस करकें उपलक्षित जो क्रिया, सो अनानोग क्रिया. बिना देखे, बिना पूंजे देश अर्थात् नींत नूम्यादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां, सो अनानोग क्रिया, २० अपणी अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अवकांक्षा है. इस्में जो विपरीत तिसका नाम, अनवकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया. तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्त्तव्य विधियोमें किसी विधियोमें जो अपनेकों अरु और जीवोंकों हितकारी है, तिन विधियोमें प्रमादके वश हो कर आदर न करनां, सो अनवकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया, २१ "प्रयोग" दौडना चलनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर कूड बोलनादि वचनव्यापार, परानिद्रोह, ईर्ष्या अनिमानादि मनोव्यापार, इन तीनोंका जो करणां. सो प्रयोगक्रिया, २२ जिस करकें विषय ग्रहण करियें, सो समादान इंद्रिय हैं, तिसकी जो क्रिया देश सर्व उपघातरूप व्यापार. सो समुदान क्रिया, २३ प्रेम नाम है माया अरु लोनका, तिन करकें जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २४ द्वेष नाम है क्रोध अरु मा

नका, तिन करकें जो होवे, सो द्वेषप्रत्ययिकी क्रिया, २५ चलनेसें जो क्रिया होवे, सो ईर्यापथक्रिया. यह क्रिया वीतरागकों होती है.

अथ इन पच्चीश क्रियाका व्याख्यान करते हैं. १ प्रथम कायिकी क्रिया दो प्रकारकी है, एक अनुपरता कायिकी क्रिया, दूसरी अनुपयुक्त कायिकी क्रिया, उसमें प्रदुष्ट मिथ्यादृष्टि जीवके मन वचनकी अपेक्षा रहित पर जीवोंके पीडाकारी अैसा जो कायाका उद्यम, सो प्रथम भेद है, तथा प्रमत्त संयतके बिना उपयोग अनेक कर्त्तव्यरूप कायाका व्यापार, सो दूसरा भेद. यह कायिकी क्रियाका स्वरूप कह्या. २ दूसरी अधिकरणकी क्रिया दो प्रकारें है. एक संयोजना, दूसरी निवर्त्तना, उसमें विष, गरल, फांसी, धनु, यंत्र, तलवार, आदि शस्त्रोंकों जीवोंके मारणे वास्ते जो इनका "संयोजन" अर्थात् मिलाप करणां, जैसें धनुष अरु तीरका मिलाप करनां, इसी तरें सर्व जाननां. यह प्रथम भेद. तथा तरवार, तोमर, शक्ति, तोप, बंदुक, इनका जो नवे सिरसें बनानां, यह दूसरा भेद यह दूसरी क्रियाका स्वरूप कह्या. ३ जिन निमित्तोंसें क्रोध उत्पन्न होवे, सो निमित्त जीव अजीव हैं, उसमें जीव तो प्राणी, अरु अजीव खूंटा, कांटा, पत्थर, कंकरादि, इनके उपर द्वेष करे, यह तीसरी प्रदोषक्रिया, ४ तथा अपणे हाथों करकें अरु परके हाथों करकें, जीवकों ताडनां (पीडा देनी) सो परितापना. इस परितापनाके दो भेद हैं, एक तो "स्व" (अपणे आपकों) पीडा देनी, जैसें पुत्र कलत्रादिके वियोगसें दुःखी हो कर अपणे हाथों करी छाती शिरका कूटनां, यह प्रथम भेद. तथा पुत्र शिष्यादिकोंकों ताडनां (पीटनां) यह दूसरा भेद, यह चौथी पारितापनिकी क्रिया. तथा ५ पांचमी प्राणातिपातकी क्रियाके दो भेद हैं, एक तो अपणे आपकी घात करणी, जैसेंकि जान बूझ कर पर्वतसें गिरके मर जानां, भर्त्ताके साथ सती होनेके वास्ते अग्निमें जल मरनां, पाणीमें डूबके मरनां, विष खा के मरनां, शस्त्रसें मरनां, इत्यादि स्वप्राणातिपात यह महापाप रूप क्रिया, यह प्रथम भेद तथा दूसरी मोह, लोभ, क्रोधके वश हो कर पर जीवकों स्व अथवा परहाथ करकें मारणां. यह पांचमी क्रिया, ६ जीव, अजीवका आरंभ करणां, सो आरंभकी क्रिया, ७ जीव अजीवका परिग्रह करणां, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ माया करणी, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ वि

परीत वस्तुका श्रद्धान सोइ है, निमित्त जिसका सो मिथ्यात्व दर्शन प्रत्ययकी क्रिया, १० जीवके हननेका तथा अजीव मद्य मांसादि पीने खानेका जिसके त्याग नहीं, ऐसा जो असंयती जीव, तिसकों अप्रत्याख्यानकी क्रिया, ११ घोडा, रथ,प्रमुख जीव तथा अजीवोंके देखने वास्ते जानां, सो दृष्टिकीक्रिया,१२ जीव, अजीव, स्त्री, पूतली, आदिकका राग करकें स्पर्श करनां, सो स्पृष्टिका क्रिया, १३ जीव, अजीवकी अपेक्षा जो कर्मका बंध होवे, सो प्रातीत्यकी क्रिया, १४ जीव सो पुत्र, भाइ, शिष्यादिक, अरु अजीव सो भूषण, घर, हाटादि. इनकों लोक सर्व दिशोंसें देखने आवे, देखके प्रशंसा करे, तब तिन वस्तुओंका स्वामी हर्षित होवे. सो सामंतोपनिपातिका क्रिया. १५ जीव मनुष्यादि अरु अजीव ईंटका टुकडा,इनोकों फेंके सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथों करी जीवकों तथा अजीवकों (प्रतिमादिकों) ताडे, वींधे, सो स्वहस्तकी क्रिया,१७ जीव अजीवकी मिथ्या प्ररूपणा करणी, तथा जीव अजीवकों मंत्रसें मंगावा लेनां, सो आज्ञापनिका क्रिया. १८ जीव अजीवकों विदारणां,सो वैदारणिका क्रिया, १९ विना उपयोगकुं जो वस्तु लेवे, तथा भूमिकादि उपर छोडे. सो अनाभोगक्रिया. २० इस लोकमें औ परलोकमें जो विरुद्ध ऐसा जो चोरी, परदारागमनादिक है, उनकों सेवे, मनमें डरे नहीं, सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया. २१ मन. बचन, कायाका जो सावद्य (सपाप) व्यापार, सो प्रयोग क्रिया, २२ अष्टविध कर्म परमाणुओंका जो ग्रहणां. सो समुदान क्रिया, २३ राग जनक वीणादिकका जो शब्दादि सो प्रेम प्रत्यय क्रिया. २४ अपणे उपर तथा पर उपर द्वेष करनां, सो द्वेषप्रत्ययिकीक्रिया, २५ केवल योगोंसें जो क्रिया, सो केवलीकों ईर्यापथ क्रिया. यह पच्चीस क्रियाका स्वरूप संक्षेप मात्र लिखा है. यद्यपि इन क्रियाओंमें कितनीक क्रिया आपसमें एक सरखी दीखती हैं, तोभी एक सरखी नहीं है, इनका अच्छी तरें स्वरूप देखनां होवे, तो गंधहस्तीभाष्य देख लेनां.

अथ योग तीन है, सो लिखते हैं. १ मनका व्यापार, सो मनोयोग, २ बचनका व्यापार, सो बचनयोग, ३ कायाका व्यापार, सो काययोग, यह सर्व मिल कर बेंतालीस भेद आश्रव तत्त्वके हूये हैं. इन बेंतालीस भेदों सें जीवकों शुभाशुभ कर्मकी आमदनी होती है. इति आश्रवतत्त्वं संपूर्ण ॥

अथ संवरतत्त्व लिखेते हैं. पूर्वोक्त आश्रवका जो रोकने वाला सो संबर है, तिस संवरके सत्तावन भेद हैं, सो कहते हैं. पांच समिति, तीन गुप्ति, दश प्रकारका यतिधर्म, बारह भावना, बावीश परीसह, पांच चारित्र. यह सब मिल कर सत्तावन भेद हूये. इनमेंसूं पांच समिति, तीन गुप्ति, दशविध यतिधर्म, बारह भावना, इनका स्वरूप गुरु तत्त्वमें लिख आये है. तहांसें जान लेनां. इहां नहीं लिखते.

अथ बावीश परीषहका स्वरूप लिखते हैं. १ क्षुधापरीषह, सो क्षुधा नाम भूखका है, शेष वेदनामें अधिक भूखकी वेदना है, सो जब क्षुधा लगे. तब अपनी प्रतिज्ञासें न चले. अरु आर्त्तध्यानभी न करे, सम्यक् परिणामोंमें क्षुधा सहे. सो क्षुत्परीषह, २ ऐसेंही पिपासा जो तृषा तिसका परीषहभी जान लेनां, ३ शीतपरीषह. सो बडा भारी जब शीत पडे, तबभी अकल्पनिक वस्त्रकी वांछा न करे, जैसें जीर्ण वस्त्र होवे, उनोंहीसें शीत सहे. अरु अग्निसेंभी न तापे. इसी रीतीसें सम्यक् शीत परीषह सहे. ४ ऐसेंही उष्णपरीषहभी सहे, ५ दंशमशकपरीषह, सो दंश मशक जब काटे. तब उस स्थानमें चले जानेकी इछा न करे, तथा दंश मशकके दूर करने वास्ते धूमादि यत्नभी न करे, तथा तिनके दूर निवारण वास्ते पंखाभी न करे. ऐसा पुरुष. दंश मशक परीषह सहे, ६ अचेलपरीषह, जो सर्वथा वस्त्रोंका अभाव, तिसका नाम अचेल परीषह नहीं, किंतु आगममें जो वस्त्रादिक रखनेका प्रमाण कह्या है, तिस प्रमाण रखनां सो परिग्रह नहीं है, परिग्रह तो उसकों कहते हें कि जो मूछी करकें रखे॥ उक्तं च॥ जंपि वछं च पायं च. कंबलं पाय पुछणं॥ सोपि संजम लज्जठा, धारिंति परिहरंति य॥ १॥ न सो परिग्गहो वुत्तो, नाइ पुत्तेण ताइणा॥ मुछापरिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसणत्ति॥२॥ चल नाम वस्त्रका है, सो शीर्ण अर्थात् फटे हूये अरु जीर्णभी होवे, तोभी अकल्पनिक न लेवे, सो अचेलपरीषह, ७ अरतिपरीषह. संयम पालनेकों जो अरति संयममें उत्पन्न होवे, तिसकों सहे, इसके सहनेका उपाय दशवैकालिककी प्रथम चूडामें अग्गरह वस्तुके चिंतनरूप करनेसें अरतिदूर हो जाती है. ८ स्त्रीपरीषह, सो स्त्रीयोंके अंग प्रत्यंग संस्थान सूरति, हसनां, मनोहर पणां, विभ्रमादि चेष्टायोंकों मनमें चिंतवना न करे, मोक्ष मार्गमें अर्गलसमान स्त्रीयोंकों जान करकें

तिनोमें कामकी बुद्धि करकें, नेत्रोंसें देखे नहीं. ९ चर्या नाम है चलने का चलनां घर रहित ग्राम नगरादिमें अनियतवास ममत्व रहित मास कल्पादि करणां, सो चर्यापरीषह है, १० निषद्यापरीषह, सो निषद्या यह रहनेके स्थानका नाम है, सो स्थान, स्त्री, पंडक विवर्जित होवे, तिस स्थानमें रहतेकों इष्टानिष्ट जो उपसर्ग होवे, तोभी अपणे चित्तमें चलायमान न होवे, सो निषद्यापरीषह, ११ 'शेरते' शयन करियें इस विषे सा शय्या, संस्तारक, वसति. तहां संस्तारक सो सोनेंका आसन, कोमल, कठिन, ऊंचा, नीचा, धूल. कूडा, कंकर वाली जगामें होवे, तथा वो स्थान, शीत गर्मी वाला होवे, तोभी मनमें उद्वेग न करे, दुःख सहन करे, सो शय्यापरीषह, १२ आक्रोश परीषह, सो अनिष्ट वचन कोइ कहे, तब ऐसें विचारे,जे कर यह पुरुष सच्ची बातके वास्ते अनिष्ट वचन कहता है, तो मुझकों कोप करनां ठीक नहीं. क्योंकि यह पुरुष मुझे शिक्षा देता है, फेर ऐसा काम न करूंगा, जे कर इस पुरुषका मेरे पर झूठा कोप है, तोभी मुझकों कोप करनां युक्त नहीं. ऐसें चिंतन करकें आक्रोशपरीषह सहे, १३ वध नाम है हाथादि करकें ताडनां, (मारनां,) तिसका सहनां सो इसी रीतीसें कि यह जो मेरा शरीर है. सो अवश्य विध्वंस होवेगा. इस शरीरके संबंधसें जो मेरेकों दुःख होता है, सो मेरे करे हूये कर्मका फल है. इस बुद्धसें वधपरीषह सहे, १४ याचना नाम मांगनेका है. सर्वही वस्त्र अन्नादिक साधुकों मागनेसेंही मिलता है. इस बुद्धिसें याचना परीषह सहे, १५ साधुकों किसी वस्तुकी इच्छा है. अरु वो वस्तु गृहस्थके घरमेंभी बहुत है, साधु मांगनेकों गया. परंतु गृहस्थ देता नहीं, तब साधु मनमें विषाद न करे, अरु देने वालेका बुराभी नहीं चिंतवे, दुर्वचनभी न बोले, समता करे. आज नहीं मिला. तो कलकों मिल जायगा, इस तरें अलाभपरीषह सहे, १६ रोग (ज्वर अतिसारादि) जब हो जावे. तब गच्छके बाहिर जो साधु होवे, सो तो कोइभी औषधि न खावे, अरु जो गच्छवासी साधु होवे, सो गुरु लाघवता विचार करकें रोग परीषह सहे, अरु जो रीति शास्त्रमें औषध करनेकी कही है. तिस रीतिसें करे, सो रोगपरीषह सहे, १७ तृणस्पर्श परीषह, सो दर्भादिक कठोर तृणका स्पर्श सहे, १८ मलपरीषह, सो साधुके शरीरमें पसीना आनेसें रजका पुं

ज शरीरमें लगनेसें कठिन मैल लग जाता है, अरु उष्ण कालकी तप्तसें प्रगट हूआ है दुर्गंध तिस करकें उत्पन्न हूआ है उद्वेग, तोनी स्नानादि शरीरकी विनूषा साधु न करे. यह मलपरीषह है. १९ सत्कारपरीषह, सो नक्त लोकोंने वस्त्रान्न पानादिक करकें साधुकों बहुत सत्कारनी किया,तोनी मनमें अनिमान न करणां,तथा और और साधुओंकी नक्त लोक पूजा नक्ति करते हैं, अरु जैनमतके साधुकी कोइ बातनी नहीं पूछता, तोनी मनमें विषाद न करे, यह सत्कारपरीषह है. २० प्रज्ञापरीषह, सो बहुत बुद्धि पा कर अनिमान न करे. तथा अल्पबुद्धि होवे तदा "मैं महा मूर्ख हूं, सर्वके पराजवका स्थान हूं," ऐसी ताप दीनता मनमें नहीं लावे, सो प्रज्ञापरीषह, २१ अज्ञानपरीषह, सो ज्ञान चौदहपूर्व पाठी, एकादशांगपाठी, तथा उपांग, छेद, प्रकर्ण, शास्त्रोंका पाठी. ज्ञानका समुद्र मैं हूं ऐसा गर्व न करे. अथवा में आगम ज्ञान रहित हूं, धिक् है, मुफे निरक्षर कुञ्जिंजरकों? ऐसी दीनतानी न करे, ऐसें विचारे कि निःकेवल ज्ञानावरणका क्षयोपशमके उदयमें मेरा यह स्वरूप है, स्वकृतकर्मका फल है, जांतों नोगनेमें दूर होवेगा, वा तपोनुष्ठानसें दूर होवेगा? ऐसें विचारि अज्ञान परीषह सहे, २२ शास्त्रोंमें देवता अरु इंद्र सुनते हैं, परंतु सांनिध्य कोइनी नहीं करता, इस वास्ते क्या जाने देवता इंद्र है? वा नहीं? तथा मतांतरकी ऋद्धि वृद्धि देख कर जिनोक्त तत्त्वमें संमोह करनां, ऐसी विकलता जो मनमें न लावे. सो दर्शनपरीषह. यह बावीस परीषह जो साधु जीते. सो संवरी कहा जाता है, इन परीषहोंका विस्तार देखनां होवे, तो श्रीशांतिसूरिकृत उत्तराध्ययन सूत्रकी बृहद्वृत्ति, तथा तत्त्वार्थ सूत्रकी वृत्ति देख लेनी.

अथ पांच प्रकारका चारित्र लिखते हैं. १ सामायिक चारित्र, २ छेदोपस्थापनिका चारित्र, ३ परिहारविशुद्धि चारित्र, ४ सूक्ष्मसंपराय चारित्र, ५ यथाख्यात चारित्र, यह पांच प्रकारका चारित्र है. इन पांचोंके धारक साधु नी जैनमतमें पांच प्रकारके हैं, इस कालमें प्रथम दो चारित्रके धारक साधु है, अरु तीन चारित्र व्यवछेद गये हैं, इन पांचोंका विस्तार पूर्वक देखनां होवे तदा देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी टीका, तथा न

गवती अरु पन्नवणासूत्रकी वृत्ति देख लेनी. यह सर्व मिल कर सत्तावन भेद आश्रवके रोकने वाले हैं. इति संवरतत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ निर्जरातत्त्व लिखते हैं. निर्जरा उसकों कहते हैं, जो बांधे हूये कर्मोंकों खेरु करे, जिस करकें निर्जरा होती है. तिसका नाम तप है. सो तप बारह प्रकारका हैं, उसका स्वरूप गुरुतत्त्वमें संक्षेप करकें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां. अरु जे कर विस्तार देखनां होवे, तदा नव तत्त्वप्रकरणवृत्ति तथा श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर शास्त्र, तथा श्रीरत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप, तथा भगवतीसूत्र, अरु उववाई शास्त्र देख लेनां ॥ इति निर्जरातत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ बंधतत्त्व लिखते है, बंध चार प्रकारका होता है. १ प्रकृतिबंध, २ स्थितिबंध, ३ अनुभागबंध, ४ प्रदेशबंध. बंध कहते है जीवके प्रदेश, अरु कर्मपुद्गल,ये दोनों दूध अरु पाणीकी तरें परस्पर मिल जावे.उनकों बंध कहते हैं. अथवा बंध नाम बंदीवानका है, जैसें बंधुआ कैदमें स्वतंत्र नहीं रहता, ऐसें आत्माभी ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके वश हो जाता है, स्वतंत्र नहीं रहता है, इस कर्मके बंधमें ७ विकल्प है, सो कहते हैं.

१ कोइक वादी कहता हैं, कि निर्मलजीव पुण्य पापके बंध रहित था. पीछेसें पुण्य पापका बंध हूआ है, यह प्रथम विकल्प. यह विकल्पमिथ्या है, क्योंकि निर्मल जीव कर्मका बंध नहीं कर सक्ता है. अरु कर्मके विना संसारमें उत्पन्नभी नहीं हो सक्ता है, जे कर निर्मल जीव कर्मका बंध करे, तब तो मोक्षस्थ जीवभी कर्मका बंध कर लेवेगा. जब मोक्षस्थ जीवकों कर्मबंध हूआ.तब मोक्षका अभाव हो जावेगा, जब मोक्ष नहीं. तब तो मोक्षोपायके शास्त्र अरु शास्त्रोंके बनाने वाले मिथ्यावादी हो जावेंगे, तब तो नास्तिकमती बन जायंगे,अरु निर्मल आत्मा संसारमें शरीरके अभावसें कर्मभी काहेसें करेगा ? इस वास्ते यह प्रथमविकल्प मिथ्या है.

२ दूसरा विकल्प कर्म पहेले थे,अरु जीव पीछेसें बना है, यहभी मिथ्या है, क्योंकि जीवोंके बिना वो कर्म किसनें करे थे, कारणकि कर्त्ताके बिना कर्म हो नहीं सके हैं, अरु प्रथम कर्मोंका फल इस जीवकों नहीं होवेगा, क्योंकि वो कर्म जीवके करे हूए नहीं हैं, जे कर कर्मके करे विनाभी कर्मका फल होवे, तब तो अतिप्रसंग दूषण होवेगा, अरु बिना कर्मके क

रें ईश्वरजी कर्मफल जोगने वास्ते नरककुंममें जा गिरेगा, अरु जीव पी छेसें काहेसें बनेगा? जीवका उपादान कारण कोइ नहीं. जे कर कहोगे कि ईश्वर जीवका उपादान कारण है, तब तो कारणके समान कार्यजी होनां चाहियें. जैसा ईश्वर निर्मल, निःपाप, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, तैसाही जीव होवे, परंतु तैसा है नहीं. अरु जो ईश्वर जीवोंका उपादान कारण होवे, तब तो ईश्वरही जीव बन कर नाना क्लेश जन्म मरण गर्जावासादि दुःखोंका जोगने वाला हूआ, तब ईश्वरने यह अपने पगमें आप कुहाडा क्यों मारा? जो पूर्णानंद पद छोड कर संसारकी विटंबनामें फसा? फेर अपने आपकों निःपाप करने वास्ते वेदादि शास्त्र द्वारा केइ तरेंका तप जपादिक क्लेश करनां बताया? इस वास्ते यह सर्व कहनां महा मूर्खोंका है, इस वास्ते यह दूसरा विकल्पजी मिथ्या है.

३ तीसरा विकल्प.जीव और कर्म यह दोनों एक साथ उत्पन्न हूये,यहजी मिथ्या है. क्योंकि जो वस्तु समकालमें उत्पन्न होती है, सो आपसमें कारण कार्य रूप नहीं होती है. जब कर्म, जीवके करे सिद्ध न हूये, तब कर्मफलजी जीव नहीं जोगेगा. यह प्रत्यक्ष विरोध है, क्योंकि जीव तो कर्म जोक्ते दीखते हैं, अरु कर्म तथा जीवका उपादान कारण कोइ नहीं. इस वास्ते यह तिसरा विकल्पजी मिथ्या है.

४ चोथा विकल्प, जीव तो है परंतु जीवके कर्म नहीं यहजी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवके कर्म नहीं, तो जीव दुःख सुख क्यों जोक्ता है? कर्म के बिना संसारकी विचित्रता कदापि न होवेगी? इस वास्ते यह चौथा विकल्पजी मिथ्या है.

५ पांचमा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनोही नहीं, यहजी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवही नहीं, तब यह कौन कहता है, जो जीव अरु कर्म नहीं है, ऐसा कहने वाला जीव है? कि दूसरा कोइ है? इस वास्ते यह स्ववचनविरोध है, तो यह पांचमा विकल्पजी मिथ्या है. यह पांच विकल्प मिथ्यात्वरूप हैं, अरु सत्य विकल्प छठा है, सो यह है.

६ छठा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनों अनादि अपश्चानुपूर्वी है.

प्रश्नः—जब जीव अरु कर्म यह दोनों अनादि हैं, तब तो जीवकी त रें कर्मका नाश कदापि न होनां चाहियें?

उत्तरः-कर्म जो अनादि कहे हैं, सो प्रवाह अनादि हैं, इस वास्ते उसका क्षय हो जाता है.

प्रश्नः-यह जो तुम बंध कहते हो, सो निर्हेतुक है? अथवा सहेतुक है? जे कर कहोगे कि निर्हेतुक है, तब तो "नित्य सत्त्वं" होवेगा, वा "नित्य असत्त्वं" होवे गा, क्योंकि जिस वस्तुका हेतु नहीं, वो आकाशवत् नित्य सत्त्व होती है, अथवा खरशृंगवत् नित्य असत् होती है, निर्हेतुक होनेसें मोक्षका अभाव हो जावेगा. जे कर कहोगेकि सहेतुक है, तो हमकों कहो कि इस बंधके क्या हेतु है?

उत्तरपक्षः-इस बंधके मूल हेतु चार हैं, अरु उत्तर हेतु सत्तावन हैं. यहां प्रथम चार प्रकारका बंध कहते हैं, तिसमें प्रथम तो प्रकृतिबंध है, सो प्रकृति कौनसी है? अरु उसका बंध क्या है? तहां मूल प्रकृति आठ हैं. उसमें १ मत्यादि ज्ञानका जो आवरण आच्छादन, सो ज्ञानावरण, २ सामान्य बोध चक्षु आदिका जो आवरण सो दर्शनावरण. ३ सुख दुःख वेदीयें (जोगीयें) सो वेदनीय, ४ मोहे जीवकों विचित्रताकों प्राप्ति करे, सो मोह,५ सर्वथा जो कभी चला जावे "एति याति चेत्यायुः" जिसके उदयसें जीव जीता है सो आयु, ६ नमावे जो शुभाशुभ गत्यादि रूप करकें आत्माकों, सो नामकर्म, ७ गोत्र शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है "गां वाचां त्रायतइति गोत्रं" जिसके उदयसें जीव ऊंच नीच कुलका कहाता है, सो गोत्र, ८ अंतर कहियें विचाले लाभादिके जो हो जावे, एतावता दान लाभादिक जीवमें होतांकों न होने देवे, सो अंतराय, यह आठ स्वभावरूप कर्म जो जीवके साथ क्षीर नीरकी तरें मिथ्यात्वादि हेतुओंसें बंध जावे, तिसका नाम प्रकृतिबंध है. २ इनहीं आठ प्रकृतियोंकी स्थिति अर्थात् काल मर्यादा, जैसी कि यह प्रकृति इतना काल तक आत्माके साथ रहेगी, पीछेसें न रहेगी, जिस करकें ऐसी स्थिति होवे, सो स्थितिबंध. ३ इनही आठ प्रकृतियोंमें तीव्र, मंद, रसका जो करनां, सो अनुभागबंध, ४ कर्मप्रदेशका जो प्रमाण यथा इतने परमाणु इस प्रकृतिमें है, उन परमाणुओंका जो आत्माके साथ बंध सो प्रदेशबंध.

इसका बंध इस तरें चार प्रकारें है. सो भव्य जीवोंके सुबोधके वास्ते चार प्रकारके बंधमें लड्डुका दृष्टांत लिखते हैं, जैसें एक लड्डु है, तिसका

स्वनाव वात हरणेका वा पित्त हरणेका वा कफ हरणेका इत्यादि होता है, ऐसेंही प्रकृति स्वनाव कर्मोंका, किसी प्रकृतिका ज्ञानावरण करनेका स्वनाव, कीसी प्रकृतिका दर्शन आवरण करनेका स्वनाव होता है,सो प्रकृतिबंध, २ कोइ लड्डु एक दिन रहके बिगड जाता है,कोइ दो, तिन, चार, पांच, छ. सात, आठ, नव, दश, इग्यारह, बारह, तेरह, चौदह दिन, कोइ पक्ष, मासादि रहता है, पीछें बिगड जाता है. ऐसेंही कर्मस्थितिनी कोइ घडी, पहर, दिन, पक्ष, मास,यावत् सीत्तेर कोटाकोटी सागरोपम लग रह कर फल दे कर, चली जाती है, यह दूसरा स्थितिबंध. ३ जैसें लड्डुमें रस है किसीमें कडुवा, किसीमें कषायेला,किसीमें मीठा, ऐसेंही कर्मोंमें रस है किसीमें दुःख रूप, किसीमें सुख रूप, जो जो अवस्था जीवकी संसारमें होती है, सो सर्व कर्मके अनुनागसें होती है, यह तीसरा अनुनाग बंध. तथा ४ जैसें लड्डुका तोल, मान,कोइ तोला,कोइ छ टांकादि होता है, ऐसें ही कर्मप्रदेशोंकी गिणती किसी कर्ममें थोडी, किसीमें अधिक, होती है, यह चोथा प्रदेश बंध यह दृष्टांत कर्मग्रंथमें है.

अथ बंधके हेतु लिखते हैं. एक तो मिथ्यात्व सो तत्त्वार्थ श्रद्धान रहित होनां, दुसरा पापोसें निवर्त्त होनेके परिणाम रहित होनां, सो अविरतिपणां, तीसरा कष नाम संसारका है, तथा कर्मका है, तिसका जो आय नाम लान सो कषाय, क्रोध, मान, माया, लोन रूप. चौथा योग सो मन, बचन, कायाका व्यापार, यह चारों, बंधके मूलहेतु हैं.

अब उत्तर हेतु सत्तावन लिखते हैं. उसमें प्रथम तो मिथ्यात्व पांच प्रकारका हें. १ अनिग्रह मिथ्यात्व, २ अननिग्रह मिथ्यात्व, ३ अनिनिवेश मिथ्यात्व, ४ संशयमिथ्यात्व, ५ अनाजोग मिथ्यात्व.

१ प्रथम अनिग्रह मिथ्यात्व है, सो जो जीव ऐसा जानता है. कि जो कुछ मैनें समझा है, सो सत्य है. औरोंकी समझ ठीक नहीं है, सच्च झूठकी परीक्षा करनेका मननी नहीं है, सच्च झूठका विचारनी नहीं करता है, यह मिथ्यात्व दीक्षित शाक्यादि अन्यमत ममत्व धारीयोंकों होती है, वो अपने मनमें ऐसें जानते हें, कि जो मत, हमने अंगीकार कीया है, वो सत्य है, और मत सर्व झूठ हैं, ऐसें जिसके परिणाम होवे, सो अनिग्रह मिथ्यात्व.

२ दूसरा अनजिग्रह मिथ्यात्व, सो सर्व मतोंकों अछा माने, सर्वमतोंसें मोक्ष है, इस वास्ते किसीकों बुरा न कहनां, सर्वकों नमस्कार करनी, यह मिथ्यात्व, जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा, ऐसें जो गोपाल बालकादि तिनकों है, क्योंकि यह अमृत अरु विषकों एक सरिखे जानने वाले हैं.

३ तीसरा अजिनिवेश मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जान करकें जूठ बोले, प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको जूल गया, पीछे जब कोइ विद्वान् कहे कि तुम इस बातमें जूलते हो, तब जूठे मतका कदाग्रह ग्रहण करे, जात्यादि अजिमानसें कहनां न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कुयुक्तियों बना करकें अपने मनमाने मतकों सिद्ध करे, वादमें हार जावे, तोजी न माने, ऐसा जीव अतिपापी, अरु बहुल संसारी होता है. ऐसी मिथ्यात्व, प्रायः जो जैनी (जैनमतकों) विपरीत कथन करता है, उसमें होती है, जैसें गोष्टमाहिलादिक हूये हैं, इस बात्तीकों जाष्यकार श्रीअजयदेवसूरि नवांगीवृत्तिकारक नवतत्त्वप्रकरणकी जाष्यमें कहता है, "तथा च जाष्यकारः ॥ गोठामाहिलमाईणं, जं अजिनिविसि तु तयं ॥" आदि शब्दसें बोटिक शिवजूतिकों अजिनिवेशिक मिथ्यात्व जाननां.

४ चौथा संशय मिथ्यात्व, सो जिनोक्त तत्त्वमें शंका करणी, क्या यह जीव असंख्य प्रदेशी है? वा नहीं है? इस तरें सर्व पदार्थोंमें शंका करणी, तिससेंति जो उत्पन्न होवे, सो सांशयिक मिथ्यात्व. "तदाह जाष्यकृत् ॥ सांशयिकं मिथ्यात्वं तदज्ञेषया शंका संदेहोजिनोक्तत्वेष्विति ॥" संशय मिथ्यात्वके होनेके कारण श्रीजिनजद्रगणिक्षमाश्रमण ध्यानशतकमें लिखते हैं, कि एक तो जैनमत स्याद्वादरूप अनंतनयात्मक है, इस वास्ते समजनां कठिन है, तथा सप्तजंगीके सकलादेशी, विकलादेशी जंगोंका स्वरूप, अष्टपक्ष, सात सौ नय, चार निक्षेप, द्रव्य, क्षेत्र, काल, जाव, तथा १ उत्सर्ग, २ अपवाद, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ उत्सर्गोत्सर्ग, ६ अपवादापवाद, यह षड्जंगी तथा १ विधिवाद, २ चारित्रानुवाद, ३ विधिवाद, ४ यथास्थितवाद, इत्यादि अनंतनयापेक्षा जैनमतके शास्त्र कथन कीये हूये हैं; जब तांइ जिस अपेक्षा शास्त्रोंमें कथन है वो अपेक्षा न समजे, तब तांइ जैनशास्त्रका यथार्थ अर्थ समजनां कठिन है. इनके समजनेके वास्ते बडी निर्मल बुद्धि चाहियें. सो थोडे जीवोंकों है, तथा

शास्त्रके अर्थ बताने वाला गुरु पूरा चाहियें, सो नही है. इत्यादि निमित्तोंसें संशयमिथ्यात्व होता है.

५ पांचमा अनाजोग मिथ्यात्व. सो जिन जीवोंकों उपयोग नहीं कि धर्म, अधर्म, क्या वस्तु है? ऐसा जो विकलेंद्रियादि जीव, तिनकों अनाजोगमिथ्यात्व होता है. यह मिथ्यात्वके पांच जेद हैं. यह पांच मिथ्यात्वमें औरजी मिथ्यात्वके अनेक जेद है. सोजी इन पांचोंके अंतर्जूत हैं, सो जेद इस प्रकारसें हैं.

१ प्रथम प्ररूपणा मिथ्यात्व. सो जिनवाणी रूप जो सूत्र, निर्युक्ति, जाष्य, चूर्णी, टीका. इनसें विपरीत प्ररूपणा करे.

२ दूसरी प्रवर्त्तना मिथ्यात्व, सो जो काम, मिथ्यादृष्टि जीवों धर्म जान करकें करते हैं, उनकी देखा देखीसें उनकी करणी करें, ३ तीसरी परिणाम मिथ्यात्व, सो मनमें परिणाम विपरीत कदाग्रह रहे, शुद्ध शास्त्रार्थ माने नहीं.

४ चौथा प्रदेशमिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वके पुजल जो सत्तामें है, उनका नाम प्रदेश मिथ्यात्व है. इन चारों जेदोंकें अनेक जेद हैं, उसमेसूं कितनेक लिखते हैं.

१ धर्म जो वीतराग सर्वज्ञने कहा है, तिसको अधर्म माने, २ अरु जो हिंसा प्रवृत्ति प्रमुख आश्रवमयी अशुद्ध अधर्म हैं, उसकों धर्म माने, ३ जो सत्यमार्ग है, उसकों मिथ्यात्व कहे, ४ जो विपर्यायोंका मार्ग है, उसकों सत् मार्ग कहे, ५ जो साधु सत्तावीश गुणों करी बिराजमान है, उसकों असाधु कहे, ६ जो आरंज परिग्रह विषय कषाय करकें जरा हूआ है, अरु उपदेश ऐसा देता है, कि जिसके सुननेसें लोकोंकों कुवासना, लुच्चपणा, कुबुद्धि उत्पन्न होवे, ऐसा गुरु पत्थरकी नौका समान ऐसें जो अन्यलिंगी कुलिंगी तिनकों साधु कहे, ७ षट्कायोंके जीवोंकों अजीव माने, ८ काष्ठ, सोनां, जो अजीव है, उनकों जीव माने, ९ मूर्त्ति पदार्थोंकों अमूर्त्ति माने, १० अमूर्त्ति पदार्थोंकों मूर्त्ति माने, यह दश जेद मिथ्यात्वके हैं.

तथा दूसरे छे जेद मिथ्यात्वके हैं, सो कहते हैं. १ लौकिक देव, २ लौकिक गुरु, ३ लौकिक पर्व, ४ लोकोत्तर देव. ५ लोकोत्तर गुरु, ६ लोको त्तर पर्व.

१ प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व जो है, सो जो देव, राग द्वेष करकें जरा हूआ है, एक उपर महेरबान होता है, एकका विनाश करता है, स्त्री

के नोगविलासमें मग्न है, अरु अनेक प्रकारके शस्त्र जिसके हाथमें हैं, अपनी ठकुराइमें अनिमानी है, हाथमें माला जपता है, सावध नोग पंचेंड्रियका वध चाहाता है, ऐसे देवकों जो पुरुष परमेश्वर माने, अथवा परमेश्वरका अंश अवतार माने, और पूजे, तिसके कहे हूये शास्त्रसें हिंसाकारी यज्ञादि करे, अनेक तरेंके पाप, धर्मके नामसें प्रवृत्त करे, इस लौकिक देवके अनेक नेद हैं. सो मिथ्यात्व सित्तरी प्रमुख ग्रंथोंसें जानने. यह प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व है.

२ दूसरा लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, सो जो अगरह पाप सेवे हैं, नव प्रकारका परिग्रह राखे, गृहस्थाश्रम सेवे, स्त्री, पुत्र, पुत्रीके परिवार वाला होवे, तथा कुलिंगी मनःकल्पित नवा नवा वेष बना कर स्वकपोलकल्पित चलावे, अरु आम्बरी होवे, बाह्य परिग्रह तो त्याग दीया है, परंतु अभ्यंतर ग्रंथि गेडी नहीं, गुरु नाम धरावे, मंमलीसें विचरे, जिसकी अनादि नूल मिटी नहीं, औ जिसकों शुद्ध साध्यकी पीगण नहीं, तिसकों गुरु माने, तिसका बहुमान करे, तिस्सें मोक्ष जाणी दान देवे, उसकों परम पात्र जाणे, सो लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व है.

३ तीसरा लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, सो १ अजापडवा, २ प्रेतदूज, ३ गुरुतीज, ४ गणेशचौथ, ५ नागपंचमी, ६ फीलणाठठ, ७ सीयलसातम, ८ बुद्धाष्टमी, ९ नोलीनवमी, १० विजयदशमी, ११ व्रतएकादशी, १२ वत्सद्वादशी, १३ धनतेरस, १४ अनंतचौदश, १५ अमावास्या, १६ सोमवतीअमावास्या, १७ रक्षाबंध, १८ होली, १९ आहोइ, २० दसहरा, २१ सोमप्रदोष, २२ लोडी, २३ आदित्यवार, २४ उत्तरायण, २५ संक्रांति, २६ ग्रहण, २७ नवरात्र, २८ श्राद्ध. २९ पीपलकों पाणी देनां, ३० गधेकों माताका घोडा मानके पूजणां, ३१ गोत्राटी, ३२ अन्नकूट, ३३ अनेक समशान, कबरोंका मेला. इत्यादि यह लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व है.

४ चौथा लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, सो देव श्रीअरिहंत, धर्मका आकर, विश्वोपकार सागर, परमपूज्य, परमेश्वर, सकल दोष रहित, शुद्ध, निरंजन, तिनकी स्थापनारूप जो प्रतिमा, तिसके आगें इस लोकके पौजलिक सुखकी आशासें मनमें कल्पना करे, जे कर मेरा यह काम हो जावेगा, तो में बडी नारी पूजा करुंगा, बत्र चढाउंगा, दीपमालाकी रोशनी करुंगा, रात जा

ग्रना करुंगा, ऐसें नावोंसें वीतरागकों माने, इस वास्ते यह मिथ्यात्व है, जो पुरुष चिंतामणिका दातासेंती काचका टुकडा मागे, वो युक्त नहीं. जिसकों अपणे कर्मोदयका स्वरूप मालुम नहीं, वोही जीव ऐसा होता है, यह लोकोत्तरदेवगत मिथ्यात्व है.

५ पांचमा लोकोत्तरगुरुगत मिथ्यात्व, सो जो साधुका वेष रखे, अरु आप निर्गुणी होवे, जिनवाणीका उच्छापक होवे, अपणे मनःकल्पितका उपदेश देवे, सूत्रका सच्चा अर्थ तोडे, ऐसा लिंगी उत्सूत्रका प्ररूपक तिसकों गुरु जान कर मान, सन्मान करे. तथा जो साधु गुणी, तपस्वी, आचारी बहुक्रियावंत, तिसकी इस लोक इच्छा करकें सेवा करे, बहुमान करे, मनमें ऐसें जाणे कि इनकी बहुत सेवा करुंगा, तब इनकी मेहरबानगीसें धन, ऋद्धि. स्त्री, पुत्रादि मुझकों मिलेंगे, यह लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है.

६ छठा लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व, सो प्रभुके पांच कल्याणिककी तिथि तथा दूसरे पर्वके दिन, तिन दिनोमें धनादिके वास्ते जप, तप, धर्मकरणी करे, सो लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व है. इत्यादि मिथ्यात्वके अनेक विकल्प हैं, परंतु वो सब पूर्वोक्त अनिग्रहादि मिथ्यात्वमेंही अंतर्भूत हैं. यह पांच प्रकारका मिथ्यात्व कह्या, यह प्रथमबंध हेतु कह्या.

अब बारह प्रकारकी अविरति कहते हैं. पांच इंद्रिय, छठा मन, अरु छे काय, यह बारह प्रकार हैं. तिसका स्वरूप इस तरेसें है, पांच इंद्रियोंकों अपणे अपणे विषयमें प्रवृत्तावे, सो पांच अव्रत, अरु छठा किसी पापकी वस्तुसें मनका निरोध न करनां सो अव्रत है, तथा षड्विध जीवनिकायकी हिंसामें प्रवृत्त होवे,यह बारह प्रकारें अविरति है,यह दूसरा बंधहेतु कह्या.

तीसरा कषायबंध हेतु है, उनके सोलां कषाय, अरु नव नोकषाय, मिल कर पच्चीस नेद हैं. अनंतानुबंधि क्रोध, मान, माया, अरु लोन, ऐसेंही अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, तथा प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, अरु संज्वलन क्रोधादि चार, एवं सोलह कषाय, इनके सहचारी नव नोकषाय हैं, उसका नाम कहते हैं. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ नय, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ९ नपुंसकवेद. इन सर्वका व्याख्यान पीछे लिख आये हैं, इनसें कर्मका बंध होता है, यही संसार स्थितिका मूल कारण है. यह तीसरा बंध हेतु कह्या.

चौथा योगनामा बंधहेतु हैं. सो योग, मन, बचन, अरु काया, यह तीन प्रकारका है. इन तीनोंके पंदरा भेद हैं. तहां प्रथम मनोयोग चार प्रकारका है, और बचन योग चार प्रकारका है, अरु काययोग सात प्रकारका है, ये सब मिलकर पंदरा भेद हैं.

मन नाम अंतःकरणका है, सो चार प्रकारें है. १ सत्यमनोयोग, २ असत्यमनोयोग, ३ मिश्रमनोयोग, ४ व्यवहारमनोयोग. मन क्या वस्तु है? कायाके व्यापारसें पुद्गल ग्रहणा करकें उन पुद्गलोंकों जब मनोयोग करकें काढता है, तिसका नाम द्रव्यमन कहते हैं, अरु उन पुद्गलोंके संयोगसें जो ज्ञान उत्पन्न होता है. तिसका नाम भावमन है. उस ज्ञान करकें जो व्यवहार सिद्ध होता है, तिस व्यवहार करकें मनभी सत्यादि व्यपदेशकों प्राप्त होता है, अरु उपचार करकें द्रव्यमनभी ज्ञायक है, मनमें जो सत्य व्यवहारका धारण करता, सो सत्यमन, सो व्यवहार यह है कि पापसें निवृत्तनां बचनके उच्चारण बिना भी चिंतवन करनां कि मुनि है. जीवादि पदार्थ सत् हैं, इत्यादि मन शब्द करकें इहां मनोयोग नोइंद्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसें उत्पन्न हुआ जो मनोज्ञान. उस करकें परिणत आत्माकों बलाधान करने वाला मनोवर्गणाके संबंधसें उत्पन्न हूआ वीर्यविशेष. सो इहां मन जाननां. इसी मनके चार भेद हैं. ऐसेंही बचनयोग. सो बचनकी वर्गणा अर्थात् परमाणुका समूह, उस बचन वर्गणा करकें उत्पन्न भइ सामर्थ्यविशेष, आत्माकी परिणति, सो बचनयोग जाननां.

मनके चार भेदमेंसूं सत्यमनोयोगका स्वरूप उपर लिख आये हैं, सो प्रथम भेद. अरु दूसरा मृषामन, सो धर्म नहीं, पाप नहीं, नरक, स्वर्ग, कुछ नहीं. इत्यादिक जो बचन निरपेक्ष चिंतवना करनी, सो जाननां. तीसरा मिश्रमन, सो सच्च, अरु जूठ, इन दोनोंका चिंतन, जैसें गोवर्गकों देख कर मनमें चिंतन करनां कि यह सर्व गौवां हैं, यह मिश्र इस वास्ते है कि उस गोवर्गमें बलदभी है, इत्यादि मिश्रबचन. चोथा "हे ग्रामं गच्छ" इत्यादि चिंतन करनां, सो व्यवहारमन, इसी तरें जब बचन योगसें पूर्वोक्त चारोंका उच्चारण करे, तब बचन योगभी चार प्रकारका जान लेनां. यह चार मनके अरु चार बचनके एवं आठ भेद हूवे.

अब सत्यबचन दश प्रकारका है, १ जनपद सत्य, सो जिस देशमें जि

स वस्तुका जो नाम बोलते हैं, उस देशमें वो नाम सत्य है, जैसें कोंकण देशमें पाणीकों पिच्च कहते हैं, कोइ देशमें बडा पुरुषकों बेटा कहते हैं, वा बेटेको काका कहते हैं, किसी देशमें पिताकों नाइ, सासुकों आइ,इत्यादि कहते हैं, सो जनपदसत्य. २ दूसरा सम्मतसत्य, सो जैसें पंकसें उत्पन्न हूआ मैंमक, सिवाल, कमल, तोनी पंकज शब्द करकें कमलही पूर्व विद्यानोने सम्मत कीया है, परंतु मैंमक, सिवाल नहीं. ३ तीसरा स्थापनासत्य, सो जिसीकी प्रतिमा होवे, तिसकों उसके नामसें कहनां, जैसें महावीर, पार्श्वनाथ जी अर्हंतकी प्रतिमा होवे, उस प्रतिमाकों महावीर, पार्श्वनाथ कहे, तो सत्य है, परंतु उसकों पत्थर कहे, सो मृषावादी है. जैसें स्याही और कागज का नाम, स्थापना करनेसें ऋग्, यजु, साम, अथर्व, कहे जाते हैं, आचारांगादि अंग कहे जाते हैं, तथा काष्ठके आकार विशेषकों किवाड कहे जाते हैं, ईट, पत्थर, चूनेकों स्थंन कहनां, पुस्तकमें त्रिकोणादि चित्र लिखकें उसकों आर्यावर्त्त, नारतवर्ष, जंबूद्वीपादि कहनां. तथा ककार, खकार, स्याहीकी स्थापनाकों कहनां. इस स्थापनासें पुरुषको कछुक सिद्धि जरुर होती है, नहीं तो नाना प्रकारकी स्थापना, पुरुष, किस वास्ते करते हैं? इस वास्ते श्रीमहावीर तथा श्रीपार्श्वनाथजीकी स्थापनारूप प्रतिमाकों श्री महावीर पार्श्वनाथजी कहनां, यह स्थापना सत्य है. इसमें इतना विशेष है. कि जो देव शुद्ध है, उसकी स्थापनानी शुद्ध है, अरु जो देव शुद्ध नहीं, उसकी स्थापनानी शुद्ध नहीं, परंतु उस स्थापनाकों उनका देव कहनां, यह बात सत्य है. ४ चौथा नामसत्य, सो किसीने अपने पुत्रका नाम कुलवर्द्धन रक्खा है, अरु जिस दिनसें वो पुत्र जन्मा है, उस दिनसें उस कुलका नाश होता चला जाता है, तोनी उस पुत्रकों कुलवर्द्धन नामसें पुकारे, तो सत्य है. ५ पांचमा रूपसत्य, सो चाहे गुणोसें च्रष्टनी है, तोनी साधुके वेषवालेकों साधु कहे, तो सत्य है, ६ छठा प्रतीतसत्य, अर्थात् अपेक्षासत्य, सो जैसें मध्यमाकी अपेक्षा अनामिकाकों छोटी कहनां. ७ सातमा व्यवहारसत्य, सो जैसें पर्वत जलता है, रसता चलता है. ८ आठमा नावसत्य, सो जैसें तोतेमें पांच रंग हैं, तोनी तोता हरे रंगका कहनां. ए नवमा योगसत्य, सो जैसें दंमके योगसें दंमी कहनां. १० दशमा उपमासत्य, सो जैसें मुख, चंद्रवत् कहनां. यह दश प्रकारका सत्य है.

अब दश प्रकारके झूठ कहते हैं. १ क्रोधनिश्रित सो क्रोधके वश हो कर जो बचन बोले, सो असत्य, २ ऐसेंही मानके उदयसें बोले, सो असत्य, ३ ऐसें मायाके उदयसें बोले, सो असत्य, ४ लोभके, ५ रागके, ६ द्वेषके उदयसें बोले. सो असत्य, ७ हास्यके वश बोले, ८ भयके वश बोले, ९ विकथा करे, सो असत्य. १० जिस बोलनेमें जीवकी हिंसा होवे, सो असत्य. यह दश प्रकारका असत्य बचन है.

अब दश प्रकारका मिश्रबचन कहते हैं. १ उत्पन्न मिश्रित. सो विना खबर कह देनां कि इस नगरमें आज दश बालक जन्मे हैं. इत्यादि. २ विगत मिश्रित, सो जैसें विना खबरके कहनां कि इस नगरमें आज दश मनुष्य मरे हैं. ३ उत्पन्नविगतमिश्रित, सो जैसें विना खबरके कहनां कि इस नगरमें आज दश जन्मे हैं, अरु दशही मरे हैं. ४ जीवमिश्रित, सो जीवाजीवकी राशिकों कहनां कि यह जीव है. ५ अजीवमिश्रित, सो अन्नकी राशिको कहनां कि यह अजीव है. ६ जीवाजीवमिश्रित, सो जीवाजीव दोनोंकी मिश्रभाषा बोले. ७ अनंतमिश्रित, सो मूली आदिकोंके अवयवोंमें किसी जगे अनंत जीव हैं. किसी जगे प्रत्येक जीव हैं. उनकों प्रत्येक काय कहे. ८ प्रत्येकमिश्रित. सो प्रत्येक जीवोंकों अनंतकाय कहे. ९ अद्धामिश्रित,सो दो घडीके तडकेमें कहे कि दिन उग्या है. १० अद्धाद्धामिश्रित. सो घडी एक रात्रि गया,दिनका उदय कहे. यह दश प्रकारका मिश्रबचन है.

अब व्यवहार बचनके बारह भेद कहते हैं. १ आमंत्रण करनां,कि हे भगवन्! २ आज्ञापना, सो यह काम कर, तथा यह वस्तु लाव. ३ याचना, सो यह वस्तु हमकों दीजीयें.४ पृछना, सो अमुक गामका मार्ग कोन सा है? ५ प्रज्ञापना, सो धर्म ऐसें होता है. ६ प्रत्याख्यानी.सो यह काम हम नहीं करेंगे. ७ इछानुलोम. सो यथासुखं. ८ अनभिगृहीता,सो मुझकों खबर नहीं. ९ अभिगृहीता. सो मुझे खबर है. १० संशय, सो क्यों कर खबर नहीं है? ११ प्रगट अर्थ कहे. १२ अप्रगट अर्थ कहे. यह बारह प्रकारका व्यवहारबचन है.

औ कायायोगके सात भेद हैं. प्रथम कायायोग उसकों कहते हैं, कि आत्माके निवासभूत पुद्गलद्रव्य घटित बूढेकों दुर्बलकों अवष्टंभभूत जैसें लाठी आदि है, तिसकी तरें विषम कामनें जिसके योगसें

जीवके वीर्यका परिणाम सामर्थ्य, सो काययोग है, जैसें अग्निके संयोग सें घटकी रक्तता होती है, तैसेंही आत्माकों कायके करण संबंधसें वीर्य परिणाम है, इस काययोगके सात भेद हैं. १ औदारिककाययोग, २ औदारिकमिश्रकाययोग, ३ वैक्रियकाययोग, ४ वैक्रियमिश्रकाययोग, ५ आहारककाययोग, ६ आहारकमिश्रकाययोग, ७ कार्मणकाययोग. इसमेंसें प्रथमके दो काययोग तो मनुष्य, अरु तिर्यंचमें होते हैं, अगले दो स्वर्गवासी देवताओमें होते हैं, अरु अगले दो चौदह पूर्वधारी साधुमें होते हैं, अरु जीव जब काल करकें परभवमें जाता है, तब रस्तेमें कार्मण शरीर होता है, तथा समुद्घात अवस्थामें केवलीमें होता है, अरु जो तैजस शरीर, आहार पाचन करनेमें समर्थ युक्त है, सो कार्मण योगके अंतर्भूत होनेसें पृथग् ग्रहण नहीं कीया है. यह सप्तविध काययोग हैं. यह सब मिल कर बंधतत्त्वके उत्तर भेद सत्तावन्न हूये हैं ॥ इति बंधतत्त्वं संपूर्णं.

अथ मोक्षतत्त्व लिखते हैं. तहां प्रथम मोक्ष किसकों कहते हैं ?॥ यदुक्तं ॥ जीवस्य कृत्स्नकर्मक्षयेण यत्स्वरूपावस्थानं तन्मोक्ष उच्यते ॥ भावार्थः– जीवके संपूर्ण ज्ञानावरणादि कर्मोंके क्षय होने करकें जो स्वरूपमें रहनां है, सो मोक्ष कहते हैं. वो जो मोक्ष है, सो जीवका धर्म है. अरु धर्म धर्मीका कथंचित् अभेद होनेसें धर्मी जो सिद्ध, तिनकी जो प्ररूपणा, सो भी मोक्ष प्ररूपणा है, क्योंकि मोक्ष जो है, सो जीवपर्याय है, सो जीव पर्याय कथंचित् सिद्ध जीवमें अभिन्न है, सर्वथा जीवकी पर्याय जीवसें भिन्न नहीं हो सक्ती है ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः ॥ क्व कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन वेति ॥ १ ॥ भावार्थः– द्रव्य पर्यायों करकें रहित अरु पर्यायों द्रव्य वर्जित अर्थात् रहित, किसी जगे, किसी अवसरमें, किसी प्रमाणसें, किसीने कोइ रूप देखा है ?

अब सिद्धोंका स्वरूप नव द्वारोंसें सूत्रकार अरु भाष्यकार कहते हैं. १ सत्पद प्ररूपणा, २ द्रव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अंतर, ७ भाग, ८ भाव, ९ अल्पबहुत्व. इन नवे द्वारों करकें सिद्धोंका स्वरूप लिखते हैं. १ प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार, सो जो सत्ता विद्यमानता, तिसका कहने वाला पद, सो सत्पद सिद्ध है, वा नहीं सिद्ध है ? सो गति आदि चौद पदोमें कहनां. यथा "पंचविधा" १ पांच प्रकार गति है,

१ नरकगति, २ तिर्यग्गति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति, ५ सिद्धगति. तहां सिद्धगति वर्जके शेष चार गतिमें सिद्ध नहीं. यद्यपि १ कर्मसिद्ध, २ शिल्पसिद्ध, ३ विद्यासिद्ध, ४ मंत्रसिद्ध, ५ योगसिद्ध, ६ आगमसिद्ध, ७ अर्थसिद्ध, ८ यात्रासिद्ध, ९ अभिप्रायसिद्ध, १० तपःसिद्ध, ११ कर्मक्षयसिद्ध. ऐसें अनेक तरेंके सिद्ध आवश्यककी निर्युक्तिकारने कहे हैं. तोभी इहां जो कर्मक्षय करकें सिद्ध हूआ है, तिसका अधिकार है, उनहींकों मोक्षपर्याय है, औरोंकों नहीं. २ इंद्रिय स्पर्शनादि पांच है, एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पांच इंद्रिय. इन पांचों प्रकारोमें सिद्ध पणां नहीं, क्योंकि सर्वथा शरीरके परित्यागनेसें सिद्ध होता है, जहां शरीर नहीं, तहां इंद्रियभी कोइ नहीं. इसी वास्ते सिद्ध अतींद्रिय हैं. ३-१ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजःकाय, ४ पवनकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ त्रसकाय. इन छही कायोंके जीवोंमें सिद्धपणां नहीं. क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो अकाय (काय रहित हैं) ४ काय, बचन, अरु मन भेद करकें योग तीन है. उसमें केवल काययोग वाले एकेंद्रिय जीव हैं, अरु काय बचन योग वाले द्वींद्रियादि असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्यंत जीव हैं, अरु काय, बचन, मन योग वाले संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त जीव हैं, इन तीनों योगोमें सिद्धपणेकी सत्ता नहीं, क्योंकि सिद्ध अयोगी हैं, अरु अयोगी पणां तो काय बचन अरु मनके अभावसें होता है. ५ स्त्री, पुरुष, नपुंसक, इन तीनों वेदोमें सिद्ध पदकी सत्ताका अभाव है, क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो पूर्वोक्त हेतुसें अवेदी हैं. ६ क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायोंमें सिद्ध पणां नहीं है, क्योंकि सिद्ध अकषायी हैं, सो अकषायिपणा कर्मके अभावसें होता है, ७ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, केवल ज्ञान. यह पांच प्रकारका ज्ञान है. अरु मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान, यह तीन अज्ञान हैं. उसमें आदिके चारों ज्ञानोमें अरु तीनों अज्ञानोमें सिद्धपणा नहीं है, एक केवलज्ञानमें सिद्धपणा हैं, सो केवलज्ञान, इहां सिद्धावस्थाका जाननां, परंतु सयोगी अवस्थाका नहीं. ८ सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय, अरु यथाख्यात. यह पांच चारित्र, तथा इनके विपक्षी देश संयम, अरु असंयम. तहां पांचविध चारित्रमें तथा दोनो विपक्षोमें सिद्धपणा मोक्षप

णा नहीं, क्योंकि यह सर्व शरीरादिकके हूयें होते हैं, सो शरीरादिक सि द्धोंकों है नहीं. ए चक्षु, अचक्षु, अवधि, अरु केवल, इन चारों दर्शनमें सूं आदिके तीनो दर्शनमें सिद्धपणां नहीं, परंतु केवलदर्शनमें केवल ज्ञा नवत् जान लेनां. १० कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, अरु शुक्ल, यह छै प्रकारकी लेश्यायोमें सिद्धपणां नहीं. क्योंकि लेश्या जो है, सो जव स्थ जीवकी पर्याय है, सिद्ध तो अलेशी हैं. ११ जव्य, अजव्य, इन दो नोमें सिद्धपणां नहीं, क्योंकि जव्यजीव उसकों कहते हैं, कि जिसकों सि द्धपदकी प्राप्ति होवेगी. अरु सिद्धोनें तो नवीन कोइ सिद्ध पदवी पाव णी नहीं है, इस वास्ते जव्य पणा सिद्धोमें नहीं. अरु अजव्यजीव उस कों कहते हैं, कि जिसमें सिद्ध होनेकी योग्यता किसी कालमेंजी न होवे, असा सिद्धका जीव नहीं है, क्योंकि उसमें अतीतकालमें सिद्ध होनेकी योग्यता थी, इस वास्ते सिद्ध अजव्यजी नहीं. सिद्ध जो है, सो नोजव्य नोअजव्य है, यह आप्त वचनजी है. १२ क्षायिक, क्षायोपशम, उपशम, सास्वादन, अरु वेदक. यह सम्यक्त्व पांच प्रकारका है. इनका विपक्षी ए क मिथ्यात्व, दूसरा सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सो मिश्र है. तिनमेंसूं क्षायिक व र्जित चार सम्यक्त्व अरु मिथ्यात्व, तथा मिश्र, इनमें सिद्धपद नहीं, क्यों कि यह सर्व क्षायोपशमिकादि जाव वर्त्ती हैं, अरु क्षायिक सम्यक्त्वमें सि द्ध पद है, क्षायिक सम्यक्त्वजी दो तरेंकी है. एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध, तहां शुद्ध अपाय, सत् इव्य रहित जवस्थ केवलीयोंके है, अरु सिद्धोंके शुद्ध जीव स्वजावरूप सम्यक् दृष्टि है, सादि अपर्यवसान है, अरु अशु द्ध अपाय सहचारिणी श्रेणिकादिकोंकी तरें सम्यक् दृष्टि होनां, यह क्षा यिक सादि सपर्यवसाना है. तहां अशुद्ध क्षायिकमें सिद्ध पद नहीं. क्यों कि उसके अपाय सहचारी हैं, अरु शुद्ध क्षायिकमें तो सिद्ध सत्ताका वि रोध नहीं, क्योंकि सिद्ध अवस्थामें शुद्ध क्षायिक जाती नहीं रहती है. अपाय, मतिज्ञानांशका नाम है. अरु सत् इव्य शुद्ध सम्यक्त्वके दलियों का नाम है, इन दोनोका अजाव होनेसें क्षायिक सम्यक्त्व होता है. १३ संज्ञा यद्यपि तीन प्रकारकी है. १ हेतुवादोपदेशिनी, २ दृष्टिवादोपदेशि नी, ३ दीर्घकालिकी. तोजी दीर्घकालिकी संज्ञा करकें जो संज्ञी है, सोही व्यवहारमें प्रायः ग्रहण कीये जाते हैं, संज्ञा होवे जिनके सो संज्ञी.

जैसेंकि यह करा है, यह करुंगा, यह मैं कर रहा हों, ऐसा जो त्रिकाल विषय मनोविज्ञानवाले जीव हैं, तिनकों संज्ञी कहते हैं. इनसें जो विपरीत होवे, सो असंज्ञी जानने. यह संज्ञी तथा असंज्ञी, इन दोनोंहीमें सिद्ध पद नहीं. क्योंकि सिद्ध तो नोसंज्ञी नोअसंज्ञी हैं, १४ ओज आहार, लोम आहार, प्रक्षेप आहार, ये आहार, तीन प्रकारका है. इन तिनों आहारोमें सिद्ध नहीं. यह प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार कहा.

दूसरा द्रव्य प्रमाण द्वार लिखते हैं. गिणती करियें तो सिद्धोंके जीव अनंत हैं. तीसरा क्षेत्रद्वार, सो आकाशके एक देशमें सर्व सिद्ध रहते हैं, वो आकाशका देश कितना बडा है? सो कहते हैं, कि धर्मास्तिकायादिक पांच द्रव्य, जहां तक हैं, तहां तक लोक है, ऐसा जो लोक संबंधि आकाश, तिसके असंख्यमे भागमें सिद्ध रहेते हैं. चौथा स्पर्शनाद्वार, सो जितने आकाशमें सिद्ध रहते हैं, स्पर्शना उसमें किंचित् अधिक है. पांचमा कालद्वार, सो एक सिद्धके आश्री सादि अनंतकाल है, अरु सर्व सिद्धाश्रित अनादि अनंतकाल जानना. छठा अंतरद्वार, सो सिद्धोंके विचाले अंतर नहीं, सर्व सिद्ध मिलकें एकही रूपवत् रहने हैं. सातमा भाग द्वार, सो सिद्ध जे हैं ते सर्व जीवोंके अनंतमे भागमें हैं. आठमा भाव द्वार, सो सिद्धोंकों क्षायिक पारिणामिक भाव है, शेष भाव नहीं. नवमा अल्प बहुत्वद्वार, सो सर्वसें थोडे अनंतर सिद्ध हैं, अनंतर सिद्ध उनकों कहते हैं कि जिनकों सिद्ध हुआ, एक समय हुआ है, तिनसें परंपर सिद्ध अनंत गुणे हुए हैं, छै मास सिद्ध होनेमें उत्कृष्ट अंतर होता है. यह अल्प बहुत्व द्वार कहा. यह मोक्षतत्त्वका स्वरूप संक्षेपमात्र लिखा है, जे कर विशेष करकें सिद्धोंका स्वरूप देखनां होवे, तदा नंदीसूत्र, प्रज्ञापन्नसूत्र, सिद्धप्राभृतसूत्र, सिद्धपंचाशिका, देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी वृत्ति देख लेनी. तथा आगें चतुर्दश गुणस्थानमेंभी सिद्धोंका कतुक स्वरूप लिखेंगे ॥ इतिश्री तपगछीयमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आनंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे नवतत्त्व स्वरूपनिर्णयनामा पंचमः परिछेदः संपूर्णः ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठ परिछेद प्रारंभः ॥

यह षष्ठ परिछेदमें चौदह गुणस्थानका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते हैं. यह जैन मतमें भव्य जीवोंकों सिद्धिसौधके चढने वास्ते गुणोंकी जो श्रेणी है, सोही निसरणी है, तिस गुण निसरणीमें पगथरणरूप गुणोसें गुणांतरकी प्राप्तिरूप जो स्थान, अर्थात भूमिका है, सो चौदह हैं, तिनके नाम कहते हैं. १ मिथ्यात्व गुणस्थानक, २ सास्वादन गुणस्थानक, ३ मिश्र गुणस्थानक, ४ अविरतिसम्यक्दृष्टि गुणस्थानक, ५ देशविरति गुणस्थानक, ६ प्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ७ अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ८ अपूर्वकरण गुणस्थानक, ९ अनिवृत्तबादर गुणस्थानक, १० सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक, ११ उपशांतमोह गुणस्थानक, १२ क्षीणमोह गुणस्थानक, १३ सयोगीकेवली गुणस्थानक, १४ अयोगीकेवली गुणस्थानक. यह चौदह गुणस्थानक अर्थात् गुणरूप भूमिकाके नाम हैं.

तहां प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं, उसमेंभी प्रथम व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्यात्वका स्वरूप कहते हैं. जो स्पष्टचैतन्यसंज्ञी पंचेंद्रिय जीवोंकी अदेव, अगुरु औ अधर्म, इन तीनोंमें क्रम करकें देव, गुरु, औ धर्मकी बुद्धि होवे, सो व्यक्तमिथ्यात्व है. अरु उपलक्षणसें जीवादि नव पदार्थोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं.अरु जिनोक्त तत्त्वसें जो विपरीत प्ररूपणा करणी, तथा जिनोक्त तत्त्वमें संशय करणा, तथा जिनोक्त तत्त्वमें दूषणोंका आरोप करणा, इत्यादि. तथा आभिग्रहिकादि जो पांच मिथ्यात्व हैं, तिनमें एक अनाभोगिकमिथ्यात्व तो अव्यक्त मिथ्यात्व है, शेष चार भेद, व्यक्त मिथ्यात्वके हैं. तथा "अधम्मे धम्मसन्ना इत्यादि" दश प्रकारकी जो मिथ्यात्व है, सो सर्व व्यक्त मिथ्यात्व है. अरु अपर जो अनादि कालमें मोहनीय प्रकृतिरूप मिथ्यात्व सत् दर्शनरूप आत्माके गुणका आछादक जीवके साथ सदा अविनाभावि है, सो अव्यक्तमिथ्यात्व है.

अथ मिथ्यात्वकों गुण स्थानक किसी रीतीमें कहते हैं? सो लिखते हैं. अनादि अव्यक्त मिथ्यात्व अव्यवहार राशिवर्त्ती जीवमें सदा होती है, परंतु व्यक्त मिथ्यात्वकी जो बुद्धि है, तिस बुद्धिकी जो प्राप्ति है, सोइ मिथ्यात्व गुणस्थानक है.

प्रश्नः– मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व जीवोंके स्थान मिलते हैं, यह जैनशास्त्रका कथन है, तो फेर कैसें व्यक्त मिथ्यात्वकी बुद्धिकों गुणस्थान रूपता कहते हो ?

उत्तरः–सर्वभाव सर्व जीवोने पूर्वे अनंत वार पाया है, इस वचनके प्रमाणसें जो प्राप्तव्यक्त मिथ्यात्वबुद्धिवाले जीव, व्यवहार राशिवर्त्ती हैं, सोही प्रथम गुणस्थानवाले जीव कहे जाते हैं, नतु अव्यवहार राशि वर्त्ती जीव ? क्योंकि वो अव्यक्तमिथ्यात्व वाले हैं, इस वास्ते दोष नहीं.

अथ मिथ्यात्व रूप दूषणका स्वरूप कहते हैं. जैसें जीव मनुष्यादिक प्राणी मदिरेके उन्मादमें हित, वा अहित, यह कुछभी नष्टचैतन्य होनेसें नहीं जानता है, तैसेंही मिथ्यात्व करकें मोहित जीव धर्माधर्म सम्यक् नहीं जानता है ॥यदाह ॥श्लोक॥ मिथ्यात्वेनालीढचित्ता नितांतं, तत्त्वातत्त्वं जानते नैव जीवाः ॥ किं जात्यंधाः कुत्रचिद्वस्तुजाते, रम्यारम्यं व्यक्तमासादयेयुः ॥ १ ॥ इति॰। अथ मिथ्यात्वकी स्थिति कहते हैं, अभव्य जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व जो है, अरु सामान्य प्रकारें अव्यक्त मिथ्यात्व, इनकी अनादि अनंत स्थिति है, सोइ स्थिति भव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है, यह स्थिति सामान्यप्रकार करकें मिथ्यात्वको अपेक्षा दिखलाइ है, जे कर मिथ्यात्व गुणस्थानककी स्थिति बिचारियें, तदा भव्य जीवोंको अपेक्षा अनादि सांत है. तथा सादि सांतभी है, अरु अभव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है, जब मिथ्यात्व गुणस्थानकमें जीव वर्त्तता है. तब एक सौ वीश बंध प्रायोग्य कर्मप्रकृतियांमेंसूं १ तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति, २ आहारकशरीर, ३ आहारकोपांग, यह तीन प्रकृति नहीं बांधता है. शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, तथा एक सौ बावीश कर्म प्रकृति जो उदय प्रायोग्य है, तिनमेंसूं १ मिश्रमोहनीय, २ सम्यक्त्वमोहनीय, ३ आहारक, ४ आहारकोपांग, ५ तीर्थंकर नाम, यह पांच कर्मप्रकृति वर्जके शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका उदय है, अरु एक सौ अमतालीस कर्म प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

अथ दूसरा सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप कहते है. उसमें प्रथम तो यह गुणस्थानकका कारणभूत उपशम सम्यक्त्व है, तिसका स्वरूप कहते हैं, जीवमें अनादिकालसंभूत (उत्पन्न) मिथ्याकर्मकी उपशां

तिसें अनादिकाल उद्भव मिथ्याकर्मके उपशम होनेसें. ग्रंथिभेद करण कालसें पीछे औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह सामान्य स्वरूप है, अरु विशेषस्वरूप ऐसें है कि औपशमिक सम्यक्त्व दो प्रकारका है, एक तो अंतरकरणौपशमिक सम्यक्त्व, अरु दूसरा स्वश्रेणिगत. अर्थात् उपशमश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व है. तहां अपूर्व करण करकेंही करा है, ग्रंथिभेद जिसने, अरु मिथ्यात्व कर्म पुद्गल राशिके तीन पुंज करे हैं जिसने, सो तीन पुंज यह हैं. १ अशुद्ध, २ अर्द्धशुद्ध, ३ शुद्ध. इनमें अशुद्ध पुंज जो है, सो मिथ्यात्वमोहनीय है. अरु अर्द्ध शुद्ध जो है. सो मिश्रमोहनीय है. तथा शुद्धपुंज जो है. सो सम्यक्त्व मोहनीय है. इनका स्वरूप पीछे लिख आये हैं. यह तीन पुंज जिसने नहीं करे हैं, अरु उदय आया मिथ्यात्व क्षय कीया है. तथा जो मिथ्यात्व उदय नहीं आया. तिसकों उपशमाया है, अंतर करणमें अंतर्मुहूर्त्तकाल लगें सर्वथा मिथ्यात्वके अवेदककों, अंतर करणमें औपशमिक सम्यक्त्व होता है. यह एक भेद. तथा औपशम श्रेणिप्रतिपन्नकों मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके उपशम हूआ स्वश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व होता है,सो दूसरा भेद. ये दोनो प्रकारकी जो उपशम सम्यक्त्व है, सो सास्वादन उत्पत्तिमें मूल कारण है.

अथ सास्वादनस्वरूप लिखते हैं. औपशमिक सम्यक्त्ववाला जीव शांत हूये अनंतानुबंधी चारों कषायोमें एकभी क्रोधादिकके उदय हूयां थकां औपशमिकरूप गिरिशिखर तुल्यसें "परिच्युतो भ्रष्टो" अर्थात् गिरा सो जहां लगि मिथ्यात्वरूप भूतलकों नहीं प्राप्त हूआ, तहां लगि एक समयसें ले कर षट्आवलिकाप्रमाण सास्वादन गुणस्थानकवर्त्ती होता है.

प्रश्नः—व्यक्तबुद्धिप्राप्तिरूप प्रथम अरु मिश्रादि गुणस्थानोकों उत्तरोत्तर चढण रूपोंकों तो गुणस्थानपणा युक्त है. परंतु सम्यक्त्वसें पडने वाले सास्वादनकों गुणस्थानपणा कैसें संभवे?

उत्तरः—मिथ्यात्व गुणस्थानककी अपेक्षा सास्वादनभी ऊर्ध्व आरोहणरूप होनेसें गुणस्थान है, क्योंकि मिथ्यात्व गुण अभव्य जीवोंकोंभी होता है, अरु सास्वादन तो भव्य जीवोंहीकों हो सक्ता है, भव्य जीवोमेंभी जिसका अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार है. तिनहीकों होता है. इस वास्ते सास्वादनकोंभी मिथ्यात्व गुणस्थानसें आरोहरूप गुणस्था

नत्व हो सक्ता है. तथा सास्वादन गुणमें वर्त्तता हुआ जीव, १ मिथ्यात्व, ४ नरकत्रिक, ८ एकेंद्रियादि जाति चार, ९ आतपनाम, १० स्थावरनाम, ११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तनाम, १३ साधारणनाम, १४ हुंमकसंस्थान, १५ सेवार्त्तसंहनन, १६ नपुंसकवेद, यह सर्व सोलां प्रकृतिका बंध व्यवछेद करता है, शेष अेक सौ अेक प्रकृतिका बंध करता है, तथा ३ सूक्ष्म त्रिक, ४ आतप, ५ मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी. यह छे प्रकृतिका उदय व्यवछेद होनेसें १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थंकरनामकी सत्ता विना १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप ॥२॥

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. दर्शनमोहनीय प्रकृतिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसें जीवविषये जो समकाल समरूप करकें सम्यक्त्व मिथ्यात्वके मिलनेसें मिश्रितभाव अंतरमुहूर्त्त यावत् मिश्र गुणस्थान कहते हैं, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र मिलनेसें मिश्रभावमें वर्त्ते है. सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि मिश्रपणा जो है, सो दोनोंके मिलनेसें एक रूप जात्यंतर है. अथ दोनों भावों के एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टांत लिखते हैं. कि जैसें घोडी और गधा इन दोनोके संयोगसें जात्यंतर खच्चर उत्पन्न होता है, अथवा जैसें गुड और दहींके मिलनेसें जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है, तैसें ही जिस जीवकों सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोमें समबुद्धिसें एक सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर भेदात्मक होनेसें मिश्रगुणस्थानक होता है. जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब परभवका आयु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्त्तता हूआ जीव, मरताभी नहीं है, जातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टि गुणस्थानकमें आरोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकमें पीछा आ कर मरता है, परंतु मिश्रगुणस्थानमें वर्त्तमान नहीं मरता है. यह मिश्रकी तरें बारहवा क्षीणमोह, अरु तेरहवा सयोगी, इन दोनो गुणस्थानोमेंभी जीव नहीं मरता है, शेष इग्यारह गुणस्थानोमें काल कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति सम्यक्दृष्टि, यह तीन गुणस्थानक जीवके साथ परभवमें जाते है. शेष इग्यारह गुणस्थानक नहीं जाते हैं. तथा जिन जीवोने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोमें पू

वें आयु बांधा है. अरु पीछें उनकों मिश्रगुण स्थानक हूआ है,वो जब मरेगा, तब जीस गुणस्थानकमें आयु बांधा है, तिसी गुणस्थानमें जा कर मरता है, औ गतिभी उसकी उसी मरण वाले गुणस्थानकके अनुसारें होती है, तथा मिश्रगुणस्थानक वाला जीव, १ नरकगति, २ नरकायु, ३ नरकानुपूर्वी, ६ स्त्यानर्द्धित्रिक, ७ दुर्भग, ८ दुःस्वर, ९ अनादेय, १३ अनंतानुबंधी चार. १७ मध्यके चार संस्थान. २१ मध्यके चार संहनन, २२ नीचगोत्र, २३ उद्योतनाम, २४ अप्रशस्तविहायोगति, २५ स्त्रीवेद. यह पच्चीश प्रकृतिका बंधव्यवछेद करता है. तथा मनुष्यायु, देवायु, यह दोनो नहीं बांधता है, यह सत्तावीश प्रकृति बिना शेष चोहत्तर प्रकृतिका बंध करता है. ४ तथा अनंतानुबंधी चार, ५ स्थावरनाम, ६ एकेंद्रिय,९ विकलत्रिक, इनके उदयके व्यवछेद होनेमें अरु मनुष्यानुपूर्वी, तथा तिर्यगानुपूर्वी, इन दोनोके उदय न होनेसें एक सौ प्रकृतिका उदय वेदता है, अरु पूर्वोक्त १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति मिश्रगुणस्थानकं ॥३॥

अथ चौथा अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. तहां प्रथम सम्यक्त्व प्राप्तिका स्वरूप कहते हैं, कि भव्य संज्ञी पंचेंद्रिय जीवकों यथोक्ततत्त्व यथावत् सर्ववित् प्रणीत तत्त्वोंमें जीवादि पदार्थोंमें निसर्गसें अर्थात् पूर्वभव अभ्यासविशेष करकें उत्पन्न भइ अत्यंतनिर्मल गुणात्मक रूप स्वभाव,इन स्वभावसें अथवा गुरुके उपदेश श्रवण करणेसें रुचि भावना प्रगट उत्पन्न होती है, सो सम्यक्त्व, सम्यक्श्रद्धान लक्षण कहते हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु, सम्यक् श्रद्धानमुच्यते ॥ जायते तन्निसर्गेण, गुरोरधिगमेन वा ॥ १ ॥ अथ अविरति सम्यग्दृष्टिपणा जैसें होता है, तैसें कहते हैं. दूसरी कषाय अप्रत्याख्यान, जिसका नाम है, ऐसें जे क्रोध, मान, माया, लोभ, तिनके उदय करकें, वर्जित हुआ विरतिपणा इसी वास्ते केवल सम्यक्त्व मात्र जहां होवे, सो चौथे गुणस्थान वालोंकों अविरति सम्यग्दृष्टिनामक गुणस्थानक होता है. इसका तात्पर्य यह है,कि जैसें कोइ पुरुष, न्यायोपपन्न धन भोग विलास सौंदर्यैशालिकुलमें उत्पन्नभी हूआ है, परंतु दुरंत जूआ आदि व्यसन सेवन करने लगा, इत्यादि अनेक अन्याय करे है, सो अपराध करनेसें उसकों राजदंड मिला है, सो खंडित करा है जिनोने अभिमान, ऐसें जो दंड

पाशिक कोटवाल तिनों करकें विडंव्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हूआ अपणे कुलके सुंदर सुख संपदाकी अभिला षा करताभी है, परंतु कोटवालोंसें छूटके सुखका उल्लासभी नहीं ले स क्ता है, तैसेंही यह जीवभी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अभिलाषाभी करता है, परंतु कोटवाल समा न दूसरी कषायके पाशों छूटनेका उत्साहभी नहीं कर सक्ता है, ओ अ विरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुभव करता है.

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कछुक अधि क है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीयोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है, तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार रहता है, तब जीवकों आता है, दूसरोंकों नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर कर णेकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसें क्रोध उत्पन्न भी हो गया है, तोभी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, ति सका नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढने वास्ते सोपानसमान सम्य ग् ज्ञानादि साधनोमें उत्साह लक्षण मोक्षाभिलाष, तिसका नाम संवेग है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीखानेसें निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जानां है, तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त भावोंकी अस्तित्वका चिंतनां तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमें होवे, वो भ व्यजीव सम्यग् दर्शन करकें अलंकृत होता है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्त्ती जीवोंकी कौनसी गति है? सो क हते हैं. इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों करण कहते हैं, सो करण, तीन प्रकारका होता है, १ यथाप्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनि वृत्तिकरण. तहां पर्वतकी नदीके जल करकें आलोड्यमान पाषाणकी तरें घंचनां (घोलनां) न्याय करकें जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् ऊनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करता हूआ जिन अ ध्यवसाय विशेष करकें ग्रंथिदेश तक आता है, सो यथाप्रवृत्तिकरण क

हते हैं, २ तथा जिन अप्राप्त पूर्व अध्यवसाय विशेष करकें तिस ग्रंथिकों ग्रंथि घन निबिड राग द्वेष परिणतिरूपकों कहते हैं. तिस ग्रंथिके भेदनेका जो आरंभ, तिसकों अपूर्वकरण कहते हैं, ३ तथा जिन अध्यवसायविशेष करकें अनिवृत्त, ग्रंथिभेद करकें अति परम आनंद जनक सम्यक्त्व पाता है, तिसका नाम अनिवृत्ति करण है, यह तीनों करणका स्वरूप श्रीजिन भद्रगणिक्षमाश्रमण आचार्य, आवश्यककी शुद्धांभोनिधि गंधहस्ती महा भाष्यमें लिखते हैं. तीन पथिकके दृष्टांतसें तीनों करणका स्वरूप दिखाते हैं. जैसें तीन पथिक उजाडके रस्ते चले जाते थे, तहां चलते चलते वि काल वेला हो गइ, औ सूर्य अस्त हो गया, वे पंथी, मनमें बहुत डरने लगे, इतनेमें उस वखत तहां तत्काल दो चोर आ पहुंचे, तिन चोरोंकों देख कर तिनमेंसूं एक पथिक तो डरता हूआ पीछेकों दौड गया, अरु ए क पथिककों चोरोने पकड लीया, अरु एक पथिक तिन चोरोसें लड भिड मार पीट करकें अगले नगरमें पहुंच गया, यह तो दृष्टांत है. इसका दा ष्टांत असें है, कि उजाड जो है, सो मनुष्य भव है, तिसमें कर्मोंकी जो स्थिति है, सो दीर्घ रस्ता है, औ जो गांव है, सो भयका स्थानक है, अरु राग द्वेष यह दोनो चोर हैं अब जो पुरुष पीछेको दौडा है, तिसकी तो स्थिति संसारमें रहणेकी अधिक हो जाती है, अरु जो पुरुष, पकडा गया, वो गांवके पास जा कर खडा हो गया, सो रागद्वेष, चोरोनें पकड ली या, वोभी दुःखी है, अरु जिसने सम्यक्त्व पा लिया, सो गाममें पहुंच गया, तातें सुखी भया. यह दृष्टांत तीनो करणके साथ जोड लेनां.

अथ कीडीयोंके दृष्टांत करकें तीनों करणोंका स्वरूप लिखते हैं, जैसें कीडीयों बिलमेंसूं निकलके एक खूंटेके तले भ्रमण करती हैं, एकैके की डीयां उस खूंटेके उपरि चढती हैं, अरु कितनिक खूंटेके उपर चड कर पं ख लग जानेंमें उड गइ है. यह तीनों करणभी इसी तरें जान लेने. तब तो जीव यथाप्रवृत्ति करण करकें ग्रंथिदेशकों प्राप्त होता है, अरु अपूर्व क रण करकें ग्रंथिका भेद करता है, ग्रंथिभेद करकें कोइक जीव मिथ्यात्व के पुद्गल राशिको विभज्य (बांट) करकें १ मिथ्यात्व मोह, २ मिश्रमो ह, ३ सम्यक्त्व मोह रूप तीन पुंज करता है, जब अनिवृत्तिकरण कर कें विशुद्ध मानके उदय हूये अरु मिथ्यात्वके क्षय हूये ? उदय नहीं हूये

के उपशांत हूये, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकों प्राप्ति होता है. जब जीवों कों क्षायोपशमिक सम्यग् दर्शन उत्पन्न होता है, तब जीवोंके मनुष्यगति देवगतिकी संपत् होती है. तथा अपूर्व करण करकेंही कृत तीन पुंज वाले जीवकों चौथे गुणस्थानसेंही क्षपकपणेकों जब आरंभ करता है, तब अनंतानुबंधी चार, मिथ्यामोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोहरूप तीनों पुंजोंके क्षय हूये,क्षायिक सम्यक्त्व होता है, तब वो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जे कर अबद्धायु है, तब तो तिसी जवमें मोक्ष रूप होवेगा. अरु जे कर आयु बांध कर पीछें क्षायिकसम्यक्त्ववान् हूआ है, तब तो तीसरे जवमें मोक्ष होता है. अरु जे कर असंख्यात वर्ष जीवने वाले मनुष्य, तिर्यंचका आयु बांध कर पीछेसें क्षायिकसम्यक्त्व पावे. तब चौथे जवमें मोक्ष होता है.

अथ अविरति गुणस्थानकवर्त्ती जीवका कृत्य लिखते हैं. व्रत नियम तो उसके कोइजी नहीं होता है, परंतु देवमें अर्थात् जगवान् श्रीवीतराग में, अरु उक्तलक्षण गुरुमें, तथा श्रीसंघमें, क्रम करकें जक्ति, पूजा, नमस्कार, वात्सल्यादि कृत्य करता है. तथा प्रजावक श्रावक होनेमें शासनकी उन्नति,शासनकी प्रजावना करता है. तथा अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक वाला जीव, १ तीर्थंकर नामकर्म, २ मनुष्यायु, ३ देवायु. यह तीन प्रकृति तीसरे गुणस्थानसें अधिक बांधता है. इस वास्ते सत्तत्तर प्रकृतिका बंध करता है, तथा मिश्र मोहके व्यवछेद होनेसें अरु आनुपूर्वी चार, अरु सम्यक्त्वमोहके उदय होनेसें एक सौ चार कर्म प्रकृतिकों वेदता है. अरु क्षायिक सम्यक्त्व वालेकों १३८ प्रकृतिकी सत्ता होती है ,अरु उपशम सम्यक्त्व वालेकों चौथे गुणस्थानकमें ले कर इग्यारहमे गुणस्थानक पर्यंत १४८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है. अरु क्षायिकसम्यक्त्व वालेकों जिस जिस गुणस्थानमें जितनी जितनी कर्मप्रकृतिकी सत्ता है, सो आगें चल कर लिख देवेंगे ॥ इति अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप ॥ ४ ॥

अथ पंचम गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. जीवकों सम्यग् तत्त्वावबोध करकें उत्पन्न हूआ वैराग्य, तिस वैराग्यसें सर्वविरतिकी वांछा करता जी है, तोजी सर्वविरतिघातक प्रत्याख्यान नाम कषायके उदयसें सर्व विरति अंगीकार करणेकों सामर्थ्य नहीं, किंतु जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप

विरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुट्टि स्थूलहिंसादि
ाग. मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्ठि नमस्कारका स्मरण करणा॥य
द ॥श्लोक॥ आउट्टि थूल हिंसाइ, मद्य मंसाइचायउ ॥ जहन्नो सावउ होइ.
ो नमुक्कार धारउ ॥ १॥ तथा मध्यम देशविरति "अकुहादि न्याय सं
न्न विजव इत्यादि" धर्म योग्यता गुणों करि आकीर्ण गृहस्थ उचित षट्क
धर्ममें तत्पर, द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान्, ऐसा होवे, तो म
ध्यम श्रावक जाननां. तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित्त आहारका वर्जक,
तिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इच्छावा
ला होवे, गृहस्थका धंदा जिसने त्यागा है, ऐसा जो होवे, सो उत्कृष्ट
देशविरति. यह तीन प्रकारकी विरति जिसकों होवे, उसकों श्राद्ध, अर्थात्
श्रावक कहते हैं. देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है.

अथ देशविरति गुणस्थानकमें ध्यानका संभव कहते हैं. यह गुणस्थान
में १ अनिष्टयोगार्त्त, २ इष्टवियोगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त. यह चार
पाद रूप आर्त्तध्यान. तथा १ हिंसानंदरौद्र, २ मृषानंदरौद्र, ३ चौर्यानंद
रौद्र, ४ संरक्षणानंदरौद्र. यह चार पादवाला रौद्र ध्यान है वे देशविरतिके
आर्त्तध्यान मंद होता है, जैसें जैसें देशविरति अधिक अधिकतर होती
है, तैसें तैसें आर्त्त रौद्र ध्यान, मंद मंदतर होता जाता है,अरु धर्म ध्या
न तो जैसें जैसें देशविरति अधिक होती है, तैसें तैसें अधिक अधिक हो
ता है, मध्यमरूपही रहता है. परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं होता है. जे
कर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तब सर्व विरति हो जायगा, वो पांचमे
गुणस्थान संबंधी धर्मध्यान कैसा है? जिसमें षट् कर्म, एकादश प्रतिमा,
अरु श्रावक व्रत पालनेका संभव है.

उक्त षट् कर्मका नाम कहते हैं. १ तीर्थंकर अर्हत भगवंत वीतराग
सर्वज्ञकी प्रतिमा द्वारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय, ४ संय
म, ५ तप, ६ दान, यह षट्कर्म हैं ॥यदुक्तं॥ देवपूजा गुरूपास्तिः, स्वाध्यायः
संयमस्तपः ॥ दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

प्रतिमा जो है,सो अभिग्रहविशेषकों कहते हैं,सो नाममात्र यह है॥गाथा॥
दंसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अबंभ सचित्ते॥ आरंभ पेस उद्दिठ, वज्जए
समणभूए य ॥१॥ इनका विस्तार देखनां होवे, तदा पंचाशकनामा शास्त्रके

प्रतिमा पंचाशकमें देख लेनां. अरु श्रावकके व्रत बारह हैं, सो आगे कर लिखेंगे. यह षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, बारह व्रत. इनके जीवों ध्यम धर्म ध्यान होता है,तथा देशविरति गुणस्थानस्थ जीव, अप्रत्यग न चार कषाय, नरकगति, नरकायु, नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक संहनन तथा औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, यह औदारि है, यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका बंध. व्यवछेद होनेसें सतसठ प्रकृतिका बंध करता है. तथा अप्रत्याख्यान चार, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंच पूर्वी,नरकत्रिक,देवत्रिक,वैक्रियद्विक,दुर्भग,अनादेय.अयशःकीर्ति. यह सत्त कर्मप्रकृतिका उदय व्यवछेद करनेसें सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल नोक्ता अरु एक सौ अडत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति देशविरतिगुणस्थानं

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान है,तिनमेंसूं तेरहवा स्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति

अथ छठा प्रमत्तसंयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. सर्व वि. ति साधु, यह छठे प्रमत्त गुणस्थानकमें होता है, वो साधु कैसा है ? कि अहिंसादि पांच महाव्रतका धारक है, वो साधु किस करकें प्रमत्त होता है? कि प्रमादके होनेसें प्रमत्त होता है, सो प्रमाद पांच प्रकारका है॥

॥यदाह॥ गाथा॥ मज्जं विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमी भ णिया॥ ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसारे॥१॥ नावार्थः—मद्य. विषय, कषाय, निद्रा, अरु विकथा, यह पांच प्रमाद हैं, सो जीवकों सं सारमें गेरते हैं, जो साधु इन पांचो प्रमादों करकें संयुक्त होवे, अरु सं ज्वलनकी चौथी कषायका उदय होवे, तब महामुनि महाव्रती साधु अ वश्य अंतर मुहूर्त्त काल लगि सप्रमाद होनेसें प्रमादी होता है. जे कर अंतरमुहूर्त्तसें उपरांतनी सप्रमादी होवे, तदा प्रमत्त गुणस्थानसेंनी नीचें गिर पडता है. अरु जे कर अंतर मुहूर्त्तसें उपरांतभी प्रमाद रहित होवे, तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता (आरोहता) है.

अथ प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यानका संनव कहते हैं. यह गुण स्थानमें मुख्य तो आर्त्तध्यान, उपलक्षणसें रौद्रध्यानकानी संनव है, क्यों कि नोकषाय, हास्यादि षट्कके होनेसें. तथा आज्ञादि आलंबन युक्त ध र्मध्यानकी गौणता है, १ आज्ञा, २ अपाय, ३ विपाक, ४ संस्थान. इन

चारोंके चिंतनलक्षण आलंबनों करकें संयुक्त धर्मध्यान होता है. इहां धर्मध्यानके चार पाद हैं॥ उक्तं च ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य वि चिंतनात् ॥ इत्थं वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यानं चतुर्विधं ॥ १ ॥ आज्ञा उस कों कहते हैं, कि जो कुछ सर्वज्ञ अर्हंत भगवंतने कहा है, सो सर्व सत्य है, अरु जो बात, मेरी समझमें नहीं आती है, वो मेरी बुद्धिकी मंदता है, तथा दुषम कालके प्रभावसें, संशय मिटाने वाले गुरुके अभावसें, इत्यादि निमित्तोंसें मेरी समझमें नहीं आता है, परंतु अर्हंत भगवंतके कहे हुवे वाक्य सत्य है, क्योंकि उनकें मृषा बोलनेका कोइभी निमित्त नहीं है, ऐसा जो चिंतन करनां, सो आज्ञा विचयनामा प्रथम भेद है. तथा राग, द्वेष, कषायादिकों करकें जो अपाय (कष्ट) उत्पन्न होते है, तिनका जो चिंतन करनां, सो अपायविचयनामा दूसरा भेद है. तथा क्षण क्षण प्रति जो कर्मफलोदय विचित्ररूप उत्पन्न होता है, सो विपाकविचयनामा तीसरा भेद है. तथा यह लोक अनादि अनंत है, अरु उत्पाद, व्यय, ध्रुव रूप सर्व पदार्थ हैं. तथा पुरुषाकार लोकका संस्थान है, ऐसा जो चिंतन करनां, सो संस्थानविचयनामा चौथा भेद है. इत्यादि आलंबना युक्त धर्मध्यानकी गौणता, प्रमत्त गुणस्थानमें है, परंतु सप्रमाद होनेसें मुख्यता नहीं.

अथ जे कर कोइ प्रमत्त गुणस्थानमें निरालंबन धर्मध्यान कहे, तिसका निषेध करते हैं. जिनभास्कर (जिनसूर्य) ऐसें कह गये हैं, कि जो साधु जहां लगि प्रमाद संयुक्त होवे, तहां लगि तिस साधुकों निरालंबन ध्यान नहीं होता है. क्योंकि इहां प्रमत्त गुणस्थानमें मध्यमधर्मध्यानकी भी गौणताही कही है, परंतु मुख्यता नहीं. तिस वास्ते प्रमत्तगुणस्थानमें उत्कृष्ट निरालंब धर्मध्यानका संभव नहीं.

अथ जो यह अर्थ न माने, तिसकों कहते हैं, जो साधु, प्रमाद युक्तभी आवश्यक सामायिकादि षडावश्यकसाधक अनुष्ठानका परिहार करकें निश्चल निरालंबन ध्यानाश्रित होवे, वो साधु, मिथ्यात्वमोहित मिथ्याभाव करकें मूढ हुआ थका जैनागम श्रीसर्वज्ञप्रणीत शास्त्र नहीं जानता, क्योंकि वो साधु व्यवहार तो छोड बैठा है, अरु निश्चयकों प्राप्त नहीं हुआ है. अरु जो जिनागमके जानने वाले हैं, सो तो व्यवहारपूर्वक निश्चयकों साधते हैं ॥ यदाह ॥ जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा विवहार निछए मु

यह ॥ विवहारनउ छेए, तित्थुछेउ जउ जणिओ ॥ १ ॥ अर्थः—जे कर जिनमतकों अंगीकार करते हो, औ जैनमतमें साधु होते हो, तो व्यवहार निश्चयका त्याग मत करो,क्यों कि व्यवहार नयके उछेद होनेसें तीर्थका उछेद हो जायगा,इस बात उपर यह दृष्टांत है,कि जैसें कोइक पुरुष अपने घरमें सदा बाजरेकी रोटी खाता है, किसीने उसकों निमंत्रण करकें अपूर्व मिष्टान्नाहार कराया, तब तो वो उस स्वादका लोलुपी हो कर अपणे घरकी बाजरेकी रोटी निःस्वाद जान कर खाता नहीं, उस दुःप्राप्य मिष्टान्नकी अभिलाषा करता है, तब तो वो अपणे घरका कदन्न तो खाता नहीं, अरु मिष्टान्नभी मिलता नहीं, तब वो उजयच्रष्ट होता है. तैसें यह जीवभी कदाग्रहरूप भूतके लगनेसें प्रमत्तगुणस्थान साध्यस्थूलमात्र पुण्यपुष्टिका कारण षडावश्यकादि कष्टक्रिया नहीं करता, अरु कदाचित् प्रमत्तगुणस्थानमें जिसका लाभ है, ऐसा जो निर्विकल्प मनोजनित समाधिरूप निरालंबन, ध्यानांशरूप, अमृत आहारतुल्य पाया है. तब तो तिस करिकें उत्पन्न हूआ जो परमानंद सुखस्वाद, तिस करकें प्रमत्त गुणस्थानगत षडावश्यकादि कष्टक्रिया कर्म,कदन्न समान कर सम्यक्आराधन न करे, अरु मिष्टान्न तुल्य निरालंबन ध्यानांश सो तो प्रथम संहननके अभावसें प्राप्त नहीं होता है,तब तो षडावश्यकके न करनेसें उजयच्रष्ट हो जाता है,क्योंकि निरालंबन ध्यानका मनोरथही पंचम कालके महामुनि ऋषियोने करा है ॥ तथाच पूर्वमहर्षयः ॥ चेतोवृत्तिनिरोधनेन करण, ग्रामं विधायोद्धशं ॥ तत्संहृत्य गतागतं च मरुतो, धैर्यं समाश्रित्य च ॥ पर्यंकेन मया शिवाय विधिवत् स्थित्वैकभूभृद्दरीमध्यस्थेन कदाचिदर्पितदृशा, स्थातव्यमंतर्मुखं ॥१॥ चित्ते निश्चलतां गते प्रशमिते, रागादिनिद्रामदे ॥ विद्राणेऽक्षकदंबके विघटिते, ध्वांते भ्रमारंभके ॥ आनंदे प्रविजृंभिते पुरपते, ज्ञाने समुन्मीलते ॥ मां रक्ष्यंति कदा वनस्थमभितो, दुष्टाशयाः श्वापदाः ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रभाचार्याः ॥ चित्तावदातैर्भवदागमानां, वा भैषजैरांगरुजं निवर्त्य ॥ मया कदा प्रौढसमाधिलक्ष्मी इत्यादि ” तथाश्री हेमचंद्र सूरयः ॥ वनपद्मासनासीनं, क्रोडस्थितमृगार्भकं ॥ कदा घ्रास्यंति वक्त्रे मां, चरतो मृगयूथपाः ॥ १ ॥ शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे,सुवर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ॥ मोक्षे भवे भविष्यामि, निर्विशेषमतिः कदा ॥२॥ इन श्लोकोंका थोडासा अर्थभी

लिख देते हैं, चित्तकी वृत्ति निरोध करकें, इंद्रिय समूह औ इंद्रियोंके विषयोंकों दूर करकें, तिस पीछें पवनकी अर्थात् श्वासोश्वासकी गतागति कों रोक करकें, अरु धैर्य्यकों अवलंबकें, पद्मासनसें बैठ करकें, शिवके वास्ते विधि संयुक्त किसी पर्वतकी गुफामें बैठ करकें, एक वस्तु उपरि दृष्टि रख कर, मुजकों अंतर्मुख रहनां योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूयां बतां राग, द्वेष, कषाय, निद्रा, मदके शांति हूयां, अरु इंद्रिय समूहके दूर हूयां, अरु भ्रमारंजक अंधकारके दूर होयां, अरु आनंदके प्रगट हुडिमान् जये, ज्ञानके प्रकाश जये, ऐसी जीवकों अवस्थामें मेरेकों बनमें रहेकों छुष्टाशयवाले सिंह कब रक्षा करेंगे? ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रजाचार्यजी कहते हैं, कि हे जगवन्! तुमारा आगमरूप जेषज करकें, राग रूप रोग निवर्त्त करकें, निर्मल चित्त करकें कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन मैं समाधि रूपी लक्ष्मीकूं देखुंगा? इत्यादि. तथा श्रीहेमचंद्रसूरिजी कहते हैं. कि बनमें पद्मासन बैठे हुवे मेरी गोदमें मृगका बच्चा बैठे, अरु हिरणोंका स्वामी बडा हरण मेरे मूखकों सूंघे, अरु में अपणी समाधिमें स्थित रहूं ॥१॥ तथा शत्रुमें मित्रमें, तृण अरु स्त्रीमें, सुवर्ण अरु पाषाणमें, मणि अरु मट्टिमें, मोक्ष अरु संसारमें, निर्विशेषमति, मैं कब होवूंगा? ॥ ४ ॥ ऐसेंही मंत्री वस्तुपालने तथा परमतमें जर्तृहरिनेजी मनोरथही करा है. ऐसें स्वसमय परसमयमें प्रसिद्ध जो पुरुष हूये हैं, तिनोंने परमात्मतत्त्वसंवित्तिमें मनोरथही करा है, अरु मनोरथ जो लोकमें करते हैं, सो दुःप्राप्य वस्तुकाही करते हैं, परंतु जो वस्तु, सुखेन मिल जावे, तिसका मनोरथ कोइजी नहीं करता है, जो सदा मिष्टान्न खाता है, अरु बडा जारी राज्य जोगता है, वो कजी मिष्टान्न खानेका अरु राज्य जोगनेका मनोरथ नहीं करता है, तिस वास्ते सर्व प्रकारसें प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोनें परम संवेग आरूढ अप्रमत्त गुणस्थानकका स्पर्श कराजी है, तोजी परम शुद्ध परमात्मतत्त्वसंवित्तिका मनोरथ करणां, परंतु षट्कर्म षडावश्यकादि व्यवहार क्रिया जो है, उसका परिहार न करनां. अरु जो मूढ, योगग्रह करकें ग्रस्त हैं, अरु सदाचार व्यवहारसें पराङ्मुख हैं, तिनका योगजी किसी कामका नहीं है, अरु उनका यह लोकजी नहीं अरु परलोकजी नहीं. क्योंकि वो जीव जडात्मा है ॥ यतः ॥ योगिनः सम्मतामेतां,

प्राप्य कल्पलतामिव ॥ सदाचारमयीमस्या, वृत्तिमातस्वतां बहिः ॥ १ ॥ ये तु योगग्रहग्रस्ताः, सदाचारपराङ्मुखाः ॥ एष तेषां च योगोपि, न लो कोपि जडात्मनां ॥ २ ॥ तिस वास्ते साधुकों जो दूषण दिन रात्रिमें लगता है, तिसके छेदने वास्ते अवश्यमेव षडावश्यकादि क्रिया करे, जहां लगि उपरिले गुणस्थानों करि साध्य जो निरालंबन ध्यान है, तिसकों न प्राप्ति होवे, तहां लगि करे. तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवछेद होनेसें त्रेशठ प्रकृतिका बंध करता है. तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान चार. यह आठ प्रकृतिके उदय उछेद होनेसें अरु आहारक तथा आहारकोपां ग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसें एकासी प्रकृति वेदता है, अरु एक सौ अडत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानकं षष्ठं ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. पांच महाव्रत धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अप्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु सं ज्वलनकी चारों कषायोंका उदय मंद होवे, तथा नोकषायोंकाभी उदय मंद होवे. तात्पर्य यह है कि संज्वलन कषाय तथा नोकषायोंका जैसा जैसा मंदोदय होता है, तैसें तैसें साधु अप्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ यथा यथा न रोचंते, विषयाः सुलभाअपि ॥ तथा तथा समायाति, सं वित्तौतत्त्वमुत्तमं ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, संवित्तौतत्त्वमुत्तमं ॥ तथा तथा न रोचंते, विषयाः सुलभाअपि ॥२॥ अर्थः—जैसें जैसें अप्रमत्तगुण स्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणेमें तथा क्षय करणेमें निपुण होता है,तथा जैसें सद्ध्यानका आरंभ करता है,सोइ स्वरूप कहते है.

दूर करे हैं, सर्व प्रमाद जिसने ऐसा जो जीव, तथा पांच महा व्रतका धारक, अरु अष्टादश सहस्र जो शीलांगलक्षण, तिनों करकें संयुक्त, सदागमका अभ्यासी, ज्ञानवान्, ध्यान एकाग्रता रूप,ऐसा ज्ञान ध्यानरूप जि सके पास धन है,इसी वास्ते "मौनी" मौनवान् है. क्योंकि मौनवान्ही ध्यान रूप धनवान् हो सका है, तिस पीछें ज्ञान ध्यान मौनवान्, उपशम कर णेके अर्थे अथवा क्षय करणेके अर्थे सन्मुख हूआ थका ऐसा पवित्र मुनि सप्तोत्तर मोहकों पूर्वोक्त सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अरु अनंतानुबंधी चार. यह सात प्रकृतिके विना शेष इक्कीस प्रकृतिरूप मो

हनीय कर्मके उपशम करणेके सन्मुख तथा क्षय करणेके सन्मुख जब होता है,तब सालंबन ध्यान त्यागके निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंभ करता है. यह निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करने वाले योगी, तीन तरेंके होते हैं. १ यथाप्रारंभकाः, २ तन्निष्ठाः, ३ निष्पन्नयोगाः ॥ यदाह ॥श्लोक॥ सम्यग् नैसर्गिकीं वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सांसर्गिकीं वा ॥ क्वाप्येकांते निविष्टाः, कपि च पलचल, न्मानसस्तंभनाय ॥ शश्वन्नासाग्रपाली, घनघटितदृशो, धीरवीरासनस्थो ॥ ये निःपापाः समाधे, र्विदधति विधिना, रंभमारंभकास्ते ॥१॥ कुर्वाणो मरुतासनेंद्रियमनः, क्षुत्तर्षनिद्राजयं ॥ योंतं जल्पति रूपणानिरसकृ, त्तत्वं समभ्यस्यति ॥ सत्वानामुपरि प्रमोदकरुणा, मैत्रिर्नृशं मन्यते ॥ ध्यानाधिष्ठितचेष्टयाऽभ्युदयते, तस्येह तन्निष्ठता ॥ २ ॥ उपरतबहिरंतर्जल्पकल्लोलमाले, लसदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततममृतमंत र्मानसे यस्य हंसः, पिबति निरुपलेपः सोऽत्र निष्पन्नयोगी ॥ ३ ॥

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमें ध्यानका संभव कहते हैं. सर्वज्ञका कहा हूआ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक भेदरूप हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मैत्र्यादिभिश्चतुर्भेदं, यदाज्ञादि चतुर्विधं ॥ रूपस्थादि चतुर्धा वा, धर्मध्यानं प्रकीर्त्तितम् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्मध्यानमुपस्कर्तुं, तद्धि तस्य रसायनं ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य विचिंतनात् ॥ इत्थं वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यानं प्रकीर्त्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पिंडस्थध्यान अपणे अंग अंगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्थध्यान, ३ संकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कल्पनासें रहित रूपातीत ध्यान, ऐसा जो जिनेश्वरका कहा हूआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थानमें मुख्यवृत्ति करकें प्रधानपणे होता है. तथा रूपातीतपणे करकें शुक्लध्यानभी अंशमात्र करकें गौणपणे है. इहां अप्रमत्त गुणस्थानमें आवश्यक क्रियाका जो अभाव है, तोभी शुद्ध है, यह वार्त्ता कहते हैं.

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकमें सामायिकादि षट् आवश्यक, सोभी नहीं है, "कोर्थः" सामायिकादि छै आवश्यक व्यवहार क्रियारूप, इस गुणस्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सर्व कुछ है; क्योंकि सामायिकादि सर्व आत्माके गुण हैं, "आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे" अ

र्थात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, यह आगमके वचनसें है.

प्रश्नः– किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार क्रियारूप षट् आवश्यक नहीं ?

उत्तरः– अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसें निरंतर ध्यानहीमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाभाविकी सहज नित्य संकल्प विकल्प मालाके अभावसें एक स्वभावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्त्तमान जो जीव हैं, वो भावतीर्थ स्नान करकें परम शुद्धिकों प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तण्हाइ, छेयणं मलप्पवाहणं चेव ॥ तिहिं अत्थेहिं निउत्तं, तम्हा तं दव्वउ तित्थं ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिए, दाहस्सो वसमणं हवइ तित्थं ॥ लोहंमि उ निग्गहिए, तण्हाइ छेयणं जाण ॥ २ ॥ अट्ठविहं कम्मरयं, बहुएहिं भवेहिं संचियं जम्हा ॥ तव संयमेण धोयइ, तम्हा तं भावउ तित्थं ॥ ३ ॥ अर्थः–दाह उपशांत करे, तृषाका छेद करे, शरीरकी मलकों दूर करे, इन पूर्वोक्त तीनो अर्थों करकें जो नियुक्त होवे, ऐसे जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते द्रव्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा क्रोधके निग्रह करणेसें दाह उपशम होती है, अरु लोभके निग्रह करणेसें तृषा छेद होती है, ऐसें जाननां. अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत भवों करकें जो संची है, सो तप संयम करकें जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों भाव तीर्थ कहते हैं ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमिते, संवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगतें, तर्विकल्पेंद्रजाले ॥ भिन्ने मोहांधकारे, प्रसरति महसि, क्वापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानावलंबी, कलयति परमानंदसिंधौ प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थः– प्राण, श्वासोश्वास का प्रचार आना जानां जिसने रोका है, औ जिसने शरीरकों वश कीया है, औ जिसने नेत्रका टपकारनां बंद कीया है, औ पांच इंद्रियकों अपणे अपणे विषयसें रोका है, तथा अंतर विकल्परूप इंद्र जालके लय हूये, मोहरूप अंधकारके नष्ट हूयां, अरु त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, प्रगट हूये धन्य वो ध्यानावलंबी पुरुष है, सो परमानंदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है.

यह अप्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुभ, ६ अयश, ७ अशातावेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका बंध

व्यवछेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिका बंध करता है. इस वास्ते कणसठ प्रकृतिका बंध करता है. अरु जे कर देवायु न बांधे, तब अठावन प्रकृतिका बंध करता है, तथा स्त्यानर्द्धित्रिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवछेद करे, तब गिहत्तर प्रकृतिका फल वेदता है, अरु १३८ प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति अप्रमत्त गुणस्थानकं सप्तमं॥७॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिबादर, दसवा सूक्ष्मसंपराय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्थानों का नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं.

जो अप्रमत्तसंयत सातमे गुणस्थान वर्ती दिखलाया है, सोइ संज्वलन कषाय चार, नो कषाय है, इनके मंद उदय हूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यंत परमाल्हादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है; इसका नाम अपूर्वकरण इस वास्ते कहते हैं कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्मगुण की प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, औ अनुनव्या, जो नोग, तिनकी कांक्षारूप संकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप नावों की निवृत्ति नहीं, इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं. अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिबादर कहते हैं, सो इहां अप्रत्याख्यानादि जो द्वादश बादर कषाय हैं, तिनका, अरु नव नोकषायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिबादर कहते हैं. यह नवमा गुणस्थान है.

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वनावनाबल करकें सत्तावीश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंमीनूत लोनकी अस्तित्व जहां है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कषायका है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कह्या.

तथा उपशामकही उपशम मूर्त्तिरूप सहजस्वनाव बल करकें सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है.

तथा क्षपककोंही क्षपकश्रेणि मार्ग करकें दशमे गुणस्थानसेंही निःकषाय शुद्धात्मनावना बल करकें सकल मोहके क्षय करणेसें क्षीणमोह

नामक बारहवा गुणस्थान होता है. यह पांचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कहा.

अथ अपूर्वकरणादि अंशसेंही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं. तहां अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमें अपूर्वकरणके प्रथम अंशसेंही उपशमक, उपशमश्रेणिमें चढता है, अरु क्षपक, क्षपकश्रेणिमें चढता है.

अथ प्रथम उपशमश्रेणिके चढनेंकी योग्यता कहते हैं. इहां उपशमक मुनि, शुक्लध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप लिखेंगे उसकों ध्याता हूआ उपशमश्रेणिकों अंगीकार करता है. कैसा वो मुनि है? कि पूर्वगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान्, आदिके तीन संहनन युक्त, ऐसा मुनि उपशमश्रेणि करता है.

उपशमश्रेणिवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल करकें "अहमिंद्र" अर्थात् पांच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, परंतु जिसके प्रथम संहनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है. क्योंकि अपर संहनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवार्त्त संहननवाला चौथे महेंद्र स्वर्ग तक जा सक्ता है, अरु कीलिकादि चार संहनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम संहनन वाला तो मोक्ष तक जाता है. अरु जिसकी आयु जे कर सात लव अधिक होती, तो मोक्ष जाता, सोइ सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न होता है.
॥ यदाह ॥ गाथा॥ सत्त लवा जइ आउं, पहुप्पमाणं तउ हु सिझंता ॥ तित्तियमित्तं न हुयं, तत्तो लव सत्तमा जाया ॥१॥ सव्वठ्ठ सिद्धनामे, उक्कोसठ्ठिसु विजयमाईसु ॥ एगावसेस गब्भा, हवंति लव सत्तमा देवा ॥ २ ॥

प्रश्नः—उपशमश्रेणिवाला मोक्षके योग्य कैसें हो सक्ता है ?

उत्तरः—सात जो लव है,सो एक मुहूर्त्तका इग्यारवा हिस्सा है,तब तो लवसत्तमावशेष आयुंवालाही खंडित उपशमश्रेणि करने वाला पराङ्मुख सातमे गुणस्थानमें आ करकें फेर क्षपकश्रेणिमें चढ कर सात लवके बिचहीमें क्षीणमोह गुणस्थानमें हो कर अंतःकृत केवली हो कर मोक्ष हो जाता है,इस वास्ते दूषण नहीं. तथा जो पुष्टायु उपशमश्रेणि करता है.सो अखंडित श्रेणि करकें, चारित्र मोहनीयका उपशम करकें इग्यारवे गुणस्थानमें पहुंच कर उपशमश्रेणि समाप्ति करकें गिर पडता है.

अथ औपशमकही अपूर्वादि गुणस्थानोमें जो करता है, सो कहते हैं. संज्वलनका लोन वर्जके शेष वीश प्रकृति मोहनीय कर्मकी. अपूर्वकरण, अरु अनिवृत्तिबादर, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशम करता है. तिसके पीछें क्रम करकें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानमें संज्वलनके लोनकों सूक्ष्म करता है. तिस पीछें क्रम करकें उपशांतमोह गुणस्थानमें तिस सूक्ष्म लोनका सर्वथा उपशम करता है, तथा इहां उपशांतमोह गुणस्थानमें जीव, एक प्रकृति, शातावेदनीय रूप बांधता है. अरु उणसठ प्रकृति वेदता है, तथा १४० प्रकृतिकी उत्कृष्टी सत्ता है.

अथ उपशांतमोह गुणस्थानकमें, जैसा सम्यक्त्व चारित्र नाव लक्षण तीन है, सो कहते हैं. यह गुणस्थानमें उपशम सम्यक्त्व अरु उपशम चारित्र होता है, अरु इहां नावनी उपशमही होता है, परंतु क्षायिक नाव तथा क्षायोपशमिक नाव नहीं होता है.

अथ उपशांतमोह गुणस्थानसें जैसें पड जाता है, तैसें कहते हैं. उपशमी मुनि तीव्र मोहोदय अर्थात् चारित्र मोहनीयका उदय पा करकें उपशांतमोह गुणस्थानसें पड जाता है, फेर मोहजनित प्रमादसें पतित होता है. जैसें पानीमें मल हेठ बैठ जाते हैं, तिस करकें उपरसें निर्मल हो जाता है, फेर कोइ निमित्त पा कर मलीन हो जाता है ॥ यदाह ॥ सुय केवलि आहारग, उज्जुमइ उवसंतगावि हु पमाय ॥ हिंमंति नवमणंतं, तं अणंतरमेव चउ गइया ॥ १ ॥ अर्थः—१ श्रुतकेवली, २ आहारक शरीरी, ३ ऋजुमति, ४ उपशांतमोह वाला. यह सर्व प्रमादके वशसें अनंत नव करते हैं, प्रमादके वशसें चार गतिमें वास करते हैं.

अथ उपशमक जीवोंकों गुणस्थानोमें चढनां, अरु पडनां जिस तरें होता है, सो कहते हैं. अपूर्वकरण गुणस्थानसें अनिवृत्तिबादर गुणस्थानमें जाता है, अरु अनिवृत्तिबादरगुणस्थानसें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानमें जाता है, अरु सूक्ष्मसंपराय वाला उपशांतमोह गुणस्थानमें जाता है. तथा अपूर्वकरणादि चारो गुणस्थानसें उपशम श्रेणिवाला पडा हुआ, प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जाता है, अरु जे कर चरमशरीरी होवे, तब सातमे गुणस्थान तक आ करकें फेर सातमे गुणस्थानमें क्षपकश्रेणि मांमता है, परंतु एक वार जिसने उपशमश्रेणि करी होवे, सो क्षपक

श्रेणि कर सक्ता है,अरु जिसने एक नवमें दो वार उपशमश्रेणि करी होवे. सो क्षपकश्रेणि तिस नवमें नहीं कर सक्ता है ॥यदाह॥ गाथा ॥ जीवो हु एक जम्मंमि,इक्क सिं उवसामगो ॥ खयति कुज्जा नो कुज्जा,दोवारे उवसामगो॥१॥

अथ उपशमश्रेणि वालेके नवोंकी संख्या कहते हैं. इस संसारमें बहुत नवोंमें चार वार उपशमश्रेणि होती है, अरु एक नवमें दो वार होती है ॥ यदाह ॥ उवसमसेणि चउक्कं, जायइ जीवस्स आनवं नूणं ॥ तो पुण दो एगनवे. खवगे स्सेणी पुणो एगा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्थापना इस अगले यंत्रसें जान लेनी· इस यंत्रकी संवादक यह गाथा है ॥ गाथा ॥ अणदंसण पुंसिडी, वेयछक्कं च पुरिसवेयं च ॥ दो दो एगंतरिए, सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥१॥ अर्थः—प्रथम अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, अरु लोन. इन चारोंकों उपशम करता है. पीछें मिथ्यात्व मोह, मिश्रमोह. अरु सम्यक्त्व मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीछें नपुंसकवेद, पीछें सें स्त्रीवेद, फेर हास्य, रति. अरति, नय, शोक, जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका उपशम करता है. फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याख्यानी क्रोध अरु प्रत्याख्यानी क्रोध, फेर संज्वलनका क्रोध, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी मान, फेर संज्वलनका मान, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी माया, फेर संज्वलनकी माया, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी लोन, फेर संज्वलनका लोन, उपशांत करता है ॥ इति उपशमश्रेणि स्वरूपं ॥

अथ क्षपकश्रेणिका स्वरूप लिखते हैं. जिस क्षपकश्रेणिमें चढ कर योगी (क्षपक मुनि) कर्म क्षय करणेमें प्रवृत्त होता है· अथ अष्टम गुणस्थानकसें पहिलें जो कर्मप्रकृति क्षपक मुनि क्षय करता है, सो लिखते हैं. चरमशरीरी, अबद्धायु, अल्पकर्मी, क्षपकके चौथे गुणस्थानमें नरकायु क्षय हो जाता है, नरक योग्य आयुका बंध नहीं करता है, तथा पांचमे गुणस्थानमें तिर्यगायु क्षय होता है, अरु सातमे गुणस्थानमें देवायु क्षय हो जाता है, तथा इहां सातमे गुणस्थानमें दर्शनमोहसप्तकनी क्षय हो जाता है, तिस पीछें क्षपक साधुके एक सौ अडतीस कर्मप्रकृतिकी सत्ता रहती है, तब आठमे गुणस्थानकों प्राप्ति होता है, कथंनूतो? उत्कृष्ट धर्मध्यान रूपातीत लक्षण विषे कीया है, अन्यास जिसनें, जो वारं वार सेवन करनां उसकों अन्यास कहते हैं, तिस अन्यास करकेंही तत्त्वप्राप्ति हो

ती हैं ॥ यदाह ॥ अभ्यासेन जिताहारो, ऽभ्यासेनैव जितासनः ॥ अभ्यासेन जितश्वासोऽ भ्यासेनैवानिलत्रुटिः ॥ १ ॥ अभ्यासेन स्थिरं चित्त, मभ्यासेन जितेंद्रियः ॥ अभ्यासेन परानंदोऽभ्यासेनैवात्मदर्शनं ॥ २ ॥ अभ्यासवर्जितैर्ध्यानैः, शास्त्रस्थैः फलमस्ति न ॥ भवेन्नहि फलैस्तृप्तिः, पानीयप्रतिबिंबितैः ॥३॥ तिस वास्ते अभ्याससेंही विशुद्ध (निर्मल) तत्त्वानुयायि बुद्धि होती है.

अथ अष्टम गुणस्थानमें शुक्लध्यानका आरंभ कहते हैं. क्षपक साधु यह आठमे गुणस्थानमें "शुक्लसद्ध्यान" शुक्ल नामक प्रधान ध्यानका प्रथम पाद पृथक्त्व वितर्क सप्रविचार नाम है, तिसका स्वरूप आगें लिखेंगे. ऐसा ध्यान ध्याता है, सो कैसा साधु है? "आद्यसंहननसमन्वित" वज्रऋषभनाराचनामा प्रथम संहननयुक्त है.

अथ ध्यान करने वालेका स्वरूप लिखते हैं. योगींद्र क्षपक मुनींद्र, व्यवहारापेक्षय, ध्यान करने योग्य होता है,क्या करकें? निबिड दृढ पर्यंकासन करकें, कथंभूतं? निश्चल आसन करकें, क्योंकि आसनजयही ध्यानका प्रथम प्राण है ॥ यदाह ॥ आहारासणनिद्दा, जयं च काऊण जिणवरमएण ॥ झाइज्ज नियं अप्पा,उवइठ्ठं जिणवरिंदेण ॥१॥ तत्र पर्यंकासन, जंघाके अधोभागमें पग उपर करनेसें होता है, तथा केईक सिद्धासन कहते हैं, तिसका स्वरूप ऐसा है कि ॥श्लोक॥ योनिं वामपदाऽपरेण निबिडं, संपीड्य शिश्नं हनुं ॥ न्यस्योरस्यचलेंद्रियः स्थिरमना, लोलां च ताल्वांतरे ॥ वंशस्थैर्यतया सुनिश्चलतया, पश्यन् भ्रुवोरंतरं ॥ योगी योगविधिप्रसाधनकृते, सिद्धासनं साधयेत् ॥ १ ॥ अथवा आसनका कोइ नियम नहीं, चाहो कोइ आसन होवे, जिस आसनमें चित्त स्थर हो जावे, सोइ आसन ठीक है, सो कैसा योगींद्र है कि नासिकाके अग्रमें दीनी है सत् नेत्रकी दृष्टि, ऐसे प्रसन्न नेत्र है जिसके, क्योंकि नासाग्रन्यस्तलोचनवालाही ध्यानका साधक होता है ॥ यदाह ॥ ध्यानदंभकस्तुतौ ॥ नासावंशाग्रभाग, स्थितनयनयुगो, मुक्तताराप्रचारः ॥ शेषाक्षक्षीणवृत्ति, स्त्रिभुवनविवरो, भ्रांतयोगैकचक्षुः॥ पर्यंकातंकशून्यः, परिगलितघनोच्छ्वासनिःश्वासवातः ॥ सद्ध्यानारंभमूर्त्ति, श्चिरमवतु जिनो, जन्मसंभूतिभीतेः ॥ १ ॥ फेर कैसा है योगींद्र? किंचित् उन्मीलित अर्द्धविकसित है नेत्र जिसके, क्योंकि योगीयोंके समाधि समयमें अर्द्धविकसित नेत्र होते हैं ॥यदाह॥ गंभीरस्तंभमूर्त्ति, र्व्यपगतक

रणं, श्राप्टतिर्मदमंदं ॥ प्राणायामोजलाट,स्थलनिहितमना, दत्तनासा ग्रदृष्टिः ॥ नाऽत्युन्मीलन्निमील, न्नयनमतितरां, बद्धपर्यंकबंधो ॥ ध्याने प्रध्याय शुक्लं, सकलविदनवद्यः स पायाज्जिनो वः ॥ १ ॥ फेर कैसा योगींद्र है? "मानस" (मन) चित्त अंतःकरण विकल्परूप वावरके बंधनसें दूर करा है, क्योंकि विकल्पही दृढ कर्मबंधनका हेतु है ॥ यदाह ॥ शुजा वा ह्यशुजा वापि, विकल्पा यस्य चेतसि ॥ स स्वं बध्नात्ययः स्वर्ण, बंधना तेन कर्मणा ॥ १ ॥ वरं निद्रा वरं मूर्छा, वरं विकलतापि वा, नत्वार्त्तरौद्रदुर्लेश्या, विकल्पाकुलितं मनः ॥ २ ॥ फेर कैसा है योगी? संसारके उछेद करने वास्ते उद्यम है जिसके क्योंकि जवछेदक ध्यानार्थी उत्साह वालोंकेही योगसिद्धि होती है ॥ यदाह ॥ उत्साहान्निश्चयाद्धैर्या, त्संतोषात्तत्त्वदर्शनात् ॥ मुनेर्जनपदत्यागा, त्षड्निर्योगः प्रसिद्धयेदिति ॥१॥ तथा मुनि योगींद्र अनिल (पवनकों) ऊर्ध्व प्रचाराति दशमद्वार गोचरकों प्राप्त करता है, क्या करकें प्राप्त करता है? कि अपानद्वारे मार्ग करकें गुदाके रस्ते पवन अपणी इछासें निकलतेकों निरुद्ध्य (संकोच) करकें,मूलबंध युक्ति करकें करता है. सो मूलबंध यह है, कि ॥ श्लोक ॥ पार्ष्णिजागेन संपीड्य, योनिमाकुंचयेद्गुदं ॥ अपानमूर्द्धमाकृष्य, मूलबंधो निगद्यते ॥ १ ॥ यह आकुंचनकर्मही प्राणायामका मूल है ॥ यडुक्तं ॥ ध्यानदंमस्तुतौ ॥ संकोच्यापानरंध्रं, हुतवहसदृशं, तंतुवत्सूक्ष्मरूपं ॥ धृत्वा हृत्पद्मकोशे, तदनु च गलके, तालुनि प्राणशक्तिं ॥ नीत्वा शून्यातिशून्यां, पुनरपि खगतिं, दीप्यमानं समंता, ल्लोकालोकावलोकां, कलयति स कलां, यस्य तुष्टो जिनेशः ॥ १ ॥

अथ पूरक प्राणायाम कहते हैं. योगी पूरक ध्यानके योगसें अतिप्रयत्न करकें (कोष्ठं) सकल देहगत नाडीसमूहकों पवन करकें पूरता है, क्या करकें? द्वादशांगुल पर्यंत पवनकों आकर्षण करकें, बारां आंगुल प्रमाण बाहिरसें सर्व औरसें खैंच करकें पूरता है. इहां यह तात्पर्यार्थ है कि पवन आकाश तत्त्वके बहते हूये नासिकाके अंदरही पवन होता है, अरु अग्नितत्त्व के बहते हूये चार अंगुल प्रमाण बाहिर ऊर्ध्वगति स्फुरत होता है, अरु वायु तत्त्वके बहते हूयें ६ अंगुल प्रमाण बाहिर तिर्यग् फिरता है, अरु पृथिवी तत्त्वके बहते हूये आठ अंगुल प्रमाण बाहिर मध्यम जागमें रहता है, अरु जल तत्त्वके बहते हूये बारह अंगुल प्रमाण नीचेकों बहता

है, तब द्वादश अंगुल पर्यंत वारुणमंडल प्रचार अमृतमय पवन आकर्षण करकें इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अथ रेचक प्राणायाम कहते हैं. तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी योगसामर्थ्यसें अरु प्राणायाम अभ्यासके बलसें रेचकनामा पवन नाभिकमलोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है, तिसका नाम रेचकध्यान कहते हैं ॥यदाह॥ वज्रासनः स्थिरवपुः स्थिरधीःसचित्त,मारोप्य रेचक समीरणजन्म चक्रे॥ स्वांतेन रेचयति नाडिगतं समीरं,तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति ॥१॥

अथ कुंभकध्यान कहते है. योगी कुंभकनामा पवन नाभिपंकजकुंभक ध्यान अर्थात् कुंभककर्म प्रयोग करकें कुंभवत् (घटाकार) करकें अतिशय करकें स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंभकचक्रं,नाडिकासु निबिडीकृतवातः ॥ कुंभवच्चरति यज्जलमध्ये, तद्वदंति किल कुंभककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसें मन जीत्या जाता है, यह बात कहते हैं. क्योंकि जहां मन है, तहां पवन है,अरु जहां पवन है, तहां मन वर्त्तता है॥ यदाह ॥ दुग्धांबुवत्संमिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, र्यावन्मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिः ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्य नाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः ॥ विध्वस्तयोरेंद्रियवर्गशुद्धि, स्तद्ध्वंसनान्मोक्षपदस्य सिद्धिः ॥२॥ इस प्रकार करकें पूरक, रेचक, कुंभकके क्रम करकें पवनोंका आकुंचन निर्गमन, साध्य करकें वायुका संग्रह, अरु चित्तका एकाग्रपणां चिंतन करकें समाधिविषे निश्चलपणेकों धारण करता है, क्योंकि पवनके जीतनेसेंही मन निश्चल होता है ॥ यदाह ॥ प्रचलति यदि, क्षोणीचक्रं, चलंत्यचला अपि ॥ प्रलयपवन, प्रेंखालोला, श्चलंति पयोधयः ॥ पवनजयिनः, स्वावष्टंभ, प्रकाशितशक्तयः ॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना, च्चलंति न योगिनः ॥ १ ॥

अथ भावकीही प्रधानता कहते हैं. इहां क्षपकश्रेणि आरोहविषे जो प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अभ्यासक्रम कह्या है, सो प्रागल्भता अर्थात् रूढि करकें जो प्रसिद्ध है, सो दिखलाया है, परंतु जो प्राणायाम ही करे, तो क्षपकश्रेणि चढे,ऐसा कुछ नियम नहीं, क्योंकि क्षपकका भावही केवल क्षपकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आडंबर नहीं. चर्पटिनापि ॥ नासाकंदं नाडीवृंदं, वायोश्चारः प्रत्याहारः ॥ प्राणायामो वी

जपामो, ध्यानाभ्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं भ्रूमध्यस्थं, नासाग्र स्थं श्वासांतःस्थं ॥ तेजः शुद्धं ध्यानं बुद्धः, ॐकाराख्यं सूर्यप्रभाख्यं ॥२॥ ब्रह्माकाशं शून्याभ्यासं, मिथ्याजल्पं चिंताकल्पं ॥ कायाक्रांतं चित्तभ्रांतं, त्य क्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥ ३ ॥ गुर्वादिष्टं चिंत तमिष्टं ॥ देहातीतं भावोपेतं ॥ त्यक्का द्वंद्व नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्वं जानीहि त्वं ॥४॥ अन्यच्च ॥ ॐकाराऽभ्यस नं विचित्रकरणैः, प्राणस्य वायोर्भया, तेजश्चिंतनमात्मकायकमले, शून्यांत रालंबनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं, चिंतामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्यत ज ल्पकल्पनकला, तीतं स्वभावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्व रूढि करकें क्षपकश्रेणि के आडंबर है,परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् भावही प्रधान है.

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन, बचन, अरु कायाके योग वाले मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है,सो कैसा है ? कि वितर्क कर कें सहित जो वर्त्ते, सो सवितर्क. अरु सहविचार करकें जो प्रवर्त्ते, सो सविचा र. तथा सह पृथक्त्वेन वर्त्तते इति सपृथक्त्व. इन तीनो विशेषणों करकें संयु क्त होनेसें सपृथक्त्व,सवितर्क,सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है.

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान त्र्यात्मक क्रमोत्क्रम करकें गृहीत विशेष तीन रूप हैं,तहां श्रुतचिंता रूप वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करनां है, सो विचार है, अरु द्रव्य गुण पर्यायादि करकें जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, उसमें प्रथम वितर्कका स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होवे, सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभवमय अंतरंगभावगत आगमके अवलंबनसें. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते हैं. जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचारणरूप अर्थसें अर्थांतरमें संक्रम होवे, शब्दसें शब्दांतरमें संक्रम होवे, योगसें योगांतरमें संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि चार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपभी शुद्धात्मकी तरें द्रव्यसें द्रव्यांत रमें जाता है, अथवा गुणोंसें गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंसें पर्या यांतरमें जाता है, तहां जो सहजात है, सो गुण है,जैसें सुवर्णमें स्निग्ध

ता पातता है. अरु जो क्रमजूत है, सो पर्याय है, जैसें सुवर्णमें मुद्रा कुं मलादिक. तिन द्रव्य गुण पर्यायांतरोमें जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते हैं. योगी समाधिवान् ऐसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्रथम शुक्लध्यान है. उसका ध्याता हूआ परम प्रकृष्ट शुद्धिकों प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता है? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है.

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपाति (पतनशाल) उत्पन्न होता है,तोजी अतिविशुद्ध होनेसें औ अति निर्मल होनेसें अगले गुणस्थानमें चढनां चाहता है. एतावता अगले गुणस्थानकों दौडता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निद्राद्विक, देवद्विक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय,आहारक, तैजस, कार्मण, वैक्रियोपांग. आहारकोपांग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थंकरनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास. यह बत्तीस कर्म प्रकृतिका व्यवछेद होनेसें छवीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अंतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह,इन चारके उदय व्यवछेद होनेसें बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है. अरु १३८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है॥ इति क्षपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप॥

अथ क्षपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता हूआ जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसें क्षय करता है, सो कहते हैं. पूर्वोक्त आठमे गुणस्थानसें अनंतर क्षपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव जाग करता है, तिहां प्रथम जागमें सोलां कर्म प्रकृति क्षय करता है, सो यह है. १ नरकगति, २ नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम, ६ उद्योतनाम, ७ सूक्ष्म, ८ द्वींद्रिय जाति, ९ त्रींद्रिय जाति, १० चतुरिंद्रिय जाति,११ एकेंद्रियजाति,१२ आतप नाम,१५ स्त्यानर्द्धि त्रिक, अर्थात् निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, यह त्रिक, १६ स्थावर नाम. यह सोलां कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानकके प्रथम जागमें क्षय करता हैं,

तथा अप्रत्याख्यानकी चौकडी, अरु प्रत्याख्यानकी चौकडी, यह आठ मध्यकी कषायकों दूसरे जागमें क्षय करता है, तीसरे जागमें नपुंसकवेद, अरु चौथे जागमें स्त्रीवेद क्षय करता है, तथा पांचमे जागमें हास्य, रति, अरति, जय, शोक, अरु जुगुप्सा, यह छै प्रकृतिका क्षय करता है. शेष छठे जागसें ले कर नवमे जाग तांइ चारों जागमें क्रमसें शुद्ध हूवा थका ध्यानकी अति निर्मलतासें क्रम करकें छठे जागमें पुरुषवेद, सातमे जागमें संज्वलनका क्रोध, आठमे जागमें संज्वलन मान, नवमे जागमें संज्वलनकी मायाकों क्षय करता है, तथा यह गुणस्थानमें वर्त्तता हुआ मुनि, हास्य, अरति, जय, जुगुप्सा. इन चारोंके व्यवछेद होनेसें बावीस प्रकृतिका बंध करता है. अरु हास्य षट्कके उदय व्यवछेद होनेसें छासठ प्रकृतिकों वेदता है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके क्षय करणेसें पैंतीस प्रकृतिके व्यवछेद होनेसें एक सौ तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकके नवमे गुणस्थानकका स्वरूप.

अथ क्षपकके दशमे गुणस्थानका स्वरूप लिखते हैं. पूर्वोक्त नवमे गुणस्थानकसें अनंतर क्षपकमुनि सूक्ष्मसंपरायनामक दशमे गुणस्थानमें चढता है. क्या करता हुआ चढता है? कि क्षणमात्रसें संज्वलनके स्थूल लोजकों सूक्ष्म करता हुआ चढता है. तथा सूक्ष्म संपराय गुणस्थानस्थ जीव, पुरुषवेद तथा संज्वलन चतुष्कके बंध व्यवछेद होनेसें सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन संज्वलन कषायके उदय व्यवछेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवछेद होनेसें एक सौ दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकस्य दशमं गुणस्थानं ॥

अथ क्षपककों इग्यारहवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुणस्थानसें क्षपक, सूक्ष्मलोजांशोंकों सूक्ष्मकृत लोजखंडोंकों क्षय करता हूआ बारहमे क्षीणमोह गुणस्थानमें जाता है. इहां क्षपकश्रेणि समाप्त करता है. उसका क्रम यह है, कि प्रथम अनंतानुबंधी चार क्षय करता है, फेर मिथ्यात्व मोहनीय, फेर मिश्रमोहनीय, फेर सम्यक्त्व मोहनीय, फेर अप्रत्याख्यान चार कषाय, तथा प्रत्याख्यान चार कषाय. एवं आठ क्षय करता है. फेर नपुंसकवेद, फेर हास्यषट्क, फेर पुरुष वेद, फेर संज्वलन क्रोध, फेर संज्वलन मान, फेर संज्वलन माया, फेर संज्वलन लोज क्षय करता है.

अथ तहां बारहमे गुणस्थानमें शुक्लध्यानके दूसरे अंशकों आश्रित करता है, यह बात कहते हैं. अथानंतर सो क्षपकक्षीणमोहरूप हो करकें क्षीणमोह गुणस्थानकके मार्गमें परिणतिमान् हो करकें, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करकें दूसरे शुक्लध्यानकों आश्रित होता है, कथंभूतः क्षपक? वीतरागः विशेष करकें "इतो (गतो) रागो यस्मात् स वीत रागः" फेर कैसा है क्षपकमुनि? महायति. यथाख्यातचारित्री. फेर कैसा है मुनि? कि शुद्धतर भाव करकें संयुक्त ऐसा क्षपक, दूसरे शुक्ल ध्यानकों आश्रित होता है.

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते हैं, सो क्षपक क्षीणमोह गुणस्थानवर्त्ती, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करकें ध्याता है ॥ यदाह ॥ एकं त्रियोगभाजा, माद्यं स्यादपरमेकयोगवतां ॥ तनुयोगिनां तृतीयं, नियोगानां चतुर्थं हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है? कि "अपृथक्त्वं पृथक्त्व वर्जितं अविचारं विचार रहितं सवितर्कगुणान्वितं वितर्क मात्र गुण संयुक्त" दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है.

अथ अपृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अपृथक्त्वज्ञानकों धारण करता है,सो एकत्वपणा क्या है? जो निजात्मद्रव्य एक केवल अपणा द्रव्य विशुद्ध परमात्मद्रव्य है,अथवा तिसही परमात्मद्रव्यका एक केवल पर्याय,अथवा एक केवल गुण,इस प्रकारसें एक द्रव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहां ध्यावे, सो एकत्व है.

अथ अविचारपणा कहते हैं. इस कालमें सद्ध्यानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जननहारा है, सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्राम्नायविशेषसें है, परंतु शुक्ल ध्यानका अनुभवी इस कालमें कोइ नहीं ॥यदाहुः॥ श्रीहेमचंद्र सूरिपादाः ॥ श्लोक ॥ अनवच्छित्त्याम्नायः, समागतोऽस्येति कीर्त्यते ऽस्माभिः ॥ दुष्करमप्याधुनिकैः, शुक्लध्यानं यथाशास्त्रं ॥ १ ॥ जिनसद्ध्यानकोविदोनें शास्त्राम्नायसें शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है, तिनोनें अविचार विशेषण संयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कह्या है, सो क्या है? जो पूर्वोक्त स्वरूपोमें व्यंजन अर्थयोगोमें एतावता शब्दार्थ योग रूपोमें परावर्त्त विवर्जित शब्दसें शब्दांतर, इत्यादि क्रमसें रहित चिंतन श्रुतानुसारेंही करियें हैं, सो अविचार है.

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लध्यान किससेंति होता है? तहां कहें हैं, कि नावश्रुतके आलंबनसें होता है. सूक्ष्म अंतर्जल्परूप नावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है.

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी नाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्रकार करकें एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान कह्या,तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्त्तता हुआ ध्यानी समरसी नावकों धारण करता है, सो यह समरसी नाव जो है.सो तदेकशरण मान्या है,कारणकि आत्मा जो अपृथक्त्व करकें परमात्मामें लीन करीयें, सोइ समरस नावका धारण करणा है, समरस किससेंति करे? कि आत्माके अनुनवसें करे.

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके बेहडे क्या करता है? सो कहते हैं. इस पूर्वोक्त ध्यानके योगसें औ दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्लुष्यत कर्मेधनोत्कर दह्यमान है. कर्मरूप इंधनका समूह. ऐसा योगींद्र अंतके प्रथम समय अर्थात् बारहवे गुणस्थानकके दूसरे चरम समयमें निद्रा अरु प्रचला, इन दो प्रकृतिका क्षय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गुणस्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ केवलदर्शन. यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पंचविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका क्षय करकें क्षीणमोहांश हो करकें केवल स्वरूप होता है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतुष्क, अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र. यशनाम. यह सोलां प्रकृतिका बंध व्यवछेद होनेसें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलनका लोन, २ ऋषननाराचसंघयण, इनकें उदय विछेद होनेसें सत्तावन प्रकृति वेदता है. तथा संज्वलनके लोनकी सत्ता दूर होनेसें एक सौ एक प्रकृतिकी सत्ता है. इति क्षपकस्य द्वादश गुणस्थानकस्वरूपं ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं. चौथे गुणस्थानसें लेकर क्षय होती हुइ त्रेसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण नइ है, सो कहते हैं. एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें क्षय हुइ, एक पांचमें, आठ सातमें, छत्तीस नवमें, सत्तरे बारहमें. यह सर्व त्रेसठ नइ. तथा शेष पंचासी

प्रकृति पुराणे वस्त्रकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती हैं.

अथ सयोगी केवलीके जो भाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते हैं. तिस केवल आत्मा भगवतको इहां सयोगी गुणस्थानमें भाव तो क्षायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, औ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट क्षायिक होता है, तथा चारित्र क्षायिक यथाख्यातनामक होता है, इसका तात्पर्य्य यह है, कि उपशम अरु क्षायोपशमिक यह दो भाव नहीं होते हैं.

अथ तिस केवलात्मकों केवल कहते हैं. तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश करकें चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् (हस्त तलेमें ग्रहण करा आमलेकी तरें) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करकें भासन करते हैं. इहां प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसेंति कही है,कारण कि निश्चय करकें तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बडा अंतर है.

अथ जिसने तीर्थंकरनाम उपार्ज्या है, तिसका विशेष कहते हैं. विशेष करकें अर्हत् भक्ति प्रमुख वीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करता है. सो वीश स्थानक यह है॥ गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवयण, गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु ॥ वच्छलयाइ एसु, अभिरकणं णो वउग्गेय ॥ १ ॥ दंसण विणए आव, स्सए सीलव्वए निरइयारे ॥ खणलवच्चियाए, वेयावच्चे समाहीयं ॥ २ ॥ अपुव्व नाण ग्गहणं, सुयभत्ती पवयण पभावणया ॥ एएहिं कारणेहिं, तिच्चयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगें लिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्थानमें तीर्थंकर कर्मोदयसें वो केवली (त्रिजगत्पति) त्रिभुवनपति जिनेंद्र होता है. जिन, सामान्य केवलीयोंकों कहते हैं, तिनमें जो इंद्रकी तरें होवे, सो जिनेंद्र जाननां.

अथ तीर्थंकरकी महिमा कहते हैं, सो भगवान् तीर्थंकर पूर्वोक्त चउत्तीस अतिशय करकें संयुक्त होता है, औ सर्व देवता जिसकों नमस्कार करते हैं, तथा सकल देव मानवोनें जिसकों नमस्कार करा है, सो सर्वोत्तम, औ सकल शासनोमें प्रधान, ऐसा तीर्थप्रवर्त्तन प्रगट करता हूआ उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है.

अथ सो तीर्थंकर नामकर्म जैसें वेदनेमें आता है, तैसें कहते हैं. तिस तीर्थंकरनें सो तीर्थंकर नामकर्म नोगीयें हैं, क्या करनेसें ? सो कहते हैं. पृथ्वीमंमलमें नव्यजीवोंके प्रतिबोधनेसें, देशविरति औ सर्वविरति करनेसें, तीर्थंकर नामकर्म वेदनेमें आता है. जे कर तीर्थंकर नामकर्म का उदय न होवे, तब कृतकृत्य होनेसें नगवान्कों उपदेश देनेका क्या प्रयोजन है ? इस वास्ते जे वादी नगवान्कों निःशरीरी नैरुपाधिक मुख रहित सर्वव्यापी मानते हैं, सो देहादिकके अनावसें धर्मका उपदेशक नहीं हो सक्ता है, जे कर उपाधि रहित सर्वव्यापी परमेश्वरनी उपदेशक होवे, तब तो अब इस कालमें अस्मदादिकोंकों क्यों नहीं उपदेश करता है ? क्योंकि पूर्वकालमें अग्नि आदिक रुषियोंकों उसने प्रेरा, तथा ब्रह्मादि द्वारा चार वेदका उपदेश करा, तथा मूसा, ईसा द्वारा जगत्कों उपदेश करा, तो फेर अब क्यों नहीं उपदेश करता ? परोपकारीके क्या ढील है ? जे कर कहोगेकि इस कालमें सर्व जीव उपदेश मानने योग्य नहीं है, इस वास्ते उपदेश नहीं देता, तब तो पूर्वकालमेंनी सर्व जीवोने परमेश्वर का उपदेश नहीं माना है. प्रथम तो कालासुर प्रमुख अनेक जीवोनें नहीं माना, दूसरा अजाजीलने नहीं माना, औ यहूदानें, तथा कितनेक इसराइलियोंनें नहीं माना, इस वास्ते पूर्वकालमेंनी परमेश्वरकों उपदेश देनां योग्य नहीं था. जे कर कहोगेकि उसकी ओही जाने क्यों कर उपदेश दीया अरु अब किस वास्ते उपदेश नहीं देता. तो फेर तुम क्यों कर कहते हो कि परमेश्वरके मुख नहीं ? इस वास्ते यही सत्य है, कि जो तीर्थंकर नामकर्मके वेदने वास्ते नगवान् उपदेश करते हैं, अरु जिस वखत उपदेश करते हैं उस वखत देहधारी होते हैं. इत्यलं प्रसंगेन ॥ केवली केवलज्ञानवान् पृथ्वीमंमलमें उत्कृष्ट आठ वर्ष ऊणा पूर्वकोटि प्रमाण विचरता है, औ देवताओंके करे हूए कंचनकमलोंके उपरि पग रख कर चलता है, अरु प्राठ प्रत्याहार करकें संयुक्त अनेक सुरासुर कोटि संसेवित विचरता है. यह स्थिति सामान्य प्रकारें केवलीयोंकी कही है, अरु जिनेंद्र तो मध्यस्थिति वाला होता है.

अथ केवलि समुद्घातकरण कहते हैं. "असौ" वो केवली जब वेदनीय कर्मसेंती आयुःकर्मकी स्थिति थोडी जानता है, तब तिसके तुल्य

करने वास्ते केवली, समुद्घात करता है, तिस समुद्घातका स्वरूप कहते हैं, तहां प्रथम समुद्घात पदका अर्थ कहते हैं. यथास्वजावस्थित आत्मप्रदेशोंको वेदनादि सात कारणों करके समंतात् उद्घातनं स्वजावसें अन्यजावपणे परिणमन करनां, तिसका नाम समुद्घात है. सो समुद्घात सात प्रकारें है. १ वेदनास०, २ कषायस०, ३ मरणस०, ४ वैक्रियस०, ५ तेजःस०, ६ आहारकस०, ७ केवलिस०, इन सातों समुद्घातोंमेंसूं केवलिसमुद्घात इहां ग्रहण करणी. तिस केवलिसमुद्घातके अर्थे केवली जगवान् आयु अरु वेदनी कर्मके सम करने वास्ते प्रथम समयमें आत्मप्रदेशों करकें ऊर्ध्वलोकांत लगि दंमल (दंमाकार) लांबे आत्मप्रदेश करता है. दूसरे समयमें पूर्व, पश्चिम, दिशामें आत्मप्रदेशों करकें कपाटाकार करता है, तीसरे समयमें उत्तर, दक्षिण, आत्मप्रदेशोंका मंथानाकार करता है, चौथे समयमें अंतर पूर्ण करनेसें सर्व लोकव्यापी होता है. इस तरें केवली, चौथे समय विश्वव्यापी होता है.

अथ इहांसें निवृत्ति कहते हैं. इस प्रकार करकें केवली आत्मप्रदेशोंको विस्तार करनेके प्रयोगसें कर्मलेशकों सम करता है. सम करकें पीछें तिस समुद्घातसें उलटा निवर्त्तता है, सो ऐसें है, कि केवली चार समयमें जगत् पूर्ण करकें पांचमे समय पूर्णसें निवर्त्तता है. छठे समयमें मंथानपणा दूर करता है, सातमे समयमें कपाट दूर करता है, आठमे समयमें दंमल उपसंहार करता हूआ स्वजावस्थ होता है ॥ यदाहुर्वाचकमुख्याः ॥ दंमं प्रथमे समये, कपाटमथ चोत्तरे तथा समये ॥ मंथानमथ तृतीये, लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥ संहरति पंचमे त्वं, तराणि मंथानमथ पुनः षष्ठे ॥ सप्तमेके तु कपाटं, संहरति तथाऽष्टमे दंमं ॥२॥

अथ केवली समुद्घात करता हूआ जैसा योगवान्, अरु अनाहारक होता है, सो कहते हैं. केवली समुद्घात करता हूआ प्रथम अरु अंत समयमें औदारिककाय योगवाला होता है, दूसरे, अरु छठे समयमें मिश्रौदारिककाय योगी होता है, मिश्रपणा इहां कार्मण करकें औदारिकका है, तथा तीसरे, चौथे, अरु पांचमे समयोंमें केवल कार्मणकाय योगवाला होता है, जिन समयोंमें केवली केवल कार्मण काययोग वाला होता है, तिनही समयोंमें अनाहारक होता है.

अथ जौनसा केवली समुद्घात करता है, अरु जौनसा नहीं करता है, सो कहते हैं. जिसकी छै महिनेसें अधिक आयु शेष है, जे कर उसकों केवल ज्ञान होवे,वोतो निश्चय समुद्घात करे, अरु जिसकी छै महीनेके भीतर आयु होवे, उसकों जो केवल ज्ञान होवे, तो भजना है. वो केवल समुद्घात करेभी, अरु नहींभी करे॥ यदाह॥ छम्मासाऊ सेसा, उप्पन्नं जेसिं केवलं नाणं॥ ते नियमा समुग्घाइय,सेसा समुग्घाय भइयव्वा १

अथ समुद्घातसें निवृत्त हो करकें जो कुछ करता है, सो कहते हैं. वो मन, वचन, अरु काययोगवान् केवली, केवल समुद्घातसें निवृत्त हो कर योग निरोधनके वास्ते शुक्लध्यानका तीसरा पाद ध्याता है. सोइ तीसरा शुक्लध्यान कहते हैं. तिस अवसरमें तिस केवलीकों तीसरा सूक्ष्मक्रिया निवृत्तिक नाम शुक्लध्यान होता है. सो कंपनरूप जो क्रिया है, तिसकों सूक्ष्म करता है.

अथ मन, वचन, कायाके योगोंकों जैसें सूक्ष्म करता है, सो कहते हैं. सो केवली, सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिनामक तीसरा शुक्लध्यान ध्याता, अचिंतात्मवीर्यकी शक्ति करकें बादरकाययोग स्वभावमें स्थित करकें बादर वचनयोग, बादर मनोयोग, यह युगलकों सूक्ष्म करता है.तिस पीछें बादरकाययोगकों सूक्ष्म करता है, फेर सूक्ष्मकाययोगमें क्षण मात्र रह करकें तत्काल सूक्ष्म वचन, मनोयोग, यह युगलका अपचय करता है. तिस पीछें सूक्ष्म काययोगमें क्षण मात्र रह कर प्रगट सो केवली निजात्मानुभव सूक्ष्म क्रिया चिद्रूपकों स्वयमेवही अपणे स्वरूपका अनुभव करता है,(जानता है.)

अथ जो सूक्ष्मक्रियावाले शरीरकी स्थिति है, सोइ केवलीयोंका ध्यान होता है, ऐसी बात कहते हैं. जिस प्रकार करकें छद्मस्थ योगीयोंके मनके स्थिरताकों ध्यान कहते हैं, तैसेंही शरीरकी निश्चलताकों केवलीयोंके ध्यान होता है. अथ शैलेशीकरणका आरंभ करने वाला सूक्ष्म काययोगी जो कुछ करता है, सो कहते हैं. केवलीके ह्रस्वाक्षर पांचके उच्चारण करण मात्र काल जितना आयु शेष रहता है, तब शैलवत् निश्चलकायकों चौथा ध्यानाऽपरिपातरूप शैलेशीकरण होता है. तिस पीछें सो केवली शैलेशीकरणारंभी सूक्ष्मरूप काय योगमें रहता हुआ शीघ्रही अयोगी गुणस्थानमें जाणेकी इच्छा करता है.

अथ सो नगवान केवली सयोगी गुणस्थानके अंत्य समयमें औदारिकद्विक, अस्थिरद्विक, विहायोगतिद्विक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान षट्क, अगुरुलघुचतुष्क, वर्णादिचतुष्क, निर्माण, तैजस, कार्मण, प्रथम संहनन, स्वरद्विक, एकतर वेदनीय. यह तीस प्रकृतिका उदय विछेद होता है. तब तो इहां अंगोपांगके उदय व्यवछेद होनेसें अंत्यांग संस्थानावगाहनासें तीसरे नाग ऊणी अवगाहना करता है, किस कारणसें ? अपने प्रदेशोंकों घनरूप करनेसें चरम शरीरके अंगोपांगमें जो नासिकादि छिद्र हैं, तिनकों पूर्ण करता है, तब स्वात्मप्रदेशोंका घनरूप हो जाता है, तिस वास्ते स्वप्रदेशोंका घनरूप होनेसें तीसरा नाग ऊना होता है. सयोगी गुणस्थानस्थ जीव, एकविध बंधक उपांत्य समय तांइ अरु ज्ञानांतराय, दर्शन चतुष्कोदय व्यवछेद होनेसें बैंतालीस प्रकृति वेदता है, तथा १ निद्रा, २ प्रचला, १२ ज्ञानांतराय दशक, १६ दर्शनचतुष्क रूप सोलां प्रकृतियोंकी सत्ता व्यवछेद होनेसें पंचासी प्रकृतिकी सत्ता है ॥इति सयोगी गुणस्थानं॥१३॥

अथ अयोगी गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं. तेरहवे गुणस्थानके अनंतर चौदहवे अयोगी गुणस्थानमें रहते हूए जिनेंद्रकी लघु पंचाक्षर उच्चारणमात्र "अ इ उ ऋ लृ" ये पांच वर्ण उच्चारण करतां जितना काल लगता है, तितनी स्थिति है. यह अयोगी गुणस्थानमें ध्यानका संनव कहते हैं. इहां अनिवृत्ति नामक चौथा ध्यान होता है, इस चौथे ध्यानका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें सूक्ष्मकाययोग रूप क्रियाजी "समुछिन्ना" सर्वथा निवृत्त हूइ है, सो समुछिन्नक्रियं नाम "चतुर्थ" चौथा ध्यान कहते हैं,कैसा वो ध्यान है ? कि मुक्ति महिलका द्वार (दरवाजे) समान है.

अथ शिष्यके करे दो प्रश्न कहते हैं, शिष्य पूछता है कि हे प्रनु ! देहके होतें हूआं अयोगी क्यों कर हो सक्ता है ? यह प्रथम प्रश्न, तथा जेकर सर्वथा काय योगका अनाव हो गया है, तब देहके अनावसें ध्यान क्यों कर घटेगा ? यह दूसरा प्रश्न है.

अथ आचार्य इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर देते हैं, आचार्य कहता है, कि नो शिष्य ! अत्र अयोगी गुणस्थानमें सूक्ष्म काययोगके होतेंनी अयोगी कहते हैं,किस वास्ते ? कि १ काययोगके अति सूक्ष्म होनेसें सूक्ष्मक्रिया रूप होनेसें अरु वो काययोग शीघ्रही क्षय होनेवाला है, तथा कायके

कार्य करणेमें असमर्थ होनेसें कायके होतेजी अयोगी है, तथा शरीराश्र य होनेसें ध्यानजी है, इस वास्ते विरोध नहीं. किसके? कि अयोगी गुण स्थानवर्त्ती जगवत् परमेष्ठिके. कैसे परमेष्ठी जगवत्के? कि निज शुद्धात्म चिद्रूप तन्मयपणे उत्पन्न, निर्जर, परमानंद बिराजमानके. विरोध नहीं.

अथ ध्यानका निश्चय व्यवहारपणा कहते हैं. तत्त्वसें निश्चय नयके मतसें आत्माही ध्याता, आत्माही करणरूप है, आत्माही कर्मरूपताप न्नकों ध्याता है, तिससेंती अन्य जो कुछ उपचाररूप अष्टांग योग प्रवृ त्तिलक्षण, सो सर्वही व्यवहार नयके मतसें जानना.

अथ अयोगी गुणस्थान वर्त्तीका उपांत्य समयका कृत्य कहते हैं. के वल चिद्रूपमय आत्मस्वरूपका धारक योगी, अयोगी, गुणस्थानवर्त्तीही स्फुट प्रगट उपांत्य समयमें शीघ्र युगपत् समकाल बहत्तरि कर्मप्रकृति क्षय करता है, सो यह है, कि देह पांच, अर्थात् शरीर पांच, बंधन पांच, संघात पांच, अंगोपांग तीन, संस्थान छे, वर्णपंचक, रसपंचक, संहनन षट्क, अथिर षट्क, स्पर्शाष्टक, गंध दो, नीचगोत्र, अगुरुलघुचतुष्क, देवगति, देवानुपूर्वी, खगतिद्विक, प्रत्येकत्रिक, सुस्वर, अपर्याप्तनाम, निर्माणनाम, दोनोमेंसूं कोइजी एक वेदनी. यह सर्व बहत्तर कर्म प्रकृति, मुक्तिपुरीके द्वारमें अर्गलजूत है, सो उपांत्यसमय द्विचरम समयमें क्षय करता है.

अथ अयोगी अंत समयमें जौनसी प्रकृति क्षय करकें जो कुछ करता है, सो कहते हैं. सो अयोगी अंत समयमें एकतर वेदनी, आदेयत्व, प र्याप्तत्व, त्रसत्व, बादरत्व, मनुष्यायु, यशनाम, मनुष्यगति, मनुष्यापूर्वी, सौजाग्य, उच्चगोत्र, पंचेंद्रियत्व, तीर्थंकरनाम. यह तेरां प्रकृति क्षय करकें उसी समयमें सिद्धपर्यायकों प्राप्त होता है. सो सिद्ध परमेष्ठी, सनातन जगवान् शाश्वत लोकांतके पर्यंतकों जाता है. तथा अयोगी गुणस्थान स्थ जीव अबंधक है, तथा एकतर वेदनी, आदेय, यश, सुजग, त्रसत्रि क, पंचेंद्रियत्व, मनुष्यगति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, तीर्थंकरनाम, यह बार ह प्रकृति वेदता है. अंतके दो समयसें पहिलां पंचासीकी सत्ता रहती है, उपांत्य समयमें तेरह प्रकृतिकी सत्ता रहती है, अरु अंत समयमें सत्ता रहित होता है॥ इति अयोगी चतुर्दश गुणस्थान स्वरूप ॥१४॥

आशंकाः—" निःकर्म " (कर्म रहित) आत्मा, तिस समयमें लोकांत में कैसें जाता है ? इत्याशंक्याह.

समाधानः—सिद्ध, कर्म रहितकी ऊर्ध्वगति होती है, "कस्मात् " किस हेतुसें होती है ? तत्राह ॥ पूर्व प्रयोगसें अचिंत्य आत्मवीर्य करकें उपांत्य दो समयमें पंचासी कर्म प्रकृतिके क्षय करने वास्ते पूर्वे जो व्यापार प्रारंभ कीया था, तिससेंतो ऊर्ध्वगति होती है, यह प्रथम हेतु है. तथा कर्मकी संगति रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह दूसरा हेतु है. तथा गाढतर बंधनों करकें रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह तीसरा हेतु है. तथा कर्म रहित जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, यह चौथा हेतु है. यह चार हेतु, चार दृष्टांत करकें सहित कहते हैं. १ जैसें कुंभकारका चक्र पूर्व प्रयोगसें फिरता है, तैसें आत्माकी पूर्वप्रयोगसें ऊर्ध्वगति होती है, २ तथा जैसें माटीके लेपसें रहित होने करकें तूंबेकी जलमें ऊर्ध्वगति होती है, तैसेंही अष्टकर्मरूप लेपकी संगतिसें रहित धर्मास्तिकाय रूप जल करकें आत्माकी ऊर्ध्वगति होती है. ३ तथा जैसें एरंडफल बीजादि बंधनोंसें छुटा हूआ ऊर्ध्वगतिगामी होता है. तैसेंही कर्मबंधके विछेद होनेसें सिद्धकीभी ऊर्ध्वगति होती है. ४ तथा जैसें अग्निका ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव है. तैसेंही आत्माकाभी ऊर्ध्वगमन स्वभाव है.

अथ अधो अरु तिर्यग्गति कर्म रहितकों नहीं होती है, यह बात कहते हैं. सिद्धकी आत्मा, कर्म गौरवके अभावसें नीचेकों नहीं जाती, तथा प्रेरक कर्मके अभावसें आत्मा, तिर्यग्भी नहीं जाती है, तथा कर्म रहित सिद्ध, लोकके उपरभी धर्मास्तिकायके न होनेसें नहीं जाता, क्योंकि ? लोकमेंभी जीव, पुद्गलके चलनेमें धर्मास्तिकाय गतिका हेतु है. मत्स्यादिकोंकों जैसें जल है. सो धर्मास्तिकाय अलोकमें नहीं. इस वास्ते अलोकमें सिद्ध नहीं जाते.

॥ अथ सिद्धोंकी स्थिति ॥ यथा सिद्ध शिलासें उपरि लोकांतमें सिद्ध रहते हैं, सो कहते हैं. ईषत् प्राग्भारानामा सिद्धशिला चौद रज्जुलोकके मस्तकके उपरि व्यवस्थित है, उसकों सिद्धोंके निकट होने करकें सिद्ध शिला कहते हैं, परंतु सिद्ध कुछ उस शिलाके उपर बैठे हूए नहीं हैं, सिद्ध तो उस शिलासें ऊंचे लोकांतमें बिराजमान हैं. वो शिला कैसी है ? कि मनोज्ञा मनोहारिणी है, फेर वो शिला कैसी है ? सुरभि कर्पूरसेंभी अ

धिक सुगंधिवाली है, अरु कोमल है, सूक्ष्मम है अवयव जिसके. फेर वो शिला कैसी है? पुण्या, पवित्र, परमजासुरा, प्रकृष्ट तेजवाली है, मनुष्यक्षेत्र प्रमाण लंबी चौडी है. श्वेत छत्रके आकार है, उत्तान छत्राकार है, उसका बडा शुन रूप है, वो ईषत् प्राग्जारा नामा पृथ्वी सर्वार्थ सिद्ध विमानसें बारा योजन उपरि है, अरु वो पृथ्वी, मध्य जागमें आठ योजनकी मोटी है, तथा प्रांतमें घटती घटती मक्षीके पांखसेंजी पतली है, तिस शिलाके उपरि एक योजन लोकांत है, उस योजनका जो चौथा कोस है, उस कोसके छठे जागमें सिद्धोंकी अवगाहना है, सोइ दो हजार धनुष प्रमाण कोशके छठे जागमें तीन सौ तेत्तीस धनुष अरु बत्तीस अंगुल होता है, उतनी सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना है.

अथ सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहनाका आकार लिखते हैं. जैसें कुठाली (मूषा) तिसमें मोम जरकें गालियें, तिसके गलनेंमें जो आकाशका आकार है, तैसा सिद्धोंका आकार है.

अथ सिद्धोंके ज्ञान दर्शनका विषय लिखते हैं. त्रैलोक्योदरवर्त्ती चउदह रज्ज्वात्मक लोकमें जो गुणपर्याय करकें संयुक्त वस्तु है, तिन जीवाजीव पदार्थोंकों सिद्धमुक्त जानते हैं, सामान्य रूप करकें देखते हैं, विशेष रूप करकें जानते हैं. क्योंकि वस्तु जो है.सो सर्व सामान्य विशेषात्मक हैं.

अथ सिद्धोंके आठ गुण कहते हैं. १ जिस हेतुमें सिद्धोंकों ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसें केवलज्ञान प्रगट हुआ है, तथा २ सिद्धोंकों दर्शनावरण कर्मके क्षय होनेसें दर्शन अनंता हूआ है. तथा ३ सिद्धोंकों शुद्ध, सम्यक्त्व चारित्र क्षायिकरूप हूये हैं, किस हेतुसें हुये हैं? कि दर्शन मोहनीय औ चारित्र मोहनीयके क्षय होनेसें हूये हैं, तथा ४ सिद्धोंकों अनंत अक्षयसुख अरु ५ अनंत वीर्य शक्ति हूये हैं, किस हेतुसें हूये हैं? कि वेदनी कर्मक्षय होनेसें अनंत सुख हूये हैं, अंतराय कर्मके क्षय होनेसें अनंत वीर्य प्रगट हुआ है. तथा ६ सिद्धोंकी अक्षयगति हुइ है, किस हेतुसें? कि आयुःकर्मके क्षय होनेसें हुइ है,तथा ७ नामकर्मके क्षय होनेसें अमूर्त्तपणा सिद्धकों प्रगट जया है, तथा ८ गोत्रकर्मके क्षय होनेसें सिद्धोंकी अनंतावगाहना है.

अथ सिद्धोंका सुख कहते हैं, जो सुख, चक्रवर्त्तीकी पदवीका, अरु जो

सुख, इंद्रादि पदवीका है, तिनसेंनी सिद्धोंका सुख अनंत गुणा है, कैसा वो सुख है? कि क्लेश रहित है "अविद्यास्मिता" राग, द्वेष, अनिनिवेश, ए क्लेश हैं, सो जिनमें नहीं है, फेर कैसा है सुख? "अव्ययं न व्येति स्वस्वनावसेंती इति अव्ययं."

अथ तिन सिद्ध नगवंतोंने जो पाया है, तिसका सार कहते हैं. सिद्ध नगवंतोंने परम पद पाया है, सो कैसा परम पद पाया है? जो आराधकोंकों आराध्य है, सो पद पाया है, तथा जो पद, साधकोंने सम्यग् दर्शनज्ञान चारित्रादि करकें साधीयें हैं. तथा जो पद, ध्यायकोंकों ध्येय है, तथा जो पद, सदाही नानाविध ध्यानोपाय करकें ध्याइयें है. तथा जो पद, अनव्य जीवोंकों सदा डुर्लन है, अरु कितनेक नव्य जीवोंकोंनी डुर्लन है, अरु डुर्नव्योंकों कष्टसें प्राप्त होता है, असा डुर्लन पद, तिन सिद्ध नगवंतोंने पाया है. सो पद कैसा है? कि तत्परम पद है, चिदानंदमय चिद्रूप परमानंद रूप है.

अथ मुक्तिका स्वरूप कहते हैं. कोइक वादी अत्यंताऽनावरूप मोक्ष मानते हैं, सो बौद्धोंकी मोक्ष है. अरु कोइ वादी जडमयी, ज्ञान अनावमयी मोक्ष मानते है, सो नैयायिक वैशेषिक मत वाले हैं. अरु कोइक वादी मोक्ष हो कर फेर संसारमें अवतार लेनां, फेर मोक्षरूप हो जानां, असी मोक्ष मानते हैं, सो आजीवका मतवाले हैं? अरु कोइ तो क्लिष्ट कर्म करकें विषय सुखमय मोक्ष मानते हैं. वे कहते हैं, कि मोक्षमें नोग करने वास्ते बहुत अप्सरा मिलती हैं, औ खाने पीनेकों बहुत वस्तु मिलती है, तथा पान करनेकों बहुत अबी मदिरा मिलती है, औ रहनेकों सुंदर बाग मिलता है, इत्यादि. तथा कोइक वादी कहते हैं कि मोक्ष, जीवकी कदापि नहीं होती है, यह जैमिनी मुनिका मत है. तथा कोइ खरड ज्ञानी असें कहते हैं कि जो वेदोक्त अनुष्ठान करता है, वो सर्वथा उपाधि रहित तो नहीं होता, परंतु शुन पुण्यफलसें सुंदर देह पा कर ईश्वर के साथ मिल कर कितनेक कल्पों लगि सुख नोग करता है. जहां इछा होवे, तहां उड कर चला जाता है. फेर संसारमें जन्म लेता है, फेर पूर्ववत् सुखनोग करता है, इसी तरें अनादि अनंतकाल लगि करता रहेगा, परंतु एक जगे स्थित न रहेगा, असी मोक्ष कहता हैं. अरु सर्वज्ञ अर्हंत परमेश्वरनें तो सत्रूप, ज्ञानदर्शनरूप, तथा असारनूत जो यह संसार

है, तिस्सें सारनूत, निस्सीम आत्यंतिक सुखरूप, अनंत, अतींद्रियानंद अनुनवस्थान, अप्रतिपाति, स्वस्वरूपावस्थानरूप, मोक्ष कही है ॥ यह बृहद्गछीय श्रीवज्रसेनसूरिके शिष्य श्रीहेमतिलकसूरिपट्टप्रतिष्ठित श्रीरत्नशेखरसूरिनें चौदह गुणस्थानकका स्वरूप लिखा है, तिसके अनुसारें नाषामय किंचित् गुणस्थानकस्वरूप, मैंनें लिखा है.

प्रश्नः—हे जैन! तुमने सर्ववादीयोंकी कही हुइ मोक्षकों तो अनुपादेय समझी, अरु अर्हंतकी कही हुइ मोक्ष, उपादेय समझी, इनमें क्या हेतु है?

उत्तरः—हे नव्य! इन सर्व वादीयोंकी मोक्ष, पीछें षट् दर्शनके निरूपणमें लिख आये हें. सो जान लेनी. क्यों कि इन वादीयोंकी कही मोक्ष ठीक नहीं, कारण कि जब अत्यंताऽनावरूप मोक्ष होवे, तब तो आत्माहीका अनाव हो गया, तो फेर मोक्षफल किसकों होवेगा? ऐसा कौन है जो आत्माके अत्यंतानाव होनेमें यत्न करे? तथा जो ज्ञानानावकों मोक्ष मानते हें, सोनी ठीक नहीं. क्यों कि जब ज्ञानही न रहा, तब तो पाषाण नी मोक्षरूप हो गया, तो ऐसा कौन प्रेक्षावान् है. जो अपणी आत्माकों जड पाषाण तुल्य बनानां चाहे? तथा जो सर्व व्यापी आत्माकों मोक्ष मानते हें, अर्थात् जब आत्माकी मोक्ष होती हे, तब आत्मा सर्व व्यापी मोक्षरूप होती हे, यह नी कहनां प्रमाणानभिज्ञ पुरुषोंका है, क्योंकि आत्मा किसी प्रमाणसेंनी सर्वलोकव्यापी सिद्ध नहीं हो सक्ती हे, इसकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तदा स्याद्वादरत्नाकरावतारिका देख लेनी. तथा जो मोक्ष हो कर फेर संसारमें जन्म लेनां, फेर मोक्ष होनां, यह तो मोक्षनी काहेकी? यह तो नांमोंका सांग हूआ, इस वास्ते यहनी ठीक नहीं. अरु जो मोक्षमें स्त्रीयोंके नोग मानते हें, सो विषयके लोलुपी हें, तथा जो खरडज्ञानीने मोक्ष कही हे, सो अप्रामाणिक हे, किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं हे. इस वास्ते जो अर्हंत सर्वज्ञने मोक्ष कही हे, सो निर्दोष हे. इति संक्षेपसें ज्ञानस्वरूप कह्या ॥ इति श्रीतपगछीये मुनिश्री ६ गणि मणिविजय तच्छिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम आनंद विजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे धर्मतत्त्वनिरूपणाधिकारे चतुर्दश गुणस्थान ज्ञाननिर्णयनामा षष्ठः परिछेदः संपूर्णः ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तम परिछेद प्रारंभः ॥

यह परिछेदमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप लिखते हैं. इन सम्यग् दर्शनका स्वरूप कछुक उपर लिखभी आये हैं, तोभी भव्य जीवोंके जानने वास्ते कछुक सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं. यह सम्यक्त्वके दो भेद हैं. एक व्यवहारसम्यक्त्व, अरु दूसरा निश्चयसम्यक्त्व, जो यथार्थतत्त्वरूप विज्ञानपूर्वक रुचि है, तिसका नाम सम्यक्त्व कहते हैं. सो सम्यक्त्व, तीन तत्त्वकी यथार्थ रुचि होनेसें होता है, सो तीन तत्त्व यह हैं, कि एक देव तत्त्व, दूसरा गुरुतत्त्व, तीसरा धर्मतत्त्व. इनकेविषे श्रद्धा (प्रतीति) जो पुरुष करे, सो सम्यक्त्ववान् होता है. तिस श्रद्धाके दो भेद हैं. एक व्यवहार, दूसरा निश्चय. इन दोनों श्रद्धायोंमें प्रथम व्यवहार श्रद्धाका स्वरूप लिखते हैं.

व्यवहारश्रद्धामें देव तो श्री अरिहंत जिसका स्वरूप, प्रथम परिछेदमें लिख आये हैं, सो सर्व इहां जान लेनां. तथा तिस अरिहंतके चार निक्षेप अर्थात् स्वरूप है, सो कहते हैं. १ नामनिक्षेप, २ स्थापनानिक्षेप, ३ द्रव्यनिक्षेप, ४ भावनिक्षेप. इन चारोंका स्वरूप विस्तार पूर्वक देखनां होवे, तदा विशेषावश्यक देख लेनां. तिनमें प्रथम, नाम अर्हंत, सो "नमो अरिहंताणं" असा कहनां, इस पदका जाप करकें अनेक जीव संसार समुद्रकों तर गये हैं. तथा दूसरा स्थापनानिक्षेप, सो अरिहंतकी प्रतिमा समस्त दोषके चिन्होंसें रहित, सहज, सुभग, समचतुरस्रसंस्थानवाली, पद्मासन, तथा कायोत्सर्गमुद्रारूप जो जिनबिंब, तिसकों देख कर, तिसकी सेवा, पूजा करकें अनंत जीव मोक्षकों प्राप्त हूये हैं.

प्रश्नः—अरिहंतकी प्रतिमाकों पूजणी, तथा उसकों नमस्कार करणी, औ स्थापना, निक्षेप, मान कर मुक्तिकी दाता समझणी, यह निःकेवल मूर्खताइके चिन्ह है, क्यों कि प्रतिमा जडरूप क्या दे सक्ती है?

उत्तरः—हे भव्य? तूं किसी शास्त्रकों परमेश्वरका रचा हूआ मानता है, या नहीं? जे कर तूं शास्त्रकों परमेश्वरका बचन मानता है, अरु उस शास्त्रकों सच्चा संसार समुद्रसें पार उतारने वाला मानता है, तब जिनप्रतिमाके माननेमें क्यों लज्जा करता है? क्योंकि जैसा शास्त्र जडरूप है, उसमें स्याही अरु कागज रूप वर्जके और कुछभी नहीं है, तैसी जि

नप्रतिमाभी है, जे कर कहोगे कि कागजों ऊपर स्याहीके अक्षर संस्थानसंयुक्त लिखे जाते हैं, उनके बांचनेंसें परमेश्वरका कहनां मालुम हो जाता है, तब इसी तरें परमेश्वरकी मूर्त्ति देखनेसेंभी परमेश्वरका स्वरूप मालुम होता है.

प्रश्नः—प्रतिमाके देखनेंसें अर्हंत स्वरूप तो स्मरण होता है, परंतु प्रतिमाकी भक्ति करनेसें क्या लाभ है?

उत्तरः—शास्त्रके श्रवण करनेसें परमेश्वरके बचन तो मालुम हो गये,तो भी भक्त जन जैसें शास्त्रकों उच्चस्थानमें रखते हैं, कोइ शिर ऊपर ले कर फिरते हैं,कितनेक गलेमें लटका रखते हैं,औ कितनेक मंजी उपर,कितनेक चौकी आदि उपर शास्त्रोंकों सुंदर सुंदर रुमालोमें लपेटके रखते हैं, औ नमस्कारादि करते हैं, ऐसेंही जिनप्रतिमाकी भक्ति, पूजाभी जान लेनी.

प्रश्नः—जैसें पत्थरकी गायसें दूधकी गरज पूरी नहीं होती है, ऐसें प्रतिमासेंभी कोइ गरज पूरी नहीं होती, तो फेर प्रतिमाकों काहेकों माननां चाहियें?

उत्तरः—जैसें कोइ पुरुष मुखसें गौ, गौ, सच्ची गौ कहता है, उस कहनेंसें उसका बरतन क्यां दूधसें भर जाता है? अर्थात् नहीं भरता है. ऐसें परमेश्वरके नाम लेनें और जाप करनेंसेंभी कुछ नहीं मिलता. इस वास्ते परमेश्वरका नामभी न लेनां चाहियें.

प्रश्नः—परमेश्वरका नाम लेनेसें तो हमारा अंतःकरण शुद्ध होता है.

उत्तरः—ऐसेंही श्रीजिनप्रतिमाके देखनेसेंभी परमेश्वरके स्वरूपका बोध होता है, तातें अंतःकरणकी शुद्धि इहांभी तुल्यही है.

प्रश्नः—परमेश्वरके नाम लेनेसें पुण्य है, तो फेर प्रतिमा काहेकों पूजनी?

उत्तरः—नामसें ऐसें शुद्धपरिणाम नहीं होते, जैसें स्थापना देखनेसें होते है. क्यों कि? जैसें किसी सुंदर यौवनवंती स्त्रीका नाम लेनेसें राग जागता है, अरु जब उस सुंदर यौवनवती स्त्रीकी मूर्त्ति प्रगट सर्वाकार वाली सन्मुख देखीयें, तब अधिकतर विषयराग उत्पन्न होता है, इसी वास्ते श्रीदशवैकालिकसूत्रमें लिखा है, "चित्तभित्ती न निज्झाए नारी वा सुलंकियं" अर्थात् स्त्रीके चित्रामकी भींत देखेसेंभी विकार उत्पन्न होवेगा. यह बात तो प्रगट (प्रसिद्ध) है, कि रागीकी मूर्त्ति देखनेंसें राग उत्पन्न हो

ता है, तथा कोक शास्त्रोक्त स्त्री पुरुषके विषय सेवनके चौरासी चिन्ह दे खनेंसें तत्काल विकार उत्पन्न होता है, ऐसेंही निर्विकार स्थापनारूप शांतमुद्रा, श्रीवीतरागकी देखनेसें निर्विकार शांतिभाव उत्पन्न होता है, ऐसा नाम लेनेंसें नहीं होता है.

प्रश्नः—जैसें किसी स्त्रीके भर्त्तारका नाम देवदत्त है, सो जब देवदत्त मर गया, तब तिसकी स्त्रीने अपने भरतार देवदत्तकी मूर्त्ति बनाइ है, उस मूर्त्तिसें उस स्त्रीका सुहाग तथा संतानोत्पत्ति तथा काम इछा नहीं होती है, इसी तरें भगवान्की मूर्त्तिसेंभी कुछ लाभ नहीं है.

उत्तरः—देवदत्तकी स्त्री देवदत्तके मरे पीछे आसन बिछाय कर देवदत्तके नामकी माला फेरे, तब उस स्त्रीका सुहाग नहीं रहता, तथा भरतारका नाम लेनेंसें संतानोत्पत्तिभी नहीं होती? तथा कामेछाभी पूरी नहीं होती? इसी तरें जो कहेंगे तब तो भगवान्के नाम लेनेसेंभी कुछ सिद्धि नहीं होगी. इस दृष्टांतसें तो भगवान्का नामभी न लेनां चाहियें.

प्रश्नः—प्रतिमा तो कारीगर बनाता है, उस कारीगरकोंभी पूजना चाहियें?

उत्तरः—वेदादि शास्त्रकोंभी लिखारी लिखते हैं, उनकोंभी पूजनां चाहियें? तथा साधुके मात पिताकोंभी साधुसें अधिक पूजनां चाहियें.

प्रश्नः—स्थापना कोइभी इस कालमें बुद्धिमान् नहीं मानता है.

उत्तरः—बुद्धिमान् तो सर्व मानते हैं, परंतु मूर्ख नहीं मानते हैं.

प्रश्नः—कौनसें बुद्धिमान् स्थापना मानते है? तिनोंका नाम लेनां चाहियें.

उत्तरः—प्रथम तो सांसारिक विद्यावाले सर्व बुद्धिमान्, भूगोल, खगोल, द्वीप, अर्थात् युरोपखंडमें विलायत प्रमुखका चित्र सर्व, स्थापनारूप मानते हैं, और बनाते हैं, तथा जो ककार आदि अक्षर हैं, वे सर्व पुरुषके (ईश्वरके) शब्दकी स्थापना करते हैं, तथा जैनीयोंके मतमें एक सौ आठ मणिये, मालामें रखते हैं, परंतु अधिक न्यून नहीं रखते हैं, इसका हेतु यह है, कि जैन, बारह गुण तो अरिहंत पदके मानते हैं, अरु आठ गुण, सिद्ध पदके मानते हैं, तथा छत्तीस गुण, आचार्यपदके मानते हैं, तथा पच्चीस गुण, उपाध्याय पदके मानते हैं, तथा सत्ताइस गुण, मुनि साधु पदके मानते हैं. यह सर्व मिल कर एक सौ आठ गुण होते हैं. इस वास्ते जैनीयोंके मतमें मालामें जो मणिये हैं, सो एकेक मणिया एके

क गुणकी स्थापना है. यह मालाजी स्थापना है, इसी तरें दूसरे म तोमेंजी जो माला तसबी है, सो सर्व किसीनकिसी वस्तुकी स्थापना है. नहीं तो एक सो आठ तथा एक सौ एकका नियम न चाहियें. तथा पादरी लोकोंकीजी बापी हूइ पुस्तकोंके उपर ईशामसीहकी मूर्त्ति उस बखतकी बापी हूइ है, जिस अवसरमें मसीहकों शूली उपर देनेकों ले जाते थे,उस मूर्त्तिके देखनेंसें ईशामसीहकी अवस्था सर्व मालुम होती है, बस, स्थापनाका यही तो प्रयोजन है, कि जो उसके देखनेसें असली वस्तुका स्वरूप याद (स्मरण) हो जाता है. आश्चर्य तो यह है कि अब (इस कालमें) कितनेक तुच्छबुद्धिवाले अपनी बनाई पुस्तकमें यज्ञशाला तथा यज्ञोपकरणकी स्थापना अपणे हाथोंसें करकें अपणे शिष्योंकों जनाते हैं, जो यज्ञोपकरण इस आकृतिके चाहियें, फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हैं. अब विचार करनां चाहियें कि इनमेंजी कोइ अधिक मूर्ख जगत्में है ? जो आप तो स्थापना करते हैं अरु फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हैं, इस वास्ते जो पुरुष अपने शास्त्रके उपदेशककों देहधारी मानेगा, वो अवश्य उमकी मूर्त्तिकूंजी मानेगा, अरु जो अपणे शास्त्रके उपदेष्टाकों देह रहित मानते हैं, वेजी थोडी बुद्धि वाले हैं. क्योंकि जिसके देह नहीं, वो शास्त्रका उपदेष्टा कदापि नहीं हो सक्ता है, कारण कि देह रहित होनां अरु शास्त्रका उपदेश देने वालाजी होनां, इस बातमें कोइजी प्रमाण नहीं है. अरु निराकार सर्वव्यापी परमेश्वरका ध्यानजी कोइ नहीं कर सक्ता है. जैसें आकाशका ध्यान नहीं हो सक्ता है.इस वास्ते अढारह दूषणसें रहित जो परमेश्वर है, तिसकी मूर्त्ति अवश्य माननी पूजनी चाहियें. सो ऐसा देव तो अर्हंतही है, इस वास्ते अर्हंतकी प्रतिमा माननी चाहियें. परंतु किसी दुर्बुद्धिके कुहेतुओंसें बोडनी न चाहियें ॥ इति स्थापना निक्षेप दूसरा.

अब तीसरा द्रव्यनिक्षेप, सो जिस जीवने तीर्थंकर नामकर्मका निकाचित बंध कीना है, तिस जीवमें जावि गुणोंका आरोप अर्थात् ऐसा आगेंकों तीर्थंकर जगवान् होवेगा ? ऐसा वर्त्तमानमें आरोप करकें वंदन (नमस्कार) पूजन करकें, अनेक जीव, मोक्षकों प्राप्ति हूये हैं.

चौथा जावनिक्षेप, सो जो वर्त्तमान कालमें सीमंधर प्रमुख तीर्थंकर

केवलज्ञानसंयुक्त समवसरणमें विराजमान नव्यजीवोंके प्रतिबोधक चतु र्विध संघके स्थापक, सो नाव अर्हंत इनके चरण कमलकी सेवा करकें अनेक जीव मोक्ष होते हैं, यह नावनिक्षेप है. यह चार निक्षेप करकें संयुक्त, ऐसा जो अरिहंत देवाधिदेव, महा गोप, महा माहण, महा निर्यामक, महा सार्थवाह, महा वैद्य, महा परोपकारी, करुणासमुद्र, इत्यादि अनेक उपमा लायक सो नव्य जीवोंके अज्ञानांधकार दूर करणेंकों सूर्य समान, प्रमाण करकें अविरोधि जिसके बचन हैं, औ मुनिमनमोहन, योगीश्वर, चिदानंद घनरूप. ऐसें अरिहंतकों मैं देव, अर्थात् परमेश्वर करिकें मानता हूं, तिसकी सेवा करुं, तिसकी आज्ञा शिर धरुं, ऐसा जो माने, सो प्रथम व्यवहारशुद्ध देवतत्त्व है.

दूसरा निश्चयशुद्ध देवतत्त्व कहते हैं. जो शुद्धात्मस्वरूपकों अनुनव करनां. सो शुद्धात्मस्वरूपही निश्चयदेवतत्त्व है, कैसा है वो आत्मस्वरूप? कि पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, शब्द, क्रिया, इनोंसें रहित, तथा योगमें रहित. अतींद्रिय, अविनाशी, अनुपाधि, अबंधी, अक्लेशी, अमूर्त्ति, शुद्धचैतन्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्रआदि अनंत गुणोंका नाजन, सच्चिदानंदस्वरूपी ऐसी मेरी आत्मा है. सोऽ निश्चयदेव है.

अथ दूसरा गुरुतत्त्व कहते हैं. तिसकेनी दो नेद हैं, एक शुद्धव्यवहारगुरु, दूसरा शुद्ध निश्चयगुरु. उसमें शुद्धव्यवहारगुरुका स्वरूप तो गुरुतत्त्वनिरूपण परिछेदमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां, ऐसें साधुकों गुरु करकें माने. ऐसें गुरुकी आज्ञासें प्रवर्त्ते, ऐसें मुनिकों पात्र बुद्धि करकें शुद्ध अन्नादिक देवे. इति व्यवहार शुद्धगुरुतत्त्वं । तथा निश्चय गुरुतत्त्व तो शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक है, जो हेयोपादेय उपयोगयुक्त परिहार प्रवृत्तिज्ञान, सो निश्चयगुरुतत्त्व है.

अथ तीसरा धर्मतत्त्व कहते हैं. धर्मतत्त्वकेनी दो नेद हैं. एक व्यवहारधर्मतत्त्व, दूसरा निश्चयधर्मतत्त्व. तिनमें जो व्यवहाररूप धर्म है, सो दयामुख्य है. क्यों कि जो सत्यादि व्रत हैं, सो सर्व दयाकी रक्षा वास्ते हैं, इस वास्ते दयाका स्वरूप लिखते हैं. यह दयाके आठ नेद हैं, सो कहते हैं. १ द्रव्यदया, २ नावदया, ३ स्वदया, ४ परदया, ५ स्वरूपदया, ६ अनुबंधदया, ७ व्यवहारदया, ८ निश्चयदया.

१ तहां द्रव्यदया उसकों कहते हैं, कि जो यत्न पूर्वक सर्व काम करणां, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म है, सर्व जैन लोक, पाणी छानके पीते हैं, औ अन्न शोधके खाते हैं; जे कर कोइ जैनी छल (कपट) करता है, कूठ बोलता है, औ विश्वासघात करता है, वो पापी जीव है, सो जैनमतकों कलंकित करता है, वो सर्व उस जीवकाही दोष है, परंतु उसमें जैनधर्मका कुछ दोष नहीं है. जैनधर्म तो असा पवित्र है, कि जिसमें कोइजी अनुचित उपदेश नहीं है, यह बात सर्व सुज्ञ जनोंकों विदित है. इस वास्ते जो काम करणां, सो यत्नपूर्वक जीवरक्षा करकें करणां, सो द्रव्यदया है.

२ दूसरी जावदया है, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा दुर्गति पडतेकों रक्षण वास्ते, अंतःकरणमें अनुकंपा बुद्धि संयुक्त जो परजीवकों हितोपदेश करनां, सो जावदया है.

३ तीसरी स्वदया है, सो अपणी आत्मा अनादि कालसें मिथ्यात्व अशुद्ध उपयोग, अशुद्ध श्रद्धानपूर्बक अशुद्ध प्रवृत्ति, कषायादि जावशस्त्रों करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप जावप्राणोंकी हिंसा होती है, असें जिनवचन सुननेसें पूर्वोक्त जाव शस्त्रोंका त्याग करकें स्वसत्तामें प्रवृत्ति करकें शुद्धोपयोग धारकें विषय कषायोंमें दूर रहनां. अरु शुज, अशुज कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनां. अर्थात् सुखदुःखमें हर्ष विषाद न करणां, प्रतिक्षण अशुज कर्मके निदान दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम स्वदया है. इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव अपनी परिणति शुद्ध करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्रमुख शुज प्रवृत्ति करे, जिन गुण गावे, बहुमान करकें. असत् प्रवृत्तिसें चित्तकों हटा करकें तत्त्वालंबी करे, पुद्गलावलंबीपणां हटावे. इस शुजाश्रवमें यद्यपि देखनेमें कितनेक जीवोंकी हिंसा दीख पडती है, तोजी आत्माकी अशुद्ध परिणति मिटनेसें आत्मा गुणग्राही हो जाती है. जब गुणग्राही जइ, तब ज्ञानवान् हो गइ. इस वास्ते सर्व साधक जीवोंकों यह स्वदया परम साधन है. इस स्वदयाके वास्ते साधुजी नवकल्पी विहार करते हैं, औ उपदेश देते हैं, चर्चा करते हैं, तथा पूजन, प्रतिलेखन करते हैं, यद्यपि नदी नाले उतरने पडत हैं, तहां योगोंकी चपलतासें आश्रव होता है, तोजी चेत

न स्वरूपानुयायी रहता है, जिनाज्ञा पालता है, औ कषायस्थान मंद करता है, स्वछंदता दूर करता है, तथा धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि करता है, यह स्वदयाके वास्ते शुनाश्रव साधुजी अपणे कल्प प्रमाणे आचरण करता है. परंतु यह आश्रव साधकदशामें बाधक नहीं है ॥ इति स्वदया ॥

४ चौथी परदया, सो जो ६ कायके जीवोंकी रक्षा करणी, जहां स्वदया है, तहां परदया तो नियम करकें है, अरु जहां परदया है, तहां स्वदया की नजना है, अर्थात् होवेनी, नहींनी होवे.

५ पांचमी स्वरूपदया, सो जो इहलोक परलोकके विषयसुख वास्ते तथा लोकोंकी देखा देखी करकें जीवरक्षा करे, यह स्वरूप दया है. इस दयामें विषय सुख तो मिल जाते हैं, परंतु मेंडुक चर्णवत् संसारकी वृद्धि हो जाती है, यह देखनेमें तो दया है, परंतु नावें हिंसाही है.

६ छठी अनुबंधदया, सो श्रावक बडे आडंबरसें मुनिकों वंदना करने कों जावे, तथा उपकार बुद्धिसें दूसरे जीवोंकों सन्मार्गमें लाने वास्ते आक्रोश (ताडनादि) करे, कोइकों शिक्षा देवे. यहां देखनेमें तो हिंसा है, परंतु अंतमें स्वपरकों लाजका कारण है, इस वास्ते ये दया है. जैसें साधु, आचार्य, अपणे शिष्य शिष्यणीयोंकों शिक्षा देता है, किसीकों जूल याद कराता है, तथा किसीकों अनुचित काममें मना करता है, किसीकों एक वार कहता है, अरु किसीकों वारंवार शिक्षा देता है, किसी उपर क्रोध नी करता है. शासनके प्रत्यनीककों अपणी लब्धिसें दंम देता है, इत्यादि कामोमें यद्यपि हिंसा दीखती है, तोनी फल दयाका है. इति अनुबंधदया.

७ सातमी व्यवहारदया, सो विधिमार्गानुयायी जीवदया पाले, सर्व क्रिया कलाप उपयोग पूर्वक करे, सो व्यवहार दया है.

८ आठमी निश्चयदया, सो शुद्ध साध्य उपयोगमें एकत्व नाव, अनेदोपयोग साध्यनावमें एकताज्ञान, सो नावदया. इस दयासेंती उपरिले गुणस्थानोंमें जीव चढना है, तिस वास्ते उत्कृष्ट है. इत्यादि अनेक प्रकारसें दयाके स्वरूप, विज्ञानपूर्वक सूत्र, निर्युक्ति, नाष्य, चूर्णी, वृत्ति, इस पंचांगीसम्मत प्रत्यक्षादि प्रमाणपूर्वक नैगमादिनय, नामादि निक्षेप, सप्तनंगी, ज्ञाननय, क्रियानय, तथा निश्चयव्यवहारनय, तथा द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इत्यादि उनय नावमें यथावसरें अर्पित, अनर्पित नयनिपु

एतासें मुख्य गौण जावें उजयनयसम्मत, शुद्धस्याद्वादशैली विज्ञानपूर्वक. श्रीसिद्धांतोक्त दान, शील, तप, जावनारूप शुज प्रवृत्ति, तिसका नाम शुद्ध व्यवहारधर्म कहियें हैं.

तथा दूसरा निश्चयधर्म, सो अपणी आत्माकी आत्मताकों जाणे, औ वस्तुके स्वजावकों जाणे कि जो मेरी आत्मा है. सो शुद्ध चैतन्यरूप, असंख्यातप्रदेशी, अमूर्त्ति, स्वदेहमात्रव्यापी, सर्व पुजलोंसें जिन्न. अखंम, अलिप्त, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, अव्याबाध, सत्चिदानंदादि अनंत गुणमयी. अविनाशी, अनुपाधि, अविकारी, ऐसी मेरी आत्मा है, सो इ उपादेय है. इससें विलक्षण जो परपुजलादिक सो मेरे नहीं. तिस पुजलके पांच विकार हैं, १ शब्द, २ रूप, ३ रस, ४ गंध, ५ स्पर्श. इन पांचोंके उत्तर जेद अनेक हैं. इस लोकाकाशमें जो उद्योत, तथा अंधकार, तथा जो शब्द है, तथा सर्व रूपी वस्तुकी जो गया, रत्नकी कांति, शीत, धूप, नानाप्रकारके रूप, रंग, संस्थान, औ नाना प्रकारके सुगंध, दुर्गंध, नाना प्रकारके रस, तथा सर्व संसारी जीवोंकी देह, जापा, औ मनके विकल्प, दश प्राण, ठे पर्याप्ति, हास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुगुप्सा, औ खुशी, उदासी, कदाग्रह, हठ, लडाइ, क्रोधादि चार कषाय, तथा शाता, अशाता, उंच, नीच, निज्ञ, विकथा, तथा सर्व पुण्यप्रकृति, सर्व पापप्रकृति, तथा रीझ, मोज, खीजना, खेद, तथा ठ लेश्या, लाजालाज, यश, अपयश, मूर्ख, चतुरता, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, कामचेष्टा, गति, जाति, कुल. इत्यादि आठ कर्मका विपाक फल. यह सर्व बातों जीवके अनुजवसें सिद्ध हैं, अरु सूक्ष्मपुजल, इंद्रिय अगोचर है, सो परमाणु आदि लेकें अनेक तरेंका है, इस पूर्वोक्त पुजलके संयोगसें जीव चारों गतिमें जटकता है. यह पुजल, मेरी जाति नहीं, इस पुजलका मेरे साथ कोइ वास्तव संबंध नहीं, औ यह पुजल सर्व त्यागने योग्य है, जो इस पुजलका संसर्ग है, सोइ संसार है, तथा इस पुजलकी संगतिसें ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुण बिगड जाते हैं, जो यह पुजल, इव्यकी रचना है, सो मेरी आत्माका स्वजाव नहीं, तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, यह चारों इव्य ज्ञेय रूप हैं. इनसेंजी मेरा स्वरूप अन्य है, अरु और जो संसारी जीव हैं, सो सर्व अपणी अपणी स्वजाव सत्ताके स्वामी

हैं, सो मेरे ज्ञानमें ज्ञेय रूप है, परंतु मैं इन सर्वसें अन्य हूं, ये मेरे नहीं हैं, मैं इनका नहीं, मैं इनका साथीजी नहीं, औ मैं अपणे स्वरूपका स्वामी हूं, मेरा स्वजाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप है, वर्णरहित, तथा गंध रहित, रस रहित, चैतन्य गुण, अनंत, अव्याबाध, अनंत दान, लान, जोग, उपजोग वीर्यादिक अनंत गुण स्वरूप है. तिनकी श्रद्धा जासन पूर्वक गुणस्वादिक रूप चिदानंद घन मेरा स्वजाव है, ऐसा जो मेरा पूर्णानंद स्वजाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र है, परंतु मुख्य तो मेरा स्वजाव जो है. तिसहीमें जो रमणता करणी, सोइ शुद्ध साधन है. सोइ धर्म है,यह निश्चय धर्म स्वरूप जाननां॥इति धर्मतत्त्व तीसरा॥

इन तीनो तत्त्वोंकी जो श्रद्धा, निश्चल परिणतिरूप, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं. अरु जिस जीवकों इतना बोध न होवे, वो जीव जे कर ऐसें मनमें धारे, पक्षपात न करे, "तं सव्वं निस्संकं, जं जिणेहिं पवेइयं इत्यादि" जो जिनेश्वर देवोने कह्या है अर्थ, सो सर्व निःशंकित सत्य है, ऐसी तत्त्वार्थ श्रद्धाकोंजी सम्यक्दर्शन सम्यक्त्व कहते हैं, इस्सें जो विपरीत होवे, तिसकों मिथ्यात्व कहते हैं, इस मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं. इति व्यवहारसम्यक्त्व स्वरूपं संपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं. जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु, और धर्मका स्वरूप कह्या है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है. चार अनंतानुबंधी, सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उपशम करे. तथा क्षयोपशम करे, तथा क्षय करे. तिस जीवकों निश्चय सम्यक्त्व होती है. परंतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं. केवली जान सक्ता है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट जये जीव नरक अरु तिर्यंच इन दोनों गतिका आयु नहीं बांधता है ॥ इति निश्चय सम्यक्त्वं संपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते हैं, नित्य योगवाइके मिले, अरु शरीरमें कोइ विघ्न न होवे, तब जिनप्रतिमाका दर्शन करिकें पीछेसें जोजन करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करकें वर्त्तमान तीर्थंकरोंका चैत्यवंदन करे, अरु जे कर रोगादि कोइ विघ्नसें दर्शन

न होवे, तो जिसका आगार है, उनका नियम नहीं टूटता है, अरु नग वान्के मंदिरमें मोटी दश आशातना न करे, यह दश आशातनाका नाम कहते हैं. १ तंबोल पान, फल, प्रमुख सर्व खानेकी वस्तु नगवान्के मंदिरमें न खावे, २ पाणी, दूध, ठास, अर्क प्रमुख पीवे नहीं, ३ जिनमंदिरमें बैठके नोजन न करे, ४ जूती प्रमुख मंदिरके अंदर न ल्यावे, ५ स्त्रयादिकसें मैथुन सेवे नहीं, ६ जिनमंदिरमें शयन न करे, ७ जिनमंदिरमें थूंके नहीं, ८ जिनमंदिरमें लघुशंका न करे, ए जिनमंदिरमें दिशा न जावे, १० जिनमंदिरमें जूआ, चोपट, सतरंज प्रमुख न खेले, ये दश आशातना टाले, तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना वर्जे, तथा एक मासमें इतना फूल सेरादि चढाउं, अेक मासमें इतना आदि घृत देकं, (चढाकं) एक वर्षमें इतना अंगलूहणां चढाउं, वर्षमें इतना केशर, इतना चंदन, इतना नीमसेनी बरास, कपूर प्रमुख नगवान्की पूजा वास्ते खरच करुं, अपने धनके अनुसारें वर्ष प्रति धूप अगरबत्ती, कपूर, चढाकं. वर्षमें अष्ट प्रकारी सत्तरे प्रकारी इतनीयां पूजा कराकं तथा करुं, औ वर्षमें इतना रूपैया साधारण इव्यमें खरचुं, वर्षप्रति पूजावास्ते इतना इव्य खरचूं, दिन दिन प्रति एक नवकरवाली, अर्थात् माला, पंच परमेष्ठिमंत्रकी मोक्षनिमित्त जाप करुं, जेकर कोइ दिन न जपणां हो जावे, तो अगले दिन दूणा जाप करुं, परंतु रोगादि कारणें आगार है. दिन प्रति समर्थ होतें नमस्कार सहित. अर्थात् दो घडी दिन चढ़ तक चार आहारका प्रत्याख्यान करुं. रात्रिमें डुविहार प्रत्याख्यान करुं, औ रस्ते चलते रोगादि कारणसें न होवे, तो आगार. वर्ष प्रति इतना सार्धामिवात्सल्य करुं, (साधर्मि जिमावुं) इस रीतीसें सम्यक्त्व पालुं, अरु सम्यक्त्वके पांच अतिचार टालुं, सो पांच अतिचार कहते है.

१ प्रथम शंका अतिचार, सो जिनवचनमें शंका करणी, क्यों कि जिन वचन बहुत गंनीर हैं, अरु तिनका यथार्थ अर्थ कहने वाला इस कालमें कोइ गुरु नहीं, अरु शास्त्र जो है, सो अनंतनयात्मक है, तिसकी गिणती, तथा संज्ञा, विचित्र तरेंकी है, कहीक जगें तो कोडी शब्द क्रोडका वाचक है, अरु किसी जगें रूढी वस्तुका वाचक है, क्योंकि श्रीजिननद्रगणि क्षमाश्रमण सर्वसंघका सम्मत आचार्य, संघयण नामा पुस्तकमें तथा विशे

पणवती ग्रंथमें लिखते हैं, कि कोइक आचार्य कोडी शब्दकों एक कोड का वाचक नहीं मानते हैं, किंतु संज्ञांतर मानते हैं, क्यों कि अब वर्त्तमान कालमेंजी वीशकों कोडी कहते हैं, तथा सौराष्ट्र देश अर्थात् सोरठ देशमें अब वर्त्तमान कालमेंजी पांच आनेकों एक कोडी कहते हैं, यह जैसें कोडी शब्दमें मतांतर हैं, ऐसेंही शत सहस्र शब्दजो किसी संज्ञाका वाचक होवे तो कुछ दोष नहीं तथा शत्रुंजय तीर्थमें जहां मुनि मोक्ष गये हैं, तहांजी पांच कोडी आदि शब्दोंकी कोइ संज्ञा विशेष है. ऐसेंही छप्पन कुल कोडी यादव कहते हैं, तोहांजी यादवोंके छप्पन कुलोंकी कोडी कोइ संज्ञा विशेष है, इसी तरें सर्व जग्गें शास्त्रोमें चक्रवर्त्तीकी सेना तथा कोणिक चेटक राजाओंकी सेनामें जो कोडी. अरु शत सहस्र शब्द हैं, सो संज्ञाविशेषके वाचक संजव होते हैं, इस वास्ते सर्व शब्दोंका सर्व जग्गे एक सरीखा अर्थ माननां युक्त नहीं, इस कथनमें पूज्यश्री जिनजद्रगणि क्षमाश्रमण पूरे साक्षी देने वाले हैं.

तथा कितनेक नव्य जीवोंने सामान्य प्रकारें ऐसा सुण रखा है, जो पांचमे आरेमें उत्कृष्ट एक सौ वीश वर्षका आयु है, जब वो जीव कीसी अंग्रेजके मुखसें सुनते हैं, तथा और किसीके मुखसें सुनते हैं, कि डेढ सौ तथा दो सौ, तथा अढाइ सौ वर्षकी आयुवालेजी जोट्टानादि किसी देशमें मनुष्य होते हैं, तब दृढ श्रद्धावाले जोले जीव तो कदापि किसीका कहनां नहीं मानते हैं, चाहो बडी आयु वाला मनुष्य उनके सन्मुखजी खडा कर दो, तोजी वे जूठही मानेंगे, क्योंकि वे जानते हैं, कि जो हमारे जिनेंद्रदेवका कथन है, सो कदापि जूठा नहीं है, परंतु जिनकों जैनमतकी दृढ श्रद्धा नहीं है, वे कुछ सांसारिक विद्यामें निपुन हैं, चाहो जैनमत वालेही हैं, उनके मनमें अवश्य शंका पड जायगी, क्यों कि उनोंनेंजी सर्व जैनमतके शास्त्र सुने नहीं हैं, शास्त्रमें जो कथन है, सो सापेक्षिक है. बाहुल्यता करकें कह्या हूआ है, सो कथंचित् जो अन्यथा होवे, तो आश्चर्य नहीं. क्यों कि बहुत शास्त्रोंमें लिखा है. कि ज्योतिषचक्र, अर्थात् तारा मंमल है, सो सर्व तारे मेरु पर्वतकों प्रदक्षिणा देते हैं, ये बात सर्व जैनी मानते हैं, परंतु ध्रुवका तारा कहींजी नहीं जाता है, अरु ध्रुवके पास जो तारे सप्त ऋषि रूढिमें प्रसिद्ध हैं, जिनकों बालक मंजी पहरेदार

कुत्ता, और चोर कहते हैं, तथा औरभी कितनेक तारे ध्रुवके पार्श्ववर्त्ती हैं, वे सर्व ध्रुवकी प्रदक्षिणा देते हैं, परंतु मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा नहीं देते हैं, यह बात हमने आंखोंसें देखी है, अरु औरोंको दिखा सकते हैं, तो फेर प्रथम जो शास्त्रकारने कहा था कि सर्व तारे मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं यह कहनां जैनी, क्यों कर सत्य मानते हैं?

इसका समाधान ऐसा है, कि प्रथम जो कथन है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा है, क्योंकि बहुत तारा मंडल ऐसा है, जो मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता है, अरु कितनेक ऐसे हैं जो ध्रुवकेही आस पास चक्र देते हैं, यह समाधान, पूज्यश्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजीनें संघयण, तथा विशेषणवती ग्रंथमें लिखा है, कि मेरु पर्वतके चारों ओर चार ध्रुव हैं, अरु उन चारों ध्रुवोंके पास ऐसे ऐसे तारे हैं, जो सदा उन चारों ध्रुवोंकेही आस पास चक्र देते हैं. इस्सें यह सिद्ध हूआकि जो शास्त्रका कहनां है सो बाहुल्यतासें अरु किसी अपेक्षा करकें संयुक्त है, अरु किसी जगे स्थूल व्यवहार नयके मतसें कथन है, परंतु सूक्ष्म, अधिक न्यूनताकी विवक्षा नहीं करी है, इसी तरें सौ वर्षसें अधिक आयु जो पंचम कालमें कही है. सो बाहुल्यताकी अपेक्षा तथा आर्यखंड अर्थात् मध्यखंडकी अपेक्षा है, जे कर किसी पुरुषकी १५०, २००, २५०, इत्यादि वर्षोंकी आयु हो जावे, तो मनमें जिनवचनकी शंका न करणी कि क्या जाने जिनवचन सत्य है कि जूठ है? ऐसा विकल्प मनमें नहीं करनां, क्योंकि शास्त्रका आशय अतिगंभीर है, अरु ऐसा गीतार्थ कोइ गुरु नहीं है, जो यथार्थ बतला देवे.

इस आयुके कहनेका यह समाधान है, कि भगवान् श्रीमहावीरके निर्वाण पीछें (५७५) वर्षके लग भग जैनमतका आचार्य श्रीआर्यरक्षित सूरि साढे नव पूर्वका पाठक जिनोके पास शक्रइंद्र, निगोद जीवोंका स्वरूप सुनने आया था, तब शक्रइंद्रने प्रथम वृद्धब्राह्मणका रूप करकें श्रीआर्यरक्षित सूरिकों पूछा, कि हे भगवन्! में वृद्ध हो गया हों, जे कर मेरी आयु थोडी होवे, तो मुझे बता दीजीयें, जो मैं अनशन करुं, तब श्रीआर्यरक्षित सूरिजीने दशमे पूर्वके यवका अध्ययनमें उपयोग दे कर देखा, तो तिसकी आयु सौ वर्षसें अधिक जानी, फेर उपयोग दे कर

देखा, तो दोसें वर्षसें अधिक आयु जानी, फेर उपयोग दीया, तो तीन सें वर्षसें अधिक आयु जानी, तब आचार्य श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने विचार कीया, जो यह भारत वर्षका मनुष्य नहीं है. ये कथानक, आवश्यकसूत्रकी सामायिकअध्ययनकी उपोद्घात निर्युक्तिमें है, इस कथानकसें ऐसा निकलता है, जो भारत वर्षके मनुष्यकी आयु तीन सौ वर्षकी होवे, तो आश्चर्य नहीं, क्यों कि श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने जो तीन सौ वर्षसें जब अधिक आयु देखी, तब कहा,ये भारत वर्षका मनुष्य नहीं. इसी कहनेसें कथंचित् तीन सौ वर्षकी आयु भारत वर्षकी होवे. तो क्या आश्चर्य है?

तथा कितनेक जीवोंके मनमें ऐसीभी शंका होवे, तो उसका क्या समाधान है? भरत खंड जैनमतवाले कहां तक मानते हैं? जो कुछ इस कालमें लोकोंके देखने वा सुननेमें आता है. कि अमेरिकादि देश वे सर्व जैनलोक भारत वर्ष मानते हैं, रूष, वा चीनादि देश इन सर्वकों भारत वर्ष कहते हैं. अरु अमेरिकादि विलायतादि सर्व मुलकोंके बीचमें जो समुद्र पडा है, सो ऋषभ देव अरु भरत चक्रवर्त्तीके समयमें नहीं था, किंतु जगती बाहिर जो महासमुद्र है, सोइ था. इस कारणसें अर्थात् समुद्रके अंदर आ जानेसें असली भरत क्षेत्रका स्वरूप बिगड गया, कहीं समुद्र हो गया, और कहीं द्वीपें बन गये.

इस विषे जैनमतका शत्रुंजय महात्म्यनामा जो ग्रंथ है. तिसमें लिखा है कि दूसरा सगरनामा चक्रवर्त्ती हूआ है,वो इस समुद्रकों भारतवर्षमें जंबू द्वीपके दक्षिणदिशिके विजयंत नामक दरवाजेके रस्तेसें ल्याया है, तिसके लानेसें बर्बरादि अनेक हजारो देश तो जलमें डूब कर समुद्रकी भूमिका बन गये, अरु जो उच्चस्थल थे,वे द्वीप और विलायतादि देशो बन गये,पीछेसें असली देशोका नाम नष्ट होनेसें बहुत देशोंके नाम कल्पित रखे गये, अरु भरतखंड कुछ औरका और बन गया, कितनेक देशोंके चारों ओर समुद्र फिर गया, अरु कितनेक देशोंके उत्तर खंडोमें बर्फके पड जानेसें,और समयके बदलनेसें, सर्वथा पानी जम गया, अरु समुद्रके साथ मिल गया, तब तो चारों ओर समुद्रही दीखने लगा है, तिस लिये आना जाना बंद हो गया, अरु हमारे शास्त्रकार तो प्रथम आरेमें तथा ऋषभ देव अरु भरतचक्रवर्त्तीके समयमें जो इस भारत वर्षका हाल था, सोइ सदासें लि

खते चले आये. परंतु भरत क्षेत्रके बिगड तिगडके औरका और बन जानेसें किसीने विस्तार पूर्वक वृत्तांत ठीक ठीक नहीं लिखा; अरु जे कर लिखाभी होवेगा, तोभी जैनमतके उपर बडी बडी विपत्तीयों पडीयों है, उनसें लाखों क्या, बलकि क्रोडों ग्रंथ नष्ट हो गये हैं, इस वास्ते हम ठीक ठीक सर्व वृत्तांत बता नहीं सके हैं, परंतु जितनेक जैन मतके ग्रंथ मेरे वांचनेमें आये हैं, उनमेंसूं जो मुझे ठीक पडी है, सो मैं इस ग्रंथमें लिखता हूं.

इस वास्ते सर्वक्षेत्र अदल बदल हो गये हैं, गंगा सिंधु असलस्थानमें वहनेमें रह गइ, क्योंकि अगला प्रवाह तो, समुद्रने रोक लीया, अरु पीछेसें पाणी आनां बंद हो गया, फेर जिस पर्वतसें अधिक नदीकी प्रवृत्ति भइ, वो नदी, उसी पर्वतसें निकलती लोकोनें मान लीनी, इस वास्ते गंगा अरु सिंधुमें क्षुल्लक हेमवंत पर्वतसें जल आनां बंद हो गया, नाममात्र गंगा सिंधु रह गइ. औ नगरीयोंमें बनिता नगरीकी कल्पना पर अयोध्या बनाइ गइ, अरु काबलके परें तक्षिला अर्थात् बाहुबलकी नगरीकी कल्पना करी गइ, इस समयमें वो तक्षिलाभी नहीं रही. उसका नाम गजनी प्रसिद्ध है, क्योंकि जैनीयोंकी श्रद्धा अनुसारें प्रथम आरेकों अरु ऋषभदेव तथा भरत राजाके समयके व्यतीत होनेमें असंख्य वर्ष व्यतीत हो गये हैं, तो फेर नदी, पर्वत, देश, नगरोंके उलट पलट हो जानेमें क्या आश्चर्य है ?

औ समुद्रका देशों उपर फिर जानां, तो तौरेत ग्रंथसेंभी ठीक ठीक सिद्ध होता है, अरु पुराणादि ग्रंथोमेंभी लिखा है, जो कोइ ऐसा समझभी था कि समुद्रमें पाणी नहीं था, पीछेसें आया है, इस वास्ते शत्रुंजय माहात्म्यमें जो लिखा है कि भरत क्षेत्रमें समुद्रका पाणी सगर चक्रवर्त्ती ल्याया है, सो कहनां ठीक है.

तथा विजयसेन सूरि श्रीतपगछका आचार्य, अपने प्रश्नोत्तरोंमें लिखते हैं, कि मागध, वरदाम, अरु प्रभासक नामक तीन जो तीर्थ हैं, सो जगतीके बाहिरले समुद्रमें हैं, इस्सेंभी यही सिद्ध होता है, कि भरतचक्रवर्त्ती जब षट् खंड साधने, अरु मागधादि तीर्थोंकों साधनेकों गये थे, तब यह समुद्रका पानी रस्तेमें नहीं था, अरु शास्त्रकारोने तो सर्व शास्त्रोंकी

शैली श्रीषऋजदेवके कथानुसार रक्की है, इस वास्ते चक्रवर्त्यादिकोंका कथन नरतचक्रवर्त्तीके सरीखा कह दीया है,

तथा इस कालमें कितनेक विद्वानोनें नूगोलके हिसाबसें जो कुतब बनाये हैं, अरु उनके अनुसारें शरद तथा गरम देशोंका विनाग कीया है, यद्यपि उनके देखने सुनने मूजब तथा उनके अनुमानके अनुसारें वर्त्तमान समयमें अैसाही होवेगा, परंतु सदा अैसाही था. यह कहनां ठीक नहीं. क्योंकि नूगोलहस्तामलक पुस्तकमें लिखा है, कि रूपदेशकी उत्तर के पासें जहां बरफके सिवाय और कुछनी नहीं है, तहां गरमीके दिनोमें बर्फके गलनेसें तथा किसी जगे बर्फके करार गिर पडनेसें उसके हेठसें एक किसमके हाथी निकलते हैं, सोजी सेंकडो हजारों निकलते हैं, जिनका नाम उस देशवाले मेंमाथ कहते हैं, अब वडा आश्चर्य तो इन मेंमाथोंके देखनेसें ये आता है, कि ये जानवर गरम मुलकोंके रहनेवाले हैं, अरु यह शरद मुलकमें कहांसें आये? अरु इनके खाने वास्तेजी कुछ नहीं, इस कालमें जो एकजी हाथी उस मुलकमें जा कर बांधीयें, तो थोडेसें कालमें मर जायगा, नहीं तो ये लाखो मेंमाथ इस मुलकमें क्यों कर जाते होयंगे? और क्या खाते होयंगे? इसमें यही कहनां पडेगा कि किसी समयमें ये मुलक गरम होवेगा, पीछे पवनकी तसीर बदलनेसें शरद मुलक हो गया, इस वृत्तांतसें यह सिद्ध होता है, कि जो शरद मुलक हैं, वे गरम हो सक्ते हैं, अरु जो गरम मुलक हैं. वे किसी कालमें शरद हो जाते हैं, इस वास्ते नूगोलके अनुसारें जो शरदी गरमीकी व्यवस्था कल्पना करनी है, वे हमेशांके वास्ते डुरस्त नहीं, क्या जाने देशोंकी क्या क्या व्यवस्था बदल चूकी है? और क्या क्या बदलेगी? इसका पूरा स्वरूप तो सर्वज्ञ जान सक्ता है.

तथा इस पृथ्वीकों नूगोल कहते हैं. अरु यहजी कहते हैं कि सूर्य नहीं फिरता, किंतु पृथ्वी, सूर्यके इर्द गिर्द घूमती है, यह बात कुछ इंग्रेजोहीने नहीं निकाली है, किंतु इंग्रेजोसें पहिलेंजी इस बातके माननेवाले जारत वर्षमें थे, क्यों कि जैनमतका शीलंगाचार्य जो विक्रमके ७०० वर्षमें हूआ है, वे आचार्य आचारांगसूत्रकी वृत्तिमें लिखते हैं, कि कितनेक अैसाजी मानते हैं, जो नूगोल फिरता है, अरु सू

ये स्थिर रहता है, परंतु यह मत जैनीयोंका नहीं है, उनके शास्त्रोमें जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती है, औ सूर्यके भ्रमण करनेंके एक सौ चौरासी मंडल आकाशमें हैं, उन मंडलोंमें प्रवेश करनां, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटनां, वधनां, अरु मौसमोंका बदलनां, ग्रहणका लगनां, सूर्यके अस्त उदय होनेमें मतोंका विवाद, इत्यादि बात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति शास्त्रोंके पढनेसें अच्छी तरेंसें मालुम पड जाती है.

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके जहाजकी ध्वजा प्रथम दीखती है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समजमें अैसी आती होवेगी, परंतु हमारी समजमें तो नहीं आती है, हम तो अैसे समजते हैं, कि हमारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्सें वस्तु गोलादि दीख पडती है, क्योंकि जब हम सूधी सडक पर खडे होते हैं, तब हमारे पगोंकी जगें सडक चौडी मालुम पडती है, अरु जब दूर नजरसें देखते हैं, तब वो ही सडक संकुचित मालुम पडती है, अरु आकाशमें पक्षीकों जब शिरके उपर उडता देखते हैं, तब हमकों उंचा दूर दीख पडता है, अरु जब उसी जानवरकों थोडीसी दूर जातेकों देखते हैं तब धरतीसें बहुत निकट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाइ नहीं हो सक्ती है, तथा आकाशकों जब देखते हैं तब तंबूसा दिखलाइ देता है, इसमें जो कोइ यह बात कहे कि धरतीकी गोलाइके सबबसें आकाशभी गोल दीखता है, यह कहनां ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नहीं हो सकि है, इस वास्ते नेत्रोंमें जिस वस्तुके जाननेकी जैसी योग्यता है, वैसी वस्तु दीखती है, यह कहनां ठीक मालुम होता है.

तथा यह पृथ्वी, भरतखंडादिककी बहुत जगें उंची,नीची, मालुम होती है, क्योंकि श्रीहेमचंद्रसूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रभचरित्रादि ग्रंथोमें लिखते हैं, कि लंकासेंति इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तब आठ योजन नीचें पाताललंका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवें, तब तो क्या जाने अमेरिकाही पताललंका होवे? अरु नीची जगा होनेसें बुद्धिमानो कों पृथ्वी गोल मालुम पडती होवेगी, इसी पाताल लंकाकी तरें और जगेंभी धरती उंची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि पश्चिम महावि

देहकी धरती एक हजार योजन उंची लिखी है, इसी तरें और जगेंजी उंची नीची धरतीके सबबसें कुछ औरका और दीख पडे, तो जैनमती कों श्रीअर्हंत नगवंतके कहनेमें शंका न करनी चाहियें.

तथा कितनेक पुस्तकोमें लिखा देखा और सुनाजी है, जो अमेरिकादि मुलकोमें असी विद्या निकाली है. कि जिस करकें वो दो हजारादि वर्ष पहिलें जो मनुष्य मर गये थे, उनकों बुलाते हें, अरु उनसें उस बख्तका सर्व हाल पूछते हें, अरु वे सर्व अपणी व्यवस्था बतलाते हैं, परंतु परोक्ष शब्द उनका सुणाइ देता है, वे प्रत्यक्ष नहीं दीखते हें, तथा अनेक तरेंके तमासे दीखाते हें, कि जिनके देखनेसें अल्पबुद्धियोंकी बुद्धि अस्त व्यस्त हो जाती है, तब उनके मनमें अनेक शंका कंखा उत्पन्न हो जाती हें. जिसके सबबसें अर्हंतकथित धर्ममें अनादर हो जाता है, क्योंकि उन जीवोनें नतो पूरे जैनमतके शास्त्र पढे हे, औ न सुने हें, इस वास्ते उनके मनकों जलद अधीरज हो जाती है, परंतु अपणे घरकी सर्व पुस्तकों विना वांचे, विना सुने, तुछ बातके वास्ते एक बारगी जिनधर्ममें शंका न लानी चाहियें, क्योंकि यह पूर्वोक्त सर्ववृत्तांत इंद्रजालकी पूर्णविद्या जिसकों आती होवे, वो दिखा सक्ता है, मैंने किसी ग्रंथमें असा लिखा देखा है, जो कुमारपाल राजाके समयमें एक बोधिदेव नामक ब्राह्मण था, उसने राजा कुमारपालकी श्रद्धा जैन मतसें हटानेके वास्ते कुमारपालसें जो प्रथम उनके वंशकें मूलराज आदि सात राजाओं हो गये थे. उसकों नरककुंममें पडे हूए, विलाप करते हूए, अरु असें कहते हूए, दिखपडे, कि हे पुत्र! जिस दिनसें तूनें जैनधर्म अंगीकार कीया है, उस दिनसें हम तेरे सात पुरुषों नरक कुंममें जा पडे हैं, जे कर तूं हमारा नला चाहे, तो जैनधर्म छोड दे, असी बात देख कर राजा कुमारपाल चित्तमें घबराया, तब जा कर अपने गुरु श्रीहेमचंद्राचार्यकों पूछा, कि महाराज! यह क्या बृत्तांत हे? तब श्रीहेमचंद्र आचार्यजीने कहा कि हे राजेंद्र! ये सर्व इंद्रजालकी विद्या है, आउ मैंनी तुमकों कुछ तमासा दिखाऊं? तब राजा कुमारपालकों मकानके अंदर ले मकानमें ले जा कर चउवीस तीर्थंकर समवसरणमें जूदे जूदे बैठे हें, अरु कुमारपालके वेही सात पुरुषों तीर्थंकरोंकी सेवा करते हैं, अरु राजा कुमारपा

लकों कहते हैं, कि हे पुत्र! तूं बडा पुण्यात्मा है, कि जिसने जैनधर्म अंगीकार कीया है, जिस दिनसें तूने जैनधर्म अंगीकार कीया है, उस दिनसें हम नरककुंमसें निकल कर स्वर्गवासी हूए हैं, इस वास्ते तूं धर्ममें दृढ रहियो. तद् पीछें श्री हेमचंद्रसूरि,राजा कुमारपालकों बाहिर लाये, पीछें राजाने पूछी कि महाराज! यह क्या तमासा आश्चर्यकारी है? तब श्रीहेमचंद्रसूरि कहते नये कि हे राजा! ये इंद्रजालकी विद्या जिसकों आती होवे, वो कर सक्ता है, क्योंकि इंद्रजाल विद्याके सत्ताईस पीठ, है, जिनमेंसूं सत्तरे पीठ संसारमें प्रचलित हैं, परंतु सत्ताईस पीठ में जानता हूं, और कोइभी भारत वर्षमें नहीं जानता है, अरु जिन गुरुवोने हमकों ये विद्यादीनी थी, उनोने ऐसी आज्ञाभी करी है, कि आगेकों तुमनें किसीकों ये विद्या न देनी, क्यों कि इस विद्यासें बडे अनर्थ उत्पन्न हो जायगे, क्योंकि इस कालमें जीव तुच्छबुद्धिवाले हैं, इस लिये उनकों ये विद्या जरेगी नहीं, इसी वास्ते हमारे आचार्योनें योनिप्राभृत शास्त्र विछेद कर दीया है, उसी योनिप्राभृतके अनुसार यह इंद्रजाल रचा हूआ है, इस योनिप्राभृतका कथन व्यवहारभाष्यचूर्णीमें लिखा है, कि उस योनिप्राभृतमें तंत्रविद्या है, जिस्सें सर्प, घोडे, हाथी, वगैरे जिंदे जानवर वस्तुवोंके मिलानेंसें बन जाते हैं, तथा सुवर्ण, मणि, रत्नप्रमुख बन जाते हैं, उन मसालोंमें ऐसी मिलन शक्ति है, कि चाहे सो बना लो? इस वास्ते कोइ आज नवी वस्तु देख कर जैनधर्मसें चलायमान न होनां चाहियें. तत्त्वार्थकी महाभाष्यमें सामंतभद्र आचार्यजी लिखते हैं, कि इंद्रजालिया तीर्थंकरकें समान बाह्य सिद्धि सर्व बना सक्ता है, इस वास्ते कोइ बातका चमत्कार देखकें जिन बचनोमें शंका कदापि न करनी.

तथा कितनेक जैनमत वालोंकों यहभी आश्चर्य है, कि जदा आर्यावर्त्तमें दो प्रहर दिन होता है, तदा अमेरीकामें अर्द्धरात्रि होती है अरु जदा अमेरीकामें दो प्रहर दिन होता है, तदा आर्यावर्त्तमें अर्द्धरात्रि होती है, कितनेक लोकोनें घडीयोंके हिसाबसें तथा तारकी खबरोंसें इस बातका निश्चय अच्छी तरेसें करा बतलाते है, इस बातका उत्तर मैं यथार्थ नहीं दे सक्ता हूं, मैरी श्रद्धा ऐसी नहीं है कि पूर्व आचार्योंके अनुसारें बिना समाधान कर सकूं? क्योंकि मेरी कल्पनासें कुछ जैनमत सत्य नहीं

हो सक्ता है, जैनमत तो अपणे स्वरूपसेंही सत्य बनेगा, जे कर मेरी कल्पनाही सत्यका कारण होवे, तब तो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहेगी, तब तो जिसके मनमें जो अर्थ अछा लगे, सो अर्थ कर लेवेगा. जैसें वर्त्तमानमें किसी पाखंमी मस्करीने ऋग्वेदादि वेदों उपर स्वकपोलकल्पित अर्थ बनाये हैं, सो हमने वांचनी लीये हैं, उनोनें वेद मंत्रादिकोंके उपर जो नाष्य बनाया है, उसमें मंत्रोंके अर्थोंमें ऐसा लिखा है कि "अग्निबोट" अर्थात् धूयेकी कलसें चलनेवाले जहाज तथा रेलगाडीके चलनेकी विधि, तथा पृथ्वी गोल है, अरु सूर्यके चारों ओर घूमती है, अरु सूर्य स्थिर है, इत्यादि जो अंग्रेजोने अपनी बुद्धिके बलसें विद्या उत्पन्न करी है, इन सर्व विद्यायोंका वेदोमेंनी कथन है, अपने शिष्योंकों वेदका महत्त्व जनानेके वास्ते स्वकपोलकल्पित अर्थ बना लीये हैं. अरु पूर्वे जो महीधरादि पंमितोने वेदोंके उपर दीपिका तथा नाष्य रचे हैं, उनकी निंदा अर्थात् मूर्खता प्रगट करी है, वे मूर्ख थे, उनकों वेदका अर्थ नहीं आता था.

प्रश्नः–पिछले अर्थ छोड कर जो नवीन अर्थ बनायें गये, इनका क्या कारण है?

उत्तरः–प्रथम तो वेदोंके प्राचीन नाष्य और दीपिका माननेसें वेदोंकी सत्यता, अरु इश्वरोक्तता, तथा प्राचीनता सिद्ध नहीं होती. इसी वास्ते ईशावास्य उपनिषद् वर्जके सर्व उपनिषदों, और सर्व ब्राह्मण नाग, तथा सर्व स्मृति, पुराणादि शास्त्र, नाष्य, दीपिकादि, मानने छोड दीये, उनोने यह बिचार कीया है कि इन सर्व पूर्वोक्त ग्रंथोंके माननेसें हमारा मत दूसरे मतवाले खंमित कर देवेंगे, क्योंकि ये पूर्वोक्त सर्व ग्रंथ युक्ति प्रमाणसें विकल हें, अरु प्राचीनोनें जो अर्थ करे हैं, उनमें बहुत अर्थ ऐसें हैं, कि जिनोंके सुननेसें श्रोता जनोंकोंनी लज्जा उत्पन्न होती है, क्योंकि महीधरकृत दीपिका जो वेदकी टीका है उसमें मंत्रादिकोंके जो अर्थ लिखे हें, उनमें लिखा है कि यज्ञपत्नी घोडेका लिंग पकडके अपनी योनिमें प्रक्षेप करे इत्यादि अर्थ है, सो मैं आगें लिखुंगा इत्यादि अर्थोंके छोडने वास्ते अरु वेदोंके खंमन न होने वास्ते स्वकपोलकल्पित नाष्य बना कर मानुं अंग्रेजोंके चाल चलन, और इंजिलके मतानुसार अर्थ बना

ये गये हैं, परंतु उसकों बुद्धिमान् तो कोइजी मानता नहीं है, अरु जो मानते हैं, वो कुछ जानते नहीं है, क्योंकि जब पूर्वले ऋषि, मुनि, पंमित झूठे हैं, अरु उनके बनाये हूये अर्थ असत्य हैं, तो अबके बनाये हूये कदापि सत्य नहीं हो सकेंगे? जो जडमेंही झूठ है, वे नवीन रचनासें कदापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य माननां, अरु प्राचीन उन वेदोंके मानने वालोंका संप्रदाय अर्थकों झूठा माननां इस्सें अधिक निर्विवेकी और अन्यायशिरोमणि कौन है? क्योंकि जब प्राचीनोंके बनाये अर्थ झूठे ठहरेंगे, तब तिनके बनाये जये वेदजी झूठेही ठहरेंगे, इस वास्ते जो मतधारी है, यातो उनको अपणे प्राचीनोंके कथन करे हूये अर्थ माननें चाहियें, नहीं तो उस मतकों अरु उस मतके शास्त्रोंकों छोड देनां चाहियें. इसी वास्ते मेरी ऐसी श्रद्धा है, कि जो जैन मतमें प्रामाणिक अरु पंचांगीकारक आचार्य लिख गये हैं, उनके अनुसारही हमकों कथन करनां चाहियें, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं. जे कर कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा, वो जैनमती कदापि नहीं बन सकेगा, अरु उसकी कल्पनाजी सर्वथा सत्य नहीं होवेगी? क्योंकि जब सर्व मतोंके पूर्वाचार्य झूठे ठहरेंगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर सच्चे बन वेंगे? इस वास्त पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पंचांगीके प्रमाणसें नहीं दे सक्ता हूं, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विच्छेद हो गये हैं, तथा २ आर्यरक्षित सूरिके समयमें चारों अनुयोग तोडके पृथक्त्वानुयोग रचा गया है, तथा ३ स्कंधिल आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पडा था, उसमें शास्त्र कंठसें जूल गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मथुरामें समाज करकें जिस जिस आचार्य, साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो स्थल, कंठ रह गया, सो सो स्थल एकत्र करकें लिखा गया, ४ पीछें देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण प्रभृति आचार्योंनें पत्रोंके उपरि एक क्रोड ग्रंथ लिखा, शेष छोड दीये, ५ प्रजावक चरित्रमें लिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका लिखी थी, वो सर्व विछेद हो गइ, ६ तथा पीछेसें ब्राह्मणोने तथा बौद्धोने ग्रंथोंका नाश किया, ७ तथा मुसलमानोने तो सर्वमतोंके शास्त्र मट्टीमें मिलाय दीयें, तिनमेंसें जो रह गये, वे जंमारोंमें गुप्त रहनेसें गल गये, तथा जो अब जंमारोंमें हैं, वे सर्व हमने वांचे नहीं हैं, तो फेर इतने उपद्रव जैन शा

स्त्रोंमें वीतनेंसें हम क्योंकर सर्व शंकायोंका समाधान कर सकें? इस वास्ते जिनमतमें शंका न करनी चाहियें. हमनें सर्वमतोंके शास्त्र देखे हैं, परंतु जैनमत समान अति उत्तम मत कोइ नहीं देखा है, इस वास्ते इस मतमें दृढ रहनां चाहियें. १ शंका अतिचार उसकों कहते हैं, कि जो जिनवचनोंमें शंका करे. जैसेंकि ए वार्त्ता जिनेश्वर देवकी कही सत्य है, वा नहीं? यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा आकंक्षा अतिचार, सो अन्यमत वालोंका अज्ञान कष्ट देख कर तथा किसी पाखंमीके पास किसी विद्यामंत्रका चमत्कार देख कर तथा पूर्व जन्मके अज्ञान कष्टके फल करकें अन्यमत वालोंकों सुखी अरु धनवान् देख कर मनमें बिचारें जो अन्यमत वालोंका धर्म अरु ज्ञान अछा है, जिसके प्रजावमें वे धनी. अरु पुत्र आदि परिवार वाले होते हें, इस वास्ते मेंनी इनहीका धर्म करुं, कि जिस कर कें मैंनी धनी, अरु पुत्रादि परिवार वाला हो जाउंगा, यह आकांक्षा अतिचार, उन जीवोंको होता है. कि जिनको जिनधर्मका अछी तरेसें बोध नहीं है, क्योंकि जैनधर्मवालेनी सर्व दरिद्री अरु पुत्रादि परिवारसें रहित नहीं हैं, तैसें ही अन्यमत वालेनी सर्व धनी अरु परिवारवाले नहीं हैं, इस वास्ते सर्व अपने अपने पूर्व जन्म जन्मांतरके ,करे हूए पुण्य पापके फल हैं, क्योंकि जे जीव, मनुष्य जन्ममें सात कुव्यसनी हैं, अरु कसाइ, वागुरी (बुचड) प्रमुख कितनेक धनी (धनवाले) अरु पुत्रादि परिवारवाले हैं, अरु कितनेक इस अवस्थासें विपरीत हैं, इस वास्ते यही सत्य है कि पूर्व जन्ममें करे हूए सुकृत दुःकृतका फल है. प्रायः इस जन्मके कृत्योंका फल नहीं है, सर्व मतोंवाले राजा हो चुके हैं, अरु रंकनी बहुत हैं, इस वास्ते अन्यमतकी आकांक्षा न करे. जे कर करे, तो दुसरा अतिचार.

३ तीसरा वितिगिछा नामक अतिचार है, सो कोइ जीव अपणे पूर्व जन्मके करे हुये पापोंके उदयसें दुःख पाता है, तब ऐसा विचार करे, जो में धर्म करता हूं, तिसका फल मुझे कब मिलेगा? अर्थात् मिलेगा कि नहीं? अरु जो धर्म नहीं करते हें, वो सुखी हैं, अरु हम तो धर्म करते हें, तोनी दुःखी हें,इस वास्ते कौन जाने धर्मका फल होवेगा कि नहीं होवेगा? तथा साधुके मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखते देख कर मनमें

जुगुप्सा करे, कि यह साधु अछे नहीं है, जो मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखते हैं, इस वास्ते यह संसारसें क्यों कर तरेंगे ? जे कर उष्ण जलसें स्नान कर लेवे, तो कौनसा महाव्रत भंग हो जाता है ?

उत्तरः—जे कर धर्मका फल न होवे, तो संसारकी विचित्रता कदापि न होवे, इस वास्ते धर्मका फल अवश्यमेव है, तथा जो साधु मलिन वस्त्र रखते हैं, उनका तो यह कारण है कि सुंदर वस्त्र रखनेसें मन शृंगाररसकूं चाहाता है, अरु स्त्रीयोंभी सुंदर वस्त्र वालोंकों देख कर उनसें भोग करनेकी इछा करती हैं, इस वास्ते शील पालनें वाले साधुओंकों शृंगार करनां अछा नहीं, अरु स्नान जो है, सो कामका प्रथमांग है, इस वस्ते साधुओंकों उचित नहीं, अरु कोइ कारण पडवेमें साधु हाथ पगादिकोंकूं धोय लेवे, तो कुछ दूषण नहीं. अरु साधुओंकों आपणा शरीर उपर ममत्वभी नहीं है, अरु शुचिमात्र स्नान तो साधु करते हैं, परंतु शरीरके सुख वास्ते तथा शरीरके चमकाने (दमकानेके) वास्ते नहीं करते हैं, क्योंकि जैनीयोंकी ये श्रद्धा नहीं है. जो जलमें स्नान करनेमें पाप दूर हो जाते हैं, परंतु जलस्नानमें शरीरकी मैल दूर हो जाती है, शरीरकी तप्त मिट जाती है. आलस्य दूर हो जाता है, परंतु पाप दूर नहीं होते हैं, जे कर जलस्नानमें पाप मिट जावें, तो अनायास करकें सर्वकी मोक्ष हो जावेगी? ऐसा कौन है, जो जलमें स्नान नहीं करता है ? अरु जो साधुकों मैला समझनां. यही बडी मूर्खता है, क्योंकि शरीरके मैले होनेमें आत्मा मैला नहीं होता है, मैला तो पाप करनेसें होता है, अरु जगत् व्यवहारमें स्त्रीसें संभोग करनेसें और किसी मलिन वस्तुका स्पर्श करनेसें, मैलापनां मानते हैं, अरु साधु तो इन सर्व वस्तुओंका त्यागी है. इस वास्ते मैला नहीं, बलके साधुओंकों धन्यवाद देनां चाहियें. जो तप्त पडती है, लो चलती है, पसीना वहता है, तोभी साधु नंगे पांय, अरु नंगा शिर करकें चलते हैं, औ रातकों उत्ते हूये मकानमें सोते हैं, पंखा करते नहीं तथा कोमल शय्या (पल्यंकादि) पर सोते नहीं औ रात्रिको जल पीते नहीं, दिनमेंभी उष्ण जल पीते हैं, यह तो बडा भारी तप है, परंतु जो कोइ साधु तो बन रहे हैं, अरु जब गरमी लगती है, तब महिषकी तरे जलमें जा पडते हैं, ऐसे सुखशीलिये तो तर

जायंगे कि जिनोके किसी बातका नियम नहीं, हाथी, घोडे, रेल प्रमुख की असवारी करनी, तथा जो फल हैं, सो सर्व नक्षण करने, धन रखणां, मकान बांधणे, खेती करणी, गौ, नैंस, हाथी, घोडे, रथ, शस्त्र रखने, बल बलसें लोकों पासों धन ले लेनां, स्त्रीयोंसें विषय सेवन करनां, अन्ना खानां, मांसनक्षण करनां, मदिरा पीनां, नांगके रगडे, चरसकी चिलमें उडानां, पगोंकों तथा शरीरकों वेश्याकी तरें मांजनां, चित्तमें बडा अनिमान रखनां, दंम पेले, गस्त करने जानां, इत्यादि अनेक साधुओंके अनुचित काम करनें, फेर श्रीश्री स्वामीजी महाराज बन बैठनां, हम महंत हैं, हम गद्दीधर हैं, हम नट्टारक हैं, हम श्रीपूज्य हैं, हम जगत्का उद्धार करते हैं, हम बडे अद्वैत ब्रह्मके वेत्ता हैं, हम शुद्ध ईश्वरकी उपासना बताते हैं, मूर्त्तिपूजन पाखंमका नाश करते हैं.

अब नव्य जीवोंकों विचार करनां चहियें कि यह पूर्वोक्त कुगुरु क्या जलके स्नान करनेंसें संसारसमुद्रसें तर जायंगे? अरु जो जीवहिंसा, फूठ, चोरी, स्त्री, अरु परीग्रह, इन पाचोंके त्यागी, शरीरमें ममत्व रहित, प्रतिबंध रहित, काम क्रोधके त्यागी, महातपस्वी, मधुकर वृत्तिसें निक्षा लेने वाले इत्यादि अनेक गुण सुशोनित हैं, वे क्या जलमें स्नान न करनेसें पातकी हो जावेंगे? कदापि न होवेंगे! इस वास्ते साधुकों देख कें जुगुप्सा न करनी, जे कर करे, तो तीसरा अतिचार लागे॥

चौथा मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसारूप अतिचार है, मिथ्यादृष्टि उसकों कहते हैं, जो जिनप्रणीत आज्ञासें बाहिर है, क्यों कि सर्वज्ञके कहे हूए बचनकों तो वो मानता नहीं, अरु असर्वज्ञोके कहे हूए शास्त्रोंकों सच्चा मानता है, उन शास्त्रोंमें जो अयोग्य बातें कही हैं, उनके छिपाने वास्ते स्वकपोलकल्पित नाष्य, टीका, अर्थ, बना करकें मूर्खलोकोंकों बहकाते गल्ल बजाते फिरते हैं, औ जिनके नियमधर्म कोइ नहीं, कृपण पशुयोंकों मार जानते हैं, धूर्त्तपणेंते सच्चा बन कर मूर्खोंकों मिथ्यात्व जालमें फसाते हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनकी प्रशंसा करनी, तथा जो अज्ञानी जिनाज्ञासें बाहिर हैं, उनकों कहनां कि ये बडे तपस्वी हैं? महापुरुष हैं? बडे पंमित हैं? इनके बराबर कौन है? इनोंनें धर्मकी वृद्धि वास्ते अवतार लीया है? तथा मिथ्यादृष्टि कोइ व्रत यज्ञादि करे, तब ति

सकी प्रशंसा करे कि तुम बडा अच्छा काम करते हो, तुमारा जन्म सफल है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मिथ्या दृष्टिके साथ बहुत मेल (मिलाप) रखे, एक जगें भोजन संवास करे, इत्यादि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसें मिथ्यादृष्टिकी वासना लग जानेसें धर्मसें भ्रष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्यादृष्टिका बहुत परिचय करनां ठीक नहीं. यह पांचमा अतिचार है.

अब जब गृहस्थकों सम्यक्त्व देते हैं, तब उसकों गुरु छै आगार बत लाते हैं. जे कर ये छै कारणोसें तुमकों कोइ अनुचित कामभी करणां प डे, तो तुमकों ये छै आगार रखाये जाते हैं, जिनमें तुमारा सम्यक्त्व क लंकित न होवेगा, सो छै आगार कहते हैं.

१ प्रथम "रायाभिओगेणं" सो राजा उस नगरका स्वामी जे कर वो राजा कोइ अनुचित काम जोरावरीसें करावे. तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

२ दूसरा "गणाभिओगेणं" गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, वे कहे, जो यह काम तुम जरूर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमकों बडा दंड देवेंगी, उस बखत जे कर वो काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचार नहीं.

३ तीसरा "बलाभिओगेणं" सो बलवंत चोर म्लेछादि तिनोंके वश पड नेसें वो कोइ अपनी जोरावरीसें अनुचित काम करवावें, तोभी दूषण नहीं.

४ चउथा "देवाभिओगेणं" सो कोइ दुष्ट देवता क्षेत्रपालादि व्यंतर श रीरमें आवेश करकें अनुचित काम करावे. तो भंग नहीं. तथा कोइ देव तो मरणांत दुःख देवे, तब मनमें धैर्य न रहे. तब मरणांत कष्ट जानके कोइ विरुद्ध काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचारभंग नहीं.

५ पांचमा "गुरुनिग्गहेणं" गुरु सो माता, पितादि उनके आग्रहसें कु छ अनुचित करणां पडे, तथा गुरु कहियें, धर्माचार्यादि, तथा जिनमंदिर, सो कोइ अनार्य गुरुकों संकट देता होवे. तथा जिनमंदिरकों तोडता हो वे, जिनप्रतिमाकों खंडन करता होवे, सो गुरु निग्रह है. तिनोंकी रक्षा वास्ते कोइ अनुचित काम करणां पडे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

६ छठा "वित्तिकंतारेणं" वृत्ति जे दुष्कालादि आपदा आ पडे, तब आजीविकाके वास्ते किसी मिथ्यादृष्टिके अनुसार चलनां पडे, तथा आ

जीविकाके वास्ते कोइ विरुद्ध आचरण करनां पडे, तो दूषण नहीं. एक तो यह छै वस्तुके आगारोंकों छै छंडी कहते हैं तथा चार आगार और जी है, सो कहते हैं.

१ "अन्नथ्यणाजोगेणं" अस्यार्थः कोइ कार्य अजाण पणे उपयोग दीयां विना औरका और हो जावे, अरु जब याद आ जावे, तब वो कार्य फेर न करे, यह प्रथम आगार.

२ "सहस्सागारेणं" सो अकस्मात् कोइ काम करे, अपणे मनमें जानता है, यह काम मैंनें नहीं करणां, परंतु योगोंकी चपलतासें तथा नित्य बहुत अन्याससेंती जानता हूआजी विरुद्ध कार्य हो जावे, तो सम्यक्त्वमें जंग नहीं यह दूसरा आगार.

३ "महत्तरागारेणं" सो कोइ मोटा लाज होता है, परंतु सम्यक्त्वमें दूषण लगता है. तथा कोइ मोटा ज्ञानीकी आज्ञासें कमवेशी करनां पडे, तो यहजी आगार है यह तीसरा आगार.

४ चौथा "सबसमाहिवत्तिआगारेणं" सो सर्व समाधिव्यत्ययसें कोइ बडा सन्निपातादि रोगोंके विकृयसेंती बावरा हो जावे, तथा अतिवृद्ध हो जानेंसें स्मृतिजंग हो जावे, तथा रोगादिक आये मनमें आर्त्तध्यान हो जानेंसें, तथा सर्पादिके मंक मारणेसें, इत्यादि असमाधिमें यह आगार है. इस्में सम्यक्त्व तथा व्रत जंग नहीं होता है, परंतु किसी मूर्खके कहे सुनेंसें आर्त्तध्यानमें प्राण त्यागने योग्य नहीं, कितनेक जिनमतके अनजिज्ञोंका यह जी कहनां है, कि चाहो कुछ हो जावे, तोजी जो नियम लीया है, उसकों कजी तोडनां न चाहियें. परंतु यह कहनां सर्वथा ठीक नहीं. क्यों कि जब पहिलांदि आगार रक्खे गये. तो फेर व्रतजंग क्यों कर हूआ ? अरु जो आर्त्तध्यानमें मरजाते हैं, अरु आगार नहीं रखते हैं, वे जिनमार्गकी शैलीके अजान हैं, इस वास्ते छै छंडी, अरु चार आगार, सर्व बारोही व्रतोमें जाननें, अरु साधुके सर्वप्रत्याख्यानोंमें अनशन पर्यंत यही चार आगार जानने ॥ इतिश्री तपगछीये गणिश्रीमणिविजय तछिष्य मुनिश्री बुद्धिविजय तछिष्य मुनि आत्माराम अनंदविजयविरचिते जैनतत्वादर्शे सम्यग्दर्शननिर्णयनामा सप्तमपरिछेदः संपूर्णः ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम परिछेद प्रारंभः ॥

इस परिछेदमें चारित्रका स्वरूप लिखते हैं. चारित्र धर्मके दो भेद हैं. एक सर्वचारित्र, एक देशचारित्र, उसमें सर्वचारित्र धर्म तो साधुमें होता है, तिसका स्वरूप गुरुतत्त्व परिछेदमें लिख आये हैं. तहांसें जान लेनां अरु देश चारित्रके बारह भेद हैं, सो गृहस्थका धर्म है, सो बारह व्रतोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं. तिनमें प्रथम स्थूलप्राणातिपात व्रतका स्वरूप लिखते है.

१ प्रथम प्राणातिपातविरमणव्रतके दो भेद हैं. एक द्रव्यप्राणातिपात, दूसरा भावप्राणातिपात व्रत, तिनमें द्रव्य पाणातिपात व्रत ऐसें है, कि पर जीवोंकों अपणी आत्मा समान जान करकें तिनके दश द्रव्यप्राणोंकी रक्षा करे, सो द्रव्यप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें. ये व्यवहार दयारूप है, तथा दूसरा भावप्राणातिपात, सो अपणा जीव कर्मके वश पडा हूआ दुःख पाता है, अपणे जे भाव, प्राण, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक. तिनका मिथ्यात्व कषायादिक अशुद्ध प्रवर्त्तनसें प्रतिक्षण घात हो रही है, सो अपणे जीवकों कर्मशत्रुसें छुडानें वास्ते उपाय करणां, सो उपाय यह है, क आत्मरमणता करे, परभाव रमणता त्यागे, शुद्धोपयोगमें प्रवर्त्ते, कर्मके उदयमें अव्यापक रहे, एक स्वभावमग्नता, यही समस्त कर्मशत्रुके उछेद करनेंकों अमोघ शस्त्र हे. एतावता सकल परभाव इष्टता दूर करी, स्वरूप सन्मुख उपयोग रखे, तिसका नाम भावप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें, इसीका नाम भाव दयाहै. इहां स्थूल नाम मोटा दृष्टिगोचर हाले. चाले, ऐसा जो त्रस जीव तिसकों संकल्प करकें न हणूंगा.

इहां हिंसा चार प्रकारकी है. एक आकुट्टी, सो निषेध वस्तुकों उत्साहसें करे, जैसें सपूर्ण फलका भडथा करनां. श्रावककों निषेध है, अरु जिसने जितने फल खानेमें रखे हैं, उन फलोंमेंसूंभी किसी फलका भडथा नहीं करनां, अरु जो मनमें उत्साह धरके भडथा करे, तो आकुट्टी हिंसा होवे. दूसरी दर्पहिंसा, सो चित्तके उछरंगसें (उन्मत्तपणेसें) मनमें गर्व धरकें दौड करे, जैसें गाडी घोडा प्रमुख दोडते हैं, यह आकुट्टी ह

र्पहिंसा है. तीसरी प्रमादहिंसा, (सो आकुट्टी अर्थात् जानके काम नोगमें तीव्र अभिलाषासें कामका जोस चढाने वास्ते त्रस जीवकी हिंसा करे, किसी जीवकों मारके गोली माजुम प्रमुख बना करकें खावे, सो आकुट्टी प्रमादहिंसा है. चौथी कल्पहिंसा, सो अपणा घरका काम काज, रंधण, पीसणादि करते त्रस जीवकी हिंसा हो जावें, सो प्रमादहिंसा है. इन चारो हिंसायोमें प्रथम हिंसा तो बिलकुल नहीं करणी. तिस वास्ते यहां संकल्प करकें आकुट्टी, तथा दर्प्प करकें त्रस जीव हणनेका त्याग करे, जैसें यह कीडी जाती है, इसकों मैं मारुं? असे संकल्प करकें हणे, हणावे, तिसकों आकुट्टीसंकल्प कहते हैं. असें संकल्प कर कें निरपराधी जीवोंकों विना कारणके न हणुं न हणाउं, अरु सांसारिक आरंन रंधनादि करते, तथा पुत्रादिकके शरीरमें कीडे आदिक जीव उत्पन्न होवे, तदा औषधादि करते यत्नसें करे. तथा घोडा, बलद, प्रमुखकों चाबकादि मारणां पडे उसका आगार रखे, तथा पेटमें कृमी, गंमोला, तथा पगमें नहरवा. अर्थात् वाला, तथा हरस. चम, जू, प्रमुख अपणे शरीरमें उपजे, तथा मित्रादिक स्वजनादिकके शरीरमें उपजे, तिसके उपचार करणेकी जयणा रखे, क्योंकि साधुकों तो त्रस, अरु स्थावर, सूक्ष्म, अरु बादर, सर्व जीवोंकी हिंसा नवकोटी विशुद्ध प्रमादके योगोंमें सर्व हिंसाका त्याग है, इस वास्ते साधुकों तो वीस विश्वा दया है, अरु गृहस्थसें तो सवा विश्वा दया पल सक्ती है, तिसका स्वरूप लिखते हैं.

॥ गाथा छंद ॥ जीवा सुहुमा थूला, संकप्पा आरंना नवे डुविहा ॥ सवराह निरवराहा, साविरका चेव निरविरका ॥ १ ॥ अर्थः—जगत्में जीव दो प्रकारके हैं. एक थावर, दूसरा त्रस, तिनमें थावरोंके दो नेद हैं. एक सूक्ष्म, दूसरा बादर, तिनोमें सूक्ष्मजीवोंकी तो हिंसा होतीही नहीं है, क्योंकी अति सूक्ष्म जीवोंके शरीरकों बाह्य शस्त्रका घाव नहीं लगता है, परंतु इहां तो सूक्ष्म शब्द, थावर जीव, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, पवन, वनस्पतिरूप जो बादर पांच थावर हैं, तिनका वाचक है, अरु स्थूलजीव सो द्वींद्रिय त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचिंद्रिय, जानना, इन दोनो नेदोंमें सर्व जीव आ गये, तिन सर्वकी त्रिकरणशुद्धसें साधु, रक्षा करता है, तिस वास्ते साधुके वीस विश्वा दया हैं, अरु श्रावकसें तो पांच थावरकी दया पलती

नहीं है, सचित्त आहारादि करणसें अवश्य हिंसा होती है. इस वास्ते दश विश्वा दया दूर हो गई, शेष दश विश्वा रह गइ, एतावता एक त्रस जीवकी दया रहे, उस त्रस जीवकेभी दो भेद हैं, एक संकल्पसें हननां, दूसरा आरंभसें हननां, तिनमें आरंभ हिंसाका श्रावककों त्याग नहीं है, किंतु संकल्प हिंसाका त्याग है, अरु आरंभ हिंसामें तो यत्न है, परंतु त्याग नहीं है, क्योंकी आरंभ हिंसा तो श्रावकसें होती है, इस वास्ते दश विश्वामेंसूं पांच विश्वा फेर जाता रह्या. एतावता संकल्प करकें त्रस जीवकी हिंसाका त्याग है, फेर इसकेभी दो भेद हैं, एक सापराधी है, दूसरा निरपराधी है, तिनमें जो निरपराधी जीव हैं, उसकों नहीं हननां, अरु सापराधी जीवकूं हननेकी जयणा है, जिस वास्ते सापराधी जीवकी दया सदा सर्वथा श्रावकसें नहीं पलती है, क्योंकि घरमेंसें चोर चोरी करकें वस्तु लीये जाता है. सो बिना मारे कूटे छोडता नांहि, तथा श्रावककी स्त्रीसें कोइ अन्य पुरुष अनाचार सेवता देखनेमें आवे, तिसकों मारणां पडे, तथा कोइ श्रावक, राजा है, तथा राजाका आदेशसेंती युद्ध करनेकों जावे, तब प्रथम तो श्रावक शस्त्र चलावे नहीं, परंतु जब शत्रु शस्त्र चलावे मारणेकों आवे, तब तिसकों मारणां पडे, तथा सिंहादि जनावर खानेकों आवे, तब उसकों मारणां पडे, तब संकल्पसेंभी हिंसाका त्याग नहीं. इस वास्ते पांच विश्वामेंसूंभी अर्द्ध जाते रहे, पीछे अढाइ विश्वा दया रह गइ, मात्र निरपराधी त्रस जीव दृष्टिगोचर आवे, तिसकों न मारुं ? यह नियम रहा, इसकेभी दो भेद हैं. एक सापेक्ष, दूसरा निरपेक्ष, इनमेंभी सापेक्ष निरपराधी जीवकी श्रावकमें दया नहीं पलती है, क्योंकि श्रावक जब आप घोडा, घोडी, बैल, रथ, गाडी प्रमुखकी अस्वारी करकें घोडादिककों हांकता है, तब घोडे आदिककों चाबकादि मारता है. यहां घोडे तथा बैलादिकोंनें कुछ इसका अपराध नहीं करा है, उसकी पीठ ऊपर तो चढ रहा है,अरु यह जानता नहीं कि इस बिचारे जीवकी चलनेकी शक्ति है, कि नहीं है ? जब वे जीव हलवे चलते हैं, तथा नहीं चलते हैं, तब अज्ञानके उदयसें उनकों गालीयां देता है, मारताभी है, यह निरपराधीकोंभी दुःख देता है, तथा अपणे शरीरमें, तथा आपणा पुत्र, पुत्री, न्याती, गोतीके मस्तकमें तथा कर्णादि अवयवमें तथा अपणे मुखके दांतमें कीडा पडे, ति

नोंके दूर करणे वास्ते कीडायोंकी जगामें औषधि लगानी पडती है, अरु इन जीवोने श्रावकका कुछ अपराधनी नहीं करा है, क्योंकि वो बिचारे अपने कर्मोंके वशमें ऐसी योनिमें उत्पन्न हूये हैं, कुछ श्रावकका बूरा करनेकी नावनासें उत्पन्न नहीं हूवे हैं, तो उनकी हिंसानी श्रावकसें त्यागी नहीं जाती है, इस वास्ते फेर अर्द्ध जाता रहा. शेष सवा विश्वाकी दया रह गइ, यह सवा विश्वा दयानी शुद्ध श्रावक होवे, सो पाल सक्ता है, एतावता संकल्पसें निरपराध त्रस जीवोंकों कारण विना हणुं नहीं, यह प्रतिज्ञा जहां लगि अपणी शक्ति रहे, तहां लगि पाले, निर्ध्वंसपणा न करे, सदा मनमें यह नावना रखे, कि मत मेरेसें कोई जीव मर जाय ?

तथा घरमें आरंन करतेनी यत्न करे, तथा लकडी जलाने वास्ते लेवे, तब सडी हूई न लेवे, परंतु आगेंकों जिसमें जीव न पडे, ऐसी पक्की, सूकी लकडी लेवे, और रसोईकी बखत लकडीकों झटका कर जीव रहित करकें जलावे, तथा घी, तेल, मीठा प्रमुख रस नरी वस्तुके वासणका मुख बांध कर यत्नमें राखे, उघाडा न रखे, तथा चूलेके उपर अरु पाणीके स्थान उपर चंदवा अर्थात् छत, उपर कपडा ताणे, तथा खानेकों जो अन्न ल्यावे, सो नींजा हूआ न ल्यावे, शुद्ध नवा अन्न खानेकों ल्यावे, कदापि एक वर्षके उपरांतका अन्न ल्यावे, तो जिसमें जीव न पडे होवे, सो ल्यावे, तथा पाणीके छानने वास्ते बहुत गाढा दृढ वस्त्र रखे, एक प्रहर पीछें पाणीकों फेर छान लेवे, जो जीव निकले, सो जीव जिस कूवेका पाणी होवे, उसीमें माल देवे, तथा वर्षा ऋतुमें बहुत जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, तिस वास्ते गाडी, रथकी अस्वारी न करे, क्योंकि जहां चक्र फिरता है, तहां असंख्य जीवोंका विध्वंस होता है, हरिकाय, बहुबीजां फल, त्रस संयुक्त फल, न खावे, तथा खाटमें माकड प्रमुख जीव पड जाते हैं, इस वास्ते धूपमें न रखे, दूसरी खाट बदल लेवे, तथा सड्या हूवा अन्न धूपमें न रखे, जूठा पाणी, अन्नके संसर्गवाला मोरीमें न गेरे, क्योंकि मोरीमें बहुत जीव उत्पन्न हो जाते हैं, अरु मोरीके सड जानेसें घरमें बिमारी हो जाती है, तथा चैत्रवदि एकमसें ले कर पत्तोंवाला शाक, आठ मास तक न खावे, क्योंकि पत्रशाकमें बहूत त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं, एक तो त्रस जीवोंकी हिंसा होती है, अरु दूसरा उन त्रस जी

वोंके खानेमें अनेक रोग (बिमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां हैं, अरु शीत कालमें एक मास तथा उष्णकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंदरह दिनके उपरांतकी बनी हुइ मिठाई (पक्वान्न) न खावे, क्योंकि उसमें त्रस स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं. अरु खानेवालेकों रोगोत्पत्तिभी हो जाती है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती है. अरु रोगभी हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें सा वरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रखे, जिस्सें जीव न मरे, तथा स्नान, बहुत जलसें न करे, अरु रेतली भूमिकामें स्नान करे, तथा मोटी परातमें बैठकें स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोडा थोडा करकें गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पर्य्यंत थोडे पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नोकरी आदिक न करे, तथा किसीका हक्क तोडे नहीं, घरमें जूठे अन्नका पाणी दो घडी उपरांत न रखे, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, तथा जो वस्तु उठावे, तथा रखे, तब पहिलां उस जगाकों नेत्रोंसें देख लेवे, पूंज लेवे, पीछेसें वस्तु रखे. मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा दीवा बत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसें जीवरक्षा करे, तथा जिस पात्रसें पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूठा न डबोवे, क्योंकि मुखकी लालां लगनेंसें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतोंकी जूठ खाने पीनेसें बुद्धि संक्रमण हो जाती है, अरु केइक रोग असें हैं कि जिस रोगीका जूठा खावे, पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेकों लग जाता है, सो रोग यह है कि कुष्ट, क्षय, रेजस. शीतला वगरे. इस वास्ते वस्तु जूठी न करनी, अरु बहुतोंके साथ एकठा खावे नहीं. अरु मटकेमें पाणी काढने वास्ते दंडीदार काठका चट्टू रखे. इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवर्त्ते, तो श्रावकके दया,सवा विश्वा होवे, इसी रीतीसें प्रथम व्रत श्रावकके शुद्ध हैं, इस व्रतके पांच अतिचार हैं, अर्थात् पांच कलंक हैं,तिनकों वर्जे,सो लिखते हैं.

१ प्रथम वधअतिचार. सो क्रोधके उदयसें, अरु बलके अभिमानसें, निर्दय हो कर गाय,घोडा,प्रमुखकों कूटे,मारके चलावे,सो प्रथम अतिचार.

२ दूसरा बंधअतिचार. सो गाय, बलद, वछडा प्रमुख जीवोंकों कठिन जबरा बंधनसें बांधे, वो जीव कठिन बंधनसें अति दुःख पाते हैं,

अरु कदापि अग्निका नय हूआ तो जलदि छूट नहीं सकते हैं, तब मर नी जाते हैं, इस वास्ते कठिन बंधननी अतिचार है, इस हेतुसें जनावर कों ढीले बंधनसें बांधनां चाहियें. अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोंनी निर्दय हो कर गाढा बंध न बांधनां चाहियें, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा छविछेद अतिचार है. सो बैल प्रमुखका कान, नाक, छिदा वे, नथ गेरे, खस्सी करे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चउथा अतिनारारोपण अतिचार है. सो बैल प्रमुखके उपर जितना नार लादनेकी रीती है, तिस्सें अधिक नार लादे, तब अतिनारा रोपण अतिचार होता है. श्रावककों तो सदा जिस बैल, रासन, गाडी प्रमुखमें नार लादते होवे, उस्मेंनी पांच सेर, दश सेर, नार कम लादनां चाहियें, तो व्रत शुद्ध रहे. तिसमेंनी जे कर कोइ जानवरकी चल नेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे. सो तिस नारकोंनी थोडा कर देवे, अरु जानवर डुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, परं तु मनमें ऐसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना नार लादते हैं, तिन के बराबर मैंनी लादता हूं, यह तो व्यवहार शुद्ध है. ऐसा न बिचारे, अधिक बोझ होवे, तो औंर नाडा कर लेवे, श्रावकोंका यह व्यवहार है.

५ पांचमा अतिचार नात पाणीका व्यवछेद करनां, सो जो बलद घोडेके खाने योग्य होवे, सो बंद कर देवे, अथवा उसमेंसूं कछुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लंघा कर पीछें खानेकों देवे, तो अतिचार लगे. तथा किसीकी आजीविका नौकरी बंद करे, वोनी इसी अतिचारमें है. श्रावक तो दासी, दास, कुटुंब, चौंपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले कें पीछे आप नोजन करे अरु उपलक्षणसें हिंसाकारी मंत्र, तंत्रादि किसीकों करे, वेनी अतिचार जानने. यह पांच अतिचार, श्रावक जान तो लेवे, परंतु करे नहीं. यहां बारह व्रतोंके सर्व अतिचार नंग होने के संनवासंनवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेंद्रसूरिकृत है, सो देख लेनी, इहां तो निःकेवल अतिचारही मैं लिखूं गा ॥ इति श्रावक प्रथम व्रतं संपूर्णं ॥

अथ दूसरा स्थूलमृषावाद विरमणव्रतका स्वरूप लिखते हैं. स्थूल नाम है, मोटेका उस मोटे झूठका विरमण (त्याग) करनां, क्योंकि झूठ

बोलनेसें जगत्में उसकी अप्रतीति हो जाती हैं, अपयश होता है धर्मकी निंदा होती है, तथा अपणे मतलब वास्ते जो कम वेश करना इसका जो त्याग, सो मृषावादविरमणव्रत कहते हैं. तिस मृषावादके दो भेद हैं, एक द्रव्यमृषावाद, दूसरा भावमृषावाद, तिनमें जो जान करा तथा अजान पणेसें कूठ बोले, सो द्रव्यमृषावाद है, तथा सर्व परभाव वस्तुकों अर्थात् पुद्गलादि जड वस्तुकों आत्मत्व बुद्धि करकें अपणा कहे; तथा राग, द्वेष, कृष्णादि लेश्यासें आगमविरुद्ध बोले. शास्त्रका सच्चा अर्थ कुयुक्तिसें नष्ट करे, उत्सूत्र बोले, उसकों भावमृषावाद कहते हैं.

यह व्रत सर्वव्रतोमें मोटा है. इसके पालनेमें बहुत शुद्धउपयोग अरु हुस्यारी चाहियें, क्यों कि प्रथमव्रतमें तो जीव मात्रके जाननेसें दया पल सकी है. अरु दूसरोंकी वस्तुकों बिना दीये न लेनेसें अदत्तविरमण तीसरा व्रत पल जाता है, तथा स्त्री मात्रका संग त्यागनेसें चौथा व्रत पलता है. तथा नवविध परिग्रहके त्यागनेसें परिग्रहव्रतभी पलजाता है, इसी तरें एकेक द्रव्यके जाननेसें यह चारो व्रत पाले जाते हैं, अरु मृषावाद विरमणव्रत तो जहां लगि षट्द्रव्यकी गुणपर्यायसें तथा द्रव्य. क्षेत्र. काल, भावकी अच्छी तरेंसें पिछाण न होवे. सम्मति प्रमुख द्रव्यानुयोगके शास्त्र न पढे, बहुत निपुन ज्ञानवान् न होवे. तहां तलक पालनां कठिन है, क्योंकि एक पर्यायमात्रभी विरुद्ध भाषण करनेमें यह व्रत भंग हो जाता है. इसी वास्तेही साधुओंकों बहुत बोलणां शास्त्रमें निषेध करा है, अरु जे पूर्वोक्त चारों महाव्रतोमेंसूं एक महाव्रत जेकर भंग हो जावे, तब तो चारित्र भंग होवे, अरु नहींभी भंग होवे, क्योंकि जे कर एकही कुशील सेवे, तो सर्वथा चारित्र भंग होवे,शेष व्रतो खंडनमें देशभंग होवे, परंतु सर्वथा भंग नहीं होवे, यह व्यवहार भाष्यमें कहा है. परंतु उस का ज्ञान, दर्शन. भंग नहीं होवे, अरु जब मृषावादविरमणव्रत भंग होवे, तब तो ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह तीनोंही जडामूलसें जाते रहते हैं. अरु मर करकें दुर्गतिमें जाता है, अनंत संसारी दुर्लभ बोधी हो जाता है, इस वास्ते जे कर यह व्रत पालनां होवे, तो षट्द्रव्य के गुण पर्याय जाननेमें अति उद्यम करे, जे कर बुद्धिकी मंदता होवे, तब गीतार्थके कहने प्रमाण श्रद्धा प्ररूपणा करे, क्योंकि द्रव्यमृषावाद

के त्यागी जीव तो षट् दर्शनमेंजी हो सक्ते है, परंतु जावमृषावादका त्यागी तो एक श्रीजिनेंद्रदेवके मतमेंही मिलेगा, जो जीव श्रद्धारुचि शुद्ध धारेगा, सोइ होवेगा. अब इस मृषावादके पांच मोटे जेद हैं, सो श्रावककों अवश्य वर्जने चाहियें, सो कहते हैं.

१ प्रथम कन्यालीकझूठ, सो अपणे मिलापीकी कन्या है, उसकी सगाइ होने लगी होवे, तब कन्याके लेने वाले पूछे कि यह कन्या कैसी है? तब वो मिलापीकी प्रीतिसें उस कन्यामें जो दूषण होवे, सो छिपावे, गुण न होवे, तोजी अधिक गुणवाली कह देवे. कि यह कन्या निर्दोष है, अैसी कुलवान, लक्षणवान, साक्षात् देवांगना समान तुमकों मिलनी मुशकिल है, अैसा कह देवे, अरु जे कर मिलापीके साथ द्वेष होवे, तदा वो कन्या जो निर्दोष लक्षणवंती होवे, तोजी कहे कि इस कन्यामें अछे लक्षण नहीं है, विडालनेत्री है, इसके साथ जो संबंध करेगा, वो पश्चात्ताप करेगा. अैसे अणहोये दूषण बोल देवे, यह कन्यालीक झूठ है. प्रथम तो व्रतधारी श्रावक किसीकी सगाइ झगडेमें पडे नहीं, अरु जे कर आपणा संबंधी मित्रादिक होवे वो पूछे. तब यथार्थ कहे, कि जाइ! तुम अपणा निश्चय कर लो, क्योंकि जन्मपर्यंतका संबंध है, अैसे कहे, परंतु झूठ न बोले. यह कन्यालीकमें उपलक्षणसेंती सर्व दो पगवालेका झूठ न बोले.

२ दूसरा गवालीक झूठ. सो सर्व चौपद जो हाथी, घोडा, बलद, गाय, जैंस, प्रमुख संबंधी झूठ न बोले.

३ तीसरा जूम्यालीक झूठ. सो दूसरेकी धरतीको अपनी कहे, तथा औरकी जूमिकों औरकी कहे, तथा घर, हवेली, वाडी, बाग. (बगीचा) वृक्षादिक, संबंधी तथा सर्व परीग्रह संबंधीजी झूठ न बोले.

४ चौथा थापणमोसाका झूठ है. कोइ पुरुष श्रावककों प्रतीत वाला जान कर, उसके पास विना साक्षी तथा लिखत करे विना कोइ वस्तु रख गया है, फिर वो मांगनें आवे, तब नामुकर जावे, कहे कि मैं तुम कों जानताही नहीं, तुम कौन हो? अैसा झूठ बोलके उसकी वस्तु रख लेवे, यहजी श्रावकनें नहीं करनां.

५ पांचमा झूठी साक्षी जरनी. सो दो जणे आपसमें झगडते हैं, तिस में झूठे पासों धन ले कर अथवा उसके मुहलाह जैसें झूठी गवाही देनी,

यहनी काम श्रावकने नहीं करनां, इस व्रतके पांच अतिचार श्रावक वर्जे.

१ प्रथम सहसाभ्याख्यान अतिचार. सो विना विचारे किसीकों कलंक देनां कि तूं व्यनिचारी है, फूग है, चोर है, इत्यादि कहनां, जे कर श्रावक तो किसीका प्रगट कोइ अवगुण देखे, तोनी अपणे मुखसें न कहे, तो फेर कलंक देणां, वो तो महापाप है, सो कैसें करे ?

२ दूसरा रहसाभ्याख्यान अतिचार है. सो केइ पुरुष एकांत बैठ कें कुछ मता करते हैं, उनकों देखकें कहे, कि तुम राजविरुद्ध मता करते हो, ऐसें कह कर उनकी नंमी करे, राजदंम दिलावे, ए दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा स्वदार मंत्रनेद अतिचार है, सो अपणी स्त्रीने कोइ ठानी वात अपणे पतिसें कही है,वो बात लोकोमें प्रगट करे, उपलक्षणसें नाइ प्रमुखकी कही बात प्रगट करे, क्योंकि लज्जनीय बातके प्रगट होनेसें स्त्री आदिक कूपा दिकमें मूब मरती है.

४ चौथा मृषाउपदेश अतिचार है. सो दूरासयोंकों फूठी वस्तुके करनेका उपदेश करे, तथा विषय सेवनेंके चौरासी आसन सिखावे, तथा दूसरायोंकों दुःखमें पडनेका उपदेश करे. तथा वीर्यपुष्ट होनेकी औषधि बतलावे. जिस्सें वो बहुत विषय सेवे, जिस्में विषय कशाय उत्पन्न होवे,ऐसा उपदेश करे. यह सर्व मृषाउपदेशनामा चौथा अतिचार है.

५ पांचमा कूटलेखकरण अतिचार है. सो किसीके नामका फूठा पत्र वही बना लेनां, अगले अंकको तोडके और बना देनां. तथा अक्षर खुरच गेरनां, जूठी मोहर ठाप बना लेनी, इत्यादिक कूट लेख अतिचार हैं, यह पांच अतिचार अरु पांच प्रकारका पूर्वोक्त फूठ, सो नरकादि गति के कारण जान कर श्रावक वर्जे ॥ इति दूसरा व्रत.

३ अथ तीसरा स्थूल अदत्तादानविरमणव्रत लिखते हैं. प्रथम मोटी चोरी नींत फोडी कुंनल देकर अथवा एकलेकों, रस्तेमें ठल बल करकें ठग लेनां, जबर दस्तिसें किसीकी वस्तु खोस लेनी, नजर बचाके किसीकी वस्तु उठा लेनी, अरु कोइ वस्तु धर गया है, जब वो मांगने आवे तब, नामुकर जावे, तथा हीरा, मोती, पन्ना प्रमुख फूठे सच्चेका अदल बदल कर देवे, इत्यादि अदत्तादान अर्थात् चोरीका स्वरूप है. इसके करनेसें परलोकमें खोटी नरकादि गति प्राप्त होती है. अरु इस लोकमेंनी प्रगट

हो जावे, तो राजदंड, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते श्रावक अदत्तादानका त्याग करे. इस अदत्तादान व्रतके दो भेद हैं. सो कहते हैं.

प्रथम द्रव्य अदत्तादानविरमण व्रत. सो पूर्वोक्त प्रकारसें दूसरायोंकी वस्तु पडी विसरी लेवे नहीं, सो द्रव्य अदत्तादान विरमणव्रत जाननां.

दूसरा भावअदत्तादानविरमण व्रत. सो पर जो पुद्गल द्रव्य, तिसकी जो रचना. वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि रूप, तेवीस विषय, तथा आठ कर्मकी वर्गणा, यह सर्व पराइ वस्तु हैं, सो वस्तु तत्त्वज्ञानमें जीवकों अग्राह्य है, तिसकी जो उदय भाव करके वांछा करणी, सो भाव चोरी है. तिसकों जिनागमके सुननेसें त्यागनां, पुद्गलानंदी पणा मिटानां, सो भाव अदत्तादानविरमणव्रत कहीयें. जो जो कर्मप्रकृतिका बंध मिटा है, सो भाव अदत्तविरमणव्रत कहियें. सामान्य प्रकारसें अदत्तके चार भेद हैं.

प्रथम किसीकी वस्तु, विना दीये ले लेनी, इसका नाम स्वामीअदत्त है. दूसरा सचित्त वस्तु अर्थात् जीववाली वस्तु फूल, फल, बीज, गुछा, पत्र, कंद, मूलादिक, तथा बकरा, गाय, सुअरादिक, इनकों तोडे, छेदे, भेदे, काटे, सो जीवअदत्त कहियें. क्योकि फूलादि जीवोने अपणे शरीरके छेदने भेदनेकी आज्ञा नहिं दीनी है, जो तुम हमकों छेदो, भेदो, इस वास्ते इसका नाम जीव अदत्त है. तीसरा जो वस्तु, तीर्थंकर अर्हतनें निषेध करी है, तिसका जो ग्रहण करणां, जैसें साधुकों अशुद्ध आहार लेनेका निषेध है, अरु श्रावककों अभक्ष्य वस्तु ग्रहण करणेका निषेध है, सो इन पूर्वोक्तकों ग्रहण करे, तो इसका नाम तीर्थंकर अदत्त है. चौथा गुरु अदत्त. सो जैसें कोइ साधु शास्त्रोक्त निर्दोष आहार व्यवहार शुद्ध ल्यावे, पीछे उस आहारकों जो गुरुकी आज्ञा विना खावे, सो गुरु अदत्त है.

यह चारो अदत्त, संपूर्ण तो जैनका यतिही त्याग सक्ता है, गृहस्थसें तो एक स्वामी अदत्तही त्यागा जाता है, इस वास्ते इसीकी यहां मुख्यता है, तिस वास्ते पराइ वस्तु पूर्वोक्त प्रकारसें लेनी नहीं, जे कर ले लेवे, तो चोर नाम पडे, राजदंड होवे, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते न लेनी चाहियें. अरु जिस वस्तुकी बहुत मनाइ नहीं है, लेनेसें चोर नाम नहीं पडता है, तिसकी जयणा करे, अरु किसीकी गिरी पडी वस्तु मिल जावे, पीछे जे कर जान जावे कि यह वस्तु अमुककी है, तब तो उसकों

दे देवे, जे कर उस वस्तुके स्वामीकों न जाने, अरु अपणा मन दृढ रहे, तो लेवे नहीं, अरु कदाचित् बहुमोली वस्तु होवे, अरु मनदृढ न रहे, तो उस वस्तुकों ले कर अपने पास कितनेक दिन रक्खे, जे कर उसका मालक कोइ जान पडे, तो उसकों दे देवे, जे कर उसका स्वामी कोइ मालुम न पडे,तो धर्मखातेमें उस धनकों लगा देवे,जेकर लोन अधिक होवे, तो अर्द्ध धर्ममें लगा देवे. तथा अपणी जमीनकूं खोदतां तिसमेंसूं धन निकल आवे, तो रखनेका आगार है, परंतु इसमेंनी अर्द्ध नाग अथवा चौथा हिस्सा धर्ममें लगावे, तथा दूसरेकी जगा मोलसें लीनी होवे, उसमेंसूं खोदतां जे कर धन निकल आवे, जे कर मनमें संतोष होवे, तब तो उस मकान वालेकों वो धन दे देवे, जे कर लोन होवें, तव आधा धर्ममें लगावे, अरु आधा अपने पास रक्खे, तथा कोइ पुरुष अपने पास धन रक्ख कर, पीछेसें मर गया होवे, अरु उसका कोइ वारस न होवे, तव श्रावक उस धनकों नले पंचके आगें जाहर करे, जो कुछ पंच कहे, सो करे. कदापि देश कालकी विषमतासें उस धनकों जाहेर करते कोइ राजसंबंधी क्लेश उठता मालुम पडे, कोइ दुष्ट राजा लोनके वशमें कहे कि तेरे घरमें औरनी औसा धन है, इत्यादि होवे, तब तो मौन करकें उस धनकों धर्मस्थानमें लगा देवे.

तथा घरकी चोरी सो यह है किः— घरकी सर्व वस्तुओंका मालक माता पिता है, तिनके पूछे विना धन वस्त्रादि लेनेकी जयणा रक्खे, अथवा जिसके साथ प्रेम होवे, तथा जो संबंधी होवे, जिसके घरमें जाने आनेका अरु खाने पीनेका व्यवहार होवे, उसके विना पूछे कोइ फलादि वस्तु खानेमें आवे, उसका आगार रक्खे, परंतु जे कर उस वस्तुके खानेमें मालककोंका मन दुःखे, तो न लेवे. इसी रीतीसें तीसरा अदत्तव्रत पाले, यह व्यवहार शुद्ध अदत्तादान विरमणव्रत है.

अरु निश्चयसेंतो तो जितना अबंधपरिणाम हुआ है, गुणस्थानकी वृद्धि होनेसें बंध व्यवछेद हुआ, सो निश्चय अदत्तविरमणव्रत कहियें है. इस व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्ज सो कहते हैं.

१प्रथम तेनाहृड अतिचार है,सो चोरकी चोराइ वस्तु तिसकों तेनाहृत कहते है. सो वस्तु न लेवे, एतावता चोरीकी वस्तु जाण कर के न लेवे,

क्योंकि जो चोरीकी वस्तु जानके लेता है, वो लेने वालाभी चोर है, जे कर जैनमतके शास्त्रोमें सात प्रकारके चोर लिखे हैं ॥ यदाह ॥ चौरश्चौरापको मंत्री, भेदज्ञः काणकक्रयी ॥ अन्नदः स्थानदश्चैव, चौरः सप्तविधः स्मृतः ॥ १ ॥ यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा प्रयोगअतिचार. सो चोरी करने वालोंकों प्रेरणा करणी किः– अरे! तुम चुप चाप निर्व्यापार आज कल क्यों बेठ रहे हो? जे कर तुमारे पास खरची नहीं होवे, तो मैं देता हूं, अरु तुमारी ल्याइ हुइ वस्तु मैं बेच देऊंगा, तुम चोरी करणे वास्ते जाउ. इत्यादि वचनों करकें चोरोंकों प्रेरणा करणी, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार. सो सरस वस्तुमें नीरस वस्तु मिला करकें वेचे. जैसें केशरमें कशुंनादिमिला करकें वेचे, घीमें गलादि, हिंगमें गुंदादि, खोटी कस्तूरी खरी करकें वेचे, अफयूनमें खोट मिलाने, पुराणा वस्त्र रंगा कर नवेके भाव वेचे, रूइको पाणीसें भिंजो कर वेचे, दूधमें पाणी मिलायकें वेचे, इत्यादि करे, तो तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा राजविरुद्धगमन अतिचार है. सो अपणे गामके वा देशके राजाने आज्ञा दीनी है, जो फलाणे गाममें जाणां नहीं. इत्यादि जो राजाकी आज्ञा है, उसका उल्लंघन करनां, वैरी राजाके देशमें अपने राजाके हुकुम विना जानां, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा खोटा तोला, मापा, करणेंका अतिचार है. सो कूट तोलां, मापा, करणा, कमती तोलसें तो देणां, अरु अधिक तोलसें ले लेणां, यह पांचमा अतिचार है. यह पांचो अतिचारकों वर्जे ॥इति तृतीयव्रतं संपूर्णं॥

४ चौथा मैथुनसेवनेका त्याग करनां, तिसका नाम मैथुनत्याग व्रत कहते हैं. तिस मैथुनके दो भेद हैं, एक द्रव्यमैथुनत्याग, दूसरा भाव मैथुनत्याग, उसमें द्रव्यमैथुन तो परस्त्री तथा परपुरुषके साथ संगम करनां, सो पुरुष स्त्रीका त्याग करे, अरु स्त्री पुरुषका त्याग करे, रतिक्रीडा कामसेवनका त्याग करे तिसकों द्रव्यब्रह्मचारी तथा व्यवहारब्रह्मचारी कहियें.

दूसरा भाव मैथुन है. सो एक चेतन पुरुषके विषयविलास परपरिणतिरूप, तथा तृष्णा ममता रूप, इत्यादि कुवासना, सो निश्चय परस्त्रीकों मिलनां तिसके साथ लाल पाल कामविलास करनां, सो भावमैथुन जान

नां. तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हितशिक्षासें ज्ञान हूआ, तब जातिहीन जान करकें अनागत कालमें महा दुःखदायी जान कर पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनंत जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम भक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक है. अरु विभाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविभूति हर लीनी है, तो अब सद्गुरुकी सहायसेंही ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हूई थी, तिसका थोडा थोडा निग्रह करुं, त्यागनेका भाव आदरुं, जिस्सें शुद्धस्वभाव घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, असी समझ पा करकें परपरिणतिमें मग्नता त्यागे, औ कर्मके उदयमें व्यापक न होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो भाव मैथुनका त्यागी कहीयें. इहां द्रव्यमैथुनके त्यागी तो षट् दर्शनमें मिल सक्ते हैं, परंतु भावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसें भेदज्ञान जब घटमें प्रगट होता है, तब भवपरिणतिसें सहज उदासीन रूप भाव मैथुनका त्यागी जैनमत मेंही होता है. इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत, सो परस्त्रीका त्याग करनां, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रक्खी हूइ स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, असा जो प्रत्याख्यान करनां, सो परदारगमन विरमणव्रत है. अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें संतोष करुं, असा जो व्रत धारण करे, तिसकों स्वदारसंतोष व्रत कहियें.

देवांगना तथा तिर्यंचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्त्तमान स्त्री वर्जकें और स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीसेंभी संभोग न करे, क्योंकि दिनसंभोगमें जो संतान उत्पन्न होता है, सो निर्बल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीभी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीभी पर पुरुषका त्याग करे. इसी रीतिसें चौथा व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्जे, सो लिखते है.

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार. सो विना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनकों अपरिगृहीता कहते हैं, क्योंकि इनका कोइ भर्त्तार नहीं है. जे कर कोइ अल्पमति विषयाभिलाषी मनमें विचारे, कि मैनें तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीभी स्त्रीयां नहीं है, इनके

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा ? असा विचार करकें कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ जोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीनी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंमे पुरुषसें व्यजिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंनी अतिचार लगे.

२ दूसरा इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार है. तिसका स्वरूप कहते हैं. इत्वर नाम थोडे कालका है, सो थोडेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच कें वेश्यादिकोंको अपनी करकें रक्खी है, इहां कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें असा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिककों तो मैने अपणी स्त्री बना करकें थोडेसे काल वास्ते रक्खी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा ? असे अज्ञानके विचारमें उसके साथ संगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे. अरु स्त्रीकोंनी जब अपणी सौकणकी वारीके दिनमें अपने जर्त्तारसें विषय सेवे, वो अपणे मनमें असा विचार करे, कि अपणे पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा, क्यों कि मैनें तो परपुरुषका त्याग करा है ? यह दूसरा अतिचार. इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावककों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतजंग होवे, परंतु अतिचार नहीं.

३ तीसरा अनंगक्रीडा अतिचार है. सो अनंग नाम कामका है, तिस काम कंदर्पको जागृत करनां, आलिंगन, चुंबन प्रमुख करनां, नेत्रोंका हाव, जाव, कटाक्ष, हास्य, उठा, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैनें तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनंगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परंतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि असा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने माहापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मतसें उसका व्रतजंगजी हो गया, तथा अपणी स्त्रीसें चौरासी आसनोसें जोग करे, तथा पंदरा तिथिके हिसाबसें स्त्रीके अंगमर्दनादि कर कें काम जगावे, तथा परम कामाजिलाषी होनेसें जब अपनी स्त्रीका जोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीनी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु संचार करकें हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंनी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावककों जे

सें तैसें करकें कामेछा घटानी चाहियें. क्यों कि विषयके घटानेसें अरु वी र्यके रखनेसें बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु अ धिक काम सेवनेसें मन मलिन, पापवृद्धि,राजयक्ष्मा, (क्षय) भ्रम, मूर्छा, क्ल म, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय मग्न होनां न चाहियें. केवल जिस्सें वेदविकार शांत हो जावें, तितनांही मैथुन करनां चाहियें. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री संबंधि काम सेवन की जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसें जरी हूई विचारे, मलीन वस्तु है, मु खमें डुर्गंध जरी है, नाकमें सिंघाणकी डुर्गंध है, कानोंमें मैल है. पेटमें वि ष्टा, मूत्र, जरा है. नसायोंमें खाये पीयेका रस, रुधिर. हाड, चाम, चर्बी, वाय, पित्त, कफ, जरा है. महा अशुचिका पूतला है. जिस अंगमें श्वास लेवेगा, उहां महा डुर्गंध उछलती है, अनित्य अशाश्वत है. सडन, पतन, विध्वंसन हो जानां, यह इसका स्वजाव है, तो फेर हे मूढ जीव! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है? ऐसें विचारसें कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परविवाह करण अतिचार है. सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यश के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाह करावे. सो चौथा अतिचार.

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है. सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अजि लाष धरे. पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके देखे विना क्षणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथ वा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, जांग, हरताल, पारा प्र मुख खावे, तीव्रकाममें प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे. अथवा स्त्रीजी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव जाव वि षय लालसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं. इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासें जाननां ॥ इति चतुर्थव्रतं समाप्तं ॥

५ अथ पांचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते हैं. परिग्रहके दो जेद हैं, एक तो बाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो ड्व्यपरिग्रह नव प्रका रका है. दूसरा जाव परिग्रह, सो चौदह अच्यंतर ग्रंथिरूप जो परजावका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सकषाई पणे बंध, सो जावपरिग्रह है, अरु

शास्त्रमें मूर्छाकों मुख्य वृत्ति करकें जावपरिग्रह कह्या है, तिनमेंसूं चौदह प्रकारका जो अभ्यंतर परिग्रह है, सो लिखते हैं. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ जय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ क्रोध, ८ मान, ९ माया, १० लोज, ११ स्त्रीवेद, १२ पुरुषवेद, १३ नपुंसकवेद, १४ मिथ्यात्व. यह चौदह प्रकारकी अभ्यंतर ग्रंथि है, इहां संसारमें इस जीवकों केवल अविरतिके बलसें इछा, आकाश समान अनंती है. कदापि जरणेमें आती नहीं, अविरतिके उदयसें इछा अरु इछासेंती कर्मबंधनमें पडा हूआ चार गतिमें भ्रमण करता है. सो कोई पुण्यके उदयसें मनुष्य जवादि सकल सामग्रीका योग पा कर. सद्गुरुकी संगतिसें श्रीजिनवाणी सुणी. तब चेतना जाग्रत जई. तब विचार करा कि अहो में समस्त परजावसें अन्य हूं! अबंधि, अछेद्य, अजेय, अदह्यधर्मी हूं! परंतु इछाके वश हो कर समस्त छेदन, जेदन परिभ्रमणादि डुःखोंकों जोगने वाला परधर्मी बन रह्या हूं! ईस वास्ते समस्त परजावका मूल जो इछा है. तिसकों दूर करे. तब समस्त परजाव त्यागरूप चारित्र आदरे, साधुवृत्ति अंगीकार करे. अरु जिस जीवके इछा प्रबल होनेसें एक साथ सर्व परिग्रह त्यागनेका सामर्थ्य न होवे. अरु दोषमें मरे, तब गृहस्थ, धर्मइछा परिमाण रूप व्रत आदरे, सो इछा परिमाणव्रत नव प्रकारका है, सो कहते हैः–

१ प्रथम धन इछा परिमाण व्रत है. सो धन चार प्रकारका है. प्रथम गणिम धन, सो नालिकेर प्रमुख, जो गिणतीसें वेचनेमें आवे. दूसरा धरिम धन, सो गुड प्रमुख जो तोलके बेचनेमें आवे. तीसरा परिछेद्य धन, सो सोना, रूपा, जवाहिर प्रमुख जो परिक्षासें बेचनेमें आवे. चोथा मेयधन, सो दूधादि वस्तु जो मापके वेचनेमें आवे, यह चार प्रकारका धन है. इसका जो परिमाण करे, सो धनपरिमाण व्रत है.

२ दूसरा धान्य परिमाण व्रत. सो धान्य चौवीस प्रकारका है. १ शालि, २ गेहूं, ३ जुवार, ४ बाजरी, ५ जव, ६ मूंग, ७ मुठ, ८ उडद, ९ चूंट, १० बोडा, ११ मटर, १२ तूअर, १३ किसारी, १४ कोद्रवा, १५ कंगणी, १६ चणा, १७ वाल, १८ मेथी, १९ कुलथ, २० मसूर, २१ तिल, २२ मंड्वा, २३ कूरी, २४ वरटी. यह खाने वास्ते तथा व्यवहार वास्ते उपयोगी हैं. तथा १ धनीया, २ जींमी, ३ सोवा, ४ अजवयन, ५ जीरा. यह

भी धान्यकी जातिमें है, परंतु ये औषध्यादिकमें काम आते हैं. तथा १ सामक, २ मणकी, ३ जुरट, ४ चेकरीया, ये मारवाड देशमें प्रसिद्ध हैं. औरभी जो अडक धान्य, विना बोयां ऊगता है, जिसकों लोक काल डुका लमें खाते हैं, यह सर्व जातिका अन्न, तिसका परिमाण करे.

३ तीसरा क्षेत्रपरिग्रह व्रत है. सो बोनेका खेत, तथा बाग (बगीचादिक) जाननां. इस क्षेत्रके तीन भेद हैं, उसमें एक क्षेत्र तो ऐसा है, कि जो वर्षाके पाणीसें होता है, दूसरा कूपादिकके जल सींचनेसें होता है, तीसरा तो यह पूर्वोक्त दोनो प्रकारसें होता है, इनका परिमाण करे.

४ चौथा वास्तुक परिमाण व्रत है. सो घर, हाट, हवेली प्रमुख तिनकेभी तीन भेद हैं. एक तो भूंहरा प्रमुख, दूसरा उच्छ्रित सो उंची हवेली, एक मजली, दो मजली, तीन मजली, यावत् सातभूमि तक, तीसरी हेठ भूंहरा प्रमुख, उपर एक दो आदि मजल, तिसका परिमाण करे.

५ पांचमारूप्यपरिग्रहपरिमाण व्रत है. सो सिक्के विनाका काचा रूपा तिसका तोलका परिमाण करे.

६ छठा सुवर्णपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो विना सिक्केका सोना, तिसके तोलका परिमाण करे.

७ सातमा कूपद परिग्रह परिमाण व्रत है. सो त्रांबा, पीतल, रांग, कांसुं, सींसा, भरत, लोहाप्रमुख सर्व धातुके बर्त्तनोंके तोलका परिमाण करे.

८ आठमा डुपद परिग्रहपरिमाण व्रत है. सो दासी, दास, अथवा पगारदार गुमास्ता प्रमुख रखणां, तिनकी गणतीका परिमाण करे.

९ नवमा चौपदपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो गाय, महीषी, घोडा, बलद, बकरी, भेम्ह प्रमुख, तिनकी गिणतीका परिमाण करे.

अथ अपनी इच्छा परिमाणसें परिग्रह किस तरें रक्खे? सो कहते हैं. रूपा घडा हूआ अरु अनघडा तथा नगद रूपक इतना रक्खुं, तथा सोनाभी घडा अनघडा असर्फी तथा जवाहीर इतना रक्खुं, इस रीतिसें परिमाण करे, उपरांत पुण्योदयसें धन वधे, तो धर्मस्थानमें लगावे, तथा वर्ष दिनमें इतने इस भांतके वस्त्र पहिरूं, तथा एक वर्षमें इतना अन्न मैं घरखरच वास्ते रखुं, अरु इतना वणिज वास्ते रखुं, तिसका स्वरूप सातमे व्रतमें लिखेंगे. तथा क्षेत्रपरिमाणमें क्षेत्र, वाडी, बगीचा प्रमुख सर्व मिल क

२ इतने विग्घे धरती रक्खुंगा, तथा घर, खिडकी बंध, अरु खुल्ली डुकान, तबेला, वखारी, तथा परदेश संबंधी डुकानकी जयणा, तथा इतना नाडे देणे वास्ते घरकी रखनेकी जयणा, तथा नाडे लीये हूये घरकों समराव णेकी जयणा, तथा कुटुंब संबंधि घर बनानेमें उपदेशकी जयणा, तथा अपणा संबंधी अरु गुमास्ता परदेश गया होवे, पीछेसें तिसके घर प्रमुख समरावणेकी जयणा, तथा आजीविकाके वास्ते किसीकी चाकरी करनी प डे, तब उसके घर प्रमुखके समरावणेकी जयणा, तथा कुपदपरिमाणमें तांबा, पीतल, रांग, लोहखंड, कांसी, जरत. सर्व मिलीके धातुके बर्त्तन, त था और घाट, तथा तूटा, इतने मण रखणेकी जयणा, तथा डुपद परिमा णमें श्रावकने दासी, दासकों मोल दे कर नहीं लेनां, परंतु पगारवाले (नौकर) गिणतीमें इतने रखने चाहियें, तथा गुमास्ता रखनेकी जयणा, तथा चौपद परिमाणमें गाय, नैंस, बकरी प्रमुख रखनेका परिमाण करे. अब यह इच्छा परिमाण व्रतके पांच अतिचार है, सो लिखते हैं.

१ प्रथम तो धनपरिमाण अतिक्रम अतिचार. इस रीतिसें होता है.सो जब इच्छा परिमाणसें धन अधिक हो जावे, तब लोजसंज्ञासें दिलमें ऐ सा मनसुबा करे कि जो मेरा पुत्र बडा हो गया हैं, तिसकोंजी धन चा हियें है, अरु मैंनेजी पुत्रकों धन देनाही है? ऐसा कुविकल्प करकें पुत्रके नामके पांच हजारादि रूपक जूदे रक्खे, तथा अन्न प्रमुख अपणे नियम परिमाण घरमें पडा है, तब अधिक रखनेंकी इच्छासें दूसरायोंके घरमें रख छोडे, जब चाहियें तब ले आवे, अरु अज्ञानमें ऐसा विचारे कि मैंने तो इच्छा परिमाणसें अधिक अपने घरमें रखनेका नियम करा है, अरु य ह तो दूसरोंके घरमें रक्खा है, इस वास्ते मेरे नियममें दूषण नहीं, तथा व्रत लेनेके वखतमें कच्चे मणके हिसाबसें अन्न रक्खा है, अरु जब परदे शांतरमें गया, तब पक्के मणका उहां तोल जान कर अन्नजी पक्के मणके हिसाबसें रक्खे, ऐसे विचार वालेकों प्रथम अतिचार लगता है.

२ दूसरा क्षेत्रपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो जब इच्छा परिमाणसेंती अधिक घर हाटादिक हो जावे, तब विचली जिंत तोडके दो तिनादि घरा दिकोंका एक घरादि बनावे, तथा दो तीनादि खेतोंकी विचली मोली तोडकें एक बना लेवे, अरु मनमें यह विचारे कि मैंने तो गिणती रक्खी है,सो तो

मेरा नियम अखंडित है, बडा कर लेनेमें क्या दूषण है? ऐसें करे, तो दूसरा अतिचार लगे.

३ तीसरा रूप्यसुवर्णप्रमाण अतिक्रम अतिचार है. सो जब इच्छा परिमाणसेंती अधिक होवें, तब अपणी स्त्रीकें घेणे भारी तोलके बनवावे, तथा अपणे आभरण तोलमें भारी बनवावे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चौथा कुपदपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो त्रांबा, पीतल, कांसी प्रमुखके बर्त्तन राछ वगैरें जो गिणतीमें रखे हैं, सो जब घरमें संपदा होवे, तब गिणतीमें तो उतनेही रखे, परंतु तोलमें वजनदार दूगणे तिगुणे बनवावे, अरु मनमें ऐसा विचारे जो मेरा व्रत तो अखंडित है? क्योंकि बर्त्तनोंकी गिणती तो मेरे तितनीही है? तथा कच्चे तोल परिमाणें रखे थे, फेर पक्के तोल परिमाण रख लेवे,सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा द्विपदचतुष्पद प्रमाणातिक्रम अतिचार है. सो दास, दासी, घोडा, गाय, बलद प्रमुख अपणे परिमाणमें जब अधिक हो जावे, तब वेच गेरे, अथवा गर्भ ग्रहण अवेरी करावे, जितने गिणतीमें हैं, उनमेंसें प्रथम वेचके फेर गर्भ ग्रहण करावे, अथवा भाइ पुत्रके नामके कर रखे, तो पांचमा अतिचार लगता है. इति पंचमव्रतं संपूर्णं ॥

६-७-८ अथ छठा, सातमा, अरु आठमा, इन तीनो व्रतोंकों गुणव्रत कहते हैं. तिनमें छठे व्रतमें दिशांका विचार है, इस वास्ते इसका नाम दिक्परिमाण व्रत कहते हैं. तिसका स्वरूप लिखते हैं.

पूर्वे जो पांच अणुव्रत कहे हैं. तिनकों इन तीनो व्रतों करकें गुण वृद्धि होती है, इस वास्ते इनका नाम गुणव्रत है. क्योंकि जब दिशिपरिमाणव्रत कीया, तब तिस क्षेत्रमें बाहिरले सर्व जीवोंकों अभयदान दीया, यह पहिले प्राणातिपात व्रतकों गुण पुष्टि भइ, तथा बाहिरले जीवोंके साथ झूठ बोलनां मिट गया, यह मृषावाद व्रतकों पुष्टि भइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी वस्तुकी चोरीका त्याग हूआ, यह तीसरे व्रतकों पुष्टि भइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी स्त्रीयोंके साथ मैथुन सेवनेका त्याग हूआ यह चौथे व्रतकी पुष्टि भइ, तथा नियम बाहिरके क्षेत्रमें क्रय विक्रयका निषेध भया, यह पांचमे व्रतकी पुष्टि भइ, इस वास्ते पांचो अणुव्रतोंकों यह तीन व्रत गुणकारी है.

तहां दिक्परिमाण व्रत. सो चारों दिशि, तथा चारों विदिशि, तथा ऊर्ध्व, अरु अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो भेद हैं. एक व्यवहारसें, सो अपणी कायासें दशों दिशिमें जानेका, तथा मनुष्य भेजनेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे. उसकों व्यवहार दिशि परिमाण व्रत कहियें.

दूसरा निश्चयसें. सो जो कुछ नरकादि गतिमें गमन है, सो सर्व कर्मका धर्म है. जिसके वश पडकें यह जीव चारों गतिमें भटकता है, परानुयायी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परभावानुसारी गतिभ्रमण करता है, परंतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वभाव, तथा निश्चल स्वभाव है, ऐसा श्री जिनवाणीके उपदेशसें समझकें चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तब अपणा अगति स्वभाव जानिके सर्व क्षेत्रसें उदास रहे, समस्त क्षेत्रसें अप्रतिबंधक भावसें वर्त्ते, सो निश्चयमें दिक्परिमाण व्रत कहियें. यह दशों दिशिका परिमाण करें. तिसके दो भेद हैं.

प्रथम जलमार्ग. सो जहाज नावों करकें इतने योजन अमुक दिशिमें अमुक बंदर, तथा अमुक द्वीप तक जाऊं, जे कर पवन, तथा वर्षातके वशसें और दूर किसी बंदरमें ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतभंग न होवे, अथवा अजाण पणे कर कें भूल चूकसें किसी बंदरमें चला जाऊं, उसकाभी आगार है.

दूसरा स्थलका मार्ग. सो जिस जिस दिशिमें जितने जितने योजन तक जानेका परिमाण करा है, तहां तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, म्लेछ, पकडके नियम क्षेत्रसें बाहिर ले जावे, तिसका आगार है. तथा ऊर्ध्व दिशिमें बारा कोश तक जाणेकी जयणा रक्खे, तथा अधोदिशिमें आठ कोश तक जाणेकी जयणा, परंतु जो ऊंचा चढके फेर नीचा उतरें, वो अधोदिशिमें नहीं, तथा जितनें क्षेत्रका परिमाण करा है, तिस्सें बाहिरका कोइ पिछाण वाले पुरुषका पत्र आवे, सो बांच कर उसका उत्तर लिखनां पडे, तिसका आगार है, परंतु मैं अपणी तरफसें विना कारण पत्र प्रमुख नहीं लिखुंगा, तथा परदेशकी विकथा सुननेका आगार, इस व्रतके पांच अतिचार हैं सो कहते हैं.

१ प्रथम ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है. सो अनाभोगसें अथ वा वे सुरतिसें अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार.

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार. पूर्ववत्.

३ तीसरा तिर्यग्दिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार. ऊपर वत्. जे कर विष म नंगके नयसें गुमास्ता नेजे, तोनी अतिचार लगे.

४ चौथा एक दिशिमें सौ योजन रक्खे हैं, अरु एक दिशिमें पच्चास योजन रक्खे हैं, पीछें जब एकही दिशिमें मौढसौ योजन जानां पडे, तब दूसरी तरफके पच्चास योजननी उसी तरफ जोड लेवे, अरु अज्ञानसें ऐसा विचारे कि मेरे नियमकेही पच्चास योजन हैं, इस वास्ते मेरे व्रतका नंग नहीं.

५ पांचमा स्मृतिअंतर्धान अतिचार. सो अपणे नियमके योजनकों नूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सौ योजन रक्खे हैं? कि पच्चास योजन रक्खे हैं? इत्यादि ऐसा संशयके हूए फेर पच्चास योजनसें अधिक जावे, तो पांचमा अतिचार लग जावे, यह पांच अतिचार वर्जे॥ इति षष्ठव्रतं संपूर्ण.

७ अथ सातमा नोगोपनोग व्रतका स्वरूप लिखते हैं. यह दूसरा गुण व्रत है. इस व्रतके अंगीकार करणेसें सचित वस्तु खानेका त्याग करे, अथवा परिमाण करे, तथा जिसमें बहुत हिंसा होवे, ऐसा व्यापार न करे, तथा जिस काममें अवश्य हिंसा बहुत करनी पडे, तिसका त्याग करे, अनक्ष्य त्यागे, अरु चौदह नियमनी इस व्रतमें गिणे जाते हैं, इस वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पांचही अणुव्रतोंकों गुणकारी है, इस व्रतके दो नेद हैं, सो कहते हैं.

१ प्रथम व्यवहार. सो नक्ष्यानक्ष्यका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा आश्रव संवरका ज्ञान कर कें खान पानादिक जो इंद्रिय सुखका कारण है, उसमें अपणी शक्ति प्रमाण बहुत आरंन गेडकें अल्पारंनी होनां, सो व्यवहार नोगोपनोगविरमण व्रत है.

२ दूसरा निश्चयसें, तो श्रीजिनवाणी सुण कर वस्तु तत्त्वस्वरूप जान कर विचारे कि जो जगत्में परवस्तु है, सो सर्व हेय है, इस वास्ते तत्त्व वेत्ता पुरुष परवस्तुकों न खावे, न अपणे पास रक्खे, तब शुद्ध चैतन्य नाव धार कें परम शांतिरूप हो कर जो वस्तु सडे, पडे, गिरे, जाती रहे,

तब परवस्तु जान कर ऐसा विचार करे कि यह पुद्गलकी पर्याय है, सर्व जगत्की जूठ है, ऐसी वस्तुका भोगोपभोग करणा, सो तत्ववेत्ताकों उचित नहीं, ऐसे ज्ञानसें परभावकों त्यागे, स्वगुणकी वृद्धि करे, ऐसा ज्ञान पा कर आत्माकों स्वस्वरूपानंदी करे, चिद्विलासका अनुभवी होवे, सो निश्चय भोगोपभोगविरमण व्रत कहियें.

अथ भोगोपभोग शब्दका अर्थ कहते हैं, जो आहार, पुष्प, विलेपनादि, एक वार भोगनेमें आवे, सो भोग कहियें. अरु जो भुवन, वस्त्र, स्त्रीयादि वार वार भोगनेमें आवे, सो उपभोग कहियें. अरु कर्माश्रयी इस व्रतके अनेक भेद हैं, सो आगें लिखुंगा.

तथा श्रावककों उत्सर्ग मार्गमें तो निरवद्य आहार लेनां लिखा है, जे कर शक्ति न होवे, तब सचित्तका त्यागी होवे, जेकर यहभी न कर सके, तो बाईस अभक्ष्य अरु बत्तीस अनंतकाय इनका तो जरूर त्याग करे, तिनमें प्रथम बाईस अभक्ष्य वस्तुका नाम लिखते हैं.

१ वडके फल, २ पीपलके फल, ३ पिलखणके फल, ४ कठुंबरके फल, ५ गूलरके फल, यह पांचतो फल अभक्ष्य हैं, क्योंकि इन पांचों फलोंमें बहूत सूक्ष्म कीडे त्रस जीव भरे हूये होते हैं, जिनोंकी गिणती नहीं हो सक्ती है, इस वास्ते धर्मात्मा जीव, इन पांचों फलोंकों न खावे, जे कर दौर्भिक्ष्यमें अन्न न मिले, तोभी विवेकी पूर्वोक्त पांच फल भक्षण न करे.

६ मदिरा, ७ मांस, ८ मधु, ९ माखण, इन चारोंमें तद्वर्ण असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं, अरु यह चारों विगय, महाविगय हैं. सो महाविकारकी करनेवाली हैं, तिनमें प्रथम मदिरा त्यागने योग्य है, क्योंकि मदिराके पीनेमें जो दूषण है, सो हेमचंद्रसूरिकृत योगशास्त्रके दश श्लोकोंके अर्थसें लिखते हैं.

१ मदिरा पीनेसें चतुर पुरुषकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, जैसें दुर्भागी पुरुषकों सुंदर स्त्री छोड जाती है, तैसें इस पुरुषकों बुद्धी छोड जाती है, २ मदिरापानी पुरुष, अपणी माता, बहिन, बेटीकों अपणी भार्याकी तरें समझ के जोरा जोरीसें विषयभी सेवन कर लेता है, अरु अपणी भार्याकों अपणी माता समझता है, मदिरा पीनेवाला ऐसा निर्लज्ज और महा पापके करने वाला होता है, ३ मदिरापानी, अपनेकों अरु परकोंभी नहीं

जानता, ४ मदिरापानी, अपणे स्वामीकों अपणा किंकर जानता है, अरु अपणेकों स्वामी जानता है, एसी निर्लज्ज बुद्धिवाला होता है, ५ मदिरा पीने वाले पुरुषकों चौंकमें लेटा हूआ देख कर मुखरि आय कर, कुत्ते उसके मुखमें मूत जाते हैं, ६ मदिराके रसमें मग्न पुरुष चौंकमें नंगा मादर जात, निर्लज्ज हो कर, सो जाता है. ७ मदिरा पीने वालेने जो अभक्ष्य भक्ष्य, चोरी, यारी, खून प्रमुख कुकर्म करे हैं. वो सर्व लोकोंके आगें प्रकाश देता है. ८ मदिरा पीनेसें शरीरका तेज, कीर्त्ति, यश, तात्कालिकी बुद्धि, यह सब नष्ट हो जाते हैं. ९ मदिरापानी जूत लगेकी तरें नाचता है, १० मदिरा पीने वाला कीचड और गंदकीमें लोटता है, ११ मदिरा पीनेसें अंग शिथिल हो जाते हैं, १२ मदिरा पीनेसें इंद्रियोंकी तेजी घट जाती है, १३ मदिरा पीनेसें बडी मूर्छा आजाती है, १४ मदिरा पीनेवालेका विवेक नष्ट हो जाता है, १५ संयम नष्ट हो जाता है, १६ ज्ञान नष्ट हो जाता है, १७ सत्य नष्ट हो जाता है, १८ शौच नष्ट हो जाता है, १९ दया नष्ट हो जाती है, २० क्षमा नष्ट हो जाती है, जैसें अग्निसें तृण जस्म हो जाते हैं, तैसें पूर्वोक्त गुणजी उसका नष्ट हो जाते हैं, २१ मदिरा है, सो चोरी, अरु परस्त्रीगमनादिकोंका कारण है, क्योंकि मदिरा पीनेवाला कौनसा कुकर्म नहीं कर सक्ता है? २२ मदिरा, आपदा तथा वध, बंधनादिकोंका कारण है, २३ मदिरेके रसमें बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते दया धर्मिकों मदिरा न पीनी चाहिये. २४ मद्य पीने वाला दीयेकों अणदीया कहता है, २५ लीयेकों नहीं लीया कहता है, २६ करेकों न करा कहता है, २७ मद्यपी, घरमें तथा बाहिर, पराये धनकों निर्जय हो कर लूंट लेता है, २८ मदिरेके उन्मादसें बालिका, यौवनवती, वृद्धा, ब्राह्मणी, चांडालिनी प्रमुख स्त्रीयोंसें जोग कर लेता है, २९ मद्यप अरराट शब्द करता है, ३० गीत गाता है, ३१ लोटता है, ३२ दौडता है, ३३ क्रोध करता है, ३४ रोता है, ३५ हसता है, ३६ स्तंजवत् हो जाता है, ३७ नमस्कार करता है, ३८ भ्रमता है, ३९ खडा रहता है, ४० नटकी तरें अनेक नाटक करता है, ४१ ऐसी वो कौनसी दुर्दशा है. जो मदिरा पीने वालेकों नहीं होती है? शास्त्रोंमें सुणते हैं कि सांब कुमारने मदिरा पी कर द्वैपायन ऋषिकों संताया, तब द्वैपायननें द्वारकाकों दग्ध कीया, ४२ मदिरा पीनां, वो

सर्व पापोंका मूल है, ४३ मदिरा पीने वाला निश्चय नरक गतिमें जावेगा. ४४ मदिरा सर्व आपदाका स्थान है. ४५ मदिरा अकीर्तिका कारण है, ४६ मदिरा नीच म्लेछ लोक पीते हैं, ४७ गुणीजन लोक जो हैं, सो मदिरा पीनेवालेकी निंदा करते हैं, ४८ मदिरा पेटमें लग जानेसें तत्काल मरजाता है, ४९ मदिरा पीने वालेके मुखसें महादुर्गंध आती है, ५० मदिरा सर्व शास्त्रोंमें निंदित है, ५१ मदिरा पीनेवाला ईश्वरका नक्त नहीं. इत्यादि मदिरा पीनेमें अनेक दोष हैं, इस वास्ते श्रावक मदिरा न पीवे, यह छठा अनक्ष्य.

सातमा अनक्ष्य मांस है. यह मांस नक्षण करनेमें जो दूषण है, सो लिखते हैं. जो पुरुष मांस खानेकी इछा करता है, वो पुरुष, दयाधर्मरूपी वृक्षकी जड काटता है, क्योंकि जीवके मारे विना मांस कदापि नहिं हो सक्ता है, जे कर कोइ कहेगा कि हम मांसनी खा लेवेगा, अरु प्राणीयोंकि दयानी करेंगा, ऐसे कहने वालेकों हम उत्तर देते हैं, कि सदा सर्वदा जो मांसके खानेवाले हैं, अरु वो अपने मनमें दयाधर्मी बना चाहता है, वो पुरुष अग्निमें कमल लगानां चाहता है, क्योंकि जब उसने मांस खाया, तब प्राणीयोंकी दया उसके मनमें कदापि नहीं हो सकी है, जैसें अंबका खानेवाला आम्रफल देखता है, तब उसकी मनसा आंब खानेहीकों दोडती है, तैसें मांसाहारी किसी गौ, नेडी, बकरी, प्रमुखकों देखता है, तब उन जीवोंका मांस खानेकी तर्फ उसकी सुरती दौडती है, ऐसे पुरुषकों दयाधर्म, क्यों कर संनवे ? जे कर कोइ कहेगा कि जीवके मारने वाला सौकरिक अर्थात् कसाइ है, तिस पासों बना बनाया मांस ल्या कर खावे, तो क्या दोष है ? ऐसे मूढमतिकों उत्तर देते हैं, कि जो मांस खानेवाला है, वोनी जीवका हिंसक है, क्यों कि नगवंतने शास्त्रोंमें सात जनोंकों घातक (हिंसक) अर्थात् कसाइही कहा है, उसका नाम कहते हैं. एक जीवके मारने वाला, दूसरा मांस वेचने वाला, तीसरा मांस रंधने वाला, चौथा मांस नक्षण करने वाला, पांचमा मांस खरीदने वाला, छठा मांसकी अनुमोदना करने वाला, सातमा पितरोंके, देवताओंकों, अतिथिकों, मांस देने वाला, यह सात साक्षात् परंपरा करकें घातक अर्थात् जीववधके करने वाले हैं, मनुजीनी मनुस्मृतिमें कहते हैं ॥श्लोक॥ अनुमंता विशसिता, निहंता क्रयविक्रयी॥ संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च, खादकश्चेति

घातकाः ॥ १ ॥ अस्यार्थः—१ अनुमोदक केतां अनुमोदन करने वाला, २ विशसिता केतां मारे हुये जीवके अंगका विभाग करने वाला, ३ निहंता केतां मारने वाला, ४ मांसका वेचनेवाला, ५ मांसका रांधने वाला, ६ मांसका परोसने वाला, ७ मांसका खाने वाला. यह सातों घातकी हैं, अर्थात् जीवके वध करने वाले हैं, दूसरा श्लोकभी मनुस्मृतिका लिखते हैं ॥श्लोक ॥ अकृत्वा प्राणिनां हिंसां,मांसंनोत्पद्यते क्वचित् ॥ नच प्राणिवधः स्वर्ग्य, स्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ २ ॥ अस्यार्थः— जितना चिर जीवकों न मारे, तहां तक मांस नही होता है, अरु जीववधसें स्वर्ग नहीं अपितु नरक गति होती है, इस वास्ते मांस खानां वर्जे ॥ २ ॥

अब मांस खाने वालेकोंही वधकपणा है, यह बात कहते हैं. दूसरा जीवोंका मांस जो अपने मांसकी पुष्टाइके वास्ते खाते हैं, वास्तवमें वेही कसाइ हैं, क्यों कि जे कर खानेवाले न होवे, तो काहेकों कोइ जीवकोंभी मारे ? जो पर प्राणीयोंको मार करकें अपणेकों सप्राण करते हैं, वे जीव थोडीसी जिंदगीके वास्ते अपणा नाश करते हैं, एक अपणे जीवने वास्ते क्रोडों जीवोंकों जो दुःख देता है, तो वो क्या सदा काल जीता रहेगा ? जिस शरीरमें सुंदर मिष्टान्न, विष्टा हो जाता है, अरु दूध प्रमुख अमृत वस्तुओं मूत्र हो जातीयां है, तिस शरीरके वास्ते कौन बुद्धिमान जीववध अरु मांस भक्षण करे ?

जे केइ महामूढ, निर्विवेकी, लिख गये हैं, कि मांसभक्षण करनेमें दूषण नहीं, वेभी म्लेछ थे, क्यों कि वे लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला ॥ १ ॥ इस श्लोकके कहने वालोंने व्याध, गृध्र, भेडीयें, श्वान, (कुत्ते), व्याघ्र, गीदड, काग प्रमुख हिंसक जीवोंकों अपना धर्मोपदेश गुरु माने हैं, क्योंकि जे कर ये पूर्वोक्त गुरु न होते तो इनकों मांस खाने कौन सिखाता ? बिना गुरुके उपदेशके पूज्यजन उपदेश नहीं देते हैं, इस श्लोक बनाने वालोंकी अज्ञानता देखियें, वे कहते हैं कि मांस खानेमें, मदिरा पीनेमें, अरु मैथुन सेवनेमें पाप नहीं, परंतु निवृत्तिस्तुमहाफला इनसें जो निवृत्ति करे तो महाफल है, यह स्ववचन विरोध है, क्योंकि जिसके करनेमें पाप नहीं,उसके त्यागनेमें धर्मफल कदापि नहीं हो सका है.

अब जिसके वास्ते करकेंभी मांस त्यागने योग्य है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ मांसभक्षयितामुत्र, यस्य मांसमिहाद्म्यहं ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वे, निरुक्तं मनुरब्रवीत् ॥ १ ॥ अस्यार्थः— जिसका मांस में खाता हूं, वो जीव मुजकों परभवमें भक्षण करेगा, यह निरुक्तसें मनुजी मांस का अर्थ कहते हैं, मांसभक्षण वालेकों महा पाप लगता है, जो पुरुष मांस भक्षणमें लंपट है, वो पुरुष जिस जिस जीवकों जलचर मत्स्यादिकों, स्थलचर मृग, सूअर प्रमुखकों, खेचर तित्तर लाल बटेरे प्रमुखकों देखता है, तिस तिसकों मारकें खानेकी बुद्धि करता है, डाकनकी तरें सर्वकों खाया चाहता है, मांस खानेवाला उत्तम पदार्थोंका परिहार करके नीच पदार्थके लेनेमें उद्यत होता है, जैसें काग, पंचामृत छोड कर विष्टेमें चांच देता है, तिसी तरें जान लेनां. इसका नाम तो निर्विवेकता है, ॥ श्लोक ॥ ये भक्षयंति पिशितं, दिव्यभोज्येषु सत्स्वपि ॥ सुधारसं परित्यज्य, भुंजते ते हलाहलं ॥ १ ॥ अर्थः— सकल धातुओंके वृद्धि करने वाला दिव्य भोजन विद्यमान हूआं, सर्व इंद्रियोंके आल्हादजनक दूध, क्षीर, किलाट, कूर्चिका, रसाल, दधि आदिक, मोदक, मंदक, मंडिका, खाजे, पापड, घेबर, इंद्ररिका, खंडवडे, पूरणवडे, गुडपापडी, इक्षुरस, गुड, मिसरी, डाख, आंब, केले, अनार, नालियर, नारंगी, संतरे, खजूर, अखोट, राजादनखिरणी, फनस, अलूचे, बदाम, पिस्तां. इत्यादि अनेक दिव्य भोजनोंकों छोड के मूढमति, विस्रगंधि, सूगवाला, वमनका करनेवाला, ऐसा बिभत्स्य मांसकों भक्षण करता है, वो जीव, जीवितव्यकी वृद्धि वास्ते अमृत रस छोड कर जीवितांतकारी, हालाहल विष भक्षण करता है, बालक जे होता है, सोनी पत्थरकों छोड कर सुवर्णकों ग्रहण करता है, अरु जे मांसाहारी पुरुष है, वो जे मांससेंभी अधिक पुष्टताके करने वाला ऐसे दिव्य भोजन हैं, तिनकों छोड के मांस खाता है, तो वो बालकसेंभी अज्ञानी है.

और तरेंसें मांसभक्षणमें दूषण लिखते हैं. जे निर्दय पुरुष है, उसकों धर्म नहीं, क्योंकि धर्मका मूल दया है, ये बात सर्व संत जन मानते हैं, अरु मांसाहारीकों दया तो है नहीं, मांस खाने वालेकों पूर्वे कसाइ कहा है, इस वास्ते मांसाहारीके धर्म नहीं.

प्रश्नः—मांसाहारी आपने आपकों अधर्मी क्यों बनाता है ?

उत्तरः— मांसके स्वादमें लुब्ध हूआ वो धर्म,दया,कुछ नहीं जानता है, जे कर कदाचित् जानजी जाता है, तोजी आप मांसलुब्ध है, इस्सें मांसकों त्याग करनेकूं समर्थ नहीं, इस वास्ते वो मनमें विचार करता है, कि मेरें समानही सर्व हो जावे, असा जान कर औरोंकोंजी मांसजक्षण न करनेका उपदेश नहीं करता है.

अब मांस जक्षण करनेवाले महामूढ हैं, यह बात कहते हैं. कितनेक मूढमति आप तो मांस नहीं खाते हैं, परंतु देवता, पितर, अतिथि, इनकों मांस चढा देते हैं, क्यों कि उनके शास्त्रकारक कहते हैं ॥ श्लोक ॥ क्रीत्वा स्वयं वा उत्पाद्य, परोपहृतमेव वा ॥ देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य,खादन् मांसं न दुष्यति ॥ १ ॥ यह श्लोक मृगपक्षीयोंके विषयमें हे, इसका अर्थ कहते हे. कसाईकी दुकान विना व्याध, शकुनिकादिकोंसें अर्थात् शिकारी और जानवरोंके मारने वालोंसें मांस मोलसें ले कर देवता, अतिथि, पितरोंकों देनां चाहियें. क्यों कि वे लिखते हें कि कसाईकी दुकानके मांससें देवता पितरोंकी पूजा नहीं होती है, तातें आप मांस उत्पन्न करकें पितृ आदिकोंकूं देवे तो पितृआदि प्रसन्न होते हैं, सो इस प्रकारसूं मांस उत्पन्न करे, कि ब्राह्मण तो मांग कर मांस ल्यावे, औ क्षत्रिय शिकार मारकें मांस ल्यावे, अथवा किसीने मांस जेट करा होवे, उस मांससें देवता पितरोंकी पूजा करकें फेर मांस खावे, तो दूषण नहीं, यह सर्व महामूढ और मिथ्यादृष्टियोंका कहनां है, क्योंकि दयाधर्मी आस्तिकमत वालों कों तो मांस दृष्टिसेंजी देखनां योग्य नहीं, तो फेर देवता पितरोंकी पूजा मांससें करनी, यह तो धर्मीकों स्वप्नेमेंजी न होवेगी, इस वास्ते देवताओं कों मांस चढानां यह बुद्धिमानोका काम नहीं, कारण के देवता तो बडे पुण्यवान् है, कवल आहार करते नहीं है, तो फेर जुगुप्सनीय मांस क्यों कर खावे ? जो कहते हें कि देवता मांस खाते हें, वे महा अज्ञानी हें, अरु पितर जो हैं, वेतो अपणे अपणे पुण्य पापके प्रजावसें अछी बूरी गतिकों प्राप्त हो गये हैं, अपणे करे हूये कर्मोंका फल जोगते हैं, पुत्रके करे हुए कर्मका उनकों कुछजी फल नहीं लगता है, तब मांस देने रूप पापका तो क्या कहना है ? पुत्रादिकोंका सुकृत कराजी तिनकों नही

मिलता है, क्योंकि आंबके सींचनेसें केलेमें फल नहीं फलता है, अरु अतिथिकी भक्ति वास्ते जो मांस देनां है, सोतो नरकपातका हेतु अरु म हा अधर्मका कारण है, यहां कोई अैसें कहे कि जो बात श्रुति स्मृतिमें है, वो माननी चाहियें.

उत्तरः—यह कहनां ठीक नहीं है, जो बात श्रुतिमें अप्रामाणिक है, वो बुद्धिमान् कदापि नहीं मानेंगे, क्योंकि श्रुतिमें हम अैसे सुनते हैं, " ब चांसि भूयांसि यथा पापघ्नो गोस्पर्शः द्रुमाणां च पूजागादीनांच पूजागा दीनां च वधः स्वर्ग्यः ब्राह्मणभोजनं पितृप्रीणनं मायावीन्यधिदेवतानि व न्हौ हुतं देवप्रीतिप्रदं" अैसा कथन जो श्रुतियोंमें है, तिसकों युक्ति कुश ल पुरुष कदापि नहीं मानेंगे, तिस वास्ते यही महा अज्ञान है, कि जो मांस करकें देवताओंकी पूजा करणी. कितनेक कहते हैं कि जैसें मंत्रों क रकें संस्कृत अग्नि, दाह नहीं करती है, तैसेंही मंत्रों, करकें मांसभी संस्कार करा हूआ दोषके वास्ते नहीं होता है, यह कथन मनुजीका है ॥श्लोक॥ असंस्कृतान् पशून्मंत्रै, र्नाद्याद्विप्र कथंचन ॥ मंत्रैश्चसंस्कृतानद्या, च्छाश्वतं विधिना स्थितः ॥ १ ॥ अर्थः—मंत्रों करकें असंस्कृत पशुओंका मांसकों ब्राह्मण न खावे, अरु जो मंत्रों करकें संस्कृत पशु हैं, तिनका मांस खावे, तो शाश्वतोनित्यो वैदिक जाननां.

उत्तरः— मंत्र करकें जो मांस पवित्र कीया है, वो मांसकों धर्मी पुरुष कदापि भक्षण न करे, क्योंकि मंत्र जैसें अग्निका दाह शक्तिकों रोकता है, तैसें नरकादि प्रापण शक्ति जो मांसकी है, उसको नहीं दूर कर सके, जे कर दूर कर देवें तब तो सर्व पाप करकें पीछें पापका हनने वाला मंत्रके स्मरण मात्रसेंही सर्व पाप दूर हो जाने चाहियें, तब तो जो वेदोंमें पाप का निषेध करा है, सो सर्व निरर्थक हूआ, क्यों कि सर्व पापोंका मंत्रके स्मरणसेंही नाश हो गया, इस वास्ते यहभी अज्ञोंहीका कहनां है,

तथा कोइ कहते है कि जैसें थोडासा मद्य पीनेसें नशा नहीं चढता है, तैसें थोडासा मांस खानेमेंभी पाप नहीं लगता है.

उत्तरः— बुद्धिमान् यवमात्रभी मांस न खावे, क्यों कि थोडाभी विष दुःखदायी होता है, तैसें थोडाभी मांस खाना सोभी दोषके तांइ है.

अब मांस खानेमें अनुत्तर दूषण कहते हैं, तत्काल इस मांसमें संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं, अरु अनंत निगोद रूप जीव तिनका संतान वारं वार होनां तिस करकें दूषित हैं, यदाह आमासु अपकासु, अविपच्यमाणासु मंसपेसीसु ॥ सयय चिय उववाउ, नणिउं निगोय जीवाणं ॥ १ ॥ अर्थः—कच्ची तथा अपक्क असी जो मांसकी पेसी बोटी रंधती है, तिसमें निरंतर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खानां जो है, सो नरकमें जाने वालोंकों पूरी खरची है, इस कारण के लीये बुद्धिमान् पुरुष जो है सो मांस कदापि न खावे.

अथ यह मांस खाना किन्होने कथन करा है, तिनोका नाम लिखते हैं. १ मांस खानेके लोनीयोने, २ मर्यादा रहितोने, ३ नास्तिको ने, ४ थोडी बुद्धि वालोंने, ५ खोटे शास्त्रोंके बनाने वालोंने, ६ वैरीयोंने, मांस खाना कहा है. तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ निर्दयी नहीं. तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ नरककी अग्निका इंधन नहीं. गंदगी खा कर जो सूअर अपणे शरीरकों पुष्ट करता है, सो अच्छा है, परंतु जीवकों मारके जो निर्दयी हो कर मांस खाता है, सो अच्छा नहीं है.

प्रश्नः— सर्व जीवोंका मास खानां तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दीया है, परंतु मनुष्यका मांस खानां तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है, इसका क्या हेतु होगा?

उत्तरः—अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खानां नहीं लिखा, क्यों कि वे कुशास्त्रोंके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मांस खाना लिखेंगें, तो मनुष्य कबी हमकोंही न खा लेवे? इस शंकासें नहीं लिखा, तो जो पुरुषमांसमें अरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता है, तिस समान कोइ धर्मी नहीं, अरु तिसमें जो भिन्न मानके मांस खाते है इस समान कोइ पापीभी नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसेंती उत्पत्ति होती है, अरु विष्टेके रससें वृद्धि होती है, तथा लहु जिसमें जरा रहता है, अरु कृमि जिसमें उत्पन्न होते हैं, असे मांसकों कौन बुद्धिमान् खाता है? आश्चर्य तो यह है कि ब्राह्मण लोक शुचिमूल तो धर्म कहते हैं, अरु सप्त धातुसें जो मांस हाड बनते हैं, तिस मांस हाडकों मुखमें दांतोसें चवाते हैं, अब उनको कुत्तों के समान समजीयें कि शुचिधर्मवाले मानीये? यह आश्चर्य हैं, जिन

इन्होंकी असी समज है, कि अन्न और मांस यह दोनो एक सरीखे हैं, तिनकी बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विषभी तुल्यही हैं,

अरु जो जडबुद्धि असा अनुमान करते हैं,कि मांस खाने योग्य है,इति प्राणीका अंग होनेसें यह हेतु उदनादिवत् यह दृष्टांतसें यह मांसभी प्राणीका अंग है, इस वास्ते मांसभी खाने योग्य है,तब तो गौका मूत तथा माता, पिता, भार्या, बेटी, इनका मूत पुरिषभी क्यों नहीं पीते खाते हैं ? क्योंकि यहभी प्राणीका अंग है, तथा अपनी भार्याकी तरें अपनी माता, बहिन, बेटीकों क्यों नहीं गमन करते हैं ? स्त्रीत्व अरु प्राणी अंगत्व सर्व जगे बराबर है, तथा जैसें गौका दूध पीते हैं, तैसें गौका रुधिर तथा माता पितादिकोंका रुधिरभी क्यों नहीं पीते हैं ? क्योंकि प्राणी अंग हेतु तो सर्व जगे तुल्य हैं. इस वास्ते जो अन्न और मांस इन दोनोकों तुल्य जानते हैं, वेभी महा पापीयोंके सिरदार हैं,

तथा शंखकों शुचि मानते हैं, परंतु पशुके हाडकों कोइ शुचि नहीं मानता, इस वास्ते अन्न और मांस यद्यपि प्राणी अंग हैं, तोभी अन्न भक्ष्य है, अरु मांस अभक्ष्य है,एक पंचेंद्रिय जीवका वध करकें जो मांस खाता है, जैसी तिसकों नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेकों नहीं होती है, क्योंकि अन्न मांस नहीं हो सक्ता है, मांसकी तसीरोंसें अन्नकी तसीरें और तरेंकी हैं, मांस महाविकारका करने वाला है, तैसा अन्न नहीं. इत्यादि विलक्षण स्वभाव है, इस वास्ते मांस खाने वालोंकी नरकगति जान कर संत पुरुष अन्नके भोजनसें तृप्ति मानते हैं,अरु सरस पदकों प्राप्त होते हैं, यह तो मांसके दूषण श्रीहेमचंद्र सूरिकृत योगशास्त्रके अनुसार लिखे हैं. अरु इस कालमेंभी युरूपियन लोक जो बुद्धिमान् हैं, उनोनेभी मांस खानेमें चौवीस दूषण प्रगट करे हैं, अरु मदिरा पीनेसें जो खराबीयां होती हैं, तिनकी तो गिणतीभी नहीं है,इस वास्ते मदिरा अरु मांस यह दोनों अभक्ष्यकों श्रावक त्यागे यह सातवा अभक्ष्य कह्या.

८ आठमा अभक्ष्य माखण है, क्योंकि जैन मतके शास्त्रानुसारे छाछसें बाहिर काढे माखणकों जब अंतर मुहूर्त्त अर्थात् दो घडीके लगभग काल व्यतीत हो जाता है, तब उस माखणमें सूक्ष्म जीव तद्वर्णके उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते माखण खाना वर्जित है. जैन लोकोंकों छाछसें बाहिर

माखण निकालके तत्काल अग्निके संयोगसें घी बनाके छानके देखके पीछेसें खाना चाहियें, क्यों कि एक तो इस रीतिसें शास्त्रोक्त जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, तिनकी हिंसाजी नहीं होती है, अरु मकडी, कंसारी, मछरादि, जानवरों के अवयव टांग प्रमुखजी घी छाणणेसें निकल जाते हैं, अरु माखण काम कीजी वृद्धि करता है, तब मनमें खोटे विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस वास्तेजी श्रावककों माखण न खाना चाहियें, तथा एक जीवके वध करनेसेंजी जब पाप होता है, तब तो पूर्वोक्त रीतीसें माखन तो जीवोंकाही पिंम हो जाता है, तब माखनके खानेमें पापकी क्या गिनती है ?

प्रश्नः—माखनमें तो दो घडी पीछें कोई जी जीव उत्पन्न हूआ हम नहीं देखते हैं, तो फेर माखनमें दो घडी पीछें हम क्योंकर जीव मान लेवें ?

उत्तरः—जो जैनमतके शास्त्रोंकों सत्य मानेगा वो तो शास्त्रकारका कथन सत्यही मानेगा, अरु जो जैनके शास्त्रोंकों सत्य नहीं मानता,वो चाहो सत्य माने, चाहो न माने परंतु हम आगम प्रमाणके बिना इस बातमें और प्रमाण नहीं दे सकते हैं. क्योंकि वस्तु दो तरेंकी होती है, एक हेतुगम्य, दूसरी आगमगम्य,तो माखनद्विदलादिमे जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे हेतुगम्य नहीं किंतु आगम गम्य हैं, इस वास्ते जो आगम सर्वज्ञ जिन अर्हंत वीतरागका कह्या हूया है, उसीका कहा माननां चाहियें, जे कर कोई पुरुष किसीजी शास्त्रकों न मानेगा,आंखोसें देखी वस्तुही मानेगा, तब तो नरक स्वर्गादि जो अदृष्ट हैं,उनकोंजी न माननां चाहियें,तथा परमेश्वर चौदवे तथा सातवे असमान उपरि रहता है,तथा स्वर्ग अरु नरकमें पुण्य पाप करनेसें जीव जाता है, यहजी न माननां पडेगा, इस वास्ते आगम प्रमाणजी मानना चाहियें. क्योंकि सर्ववस्तु हमारी दृष्टिमें नहीं आती है.

९ नवमा अजक्ष्य मधु, अर्थात् सहत है, उसका स्वरूप लिखते हैं. यह सहत जो है, सो अनेक जीवोंकी घात होनेसें उत्पन्न होता है, यह तो परलोक विरोध दोष है, अरु मधु (सहत) जुगुप्सनीय (निंदने योग्य) है, मुखकी लालवत् यह इहलोक विरुद्ध दोष है, इस वास्ते श्रावकधर्मीकों मधु न खानां चाहियें.

अब मधु अर्थात् सहत खानेवालेकों पापी पणा दिखाते हैं, ॥श्लोक॥ जक्ष्यन्माक्षिकं क्षुद्र, जंतुलक्षक्षयोद्भवं ॥ स्तोकजंतु निहंतृभ्यः, सौनिकेभ्योऽ

क्रियते ॥१॥ अर्थः—कुद्रजंतु जो छोटे जीव अथवा हाड रहित जीव, ति नोंके लाखोंका नाश उपलक्षणसें बहुत जीवोंका जब विनाश होता है, तब मधु उत्पन्न होता है,जब मधु नक्षण करता है,तब थोडे पशु मारने वाले कसाइसेंनी उसकों अधिक पाप लगता हैं,क्यों कि जो नक्षक है, सो नी घातक है,यह बात उपर लिख आये हैं. तथा लोकमें यह व्यवहार है, जो जूठा नोजन नहीं खानां, अरु यह जो मधु है, सो तो महा जूठ है, क्योंकि एकेक फूलसें रस (मकरंद) पी करकें मक्षीयोंजो वमन करतीयों हैं. सो सहत हैं. मधु है इस वास्ते धर्मी पुरुषकों जूठ न खानी चाहियें. यह लौकिक व्यवहारमें प्रसिद्ध है.

कोइ कहेगा कि मधु तो त्रिदोषका दूर करने वाला है, इस लिये रोग दूर करने वास्ते औषधिमें नक्षण करे तो क्या दोष है? इत्याह

उतरः—अप्यौषधकृतेजग्धं,मधुश्वभ्रनिबंधनं ॥ नक्षितप्राणनाशाय, काल कूटोकणोऽपि हि ॥ १ ॥ अर्थः—जो कोइ रसको लंपटतासें मधु खावे, उस की बात तो दूर रही, परंतु जो औषधिके वास्तेनी मधु खावे,सो यद्यपि रो गादि अपहारक है, तोनी नरकका कारण है, हि यस्मात् प्रमादके उदय सें जीवनेका अर्थी हो कर कें जो कोइ कालकूट विषका एक कणनी खा यगा, सो जरूर प्राण नाशके तांइ होवेगा.

प्रश्नः—मधु तो खजूर डाक्षादि रसकी तरें मीठा है,सर्व इंद्रियोंकों सुख कारी है, तो फेर इसकों त्यागने योग्य क्यों कहते हो?

उत्तरः— सत्य है. जो मधु मीठा है, यह व्यवहारसें हैं,परंतु परमार्थसें तो नरककी वेदनाका हेतु होनेसें अत्यंत कडूआ है,

अब जो मधुकों पवित्र मान कर मंदबुधि जीवों मधुकों देवस्नानमें उ पयोगी समझते हैं, तिनका उपहास्य शास्त्रकार करते हैं ।।श्लोक॥ मक्षि कामुखनिष्ठ्यूतं, जंतुघातोद्भवं मधुः ॥ अहो पवित्रं मन्वाना, देवस्नाने प्रयुं जते ॥१॥ अर्थः—माखीयोंके मुखकी जूठ,अरु जीवघातमें अर्थात् हजारो बच्चे अरु अंमोंके मारनेसें, उत्पन्न होता है वो बच्चे, अंमे जब मरते हैं,तब तिनके शरीरका लहु पाणीनी मधु (सहत) के बिच मिल जाते हैं,तब तो मधु महा अशुचिरूप है, अहो यह शब्द उपहास्यार्थमें हैं, क्यों कि जैसे वे देवता है, तैसी तिनकों पवित्र वस्तुनी चढाइ जाती है. यह उपहास्य है,

अहो शब्द उपहासे ॥यथा॥ करजाणां विवाहे तु, रासजास्तत्रगायना ॥ प रस्परं प्रशंसंति, अहो रूपमहोध्वनिः ॥ १ ॥ यह नवमा अनज्य कहा.
१० दशमा पाणीकी बनी हूइ बरफ अनहय है,क्योंकि यह असंख्य अप्काय जीवोंका पिंम है इसके खानेसें चेतना मंद होती है अरु तत्काल शरदी करती है कुछ बल वृद्धिनी नहीं करती है अरु वीतराग अर्हंत सर्वज्ञ प रमेश्वरने, निषेध कराहै इस वास्ते यह अनक्ष्य है.

११ अफीम प्रमुख विषवस्तुके खानेसें पेटमें कृमि गंमोलादिक जो जी व होते हैं सो मरजाते हैं विष खानेसें चेतना मुरफा जाती है अरु जे कर खानेका ढबपड जाता है तो फेर बूटना मुस्किल होता है वखत पर अमल न मिले तो क्रोध उत्पन्न होता है शरीर शिथिल होजाता है अरु जो अमली होजाता है, उसकों व्रत नियम अंगीकार करना डुक्कर है अमलीका स्वनाव बदल जाता है जब अमल खाता है,तब एक रंग होता है अरु जब अमल उतरजाता है तब दूसरा रंग होजाता है तथा स्वतंत्र ता गेड कर पराधीन होना पडता है इसके खानेमे स्वादनी बुरा है तथा विष खाने वाला जहां लघुनीत बडीनीत करता है तिस क्षेत्रमें त्रस था वर जीवोंकी हिंसा होती है सोमल, वबनाग, मीठा, तेलीया, संखीया, हरताल, प्रमुख ये सर्व विषहीमें जानने इसके खानेका त्याग करना.

१२ करकओले (घडे) जे आकाशमें गिरते हैं यहनी अनक्ष्य है.

१३ सर्वजातकी कच्चिमट्टि अनक्ष्य हैं कच्चि सचित्तमट्टि नाना प्रका रकी असंख्य जीवात्मक जाननी मट्टी खानेसें पेटमें बहुतजीव उत्पन्न हो जाते हैं तथा पांमु रोग, आम वात पित्त पथरी प्रमुख बहुत रोग उत्पन्न होजाते हैं बहुत मट्टी खाने वालेका पीला रंग होजाता है तथा कितनीक जातकी मट्टीमें मेंमक प्रमुख जीवोंकी योनी है इस वास्ते अनक्ष्य है.

१४ रात्रीनोजन अनक्ष्य है रात्रिनोजन में तो प्रत्यक्षमें दूषण इस लोकमें है अरु परलोकमें डुःखका हेतु है रात्रिमें चारों आहार अ नक्ष्य है रात्रिमें जो जैसे रंगका आहार होता है तिसमें तैसे रंगके जीव जिनका नाम तमस्काय जीव हैं वो उत्पन्न होते हैं तथा आश्रित जीवनी बहुत होते हैं तथा रात्रिमे उचित अनुचित्त वस्तुका नेल संनेल हो जाता है तथा रात्रिनोजन करनेसें प्रसंग दोष बहुत लगते हैं सो किसतरेंकि जब

रात्रिकों खावेगा तब नित्य रात्रकों भोजन करने वास्ते रसोइभी करनी पडेगी तिसमें जीवोंका संहार होवेगा श्रावकके कुलका आचार भ्रष्ट होता है सूक्ष्म त्रस जीव नजरमें नहीं आते हैं कदापि दीखभी जायें तोभी यत्न नहीं होता है जब अग्नि बलतीहै तब पालकी भीतमें रात्रिकों जो जीव आश्रित है वो तससें आकुल व्याकुल होकर अग्निमें गिर पडते हैं सर्पादिकोंके मुखसें जेकर भोजनमें लाल गिरे तब कुटुंबका तथा अपणी आत्माका विनाश होवे तथा पतंगीये प्रमुखपडे तथा छतमें अरु छपरमें रात्रिकों सर्प्प गिरली, छपकली, मकडी मच्छरादि बहुत जीव वसते हैं जेकर यें जीव भोजनमें खायें जायें तोभारी रोगोत्पन्न होजाते हैं यदुक्तं योगशास्त्रे ॥ मेधांपिपलिकाहंति, यूकाकुर्य्याज्जलोदरं ॥ कुरुते मक्षिकावांतिं, कुष्टरोगंच कोलिका ॥ १ ॥ कंटकोदारुखंमंच, वितनोतिगलव्यथां ॥ व्यंजनांतर्निपतित, स्तालुविध्यति वृश्चिकः ॥ २ ॥ विलग्नश्च गलेवालः, स्वरभंगायजायते ॥ इत्यादयोदृष्टदोषाः, सर्व्वेषां निशिभोजने ॥ ३ ॥ अर्थः—कीडी अन्नादिमें खाइ जावेतो बुद्धिकों मंद करती है तथा यूंका (जूंके) खानेसें जलोदर करती है, मक्षी वमन करती है, मकडी कुष्ट रोग करती है,अरु वेरी प्रमुखका कांटा तथा काष्टका टुकडा गलेमें पीडा करता है तथा बटेरे आदिके व्यंजनमें जेकर विछु आया जावेतो तालुयोंकों वींधता है इत्यादि रात्रिभोजन करनेमें दृष्ट दोष सर्वलोकोंके देखनेमें आते हैं तथा रात्रिभोजन करता हूआं अवश्य पाकः अर्थात् रसोइ करनी पडेगी तिनमें आवश्य षट्कायके जीवोंका वध होवेगा भाजन धोनेंसें जलगत जीवोंका विनाश होता है जलगेरनेसें भूमिमें कुंथु कीडा प्रमुख जीवोंकी घात होती है इसवास्ते जिसके जीव रक्षणेका आकांक्षा होवे वो रात्रि भोजन न करे.

प्रश्नः जहां अन्नभी रांधना न पडे भाजनभी धोनें न पडे अैसे जो बने बनाये लडु खजुर द्राक्षादि भक्ष है तिनके खानेमें क्या दोष है?

उत्तरः— श्लोक ॥ नाप्रेक्ष्यसूक्ष्मजंतूनि, निश्याद्यात्प्रासुकान्यपि ॥ अप्युत्केवलज्ञाने, नादृतंयन्निशाशनं ॥ १ ॥ अर्थः— मोदकादि फलादि यद्यपि प्रासुक अर्थात् अचेतनभी है तोभी रातकों न खाना चाहियें किस वास्ते कि सूक्ष्मजीव कुंथ्वादि देखे नहीं जाते है क्योंकि केवलीभी जिनकों सदा सर्वकुछ दीखता है तोभी रात्रिमें भोजन नहीं करते हैं केवली

सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा वास्ते अरु अशुद्ध व्यवहार दूर करने वास्ते रात्रि कों नहीं खाते हैं यद्यपि दीवेके चादणेसें कीडी प्रमुख दीख जाती है तोजी मूलगुणकी विराधना टालने वास्ते रात्रि जोजन अनाचीर्ण है

अब लौकीक मतवालोंकि सम्मति देकर रात्रिजोजनका निषेध करते है श्लोक ॥ धर्मविन्नेवभुंजीत, कदाचनविनात्यये ॥ वाह्याअपि निशी जोज्यं, यदजोज्यंप्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ अर्थः— श्रुतधर्मका जानने वाला कदा चित् रात्रिजोजन न करे क्योंकि जो जिनशासनसें बाहिरले मतवाले है वेजी रात्रिजोजनको अनक्ष्य कहते हैं तिनका शास्त्रही लिखते हैं श्लोक ॥ त्रयीतेजोमयोजानु, रितिवेदविदोविदुः ॥ तत्करैःपूतमखिलं, शुभंकर्मसमाचरे त् ॥ १ ॥ अर्थः— ऋग यजुः साम लक्षण तीनो वेद तिनका जो तेज है सो सूर्य है आदित्यः त्रयीतनुः अैसा सूर्यका नाम है अैसावेदोंके जानने वाले जानते हैं तिस सूर्यकी किरणाकरके पिः— पूतं (पवित्रं) संपूर्ण शुजकर्म अंगीकारं करे जब सूर्योदय न होवे तब शुजकर्म न करे तिन शुजकर्मोका नाम लिखते हैं श्लोक ॥ नैवाहुतिर्नचस्नानं, नश्राद्धदेव तार्चनं ॥ दानंवाविहितंरात्रौ, जोजनंच विशेषतः ॥ २ ॥ अर्थः—आहुति सो अग्निमें घृतादि प्रक्षेप करना स्नानसो अंग प्रत्यंग प्रक्षाल करना श्राद्ध पितृकर्म देवपूजा दानदेना जोजन तो विशेष करकेही नज करना इतना काम रात्रिमें न करने.

तथा परमतके यहजी दो श्लोक हैं ॥ देवैस्तुभुक्तंपूर्वान्हे, मध्यानेऋ षिजीस्तथा ॥ अपरान्हेतुपितृनि,ः सायान्हेदैत्यदानवैः ॥ १ ॥ संध्यायां य क्षरक्षोनिः, सदाभुंक्तकुलोद्वहः ॥ सर्ववेलां व्यतिक्रम्य; रात्रौभुक्तमजोज नं ॥ २ ॥ अर्थः— सवेरेतो देवता जोजन करते है मध्यान्ह अर्थात् दो पहर दिन चढे ऋषि जोजन करते हैं अपरान्ह अर्थात् दिनके पीछले जागमें पितर जोजन करते है अरु सायान्हे विकाल वेलामें दैत्य दान व जोजन करते हैं संध्यामें रातदिनकी संधिमें यक्ष गुह्यक राक्षस खाते हैं ॥ कुलद्वहे तियुधिष्टरस्यामंत्रणं ॥ सर्वदेवताओंका वखत उलंघके रात्रिकों जो खाना है सो अजक्ष्य है यह पुराणोंके श्लोकों करके रात्रि जोजनके निषेधका संवाद कह्या

अब वैद्यक शास्त्रकाजी रात्रिजोजनके निषेधका संवाद कहते हैं श्लो

क ॥ आयुर्वेदेषु ॥ हृन्नाभि पद्मसंकोच, श्चंडरो चिरपायतः ॥ अतोनक्तं नोकव्यं, सूक्ष्मजीवादनादपि ॥ १ ॥ अर्थः– इस शरीरमें दो पद्म अर्थात् कमल हैं एकतो हृदय पद्म सो अधोमुख है दूसरा नाभिपद्मसो ऊर्द्धमुख है यह दोनो कमल सो सूर्यके अस्त होनेसें रात्रिमें संकोच हो जाते हैं किस कारणसें संकोच होजाते है ? सूर्यके अस्त होजानेसें संकोच हो जाते हैं इस वास्ते रात्रिकों न खाना चाहिये तथा रात्रिकों सूक्ष्म जीव खाये जाते हैं इस्सें अनेक रोगोत्पन्न होते हैं यह पर पक्षका संवाद कह्या.

अब फेर स्वमतसें रात्रिभोजनकानिषेध कहते है श्लोक ॥ संसक्तजीवसंघातं. भुंजानानिशिभोजनं. राक्षसेभ्योविशिष्यंते, मूढात्मानः कथंनुते ॥ १ ॥ अर्थः–जब रात्रिमें खाता है तब जीवोंका समूह भोजनमें पड जाता है असे अंधरूप रात्रिके भोजनके खानेवालोंकों राक्षसोसेंभी क्योंकर विशेष नही कहना ? जब पुरुष जिनधर्मसें रहित होकर विरति नहीं करता है तब श्रृंग पुछसें रहित पशु रूपही है यडुक्तं ॥ वासरेचरजन्यांच, यः खादन्नेवतिष्ठति ॥ श्रृंगपुछपरिभ्रष्टः ॥ स्पष्टंपशुरेवहि ॥ १ ॥

अब रात्रिभोजन निवृत्तिके वास्ते पुण्यवंतोंकों अभ्यास विशेष दिखाते है श्लोक ॥ अन्होमुखेवसानेच, योद्वे द्वघटिकेत्यजेत् ॥ निशाभोजनदोषज्ञो, ऽश्नात्यसौपुण्यभाजनं ॥१॥ अर्थः–दिन उदयमें अरु अस्त समयमें दो दो घडी वर्जनी चाहियें क्योंकि रात्रि निकट होनेसें वर्जनी चाहिये इसी वास्ते आगममें सर्व जघन्य प्रत्याख्यान मुहूर्त्त प्रमाण नमस्कार सहित कहते हैं रात्रिभोजनके दूषणोंका जानकार श्रावक दो घटी जब शेष दिन रहे तब भोजन करे जेकर दो घडीसें थोडादिन रहे भोजन करे तो रात्रि भोजनके प्रत्याख्यानका उसकों फल नहीं होता है जेकर कोइ रात्रिकों नभी खावे परंतु जो उसने रात्रिभोजनका प्रत्याख्यान न करा है तो उसकोंभी कुछ फल नहीं मिलता है क्योंकि उसने प्रतिज्ञा नहीं करी है जैसें रूपइये जमा करावे अरु व्याजका करार न करे उसकों व्याज नहीं मिलता है इस वास्ते नियम जरुर करना चाहिये.

अब रात्रिभोजन खानेका फल परलोकमें कहते हैं श्लोक ॥ उलूककाकमार्जार, गृध्रशंबरशूकराः ॥ अहिवृश्चिक गोधाश्च, जायंतेरात्रिभोजनात् ॥ १ ॥ अर्थः–उलू, काग, बिल्ली, गृध्रचोल, बारांसिगा, सूअर, सर्प,

सूक्ष्म र, गोह, इत्यादि तिर्यंच योनीमें रात्रिभोजन खानेवाले मरके जाते हैं कों रु जो रात्रिभोजन न करे उनकों एक वर्षमें छ महीनेका तपका फल तोहोता है ॥ इतिरात्रिभोजन अभक्ष्य संपूर्ण ॥ १४ ॥

१५ बहुबीजा फलभी अभक्ष्य है जिसमें गिर थोडा अरु बीज बहुत होवे सो बइंगण, पटोल, खसखस, पंपोटा प्रमुख फल, जिसमें जितने बीज हैं उसमें उतने पर्याप्त जीव हैं जेकर खानेमें तो थोडा आता है अरु जीवघात बहुत होती है तथा बहुबीजा फल खानेसें पित प्रमुख रोगों का हेतु होता है अरु जिनाज्ञा विरुद्ध है इति बहु बीजा अभक्ष्य ॥१५॥

१६ संधान अथाणा (आचार) तीन दिनसें उपरांतका अभक्ष्य है सो अथाणा (आचार) अंबका, निंबुका, पत्रका, करमदाका, आदेका, जिमीकंद का, गिरमिरका इत्यादिक अनेक वस्तुका अथाणा (आचार) बनता है चाहो घीका होवे वा तेलका होवे वा पाणीका होवे सर्व तीन दिन उपरांत अभक्ष है परंतु इतना विशेष है किः- जो फल आप खट्टे हैं अथवा दूसरी वस्तुमें खट्टा अंबादिकजो मेल देवे वेतो तीन दिन उपरांत अभक्ष है अरु जिस वस्तुमें खट्टाई नहीं है उसका अथाणा (आचार) एक रात्रिसें उपरांत अभक्ष्य है क्यों किः- इस आचार (अथाणामें) त्रस जीव उत्पन्न होते हैं अरु विल्व प्रमुखतो प्रथमही अभक्ष्य हैं तो फेर उनके अथाणे (आचारका) तो क्याही कहना है ? आचारमें चौथे दिन निश्चय दोइंद्रियजीव उत्पन्न होते है तथा जूठा हाथ लग जावेतो पंचेंद्री, जीव उत्पन्न हो जाते हैं दूसरे मतवालोंके शास्त्रोंमेंभी अथाणा (आचार) नरकका हेतु लिखा है. इति अथाणा अभक्ष्य समाप्तः ॥१६॥

१७ द्विदल जिसकी दो दाल होजावें अरु घाणीमें पीले जिसमेंसुं तेल न निकले ऐसें सर्व अन्नको द्विदल कहते हैं तिस द्विदलके साथ जो गोरस अग्नि उपर नहीं चढा है ऐसा कच्चा दही कच्चा दूध छाछ इनके साथ नहीं जीमणा अरु जेकर दही दूध छाछ गरम करी होवे फेर पीछे चाहो ठंढा हो जावे उसमें जो द्विदल मिलाकर खावे तो दोष नहीं है

१८ सर्व जातके बैंगण एकतो बहु बीजे हैं इस वास्ते अभक्ष्य हैं तिसके बीटमें सूक्ष्म त्रस जीव रहते हैं तथा बैंगण कामकी वृद्धि करते हैं नींद अधिक करते हैं कुछक बुद्धिकोंभी छीन करते हैं इनका नामभी बुरा है इन

का आकारभी अच्छा नहीं है तथा कफ रोगके करता हैं इनके अधिक खा नेसें वैश्वातप खइ रोगादि होजाते हैं और सब जातका फलतो सूकेभी खानेमें आता है परंतु यहतो सूकेभी खाने योग्य नहीं हैं क्योंकि सूके पीछे असे हो जाते है कि मानों चूहोंकी खलडी है ताते यह द्रव्य अशुद्ध है इस वास्ते अभक्ष्य है. इति वैंगण अभक्ष्य ॥२८॥

१९ तुच्छ फल जो ढींडु पीलुं पेंचु तथा अत्यंत कोमल फल सोभी अभक्ष्य है क्योंकि असी वस्तु बहुतभी खावे तोभी तृप्ति नहीं होती है अरु खानेमें थोडा आता है और गेरना बहुत पडता है तथा फल खायां पीछे तिनकी गुठली जो मुखमें चबोलके गेरते हैं उसमें असंख्य पंचेंद्रीय संमूर्छिम जीव उत्पन्न होवे हैं तथा जो पुरुष बहुत तुच्छफल खाता है तिसकों तत्काल रोग होजाता है. इति तुच्छफल अभक्ष्य ॥१९॥

२० अजाणा फल सो जिसका नाम कोइ न जानता होवे तथा न किसीने खाया होवे सो फलभी अभक्ष्य है क्योंकि क्या जाने कभी जहर फल खाया जावे तो मरण हो जावे तथा बावला होजावे ॥ २० ॥

२१ चलित रस सो जिस वस्तुका काल पूरा होगया होवे अरु स्वाद बदल गया होवे सो जब स्वाद बदल जाताहै तब तिसका कालभी पूरा होजाता है जिसमेंसें दुर्गंध आनें लगे, तार पड जावें, सो चलितरस वस्तु है यहभी अभक्ष्य है रोटी, तरकारी, खीचडी, वडा, नरमपूरी, सीरा, हलवा इत्यादि रसोइकी अनेक वस्तु जिनमें पाणीकी सरसाइ है असी वस्तु एक रात उपरांत अभक्ष है तथा द्विदल (दाल,) वडे, गुलगले, पुडोये जिनमें पाणीकी सरसाइ है वे चार पहर उपरांत अभक्ष है जुगलीकी राब (घेंस) जो विना विदलके और उदन छाछमें रांधा है सो आठ पहर उपरांत अभक्ष्य है तथा वर्षाकालमें अषाढीचौमासीसें जो मिठाइ बनी होवे तो पंदर दिन उपरांत अभक्ष है जेकर पंदर दिनसें पहिले बिगड जावे तो पहिलाही अभक्ष्य है असी तरें सर्वत्र जान लेना तथा उष्णकालमें मिठाइकी स्थिति बीस दिनकी है अरु शीतकालमें मिठाइ की स्थिति एक मासकी है उपरांत अभक्ष्य है तथा दही सोला पहर उपरांत अभक्ष्य है छाछभी दहीवत् जानलेनी इस चलित रसमें बे इंद्रिय जीव उत्पन्न होवे हैं इस वास्ते यह अभक्ष्य है ॥ २१ ॥

२२ बत्तीस अनंत काय सर्व अभक्ष्य है क्योंकि सूईकेअग्रभाग उपर जितना टुकडा अनंतकायका आता है उस टुकडेमेंभी अनंत जीव हैं वास्ते अभक्ष्य है. तिसका नाम लिखते हैं. १ भूमिके अंदर जितना कंद उत्पन्न होता है, सो सर्व अनंतकाय है, २ सूरणकंद, ३ वज्रकंद, ४ हरिहलदी, ५ अद्रक, ६ हरिया कचूर, ७ सौंफकी जडा, जिस कानाम विराली कंद है, ८ सतावरवेल औषधि, ९ कुंआर, १० थोहरकंद, ११ गलो, १२ लसण, १३ वांसका करेला, १४ गाजर, १५ लाणा, जिसकी सज्जी बनती है, १६ लोढी पद्मनी सो लोढाकंद, १७ गिरमिर, (गिरिकरनी) कच्छ देशमें प्रसिद्ध है, १८ किसलयपत्र (कोमल पत्र) जो नवा अंकूर उगता है, सर्व वनस्पतिका उगती वखतके अंकूर, सो सर्व प्रथम अनंतकाय होते हैं, पीछे जब बढते है, तब प्रत्येकभी हो जाते हैं, अरु अनंतकायभी रहते हैं, १९ खरसूयाकंद. (कसेरु) अनंतकाय, २० थेग कंद विशेष है तथा थेग नामक भाजी, २१ हरे मोथ, २२ लवण वृक्षकी छाल, २३ खिलोडी. २४ अमृतवेल, २५ मूली, २६ भूमिरुहा सो भूमिफोडा छत्राकार, जिनकों बालक पदबहेडे कहते हैं, तथा खुंबां कहते हैं, २७ वथुवेकी प्रथम उगतेकी भाजी, २८ करुहार, २९ सूयरवल्ली जो जंगलमें बडी वेलडी हो जाती है, ३० पलंककी भाजी, ३१ कोमल आंबली, जहांतक उसमें बीज नहीं पडा है, तहांतक अनंतकाय है, ३२ आलुख, रतालु, पिंडालु, यह बत्तीस अनंत कायका नाम सामान्य प्रकारसें कह्या है, अरु विशेष नाम तो अनेक हैं, क्योंकि कोईक वनस्पति तो पंचांग अनंतकाय है, कोईका मूल अनंतकाय है, कोईका पत्र, कोईका फूल, कोईकी छाल, कोईका काष्ट, ऐसें कोईके एकअंग, कोईके दोअंग, कोईके तीन अंग, कोईके चार अंग, कोईके पांच अंग, अनंत काय हैं. यह बत्रीश अनंतकाय अभक्ष्य है ॥ २२ ॥

अब यह अनंतकायके जानने वास्ते लक्षण लिखते हैं. जिसके पत्ते, फूल, फल प्रमुखकी नसां गूढ होवें, दीखे नहीं, तथा जिसकी संधि गुप्त होवे, जो तोडनेंसें बराबर टूटे, अरु जो जडसें काटी हुइ फेर हरि हो जावे, जिसके पत्ते मोटे दलदार चीकणें होवें, जिसकें पत्ते अरु फल बहुत कोमल होवें, यें सर्व अनंतकाय जाननी.

इन अजक्ष्योंमें अफीम भांग प्रमुखका जिसकों पहिला व्यसन लगा होवे, तब तिसके रखनेकी जयणा करे, तथा रात्रिजोजनमें चउविहार, तिविहार, डुविहार एक मासमें इतने करुं असा नियम करे, तथा रोगादिकके कारण किसी औषधिमें कोइ अजक्ष्य खाना पडे, तिसकी जयणा रखै, तथा बत्तीस अनंतकाय तो सर्वथा निषेध हैं, तोजी रोगादि कारणसें औषधिमें खानी पडे, तिसकी जयणा रखै, तथा अजाण पणें किसी वस्तुमें मिली हुइ खानेमें आ जावे, तो तिसकी जयणा इति बावीश अजक्ष्य स्वरूपं.

अथ चौदह नियमका विवरण लिखते हैं. गाथा ॥ सचित्तदव्वविगइ, वाणेह तंबोल वत्थ कुसुमेसु ॥ वाहण सयण विलेवण, बंजदिसि न्हाण जत्तेसु ॥१॥ अस्यार्थः—श्रावकके जावजीव पांचअणुव्रतमें इच्छा परिमाण सो कोइ आगेंकी अनेक तरेंकी कर्म परिणतिका संजव करकें अपणे निर्वाह सामर्थ्यका उदय अतिडुस्तर विचारके इच्छा परिमाणमें बहुत वस्तु खुल्ली रक्खी है, तिनमेंसें फेर नित्यका आश्रव निवारनेके वास्ते संक्षेप करणार्थे चौदह नियमका धारण दिन प्रत्यें रखनां चाहियें, तिसका स्वरूप कहते है.

१ प्रथम सचित्त परिमाण. सो मुख्यवृत्ती करकें तो श्रावककों सचित्तकों त्याग करणां चाहियें, क्योंकि अचित्त वस्तुके खानेमें चार गुण हैं, प्रथम तो अप्रासुक जलादिकका पीना वर्जनेंसें, सर्व सचित्त वस्तुका त्याग हो जाता है, जहां तक अचित्त वस्तु न होवे, तहां तक मुखमें प्रक्षेप न करे, दूसरा जीव्हा इंद्रिय जींती जाती है, क्योंकि कितनीक वस्तु विना रांधे स्वादवाली होती है, तिनका त्याग हूआ तीसरा अचित्त जलादि पीनेंसें काम चेष्टा मंद हो जाती है, अरु चित्तमें असा खटका हरहमेश रहता है, कि मेरेकूं मतकजी सचित्त वस्तु खानेमें आ जावे? चौथा जलादिक इव्य अचेतन करनेमें जीवहिंसा हूइ है, सोतो कर्मबंधनका कारण बन चूकी, परंतु जो क्षण क्षणमें असंख्य (अनंत) जीवोंकी उत्पत्ति होती थी, सो मिट गइ तिनकी हिंसा न होवेगी, अरु जो कोइ मूढमति अपनी मनःकल्पनासें असा विचार करे कि अचित्त करनेमें षट् कायके जीवोंकी हिंसा होती हैं. अरु सचित्त जलादिक पीनेंमें तो एक जलादिककी हिंसा है, इस वास्ते सचित्तका त्याग न करनां चाहियें. असा विचारके सचित्त त्यागे नहीं, सो मूर्ख जिनमतके रहस्यकों नहीं

जानता, क्योंकि सचित्तके त्यागनेसें आत्मदमनता, औत्सुक्य निवारण ता, विषय कषायकी मंदता होती है, अरु जिसमें स्वदयागुण बहुत है, सोभी वो नहीं जानते इस वास्ते सचित्त त्यागनेमें बहुत लाभ है.

२ दूसरा द्रव्य नियम. सो धातुका वा शिला, काष्ठ, मट्टीका पात्र प्रमुख तथा अपणी अंगुली प्रमुख विना जो मुखमें खावे सो द्रव्य कहते हैं, "परि णामांतरापन्नं द्रव्यमुच्यते" तिनमें खीचडी तो मोदक, पापड, वडा, प्रमुख बहुत द्रव्यसें बनते हैं, तोभी परिणामांतरसें? एकही द्रव्य है, तथा एकही गेहूंकी बनी रोटी, पोली, गूगरी, बाटी प्रमुख है, तोभी यह सर्व भिन्न द्रव्य हैं, क्योंकि नामांतर स्वादांतर रूपांतर परिणामांतरसें द्रव्यांतर हो जाते हैं, तथा कोइक आचार्य और तरेंभी द्रव्यका स्वरूप कहते हैं, परंतु जो उपर लिखा है, सो बहुत वृद्ध आचार्योंको यही सम्मत है. इस वास्ते द्रव्योंका परिमाण करे कि आजमें इतने द्रव्य खाऊंगा?

३ तीसरा विगय नियम सो विगय दश प्रकारका है, तिनमें १ मधु, २ मांस, ३ माखन, ४ मदिरा, यह चार तो महाविगय हैं, इन चारोंका त्याग तो बावीश अभक्ष्यमें लिख आये हैं, शेष छै विगय रही, तिसका नाम क हते हैं. १ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ तैल, ५ गुल, ६ सर्वजातका पकवा न्न, इस छै विगयमेंसें नित्य एक, दो, तीनादि विगयका त्याग करे, अरु ए केक विगयके पांच पांच निवीताभी विगयके साथ त्यागनां चाहियें, जे कर निवीता त्यागनेकी मनमें न होवे, तब प्रत्याख्यान करनेके अवसर में मनमें धारे कि मेरे विगयका त्याग है, परंतु निवीताका त्याग नहीं.

४ चौथा उपानह. सो जूता पहिरनेका नियम करे, पगरखी, खडावा, मोजा, बूट, प्रमुख सर्वका नियम करे, क्योंकि यह सर्व जीवहिंसाके अधिक रण हैं, तिनमें श्रावकने जिनपूजादि कारण विना खडावां तो कदापि नही पहरनी, क्योंकि इनके हेठ जो जीव आ जाता है, वो जीता नहीं रहता है, अरु गृहस्थ लोकोंकों जूते विना सरता नहीं इस वास्ते मर्यादा कर लेवे, फेर दूसरेके जूतेमें पग न देवे भूल चूक हो जावेतो आगार.

५ पांचमां तंबोल. सो चौथा स्वादिम नामा आहार है, उसका नियम करे, उसमें पान, सोपारी, लवंग, एलायची, तज. दारचीनी, जातिफल, जावंत्री, पीपलामूल, पीपर, प्रमुख करियाणेकी चीज, जिस्सें मुख शुद्ध हो

जावे, परंतु उदर जरण न होवे, तिसकों तंबोल कहते हैं. तिसका परिमाण करे.

६ छट्ठावस्त्र नियम है. सो पुरुषके पांचो अंगोके वस्त्रोंका वेष पहरने का तिसकी संख्या करे, कि आजके दिनमें मेरेकों इतने ? वेष रखने हैं, तथा इतने खुल्ले वस्त्र उढने है, तथा रात्रिकों पहेरनेका वस्त्र तथा स्नान समय पहरनेका वस्त्रकी वेषमे गिणती नहीं तथा समुच्चय वस्त्रकी संख्या रख लेवे, अजाण पणे नेल संनेल हो जावे तो आगार.

७ सातमां फूलोंके नोगका नियम करे, सो मस्तकमें रखनेवाले, अरु गलेमें पहरने वाले, तथा फूलोंकी शय्या, फूलोंका तकीया, फूलोंका पंखा, फूलोंका चंद्वा, जाली प्रमुख जो जो वस्तु नोगमें आवे, फूलकी छडी सेहरा, कलंगी, अरु फूल जो सूंघनेमें आवे, तिनका तोल परिमाण रखनां

८ आठमा वाहन नियम करे, सो रथ, गाडी, घोडा, पालखी, उंट, बलद, नाव, प्रमुख जिसके उपर बैठके जहां जाना होवें, तहां जावे, सो वाहन सर्व तीन तरेंका है, १ तरता, २ फिरता, ३ उडता, तिनकी संख्याका नियम करे कि इसतरेंकी अस्वारीमें आज चढनां.

९ नवमां शयन शय्याका नियम करे. सो खाट, चौंकी, पाट, तखत, कुरसी, पालकी, सुखासन प्रमुख जितनें रखने होवे सो मनमें धार लेवे.

१० दशमां विलेपनका नियम करे. सो नोगके अर्थे केसर, चंदन, चोवा, अतर, फूलेल, गुलाबादिक जो वस्तु अंगके लगानी होवे, तिसका नाम मनमें धार लेवे, तथा अंगलूहणाजी इसीमें रख लेनां इसमें इतना विशेष है कि देवपूजा, देवदर्शन, इत्यादि धर्म करणी करतां हाथमे धूप, अगरबत्ती लेनी पडे, तथा अपणें मस्तकमें तिलक करनां पडे, तथा नगवानकी प्रतिमाकों तिलक करनां पडे, तिसका श्रावककों नियम नहीं है.

११ इग्यारवां ब्रह्मचर्यका नियम करे, सो दिनमे अरु रात्रिमें इतनी वार स्वस्त्रीसें मैथुन सेवनां, उपरांत स्वस्त्रीसेंनी नहीं सेवनां, अरु हास्य विनोद आलिंगन चुंबनादिक करनेका नांगा राखे.

१२ बारहवां दिशिका नियम करे, सो अमुक दिशिमें आज मैंने इतने कोस उपरांत नहीं जानां, इसमें आदेश, उपदेश, माणस नेजना, चिट्ठी लिखनी, ये सर्व नियम आ गये, जैसें पाल सके, तैसे नियम करे.

१३ तेरहवां स्नानका नियम करे, सो आजके दिनमें तैलमर्दनपूर्वक तथा

जानता, क्योंकि कितनी वखत स्नान करनां, सो धार लेवे, इसमें देव पू ता, विषय,इस्ते नियमसें अधिक स्नान करनां पडे, तो व्रतभंग नहीं.

सोनी १४ चौदहवां जात पाणीका नियम सो चार आहारमेंसुं स्वादिमका १,॥ तंबोलके नियममें परिमाण रख्या है, शेष तीन आहार हैं, तिनमें प्र थम अशन, सो जात,रोटी,कचौरी,सीरा प्रमुख, तिसका परिमाण करे, कि आजके दिनमें इतना सेर मैरेकों खाना है उपरांत त्याग है यहां घरमें बहुत परिवार होवे तिसके वास्ते बहुत अशनादि कराने पडे, तिसकी जयणा रखे, तथा औरोंके घरमें पंचायत जीमें तहां जाना पडे, उहां बहुत आ दमीओंकी रसोई बना रखी है, उसका दूषण नियम धारीको नहीं, क्योंकि नियम धारीने तो अपणेही खानेकी मर्यादा करी है,परंतु न्यातिके खानेकी मर्यादा नहीं करी है,इस वास्ते अपणे खानेका परिमाण करे कि इतने सेर उपरांत मैं आज नहीं खाऊंगा,तथा दूसरा पाणीतिसके पीनेका परिमाणकरे, कि इतने कलसो उपरांत पाणी मैंने आज नहीं पीनां, तथा तीसरा खादि म, सो मिठाई अथवा मिष्टान्न मोदकादिक तिनका परिमाण करे, यह चौ दह नियम हैं, इहां अधिक भाव वाला श्रावक होवे, सो सचित्तादि परिमा णमें द्रव्यका परिमाणं जूदा जूदा नाम ले कर रखे, तो बहुत निर्जरा होवे ॥ इति चौदह नियमका स्वरूप संपूर्ण ॥

अथ पंदरा कर्मादानका स्वरूप लिखते हैं यह पंदरह व्यापार श्रावककों निषेध हैं, सो करणां नहीं, क्यों कि इनके करणेसें बहुत पाप लगता है, जे कर श्रावककी आजीविका न चलती होवे तो परिमाण कर लेवे सो पंदराकर्मादानका नाम कहते हैं.

१ प्रथम इंगालकर्म, सो कोयले बना कर वेचने इंट बनाकर वेचने, जाडे खिलोने बनायका करकें वेचे, लोहारका कर्म, सोनारका कर्म, बंगडी कार, सीसकार, कलाल, नवीयारा, नडभूंजा, हलवाइ, धातुगालक,इत्यादि जो व्यापार अग्नि करकें होवे, सो सर्व इंगालकर्म हैं. इसमें पाप बहुत ल गता है, अरु लाभ थोडा होता है, इस वास्ते यहकर्म श्रावक न करे.

२ दूसरा वनकर्म. सो छेद्या अनछेद्या वन वेचे, बगीचेके फल पत्र वेचे फल, फूल, कंदमूल, तृण, काष्ठ, लकडी, वंशादिक वेचे, तथा जो हरि वनस्पति वेचे, यह सर्व वनकर्म है.

३ तीसरा साडीकर्म सो गाडी,बहिल तथा असवारीका रथ,नावों,जहाज, तथा हल, दंताल, चरखा, घाणीका अंग, तथा घूंसरा, चक्की, उखली, मूसल, प्रमुख बना करकें वेचे, यह सर्व शकटकर्म हैं.

४ चौथा जाडीकर्म. सो गाडा, बलद, उंट, भैंस, गद्धा, खचर, घोडा, नाव, रथ प्रमुखसें दूसरोंका बोझ वहे जाडे करी आजीविका करे.

५ पांचमा फोडीकर्म. सो आजीविका वास्ते कूप, वावडी, तलाव, खोदावे, हल चलावे, पत्थर फोडावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक कर्म है. इन पांचों कर्मोंमें बहूत जीवोंकी हिंसा होती है. इस वास्ते इन पांचोंकों कुकर्म कहते हैं. अब पांच कुवाणिज्य लिखते हैं.

१ प्रथम दंतकुवाणिज्य, सो हाथीका दांत, उल्लूके नख, जीन, कलेजा, पक्षीयोंका रोम, तथा गायका चमर, हरणके सींग, बारासिंगेके सींग, कृम जिस्सें रेसम रंगते हैं, इत्यादिक जो त्रस जीवका अंगोपांग वेचना है, सो सर्व दंतकुवाणिज्य है. जब इन वस्तुओंके लेने वास्ते आगरमें जावे, तब भिल्लादिक लोक तत्काल हाथी, गैंडा, प्रमुख जीवोंकी हिंसामें प्रवर्त्त होते हैं, महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेसें अपणा परिणामभी मलिन हो जाते हैं, कदाचित् लोभपीडित हो कर भिल्ल व्याधोंकों कहना पडेकि, हमकों मोटा भारी दांत चाहीता है, तब वो लोक तत्काल हाथीकों मारकें वैसा दांत ल्यावेंगे, इस वास्ते जे कर वस्तु लेनी पडे, तब व्यापारीके पाससें लेवे, परंतु आगरमें जाकर न लेवे, क्योंकि आगरमें जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इस वास्ते विचार करकें वाणिज्य करे. यह प्रथम दंत कुवाणिज्य है.

२ दूसरा लाखकुवाणिज्य. सो लोहा, धावडी, नील, सज्जीखार, साबन, मनसिल, सोहागा, इत्यादि. तथा लाख, ये सर्व लाख कुवाणिज्य हैं, प्रथम तो त्रस जीवोंका समूहहीसें लाख बनती है, अरु पीछें जब रंग काढते हैं, तब तिसकों अन्नसें सडाते हैं, तब त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है, अरु महा दुर्गंध रुधिर सरीखा वर्ण दीखता है, तथा धावडीमें त्रस जीव उपजते हैं, कुंथुयेभी बहुत होते हैं, अरु यह मदिरेके अंग हैं, तथा नीलकों जब प्रथम सडाते हैं, तब त्रस जीव उत्पन्न होते हैं, पीछेंभी नीलके कुंडमें त्रसजीव बहुत उत्पन्न होते हैं, अरु नीला वस्त्र पहि

जानता, उसमें तू लीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल मनसिलकों ता, जितनी वखत जो यत्न न करे; तो मक्खी प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.
सो ३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मदिरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, दहीं, घृत, तेल, गुड, खांड प्रमुख जो ढीली वस्तु है, इसका जो व्यापार करनां सो रसकुवाणिज्य है. इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है. वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है. सो द्विपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख, खरीद, कर वेचनें; तथा चौपद जो गाय, घोडा, भैंस प्रमुख खरीदके वेचनें तथा पंखीयोंमें तीत्तर, मोर, तोता, मैनां, बटेरा प्रमुख वेचे, इस वाणिज्यमें पाप बहुत है. इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

५ पांचमा विष कुवाणिज्य. सो शंखीया (सोमल) वछनाग, अफीम, मनसिल, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, कटारी, छुरी, बरछी, फरसी, कुहाडी, कुशी. कुदाल, पेसकबज, बंदूक, ढाल, गोली, दारु, बक्तर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख जिन करकें संग्राम करते हैं, तथा हल, मूशल, उखल, दंताली, कर्वत, दात्री, गोला, हवाइ, पटाका, कुहक, शतघ्नी प्रमुख सर्व हिंसादीका अधिकरण है इनका जो व्यापार करनां, सो सब विषवाणिज्य है. इसमें बहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं. अब पांच सामान्य कर्म कहते हैं.

१ प्रथम यंत्रपीलन कर्म. सो तिल सरसों, इक्षुआदि पीलाय करकें वेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यंत्रपीलन कर्म है.

२ दूसरा निर्लांछन कर्म. सो बैल घोडाकों खस्सी करणां, घोडे, बलद, ऊंट प्रमुखकों दाग देनां, कोतवालकी नौकरी, जेलखानेका दरोगा ठेका लेनां, महसूल इजारे लेनां, चोरोंके गाममें वास करनां, इत्यादि जो निर्दयपणेका काम है, सो सर्व निर्लांछन कर्म है.

३ तीसरा दावाग्निदान कर्म. सो कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके बनमें आग लगा देते हैं, वो अपने मनमें जानते हैं कि नवा घास उत्पन्न होवेगा तब गौ चरेंगी, जिह्वादिक लोक सुखसें रहेंगें, अन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणेसें धर्म जाणके करे, आग लगानेसें लाखो जीव मरजाते हैं, इस वास्ते आग न लगानी चाहियें.

४ चौथा शोषणकर्म. सो बावडी, तलाव, सरोवर, इनका जल शोष के खेतमें देवे, जब पाणीकों बहार काढे, तब लाखों जीव जल रहित त डफडके मर जाते हैं, इस कुकर्मके [illegible] षण न करना.

५ पांचमा [illegible] ूहजके वास्ते कुत्ते, बिल्ले, हिंसक जीवोंकों [illegible] दुराचारी पुत्रकों मोहसें पोषण करे, साचा झूठ [illegible] में आवे सो करे, तिनकों राजी रक्खे, तथा वेचणे वास्ते [illegible] स दासीकों पोषे, सो असती कर्म कहिये. तथा माछी, कसाई, वे[illegible] चमार प्रमुख बहु आरंभी जीवोंके साथ व्यापार करे, तिनकों द्रव्य तथा खरची प्रमुख देवे, यहनी दुष्ट जीवोंका पोषण है, जे कर अनुकंपा करकें श्वान (कुत्ते) प्रमुख किसी जीवकों पुण्य जान कर देवे, तो उसका निषेध नहीं, तथा अपणे महेलमें जो जीव होय तिनकी खबर लेनी पडे, तथा अपणे कुटुंबका पोषण करना पडे, इसमें पूर्वोक्त दोष नहीं. क्योंकी यह लोकनीति राजनीतिका रस्ता है, यह पांच सामान्य कर्म कह्या. इति पंदरा कर्मादान संपूर्ण.

अब यह सातमें नोगोपनोग व्रतका पांच अतिचार लिखते हैं.

१ प्रथम सचित्त आहार अतिचार, सो मूलनांगेमें तो श्रावक सर्व सचित्तका त्याग करे, जेकर नही करे, तो परिमाण कर लेवे, तहां सर्व सचित्तके त्यागी तथा सचित्तके परिमाणवाले जो अनानोगादिकसें सचित्त आहार करे, तथा जल, तीन उकाली आजानेसें शुद्ध प्रासुक होता है, तिनमें एक उकाला, दो उकालाका पाणी तो मिश्र उदक कहा जाता है, तिस पाणीकों अचित्त जाणके पीवे तथा सचित्त वस्तु अचित्त होनेमें देर है, उस वस्तुकों अचित्त जान कर खावे, तो प्रथम अतिचार लागे.

२ दूसरा सचित्त प्रतिबद्धाहार अतिचार. सो जिसके सचित्त वस्तुका नियम है, सो तत्काल खैरकी गांठसें गूंद उखेडके खावे, गूंद तो अचित्त है परंतु सचित्तके साथ मिला हूआ था सो दूषण लगता है, तथा पका हूआ अंब खिरणी बेर प्रमुखकों मुखसें खावे, अरु मनमें जानता है कि मैं तो अचित्त खाता हूं, सचित्त गुठलीकों तो गेर देउंगा, इसमें क्या दोष है? ऐसा विचार करकें खावे. तब दूसरा अतिचार लागे.

३ तीसरा अपकौषधि नक्षण अतिचार. सो बिना गण्या आटा, अ

ग्निका संस्कार जिसकों करा नहीं, ऐसा कच्चा आटा खावे, क्योंकि श्री सिद्धांतमें आटा पीस्यां पीछे विना गाल्यां कितनेही दिन मिश्र रहता है, सो कहते हैं. श्रावण, भाद्रव मासमें अनगाल्या आटा पीस्यां पीछें पांच दिन मिश्र रहता है, आश्विन और कार्त्तिक मासमें चारदिन मिश्र रहता है, मगसिर और पोष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, माघ अरु फाग्गुण मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, चैत्र अरु वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, ज्येष्ठ अरु आषाढ मासमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, पीछें अचित्त हो जाता है, सो मिश्र खावे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा डुपक्कौषधि नक्षण अतिचार. सो कछुक कच्चा, कछुक पक्का जैसें सर्व जातके पोंक अर्थात् सिट्टे जो मक्की, जवार, बाजरे, गेहूं प्रमुखके बीजोंसें नरें हूए होते है, इनकों अग्निका संस्कार कस्यां, कछुक कच्चे पक्के हो जावे तिनकों अचित्त जान कर खावे, तो चौथा अतिचार लागे.

५ पांचमा तुच्छौषधि नक्षण अतिचार. सो तुच्छ नाम इहां असारका है, जिसके खानेसें तृप्ति न होवे, तिसके खानेमें पाप बहुत है, जैसें चणाका फूल खावे, तथा बेरकी गुठलीमेंसें गिर निकालके खावे, तथा वाल, समा, मूंग, चवलाकी फली खावे, इसके खानेसें प्रसंग दूषणनी लग जाते हैं, क्योंकि कोइ बनस्पति अतिकोमल अवस्थामें अनंतकाय नी होती है, तिसके खानेंसें अनंतकायका व्रतभंग हो जाता है, यह पांचमा अतिचार कह्या ॥ इति सप्तम नोगोपनोग व्रतं संपूर्णं ॥ ७ ॥

अथ आठमा अनर्थदंम विरमणव्रतका स्वरूप लिखते हैं. प्रथम अर्थ दंम उसकों कहते हैं, कि जो अपणे प्रयोजनके वास्ते करे, सो धन, धान्य, क्षेत्रादि नवविध परिग्रहमें हानी वृद्धि होवे, तब करे, क्योंकि धनवृद्धिके निमित्त संसारी जीवकों बहुत पापके कारन सेवने पडते हैं, तब सत्य झूठ बोले विना रह्या नहीं जाता है, पापके उपकरणनी मेलने पडते हैं, जब कोई मनसूबा करनां पडता है, तब अनेक विकल्प रूप आर्त्तध्यान करना पडता है, क्योंकि धनादिक परिग्रह आजीविकाके अर्थें हैं, तिस वास्ते धनकी वृद्धि वास्ते जो जो पाप करता है, सो सो सर्व अर्थ दंम है. दूसरा जब धनकी हानि होती है, तब धनहानि दूर करणे वास्ते अनेक विकल्प रूप पाप करता है, सोनी अर्थ दंम है, क्योंकि संसारके सुखका कारण

रूप धन व्यवहार है, तिस व्यवहारके वास्ते जो पाप करना पडे, सो अर्थदंड है. तीसरा अपणा स्वजन कुटुंब परिवारादिकके वास्ते अवश्य जो जो पाप सेवनां पडे, सो सो सब अर्थ दंड है. चौथा पांच प्रकारकी इंद्रियोंके भोग वास्ते जो पाप करे, सोभी अर्थ दंड है, इन पूर्वोक्त चारों प्रयोजनो बिना जो पाप करे,सो अनर्थदंड जाननां. तिसके चार भेद हैं, सो कहते हैं. प्रथम अपध्यान अनर्थदंड, दूसरा पापोपदेश अनर्थदंड, तीसरा हिंस्रप्रदान अनर्थदंड, चौथा प्रमादाचरित अनर्थदंड है. इनमेंसूं प्रथम जो अपध्यान अनर्थदंड है, उसके फेर दो भेद है, एक आर्त्तध्यान दूसरा रौद्रध्यान,तिनमें फेर आर्त्तध्यानके चार भेद हैं, सो पृथक् पृथक् कहते हैं.

१ प्रथम अनिष्टार्थ संयोगार्त्तध्यान. सो इंद्रिय सुखका विघ्नकारी ऐसे अनिष्ट शब्दादिकके संयोग होनेकी चिंता करे कि मत मेरेकों अनिष्ट शब्द मिले.

२ दूसरा इष्टवियोगार्त्तध्यान. सो हमकों नवविध परिग्रह अरु परिवार जो मिला है, इसका वियोग मत होवे, ऐसी चिंता करे, अथवा इष्ट जो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र प्रमुख हैं, इनके विदेश गमनसें तथा मरण होनेसें बहुत चिंता करे, खाए पीए नहीं. वियोगके दुःखसें आत्मघात करनेका विचार करे, अथवा सर्वदिन क्रोधहीमें रहे, तथा घरमें यह कुपूत है, यह भाई बेदिल है, मेरे पिताका मेरे उपर मोह नहीं है, यह स्त्री मुझकों बहुत खराब मिली है, सो मेरे उपर दिल नहीं देती है, इसका कोई उपाय होवे तो अछा है, अरु स्त्री मनमें विचारे कि मुझे शौकन खराब करती है, मेरे पतिकों भूलाती है, क्या जाने किसी दिन पतिसें मुझे दूर करेगी? इस वास्ते इस रांडका कुछ उपाय करनां चाहियें, तथा सेवक ऐसा विचार करे किः—मेरे स्वामीके आगें फलाना मेरा दुश्मन गया है,सो जरूर मेरी खोटी कहेगा, मेरी रीत भांतकों अदल बदल कर देवेगा, मेरे स्वामीकों झूठ साच कह कर मेरी नौकरी छुडा देवेगा, तब मैं क्या करूंगा? इसका कुछ उपाय करनां चाहियें, तिसके निग्रह वास्ते यंत्र, मंत्र, कामन, मोहन, वशीकरण करे,तिसकों कूडा कलंक देवे, बलिदान देने वास्ते त्रस जीवकों मारे, यह सब अपने शत्रुके निग्रह वास्ते करें तथा मूठ चलाके मारा चाहे, परंतु वो मूर्ख यह नहीं विचारता किः—जे कर तूं अपणे दिलसें सच्चा है, तो तुझे क्या फिकर है? अरु जहां तक अगलेका पु

न्नोदय है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसें उसका कुछ बुरा नहीं कर सकता है, ये सर्व संसारी जीवकी मूर्खता है, यह सर्व अनर्थदंम हैं. तथा प्रथम अपणी आतुरतासेंति मनमें कुविकल्प करे,कि मेरे वैरीके कुलमें अमुक जब रदस्त उत्पन्न हूआ है,सो मेरेकों डुःख देवेगा,इसकी राजदरबारमें आबरू जावे, अरु दंम होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई छिद्र मिले तो सरकारमें कह कर इसकों गामसें निकलवाय देवं तो ठीक है, ऐसा विचार मूढ अज्ञानी करता है. तथा यहां चोर बहुत पडते हैं, सो पकडे जाँय, फांसी दीये जाँय, तो बडा अच्छा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे उपर हो कर चलता है, इस हरामजादेका कुछ बंदोबस्त करना चाहियें, ज्युं फेर कदापि शिर न उगावे, इत्यादि खोटे विकल्प करकें अनर्थदंम करे, क्योंकि किसिकी चिंतवणासें दूसरोंका बिगाड नहीं होता है, जे कुछ होना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तूं काहेकों बिल्लीवत् मनोरथ करता है ? क्यों कि:– यह विना प्रयोजनके पाप लगता है, सो अनर्थदंम है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका नेद कह्या.

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान. सो मेरे शरीरमें किसी वखत रोग होता है, वो न होवे तो अच्छा है, लोकोंकों पूछे कि अमुक रोग क्यों कर न होवे ? तब कोइ कहेकि अमुक अमुक अनक्ष्य वस्तु खानेसें नहीं होता है,तब अनक्ष्यनी खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत हाय हाय शब्द करे, बहुत आरंन करे, घडी घडीमें ज्योतिषीकों पूछे, कि मेरा रोग कब जायगा ? तथा वैद्यकों वार वार पूछे, तथा मेरे उपर किसीने जाडु करा है ? ऐसी शंका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुल विरुद्ध, धर्मविरुद्ध करे, तथा अनक्ष्य खानेमें तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधि, जडी, बूटी, मंत्र, यंत्र, तंत्र, सीखें तथा सीखे हूए किसी वखत मेरेकाम आवेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामाआर्त्तध्यानका तीसरा नेद है.

४ चौथा अग्रशोचनामा आर्त्तध्यान. सो अनागत कालकी चिंता करे,कि आवता वर्षमें यह विवाह करुंगा, तथा ऐसी हाट, हवेली बनाऊंगा, कि जिसकों देख कर सर्व लोक आश्चर्य करे, तथा अमुक क्षेत्रमें बगीचा लगाना है, जिसके आगें सर्व बाग निकम्मे होजावें सर्व डुश्मनकी डाती जले, तथा अमुक वस्तुका मैनें सौदा करा है,सो वस्तु आगेकों महंगी हो

जावे सो ठीक है मुझे बहूत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प शेखशोल्लीकी तरें चिंते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है. इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौद्रध्यानका स्वरूप कहते हैं? प्रथम हिंसानंद रौद्र. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करकें मनमें आनंद माने, तथा बहूत पाप करकें सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसकों देखकें जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैनें कैसी हिकमतसें बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंभी नहीं है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले माले, नक्ष वस्तुकों अनक्ष सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसें ऐसी जमणवार (ज्योंनार) करे, कि जिसकों सर्व लोक सराहें, तथा राजाओंकी लडाइ सुन कर खुसी माने, एक राजा का पक्षी बन कर महिमा करे, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेनें एक तरवारसें सिंहादिक मारा है, वाह रे सुभट! ऐसी प्रशंसा करे, तथा अपणे डुश्मनकों मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूंछ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसें कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसें मर गया, ऐसी ऐसी खोटी चिंतवणा करकें कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचारे किः— दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नहीं है, उसकी आयु पूरी हो गइ इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरें तूंभी मर जायगा. झूठा अभिमान करनां ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिंसानंद रौद्रध्यान कहियें.

२ दूसरा मृषानंद रौद्रध्यान. सो झूठ बोलके खुशी होवे अरु मनमें ऐसा चिंते कि मैंने कैसीकबात बनाके करी किसीकोंभी खबर न पडी, मैं बडा अकलवंत हूं? मेरे समान कौन हे? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेकूं समर्थ है? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीकों आता है, इस अवसरमें जेकर मैं ना होता, तो देखते क्या होता? ऐसा मनमें फूले और अपने डुश्मनकों संकटमें गेरकें मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैनें कैसी हिकमत करी? राज दरबारमें लोकोंकी चुगली करकें स्थानभ्रष्ट करे, मनमें खुसी माने. इत्यादि मृषानंद रौद्र है.

३ तीसरा चौर्यानंद रौद्र. सो भद्रक जीवोंसें कूड कपटकी बातां बना करकें बहु मूली वस्तु थोडे दाममें ले लेवे, तथा पराया धन, छलसें अधि

क लेवे, तथा चोरी करकें किसीकी वहीमें अधिका रुंका लिख देवे, आप पैसा खाय जावे, अनेक कपटकी कलासें शेठकों राजी कर देवे, पीछें विचारे कि मैं कैसा चतुर हूं, कि पैसाजी खाया, अरु सेठके आगें सञ्चाजी बन गया? तथा व्यापार करे, तब खोटी झूठी सोगंद खावे, मीठा बोल कर दूसरोंकों विश्वास उपजा कर न्यून अधिक देवे, लेवे, अरु मनमें राजी होके कहेकि मेरे समान कमाऊ कौन है? तथा चोरी करकें मनमें आनंद मानें कि मैने कैसी चोरी करी, कि जिसकी किसकों खबरजी नहीं पडी? तथा झूठे खत पत्र बनाकर सरकारसें फत्ते पावे, तब मनमें बडा आनंदित होवे, जो में बडा चलाक हूं, मैनें हाकमकोंजी धोखा दीया, इत्यादि चौर्यानंद, सो रौद्र ध्यानका तीसरा जेद है.

४ चौथा संरक्षणानंद रौद्र. सो परिग्रह, धन, धान्य, बहूत बढावे, पीछें औरजी इछा करे, पाप कुटुंबके पोषणे वास्ते परिग्रहकी वृद्धि करे, बहुत कुबुद्धि करे, जैसे तैसे कामकों अंगीकार करे, लोक विरुद्ध, राजविरुद्ध, कुलविरुद्ध, धर्मविरुद्धादिक कामकी उपेक्षा न करे, ऐसे करतां पूर्व पुण्योदयसें पाप परिग्रह पावे, धन बहुत हो जावे, तब मनमें बहुत खुशी माने कि इतना धन मैने एकिलाने पैदा कीया है, ऐसा और कौन हुस्यार है, जो पैदा कर सके? ऐसा अहंकार करे, अहंकारमें मग्न रहे, रातदिन मनमें चिंता रहे, कि मत कजी मेरा धन नष्ट हो जावे. रातकों पूरा सो वेजी नहीं, हाट हवेलीके ताले टटोलता रहे, सगे पुत्रकाजी विश्वास न करे, लोकोंकों कुबुद्धि सिखावे, इत्यादि संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान है, ये आर्त्त अरू रौद्र मिलकर प्रथम अपध्यानार्थदंडके जेद हैं, सो न करनां चाहियें.

२ अब दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड कहते हैं. सो हरेक अवसरमें घर संबंधि तथा दाक्षिण्यता वर्जीके पापोपदेश करे, जैसें तुमारे घरमें वछडे बडे हो गये हें, इनकों बधीया करकें समारो, नाकमें नथ गेरो, घोडेकों चाबक अस्वारकों देवो, वो ईसकों फेरकें सिखावे, तथा तुमारे क्षेत्रमें सूड बहुत हो रहा है, उसको काटना तथा जलाना चाहियें, इत्यादि जो पापकारी काम है, तिसका विना प्रयोजन अज्ञानपणेसें उपदेश करे, यह दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड है.

३ तीसरा हिंस्रप्रदान अनर्थदंड, सो हिंसाकारी वस्तु गाडी, हल, शस्त्र

तलवारादि, अग्नि, मूसल, ऊखल, धनुष, तरकस, चक्कु, छुरी, दात्र प्र मुख दूसरोंकों दाक्षिण्यता विना, मांगे विना, देवे सो हिंस्रप्रदान.

४ चौथा प्रमादाचरण अनर्थदंम. सो कुतूहलसें गीत, नाटक, तमाशा, मेला प्रमुख सुनने देखने जानां, इंद्रियोंकी विषय पोषणी, इहां कुतूहल कहनेसें जिनयात्रा, संघ, अठाइमहोत्सव, रथयात्रा, तीर्थयात्रा, इनके देखने वास्ते जावे, तो प्रमादाचरण नही, किंतु यह तो सम्यक्त्व पुष्टिके कारण हैं, तथा कामशास्त्र वात्सायनादिकोंके कर्म तिनमें अत्यंत गृद्धि वार वार उसका अभ्यास करनां तथा जूआ खेलनां, मद्य पीनां, शिकार मारने जानां, तथा जलक्रीडा (तलाव प्रमुखमें कूदनां) जल उछालनां, तथा वृक्षशाखाके साथ रस्सा बांधकर फूलना (हिंचनां) हिंमोले (फुलानां) हिंचनां, तथा लाल, तीत्तर, बटेरे, कूकडे, मिंढे, जैसें, हाथी, बुलबुल, इनकों आपसमें लडानां तथा अपणे शत्रुके बेटे पोतेसें वैर रखनां, वैर लेनां, तथा जक्तकथा सो "मांस, कुलमाष, मोदक, उदनादि बहूत अछा जोजन है, जो खाते हैं, उनकों बडा स्वाद आता है, अरु हमजी यह खायंगें" इत्यादि कहनां, तथा स्त्री कथा, सो स्त्रीयोंके पहननेकी तथा अंगप्रत्यंग हावजावादि कथन रूप, तथा "कर्णाटी सुरतोपचारकुशला, लाटी विदग्धा प्रिये" इत्यादि. तथा स्त्री के रूपोत्पादन, कुच कंठन करणां, योनिसंकोच, इत्यादि स्त्री कथा करणी तिथा देशकथा सो जैसें दक्षिण देशमें अन्न, पाणी, अरु स्त्रीयोंसें संजोग करनां बहूत अछा है इत्यादि. तथा पूर्वदेशमें विचित्र वस्तु गुड, खंम, शाल, मद्यादि प्रधान चीजें होती हैं, तथा उत्तरदेशके लोक सूरमे हैं, घोडे बडे शीघ्र चलने वाले अरु दृढ होते हैं, तथा गेहूं प्रमुख धान्य बहुत होता है, तथा केशर, मीठी डाख, दाडिम, कौठादि जहां सुलज हैं. इत्यादि. तथा पश्चिम देशमें इंद्रियकों सुखकारी सुख स्पर्शवाले वस्त्र हैं, इत्यादि. तथा राजकथा सो जैसें हमारा राज बडा सूरमा है, बडा धनवान् है, अश्वपति तुरक इत्यादि है. यह जैसें चार अनुकूल कथा कही, ऐसें ही चारो प्रतिकूल कथाजी जान लेनी, तथा ज्वरादिरोग अरु मार्गका थकेवा, यह दोनों वर्जके संपूर्ण रात्रिकों सो रहनां (निद्रा लेनी) यह सर्व पूर्वोक्त प्रमादाचरणकों श्रावक वर्जे, तथा देशविशेषमेंजी प्रमाद न करनां, तथा जिनमंदिरमें कामचेष्टा, हांसी, लडाइ, हसना, थूकनां, निंद

लेनां, चोर परदारिकादिककी खोटी कथा करनी, चार प्रकारका आहार खानां, यह चौथा अनर्थदंम है. इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कंदर्पचेष्टा. सो मुखविकार, भ्रूविकार, नेत्रविकार, हाथकी संज्ञा बतावे, पगकों विकारकी चेष्टा करके औरोकों हसावे, किसीकों क्रोध उत्पन्न हो जावे, कुलका कुछ हो जावे, अपणी लघुता होवे, धर्मकी निंदा होवे, ऐसी कुचेष्टा करे, सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है.

२ दूसरा मुखसेती मुखरता करे, असंबंध वचन बोले, जिससें दूसरों का मर्म प्रगट होवे, कष्टमें गेरे, अपणी लघुता करे, वैर वधे, ढीठ, लबाड, चुगल खोरु, इत्यादि नाम धरावे, लोकोमें लज्जनीय होवे, इसी तरें बहुत वाचालपणा करणां, सो दूसरा मुखारिवचन अतिचार.

३ तीसरा जोगोपजोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां स्नान, पान, जोजन, चंदन, कुंकुम, कस्तूरी, वस्त्र, आजरणादिक अपणे शरीरके जोगसें अधिक करणो, सो अनर्थदंम है. इहां वृद्ध आचार्योंकी यह संप्रदाय है, कि:— तेल, आमले, वही प्रमुख, जे कर स्नानके वास्ते अधिक ले जावे, तो तद् लोलुपता करकें स्नान वास्ते बहुत लोक तलाव आदिकमें जायगे, तहां पाणीके पूरे, तथा अप्कायके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी, इस वास्ते श्रावककों ऐसे स्नान न करनां चाहियें. क्योंकि श्रावकके स्नानका यह विधि है कि:— श्रावकने प्रथम तो घरमेंही स्नान करनां चाहियें. तिसके अजावसें तेल, आमले, आकदिसें घरमेंही शिर घस करकें मैल गेर करकें तलावके कांठे उपरि बैठके अंजलिसें पाणी शिरमें माल करकें स्नान करनां, तथा जिस फूलादिकमें जीवोंकी संसक्ति जाने, तिनकों परिहरे, ऐसे सर्व जगे जान लेनां. यह तीसरा जोगाधिक आरंज अतिचार है.

४ चौथा कौकुच्य अतिचार. सो जिसके बोलने करनेसें अपणी तथा औरोंकी चेतना, कामक्रोधरूप हो जावे, तथा विरहकी वात संयुक्त कथा, दोहा, साखी, वैंत, फूलना, कवित, छंद, परजराग, श्लोक, शृंगाररसकी नरी हूइ कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचमा संयुक्ताधिकरण अतिचार. सो उखलके साथ मूसल, हलके साथ फाला, गाडीसें युग, धनुषसें तीर, इत्यादि. इहां श्रावकने संयुक्त अधिकरण नहीं रखनां, क्योंकि संयुक्त रखनेसें कोइ ले लेवे, तो फेर ना

नहीं करी जाती है, अरु जब अलग अलग होवे, तब उसकों मुखसें उ चार दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रत संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते हैं. इन पूर्वोक्त आठों व्रतोंकों तथा आत्मगुणोंकों पुष्टिकारक अविरति कषायमें तादात्म्यजावसें मिली अनादि अशुद्धता रूप विजाव परिणति, तिसके अन्यासकों मिटाने वास्ते अरु आत्मअनुजव करने वास्ते तथा सहजानंद स्वरूपरस प्रगट करने वास्ते यह नवमा शिक्षाव्रत है, अर्थात् शुद्ध अन्यासरूप नवमा सामायिक व्रत लिखते हैं. दो घडी काल प्रमाण समतामें रहना, राग द्वेषरूप हेतुओंमें मध्यस्थ रहणां, तिसकों पंमित सामायिक व्रत कहते हैं, (सम) नाम है राग द्वेषरहित परिणाम होनेसें जो ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्ष मार्ग, तिसका "आय" नाम लाज होवे प्रशमसुख रूप इनका जो इक केर्ता जाव सो सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान त्यागकें अरु सावद्य मन, वचन, काया, पाप चिंतन, पापोपदेश, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे. इहां आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें देवस्नात्र, पूजादिक, न करे, क्यों कि जावस्तवके वास्ते द्रव्यस्तव करनां है, सो जावस्तव सामायिकमें प्राप्त हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें द्रव्यस्तव रूप जिनपूजा न करे, सामायिक करने वाला मनुष्य बत्तीस दूषण वर्जके सामायिक करे, सो बत्तीस दूषणमें प्रथम कायाके बार दूषण कहते हैं.

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करकें उंचा आसन (पालठी) लगाकर बैठे, सो प्रथम दूषण है, कारण कि गुरुविनयकी हानि कारक होनेतें यह अजिमानका आसन है, इस वास्ते जिस बैठनेंसें विनयगुण रहे, औ उद्धता मालुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, औसे आसन उपर बैठे.

२ दूसरा चलासन दोष. सो आसन स्थिर न रक्खे, वारं वार आगें पीछें हलावे, चपलाइ करे, मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही आसन उपर सामायिक पूरा करे, अकिंम पणेसें रहे, कदापि रोग निर्बलतादि कारण करकें एक आसन उपर टिका न जाय, फिरनां पडे, तो उ

पयोग संयुक्त जयणा पूर्वक चरवलासें जहां तहां पूंजना प्रमार्जना करकें आसन फिरावे, यह पूर्वोक्त विधि न करे, तो दूसरा दूषण लगे.

३ तीसरा चलदृष्टि दोष है. सो सामायिक करे, पीछे नासिका ऊपर दृष्टि राखे, अरु मनमें शुद्ध उपयोग राखे, मौन पणेसें ध्यान करे, अरु सामायिकमें शास्त्राभ्यास करना होवे, तो यत्नपूर्वक मुख आगें मुखवस्त्रिका दे कर, दृष्टि पुस्तक उपर रख कें पढे, अरु सुणे, तथा जब कायोत्सर्ग करे, तब चार अंगुल पीछें पग चौडा राखे, ऐसी योग मुद्रासें खडा हो कर दोनो बाहु प्रलंबित करे, दृष्टि नासिका उपर रक्खे, अथवा सज्जे (दहिने) पगके अंगूठे ऊपर रक्खे, यह शुद्ध सामायिक करनेकी विधि है, इस विधिकों छोडकें चपल पणेसें चकितमृगकी तरें चारोंदिशि आंखें फिरावे, सो तीसरा दोष है.

४ चौथा सावद्यक्रियादोष. सो क्रिया तो करे, परंतु तिसमें कछुक सावद्य क्रिया करे, अथवा सावद्य क्रियाकी संज्ञा करे, सो चौथा दोष.

५ पांचमा आलंबन दोष. सो सामायिकमें भींतादिकका आलंबन, अर्थात् पीठ लगा कर बैठे, यह बिना पूंजी भींतमें अनेक जीव बैठे हूए होते हैं, सो मर जाते हैं, तथा आलंबनसें नींदभी आ जाती है.

६ छठा आकुंचन प्रसारण दोष. सो सामायिक करकें विना प्रयोजन हाथ, पग, संकोचे, लांबा करे, सामायिकमें तो महोटे कारण विना हलनां नहीं, जरूरी काममें चरवलासें पूंजन प्रमार्जन करकें हलावे.

७ सातमा आलस दोष. सो सामायिकमें अंगमें आलस मोडे, अंगुलीयोंके कडाके काढे, कमर वांकी करे, ऐसी प्रमादकी बाहुल्यतासें व्रतमें अनादर होता है, कायामें अरति उत्पन्न हो जाती है, जब उठे, तब आलस मोड कर अतिअशोभनिक उठे. यह सातमा आलस दोष.

८ आठमा मोटन दोष. सो सामायिकमें अंगुली प्रमुख टेढी करी कडाका काढे. ए पण प्रमादकी प्रबलतासें होता है.

९ नवमा मल दोष. सो सामायिक ले करकें खाज करे, मुख्यवृत्ति तो सामायिकमें खाज नहीं करणी, परंतु जब लाचार होवे, तब चरवला प्रमुखसें पूंजन प्रमार्जन करकें हलवे हलवे खाज करे यह शैली है.

१० दशमा विमासण दोष. सो सामायिकमें गलेमें हाथ दे कर बैठे.

११ इग्यारमा निद्रा दोष. सो सामायिकमें नींद लेवे.

१२ बारमा शीत प्रमुखकी प्रबलतासें अपणे समस्त अंगोपांग वस्त्र करकें ढांके, यह बारां दोष कायासें उत्पन्न होते हैं, इनकों सामायिकमें वर्जे. अब वचनके दश दोष है सो लिखते हैं.

१ प्रथम कुबोल दोष. सो सामायिकमें कुवचन बोले.

२ दूसरा सहसात्कार दोष. सो सामायिक ले करकें विना विचारे बोले.

३ तीसरा असदारोपण दोष. सो सामायिकमें दूसरोंकों खोटी मति देवे.

४ चौथा निरपेक्ष वाक्य दोष. सो सामायिकमें शास्त्रकी अपेक्षा विना बोले.

५ पांचमा संक्षेप दोष. सो सामायिकमें सूत्र, पाठ, संक्षेप करे, अक्षर पाठ हीना कहे. यथार्थ कहे नहीं, सो पांचमा दोष है.

६ छठा कलह दोष. सो सामायिकमें साधर्मीयोंसें क्लेश करे, सामायिकमें तो कोइ मिथ्यात्वी गालीयां देवे, उपसर्ग करे, कुवचन बोले, तोभी तिसके साथ लडाइ नहीं, करनी चाहियें, तो फेर अपने साधर्मीके साथ तो विशेष करकें लडाइ करणीही नहीं, जेकर करे, तो छठा दोष लगे.

७ सातमा विकथा दोष. सो सामायिकमें बैठके देशकथादि चार विकथा करे, सामायिकमें तो स्वाध्याय अरु ध्यानही करनां चाहियें.

८ आठमा हास्य दोष. सो सामायिकमें दूसरोंकी हांसी करे, मस्करी करे.

९ नवमा अशुद्धपाठ दोष. सो सामायिकमें सामायिकका सूत्रपाठ शुद्ध न उच्चारे, हीनाधिक उच्चारे, यद्वा तद्वा सूत्र पढे.

१० दशमा मुणमुण दोष. सो सामायिकमें प्रगट स्पष्ट अक्षर न उच्चारे, दूसरोंकों तो जैसा मच्छर जणजणाट करता होवे, ऐसा पाठ मालुम पडे, पद अरु गाथाका कुछ ठिकाना मालम न पडे गडबड करकें उतावलसें पाठ पूरा करे, यह दश दोष वचनके हैं. अब मनके दश दोष लिखते हैं.

१ प्रथम अविवेक दोष. सो सामायिक करकें सर्वक्रिया करे, परंतु मनमें विवेक नहीं निर्विवेकतासें करे, मनमें ऐसा विचारे कि सामायिक करनेसें कौन तरा है? इसमें क्या फल है? इत्यादि विकल्प करे.

२ दूसरा यशोवांछा दोष. सो सामायिक करकें यशःकीर्त्तिकी इच्छा करे.

३ तीसरा धनवांछा दोष. सो सामायिक करनेसें मुजे धन मिलेगा.

४ चौथा गर्वदोष. सो सामायिक करकें मनमें गर्व करे कि मुझ

पयोग धर्मी कहेंगे, मैं कैसें सामायिक करता हूं, मूर्ख लोक क्या समजे? आस, पांचमा जय दोष. सो लोकोंकी निंदासें मरता हूआ सामायिक करे, क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न हूआ है, बड़ा पुरुष कहनेमें आता है,परंतु धर्म कर्मका नामजी नहीं जानता,धर्म तो दूर रहा, परंतु हररोज सामायिकजी नहीं करता, औसी निंदासें मरता हूआ करे.

६ छठा निदान दोष. सो सामायिक करकें निदान करे कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इंड, चक्रवर्त्तिका पद मिले.

७ सातमा संशय दोष. सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा कि नहीं होवेगा? जिसको तत्त्वकी प्रतीत न होवे, सो यह विकल्प करे.

८ आठमा कषाय दोष. सो सामायिकमें कषाय करे,अथवा क्रोध करकें तुरत सामायिक करकें बैठ जाय. सामायिकमें तो कषाय त्याग नां चाहियें.

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे.

१० दशमा अबहुमान दोष. सो सामायिक बहुमान जक्तिजाव उत्साह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे. अरु पूर्वोक्त बारह कायाके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कायडुःप्रणिधान अतिचार. सो शरीरके अवयव हाथ, पग प्रमुख, बिना पूंजे प्रमार्जे हलावे, नींतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोडुःप्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुव्यापार चिंतन क्रोध, लोज, डोह, अजिमान, ईर्ष्या, व्यासंग, संज्रमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन डुःप्रणिधान अतिचार. सो सामायिकमें सावद्य वचन बोले, सूत्राक्षर हीन पढे. सूत्रका स्पष्ट उच्चार न करे.

४ चौथा अनवस्था दोषरूप अतिचार. सो सामायिक वखत सिर न करे,जेकर करेजी तोजी बे मर्यादासें आदर विना उतावलसें करे.

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार. सो सामायिक करी, कि नहीं? सामायिक पारीकि नहीं? औसी जूल करे. इति नवम सामायिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशावकाशिक व्रत लिखते है. छठे व्रतमें जो दिशोंका परिमाण करा है,सो जावज्जीवे तहां तक है,उसमें तो क्षेत्र बहुत छूट रक्खा है; तिसका तो रोज काम पडता नाहिं, इस वास्ते दिन दिन प्रत्ये संक्षेप

करे, जैसें आजके दिन दश कोश वा पंदरां कोश वा पांच कोश, अथवा नगरके दरवाजे तक, वा कोश, अर्द्धकोश,बाग बगीचे तक, घरकी हद तक जानां आनां है,उपरांत नियम करनां,सो देशावकाशिकव्रत है ए छठे व्रत का संक्षेपरूप है, उपलक्षणसें पांच अणुव्रतादिकका संक्षेप थोडे कालका लेनी इसी व्रतमें जान लेनां, यह व्रत चार मास,एक मास, वीश दिन,पांच दिन अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्त्तमात्रनी हो सक्ता है, इसका नियम ऐसें करे कि मैं अमुक ग्रामादिकमें काया करकें जाउंगा, उपरांत जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदेशका जिनके व्यापार होवे, तो ऐसें कहे कि मुझकों काय करकें इतने क्षेत्र उपरांत जानां नाहिं, परंतु दूर देशका कागज प्रमुख लिखा हूआ आवे, सो वांचुं अथवा कोइ मनुष्य नेजनां पडे, उसका आगार है. परदेशकी वात सुननेका आगार है,अरु जिसका दूरका व्यापार नहिं होवे, सो चीठी खत, पत्रनी न वांचे, अरु आदमीनी न नेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसें जेकर संकल्प विकल्प न होवे,तो परदेशकी बातनी न सुने. जेकर नहिं रहा जावे, तो आगार रक्खे, परंतु जान करकें दोष न लगावे. यह देशावकाशिक व्रत सदा सवेरके वखत चौदह नियमकी यादगिरीमें उपयोगसें रक्खे, अरु रात्रिकों जूदा रक्खे, यह व्रत जैसें गुरुमुखसें धारे, तैसें करे (पाले) अरु इस व्रतके पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार. सो नियमकी नूमिकासें बाहिरकी कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पडे,तब विचारे की मेरे तो नियमकी नूमिकासें बाहिर जानेका नियम है, तब कोइ जाता होवे, तदा तिसकों कह करकें वो वस्तु मंगवा लेवे, अरु मनमें यह विचारेकी मेरा व्रतनी नंग नहिं हूआ, अरु वस्तुनी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार. सो दूसरे आदमीके हाथ नियमसें बाहिरली नूमिकामें कोइ वस्तु नेजे, सो दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा सद्दाणुवाय अतिचार. सो नियमकी नूमिकासें बाहिर, कोइ आदमी जाता है, तिस्सें कोइ काम है, तब तिसकों खुंखारादि शब्द करकें बोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तब तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार. सो कोइक पुरुष उसके नियमकी नूमि

कासें बाहिर जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब हाट हवेली उप र चढकें उसको अपणा रूप दिखावे, तब वो आदमी उसके पास आवे, पीछें आपणे मतलबकी उस्सें वातां करे, तब चौथा अतिचार लगे.

५ पांचमा पुद्गलाक्षेप अतिचार. सो नियमकी नूमिकासें बाहिर कोइ पुरुष जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब तिसकों कंकरा मारे, जब वो देखे, तब तिसके पास आवे, तब उसके साथ वात चीत करे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति दशम देशावकाशिकं व्रतं संपूर्णं ॥

अथ इग्यारहवा पौषधोपवास नामा व्रत लिखते हैं. यह पौषधव्रतके चार नेद हैं, उसमें प्रथम आहार पोषध है, तिसकेनी दो नेद हैं. एक देशतः दूसरा सर्वतः तहां देशसें तो त्रिविहार उपवास करकें पोषध करे, अथवा आचाम्ल करकें पोषध करे, अथवा त्रिविहार एकाशनां करकें पोषध करे, यह तीन प्रकारसें देश पोषध होता है, तिसकी विधि लिखते हैं.

पोषध करनेसें पहिले अपने घरमें कह रखे कि मैं आज पोषध करूंगा, इस वास्ते आचाम्ल अथवा एकाशना करा है, नोजनके अवसरमें आहार करनेकों आऊंगा, अथवा तुमने पोषधशालामें ले आनां, पीछेसें पोषध करने को जावे, तहां पोषध करकें देववंदन करकें, पीछे चरवला, मुखवस्त्रिका, पूंछणा, ये तीन उपकरण साथ ले करकें चादर ओढ करकें साधुकी तरें उपयोग संयुक्त मार्गमें यत्नसें चल कर नोजनके स्थानकमें जा करकें, इरियावहिया पडिकमे, गमनागमनकी आलोचना करे, पीछे पूंछणा उप र बैठके आहार करनेका नाजन प्रतिलेखकें पीछें अपने लेने योग्य आहा र लेवे, साधुकी तरें रसगृद्धिसें रहित आहार करे, मुखसें आहारकों अ च्छा बूरा न कहे, आहारका जूठ गेरे नहीं, आहार करे पीछे उष्ण जल सें आहारका बरतन धो कर पी जावे, बरतन शुद्ध करकें सूका करकें उ पयोग संयुक्त पोषधशालामें आवे, पूर्वस्थानमें जा कर बैठे, परंतु मार्गमें जाते आते किसीके साथ बात न करे, इस रीतसें स्वस्थानकमें आवे. इरियावही पडिक्कमकें चैत्यवंदन करकें धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते, तथा आहार अपना कोइ संबंधी अथवा सेवक ले आवे, तोनी पूर्वोक्त रीतिसें आहार करकें बरत न पीछें दे देवे, पीछें धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते, तिसकों देशसें पोषध कहते हैं. तथा जो चउविहार करकें पौषध करे, सो सर्वसें पोषध कहियें, यह प्रथम नेद.

२ दूसरा शरीरसत्कार पोषध. सो सर्वथा शरीरका सत्कार, स्नान, धोवन, धावन, तैलमर्दन, वस्त्राजरणादि शृंगार प्रमुख कोइन्नी शुश्रूषा न करे, साधुकी तरें अपरिकर्मित शरीर रखे, तिसकों सर्वथा शरीर सत्कार पोषध कहते हैं. तथा पोषधमें हाथ, पग प्रमुखकी शुश्रूषा करनी, तिसका आगार रखे, उसकों देशसत्कार पोषध कहते हैं.

३ तीसरा अब्रह्मपोषध. सो त्रिकरण शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पाले, वो सर्वथा ब्रह्मचर्य पोषध है. अरु मन, वचन, दृष्टि प्रमुखका आगार रखे, अथवा परिमाण रखे, सो देशसें ब्रह्मचर्य पोषध है.

४ चौथा सर्वथा सावद्य व्यापारका त्याग. सो सर्वसें अव्यापार पोषध है. अरु जे एकादि व्यापारका आगार रखे, सो देशसें अव्यापार पोषध जानना.

एवं चार प्रकारकें पोषधके दो दो नेद हैं,सो प्रथम जब आगम व्यवहारी गुरु होते थे, अरु श्रावकन्नी शुद्ध उपयोग वाले होते थे, तब जो जो प्रतिज्ञा लेते थे, सो सो प्रतिज्ञा अखंमित तैसीही पालते थे, परंतु नूलते नहीं थे, अरु न्यूनाधिकन्नी नहीं करते थे, और गुरुन्नी अतिशय ज्ञानके प्रनावसें योग्यता जान कर देश,सर्व, पोषधका आदेश देते थे, तथा श्रावक कदाचित् नूलन्नी जाते थे, तो न्नी तत्काल प्रायश्चित्त ले लेते थे, अरु इस कालमें तो असे उपयोगी जीव हैं नहीं, डुखमकालके प्रनावसें जडबुद्धि जीव बहुत हैं, इस वास्ते पूर्वाचार्योंने उपकारके अर्थे आहार पोषध तो दोनो करने, अरु शेष तीन पोषध जीतव्यवहारके अनुसारें निषेध कर दीये हैं. यही प्रवृत्ति वर्त्तमान संघमें प्रचलित है,पोषध तो श्रावककों जरुर करनां चाहियें, कारण कि कर्मरूप नावरोगकी यह औषधि है, तातें जब पर्वदिन आवे, तब जरूर पोषध करे. इसका पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम अप्पडिलेहिय डुप्पडिलेहिय सिद्यासंथारक अतिचार. सो जिस स्थानमें पोषध संस्थारक करा है,तिस नूमिकी तथा संथाराकी पडिलेहणा न करे, एतावता संथारेकी जगा अन्नी तरें निगाह करिकें नेत्रोंसें देखे नहीं अरु कदापि देखे,तोन्नी प्रमादके उदयसें कुछ देखी कुछ न देखी असें करे.

२ दूसरा अप्पमज्जिय डुप्पमज्जिय सिद्यासंथारक अतिचार. सो संथाराकों रजोहरणादिक करकें पूंजे नहीं, कदापि पूंजे, तोन्नी यथार्थ न पूंजे, गडबड कर देवे, जीवरक्षा न करे, तो दूसरा अतिचार लागे.

३ तीसरा अप्पडिलेहिय डुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमि अतिचार. सो लघुशंका, बडीशंका, परिठवणेकी भूमिका, नेत्रोंसें अवलोकन न करे, अरु अवलोकन करे, तोभी अजसु पजसु करकें काम चलावे. जी वयत्न विना करे, परिठवे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा अप्पमज्जियदुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि अतिचार. सो जहां मूत्र, विष्ठा करे, उस भूमिकाकों उच्चारप्रस्रवण करनेसें पहिलां पूंजे नहीं, जे कर पूंजे, तोभी यद्वा तद्वा पूंजे, परंतु यत्नसें न पूंजे.

५ पांचमा पोसहविहिविवरीए अतिचार. सो पोषधमें क्षुधा लगे, तब पारणेकी चिंता करे, जैसेंकि प्रभातमें अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तुका आहार करुंगा, तथा अमुक कार्य करणा है. तहां जानां पडेगा, अमुक उपर तगादा करुंगा, तथा प्रभातमें पोषध पारकें अछीतरें तेलम र्दन कराऊंगा, अछे गरम पानीसें स्नान करुंगा. तथा अमुक पोसाक करुं गा, स्त्रीके साथ भोग करुंगा. इत्यादि सावद्य चिंतवणा करे. तथा संध्या समयें पोषधके मंमल शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोषधके अढारह दूषण हैं, सो वर्जे नहीं, सो अढारह दूषण लिखते हैं.

१ विना पोषेवालेका ल्याया हूआ जल पीवें, २ पोषध वास्ते सर स आहार करे. ३ पोषधके अगले दिन विविध प्रकारका संयोग मिलाय कें आहार करे. ४ पोषध निमित्त अथवा पोषधके अगले दिनमें विभू षा करे, ५ पोषध वास्ते वस्त्र धोवावे. ६ पोषध वास्ते आभरण घडाकें पहिरे, स्त्रीभी नथ, कंकणादि सोहागके चिन्ह वर्जकें दूसरा नवा गहेनां घडाकें पहिरे. ७ पोषध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोषधमें शरीर की मैल उतारे, ९ पोषधमें विना काल निद्रा करे, १० पोषधमें स्त्रीक था करे, स्त्रीकों भली बूरी कहे. ११ पोषधमें आहार कथा करे, भोज नकों अछा बूरा कहे, १२ पोषधमें राजकथा करे, युद्धकी वात सुने, कहे, १३ पोषधमें देश कथा करे, अछा बूरा देश कहे, १४ पोषधमें लघुशंका अरु बडीशंका सो भूमिका पूंज्या विना करे, १५ पोषधमें दूस रोंकी निंदा करे, १६ पोषधमें स्त्री, पिता, माता, पुत्र, भाइ प्रमुखसें वार्त्तालाप करे, १७ पोषधमें चोरकी कथा करे, १८ पोषधमें स्त्रीके अं

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अठारह दूषण पोषधमें वर्जे, तो शुद्ध पोषध जाननां. अन्यथा पांचमा अतिचार लागे. इति एकादश व्रत॥

अथ बारहवा अतिथिसंविभागव्रत लिखते हैं. अतिथि उसकों कहते हैं, कि जिसने लौकिक पर्वोत्सवादि तिथियोंकों त्याग दीया है, सो अतिथि है, जैसें प्राहुणा विनातिथि आता है, एतावता तिथि देखकें नहीं आता है, ऐसेंही जो साधु अण चिंत्याही आ जावे है, सो अतिथि जाननां. ऐसे मधुकर वृत्तिवालेसें जो विभाग करे, एतावंता शुद्ध व्यवहार न्यायोपार्जित धन करकें अपणा उदर पूरणे योग्य जो रसोइ करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोष रहित ऐसा शुद्ध निर्दोष आहार भक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिथिसंविभाग व्रत है. तहां प्रथम दान देनेवालेमें पांच गुण होवे, तो वो दातार शुद्ध होता है, सो पांच गुण लिखते हैं.

१ प्रथम जैनमार्गी दातारकूं, शुद्ध पात्रकी प्राप्ति पा करकें अपणे घरमें मुनिका दर्शन मात्र होनेसें अंतरंगमें बहुत दिनकी चाहनाके उल्लाससें आनंदके आंसु आवे, जैसें अपणा प्यारा अति हितकारी वल्लभ विछडके परदेशमें गया है, उसकों मनसें कभी विसरता नहीं, मिलाही चाहाता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसें आनंद आंसु आवे, तैसें मुनिकों घरमें आया देखकें आनंद आंसु ल्यावे, अरु मनमें विचारे कि मेरा बडा भाग्य है, जो ऐसा मुनि मेरे घरमें आया है? अरु मैं कैसा हुं? अनादिका भूख्या, द्रव्य संबल रहित, दरिद्रपीडित, ज्ञानलोचनरहित, अंधभाव करि पीडित, अपार संसारचक्रमें भटकता हूआ, बहुत अकथनीय दुःख संयुक्त देख कर मेरे पर परमदया दृष्टि करकें प्रथम मेरेकों ज्ञानांजन शलाकासें ज्ञानरूप देखने वाला नेत्र खोल दीना, अरु तीन तत्त्व सेवा रूप व्यापार सिखलाया, तथा मुझकों रत्नत्रयीरूप पूंजी (रास) दे कर मेरा अनादि दरिद्र दूर करा, मुझे भले आदमीयोंकी गिणतीमें करा, ऐसे गुरु मुनिराज विना गरजके परोपकारी मेरे घरांगणमें आया. ऐसी पुष्ट भावना प्रशस्त राग भावकें उल्लाससें आनंदके आंसु आवे, यह दातारका प्रथम गुण है,

२ दूसरा जैसें संसारमें जीवकों अत्यंत इष्ट वस्तुके संयोगसें रोमावली

खडी होती है, तैसें बडी भक्तिके प्रभावसें मुनिकों देखकें रोमावली विकस्वर होवे, हृदयमें हर्ष समावे नहीं, यह दूसरा गुण है.

३ तीसरा मुनिकों देखकें बहुमान करे, जैसें किसी गरीबके घरमें राजा आप चल कर आवे, तब वो गरीब गृहस्थ जैसा राजेका आदर करे, अरु मनमें विचारे कि महाराजा मेरे घरमें आया है, तो मैं अछी वस्तु इनकों भेट करुं तो ठीक है, क्योंकि राजाका आवनां वारंवार मेरे घरमें कहां है? अैसा विचारकें जैसें वस्तु भेट करे, तैसें श्रावकभी साधुकों घरमें आया देखकें बहुत मान करे, अरु मनमें अैसा विचारेकि यह अैसा निःस्पृहीयोमें शिरोमणि, जगद्बंधु, जगत् हितकारी, जग वत्सल, निष्कामी, आत्मानंदी, करुणासागर, संसारजलधि उद्धरण, परोपकार करणीमें चतुर, क्रोधादि कषाय निवारक, आप तरे परतारक, अैसा मुनिराज, मेरे घरमें चल कर आया, इस्सें मेरा अहो भाग्य है? अैसा जान कर संभ्रम संयुक्त सन्मुख जावे, त्रिकरण शुद्ध परिणामसें कहे कि हे स्वामी! दीनदयाल! पधारो, मेरे गृह अंगण पवित्र करो, अैसा बहुमान दे कर घरमें पधरावे, मनमें विचारे कि मेरे बडा पुण्योदय है, जो साधु आहार पाणीका अनुग्रह करते हैं, क्योंकी साधुके आहार लेनेमें बडी विधि है, साधु शुद्ध भात पाणी जाणे, तो लेवे, इस वास्ते मत मेरेसें कोइ दोष उपजे? अैसा विचार कें त्रिकरण शुद्ध बहुमान पूर्वक उपयोग संयुक्त विधिपूर्वक आहार ल्यावे, अरु मधुरस्वरसें विनति करे, कि हे स्वामी! यह शुद्ध आहार है, इस वास्ते सेवक उपर परम कृपा नजर करकें पात्र पसारकें मेरा निस्तार करो. अैसे वचन बोलता हूआ आहार देवे, मुनिभी उस आहारकों योग्य जाण कर ले लेवे, अरु श्रावकभी जितनी दान देने योग्य वस्तु है, उसके सर्वकी निमंत्रणा करे, इस विधिसें दान दे कर हाथ जोडकें पृथिवी उपर मस्तक लगा कर नमस्कार करे, पीछें मीठे वचनोसें विनति करे की हे कृपानिधान! सेवक उपर बडी कृपा करी, आज मेरा घर पवित्र हूआ, क्योंकि पुण्योदयविना मुनिका योग कहां होता है? फेरभी हे स्वामी! कृपा करकें अशन, पान, खादिम, स्वादिम, औषध, वस्त्र, पात्र, शय्या, संस्तारकादिसें प्रयोजन होवे, तब अवश्य सेवक उपर अनुग्रह करकें पधारनां, तुम तो मुनिराज गुणवान बे परवाह हो, तुमकों किसी बात

की कमी नहिं, किसीके साथ प्रतिबंध नाहिं, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, तोनी मेरे उपर जरूर कृपा करणी, ऐसे मुखसें कहता हूआ अपणे घरकी सीमा तक पहुंचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तहांसें वंदना करकें पीछें आ कर नोजन करे, परंतु मनमें आनंद समावे नहीं, विचारे कि मेरा बडा नाग्योदय हूआ, आज कोइ नली वात होवेगी क्योंकि आज मुनि, निःस्पृही, सहजउदासी, स्वसुख विलासीकों मैं विनति करी आहार दीया, अरु आहार देतां बिचमें कोइ विघ्न न हूआ, इस वास्ते मेरा बडा नाग्य है,फेरनी कदे ऐसे मुनिका योग मिलेगा ? ऐसी अनुमोदना वारंवार करे, यह चौथा गुण है.

५ पांचमा जैसें कोइ मंदनाग्यवान् व्यापार करतां थोडा थोडा कमाता है,. तिसकों किसी दिन कोइ सौदेमें लाख रूपैयेकी प्राप्ति होवे, तब वो कैसा आनंदित होवे है, अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है, तिस्सेंनी अधिक साधुकों दान देनेकी चाहना श्रावक रक्खे, यह पांचमा गुण है. यह पांच गुणयुक्त शुद्ध दान देवे, तो अतिथि संविनाग व्रत होवे. इस व्रतके पांच अतिचार वर्जे, सो लिखते हैं.

१ प्रथम सचित्तनिक्षेप अतिचार. सो सचित्त सजीव पृथ्वी, जल, कुंन, चुल्ला, इंधनादिकोंके उपर न देनेकी बुद्धिसें आहारकों रख छोडे. अरु मनमें ऐसा विचारेकि ए आहार साधु तो नहीं लेवेगा, परंतु निमंत्रणा करनेसें मेरा अतिथि संविनागव्रत पल जावेगा, यह प्रथमातिचार.

२ दूसरा सचित्त पीहण अतिचार. सो सचित्त करकें ढक छोडे, सूरण, कंद, पत्र, पुष्प, फलादि करकें न देनेकी बुद्धिसें ढक छोडे.

३ तीसरा कालातिक्रम अतिचार. सो साधुओंके निक्षाका काल लंघ करकें अथवा निक्षाके कालसें पहिलां अथवा साधु आहार कर चूके तब आहारकी निमंत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार. सो जब साधु मागे तब क्रोध करे. तथा वस्तु पासमें है, तोनी मांग्या न देवे,अथवा इस कंगालने ऐसा दान दीया, तो मैं क्या इस्सें हीन हूं, जो न देऊं ? इस नावनासें देवे.

५ पांचमा गुड, खंम प्रमुख अपणी वस्तु है, सो न देनेकी बुद्धिसें औरोंकी कहे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति श्रीअतिथिसंविनागव्रतं संपूर्ण॥

यह सम्यक्त्वपूर्वक बारह व्रतरूप गृहस्थधर्मका स्वरूप धर्मरत्न प्रकरण तथा योगशास्त्रादि ग्रंथोसें संक्षेप लिखा है. जे कर विशेष देखनां होवे, तो धर्मरत्नशास्त्रवृत्ति तथा योगशास्त्र देख लेनां.

इति तपोगच्छीये गणि श्रीमणिविजय तच्छिष्य श्रीमुनि बुद्धिविजय तच्छिष्य मुनिआत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रावकव्रतनिरूपणं नामा अष्टम परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ८ ॥

॥ अथ नवम परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह परिच्छेदमें श्रावकोंका जो दिनकृत्य, रात्रिकृत्य, पर्वकृत्य, चातुर्मासिककृत्य, संवत्सरकृत्य, जन्मकृत्य, यह छे प्रकारका कृत्य हैं. तिनमेंसूं प्रथम दिनकृत्यविधि, श्राद्धविधि ग्रंथ तथा श्रावक कौमुदी शास्त्रके अनुसार लिखते हैं.

प्रथम तो श्रावककों निद्रा थोडी लेनी चाहियें, जब एक प्रहर रात्रि शेष रहे, तब निद्रा छोडकें उठनां चाहियें. जेकर किसीकों बहु नींद आती होवे, तब जघन्य चौदमे ब्राह्म मुहूर्तमें जरूर उठनां चाहियें. क्योंकि सवेरे उठनेंसें इस लोक अरु परलोकके अनेक कार्य सिद्ध होते हैं. उस अवसरमें बुद्धि टीकी हुइ अरु निर्मल होती है, पूर्वापर अच्छी तरेंसें विचार कर सक्ता है, अरु ग्रंथकार ऐसेंभी कहते हैं कि जिसके नित्य सूतेके सूर्य ऊग जावे, तिसकी आयु अल्प होती है, इस वास्ते ब्राह्म मुहूर्तमें अवश्य सूता उठनां चाहियें, जब सूता उठे, तब मनमें विचारे कि मैं श्रावक हूं, अपने घरमें तथा पर घरमें इन दोनोमेंसूं कहां सूता था? तथा हेठले मकानमें सूता था कि चोबारे प्रमुखमें सूता था? दिनमें सूता था कि रात्रिकों सूता था? इत्यादि विचार करतेभी जेकर निद्राका वेग न मिटे तदा नाक अरु मुखका उश्वास रोके, उसं करकें निद्रा तत्काल दूर हो जाती है, पीछें दरवाजा अच्छी तरेंसें देखके लघुशंकादि करे. तथा रात्रिमें किसीकों कुछ कहनां पडे, तब मंद स्वरसें कहे, परंतु ऊंचे स्वरसें न कहे, क्योंकि रात्रिमें ऊंचा शब्द करनेंसें छपकली प्रमुख हिंसक जीव जाग

जाते हैं, फेर वो मछीयों आदिक जीवोंकी हिंसा करते हैं, तथा कसाइ जाग जावे तो गौ, बकरी, जेडी प्रमुखकों मारने वास्ते चला जावे तथा माछी, जाल ले कर मछली मारनेकों चला जावे,तथा बावरी,अहेडी, खून करनेवाला, मदिरा बनाने वाला, परस्त्री गमन करने वाला, तस्कर,लूंटेरा, धाडी, धोबी, कुंजार, अरु जूआरी प्रमुख, अनेक हिंसक जीव जाग कर अनेक तरेंके पाप करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं, यह रात्रिमें ऊंचे शब्दसें बोलने वालोंकों सर्व पाप लगे वास्ते रात्रिमें ऊंचे शब्दसें न बोलनां चाहियें.

जब सवेरकी बखत निद्रा छेद होवे, तब तत्त्वोंके जानने वाले श्रावककों तत्त्वविचार करनां चाहियें. सो तत्त्व पांच है, तिसका नाम कहते हैं. १ पृथ्वी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, उसमें निद्रा छेद समयमें जेकर पृथ्वी तत्त्व अरु जल तत्त्व वहें, तब तो शुभ है, अरु जेकर अग्नि, वायु, तथा आकाश तत्त्व वहे, तो दुःखदायक है. शुक्ल पक्षकी पडिवाके दिन जेकर वामी नासिकाका स्वर चले, तो पंदरा दिन तक आनंद आरोग्य रहे, अरु कृष्ण पक्षकी एकमके दिन जेकर दक्षिण नासिकाका स्वर वहे, तो पंदरा दिन तक सुख आनंद रहे. इस्सें विपर्यय होवे, तो विपर्यय फल होवे.

तथा शुक्ल पक्षके प्रथम तीन दिन वामी नासिका सवेरे उठते वहे, तो शुभ है. आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो शुभ है, फेर आगले तीन दिन वाम स्वर चलें तो शुभ है, असेही क्रमसें पंदरा दिन तक जान लेने. अरु कृष्ण पक्षकी पडिवाके दिनसें लेकर जेकर तीन दिन तक दक्षिण स्वर चले तो शुभ है, आगले चौथे दिनसें लेकर तीन दिन तक वाम स्वर चले तो शुभ है, फेर आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो शुभ है, असें पंदरा दिन तक जान लेनां. तथा चंद्रस्वरमें सूर्य उगे अरु सूर्यस्वरमें सूर्य अस्त होवे तो शुभ है तथा सूर्यनाडीमें सूर्य उदय होवे अरु चंद्रनाडीमें अस्त होवे, तोभी शुभ है, किसी शास्त्रके मतमें रवि, मंगल, गुरु, अरु शनि, इन चार वारोंमें दक्षिण स्वरमें सूर्यनाडी दिन उगतां चले, तो शुभ है, अरु सोम, बुध तथा शुक्र, इन तीनो वारोंके दिन उगतां, उठतां, चंद्रस्वर वामस्वर चले, तो शुभ है विपर्यय चले, तो अशुभ है.

तथा किसीके मतमें संक्रांतिके क्रमसें सूर्य चंद्र नाडी वहे तो शुभ है,

जैसें मेष संक्रांतिके दिन सूर्यस्वर चले, अरु वृषसंक्रांति दिन चंद्र नाडी चले, तो शुभ जाननी इत्यादि. तथा किसीके मतमें चंद्रमा राशि पलटे तिस क्रम करकें अढाइ घडी तक एक नाडी वहती है इत्यादि. परंतु जे नाचार्य श्री हेमचंद्रादिकोंका तो प्रथम जो लिखा है, सो मत है. छत्तीस गुरु अक्षरोंके उच्चारणेमें जितना काल लगता है. तितना काल वायु नाडीकों दूसरी नाडीमें संचार करते लगता है.

अब पांच तत्त्वोंकी पहिचान इसी तरें है. सो कहते हैं. नासिकाकी पवन जेकर ऊंची जावे. तब तो अग्नि तत्त्व है, जेकर नीची जावे, तो जल तत्त्व है, तिर्छी जावे, तो वायुतत्त्व, जेकर नासिकासें निकलके सूधी तिर्छी जावे, तो पृथ्वीतत्त्व, जेकर नासिकाके दोनो पुटोंके अंदर वहे, बाहिर नहीं निकले. तो आकाश तत्त्व जाननां.

पहिलां पवन तत्त्व वहता है. पीछें अग्नि तत्त्व वहता है, पीछें जल तत्त्व वहता है, पीछें पृथ्वीतत्त्व वहता है, पीछें आकाश तत्त्व वहता है. क्रम इनका सदा यही है. दोनोही नाडीयोंमें पांचो तत्त्व वहते हैं, उसमें पृथ्वी तत्त्व पंचाश पल प्रमाण वहता है. जल तत्त्व चालीश पल प्रमाण वहता है, अग्नितत्त्व तीस पल प्रमाण वहता है, वायुतत्त्व वीस पल प्रमाण वहता है, आकाश तत्त्व दश पल प्रमाण वहता है.

पृथ्वी अरु जल तत्त्वमें शांतिकार्य करणां, अरु अग्नि, वायु, तथा आकाश इन तीन तत्त्वमें दीप्तिमान् अरु स्थिरकार्य करणां, तो फलोन्नति शुभ होवे है, तथा जीवणेका प्रश्न पूछनां. जयप्रश्न, लाभप्रश्न, धन उत्पन्न करणेकां प्रश्न, मेघ वर्षनेका प्रश्न, पुत्र होनेका प्रश्न, युद्धका प्रश्न, जाने आनेका प्रश्न, इतने प्रश्न जेकर पृथ्वी अरु जलतत्त्वमें करे, तो शुभ होवे, जेकर अग्नितत्त्व अरु वायु तत्त्वके वहता ये प्रश्न करे, तो शुभ नहीं, पृथ्वी तत्त्वमें प्रश्न करेतो कार्यकी सिद्धि स्थिरपणे होवे अरु जलतत्त्वमें शीघ्रकार्य होवे.

जब पहल पहिलां जिनपूजा करे, तथा धन कमावनेंके वास्ते जावे, पाणिग्रहणकी (विवाहकी) वेलां, गढ लेनेकी वेलां, नदी उतरनेकी वेलां, गया है सो आवेगाकि नहीं ? ऐसे प्रश्न करते वेलां. जीवनेके प्रश्नमें तथा घर क्षेत्रादि लेती वेला, कियाणां लेतां, वेचतां, वर्षके प्रश्नमें, नौकरी करणेकी वेलां,

खेती करनेके वखत, शत्रुके जीतनेमें, विद्यारंनमें, राज्याभिषेकमें, इत्यादि शुनकार्यमें चंड्रनाडी वहे, तो कल्याणकारी है.

प्रश्नके समय कार्यके आरंनमें पूर्ण वामी नाडी प्रवेश करती होवे, तदा निश्चय कार्यकी सिद्धि जाननी. इसमें संदेह नहीं, तथा कैदसें कद बूटे गा ? रोगी कब अछा होवेगा ? अरु जो अपने स्थानसें भ्रष्ट हूआ है, तिस का प्रश्नमें तथा युद्ध करनेके प्रश्नमें, वैरीकों मिलती वखत, अकस्मात् नय हूआं, स्नान करण लगें, नोजन, पाणी पीने लगें, सोने लगें, गइ वस्तुके खोज करनेमें, मैथुन करने लगें, विवाद करणमें, कष्टमें, इतने कार्यमें सूर्य नाडी शुन है. कोइक आचार्य ऐसेंनी कहते हैं कि विद्या रंनमें, दीक्षामें, शास्त्राभ्यासमें, विवादमें, राजाके देखनेमें, मंत्र यंत्रके साधनेमें, सूर्यनाडी शुन है. अथवा जो चंड्रादि स्वर चलता होवे, निरंतर तिस पासेंका पग उठाके प्रथम चले तो कार्य सिद्धि होवे.

पापी जीवोंके शत्रुओंके चार प्रमुख जे क्लेशके करने वाले हैं, तिनके सन्मुख जो नासिका बंध होवे, सो पासा, इनके सामने करे, जो सुख लान जयार्थी है. उसमें प्रवेश करता हूआ पूरा स्वर, वामा पग शुक्ल पक्षमें, अरु जीमणा पग कृष्ण पक्षमें, शय्यासें उठतां हूयां धरती ऊपर रखता. इसविधिसें श्रावक निंद त्यागे.

अरु श्रावक अत्यंत बहुमान पूर्वक मंगलके वास्ते पंचपरमेष्ठि नमस्कार स्मरण करे, शय्यामें बैठा हूआ मनमें पंचपरमेष्ठि नमस्कारमंत्र स्मरण करे, परंतु वचनसें उच्चारण न करे, जेकर मुखसें उच्चार करे, तो शय्या छोड कर धरती उपर बैठ कर नमस्कार मंत्र पढे. ऐसे नमस्कार मंत्र हृदयमें स्मरण करता हूआ शय्यासें उठे, पवित्र नूमिका उपर बैठे, तथा पूर्व अथवा उत्तरदिशि सन्मुख मुख करकें खडा रह कर चित्त की एकाग्रताके वास्ते कमलबंध कर जपादि करकें नमस्कार मंत्र पढे, तहां आठ पांखडीका कमल चिंते, उसकी कर्णिकामें अरिहंत पदका स्थापन करे, पूर्व पांखडीमें सिद्ध, दक्षिण पांखडीमें आचार्य, पश्चिम पांखडीमें उपाध्याय, उत्तर पांखडीमें साधु स्थापन करे, अरु बाकी चूलिकाके चार पद जो हैं, सो अनुक्रमें अग्न्यादि चारों कूणोंमें स्थापन करे. उक्तंचाष्टमप्रकाशे योगशास्त्रे ॥ श्रीहेमचंड्रसूरिनिः ॥ अष्टपत्रे सितांनोजे,

कर्णिकायां करस्थितिः ॥ आद्यं ससाक्षरं मंत्रं, पवित्रं चिंतयेत्ततः ॥ १ ॥ सिद्धादिकचतुष्कं च, दिक्पत्रेषु यथाक्रमं ॥ चूलापादचतुष्कं च, विदिक्पत्रेषु चिंतयेत् ॥ २ ॥ त्रिशुद्ध्यं चिंतयन्नस्य, शतमष्टोत्तरं मुनिः ॥ भुंजानोपि लन त्येव, चतुर्थतपसः फलम् ॥ ३ ॥

हाथके आवर्त्त करकें जो पंच मंगल मंत्र स्मरण नित्य करे, उसकों पिशाचादिक नहीं छलते हैं, बंधनादि कष्टमें विपरीत शंखावर्त्तकादिक अक्षरों करकें अथवा विपरीत पदों करकें पंचमंगल मंत्र लक्षादि जाप करे, तो शीघ्र क्लेशादिकोंका नाश होवे, जे कर हाथ उपर जाप न कर सके तो सूतकी, रत्नकी, रुद्राक्षादिककी, माला उपर जाप करे, माला वाला हाथ हृदयके सामने रखे, शरीरसें तथा शरीरके वस्त्रोंसें तथा भूमिकासें माला न लगने देनी, अंगूठेके उपर माला रख करकें तर्जनी अंगुलीसें नख, बिना लगाया मणका फेरे, मेरु उल्लंघन न करे, शास्त्रकार लिखते हैं कि जो अंगुलीके अग्रसें जाप करे, अरु जो मेरु उल्लंघके जाप करे, तथा जो विखरे हूए चित्तसें जाप करे, यह तीनो जाप थोडा फल देते हैं, जाप करने वाला बहुतोंमें एकला अच्छा शब्द करकें जाप करनेसें मौन करकें करे, सो अच्छा है, जेकर जप करतां थक जावे, तो ध्यान करे, ध्यान करनेसें थक जावे, तो जप करे, दोनोसें थक जावे, तो स्तोत्र पढे.

श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है, कि जाप तीन तरेंका है, एक मानस, दूसरा उपांशु, तीसरा भाष्य, इन तीनमें मानस उसकों कहते हैं कि जो मनकी विचारणासें होवे, स्वसंवेद्य होवे, अरु उपांशु उसकों कहते हैं कि जो दूसरा तो न सुणे, परंतु अंतर्जल्प रूप होवे, तथा जो दूसरोंकों सुनाइ देवे, सो भाष्य. यह तीनों क्रम करकें उत्तम, मध्यम, अरु अधम जान लेने. उसमें मानससें शांति होती है, एतावता शांतिके वास्ते मानस जाप करणां अरु पुष्टिके वास्ते उपांशु जाप करणां. तथा आकर्षणादिकमें भाष्यजाप करणां.

नमस्कार मंत्रके पांच पद, नवपद, अथवा अनानुपूर्वी, चित्तकी एकाग्रताके वास्ते गुणे, तथा जो नवकार मंत्रका एक अक्षर एक पदभी जपे, तोभी जाप हो सक्ता है ॥ यदुक्तं योगशास्त्रे अष्टमप्रकाशे ॥ पंचपरमेष्ठि

मंत्रके "अरिहंत सिद्ध आयरिय उवझाय साहू" इन सोलां अक्षरका जाप करे, तथा "अरिहंतसिद्ध" इन षट् वर्ण (छै अक्षर) का जाप करे, तथा "अरिहंत" इन चार अक्षरका जाप करे, तथा आकार जो वर्ण है, सोजी मंत्र है इनके जापसें स्वर्ग मोक्षका फल होता है, अरु व्यवहार फल असा जाननां, कि:—षड्वर्णका जाप तीन सौ वार करे, तथा चार वर्णका जाप चार सौ वार करे, अरु सोलां अक्षरका जाप दो सौ वार करे, तो एक उपवासका फल होता है, तथा नाभिकमलमें स्थित तो अ कार ध्यावे, अरु सि वर्ण, मस्तक कमलमें स्थित ध्यावे, तथा आकार मुख कमलमें स्थित ध्यावे, उकार हृदय कमलमें स्थित ध्यावे, तथा सा कार कंठ पिंजरमें स्थित ध्यावे, सर्व कल्याणकारी यह जाप है, असिआ उसा यह पांच बीज हैं. इन पांचों बीजोंका ॐकार बनता है.

तथा और बीज मंत्रोंकाभी जाप करे, जैसें "नमः सिद्धेभ्यः" असा मंत्र तो जे कर इस लोकके फलकी इच्छा होवे, तब तो ॐकार पूर्वक पढनां चाहियें, अरु मोक्ष वास्ते जपे, तो ॐकाररहित पढनां चाहियें, यह जपादि करनेसें बहुत फल होता है ॥ यतः ॥ पूजाकोटिसमं स्तोत्रं, स्तोत्रकोटिसमोजपः ॥ जपकोटिसमं ध्यानं, ध्यानकोटिसमो लयः ॥ १ ॥ ध्यानकी सिद्धि वास्ते श्रीजिनजन्मदीक्षादि कल्याणक भूमिरूप तीर्थमें जावे, अथवा और कोइ विविक्त स्थान होवे. तहां ध्यान करे, ध्यानका स्वरूप देखनां होवे, तब आवश्यक सूत्रांतर्गत ध्यानशतक देख लेनां. नमस्कार मंत्रका जो जाप है, सो इस लोक परलोकमें बहुत गुणकारी है, ॥ उक्तंहि महानिशीथे ॥ नासेइ चोर सावय, विसहर जल जलण बंधण भयाइं ॥ चिंतिज्जंतो रक्खस, रण राय भयाइं भावेण ॥ १ ॥ अर्थः— चोर, सिंह, सर्प्प, पाणी, अग्नि, बंधन, संग्राम, राजभय, इतने भय पंचपरमेष्ठि मंत्रके स्मरणसें नष्ट हो जाते हैं. एकाग्रता भावसें जपे, तो यह फल होता है पंच परमेष्ठि मंत्र सर्व जगे पढनां चाहियें, नमस्कार मंत्रका एक अक्षर जपे, तो सात सागरोपमका करा हूआ पाप नष्ट होता है. जे कर संपूर्ण पंच परमेष्ठिमंत्र जपे, तो पांच सौ सागरका करा हूआ पाप नष्ट हो जाता है, तथा जो पुरुष एक लक्ष वार पंच परमेष्ठि मंत्रका जाप करे, अरु यह नमस्कार नामक मंत्र जो है, तिसकी विधिसें पूजा

करे, तो तीर्थंकर नाम कर्मगोत्रका बंध करे, इस बातमें संदेह नहीं, तथा आठ कोडी, अठ लाख, आठ हजार, आठ सौ, आठ वार, जो पंच परमेष्ठिमंत्रका जाप करे, वो जीव, तीसरे नवमें सिद्ध हो जाता है, इस वास्ते सूते, उठते, प्रथम नमस्कार स्मरण करणां तिसके पीछें धर्मजागरणा करणी, सो इसी तरेंकिः—

यथा में कौन हूं? क्या मेरी जाति है? क्या मेरा कुल है? कौन मेरा इष्ट देव है? कौन मेरा गुरु है? क्या मेरा धर्म है? क्या मेरे अभिग्रह है? क्या मेरी अवस्था है? क्या मैने सुकृतादि करा है? क्या मैने दुःकृतादि नहीं करा है? क्या मैं करने समर्थ हूं? क्या मैं नहीं कर सका हूं? मुझकों कोइ देखता है कि नहीं? अपनी भूलकों आत्मा जानता है, फेर क्यों नहीं छोडता? तथा आज कोनसी तिथि है? क्या अर्हतका कल्याणिक दिन है? आज मेरा क्या कृत्य है? में किस देशमें तथा किस कालमे हूं? सवेरें उठके असे स्मरण करणेसें जीव सावधान हो जाता है, जो विरुद्ध कृत्य हैं, उसका परिहार करता है अपणे नियमका निर्वाह अरु नवीन गुणकी प्राप्ति होती है. येही धर्मजागरणा, आणंद कामदेवादि श्रावकोंने करकें प्रतिमादि विशेष धर्मकरणी करी है.

तस पीछें जो श्रावक प्रतिक्रमण करनेवाला होवे, सो प्रतिक्रमण करे, अरु जो प्रतिक्रमण न करे, सोभी रागादिमय कुस्वप्न प्रद्वेषादिमय अनिष्ट फलका सूचक तिसके दूर करणे वास्ते तथा स्वप्नमें स्त्रीसें प्रसंगादि करनेका खोटा स्वप्न उपजन हूआ होवे, तब एक सौ आठ उच्छ्वास प्रमण कायोत्सर्ग करे, अन्यथा सौ उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, चार लोगस्सका काउस्सग्ग करे. यह कथन व्यवहार भाष्यमें है, तथा विवेक विलासादि ग्रंथोमें असा लिखा है. कि स्वप्न देख्यां पीछें फेर नही सोवणां, अरु स्वप्न, दिनमें सद्गुरुके आगें कहनां, जे कर खोटा स्वप्न आवे तो फेर सोवनां ठीक है, किसीके आगें कहनां न चाहियें, तथा समधातुवाला, प्रशांतचित्तवाला, धर्मी और नीरोगी, जितेंद्रिय, इनकों जो शुभाशुभ स्वप्न आवे, सो सत्यही होता है, स्वप्न जो आता है, सो नव कारणोसें आता है, सो नव कारण कहते हैं.

एक तो अनुभव करी हुइ वस्तुका स्वप्न आता है, दूसरा सुनी हुइ बातका, तीसरा देखा हुआ, चौथा प्रकृति वात, पित्त, अरु कफके विकारसें, पांचमा चिंतित वस्तुका. छठा सहज स्वभावसें, सातवा देवताके उपदेशसें, आठमा पुण्यके प्रभावसें, नवमा पापके प्रभावसें, इसमें आदिके छै कारणोसें, जो स्वप्न आवे, सो निरर्थक है, अरु अगले तीन कारणोंसें जो स्वप्न आवे तो सत्य होवे.

रात्रिके पहिले प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक वर्षमें फल देवें, अरु दूसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो छै महीनेमें फल देवे, तीसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो तीसरे महीनेमें फल देवे, चौथे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक मासमें फल देवे, सवेरे दो घडी रात्रिमें स्वप्न आवे, तो दश दिनमें फल देवे, सूर्योदयमें स्वप्न आवे, तो तत्काल फल देवे.

एक जो स्वप्नमें बहुत आल जंजाल देखे, तथा दूसरा जो रोगोदयसें स्वप्न आवे, तथा तीसरा जो मलमूत्रकी बाधासें स्वप्न आवे, यह तीनों स्वप्न निरर्थक हैं. जे कर पहिला अशुभ स्वप्न आवे, अरु पीछेसें शुभ स्वप्न आवे, तो शुभ फल देवे, तथा पहिला शुभ स्वप्न आवे, पीछें अशुभ आवे, तो अशुभ फल देवे, जेकर खोटा स्वप्न आवे, तो शांति अर्थात् देवपूजा दानादिक करणां, तथा स्वप्नचिंतामणि नामक ग्रंथमेंभी लिखा है, कि अनिष्ट स्वप्न देख कर सो जावे, अरु किसीकों कहे नहीं, तो फेर वो स्वप्न, फल नहीं देता है, सूता उठके जिनेश्वरदेवकी प्रतिमाकों नमस्कार करकें जिनेश्वरका ध्यान करे, स्तुति करे, स्मरण करे, पंच परमेष्ठिमंत्र पढे, तो खोटा स्वप्न वितथ हो जाता है. अरु जो पुरुष देव गुरुकी पूजा करते हैं, तथा निजशक्त्यनुसार तप करते हैं, निरंतर धर्मके रागी हैं, तिनोंकों खोटा स्वप्नभी अछा फल देता है. तथा जो पुरुष, देवगुरुका स्मरण करकें अरु शत्रुंजय समेतशिखर प्रमुख शुभ तीर्थोंका नाम, तथा गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी प्रमुख आचार्योंका नाम स्मरण करकें सोवे, उसकों कदापि खोटा स्वप्न नहीं होता है.

थूकनां होवे, तो राखमें थूकनां चाहियें, शरीरकों दृढ करने वास्ते हाथों करकें वज्रीकरण करे, अग्नितत्त्व, अरु पवनतत्त्व, जब वहता होवे, तब धाप करकें आकंठ तांइ दूध पीवे, केइ आचार्य कहते हैं कि

आठ पसली पाणीकी पीवे, इसका नाम वज्रीकरण कहते हैं. तथा सबेरे उठके माता, पिता, पितामह, बडा नाइ प्रमुखकों नमस्कार करे, तो तीर्थयात्रा समान फल है. इस वास्ते दिन दिन प्रत्यें करणी चाहियें. तथा जिसने वृद्धोंकी सेवा नहीं करी है, उसकों धर्मकी प्राप्ति नहीं होती है, वृद्ध उसकों कहते हैं कि जो शीलमें, संतोषमें, तथा ज्ञान, ध्यानादिकमें बडे होवे, तिनकी सेवा अवश्य करनी चाहियें. तथा जिसने राजाकी सेवा नहीं करी है, अरु जिसने उत्पन्न होते हुए अपने शत्रुकों बंद नहीं करा, तिस पुरुषसें धर्म, अर्थ, अरु सुख दूर हैं.

श्रावककों सवेरे उठ करकें चौदह नियम धारण करणे चाहियें, तिनका स्वरूप उपर लिख आये हैं. तथा विवेकी पुरुष प्रथम सम्यक्त्व पूर्वक द्वादश व्रत, विधि पूर्वक गुरुके मुखसें धारण करे. अरु विरति जो पलती है, सो अन्याससें पलती है, इस वास्ते धर्मका अन्यास करनां चाहियें. विना अन्यासके कोइ क्रियानी अछी तरे नहीं करी जाती है, ध्यान मौनादि सर्व अन्यास करनेसें दुःसाध्य नहीं. जो जीव, इस जन्ममें अछा वा बूरा जैसा अन्यास करता है, सोइ प्रायः अगले जन्ममें पाता है, तथा पंचमी, अष्टमी, चतुर्दश्यादिकीके दिनमें तपादि नियम जो जो धर्मी पुरुषने अंगीकार किया है, उसमें जो तिथ्यंतरकी न्रांत्यादि करकें सचित्त जलादि पान, तंबोल नक्षण, कितनाक नोजननी कर लीया है, पीछेसें ज्ञान हूआ कि आज तो तपका दिन था? तब जो कुछ मुखमें होवे, उनकों राखादिकमें गेर देवे, प्राशुक पाणीसें मुखशुद्धि कर तप करेकी तरें रहे, तो नियम नंग नहीं होता है, अरु जे कर संपूर्ण नोजन करा पीछें जान पडे कि आज तपका दिन है, तब अगले दिन दंमके निमित्त सो तप करे. समाप्ति हूआं उसके उपर पोरिसी एकाशनादि तप अधिक करे, अरु जे कर तपका दिन जान कर एक दाणानी खावे, तो व्रतनंग हो जाता है, अरु जो व्रतका नंग जान करकें करनां है, सो नरकादिकका हेतु है, तथा जे कर तप करे पीछें गाढा मांदा हो जावे, अथवा नूतादि दोषसें परवश हो जावे, अथवा सर्प्पादिक काटे, ऐसी असमाधिमें तप करने समर्थ न होवे, तोनी चार आगार उच्चारण करनेसें व्रतनंग नहीं होता है, ऐसें सर्व नियमोंमें जान लेनां ॥ उक्तं च ॥ वयनंगे गुरुदो

सो, थोवस्सवि पालणा गुणकारि ॥ गुरु लाघवं च नेयं, धम्ममि अ आ गारा ॥ १ ॥ अस्यार्थः– व्रतभंग करनेसें महा दूषण होता है, अरु जो पालन करे, तो थोडा व्रतभी गुणकारी है, इस वास्ते गुरु लघु जानके धर्ममें आगार भगवान्नें कहे हैं.

तथा नियम ऐसें ग्रहण करणां, सो कहते हैं. प्रथम तो मिथ्यात्व त्यागणे योग्य हैं, तिस पीछें नित्य यथाशक्ति एक, दो, तीन वार जिन पूजा, जिनदर्शन, संपूर्ण देववंदन, चैत्यवंदन करे, ऐसेही गुरुका योग मिले दीर्घ, लघु वंदन करे, जेकर गुरु हाजर न होवे, तब धर्माचार्यका नाम लेकें वंदना करे, तथा नित्य वर्षा ऋतुमें (चौमासेमें) पांच पर्वके दिन अष्ट प्रकारी पूजा करे, जहां लग जीवे, तहां लग नवा अन्न, नवा फल, पक्कान्नादिक देवकों चढाये विना खावे नहीं, नित्य नैवेद्य, सो पारी, बदामादि देवके आगें चढावे, तथा तीन चौमासें संवत्सरी दीवा ली प्रमुखमें चावलोंके अष्ट मंगल भरकें ढोवे. नित्य अथवा पर्वके दिन तथा वर्षमें खादिम, स्वादिम, सर्व वस्तु देव गुरुकों दे कर भोजन करे, प्रतिमास, प्रतिवर्ष, महाध्वजादि उत्सव आडंबर करकें चढावे, स्नात्र महोत्सव, अष्टोत्तरी पूजा, रात्रिजागरण करे, नित्य चौमासे आदिकमें कितनीक वार जिनमंदिर, धर्मशाला, प्रमार्जन करे, देहरा समरावे, पौ षधशाला लींपे, प्रतिवर्ष प्रतिमास जिनमंदिरमें अंगलूहनां तथा दीपकके वास्ते पूणी देवे, दीवे वास्ते तेल देवे, चंदन खंभादि मंदिरमें देवे, पोष धशालामें मुखवस्त्रिका, जपमाला पूंछणा, चरवला, कितनेक वस्त्र, सूत, कंबली, ऊनादि देवे, वर्षमें श्रावकोंके बैठने वास्ते कितनेक पाट, चौकी प्रमुख देवे, जेकर निर्धन होवे, तो भी वर्ष दिन पीछें सूत मोरा अट्टी प्रमुख दे कर संघ पूजा करे, कितनेक साधर्मीयोंकों शक्ति अनुसार भोजन देकें, साधर्मीवात्सल्यादि करे, दररोज कितनेक कायोत्सर्ग करे, स्वा ध्याय करे. नित्य जघन्य नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे, रात्रिमें दिवस चरम प्रत्याख्यान करे, दोनों वखत प्रतिक्रमण करे, यह करणी प्रथम कर लेवे, तो पीछेंसें बारां व्रत स्वीकार करे, तिन व्रतोंमें सातमे व्रतमें सचित्त, अचित्त, अरु मिश्र वस्तुका स्वरूप अछी तरें जाननां चाहियें.

जैसें प्रायः सर्व धान्य, अन्न, अरु धनीया, जीरा, अजवयन, सौंफ,

सोआ, राइ, खसखस प्रमुख सर्व कण, सर्व पत्र, सर्व हरे फल, तथा लूण, खारी, खारक, अर्थात् छुहारे, रक्त (लाल) रंगका सिंधालूण, खाण का सौंचल लूण, खारा, मट्टी, खरी, हिरमची, हरे दांतण, इत्यादि. ये सर्व व्यवहारसें सचित्त सजीव हैं. तथा पाणीमें निंजोये चणे, गेहूं, आदि अन्न, तथा चणे, मूंग, उडद, तूअर प्रमुखकी दाल, जिसमें नक्कू रह गया होवे, ये सर्व मिश्र है, तथा पहिलां लूण लगा करकें अग्निकी बाष्पादि दीया विना तप्त वालु (रेतके) विना गेरे चणे, गेहूं, जूवारादि नूंजे, तथा खारादि दीयां विन मसले हूये तिल, होलां, कंबियां, सिट्टे, पहूंक, ईषत्, सेकी फली, मिरच, राइ, हिंग प्रमुख करकें चिर्नटादि फल, वघारे, तथा जिसके अंदर बीज सचित्त है, ऐसे पक्के हूये सर्व फल, यह सब मिश्र हैं. तथा तिलवट, तिलकूट, जिस दिन करे उस दिन मिश्र है, अरु जेकर तिलोंमें अन्न रोटी प्रमुख गेरकें कूटे, तो एक मुहूर्त्त पीछें अचित्त होवे, तथा दक्षिण मालवादि देशोंमें बहुत गुड प्रक्षेप करनेसें उसी दिन अचित्त हो जाते है, तथा वृक्षसें तत्कालका उखडया गूंद, लाख, छिल्लक, तत्कालका फोडया नालियर, तथा निंबू, दाडिम, अनार, आंब, नींब, इख, इनका तत्कालका काढया रस, तथा तत्कालका काढया तिलादिका तेल, तत्कालका नांग्या हूया बीज, तथा काटे हूये नलेर, सिंघाडे, सोपारी आदि, तथा बीज रहित कीया पक्क फल खरबूजादि, गाढा मर्दन करकें कण काढया जीरादि. ये सर्व अंतर्मुहूर्त्त लग मिश्र हैं. पीछे प्राशुकका व्यवहार है, तथा औरभी प्रबल अग्निके योगविना प्राशुक करे हूये अंतर्मुहूर्त्त तांइ मिश्र है, पीछें प्राशुकका व्यवहार है, तथा अप्राशुक पाणी, कच्चा फल, कच्चा अन्नकों जेकर बहुत मर्दनभी करे है, तोभी लवण अग्न्यादिक प्रबल शस्त्र विना प्राशुक नही होते हैं. क्योंकि श्रीपंचमांग भगवतीसूत्रके उन्नीसमे शतकके तीसरे उद्देशेमें लिखा है, कि:— वज्रमयी शिला, वज्रमयी लोढा, आमले प्रमाण पृथ्वीकाय लेकें एकवीश वार पीसे, तब कितनेक पृथ्वीके जीवोंकों लोटेका स्पर्शभी नही हूआ है, ऐसी उनजीवोंकी सूक्ष्म काया है, तथा सौ योजनसें उपरांत आये हूये हरडां, खारक, किसमिस, लाल द्राक्षा, मेवा, खर्जूर, काली मिरची, पीपर, जायफल, बदाम, अखोड, नेवजा, अरगोजा, पिस्ता, सीतल, चीनी, स्फटिक समान उज्ज्वल सिंधा

लूण, तक्की नदीमें पकाया लूण, बनावटका खार, कुंजारकी कमाइ हुइ मट्टी, एलायची, लवंग, जावंत्री, सूकी मोथ, कोकणदेश प्रमुखके केले, कदलीफल, उवाले हूये संगाडे, सोपारी, इन सर्वका प्राशूक व्यवहार है, साधुजी कारण पडे ले लेवे. यह बात कल्पजाष्यमेंजी लिखी है. "जोयण सयं तु गंतु, अणाहारे नंम संकंति" इत्यादि. इनमेंसूं हरड, पीपल प्रमुख तो आचीर्ण है, इस वास्ते लेते हैं, अरु खजूर, डाक्षा प्रमुख अनाचीर्ण है, तथा उत्पलकमल, पद्म कमल, धूपमें रक्के, एक प्रहरके अभ्यंतरही अचित्त हो जाते हैं. तथा मोगरेके फूल, जुहिके फूल, यह धूपमें बहुत चिरजी पडे रहे, तोजी अचित्त नहीं होते हैं. तथा मगदंतिना अर्थात् मोगरेके फूल पाणीमें गेरे रहें तो एक प्रहरके अंदरही अचित्त होजाते हैं, तथा उत्पल, नीलकमल अरु पद्मकमल, ये दोनो पाणीमें गेर रखनेसें बहुत कालमेंजी अचित्त नहीं होते हैं. "शीतयोनिकत्वात्" तथा पत्रोंका फूलोंका जिनफलोमें अजीतक गुठली बंध नहीं हुइ, तिनका तथा वथुआ प्रमुख हरित वनस्पतिका, इन सबनका वृंत, (मंमी) कुमलाय जावे, तब जीव रहित हूये जानने. यह कथनश्रीकल्पजाष्य वृत्तिमें लिखा है.

तथा श्रीपंचमांगके छठे शतकके पांचमे उद्देशेमें सचित्ताचित्त वस्तुका स्वरूप ऐसा लिखा है, शालि, व्रिहि, गेहूं, जव, जवजव, ये पांच धान्यकी जाति कोठारमें तथा ठेके पालेमें तथा मंचा. माला, कोठारविशेषोंमें मुख ढांकके रक्के, लीप्या होवे, तथा चारो तर्फसें लीप्या होवे, उपर कोइ और ढकणा दीया होवे, मुद्रित लांछित करके रक्के, तो कितने काल तांइ जीवयोनि रहे? ऐसा प्रश्न पूछनेसें जगवान् कहते हैं कि हे गौतम! जघन्य तो अंतर्मुहूर्त रहे, अरु उत्कृष्ट तो तीन वर्ष रहे, फेर अचित्त हो जावे. तथा मटर, मसूर, तिल, मूंग, उडद, वाल, कुलथी, चवला, तूयर, गोल चणे, इत्यादि धान्य सर्व उपर वत् जानना. नवरं, उत्कृष्टसें पांच वर्ष उपरांत अचित्त होते हैं, तथा अलसी, कुसुंजेकी करड, कांडु, कंगुनी, बरटी, राल, कोडुसक, सण, सरसों, मूलीके बीज, इत्यादि धान्यजी उपरवत्. नवरं, उत्कृष्टसें सात वर्ष उपरांत अचित्त हो जाते हैं. तथा कप्पासके बिनौले, उत्कृष्ट तीन वर्षसें उपरांत अचित्त जीव रहित हो जाते हैं. यहजी कल्पनाजाष्यवृत्तिमें है. तथा बिना छाण्या आटा (चून) श्रावण, जा

ड्वाके महिनेमें पांच दिन तक मिश्र रहता है, पीछें अचित्त होता है, अ सोज, कार्त्तिक मासमें चार दिन तक मिश्र रहता है, पीछें अचित्त हो जाता है. तथा मगसिर, पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, पीछें अचित्त होता है, तथा माघ, फागून मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है. तथा चैत्र, वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, तथा ज्येष्ठ आषाढमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, उपरांत अचित्त हो जावे, जे कर तत्काल छान लेवे, तब अंतर्मुहूर्त्त लग मिश्र रहे, पीछें अचित्त होवे.

शिष्य प्रश्न करता है, कि पीस्या हूआ आटा कितने दिनका अचित्त जोगी कों तथा श्रावककों खानां चाहियें ?

उत्तरः– सिद्धांतमें हमने आटेकी मर्यादाका नियम नहीं देखा है. परंतु बुद्धिमान् नवा, जीर्ण अन्न, तथा सरस नीरस क्षेत्र, तथा वर्षा, शीत, उष्णा दि ऋतु, तिनमें तिस आटेका पंदरा दिन मासादि कालमें वर्ण, गंध, रस स्पर्शादि बिगडा देखे, तथा सुरसली प्रमुख जीव पडा देखे, तब न खावे, जे कर खावे, तो जीवहिंसा अरु रोगोत्पत्तिका कारण है.

तथा मिठाइकी मर्यादा, अरु विदलका निषेध, उपर सातमे व्रतमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां. तथा दहीमें सोलां प्रहर उपरांत जीव उत्पन्न होते हैं, तथा विवेकी जीवकों वैंगन, टींबरु, जामन, बिल्व, पीलूं, पक्क कर्मदा, पक्का गूंदा, लसूडा पेंचु, मधुक, (महुवा) मोर, वालोल, बडे बोर, झाडीके बोर, कच्चा कोठफल, खसखस, तिल, इत्यादि न खाने चाहियें, इनमें त्रस जीव होते हैं. तथा जो फल रक्त (लालरंग) देखनेमें बूरा लगे, पक्क, गोल, कंकोडा, फणस, कटेल प्रमुखभी बुरी भावनाके हेतु होनेसें, न खाने चाहियें. तथा जो फल जिस देशमें खानां विरुद्ध होवे, जैसें कडूवा तूंबा, कूष्मांड अर्थात् कोहला हलुवा (कद्दु) सोभी न खानां चाहियें, अरु अभक्ष्य, अनंतकाय, कंदमूल, परघरके अचित्त करे, रांधे हूयेभी न खाने चाहियें. क्योंकि एक तो निःशूकता अरु दूसरी रस लंपटता तथा वृद्ध्यादि दोषका प्रसंग होता है. इसी वास्ते न खानां, तथा उकाला हूआ सेलरा, रांध्या हूआ आद्रादि कंद, सूरण, वैंगनादि, यद्यपि अचित्त हैं, तोभी श्रावक, प्रसंग दूषण त्यागने वास्ते न खावे, तथा मूली तो पंचांगही खाने योग्य नहीं. निषिद्धत्वात्, तथा

मुंग, हलद, नाम अरु स्वाद भेद होनेसें अजन्हय नहीं है. तथा उष्ण जल, तीन उबाले आ जावें, तब अचित्त होता है, यह क थन पिंडनिर्युक्तिमें है, चावलोंके धोवणका पाणी जब नितरके निर्मल हो जावे, तब अचित्त होता है, तथा उष्णजलकी मर्यादा प्रवचनसारो द्धारादि ग्रंथोंमें ऐसी लिखी है, सो कहते हैं. त्रिदंडोत्कृत उष्ण जल, उ ष्णकालके चारों मासमें पांच प्रहर अचित्त रहता है, यह चुल्हेसें उतारे पीछेकी मर्यादा है. तथा वर्षाके चारों मासमें तीन प्रहर अचित्त अरु शीत कालके चारों मासमें चार प्रहर अचित्त रहता है, पीछे सचित्त होता है, जे कर ग्लान, बाल, वृद्धादि साधुके वास्ते मर्यादा उपरांत र खनां होवे, तब क्षारादि वस्तुका प्रक्षेप करकें रखनां, फेर सचित्त नहीं हो ता है. प्रवचनसारोद्धारके(१३६)में द्वारमें यह कथन है तथा कोकडु मोठ, मूंग अरु हरडादिककी मींजी (गिटक) यह यद्यपि अचेतन है, तोभी यो नि रखने वास्ते तथा निःशूकतादिके परिहार वास्ते दांतोंसें तोडनां (भांगनां) न चाहियें. इत्यादि सचित्त वस्तुका स्वरूप जानके सातमा व्रत अं गीकार करनां चाहियें..

श्रावककों प्रथम तो निरवद्य (दूषण रहित) आहार खानां चाहियें. ऐसें न कर सके तो सर्व सचित्त खानेका त्याग करे, ऐसेंभी न कर सके तब बावीश अजक्ष्य अरु बत्तीस अनंतकाय तो अवश्यमेव त्यागने चा हियें, तथा चौदह नियम धारने चाहियें. ऐसें सूता उठके यथाशक्ति नियम ग्रहण करे, पीछे यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे, नमस्कार सहित पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान जो है, सो जेकर सूर्य उगनेसें पहिलां उच्चारण करियें, तो शुद्ध है, अन्यथा शुद्ध नहीं. अरु शेष प्रत्याख्यान सूर्योदयसें पीछेभी हो सके हैं, यह तथा नमस्कार सहित जेकर सूर्योदयसें पहिलां उच्चार करा हूआ होवे, तब तिसके पूर्व हूआं तिसके वीचही पौरुषी साढ पोरु ष्यादि काल प्रत्याख्यान हो सक्ता है, जे कर नमस्कार सहित सूर्योदयसें पहिलां उच्चारन न करियें, तब तो कोइभी काल प्रत्याख्यान करनां शुद्ध नहीं, अरु जे कर प्रथम नमस्कारादि प्रत्याख्यान मुष्टि सहितादि करे, तब सर्वकाल प्रत्याख्यान करे, तो शुद्ध है.

तथा रात्रिमें चौविहार करे अरु दिनमें एकासना करे, पीछे ग्रंथि स

हित प्रत्याख्यान करें, तब तिसकों प्रतिमास एगुन तीस उपवासका फल होता है, दो वार जोजन उक्त रीतिसें करे, तो अठावीस उपवासका फल होता है, क्योंकि दो घडीका काल जोजन करतां लगता है, शेष काल तपमें व्यतीत हूआ, यह कथन पद्मचरित्रमें है, प्रत्याख्यान उप योग पूर्वक पूरा हो जावे, तो पारे.

अरु चार प्रकारके आहारका विजाग ऐसें है, एक तो अन्न, पकान्न, मंमक, सत्तूआदि जो क्षुधा दूर करनेकूं समर्थ होवे. सो प्रथम अशन नामक आहार है. दूसरा गउका पाणी, तथा उष्ण जलादि, यह सर्व पानक नामक आहार है. तीसरा फल. फूल, इस्कुरस, पहुंक, सूखडी, आदिक यह सर्व खादिम नामक आहार है. चौथा सूंठ. हरडे, पिप्पली. काली मिर च, जीरा, अजमक, जायफल, जावंत्री. असेलक, कन्था, खयरवडी, ज्येष्ठी मधु, तज, तमालपत्र, एलायची. कौठ. विडंग, बिडलवण. अजमोद, कु लिंजण, पिप्पलीमूल, चीणकबाब, कचूर, मुस्ता, कंटासेलिउं, कर्पूर, सं चल, हरड, बहेडा. कुंठजउं, बंबूल, धव. खदिर, खेजकी गल, पान, सोपारी, हिंगुलाष्टक, हिंगु. त्रेवीसउं. पंचकूल. पुष्करमूल, जवासामूल, बावची, तुलसी. कपूरिकंदादिक, जीरा. यह सर्व जाष्य अरु प्रवचनसारो द्धारादिक ग्रंथोंके लेखसें स्वादिम नामक आहार है, अरु कल्पवृत्तिमें उनकूं खादिम लिखा है. कोइक अजवयनकोंजी खादिम कहते हैं. यह मतांतर है, यह सर्व स्वादिम नामक आहार है, तथा एलायची कर्पूरादि वासित जल द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें पीनां कल्पता है, तथा वेशण, सौंफ, सोय, कोठवडी, आमलागंठ, आंबकी गुटली, निंबूके पत्र प्रमुख स्वादि म होनेसें द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते हैं. अरु त्रिविध आहार प्रत्याख्यानमें तो जलही पीनां कल्पता है, तिसमेंजी फूंकारा हूआ पाणी, साकर, कर्पूर, एलायची, कन्था, खदिर, चूर्णक, सेलक, पाड लादि वासित जल, जे कर नितार अरु गनके लेवे तो कल्पे, अन्यथा नहीं.

तथा शास्त्रोंमें मधु, गुड, साकर, खंमादिजी स्वादिम कहे हैं. अरु द्राक्षा, शर्करादि, जल, तक्र, गलादिकों पानक कहे हैं. तोजी द्विविध आ हार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते हैं ॥ उक्तं च नागपुरीय गच्छकी करी हूइ प्र त्याख्यानजाष्यमें ॥ दक्खा पाणाईयं, पाणं तह साइमं गुडाईयं ॥ पढियं

सुयंमि तहवि हु, विभीजणगंति नायरिश्चं ॥ १ ॥ स्त्रीके साथ जोग करनें सें चैविहार जंग नहीं होता है, परंतु बालकके तथा स्त्रीके होठ मुखमें ले कर चर्वण करे, तो जंग होवे, अरु द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें यह जी करे तो जंग नहीं होता, प्रत्याख्यान जो है सो कवल आहारका है, परंतु रोम आहारका नहीं है. इस वास्ते लेपादि करनेंसें जंग नहीं.

तथा इतनी वस्तु किसी आहारमेंजी नहीं है उसका नाम लिखते हैं. पंचांग नींब, गोमूत्र, गलोय, कडु, चिरायता, अतिविष, कुडेकी छाल, चीड, चंदन, राख, हरिद्रा, रोहणी, उपलोट, वज, त्रिफला, बांबूलकी छिलक, धमासा, नाहि, आसंध, रींगणी, एलुवा, गुगल, हरडां, वाल, कपास की जड, जाड, वैरी, कंथेरी, करीर, इनकी जड, पुंआड, वोहथोरी, आछि मंजीठ, वोल, वीत्रकाष्ट, कूंआर, चित्रक, कुंदरु प्रमुख जो वस्तु खानेमें अनिष्ट लगे, वो सर्व अनाहार है. यह अनाहार वस्तु रोगादि कष्टमें चौविहार प्रत्याख्यानमेंजी खा लेवे, तो जंग नहीं. इस तरें आहारके जेद जानके प्रत्याख्यान करे.

पीछें मलोत्सर्ग, दंतधावन, जिव्हालेखन, कुरला करनां, यह सर्व देश स्नान करकें पवित्र होवे, यह कहनां अनुवाद रूप है. क्योंकि यह पूर्वोक्त कर्म सवेरे उठके प्रायः सर्व गृहस्थ करते है. इसमें शास्त्रोपदेशकी अपेक्षा नहीं. स्वतःही सिद्ध हैं. परंतु इनकी विधि शास्त्र कहता है, उसमें प्रथम मलोत्सर्ग विधि यह है, कि मलोत्सर्ग मौनसें करनां चाहियें, सो निर्दूषण योग्य स्थानमें करे ॥ यत उक्तं विवेकविलासग्रंथे ॥ मूत्रोत्सर्गं मलोत्सर्गं, मैथुनं स्नानजोजने ॥ संध्यादि कर्म पूजा च, कुर्याज्जपं च मौनवान् ॥ १ ॥ अर्थः— मूतना, दिसा फिरनां, मैथुन करनां, स्नान, जोजन, संध्यादि कर्म, पूजा, जाप, यह सर्व मौनपणे करने, तथा दोनो संध्या वस्त्र पहिरके करे, तथा दिनमें उत्तरके सन्मुख मुख करकें, अरु रात्रिकों दक्षिणदिशि सन्मुख मुख करकें लघु शंका उच्चार करे, तथा सर्व नक्षत्रोंका तेज सूर्य करकें जब भ्रष्ट हो जावे, जहां तक सूर्यका आधा मांमला उगे, तहां तक सवेरेकी संध्या करणी, तथा सूर्य आधा अस्त होवे, तद पीछें दो तीन नक्षत्र जहां तक नजर न पडे, तहां तक सायंकाल कहते हैं, तथा राखका ढेर, गोबरका ढेर, गौके बैठनेंके स्थानमें, सर्पकी बंबी ऊपर तथा

जहां बहुत लोग पुरीषोत्सर्ग करते होवें, तथा उत्तम वृक्षके हेठ, रस्तेके वृक्ष हेठ, तथा रस्तेमें, तथा सूर्यके सन्मुख, तथा पाणीकी जगामें, तथा मसाणोंमें, तथा नदीके कांठे उपर, तथा जिस जगोकों स्त्री पूजती होवे, इत्यादि स्थानोमें मलोत्सर्ग न करे. परंतु जहां बैठनेंसें कोइ मार पीट न करे, पकडके न ले जावे, धर्मकी निंदा न होवे, तथा जहां बैठनेंसें गिरे, फिसले नहीं, पोली भूमि न होवे, मासादि न होवे, त्रस जीव बीज न होवे, इत्यादि अचितस्थानमें मलोत्सर्ग करे, गामके तथा किसीके घरके समीप मलोत्सर्ग न करे, तथा जिस तर्फसें पवन आती हो वे, तथा गामकी सूर्यकी पूर्वदिशिके तरफ पीठ करकें मलोत्सर्ग न करे. दिसा अरु मूत्रका वेग रोकनां नहीं, क्योंकि मूत्रका वेग रोकनेंसें नेत्रोंमें हानी होती है, तथा दिसाका वेग रोकनेंसें काल हो जाता है, तथा वमन रोकनेंसें कुष्ट रोग हो जाता है, जेकर ये तीनो बात न हो वेगी तो रोग तो जरुर हो जावेगा, श्लेष्मादि करकें ऊपर धूलि गेर देवें, क्योंकि श्रीप्रज्ञापनोपांगके प्रथम पदमें लिखा है, कि चौदह जगें संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं, सो चौदह स्थानक कहते हैं, १ पुरीषमें, २ मूत्रमें, ३ मुखके थूकमें, ४ नाकके मैलमें, ५ वमनमें, ६ पित्तोंमें, ७ वीर्यमें, ८ वीर्यरुधिर दोनोंमें, ९ राधमें, १० वीर्यका पुद्गल अलग निकल पडे उसमें, ११ जीव रहित कलेवरमें, १२ स्त्री पुरुषके संयोगमें, १३ नगरीकी मोरीमें, १४ सर्व अशुचि स्थानमें, कानकी मैल, आंखकी गीडमें, काखकी मैल प्रमुखमें, यह सर्व चौदह बोल मनुष्यके संसर्गवाले ग्रहण करणे, अरु जब शरीरसें अलग होवे, तब जीव उत्पन्न होते हैं.

तथा दातनजी निरवद्य स्थानमें करे, दातण अचित्त जाने हूए वृक्षकी कोमल करे, तथा दांतोंके दृढ करने वास्ते तर्जनी अंगुली करकें दांतोंकी बीड घसे, जो दांतोंकी मैल पडे, उसके ऊपर धूलि गेर देवे, तथा दातणजी कैसी करे जो दातण सूधी होवे, बीचमें गांठ न होवे, कूर्च अच्छा होवे, आगेसें पतली होवे, चेंटी अंगुली समान मोटी होवे, सुभूमिको उत्पन्न होइ होवे, ऐसी दातण कनिष्ठा अनामिकाके वीच ले कर करे, पहिलां दाहिनी दाढा घसे, फेर वामी घसे, उपयोगवंत स्वस्थ, दांत अरु पीढके मांसकों पीडा न देवे, उत्तर तथा पूर्व सन्मुख करकें निश्चलासन,

मौन युक्त दातण करे, डुर्गंध, पोली, सूकी, खट्टी, खारी, वस्तु दांतकों न घसे, तथा, व्यतीपात, रविवार, संक्रांति दिनें ग्रहणं जगेमें, नवमी, अष्ट मी, पडवा, चौदश; पूर्णमासी, अमावस, इन दिनोंमें दातण न करे, जे कर दातण न मिले, तब मुखशुद्धिके वास्ते बारां कुरले करे, अरु जिव्हा उल्लेखन तो सदा करे. दातणकी फांकसें जिव्हाका मैल हलवे हलवे सर्व उतारके शुचिस्थानमें दातण धो करकें आपणे मुखके सामने गेरे, तथा खांसी, श्वास, तप, अजीर्ण, शोक, तृषावाला, मुख पकेवाला, म स्तक, नेत्र, हृदय, कान, इतने रोग वाला, दातण न करे.

मस्तकके केशोंकों सदा समारे, जिस्में जूआं न पडे, जे कर तिलक कर कें आरीसा देखे, उसमें मुख नहीं दीखे. सिर नहिं दीखे, तो पांच दिनके अंदर उ सका मरना जाननां. अरु जिसने उपवास पौरुष्यादिक प्रत्याख्यान करा होवे, वो दांत धोया विनाभी शुद्ध है, क्योंकि तपका बडा फल है, लौकिक शास्त्रों मेंभी उपवासादि करे, तो दातण विनाही देवपूजा करते हैं, इस वास्ते लौकिक शास्त्रोंमेंभी उपवासादिमें दातण करनेका निषेध है ॥ यदुक्तं विष्णुभक्तिचंद्रोदयग्रंथे ॥ प्रतिपदार्शषष्ठीषु, मध्यांते नवमीतिथौ ॥ संक्रांति दिवसे प्राप्ते, न कुर्याद्दंतधावनं ॥ १ ॥ उपवासे तथा श्राद्धे, न कुर्यात् दं तधावनं ॥ दंतानां काष्ठसंयोगो, हंति सप्त कुलानि वै ॥ २ इत्यादि.

तथा जब स्नान करे, तब उत्तिंग पनक कुंथुआदि जीवोंसें रहित भू मिमें करे, सो भूमि उंची, नीची, पोली, न होवे, प्रथम तो उष्ण प्राशू क जलसें स्नान करे. जेकर उष्ण जल न मिले, तब वस्त्रसें छान करकें प्रमाण संयुक्त शीतल जलसें स्नान करे, तथा व्यवहार शास्त्रमें असा लिखा है, कि:— नग्न हो कर तथा रोगी तथा परदेशसें आया हूआ भोज न करे पीछे आभूषण पहेरकें किसीकों विदा करकें पीछे आ करकें मंग ल कार्य करकें स्नान न करे, तथा अनजाने पानीमें, डुष्प्रवेश जलमें, मैले जलमें, वृक्षों करकें आछादित जलमें, शेवल करकें आछादित जल में, स्नान न करे, तथा शीतल जलसें स्नान करकें उष्ण भोजन न खानां चाहियें. अरु उष्ण जलसें स्नान करकें शीतल भोजन न खानां चा हियें. तेलमर्दन सदाही करनां चाहियेंतथा स्नान कखां पीछें जिसकी कांति फोकी दीसे तथा जिसके दांत परस्पर घसे, अरु शरीरसें मृतक कैसी

गंध आवे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान कर्‍या पीछें जिसके हृदयमें, तथा दोनो पगोंमें तत्काल पाणी शोष जावे, तब है दिनोके वीच उसका मरन जाननां. मैथुन सेवकें तथा वमन करकें इन दोनोमें कछुक देर पीछें स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसें मस्तक मूं मवा करकें, छाने हूये शुद्ध जलसें स्नान करे, तथा तेलमर्दन करी स्नान कर्‍यां पीछें उज्ज्वल वस्त्र आजरण पहिरनां. पिछें प्रयाण करनेके दिनमें, सं ग्राममें जातां हूआ, विद्यामंत्र साधतां, रातकों, सांझकों, पर्वदिनमें, नवमे दिनमें स्नान न करे. मस्तक मुंमनजी न करावे. तथा पक्षमें एक वार दाढी मस्तकके केश तथा नख दूर करावे. परंतु अपणे दांतों करी तथा अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेमें शरीर पवित्र चैतन्यसुख कर जाव शुद्धिका हेतु हो जाता है ॥ उक्तं च द्वितीये अष्टकप्रकरणे ॥ श्लोक ॥ जलेन देहदेशस्य, क्षणं यच्छुद्धिकारणं प्रायोऽन्यानुपरोधेन, इ व्यस्नानं तदुच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थः– देहदेश त्वचामात्रहीकी क्षणमात्र शुद्धि है, परंतु प्रजूत काल नहीं, शुद्धि जो है, सोजी प्रायें है, कुछ एकांत नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालेकों क्षण मात्रजी शुद्धि नहीं हो सक्ती है, धोने योग्य मैलसें अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंत र्गत जो है, सोजी स्नानसें दूर नहीं होता है, अथवा पाणी विना और जीवोंकी हिंसा न करनेसें जो स्नान है, सो बाह्य स्नान है, जो पुरु ष स्नान करकें जगवानकी तथा साधुकी पूजा करे, तिसका स्नानजी अछा है, क्योंकि जावशुद्धिका निमित्त है, स्नान करनेमें अप्कायके जीवों की विराधनाजी है, तोजी सम्यग्दर्शनकी शुद्धि रूप गुण है ॥ यदुक्तं ॥ पूआए कायवहो, पडिकुठो सोउ किंतु जिणपूआ ॥ सम्मत्त सुद्धिहेउ, त्ति जावणीयाउ निरवज्जा ॥ १ ॥ अर्थः– कोइ कहते है कि पूजा करनेसें जी ववध होता है, अरु जीववध तो शास्त्रमें निषेध करा है, इस वास्ते पूजा न करणी चाहियें. इसका उत्तर कहतें है, कि पूजा जो जिनराज की है, सो सम्यक्त्व निर्मल करने वाली है, इस वास्ते जिनपूजा निरव द्य है. ऐसें देवपूजाके वास्ते गृहस्थकों स्नान करनां कहा है, तथा श रीरके चैतन्य सुखके वास्तेजी स्नान है, परंतु जो स्नान करनेसें पुण्य मा नते हैं, सो बात मिथ्या है. क्योंकि जो कोइ तीर्थमेंजी जान कर स्नान

करता है, तिसकोंभी शरीर शुद्धिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है, यह बात, अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंभी कही है ॥ उक्तं च ॥ स्कंदपुराणे काशीखंडे षष्ठाध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोभारसहस्रेण, जलकुंभशतेन च ॥ न शुध्यंते दुराचाराः, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायंते च म्रियंते च, जलेष्वेव जलौकसः ॥ नच गछंति ते स्वर्ग, मविशुद्धमनोमलाः ॥ २ ॥ चित्तं समाधिभिः शुद्धं, वदनं सत्यभाषणैः ॥ ब्रह्मचर्यादिभिः कायः, शुद्धोगंगाविनाप्यसौ ॥ ३ चित्तं रागादिभिः क्लिष्ट, मलीकवचनैर्मुखं ॥ जीवहिंसादिभिः कायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥ परदारापरद्रव्य, परद्रोहपराङ्मुखः ॥ गंगाप्याह कदागत्य, मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥ जलसें स्नान करनेसें असंख्य जीवोंकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नहीं है, जलमें जीवोंका होना मीमांसा शास्त्रसेंभी सिद्ध होता है. यदुक्तं उत्तरमीमांसायां ॥ श्लोक ॥ लूतास्यतंतुगलिते, ये बिंदौ संति जंतवः ॥ सूक्ष्मा भ्रमराणास्ते, नैव यांति त्रिविष्टपं ॥ १ इत्यादि.

किसीके स्नान करेभी जे कर गुमडादिमेंसें राधादि श्रवे, तदा तिसनै अंगपूजा फूलादिकसें आप नहीं करनी, दूसरोंसें करावे. अरु अग्रपूजा तथा भावपूजा आपभी करे, तो कुछ दोष नहीं, थोडासाभी अपवित्र होवे, तब देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान करके पवित्र मृदु, गंध, काषायिकादि वस्त्र, अंगलूहणां, पोतीयां छोड करकें पवित्र वस्त्रांतर पहिरनेकी युक्तिसें पाणीके भींजे पगोसें धरतीकों अस्पर्शता हूआ पवित्र स्थानमें आ करकें उत्तर सन्मुख मुख करकें अछी तरें मनोहर नवा वस्त्र जो फाटा हूआ तथा सिवाया हूआ न होवे, अरु वर्णमें धवला होवे, ऐसा वस्त्र पहिरे, तथा जिस वस्त्रकों कटिमें पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसें हिला गया होवे, तथा जिस वस्त्रसें मैथुन सेव्या होवे, तिस वस्त्रकों पहिरकें पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिनके भोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कंचुकी विना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसें पुरुषकों दो वस्त्र तथा स्त्रीकों तीन वस्त्र विना पूजा करनी नहीं कल्पे है, देवपूजामें धोती अतिविशिष्ट धवली करनी चाहियें, निशीथचूर्णी तथा श्राद्धदिनकृत्यादि शास्त्रोंमें ऐसाही लिखा है, तथा पूजा षोडशकमें ऐसाभी लिखा है, कि रेशमी आदिक जो सुंदर वस्त्र लाल पीला होवे,

जोजी पूजामें पहिरे तो ठीक है, तथा " एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, इ त्यादि आगमके प्रमाणसें उत्तरासंग अखंड वस्त्रका करे, दो टुकडे सीव्या वस्त्र न कल्पे, तथा रेशमी कपडेसें जोजनादि करे, अरु मनमें समजे कि यह तो सदा पवित्र है. तोजी तिस्सें पूजा न करे. तथा जिस वस्त्रकों प हिरकें पूजा करे, उसकोंजी वारंवार पहिननेंके अनुसार धोवावे, धूप दे कर पवित्र करे, धोती थोडाही काल तक पहननी चाहियें, उस धोतीसें प सीना श्लेष्मादि न दूर करनां चाहियें. क्योंकि उस्सें अपवित्रता हो जाती है, तथा पहिने हूए वस्त्रोंके साथ पूजाके वस्त्र बुहाने (अडाने) नहीं चाहियें, दूसरायोंकी पहनी हूइ धोती पहननी न चाहियें, तथा बाल, वृद्ध, स्त्रीके पहननेंमें आइ होवे, तो विशेष करकें न पहननी चा हियें, तथा जले स्थानसें ज्ञातगुण, सुमनुष्य पासों पवित्र जाजन आछा दनसंयुक्त रस्तेमें लानेकी विधिसंयुक्त पाणी अरु फूल, पूजा वास्ते मंगाव ने चाहियें. अरु फूलादि लाने वालेकों अछी तरें मोल दे कर प्रसन्न कर नां चाहियें. ऐसें मुखकोश बांध के पवित्रस्थानादि युक्तिसें जिसमें कोइ जीव पडा न होवे, ऐसा शोध्या हुवा केशर कर्पूरादिकसें मिश्र, चंदन घसे, शोध्या हूआ सुंदर धूप, प्रदीप, अखंड चावलादि तूत रहित प्रशंसा करनें योग्य ऐसा नैवेद्य फलादि सामग्री मेलकें इस रीतें इव्यसें शुचि करकें अरु जावसें शुचि तो राग, द्वेष, कषाय, ईर्ष्या रहित तथा इस लोक पर लोकके सुखोंकी इछा रहित हो कर अरु कुतूहल चपलादि त्याग करकें एकाग्र चित्ततारूप जावशुद्धि करे ॥ उक्तं च ॥ श्लोक ॥ मनोवाक्कायवस्त्रोर्वी, पूजोपकरणस्थितेः ॥ शुद्धिः सप्तविधा कार्या, श्रीअर्हत्पूजनक्षणे ॥ १ ॥

ऐसें इव्य जाव करकें शुद्ध हो कर जिनघर (देहरेमें) दक्षिणदिशें पुरुष, अरु वामा दिशें स्त्री, यत्न पूर्वक प्रवेश करे, प्रवेशके अवसरमें दक्षिण पग पहिला धरे, पीछे सुगंध वाले मीठे सरस इव्यों करकें पराङ्मुख वामास्वर चलते मौनसें देवपूजा करे. इत्यादि तीन नैषेधिकी करण, तीन प्रदक्षिणा, इत्यादि विधिसें शुचि पाट उपर पद्मासनादि सुखासन पर बैठकें, चंदनका जाजनसें चंदन ले कर दूसरी कटोरीमें तथा हथेलीमें ले कर मस्तकमें तिलक करकें हस्तकंकण, श्रीचंदनचर्चित धूपित, हाथों करी जिन अर्ह तकों पूजकें आगें लिखते हैं जो १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ जावपू

जा, तिनोंसें पूजकें प्रत्याख्यान जो पूर्वे करा था, सो यथाशक्ति देवकी सा क्षीसें उच्चारण करे, तद् पीछें विधिसें बडे पंचायती मंदिरमें जा कर पूजा करे, सो इस विधिसें करे.

यदि राजादि महर्द्धिक होवे, सो तो सर्व ऋद्धि, सर्वदीप्ति, सर्वयुक्ति, सर्वसैन्या, सब उद्यमसें जिनमतकी प्रजावना वास्ते महा आडंबर पूर्वक जिनमंदिरमें पूजा करनेकों जावे, जैसें दशार्णजद्र राजा श्रीमहावीर जग वंतकों वंदना करने गया था तैसें जावे.

अरु जो सामान्य ऋद्धिवाला होवे, सो अजिमान रहित लोकोपहास्य त्यागकें यथायोग्य आडंबर जाइ, मित्र, पुत्रादिकोंसें परिवृत हो कर जावे, ऐसें जिनमंदिरमें जा कर १ पुष्प, तंबोल, सरस, डुर्वादि त्यागे, तथा २ बूरी, पावडी, मुकुट, हाथी प्रमुख सचित्ताचित्त वस्तु शरीरके जोगकी त्यागे, तथा ३ मुकुट वर्जकें शेष आजरणादि अचित्त वस्तु न त्यागे, अरु एक बडे वस्त्रका उत्तरासंग करे. ४ जिनेश्वरकी मूर्त्ति दीखे अंजलि बांधकें म स्तक उपर चढाकें 'नमो जिणाणं' ऐसा कहे, ५ मन एकाग्र करे, इस री तिसें पांच अजिगम संजालकें (सांचकें)नैषेधिकी पूर्वक प्रवेश करे.

जे कर राजा जिनमंदिरमें प्रवेश करे, तब तत्काल राजचिन्ह दूर करे, १ तलवार, २ छत्र, ३ असवारी, ४ मुकुट, ५ चामर. ये पांचो चिन्ह रा जाके त्यागे, अग्रद्वारमें प्रवेश करतां घर व्यापारका निषेध करने वास्ते नैषेधिकी तीन करे, परंतु तीनो निस्सहीकी एक नैषेधिकी गणतीमें कर णी, क्योंकि एकही घर व्यापार एककाही निषेध कीया है. तद् पीछें मूल बिंबकों नमस्कार करकें सर्व कृत्य, कल्याणवांछक पुरुषनें दक्षिणके पासें करणां, इस वास्ते मूलबिंबकों दक्षिणके पासें करता हूआ ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, इन तीनोके आराधनार्थ प्रदक्षिणा तीन देवे, प्रदक्षिणा देता हूआ समवसरणस्थ चाररूप संयुक्त जिनेश्वरजीकों ध्यावे, गंजारेमें पूठें वामा दहिणा दिशिमें जो बिंब होवे, तिनकों वंदे, इसी वास्ते सर्व मंदिर में चारों तर्फ समवसरणके आकारें तीन तर्फ तीन बिंब स्थापे जाते हैं, ऐसें करनेसें जो अरिहंतकी पीठें वसणेमें दोष था, सो दूर हो गया, पीठ किसी पासेंजी न रही, तिस पीछें चैत्यप्रमार्जनादि जो आगें लिखेंगे, सो करे, पीछें सर्व प्रकारकी पूजा सामग्री प्रत्यें तथा देहराके समारनेके कामके

निषेध करने वास्ते दूसरी मुखमंमपादिकमें नैषेधिकी करे, पीछें मूलबिंबकों तीन प्रणाम करकें पूजा करे, नाष्यकारनेंनी ऐसा कहा है, कि निस्सही तीन करकें प्रवेश करी मंमपमें जिनेश्वरके आगें धरती ऊपर स्थापन करकें, हाथ जोडे करे, विधिसें तीन वार प्रणाम करे, तिस पीछें हर्षसें उल्हास हो करकें मुखकोश बांध करकें जिनप्रतिमाका निर्माल्य, फूल प्रमुख मोर पीछी करकें दूर करे, जिनमंदिरका प्रमार्जन आप करे, अथवा औरोंसें करावे, पीछें जिनबिंबकी पूजा विधिसें करे, मुखकोश आठ पुडका करे,जिस्सें नासिका अरु मुखका निःश्वास निरोध होवे,वर्षांतमें निर्माल्यमें कुंथुआदि जीवनी होते हैं इस वास्ते निर्माल्य अरु स्नात्र जल न्यारा न्यारा पवित्र स्थानमें गेरे, गिरावे, ऐसें आशातनानी नहीं होती है. पूजा, कलशजलसें करता हूआ ऐसी नावना ल्यावे, सो लिखते हैं.

हे स्वामिन्! बालपणेमें मेरु शिखर पर सुवर्णकलशें करी इंद्र देवताने स्नान कराया था, सो धन्य थे, जिनोनें तुमारा दर्शन करा था, इत्यादि चिंतवणा करकें पीछें सुयत्नसें वालाकूंचीसें जिनबिंबके अंग ऊपरसें चंदनादि उतारे, पीछें जलसें प्रक्षालन करकें दो अंगलूहणेसें जिनप्रतिमाकों निर्जल करे, पग, जानु, कर, मस्तकें पूजा यथाक्रमसें नव अंगमें श्रीचंदनादि करकें चर्चे, (पूजे) कोई आचार्य कहते हैं, कि पहिला मस्तकमें तिलक करकें पीछें नवांग पूजा करणी, श्रीजिनप्रनसूरिकृत पूजाविधि ग्रंथमें ऐसा लिखा है कि:— सरस सुरनि चंदन करी देवके, दाहिण जानु, दाहिण स्कंध, निलाड, वामा स्कंध, वामा जानु, इस क्रमसें पूजा करे, हृदय प्रमुखमें पूजा करे,तब नव अंगकी पूजा होती है, अंगोंमें पूजा करकें पीछें सरस पांच वर्णके प्रत्यग्र फूलों करकें चंदन सुगंध वास करी पूजे, जे कर पहिलां किसीने बडे मंमाणसें पूजा करी होवे,अरु अपणे पास वैसी सामग्री पूजाकी न होवे, तब पहिली पूजा उतारे नहीं, क्योंकि विशिष्ट पूजा देखनेसें नव्योंकों जो पुण्यानुबंधी पुण्य होता था, तिसकी अंतराय हो जाती है,किंतु तिस वास्ते तिसी पूजाकों शोजनिक करे, यह कथन बृहन्नाष्यमें है.

तथा जो पूजा ऊपर पूजा करणी, सो निर्माल्यके लक्षण न होनेसें निर्माल्य नहीं, जो नोगविनष्ट द्रव्य है, सोइ निर्माल्य गीतार्थोंनें कहा है,आनूषण वारं वार पहराये जाते हैं,परंतु निर्माल्य नहीं होते हैं,नहीं तो गंध,

कषाय वस्त्र, करकें एक सौ आठ जिनप्रतिमाके अंग क्यों कर लूहे? इस वास्ते जिनबिंबारोपित जो वस्तु, शोजा रहित सुगंध रहित दीख पडे, अरु नव्य जीवोंकों प्रमोदका हेतु न होवे, तिसहीकों बहुश्रुत निर्माल्य कहते हैं. यह कथन संघाचारवृत्तिमें लिखा है. चढे हूये चावलादि निर्माल्य नहीं, कोइ आचार्य निर्माल्यजी कहते हैं, तत्त्व केवली जाणे क्यों कर हैं?

चंदन फूलादि पूजा तैसें करणी, जैसें जगवानके नेत्र मुखादि ढके न जावे, अरु बहुत शोजनिक दीखे, जिस्सें देखने वालोंकों प्रमोद पुण्यादिककी वृद्धि होवे.

तथा १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ जावपूजा, यह तीन प्रकारकी पूजा है, तिनमें जो निर्माल्य दूर करनां, प्रमार्जना करनां, अंगप्रक्षालन करनां, वालकूंचीका व्यापारण, पूजना, कुसुमांजलिमोचन, पंचामृतस्नात्र, शुद्धोदकधारा देनी, धूपित स्वछ मृदुगंध कषायकादि वस्त्रसें अंगलूहण करनां, कपूर कुंकुमादि मिश्र गोशीर्ष चंदन विलेपन अंगी रचनी, तथा गोरोचन कस्तूरीसें तिलक करणां, पत्र, वेल, फूल प्रमुखकी रचना करनी, बहु मोल रत्न सुवर्ण मोती रूपें पुष्पादिकें आजरण (अलंकार) पहिरावे, जैसें श्री वस्तुपालने अपने कराये हूये सवालक्ष बिंबोंके तथा श्रीशत्रुंजयजीमें सर्व बिंबोंके रत्न सुवर्णके आजरण कराये थे, तथा दमयंतीने पिछले जवमें अष्टापद पर्वतपर चौवीस अर्हतोंके तिलक कराये होते, क्योंकि प्रतिमाजीकी जितनी उत्कृष्ट सामग्री होवे, उतनेही अधिक नव्य जीवोंके शुज जावोंकी वृद्धि होती हैं. तथा पहरावणी, चंद्रुआदि विचित्र डुकूलादि वस्त्र पहिरावें, तथा १ ग्रंथिम, २ वेष्टिम, ३ पूरिम, ४ संघातिम रूप, चतुर्विध प्रधान अम्लान विधिसें ल्याया हूआ शतपत्र, सहस्रपत्र, जाइ, केतकी, चंपकादि विशेष फूलों करी माला, मुकुट, सेहरा, फूलघरादिककी रचना करे. तथा जिनजीके हाथमें बिजोरा, नालियर, सोपारी, नागवल्ली, मोहोर, रूपइया, लड्डु प्रमुख रखनां. अरु धूपक्षेप, सुगंध, वासप्रक्षेपादि, यह सर्व अंगपूजाकी गिणतीमें है. महाजाष्यमेंजी कहा है ॥ गाथा ॥ न्हवण विलेव आहरण, वत्थ फल गंध धूप पुप्फेहिं ॥ कीरइ जिणंगपूया, तह विही एस नायव्वो ॥ १ ॥ वत्थेण बंधिऊणना,सं अहवा जहा समाहीए ॥ व

ओयवं तु तहा, देहमवि कंडुअणमाई ॥ २ ॥ अन्यत्रापि गाथा ॥ काय कंडुअणं वज्जे, तह खेलसिंगिंचणं ॥ थुइ थुत्तजणणं चेव, पूअंतो जगबंधु णो ॥ १ ॥ देवपूजनके अवसरमें मुख्यवृत्ति तो मौनही करणी चाहियें, जे कर न कर सके तो भी पापहेतु वचन तो सर्वथाही त्यागे, नैषेधिकी कर नेसें गृहादि व्यापारका निषेध करनेसें इस वास्ते पापकी संज्ञाभी वर्जे, मू लबिंबकी विस्तार सहित पूजा करे, पीछें अनुक्रमसें सर्व और बिंबोंकी पूजा करे, द्वारबिंब समवसरण बिंबोंकी पूजाभी मूलबिंबकी पूजा कर्यां पीछें, गंभारासें निकलती वखत करनी चाहियें, ऐसा संभव है, परंतु प्रवे श करतां तो मूलबिंबकीही पूजा करणी, उचित मालुम होती है, संघा चारमें ऐसेही लिखा है, इस वास्ते मूलनायककी पूजा, सर्व बिंबोसें पहि लां और सविशेष करनी चाहियें ॥ उक्तमपि ॥ उचिअत्तं पूआए, विसे सकरणं तु मूलबिंबस्स ॥ जं पडइ तह पढमं, जणस्स दिठी सहमणेणं॥ १॥

शिष्य प्रश्न करता है किः– चंदनादि करके प्रथम एक मूलनायककों पूजीयें अरु दूसरे बिंबोंकी पीछें पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक भाव ठ हरा, सो तो लोकनाथ तीर्थकरमें है नहीं, क्योंकि एकबिंबकी बहुत आद रसें पूजा करणी, अरु दूसरे बिंबोंकी थोडी पूजा करणी, यह बडी भारी आशातना मुझकों मालुम पडती है ?

गुरु उत्तर कहते हैः– अर्हंत प्रतिमाओंमें नायक सेवककी बुद्धि ज्ञा नवंत पुरुषकों नहीं होती है, क्योंकि सर्व प्रतिमाजीके एक सरीखाही परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते हैं, यह व्यवहार मात्र है, जो बिंब पहिलांही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है, इस व्यवहारसें शेष प्रतिमाओंका नायक भाव दूर नहीं होता है.

एक प्रतिमाकों वंदन करनां, पूजा करनी, नैवेद्य चढानां, यह उचित प्रवृत्तिवाले पुरुषकों आशातना नहीं है, जैसें माटीकी प्रतिमाकी पूजा फूलादि रहित उचित है, अरु सुवर्णादिककी प्रतिमाकों स्नान विलेपना दि उचित है, तथा कल्याणक प्रमुखका महोत्सव एकही बिंबका विशेष करके कीया जाता है, परंतु वो महोत्सव दूसरी प्रतिमाओंकी आशातनाका कारण नहीं होता है, जैसें धर्मी पुरुषकों पूजतां और लोकोंकी आशातना नहीं, इस प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करतां जैसें आशातना नहीं होती

है, तैसेंही मूलबिंबकी विशेष पूजा करतां आशातना नहीं होती है. जिनमंदिरमें जिनबिंबकी जो पूजा करते हैं, सो तीर्थंकरोंके वास्ते नहीं करते हैं, किंतु अपणे शुभ भावोंके निमित्त है, जिस निमित्तसें आत्माका उपादान सभर जाता है, अरु दूसरोकों बोधकी प्राप्ति होती है. कोइ जीव तो श्रीजिनमंदिरकों देखकें प्रतिबोध हो जाता है, अरु कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशांतरूप देखकें प्रतिबोध हो जाता है, कोइ पूजाकी महिमा देखकें, अरु कोइ गुरुके उपदेशसें प्रतिबोध हो जाता है. इस वास्ते चैत्य जिनबिंबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहियें. अरु अपणी शक्ति अनुसार मुख्यबिंबकी विशेष अद्भुत शोभा करनी चाहियें.

· तथा घर देहरासर तो अबभी पीतल ताम्र रूपामय करावनेकूं समर्थ है, जदा पीतलादिकका बनानेका सामर्थ्य न होवे, तदा दांतादि मय पीतल सिगरफकी रंगावे, कोरणी विशिष्ट काष्ठादिमय करावे. घरचैत्य तथा चैत्य समुच्चयमें दिनप्रत्यें सर्व जगें प्रमार्जन तैलादिसें काष्ठ चोपडे, जिस्सें घुण न लगे, तथा खडियांसें धवला करे, श्रीतीर्थंकरके पंचकल्याणकादिकका चित्राम करावे, समग्र पूजाके उपकरण समरावे, पडदा, कनात, चंद्रुवादि देवे, ऐसें करे कि, जैसें जिनमंदिरादिककी अधिक अधिक शोभा होवे. घर देहरेके उपर धोती प्रमुख न गेरे, घर देहरेकीभी चौरासी आशातना टाले, पीतल पाषाणादिमय जो प्रतिमा होवे, तिन सर्वकों एक अंगलूहणेसें सर्व बिंबोका पाणी लूहे, पीछें निरंतर दूसरे सुकोमल अंगलूहणेसें वारं वार सर्व अंगो उपर फेरकें पाणीकी भीनास बिलकुल रहने न देवे, ऐसें करनेसें प्रतिमा उज्ज्वल हो जाती है, जहां जहां प्रतिमाके अंगोपांग पर जल रहि जावे, तहां तहां प्रतिमाके श्यामता हो जाती है, इस वास्ते पाणीकी स्निग्धता सर्वथा प्रकारें टाले, केशर बहुत अरु चंदन थोडा, ऐसा विलेपन करनेसें प्रतिमा अधिक अधिक उज्ज्वल हो जाती है.

नव, पंचतीर्थी, चोवीसीका पट्टादिमें स्नात्रजलका जो प्रतिमाजीकों परस्पर स्पर्श होनेसें आशातना होती है? ऐसी आशंका न करणी चाहियें, अशक्य परिहार होनेसें. १ एक अर्हंतकी प्रतिमा होवे, तिसका नाम व्यक्त है. २ एकही पाषाणादिकमें भरत ऐरवत क्षेत्रकी चोवीसी बनवावे, तिसका नाम क्षेत्रप्रतिमा है. ३ ऐसेंही एक सौ सित्तेर प्रतिमा बनावन

ओयरे हैं, ४ फूलकी वृष्टि करतां जो मालाधर देवता है, तिसका रूप पं कर्पोंके ऊपर बनाते हैं, जिनप्रतिमाकों न्हवण करतां पहिलां मालाध रकों पाणी स्पर्शीके पीछें जिनबिंब ऊपर पडता है, सो दोष नहीं है, यह वृद्धोंकी आचरणा है, इसी तरें चौवीसी गट्टे आदिकमेंजी जान लेनां, ग्रं थोंमेंजी ऐसी रीति देखनेमें आती है ॥ वृहद्भाष्येप्युक्तं ॥ जाष्यकारका कहनां यहां लिखते हैं? जिनराजकी ऋद्धि देखने वास्ते कोइ जक्तजन एक प्रतिमा बनवाता है, प्रगटपणे अष्ट प्रातिहार्य देवागमसुशोजित. २ दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी आराधना वास्ते कोइ तीन तीर्थी प्रतिमा बनवा ता है. ३ कोइ जक्त पंचपरमेष्ठिके आराधनार्थ उद्यापनमें पंचतीर्थी प्रति मा जराता है. ४ चौवीस तीर्थंकरोंके कल्याणक तप ऊजमने वास्ते जरत क्षेत्रमें जो ऋषजादि चौवीस तर्थंकर हूए हैं, तिनके बहुमान वास्ते कोइ चौवीसी बनवाता है, कोइ जक्ति करके मनुष्य लोकमें उत्कृष्टे एक काल में एक सौ सित्तेर तीर्थंकर विहरमानकी एक सौ सित्तेर प्रतिमा बनवाता है, तिस वास्ते तीन तीर्थी, पांचतीर्थी, चौवीसी आदिकका बनानां युक्ति युक्त है, यह पूर्वोक्त सर्व अंगपूजा है.

अथाग्रपूजा लिख्यते ॥ रूपेके, सुवर्णके, चावल धवला सरसव प्रमुख अक्षतों करके अष्टमंगल आलेखन करे, जैसें सैनिकराजा रोजकी रोज एक सौ आठ सोनेके यवां करी त्रिकाल जगवान्की प्रतिमा आगें साथीया करता था, अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी आराधनाके वास्ते क्रमसें पट्टादिकमें चावलोंके तीन पूंज करणे, तथा एक जातप्रमुख अशन, दूसरा सकर गुडादि पान, तीसरा पक्वान्न फलादि खादिम, चौथा तंबोलादि स्वा दिम, इनका चढानां, तथा गोशीर्ष चंदनके रस करी पंचांगुली तलेसें मंमी ल आलेखनादि पुष्पप्रकर आरती प्रमुख करणी, यह सर्व अग्रपूजाकी गिणतीमें है ॥ यक्षाष्यं ॥ गाथा ॥ गंधव नट्ट वाइय, लवण जलारत्तिआइ दीवाई ॥ जं किच्चं सव्वंपित्ते, अरई अग्ग पूआए ॥१॥ नैवेद्यपूजा तो दिन दिन प्रत्यें करणी सुखाली है, अरु इसमें फलजी मोटा है, कोरा अन्न साबीत तथा रांधा हूआ चढावे. लौकिक शास्त्रोमेंजी लिखा है ॥ श्लोक ॥ धूपोदह ति पापानि, दीपोमृत्युविनाशकः ॥ नैवेद्यं विपुलं राज्यं, सिद्धिदात्री प्रदक्षि णा ॥ १ ॥ नैवेद्यका चढानां, आरति करणी प्रमुख आगममेंजी लिखा

है, “ कीरइ बलि ” अैसा पाठ आवश्यक निर्युक्तिमें है. तथा निशीथचूर्णी मेंनी बलि चढानी लिखी है, तथा कल्पनाष्यमेंनी लिखा है, कि जो जिन प्रतिमाके आगें चढाने वास्ते नैवेद्य करा है, सो साधुकों न कल्पे, तथा प्रतिष्ठाप्राभृतसें रची श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठापद्धतिमेंनी लिखा है, कि आरति उतारणी. मंगलदीवा करकें पीछें चार स्त्री मिल कर नैवेद्य, गीतगान, विधिसें करे ॥ तथा च माहानिशीथे तृतीये अध्ययने ॥ अरिहंताणं जगवंताणं गंध मल्ल पइव समज्जणोवलेवण विचित्त बलि वत्थ धूवईएहिं पूआ सक्कारेहिं पइदिणमब्जणंपि कुव्वाणा तित्थुपणं करेमोत्ति ॥ इति अग्रपूजा ॥

नावपूजा जो है, सो इव्यपूजाका जो व्यापार है, तिसके निषेधने वास्ते तीसरी निस्सही तीन वार करे. श्रीजिनेश्वरजीके दक्षिणके पासे पुरुष अरु वामी दिशा स्त्री रह कर आशातना टालने वास्ते जघन्य मंदिरमें नूमिके संनव हूए नव हाथ प्रमाण अरु घर देहरेमें जघन्य एक हाथ प्रमाण अरु उत्कृष्टमें तो साठ हाथ प्रमाण अवग्रह है, तिस्सें बाहिर बैठकें चैत्यवंदना, विशिष्ट काव्यों करकें करे, श्रीनिशीथमें तथा वसुदेवहिंमें तथा अन्यशास्त्रोंमें श्रावकोंनेंनी कायोत्सर्ग थुइ आदि करी चैत्यवंदना करी है, सो चैत्यवंदनानी तीन तरेंकी नाष्यमें कही है, सो कहते हैं. एक तो जघन्य चैत्यवंदना, सो अंजलि बांध कर शिर नमा कर प्रणाम करणां, यथा ‘नमो अरिहंताणं’ इति. अथवा एक श्लोकादि पढकें नमस्कार करणी, अथवा एक शक्रस्तव पढे, तो जघन्य चैत्यवंदना होवे. दूसरी मध्यम चैत्यवंदना, सो चैत्यस्तवदंमक युगल ‘अरिहंत चेइयाणं’ इत्यादि कायोत्सर्गके पीछें एक स्तुति कहनी, यह मध्यम चैत्यवंदन है, अरु तीसरा उत्कृष्ट चैत्यवंदन सो पंचदंम, जो १ शक्रस्तव, २ चैत्यस्तव, ३ नामस्तव, ४ श्रुतस्तव, ५ सिद्धस्तव, प्रणिधान, जयवीयराय, इत्यादि यह सर्व उत्कृष्ट चैत्यवंदना है. तथा कोइ आचार्यका अैसा मत है किः— एक शक्रस्तव करी जघन्य चैत्यवंदना होती है, दो तीन शक्रस्तव करी मध्यम चैत्यवंदना होती है, तथा चार अथवा पांच शक्रस्तव करी उत्कृष्ट चैत्यवंदना होती है, इसकी विधि चैत्यवंदननाष्यसें जान लेनी. यह तीन प्रकारकी चैत्यवंदना कही.

अब यह चैत्यवंदना नित्यप्रत्यें सात वार करणी, महानिशीथमें साधुकों

कही है, तथा श्रावककोंनी उत्कृष्ट सात वार करणी कही है ॥ यतोक्तं ॥ एक प्रतिक्रमणेमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिलां करणी, चौथी दिवसचरिमं करतां, पांचमी देवसी पडिक्कमणेमें, छठी सोती व खत, सातमी सूता उठे उस वखत, यह सात वार चैत्यवंदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आगों प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो नि श्चेंसे सात वार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणेमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोतां वखत, चौथी ऊठतां वखत, तथा तीन काल पूजा कस्यां पीछें, तीन वार, एवं सात वार श्रावक चैत्यवंदन करे, तथा जो श्रावक एकही वार पडि क्कमणां करे, सो छै वार चैत्यवंदन करे, तथा जो पडिक्कमणां न करे, सो पांच वार चैत्यवंदन करे, तथा जो सूतां ऊठतांनी चैत्यवंदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तदा सातसें अधिक नी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, कि:—जिसकों गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसकों प्रथम ऐसा नियम देवे कि:—सवेरेकी वखत जिन प्र तिमाका दर्शन करे विना पाणीनी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) अरु साधुओंकों वंदना न करे, तहां तक नोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे विना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे.

तथा गीत, नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे हैं, सो नावपूजामेंनी बन सके हैं. सो गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक आप करे, जैसें निशीथचू र्णीमें उदायनराजाकी राणी प्रनावतीका कथन है. तथा पूजा करणेके अवसरमें श्रीअर्हंतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें स्नान करते वखत छद्मस्थ अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोना करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यंकासन कायोत्सर्गासन दे खकें सिद्धावस्थाकी कल्पना करे, इसमें छद्मस्थ अवस्था तीन तरेकी कल्पे, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणेकी अवस्था, तहां स्नानकी वखत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माला, फूल, आनरण, पहिरा नेकी वखत, राज्यावस्था कल्पे, तथा दाढी, मूछ, शिरके वालोंके न होनेसें साधु अवस्था विचारे, इनमें साधु, केवली मोक्ष अवस्थाकों वंदना करे.

तहां पूजा पंचोपचार सहित, अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, त दा सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसें पूजा करे, सो पंचोपचार पूजा जाननी. तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी म थने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आजूषणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक, आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है. इति बृहद्भाष्ये॥

तथा पूजाके तीन नेद हैं. एक आपही कायासें पूजाकी सामग्री ल्यावे, दूसरी वचनो करकें दूसरोंसें मंगवावे, तीसरी मन करकें नला फूल फल प्रमुख करी पूजा करे, ऐसें काया, वचन अरु मन, यह तीनो योगों कर कें करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरेंसें पूजा है.

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी स्तुति, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वी तरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारें पूजा, यथा शक्तिसें करे. ल लितविस्तरादिक ग्रंथोमें "पुष्पामिषस्तोत्र प्रतिपत्ति" अर्थात् फूल, नैवेद्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्याग मोक्तं पूजाजेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक द्रव्यपूजा, दूसरी नावपूजा, जो फूला दिकसें जिनराजकी पूजा करणी, सो द्रव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पालनी, सो नावपूजा है. तथा पुष्पारोहणं गंधारोहणं इत्यादि स त्तरह नेदसें तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश नेदें पूजा है, परंतु अंगपूजा, अग्रपूजा अरु नावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अंतर्नाव हैं, ति नमें सत्तरह नेद, पूजाके लिखते हैं.

एक १ स्नात्र करनां, जिनप्रतिमाकों विलेपन करनां, २ चक्षुजोडा, वास सुगंध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगें फूल च ढाने, ६ बरास नीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढानां, ७ आनरण चढाने, ८ फूलोंका घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करनां, १० आरति, मं गल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपक्षेप, १३ नैवेद्य, १४ शुनफल ढोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणां, १७ वाजंत्र. यह सत्तरह नेदों करि पूजा है. अथ पूजाके एकवीश नेद लिखते हैं.

तहां प्रथम तो पूजा करणेकी विधि लिखते हैं, १ पूजा करने वाला पू

र्वदिशकी तर्फ मुख करकें स्नान करे, २ पश्चिम दिशको मुख करकें दातण करे, ३ उत्तरदिशाके सन्मुख श्वेत वस्त्र पहिरे, ४ पूर्वोत्तर मुख करकें पूजा करे, ५ घरमें प्रवेश करतां वामे पासें शल्य रहित नूमिमें देहरासर करावे, ६ डेढ हाथ नूमिकासें ऊंचा देहरासर करावे, जेकर देहरासर नीची नूमिकामें करावे, तब तिसका संतान दिन दिन नीचा होता जावेगा, ७ दक्षिणदिशि तथा विदिशिके सन्मुख मुख न करे, ८ घर देहरेमें पश्चिम सन्मुख मुख करकें, पूजा करे, तो चौथी पेढीमें संतानोछेद होवे. ९ दक्षिण दिशिकी तर्फ मुख करी करे, तो संतान हीन होवे, १० अग्निकूणे करे, तो धन हानी होवे. ११ वायुकूणे करे, तो संतान न होवे. १२ नैरुत्यकूणे कुलक्षय होवे, १३ ईशानकूणे करे, तो एक जगे रहणां न होवे. १४ दोनो पग, दोनो जानु, दोनो हाथ, दोनो स्कंध, मस्तक, ये नव अंगमें क्रमसें पूजा करे, १५ चंदन विना पूजा नहीं होती है, १६ मस्तकमें, कंठमें, हृदयमें, पेटमें, तिलक करे. १७ नव अंगमें, नव तिलक करकें निरंतर पूजा करे, १८ सवेरे पहिलां वास पूजा करे, १९ मध्यान्हमें फूलोंसें पूजे. २० संध्याकों धूप, दीप, करकें पूजा करे, २१ जो फूल, हाथमें धरतीमें गिर पडे, तथा पगोंकों लग जावे, तथा जो मस्तकमें ऊंचा चला जावे, तथा जो मैले वस्त्रसें रक्खा होवे, तथा जो नानीसें नीचे रक्खा होवे, तथा जो दुष्ट जनोनें स्पर्शा होवे, जो बहुत ठेकाणोंमें हत होवे, जो जीवोने खाया होवे, अैसा फूल, फल, नक्त जनोनें जिनपूजामें नही रखनां, २२ एक फूलके दो टुकडे न करे, २३ कलीको छेदे नहीं, चंपक, उत्पल, फूलके नांगनेसें बडा दोष है, २४ गंध, धूप, अक्षत, फूलमाला, दीपक, नैवेद्य, पाणी, प्रधानफल, इनों करकें जिनराजकी पूजा करे. २५ शांतिककार्यमें श्वेत वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २६ द्रव्यलाभके वास्ते पीत वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २७ शत्रु जीतने वास्ते काले वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २८ मांगलिककार्य वास्ते लाल वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २९ मुक्तिके वास्ते पांच वर्णके वस्त्र पहिरकें पूजा करे, ३० शांति कार्यके वास्ते पंचामृतका होम, दीवा, घी, गुड, लवणका अग्निमें प्रक्षेप, शांति पुष्टिके वास्ते जाननां, ३१ फाटा हूआ, जोडा हूआ; छिद्र वाला, काटा हूआ, जिसका रक्तवर्ण भयानक, अैसें वस्त्र पहिरकें दान, पूजा, तप, होम अरु सामायिक प्रमुख करे, तो

निष्फल होवे. ७ पद्मासन बैठके,नासाग्र लोचन स्थापन करके मौन धारी वस्त्रसें मुखकोश करके जिनराजकी पूजा करे.

अथ इक्कीस प्रकारकी पूजाका नाम लिखते हैं १ स्नात्रपूजा, २ विलेपन पूजा, ३ आजरण पूजा, ४ फूल, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर,१६ छत्र, १७ वाजिंत्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ जंडारवृद्धि. यह एकवीश प्रकारकी पूजा है.जो वस्तु बहुत अछी होवे, सो जिनराजकी पूजामें चढानी चाहियें ॥ इति ॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमें प्रसिद्ध है.

तथा ईशानकूणमें देवघर बनानां. यह बात विवेकविलासमें है, तथा विषमासन बैठके, पग उपर पग धरके, उकडुआसन बैठके, वामा पग उंचा करके तथा वामे हाथसें. इतने करिकें पूजा न करे, सूके हूए फूलोंसें पूजा न करे, तथा जो फूल धरतीमें गिरा होवे, तथा जिसकी पांखडी सड गइ होवे, नीच लोकोंका जिसकों स्पर्श हूआ होवे, जो शुज न होवे, जो विकसे हूए न होवे. जो कीडेने खाये हूए, सडे हूए, रातकों वासी रहे, मकडीके जाले वाले, जो देखनेमें अछे न लगे, डुर्गंधवाले, सुगंधरहित, खट्टी गंधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न हूये होवे, अपवित्र करे हूए, असें फूलोंसें जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी. तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, अरु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पांच कुसुमांजलि चढावे, पीछे जगवान्की पूजा करे, तहां यह विधि करे, सो कहते है.

प्रजात समय पहिलां निर्माल्य उतारे. पीछे प्रक्षाल करे, संक्षेपमें पूजा करे, आरति मंगल दीवा करे, पीछे स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी वार पूजाका प्रारंज करे, तब देवके आगें केसर जल संयुक्त कलश स्थापन करे, पीछे "मुक्तालंकार विका,र सार सौम्यत्वकांतिकमनीयं ॥ सहजनिजरूपनिर्जितजगत्रयं पातु जिनबिंबं ॥ १ ॥" यह आर्या कह कर अलंकार उतारे, पीछे " अवणिय कुसुमाहरणं, पयइ पइठिय मनोहर छायं ॥ जिणरूवं मज्जणपीठं, संठियं वो सिवं दिसउ ॥ १ ॥ यह कह कर निर्माल्य उतारे, पीछे प्रागुक्त कलश ढालन पूजा करे, कलश धो कर, धूप दे कर,

स्नात्र योग्य सुगंध जल प्रक्षेप करे, पीछे कलश, श्रेणीबंध स्थापन करे सो सुंदर वस्त्रसें ढक देने, पीछे साधारण केसर, चंदन, धूप करके हाथ पवित्र करे, मस्तकमें तिलक, हाथमें चंदनका कंकण करे, हाथ धूपन करकें श्रेणीबंध स्नात्री श्रावक कुसुमांजलिका पाठ पढे, तिस कुसुमांजलिकी गाथा लिखते हैं. "सयवत्त कुंद मालइ, बहुविह कुसुमाइ पंचवन्नाइं॥ जिणनाह न्हवण काले, दिंति सुरा कुसुमांजलि हिठा ॥ १ ॥ यह कह कर देवके मस्तक उपर पुष्पारोपण करे ॥ गाथा ॥ गंधायड्डिय महुयर, मणहर जंकार सद्द संगीआ ॥ जिणचलणोवरि मुक्का,हरउ तुम्ह कुसुमांजलि डुरियं ॥ १ ॥ इत्यादि पाठ करकें जिन चरणों उपरि एक श्रावक कुसुमांजलि चढावे, सर्व कुसुमांजलिके पाठोमें तिलक करणां, फूल, पत्र, धूपादि सर्व, एकत्र करी चढावे, पीछे उदार मधुर स्वर करकें जिस जिनेश्वरका नाम स्थापना करा होवे, तिसही जिनेश्वरका जन्माभिषेक कलशका पाठ कहनां. पीछे घी, इक्षुरस, दूध, दहीं, सुगंधजल, ये पंचामृत करी स्नात्र करावे, स्नात्रके वीचमें धूप देवे, स्नात्रकालमेंभी जिनराजका शरीर फूलों करकें शून्य न करणां, यदाहुर्वादिवेतालश्रीशांतिसूरयआचार्याः ॥ जहां तक स्नात्र समाप्ति न होवे, तहां तक भगवानका मस्तक शून्य न रखनां, निरंतर पाणीकी धारा. अरु उत्तम फूलोंकी वृष्टि भगवान्के मस्तक उपर गेरे, तथा स्नात्र करती बखत चामर, संगीत, तूर्याडंबर सर्व, शक्तिसें करे.

सर्व श्रावक. जब स्नात्र कर चुके. पीछे निर्मल जलकी धारा देनी. तिसका पाठ यह है ॥ श्लोक ॥ अभिषेकतोयधारा, धारेव ध्यानमंडलाग्रस्य ॥ भवभवनभित्तिभागान्, भूयोपि भिनत्तु भागवती ॥ १ ॥ पीछे अंग लूहे, विलेपनादि पूजा पहेली पूजासें अधिक करणी, सर्व प्रकारका धान्य, पक्वान्न, शाक, विकृतिफलादि, करकें नैवेद्य ढोवे, ज्ञानादि तीनो सहित तीन लोकके स्वामी भगवानके आगें तीन पुंज भक्त जन श्रावक करकें पीछें स्नात्रपूजा करे, पहिलां बडा श्रावक तीन पुंज करे, पीछें छोटा श्रावक करे, पीछें श्राविका करे, क्योंकि जिनजन्ममहोत्सवमेंभी पहिला अच्युतेंद्र अपणे देवता संयुक्त स्नात्र करता है.पीछें यथाक्रमसें दूसरे इंद्र स्नात्र करते है. स्नात्र जल अपणे मस्तकमें जे कर श्रावक प्रक्षेप करे, तो दोष न हीं ॥ यदुक्तं॥ श्रीहेमचंद्राचार्यैःश्रीवीरचरिते ॥ अभिषेकजलं तत्तु,सुरासुरन

रोगाः ॥ ववंदिरे मुहुर्मुहुः सर्वांगं परिचिक्षिपुः ॥ १ ॥ तथा श्रीपद्मचरित्रे एकुण तीसमें उद्देसेमें राजा दशरथने अपणी राणीयोंकों स्नात्रजल भेज्या है, तथा बृहद्शांतिस्तोत्रमें "शांतिपानीयं मस्तके दातव्यमित्युक्तं" तथा सुणते हैं कि. जरासंधने जब जरा विद्या छोडी, तब तिस करकें पीडित निज सेनाकों देखकें श्रीनेमिनाथके कहनेसें श्रीकृष्णने धरणेंद्रकों आराध्या, धरणेंद्रने पातालमें रही श्रीपार्श्वप्रतिमा शंखेश्वरपुरमें ल्या करकें तिसके स्नात्रका जल, छिडकें सेना सचेत करी, तथा श्रीजिनदेशनाके पीछे राजा प्रमुख जो चावलोंकी बली उछालते हैं. तिसमेंसें आधे चावल धरतीमें अणपडे देवता ले लेते हैं, तिसका अर्द्ध, उछालने वाला लेता है, अरु बाकीका चावल सर्व लोक लूट लेते हैं, उसमेंसें एक दाणाभी जे कर मस्तकमें रखे.तो सर्व रोग उपशांत हो जावे है,अरु छ महीने आगेंकों रोग न होवे, यह कथन आवश्यक शास्त्रमें है. पीछे सद्गुरुकी प्रतिष्ठी हुइ बहुत सुंदर हीरागल प्रमुख वस्त्रकी मोटी ध्वजा,बडे उत्सव पूर्वक तीनादि प्रदक्षिणा करकें विधिसें देवे, सर्व संघ यथाशक्ति परिधापनका नैवेद्यप्रमुख चढावे.

अथ आरति. मंगलदीवा श्रीअरिहंतजीके सन्मुख करनां, सो लिखते हैं. मंगलदीवेके पास अग्निका पात्र स्थापन करनां, तिसमें लवण जल गेरनां होवेगा, "उवणेउ मंगलं वो, जिणाणमुह लालि जाल संवलिआ ॥ तित्थ पवत्तण समए, तियसवि व मुक्का कुसुम वुठ्ठो ॥ १ ॥" यह पढ कर प्रथम कुसुमवृष्टि करे ॥ गाथा ॥ उअह पडिभग्गापसरं, पयाहिणं मुणिवई करेउणं ॥ पडइस लोणत्तण, लज्जिअं च लोणं हु अवहंमि ॥ इत्यादि पाठसें विधिपूर्वक जिनराजके तीन वार फूल सहित लवणजल उतारणादि करणां, तिस पीछें अनुक्रमें पूजा करकें आरात्रिक धूपोपक्षेप सहित दोनों पासें अत्यंत कलशके पाणीकी धारा देते हूए श्रावक फूलोंकों विखेरे, "मरगय मणि घडिय विसा,ल थालमाणिक मंडिअ पईवं॥ नवणयर करु खित्तं,भमउ जिणारत्तिअं तुम्ह ॥१॥ इत्यादि पाठ पूर्वक प्रधान भाजनमें रखकें उत्सव सहित तीन वार उतारे, यह कहनां, त्रेशठ शिलाका चरित्रादिकमें है, मंगलदीपकभी आरतिकी तरें पूजे, तब यह पाठ पढे ॥ गाथा ॥भामिज्जंतो सुरा, सुरिंहिं तुहनाह मंगलपईवो ॥ कणयायलस्स नजई, भाणुव्व पयाहिणं दिंतो ॥१॥ इति ॥ यह पाठ पूर्वक मंगलदीवा उतारकें, दीप्यमान जिन

चरणोंके आगें रख देनां, आरति बूजा देनेमें दोष नहीं, आरति अरु मंगल दीवा मुख्यवृत्तिसें घृत, गुड, कर्पूरादिकसें करे, विशेष फल होनेसें. यहां मुक्तालंकार इत्यादि जो गाथा है, सो श्रीहरिभद्रसूरिजीकी करी हूइ मा लुम होती है, क्योंकि श्रीहरिभद्रसूरिकृत समरादित्यचरित्र नामक ग्रंथकी आदिमें "उवणेउ मंगलेवो ॥ इति नमस्कारस्य दर्शनात्" अरु यह गाथा तपगच्छमें प्रसिद्ध है. इस वास्ते सर्व गाथा इहां नही लिखी.

स्नात्रादिकमें समाचारि विशेषसें विविध प्रकारकी विधि देखनेसें व्या मोह न करणां, क्योंकि सर्व आचार्योंको अर्हद्भक्तिरूप फलकी सिद्धि वा स्तेही प्रवृत्त होनेसें गणधरादि समाचारीयोमेंभी बहुत भेद होता है, तिस वास्ते जो जो धर्मसें विरुद्ध न होवे, अरु अर्हत भक्तिका पोषक होवे, वो कार्य किसीकोंभी असम्मत नहीं, ऐसेंही सर्वधर्म कार्यमें जाण लेनां. यहां लवण, आरति प्रमुखका उतारणां, संप्रदायमें सर्व गच्छोंमें अरु परद र्शनोंमेंभी करते हुवे दीखते हें, तथा श्रीजिनप्रभसूरिकृत पूजाविधिशास्त्रमें तो ऐसें लिखा है ॥ गाथा ॥ लवणाई उत्तारण,पालित्तय सूरिमाइ पुव्वपुरिसे हिं ॥ संहारेण अणुन्नयंपि. संपयं सिद्दी एकारिज्जई ॥ १ ॥ अस्यार्थः— लवणादि उतारणां श्रीपादलिप्तसूरि प्रमुख पूर्व पुरुषोनें एक वार करने की आज्ञा दीनी है, हम इसकालमें उनके अनुसारे कराते है. स्नात्रके करणेमें सर्व प्रकार विस्तार सहित पूजा प्रभावनादिकके करणेसें परलो कमें उत्कृष्ट मोक्ष प्राप्तिरूप फल होता है. जेमें चौसठ इंद्रोने जिनजन्म स्नात्र करा है, तिसहीके अनुसारें मनुष्य करते हें, इस वास्ते इस लोक में पुण्य निर्जरा अरु परलोकमें मोक्ष फल होता है, यह कथन राजप्र श्रीय उपांगमें लिखा है ॥ इति स्नात्रविधिः समाप्तः ॥

अब प्रतिमाभी अनेक प्रकारकी है, तिनकी पूजाकी विधि सम्यक्त्व प्रकरणमें ऐसें कही है ॥ गाथा ॥ गुरु कारिआइ केइ, अन्नेसय कारिआई तं बिंति ॥ विहिकारिआइ अन्ने,पडिमाए पूअणविहाणं ॥ १ ॥ व्याख्याः— गुरु कहियें माता, पिता, दादा, पडदादा प्रमुख तिनकी कराइ हूइ प्रति मा पूजनी चाहियें. कोइ ऐसें कहते हें, तथा कोइ कहते हें कि अपणी कराइ प्रतिष्ठी हूइ पूजनी चाहियें, कोइ कहते हेंकि विधिसें कराइ प्रतिष्ठी प्रतिमा पूजनी चाहियें, इनमें यथार्थ पक्ष तो यह है, किः— ममत्व रहि

त सर्वप्रतिमाकों विशेष रहित पूजना चाहियें, क्योंकि सर्व जगे तीर्थंकर का आकार देखनेंसें तीर्थंकर बुद्धि उत्पन्न होती है, जे कर ऐसें न मानीयें, तब जिनबिंबकी अवज्ञासें उरंत संसारमें भ्रमण रूप उसकों निश्चयही दंम होवेगा.

तथा ऐसाजी कुविकल्प न करणां कि:— जो अविधिसें जिनमंदिर जिनप्रतिमा बनी है, उसके पूजनेसें अविधि मार्गकी अनुमोदनासें नगवंतकी आज्ञानंग रूप दूषण लगता है,तथाही श्रीकल्पजाष्ये ॥ गाथा॥ निस्सकड मनिस्सकडे, चेइए सव्वहिं थुइतिन्नि ॥ वेलं च चेईआणिय, नाउं इक्कि किया वावि ॥ १ ॥ व्याख्याः— एक निश्राकृत उसकों कहते हैं, कि:— जो गच्छके प्रतिबंधसें बनी है, जैसाकि यह हमारे गच्छका मंदिर है, दूसरा अनिश्राकृत, सो जिस उपर किसी गच्छका प्रतिबंध नहीं है,इन सर्व जिनमंदिरोंमें तीन थुइ पढनी, जे कर सर्वमंदिरोंमें तीन तीन थुइ देता बहुत काल लगता जाणे, तथा जिनमंदिर बहुत होवें, तदा एक एक जिनमंदिरोंमें एक एक थुइ पढे,इस वास्ते सर्व जैनमंदिरोंमें विशेष रहित जक्ति करे.

तथा जिनमंदिरमें मकडीका जाला लग जावे, तिसके उतारनेकी विधि, जिनके सपूर्द जिनमंदिर होवे, तिनकों साधु निर्भ्रत्सना करे, कि:—जिनमंदिरकी नोकरी खाते हो, तो सार संजाल क्यों नहीं करते हो? मकडीका जालाजी तुम नहीं उतारते हो? तथा जिनकी कोइ सार संजाल न करे, तिनकों असंविग्न देवकुलिका कहते है, तिन मंदिरोंमें जो मकडीका जाला होवे, तिसके दूर करणे वास्ते सेवकोंकों प्रेरणा करे, कि तुम जिनमंदिरकों मंखफलककी तरें चमक दमक वाला रखो, जेकर वे सेवक लोक न माने, तब निर्भ्रत्सना करे, पीछें साधु जयणासें आप दूर करे, क्योंकि जिनमंदिर ज्ञानभंमारादिककी सर्वथा साधुजी उपेक्षा न करे, यह पूर्वोक्त चैत्यगमन पूजा स्नात्रादि विधि जो कही है, सो सब धनवान् श्रावककी अपेक्षा कही है, अरु जो श्रावक धनवान् न होवे, वो अपणे घरमें सामायिक करकें किसीके साथ लेणे देणेका कगडा न होवे, तद्उपयोग संयुक्त साधुकी तरें ईर्या शोधता हूआ नैषेधिकी तीन करी जाव पूजानुयायि विधिसें जावे, पूजादि सामग्रीके अजावसें इव्यपूजा करणे असमर्थ है, इस वास्ते सामायिक पारकें कायासें जो कुछ फूलगुंथनादिक कृत होवे सो करे.

प्रश्नः– सामायिक त्यागकें द्रव्यपूजा करणी उचित नहीं?

उत्तरः– सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वखत कर लेवे, परंतु पूजाका योग उसकों मिलना दुर्लभ है, क्योंकि पूजाका मंमाण तो संघ समुदायके आधीन है, कदेइ होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष पुण्य है ॥ यदागमः ॥ "जीवाण बोहि लाभो, सम्मद्दिठीण होइ पिअकरणं ॥ आणाजिणिंदभत्ति, तित्थस्स पभावणा चेव ॥ १ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चैत्यकार्य करे, यह कथन दिनकृत्य सूत्रमें है, दश त्रिक, पांच अभिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वंदनकादि धर्मानुष्ठानका महा फल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसें करतां उपद्रवभी हो जाता है ॥ उक्तं च ॥ धर्मानुष्ठानवैतथ्या, त्प्रत्यवायो महान् भवेत् ॥ रौद्रदुःखौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिवौषधात् ॥ १ ॥ चैत्यवंदनादि अविधिमें करतां आगममें प्रायश्चित्त कह्या है, महानिशीथके सातमे अध्ययनमें अविधिसें चैत्यवंदना करे, तो प्रायश्चित्त कह्या है, देवता, विद्या मंत्रभी विधिसेंही सिद्ध होते हैं.

जो कोइ कहे कि विधि न होवे, तब न करणां श्रेष्ठ है? यह कहनां अयुक्त है ॥ यदुक्तं ॥ अविहिकया वरमकयं, असूआ वयणं भणंति समयन्नू ॥ पायछित्तं अकए, गुरुअं वितहं कए लहुयं ॥ १ ॥ अस्यार्थः– अविधि करणेसें न करणां अच्छा है, ऐसें जो कहते है, सो असूया वचन है, यह कहने वाला जैन सिद्धांतकों जानता नहीं, क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता तो ऐसें कहते हैं, किः– जो न करे. उसकों गुरु प्रायश्चित्त आता है, अरु जो अविधिसें करे, उसकों लघु प्रायश्चित्त आता है, इस वास्ते धर्म जरूर करनां चाहियें. अरु विधिमार्गकी अन्वेषणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावंतका लक्षण है, सर्व कृत्य करकें अविधि आशातना निमित्त मिथ्यादुष्कृतं दातव्यं ॥

अंग अग्रादि तीनो पूजाके फल, शास्त्रमें ऐसें लिखे हैं, किः– विघ्न उपशांत करणेवाली अंग पूजा है, तथा मोटा अभ्युदय पुण्यकी साधने वाली अग्रपूजा है, तथा मोक्षकी दाता भावपूजा है, पूजा करने वाला संसार प्रधान भोग भोगकें पीछें सिद्धपद पाता है, क्योंकि पूजा करणेसें

मन शांत होता है, अरु मन शांतसें उत्तम शुज ध्यान होता है, अरु शु जध्यानसें मोक्ष होता है, मोक्ष हूए अबाध सुख है.

तथा श्रीजिनराजकी नक्ति पांच प्रकारें है ॥ श्लोक ॥ पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्रव्यपरिरक्षणं ॥ उत्सवास्तीर्थयात्रा च, नक्तिः पंचविधा जिने ॥ १ ॥ इव्यपूजा आनोग अरु अनानोगसें दो प्रकारें है, तिसमें श्रीवीतराग देवके गुण जानकें वीतरागकी नावना करकें आदर संयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आनोगइव्यपूजा है, इस्सें चारित्रका लान होता है, कर्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् ऐसी पूजा अवश्य करे. तथा जो पूजाकी विधि जानता नही तथा श्रीजिनराजके गुणनी नहीं जानता सो दूसरी अनानोग पूजा है. यह शुनपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बोधिलानका हेतु है, पापक्षय करणेका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमे कालमें उसका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतरागके गुण नहींनी जानता, तोनी नक्ति प्रीतिका उल्लास उसकें अंदर उबलता है, अरु जिस पुरुषकों अरिहंतबिंबमें द्वेष है, वो पुरुष नारीकर्मी तथा नवानिनंदी है, जैसें रोगीकों अपथ्यमें रुचि अरु पथ्यमें द्वेष होवे, तदा मरणका समय होता है, ऐसेंही जिनबिंबमें जिसकों द्वेष है, तिसकानी दीर्घ संसार जाननां.

इहां सर्व जो नावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पालनां है, सो जिनाज्ञा दो प्रकारकी है, एक अंगीकार करणां, एक त्यागनां, तहां सुकृतका अंगीकार करणां, अरु निषेधका त्याग करनां, परंतु स्वीकार पक्षसें परिहार पक्ष बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुकृत नी बहुत गुणदायक नहीं होता है, जेकर दोनों बातां होवे, तदा पूर्ण फल है, इव्यपूजाका फल अच्युत देवलोक है, अरु नाव पूजाका फल अंतर्मुहूर्त्तमें मोक्ष है.

इव्यपूजामें यद्यपि षट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोनी कूवेके दृष्टांत करकें गृहस्थकों करणे योग्य है, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोंकों गिणती रहित पुण्यबंधनेका कारण होनेसें करने योग्य है, जैसें नवे गाममें स्नान पानादिके वास्ते लोक कूवा खोदते हैं, तिनकों प्यास, श्रम, अरु कीचडसें मलिनादि होते हैं, परंतु कूवेके जल निकलनेसें तिनकी तथा

औरोंकी तृषादि, पूराणा मैल, सर्व अगला पिछला दूर हो जाता है, अरु सर्वांगीण सुख हो जाता है, ऐसेंही द्रव्य पूजामें जान लेनां, यह कथन आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा और जगेभी लिखा है ॥ गाथा ॥ आरंभ पस ताणं, गिहीणछ जीव वह अविरयाणं ॥ भवअडवि निवडियाणं, दवछउं चेव आलंबो ॥ १ ॥ श्लोक ॥ वृत्तं शार्दूलविक्रीडितं ॥ स्थेयोवायुबलेन निर्वृति करं निर्वाणनिर्घातिना, स्वायत्तं बहुनायकेन सुबहुस्वल्पेन सारं परं ॥ निःसा रेण धनेन पुण्यममलंकृत्वा जिनाभ्यर्चनं, योगृह्लाति वणिक् स एव निपुणो वाणिज्यकर्मण्यलम् ॥ १ ॥ यास्याम्यायतनं जिनस्य लभते, ध्यायंश्चतुर्थं फलं, षष्ठं चोत्थितउद्यतोऽष्टममथो गंतुं प्रवृत्तोऽध्वनि ॥ श्रद्धालुर्दशमं ब हिर्जिनगृहात्प्राप्तस्ततो द्वादशं. मध्ये पाक्षिकमीक्षते जिनपतौ, मासोपवासं फलम् ॥ २ ॥ पद्मचरित्रमें तो ऐसें लिखा है. कि १ जब जिनमंदिरमें जा नेका मन करे. तब एक उपवासका फल होता है, २ यदि उठे, तो बे लाका फल होता है, ३ चल पडनेका उद्यमीकों तेलेका फल होता है, ४ चल पडे, इनकूं चौलेका फल. ५ किंचित् गयेकूं पंचोलेका फल. ६ अर्द्ध मार्गमें गये एक पक्षके उपवासका फल होता है. ७ जिनराजके देखेमें एक मासके तपका फल होता है, ८ जिनभुवनमें संप्राप्त हूए छमासी त पका फल होता है, ९ जिनमंदिरके दरवाजे पर स्थित हूआं एक वर्षके त पका फल होता है, १० जिनराजकों प्रदक्षिणा दीयां सौ वर्षके तपका फल होता है, ११ पूजा करे हजार वर्षके तपका फल होता है, १२ स्तुति करे, अनंतगुणा फल होता है, १३ जिनमंदिर पूंजे, सौ गुणा पुण्य होता है, १ लींपे, तो हजार गुणा पुण्य होता है, १५ फूलमाला चढाये, लाख गुणा पुण्य होता है, १६ गीत वाजिंत्र पूजा करे, अनंतगुणा पुण्य होता है.

पूजा दिनप्रत्यें तीन संध्यामें करणी चाहियें ॥ यतः ॥ जिनस्य पूजनं हंति. प्रातः पापं निशाभवं ॥ आजन्मविहितं मध्ये,सप्तजन्मकृतं निशि ॥ १ ॥ जलाहारोषधस्वाप, विद्योत्सर्गकृषिक्रियाः ॥ सत्फलाः स्वस्वकालेस्यु, रेवं पूजा जिनेश्वरे ॥ २ ॥ गाथा ॥ जिण पूआण तिसंजं, कुणमाणो सोहएय सम्मत्तं ॥ तिछयरनाम गोत्तं,पावई सेणीअ नरिंदुव ॥ १ ॥ जो पूएइ तिसंजं, जिणंदरायं सया विगय दोसं ॥ सो तईय भवे सिज्झई, अहवा सत्तहमे ज

म्मे ॥ १ ॥ सवायरेण जयवं, पूईज्जंतोवि देवनाहेहिं ॥ नो होइ पूइओ खलु, जम्हाणं त गुणो जयवं ॥ २ ॥ यह गाथा सुगम है.

तथा देव पूजादिकमें हृदयमें बहुमान अरु विधिसें नक्ति करे, तथा जिनमतमें चार प्रकारका अनुष्ठान कहा है, एक प्रीतिसहित, दूसरा नक्ति सहित, तीसरा वचन प्रधान, अरु चौथा असंग अनुष्ठान, तिनमें जिसके प्रीतिका रस बढे, अरु रुजु नड्क स्वनाव वाला होवे, जैसें बालकोंकों रतनमें देखकें प्रीति होती है. ऐसी जिसकों प्रीति होवे, सो प्रीति अनुष्ठान है, तथा बहुमान संयुक्त शुद्ध विवेकवाला होवे, अरु बाकी शेष पहिले अनुष्ठानको तरे करें, सो नक्ति अनुष्ठान है, यद्यपि स्त्रीका अरु माताका पालणां, पोषणां, सरीखा है, तोनी स्त्री उपर प्रीति राग है, अरु माता उपर नक्तिराग है, यह प्रीति अरु नक्तिका स्वरूप कह्या, तथा जो जिनगुणका जानकार, सूत्रोक्तविधि करकें जिनप्रतिमाकों वंदना करे, सो वचनानुष्ठान है. यह अनुष्ठान चारित्रवंतकों निश्चय करकें होता है, तथा जो अन्यासके रससें सूत्रालोचना विनाही फलमें निस्पृह हो कर करे, सो असंगानुष्ठान है. जैसें कुंनार चक्रकों पहिलां तो दंमसें फिराता है, पीछेमें दंम दूर करे, तोनी चाक फिरता है, यह दृष्टांत, वचनानुष्ठान अरु असंगानुष्ठानमें है.

इन चारोंमें प्रथम तो नावनाके लेशसें प्रायः बालक प्रमुखोंकों होता है, आगें अधिक अधिक जान लेनां. यह चारों प्रकारका अनुष्ठान बहुमान विधिसंयुक्त करे, तो रूपइयानी खरा अरु खरे सन समान, प्रथम नेद है. दूसरा जो पुरुष, नक्तिराग बहुमान संयुक्त होवे, अरु विधि जानता न होवे, तिसका कृत्य एकांत डुष्ट नहीं, अशठ पुरुषका अनुष्ठान अतिचार सहितनी शुद्धिका कारण है, क्योंकि जो रतन अंदरसें निर्मल है, उसका बाह्यमल सुखें दूर हो सकता है, यह रूपइया खरा, अरु सिक्का खोटा समान, दूसरा नेद है, तथा जो पुरुष, कपट जूगादि दोष संयुक्त है, अरु अपणी महिमा पूजाके वास्ते तथा लोकोंके ठगने वास्ते विधिपूर्वक सर्वानुष्ठान करता है, उसकों बडा अनर्थ फल होता है, यह रुपइया खोटा, अरु सन खरा समान, तीसरा नेद जानना. तथा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवका जो कृत्य है, सो तो रुपइयानी खोटा, अरु सननी खोटा समान, चौ

याजेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु विधिपूर्वक करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गिर कर बिगड गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारकों निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोजा करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि चिंता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, असी रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकी उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अच्छी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यके लाज अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवद्रव्य देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नौकरकों नेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं, तैसें करे, उघराणी वास्ते नौकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा स्वजनके बलसें, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसें साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष तैसा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सहीमें पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. असेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादिककीजी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संजाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रावककों देवादि जक्ति सार संजालमें शिथिल नहोनां चाहियें, देव गुरु प्रमुखकी जक्ति, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी सम्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त है, उस्सें कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहीं, इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये कुंटुबे च, सर्व संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाजिलाषिणां ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करकें तीन प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, टीपणी, जपमालादिककों मुखको थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान बिना सूत्र पढनां, भ्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बैठनादि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीक पणा उपघात करे, उत्सूत्र भाषणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, बरास, केसर प्रमुखके मब्बेकों वजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका स्पर्श करणां. सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे. पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशा तना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूंकका लगानां, प्रतिमाकों भंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है. अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी. सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ भोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें भोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते हैं. १ मूतना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन, सेवनां ८ तंबोल खानां, ९ थूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूंआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ झगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ ऊंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विभूषा करे, २० शिर पर छत्र लगानां, २१ खड्ग रखे, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने, २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

मुखकोश विना पूजा करणी, २८ मैले शरीरसें मैले वस्त्रोंसें पूजा करणी, २९ पूजा करतां मन चपल करणां, ३० शरीरके भोगके सचित्त द्रव्यकों विना उतारे मंदिरमें जानां, ३१ अचित्तद्रव्य आभूषणादि उतारकें जावे, ३२ एकसाडीका उत्तरासंग न करे, ३३ भगवान्कों देखकें हाथ न जोडे, ३४ शक्तिके हूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६ पूजा प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नहीं, ३८ मंदिरके द्रव्यकी सार संभाल न करे, ३९ शक्तिके हूयेभी अस्वारी उपर चढ के मंदिरमें जावे. ४० देहरेमें वडासें पहिलां चैत्यवंदन करे, जिनेंद्रभवनमें तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें आशातना टाले.

अब उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते है. १ जिनमंदिरमें खेल खंखार गेरे, २ जूए आदिककी क्रीडा करे,३ कलह करे,४ धनुष्यादि कला शिखे, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे, ७ तंबोलका उगाल गेरे, ८ गाली देवे, ९ दिसा मात्रा करे,१० हस्तादि अंग धोवे,११ केश समारे, १२नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरमें खावे, १५ गुंमडे आदिककी त्वचा गेरे, १६ औषधि खाकें पित्त गेरे, १७ वमन करे, १८ दांत गेरे, १९ हाथ, पग, मसलावे, २० घोडादि बांधे, २१ दांतका मैल गेरे, २२ आंखका मैल गेरे, २३ नखका मैल गेरे, २४ गालका मैल गेरे, २५ नाकका मैल गेरे, २६ माथाका मैल गेरे, २७ शरीरका मैल गेरे, २८ कानका मैल गेरे, २९ भूतादिके खीलने वास्ते मंत्र साधे, अथवा राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाहादिक की पंचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम वांटके देवे, अथवा भाइ प्रमुखकों धनका हिस्सा वांटके देवे, ३३ घरका भंमार मंदिरमें रक्खे, ३४ पगोपरि पग रखकें दुष्टासन करकें बैठे, ३५ मंदिरकी भीतसें छाणा लगावे, गोबरका ढेर लगावे, ३६ वस्त्र सुकावे, ३७ दाल दले, ३८ पापडवेली सुकावे, ३९ वडां बनावे, उपलक्षणसें कयर, चीभडा, शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, भाइ, लहणे वालेके भयसें नाठकें मूलगंभारेमें लुक जावे, ४१ पुत्रकलत्रादिके मरणेंसें मंदिरमें रोवे, ४२ स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४३ वाण ईक्षुका गन्ना घडे, तथा धनुष्यादि शस्त्र घडे, ४४ गाय बैलादि मंदिरमें

रक्खे, ४५ शीत दूर करणेकों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये परखे, ४८ विधिसें नैषेधिकी न करे, ४९ छत्र, ५० पगरखी, ५१ शस्त्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके बाहिर न छोडे, ५३ मन एकाग्र न करे, ५४ तैलादिकका मर्दन करे, ५५ शरीरके जोगके सचित्त फूलादिकका त्याग न करे, ५६ हार, मुद्रा, कुंफलादि, तिनकों बाहिर छोड आवे, तो आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें असा कहनां हो जावे, कि अर्हंतके जक्त सर्वे कंगाल भिक्षाचर हैं, असी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ जग वानकों देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासंग न करे, ५९ मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मौलि शिरका लपेटनां रक्खे, ६१ फूलका सेहरा रक्खे, ६२ नालियर आदिकका छोत गेरे, ६३ गेंदसें खेले, ६४ पिता प्रमुखकों जुहार करे, ६५ जांम चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेकारा तुंकारा देवें, ६७ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६८ संग्राम करे, ६९ मस्तकके केश सुकावे, ७० पालठी मारी बैठे, ७१ काष्ठ पादुकादि पगमें रक्खे, ७२ पग पसारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुडी देवावे, ७४ देहरमें शरीरका अवयव धोकें कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लगी हूइ धूल झाडे, ७६ मैथुन, (कामक्रीडा) करे, ७७ जूंआं गेरे, ७८ जोजन जीमे, ७९ गुह्य चिन्ह ढककें न बैठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय रूप वाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाकें सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जलका मटका रक्खे, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी लेवे, ८४ स्नान करनेकी जगा बनावे, यह उत्कृष्ट चौरासी आशातना जिनमंदिरमें वर्जे.

अब गुरुकी तेत्तीस आशातना वर्जे, सो लिखते हैं. १ गुरुके आगें चले, तो आशातना है. जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशातना नहीं होती है, २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीछें अडके चले, यह जैसें चलनेकी तीन आशातना कही हैं, असेंही बैठनेकीजी तीन आशातना जान लेनी, तथा खडा होनेकीजी तीन आशातना जान लेनी, यह सर्व नव आशातना हूइ. १० जोजन करतां गुरुसें पहिलां शिष्य चलु करे, ११ गमनागमन गुरुसें पहिलां आलोचे, १२ रात्रिमें कौन जागता है, असें गुरुके कहेकों सुन कर जागता हूआजी शिष्य उत्तर न देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीकों कुछ कहनां होवे, सो गुरुसें

पहिलांही शिष्य कह देवे, १४ दूसरे साधुवोंके आगें पहिलां अशनादि आलोवे पीछें गुरु आगें आलोवे. १५ ऐसेही अशनादिक पहिलां दूसरे साधुवोंकों दिखाकें पीछें गुरुकों दिखावे, १६ अन्नादिककी पहिलां औरोंकों निमंत्रणा करकें पीछें गुरुकों निमंत्रणा करे, १७ गुरुके बिना पूछे स्वेछासें औरोंकों स्निग्ध मधुरादि आहार दे देवे, १८ गुरुकों थ त्किंचित् अन्नादि दे कर पीछें यथेछासें स्निग्धादि आहार आप खावे, १९ गुरु बोलावें, तब बोले नहीं, २० गुरुकों बहुत कर्कश (कठोर)वचन बोले, २१ जब गुरु बोलावे, तब आसन उपर बैठाही उत्तर देवे, २२ गुरु बो लावे तब कहे, क्या कहते हो? २३ गुरुकों तूंकारा देवे, २४ गुरुने प्रेर णा करी तब गुरुकी प्रेरणाकों उत्तर करकें हणे, जैसें गुरु कहे किः— हे शिष्य! तुमने ग्लानकी वैयावृत्य क्यों नहीं करी? तब शिष्य कहे कि तुम क्यों नही करते? २५ गुरुकथा कहते हूए मनमें प्रसन्न न होवे, किंतु विमन होवे, २६ सूत्रादि कहते गुरुकों कहे तुमकों अर्थ याद नहीं है? यह अर्थ ऐसें नहीं होवे है? २७ गुरु कथा कहता है, तिस कथाकों बीचमें छेद करे, अरु कहे, में कथा करुंगा? ऐसें कहे, २८ पर्षदाकों भांगे जैसें कहेकी अब तो भिक्षाका अवसर है, इत्यादि कहे, २९ पर्षदाके विना उठयां गुरुकी कही कथाकों अपणी चतुराइ दिखलाने वास्ते विशे ष करकें कहे, ३० गुरुकी शय्या संथारकादिकों पगोंसें संघट्टा करे, ३१ गुरुकी शय्यादि उपर बैठनादि करे, ३२ गुरुसें उंचे आसन उपरि बैठे, ३३ गुरुके बराबर आसन करे, यह तेत्तीस गुरुकी आशातना है.

ये गुरुकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है,एक पगादिसें संघट्टा करे,सो जघन्य आशातना,दूसरी श्लेष्म थूकादि गुरुकें लवमात्र लगावे, तो मध्यम आशातना है, तीसरी गुरुका आदेश न करे, जेकर करे, तोभी उलटा करे, कठोर वचन बोले, गुरुका कह्या न सुणे, इत्यादि उत्कृष्ट आशातना है.

स्थापनाचार्यकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है, एक तो इधर उधर ह लावे पगोंका स्पर्श करे, तो जघन्य आशातना,दूसरी भूमिमें गेरे,अवज्ञासें धरे, सो मध्यम आशातना, तीसरी स्थापनाचार्यकों खोवे, तथा तोडे तो उत्कृष्ट आशातना है. ऐसेंही ज्ञानोपकरण, दर्शनोपकरण, तथा चारित्रोप करण,रजोहरणादि,मुखवस्त्रिका, दंडक,दंडिका प्रमुखकीभी आशातना टाले.

श्रावककों सर्वधर्मोपकरण चरवला मुखवस्त्रिकादि विधि पूर्वक स्वस्था नमें स्थापना प्रमुख करणी चाहियें, अन्यथा धर्मकी अवज्ञादि प्रमुख दूषणोंकी आपत्ति होवे, शास्त्रमें लिखा हैकि जो उत्सूत्र नांखे, तथा अ र्हतकी अरु गुरुकी अवज्ञादि महा आशातना करे, तो सावद्याचार्य, मरी चि, जमाली, कुलवालिकादिककी तरें अनंत जन्म मरणकी वृद्धि होवे ॥ यतः ॥ उस्सुत्त नासगाणं, बोहीनासो अणंत संसारो ॥ पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्तं ता न नासंति ॥ १ ॥ तित्थयर पवयण सुयं, आयरियं गणहरं म हिड्डियं ॥ आसायंतो बहुसो,अणंत संसारिउ होइ ॥ २ ॥ अस्यार्थः सुगमः ॥

ऐसेंही देव, ज्ञान, साधारण द्रव्यका तथा गुरुका द्रव्य, वस्त्र, पात्रादि कका विनाश तिनकी उपेक्षादिक जो करनी है, सोनी महा आशातना है, यदूचे ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्व विणासे,इ सिघाए पवयणस्स उड्डाहे ॥ संजई चउत्थभंगे, मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥ १ ॥ तथा श्रावकदिनकृत्य दर्शनशु द्धि आदि शास्त्रोंमेंनी लिखा है ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्वं साहा,रणं च जो दुहइ मोहिअमईउ ॥ धम्मं च सो न याणाइ, अहवा बद्धाउ उ नरए ॥ १ ॥ अर्थः– चैत्यद्रव्य तथा साधारण द्रव्य जो नाश करे, मोहितमति जातों वो धर्म नहीं जानता है, अथवा उसने नरकका आयु बांधा है, उसिके वास्तेही ऐसा अयोग्य काम करता है, तथा चैत्यद्रव्यका नाश, नक्षण, उपेक्षण कोइ करे, तिसकों जेकर साधु न हटावे, तो वो साधुनी अनंत संसारी हो जावे.

प्रश्नः– मन, वचन अरु काया करकें जिसने सावद्य त्यागा है, ऐसे यतिकों चैत्यद्रव्यकी रक्षामें क्या अधिकार है ?

उत्तरः– जे कर राजा तथा वजीरकों याचना करकें तिनोके पाससें घर, हाट, गामादि लेकर विधिसें नवा पेदास उत्पन्न करे, तब तेरा विवक्षित दूषण होवेगा, परंतु यथा नद्रकादि करकें जो किसीने पहिलां दीया होवे, उसका नाश देखकें रक्षा करे, तब कोइ दूषण नहीं होता हैं, बलिके जि नाज्ञाकी आराधना होनेसें धर्मकी पुष्टि होती है.

नवे जिनमंदिरके बनानेसें जो पूर्वें बना हूआ है उसके प्रतिपंथि अ र्थात् शत्रुकों जो साधु हटावे, तो वो साधुकों न प्रायश्चित्त है, तथा न वो साधुकी प्रतिज्ञा नंग होती है, आगमनी ऐसाही कहता है. इस वास्ते

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है.

॥ तथा ॥ आयणं जो भंजइ, पडिवन्नं धणं न देइ देवस्स ॥ नस्सं तं स मुविरकइ, सोवि हु परिभमइ संसारे ॥ १ ॥ अस्यार्थः— जो पुरुष मंदिरकी आमदनी भांगे, अरु जो मुखसें कह कर जिनद्रव्य न देवे, सोभी संसारमें भ्र मण करे ॥ तथा ॥ जिणवयण वुड्डिकरं, पभावगं नाणदंसण गुणाणं ॥ भरकं तोजिणदव्वं, अणंत संसारीउ होइ ॥ १ ॥ अर्थः— जो जिनमतकी वृद्धि करे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणा, महापूजा सत्कारादि करकें ज्ञान दर्शनकी प्रभावना करे, परंतु जिनद्रव्यका नाश करे, तो अनंत संसारी होवे, अरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, देवद्रव्यकी वृद्धि करे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे, परंतु पंदरा कर्मादान, खोटा वणिज्य व र्जकें सद् व्यवहार करकें जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यतः ॥ जिणवर आणा रहियं, वद्धारंतावि केवि जिणदव्वं ॥ वुड्डंति भवसमुद्दे, मूढा मोहेण अन्ना णी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है.

कोइ कहते हैं किश्रावक विना औरोंकों अधिक गहनां रखकें कालांतरमें व्याजकी वृद्धि करे, सो उचित है. ऐसा कहनांभी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पच्चीसी आदिक ग्रंथोंमें संकाशकी कथामें तैसेंही लिखा है. चैत्यद्रव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते है, सागर श्रेष्ठीवत्. यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी. ज्ञान द्रव्यभी देव द्रव्यकी तरें अकल्पनीय है, अर्थात् नाश करनां, भक्षण करनां, बिगडतेकी सार संभाल न करणी. ऐसेंही सा धारण द्रव्यभी संघका दीया हूआही कल्पता है, विना दीया काममें लानां न कल्पे, संघकोंभी सात क्षेत्रमेंही साधारण द्रव्य लगानां चाहियें, मं गने वालोंकों उसमेंसें देनां न चाहियें, ऐसीही ज्ञान संबंधी कागज पत्रादि साधुका दीया हूआ श्रावकनें अपणे कार्यमें नहीं लगानां, अपणी पोथीमेंभी न रखना, स्थापनाचार्य अरु जपमालादि ले लेनेका व्यवहार तो दीखता है, तथा गुरुकी आज्ञा विना साधु साध्वीकों लिखारी पासें लि खानां अरु वस्त्र सूत्रादिकका लेनांभी नहीं कल्पता. इत्यादि विचार लेनां, तिस वास्ते थोडासाभी ज्ञान अरु साधारण द्रव्यका भोग न करनां चाहियें.

जो देवके नामका बोले, सो द्रव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवद्रव्य जितना शीघ्र देवे, उतना अछा है, कदापि विलंब करे, तो पीछे क्या जाने धनहानि मरणादि होवे? तदा देवद्रव्यका ऋण रहजाये, और संसारीका देनांभी श्रावककों शीघ्र दे देनां चाहियें, तो फेर देवद्रव्यका क्या कहनां है? जिस वखत माला पहराइ तथा और कुछ द्रव्य देवके जंमारेमें देनां करा, उसी वखतसें वो देव द्रव्य हो चूका, उस द्रव्यसें जो लाज होवे, सोभी देवद्रव्य है, उस द्रव्यकों श्रावकनें भोगनां नहीं, इस वास्ते शीघ्र दे देनां चाहियें, जे कर मासादिक पीछे देनेका कौल करे, तदा करार उपर विना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघकें देवे, तो देवद्रव्य खायेका दूषण है. देवद्रव्यकी उगराहीभी श्रावक अपणी उगराहीकी तरें यत्नसें करे, जेकर देवद्रव्य लेनेमें ढील करे, अरु कदाचित् दुर्भिक्ष दरिद्रादि अवस्था आ जावे, तो फेर मिलनां दुष्कर हो जावे, तथा देनेवालाभी उत्साह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे, नहीं तो देवद्रव्यभक्षणका दोष है.

तथा देव ज्ञान साधारण संबंधी हाट, खेत, वाडी, पाषाण, ईंट, काष्ठ, बांस, मिट्टी, खडीया, चंदन, केसर, बरास, फूल, फूलचंगेरी, धूपपात्र, कलश, वासकूंपी, छत्रसहित सिंहासन, चमर, चंद्रोदय, झालर, भेरी, चानणी, तंबू, कनात, पडदे, कंबल, चौंकी, तखत, पाटा, पाटी, घडा, बडा उरसा, कज्जल, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाला, प्रनालादिकका पाणी, ये सर्व पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममें न वर्त्तनी चाहियें, टूट फूट मलीनादि हो जावे, तो महापाप होवे, देव आगें दीवा बालकें उस दीवेके चानणेमें कोइ सांसारिक काम करे, तो मरकें तिर्यंच होवे, उस वास्ते देवके दीवेसें खतपत्र भी न वांचनां चाहियें, रूपकभी न परखणा, घरका कामभी देवके दीवेसें न करणां, तथा देवके चंदन, केसरसें तिलक न करे, देवके जलसें हाथ न धोवे, स्नात्रजलभी थोडासा लेनां चाहियें, तथा देवसंबंधी झल्लरी, मृदंग, भेरी प्रमुख गुरुके तथा संघके न बजावे, जे कर कोइ देवके उपकरण झल्लरी आदिकसें कोइ कार्य करनां होवे तो बहुत निकराणां देव आगें रखकें लेवे, कदाचित् कोइ उपकरण टूट जावे, तब अपणां धन खरचकें नवा बनवावे, देवका दीवा लालटैन (फानूष) प्रमुखमें जुदाही राखे,

तथा साधारण द्रव्यसें जो उपगरी प्रमुख बनावे, तब तो सर्वधर्म कार्यमें वर्ते, तो दोष नहीं जैसें जावोंसें करे, सोई प्रमाण है.

देवका तथा ज्ञानका घरादिकभी श्रावककों निःशूकतादि दोष होनेसें भाडे लेनां न चाहियें.साधारण संबंधि घरादिक संघकी अनुमतिसें लोक व्यवहार का भाडा दे कर वरते,तो दोष नहीं,परंतु भाडा कशरके दिनमें स्वयमेव दे देवे, उस मकानके समरानेमें जो धन लगे, तिसकों भाडेमें गिन लेवे, तो दोष नहीं. अरु जो साधर्मी संकट (निर्धनपणेसें दुःखी) होवे, वो संघकी आ ज्ञासें विना भाडे दीयांभी रहे, तो दोष नहीं तथा तीर्थादिकमें अरु देह रेमें जो बहुत काल रहनां पडे, वहां सोवे, तो तहांभी लेखे अनुसार अ धिक भाडा दे देवे, थोडा देवे. तो दोष है. भाडा विना दीयां देव, ज्ञान, साधारण संबंधी वस्त्र नालियर सोने रूपेकी पाटी, कलश, फूल, पक्वान्न, सूखडी प्रमुख उजमणेमें, पुस्तक पूजामें, नंदी मांडनेमें,न मेलनी चाहियें, क्योंकि उजमणादि तो उसनें अपणे नामका करा है फेर देव, ज्ञान, अरु साधारण संबंधी पूर्वोक्त वस्तु भाडे विना वर्ते, तो स्पष्ट दोष है.

तथा घर देहरेमें अक्षत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके वेचनेमें जो धन होवे, तिसके लीये फूलादिककों घर देहरेमें न चढावे, तथा पंचायती बडे मंदिरमेंभी आप न चढावे, पूजारी आगें सर्व स्वरूप कहे कि यह मंदिरही का द्रव्य है, परंतु मेरा नहीं, पूजारी न होवे, तो संघ समक्ष कह देवे, ऐसें न कहे, तो दूषण है. घर देहरेका नैवेद्यादि मालीकों देवे, परंतु वो मालीकी नौकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलांही सामग्री नौकरीमें देणी कर लेवे, तो दोष नहीं. मुख्यवृत्तिमें तो नौकरी चढावेसें अलग देनी चाहियें.

घर देहरेके चढे हूए चावलादि बडे मंदिरमें भेज देवे, अन्यथा घर दे हरेके द्रव्यसें घर देहरेकी पूजा होवेगी, नतु स्वद्रव्य करकें होवेगी, तब अ नादर अवज्ञादि दोष है, ऐसा करणां युक्त नहीं, क्योंकि स्वद्रव्यसेंही पूजा करणी उचित है, तथा देहरेका नैवेद्य अक्षतादि अपणे धनकी तरें रखने चाहियें, पूरे मूलासें वेचकें देव द्रव्यकों वधारनां चाहियें, परंतु जैसें तैसें मोलसें न जाने देवे, नहीं तो देवद्रव्यके नाश करेका दूषण लग जावेगा.

तथा सर्व तरें रक्षा करतांभी चोर, अग्नि, आदिकके उपद्रवसें देवद्र व्य नष्ट हो जावे, तो चिंता कारककों दोष नहीं.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रजावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसें लेवे, फेर खरचनेके अवसरमें जी गुरु संघादिकके आगें प्रगट कह देवे, कि यह धन मैने अमुकका दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है.

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमें दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर किसीने धर्म खरचमें धन दीया होवे. तब तिसका प्रगट नाम ले कर सर्व समक्ष न्याराही खरच करनां चाहियें, यदा बहुतें मिल कर यात्रा साधर्मि वात्सल्य संघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे.

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करनां कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करनां माने, सो बहुत श्रावकादिकोंके आगें कहनां चाहियें, जेसें में तुमारे नामसें इतने दिनोके बीचमें इतना धन खरचुंगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीछें, सो धन सर्व समक्ष अपणे नामसें नहीं, किंतु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देनां चाहियें, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करकें तो साधारण द्रव्यहीका करनां चाहियें, क्योंकि जहां जहां काम पडे, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचकें तिसकों उपष्टंन देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोजी उसकों उसी धनसें उपष्टंज देवे, लोकेप्युक्तं ॥श्लोक॥ दरिद्रं जर राजेंद्र,मा समृद्धं कदाचन ॥ व्याधितस्यौषधं पथ्यं,नीरोगस्य किमौषधं ॥ १ ॥ इसी वास्ते प्रजावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लम्बुलंजनादिकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनकों विशेष वस्तु देनी चाहियें, अन्यथा धर्मावज्ञादि दोष होवे. यह बात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनकों अधिक वस्तु देनी चाहियें,यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोकों बराबर देवे.

अपणा खरच धर्मद्रव्यसें न करणां, यात्रादिकके निमित्त जो धन काढे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो द्रव्य अपणे जोजनमें अथवा गाडी आदिकके जाडेमें लगावेगा, तब जरूर उसकों देवद्रव्य खा

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करकें चूकिकें बे समझीसें इत्यादि का रणोसें कोइ श्रावकादि देवादि द्रव्यका उपनोग कर लेवे, तो तिसकें प्राय श्चित्तमें जितना द्रव्य खाया होवे, उतना द्रव्य देव साधारण संबंधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अनावसें धर्मस्थानमें थोडाही खरचे, परंतु देणा किसीका न रखे, देवादि द्रव्य तो विशेष करकें न रखे, इसी रीतिसें श्री जिनराजजीकी पूजा दृढनावोंसें करनी चाहियें ॥ इति संक्षेपतो जिनेश्वर पर मेश्वर पूजनविधिः संपूर्णः ॥

अब गुरु वंदनाकी विधि लिखते हैं,जो ज्ञानादि पांच आचार करकें सं युक्त होवे, और शुद्ध प्ररूपक होवे, सो गुरु है, पांच आचारका स्वरूप दे खनां होवे, तदा श्री रत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप ग्रंथ देख लेनां.

यह पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वें अपणे आप करा था, सो विशेष करकें विधि पूर्वक गुरु मुखसें उच्चरावे, क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरेंसें करा जाता है, एक आत्मसाक्षिक, दूसरा देवसा क्षिक, तीसरा गुरुसाक्षिक, तिसकी विधि यह है, कि:–

मंदिरमें देववंदनार्थे, स्नात्रादि देखनेके अर्थे, धर्मोपदेश देनेके अर्थे, गुरु जिनमंदिरमें आया होवे, तथा वस्तिमें होवै, तहां मंदिरकी तरें तीन निस्सही पंचानिगमनादि यथायोग्य विधिसें जा करकें गुरुके धर्मोपदेशसें पहिलां तथा पीछें, यथाविधिसें पंचवीश आवश्यक शुद्ध द्वादशावर्त्त वं दना देवे, वंदनाका बडा फल कहा है, कृष्णवासुदेववत्. तथा नाष्यमें वंदना तीन तरेंकी कही हैं, एक तो मस्तक नमावणादि सो फेटा वंदना, दूसरी संपूर्ण दो खमासमण पढनेसें स्तोजवंदना होती है, तीसरी द्वाद शावर्त्त करनेसें द्वादशावर्त्त वंदना होती है, तिसमें प्रथम वंदना तो सर्व संघकों करणी, दूसरी वंदना सर्व स्वदर्शनी साधुउंकों करणी, अरु ती सरी वंदना जो है, सो पदवीधर आचार्यादिककों करनी.

जिसने सवेरेका पडिक्कमणा न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वंदना क रणी, क्योंकि नाष्यमें ऐसेंही लिखा है. १ नाष्योक्तविधि ईर्यापथप्रतिक्रमे २ पीछें कुस्वप्नका कायोत्सर्ग करे, सौ उश्वास प्रमाण करे, जेकर स्वप्नमें स्त्रीसें संगम करा होवे, तदा अशुचिकी सर्व जगा धोकें पीछें एक सौ आठ श्वासोश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, ३ पीछें चैत्यवंदन करे, ४ पीछें क्

माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे, ५ पीछें दो वंदना देवें, ६ पीछें दे वसिआदिक आलोवे, ७ फेर वंदना दो देवे, ८ पीछें अप्रुट्ठिओमि कहे, ९ पीछें दो वंदना करे, १० पीछें प्रत्याख्यान करे, ११ पीछें भगवन् अहं इत्यादि चार क्षमाश्रमण देवे, १२ पीछें स्वाध्याय संदिसावउं कहे, फेर क्षमाश्रमण पूर्वक सक्षाय करूं, असें कहे, पीछें स्वाध्याय करे, यह सवेरकी वंदनाविधि है.

तथा प्रथम १ ईर्यापथ पडिक्कमे, २ पीछें चैत्यवंदना करे, ३ पीछें क्षमाश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिकाका प्रतिलेखन करे, ४ पीछें दो वंदना करे, ५ पीछें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीछें दो वंदना करे, ७ पीछें देवसि आलोउं कहे, ८ पीछें दो वंदना करे, ९ पीछें अप्रुट्ठिउं कहे, १० पीछें भगवन् इत्यादि चार स्तोभवंदना करे, ११ पीछें दैवसिक प्रायश्चित्तका कायोत्सर्ग करे, १२ पीछें पूर्ववत् दो क्षमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह संध्याकी वंदन विधि है.

जे कर किसी कार्य करणादिसें गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा संक्षेप मात्र वंदना करे, असें वंदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञप्तिसूत्रमें लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणेके परिणाम दृढभी होवे, तोभी गुरुके पासों करावें, गुरु पासों प्रत्याख्यान करानेमें यह गुण है, सो लिखते हैं. १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करणां होता है, ३ कर्मका क्षय होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है.

असेंही दैवसिक चातुर्मासिक नियमादिभी गुरुका संभव होवें, गुरु साक्षिकही करनां चाहियें, योगशास्त्रमें गुरुकी भक्ति असें लिखी है ॥ श्लोक ॥ अभ्युत्थानं तदालोके, ऽभियानं च तदागमे ॥ शिरस्यंजलिसंश्लेषः, स्वयमासनढौकनं ॥१॥ आसनाभिग्रहो भक्त्या, वंदना पर्युपासनं ॥ तद्यानेऽनुगमश्चेति, प्रतिपत्तिरियं गुरौ ॥ २ ॥ अस्यार्थः— १ गुरुकों आता देखकें खडा हो जानां, २ सन्मुख लेने जानां, ३ मस्तक उपर अंजलि बांध कर प्रणाम करणां, ४ गुरुकों आसन देनां, ५ जब गुरु आसन उपर बैठ जावेगा, तब मैं आसन उपर बैठुंगा, असा अभिग्रह लेवे, ६ भक्तिसें वंदना पर्युपासना करे, ७ जब गुरु जावे, तब पोहुंचाने जावे, ८ यह गुरुकी भक्ति है. तथा १ अडके गुरुके बराबर न बैठे, २ आगें न बैठे, ३ गुरुकी

तर्फ पीठ दे कर न बैठे, ४ पग उपर पग चढा करकें गुरुके पास न बैठे, ५ पालठी मारकें न बैठे, ६ हाथोंसें जंघाकों लपेटके न बैठे, ७ पग पसारकें न बैठे, ८ विकथा न करे, ९ बहुत हसे नहीं, १० नींद न लेवे, ११ मन, वचन, काया गोप करकें हाथ जोडी भक्ति बहुमान पूर्वक उपयोग सहित सुणे, क्योंकि गुरु पासों धर्म सुननेंसें इस लोक परलोकमें बहुत गुण होता है.

तथा गुरुकों पूछे, किसी साधुकों रोगादि होवे, तदा वैद्यकों बोलाउं? औषधिका योग मिलावुं? इत्यादि गुरु गच्छकी सर्व तरेंसें खबर सार लेवे, भोजनके अवसरमें उपाश्रयमें जा करकें साधुओंकों निमंत्रणा करे, तथा औषधि पथ्यादि जो जिसकों योग्य होवे, सो देवे, जब साधु, श्रावकके घरमें आवे, तब जो जो वस्तु साधुके योग्य होवे, सो सो सर्व वस्तुकों देने वास्ते निमंत्रणा करे, सर्व वस्तुओंका नाम लेवे, जेकर साधु नहींभी लेवे, तोभी दाताकों जीर्णशेठवत् पुण्य फल है. रोगी साधुकी प्रतिचर्या करणेंसें जीवानंद वैद्यवत् महापुण्य फल होता है. साधुओंके रहेनेकों स्थान देवे, तथा जिनशासनके प्रत्यनीककों सर्वशक्तिसें निवारण करे, तथा साधवीयोंकों दुष्ट, नास्तिक, दुःशील जनोंसें रक्षा करे, अपने घरके पास बंदोबस्त वाला शुभ उपाश्रय रहनेकों देवे, उनोंको अपणी स्त्री, वहू, बहिन, बेटी प्रमुखसें सेवा भक्ति करावे, अपणी बेटीयोंकों साधवीयोंसें विद्या शिखलावे, जेकर किसी बेटीकों वैराग्य चढे, तब साधवीयोंकों दे देवे, जे कर कोइ साधवी धर्मकृत्य भूल जावे, तदा स्मरण करा देवे, जेकर कोइ साधवी अन्यायमें प्रवृत्त होवे, तो निवारण करे, तथा आप रोज गुरुपासों नवीन नवीन शास्त्र पढे, जेकर बुद्धि थोडी होवे, तदा ऐसा विचारे कि सुरमेंदानीमेंसें थोडा थोडा अंजन निकलनेसें अंजन क्षय हो जाता है, तथा वर्मीका बंधणा, ऐसें परिश्रम अभ्यास करणेसें निःफल दिन न जाने देवे, थोडी बुद्धिभी होवे तोभी पढनेका अभ्यास न छोडे, इत्यादि धर्मकृत्य करकें पीछें जेकर राजा श्रावक होवे, तदा राजसभामें जावे, प्रधान होवे, तो न्याय सभामें जावे, वणिया होवे, तदा हट्टीबजारमें जावे, इत्यादि उचित स्थानमें जा करकें धर्मसें विरुद्ध न होवे, उसी रीतिसें धन उपार्जनेकी चिंता करे.

प्रथम राजा किस रीतिसें प्रवर्त्ते, सो लिखते हैं. १ जो राजा होवे, सो दरिद्री, मान्य, अमान्य, उत्तम, अधमादि सर्वलोकोंका पक्षपात रहित मध्य

स्थ हो कर न्याय करे, २ राजाके कारजारी (मंत्री) आदिक तिनका ध र्मविरोध यह है, कि राजाका अरु प्रजाका नुकशान न होवे, तैसें प्र वर्त्ते, क्योंकि जो मंत्री राजाका हित वांछता है, उस उपर प्रजा द्वेष क रती है, अरु जो प्रजाका हितकारी है, उसकों राजा छोड देता है, इसी वास्ते राजमंत्री आदिकोंकों दोनोका हितकारी होनां चाहियें.

वणिक् व्यापारी लोकोंका धर्मविरोध यह है. जो व्यापारकी शुद्धि करे ॥ तथैव चाह ॥ विवहारसुद्धि देसा,इ विरुद्ध चाय उचिय चरणेहिं ॥ तो कुणइ अच्छचिंतं, निव्वाहितो नियं धम्मं ॥ १ ॥ अस्यार्थः— व्यापारकी शुद्धि, देशादि विरुद्धका त्याग, उचित आचरण, इन तीनो प्रकारें करकें धन उपार्जनेकी चिंता करे, अरु अपणे धर्मकाभी निर्वाह करे, क्योंकि ऐसा कोइ कार्य नहीं है, किः— जो धनसें सिद्ध न होवे ? तिस वास्ते बुद्धिमान् धन उपार्जनेंमें यत्न करे ॥ यदाह ॥ नहि तद्विद्यते किंचि, यदर्थेन न सिद्ध्य ति ॥ यत्नेन मतिमांस्तस्मा, दर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥ १ ॥ इहां जो अर्थ चिंता है. सो अनुवादरूप है, क्योंकि धन उपार्जनेकी चिंता लोकमें स्वतःही सिद्ध है. कुछ शास्त्रकारके उपदेशसें नहीं, 'अरु धर्म निर्वाहयन्' यह जो कहनां है, सो विधेय करने योग्य है, क्योंकि इसकी आगें प्राप्ति नहीं है, शास्त्रका जो उपदेश है, सो अप्राप्त अर्थकी प्राप्ति वास्ते है, शेष सर्व अनुवादादि रूप है. अब आजीविका चलानेके प्रकार कहते है.

आजीविका जो है, सो सात प्रकारसें है. १ व्यापार करनेसें, २ विद्या सें, ३ खेती करनेसें, ४ पशुओंके पालनेसें, ५ कारीगरी करनेसें, ६ नौक री करनेसें, ७ भीख मांगनेसें, तिनमें वणिज्य करनेसें वणिक लोकोंकी आजीविका है, २ विद्यासें वैद्यादिकोंकी आजीविका है, ३ खेती करनेसें कणबादिकोंकी है, ४ पशुपालनेसें गोपाल अजापालादिकोंकी है, ५ शिल्प करकें चितारादिकोंकी है, ६ नौकरी करनेसें सिपाही लोकोंकी है, ७ भिक्षा करकें मांग खानेवालोंकी आजीविका है. तिनमें १ वणिज्य सो धान्य, घृत, तेल, कार्प्पास, सूत्र, वस्त्र, धातु, मणि, मोती, रूपइया, सोनइया प्रमुख जितनी जातका किरियाणा है, सो सर्व व्यापार है. अरु जो व्याज देनां है, सोभी व्यापार है.

२ विद्याभी औषधि, रस, रसायन, चूर्ण, अंजनादि, वास्तुक शास्त्र, पंखी

का शकुन, भूत भविष्यतादि निमित्त, सामुद्रिक, चूडामणि, जवाहिर परख नेका शास्त्र, धर्म, अर्थ, काम, ज्योतिष तर्कादि भेदसें अनेक प्रकारकी है, इस वैद्यविद्यामें अतारपणां, पंसारीपणां करनां ठीक नहीं, क्योंकि इसमें प्रायः कुध्यान होनेसें बहुत गुण नहिं दिखता है, क्योंकि जिसकों जिस्सें लाभ होता है, वो उसी बातकों चाहता है ॥ तडुक्तं ॥ आर्या ॥ विग्रहमि च्छंति भटा, वैद्याश्च व्याधिपीडितं लोकं । मृतकं बहुलं विप्राः, क्षेम सुभिक्षं च निर्ग्रंथाः ॥ १ ॥ अर्थः– सुभट संग्राम चाहते है, वैद्य रोगपीडित लोकों कों चाहते हैं, अरु ब्राह्मण बहुत लोकोंकों मरणां चाहते हैं, तथा निरुप द्रव, सुकालकों साधु निर्ग्रंथ चाहते हैं. परंतु जो वैद्य अत्यंत लोभी होवे, धन लेने वास्ते उलटा औषधि जानके देवे, जिसके मनमें दया न होवे, जो त्यागी साधुओंकी औषधि न करे, जो दरिद्री, अनाथादि लोकोंकों म रते जानकेभी धन खोस लेवे, मांस मद्यादि अभक्ष्य वस्तुका भक्षण क रनां बतावे, झूठो औषधि बनाके लोकोंकों ठगे, वो वैद्यविद्या नरककी देने वाली है, सो न करनी चाहियें. अरु जो वैद्य सत् प्रकृति वाला होवे, लोभी न होवे, पूर्वोक्त दूषण रहित होवे, परोपकारी होवे, ऐसेकी वैद्य विद्या श्रीऋषभदेवजीके जीव जीवानंद वैद्यकी तरें दोनों भवोंमें गुण देने वाली है, ऐसी वैद्यविद्यासें आजीविका करे, तो अच्छी है.

३–४ तीसरी खेती, चौथा पशुपालक, उसमें खेतीभी तीन तरेंसें होती है, एक मेघसें, दूसरी कूप नहरादिसें, तीसरी दोनोंसें. चौथा पशु पालक पणां, सो गौ, महिष, बकरी, ऊंट, बैल, घोडा, हाथी, इनकों बेच बेचकें आ जीविका करणी, ये खेती अरु पशुपाल्य, यह दोनों काम विवेकीकों क रने उचित नहीं. जे कर इनके करे विना निर्वाह न होवे, तदा बीज बो नेका काल जाणे, भूमि सरस नीरस जाणे, अरु जो खेत पहिलां वाह्यां विना बोया न जावे, दूसरा रस्तेका क्षेत्र, यह दोनो, क्षत्रकों वर्जे, तो धन की वृद्धि होवे, अरु जो पशुपाल्य पणां करे, तो पशुओं ऊपर निर्दय न होवे, पशुका कोइ अवयव न छेदे. इसी तरें पशुपालपणा करे.

५ पांचमी शिल्प आजीविका है, सो शिल्प सौ तरेंका है, मूल शिल्प तो पांच हैं, १ कुंभार, २ लोहार, ३ चितारा, ४ वणकर, अर्थात् बुनने वाला, ५ नाइ, इन पांचोंके बीश बीश भेद है, यद्यपि इस कालमें न्यूनाधि

कभी होवेंगें, परंतु श्रीऋषभदेवजीने प्रथम सौ तरेंहीका शिल्प पर्योकों शिखलाया था, इस वास्ते सौही लिखा है. जो सांसारिक विद्या है, सो स बैकोइ शिल्पमें है, कोइ कर्ममें है, शिल्प, गुरु उपदेशसें आता है, सोही है, अरु कर्म स्वयमेवही आ जाता है, यह कर्मभी सामान्यसें चार प्रकारें है, १ उत्तम बुद्धिसें धन कमाता है, २ मध्यम हाथोंसें कमावे, ३ अधम पगोंसें कमावे, ४ अधमाधम मस्तकसें बोझा ढो कर कमावे.

६ सेवा करकें आजीविका करे. सो सेवा राजाकी, मंत्रीकी, शेठकी, सामान्य लोकोंकी, नोकरी यह चार प्रकारें है. प्रथम तो नौकरी किसी कीभी न करनी चाहियें, क्योंकि नौकर परवश हो जाता है, जे कर नि र्वाह न होवे, तदा नौकरीभी करे, परंतु जिसकी नौकरी करे, उसमें यह कहे हूए गुण होवे, तो उसके उहां नौकर रहे, जो १ कानोंका डुर्बल न होवे, २ सूरमा होवे, ३ कृतज्ञ होवे, ४ सात्विक, गंभीर, धीर, उदार, शीलवान्, गुणोंका रागी होवे, उसकी नौकरी करे, अरु जो क्रूर प्रकृति वाला होवे. कुव्यसनी होवे, लोभी होवे, चतुर न होवे, सदा रोगी रहे, मूर्ख होवे, अन्यायी होवे, ऐसोंकी नौकरी न करे, क्योंकि कामंदकीय ना मक नीति शास्त्रमें लिखा है, कि जिस राजाको वृद्ध पुरुषोंनें सेवा करी होवे, सो राजा अछा है, स्वामीकोंभी चाहियें कि जैसा सेवक होवे, तैसा उसका सन्मान करे, सेवकभी थके हूए, भूखे हूये, क्रोधमें हूये, व्याकुल होये, तृषावंत होये, शयन करने लगे, दूसरेके अर्ज करते हूये, इन अव स्थायोंमें स्वामीकों विनति न करे, तथा राजाकी माता, राजाकी राणी, राजकुमार, मुख्यमंत्री, अदालती, राजेका दरवाजेवान, इनके साथ रा जाकी तरें वर्त्तना चाहियें. इस रीतीसें प्रवर्त्ते, तो धनकी प्राप्ति डुर्लभ नहीं ॥ यदूचे ॥ श्लोक ॥ इक्षुक्षेत्रं समुद्रश्च, योनिपोषणमेव च ॥ प्रसादो भूभुजां चैव, सद्योघ्नंति दरिद्रतां ॥ १ ॥ निंदंतु मानिनां सेवा, राजादीनां सु खैषिणः ॥ स्वजनाः स्वजनोद्धार, संहारो नविनातया ॥ २ ॥ मंत्री, श्रेष्ठी, सेनानी इत्यादि व्यापारभी सर्व नृपसेवाके अंतर्भावही हैं, परंतु जेहलखा नेका दरोगादि, नगरका कोटवाल पणां, सीमापाल, इत्यादि नौकरी न करणी चाहियें, क्योंकि यह नौकरीयों निर्दयी लोकोंके करनेकी हैं, तिस वास्ते श्रावककों नहीं करनी. जे कर कोइ श्रावक राजाधिकारी हो जावे,

तब वस्तु पालादिक मंत्रीयोंकी तरें महाधर्म कीर्तिका करनेवाला होवे, श्रावक मुख्यवृत्ति करकें तो सम्यग्दृष्टिकोंही नौकरी करे.

७ सातमी नीख मांगनेसें आजीविका है, सो नीख मांगनेकेनी अनेक नेद हैं, तिनमें धर्मोपष्टंन मात्र आहार, वस्त्र, पात्रादिककी निक्षा लेवे, सो नी जिस साधुने सर्वसंसार और परिग्रहका संग त्यागा है, तिसकों मांगनी उचित है, क्योंकि उसकी नीख मांगनेंसें और गति नहीं है, श्रीहरिजद्रसूरिजीने पांचमे अष्टकमें निक्षा तीन प्रकारकी लिखी है, प्रथम निक्षा सर्वसंपत्करी, दूसरी पौरुषघ्नी, तीसरी वृत्तिनिक्षा है, जो साधु परिग्रहका त्यागी, धर्मध्यान संयुक्त, जिनाज्ञासहित होनेसें षट्कायके आरंनसें रहित, तिसकी निक्षा सर्व संपत्करी है, तथा जो साधु तो बन गया है, परंतु साधुके गुण उसमें नहि हैं, तथा जो गृहस्थावासमें लष्ट पुष्ट षट्कायका आरंनी पडिमावहे बिनाका श्रावक, तथा और गृहस्थ जो मांगकें खावे, तिसकी पौरुषघ्नी निक्षा है, वो पुरुष धर्मकी लाघवताका करने वाला है, पूर्वजन्ममें जिनाज्ञा खंमने वाला है, आगें अनंत जन्म लग दुःखी रहेगा, तथा जो निर्धन, अंधा, पांगला, असमर्थ, और कोइ काम करने समर्थ नहीं, वो नीख मांगकें खावे, तो तीसरी वृत्तिनिक्षा है, यह निक्षा दुष्ट नहीं. इस नीखके मांगनेंसें लघुतादि धर्मके दूषण नहीं होते हैं, क्योंकी जो इनकों देता है, वो अनुंकपा (दया) करकें देता है, देनेवाला पुण्य उपार्जन करता है, इस वास्ते गृहस्थकों नीख न मांगनी चाहियें. धर्मी श्रावककों तो विशेष करकें नीख न मांगनी चाहियें, निक्षा मांगनेंसें धर्मकी निंदा, अरु धर्मकी निंदासें दुर्लनबोधी होता है, नीख मांगनेंसें उदर पूर्ण तो हो जाता है, परंतु लक्ष्मी नहीं होती है ॥ यतः ॥ लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये, किंचिदस्ति च कर्षणे ॥ अस्ति नास्ति च सेवायां, निक्षायां न कदाचन ॥ १ ॥

मनुस्मृतिके चौथे अध्यायमेंनी लिखा है, कि जब वाणिज्य करे, तब कष्टमें सहायक, पूंजीका बल, स्वनाग्योदय, देश, काल, देखकें करे, वाणिज्य करणे लगे, तब पहिला थोडा करे, पीछें लान्न जाणे, तो यथायोग्य करे, कदाचित् निर्वाहके न हूये खरकर्मनी करे, तोनी अपणे आपकों निंदता हूआ करे, बिना देखा बिना परीक्षाके सौदा न लेवे, जो सौदा संदेह वाला

होवे, वो बहुतोंके साथ मिल कर लेवे, जहां स्वचक्र परचक्रादिका उपद्रव न होवे, अरु धर्म सामग्री होवे, तिस क्षेत्रमें व्यापार करे.

कालसें अठाही तीन, पर्वतिथिके दिन व्यापार न करे, जो वस्तु वर्षा कालके साथं विरोधि होवे, सो त्यागे, नावसेंती जो क्षत्रिय जातिका व्या पारी राजा प्रमुख होवे, तिसके साथ व्यापार न करे, अपणे विरोधीकों उधारा न देवे, तथा नट विट वेश्या, जुआरी प्रमुखकों तो विशेष करकें उधारा नहींही देवे, हथीयारबंधके साथ तथा व्यापारी ब्राह्मणके साथ लेन देन न करे, मुख्य तो अधिक मोलका गहनां रखकें व्याजु देवे, क्योंकि उस्सें मांगनेका क्लेश, विरोध, धर्महानी, धरणादिक कष्ट नहीं होते हैं, जे कर असें निर्वाह न होवे, तदा सत्यवादीकों व्याजु उधार देवे, व्याज नी एक, दो, तीन, चार, पांच प्रमुख सैंकडे पीछें महीनेमें नले लोक जि सकों निंदे नहीं, असा लेवे,

जेकर देनां होवे, तदा करार उपर बिन मांग्याही देनां चाहियें, कदा चित् निर्धनपणेसें एकवारमें दे न सके, तो किशत प्रमाणें जरुर दे देवे, क्योंकि देनां किसीका न रखनां चाहियें ॥ यडुक्तं ॥ धर्मारंने ऋणछेदे, कन्यादा ने धनागमे ॥ शत्रुघातेऽग्निरोगे च, कालक्षेपं न कारयेत् ॥१॥ जे कर देनां न उतरे, तब उसका नौकर रहकर नी देनां उतार देवे, नहीं तो नवांतरोमें उसका कर्मकर (चाकर) महिष, बैल, उंट, खर, खच्चर, घोडा प्रमुख ब न कर देनां पडेगा, लेने वालानी जब जान लेवे, कि यह देने समर्थ नहिं तब बिलकुल मांगनां छोड देवे, असें कहे कि जब तूं देने समर्थ होवेगा, तब दे देनां, नहीं तो यह धन मैं अपणें धर्ममें लगाया, वहीमें लिख ले ता हूं, तेरेसें मैं कुछ नहीं लेवुंगा?

श्रावककों मुख्यवृत्ति तो धर्मीजनोंसेंही व्यवहार करनां चाहियें, क्योंकि वोनों पासें धन रहेगा तो धर्ममें लगेगा, अरु किसी म्लेछ पास धन रहि जावे, तदा व्युत्सर्जन कर देवे, व्युत्सर्जन करां पीछें जेकर वो म्लेछ फेर धन दे देवे, तदा वो धन धर्ममें खरचणे वास्ते संघकों सौंप देवे, अरु व्युत्सर्जन करा है, असानी कह देवे, असेही जो कोइ वस्तु खोइ जावे, अरु ढुंढनेसें न मिले, तो तिस वस्तुकानी व्युत्सर्जन कर देवे, पीछें कदाचित् अपने पास

धनहानी हो जावे,धनकी अप्राप्ति हो जावे,तोनी खेद न करे, क्योंकी खेदका न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण है,

बहुत धन जाता रहे, तोनी धर्म करणेमें आलस न करे, क्योंकि संपदा अरु आपत् बडे आदमीकोंही होती हैं, सदा एक सरिखे दिन किसीके नहीं जाते हैं, पूर्व जन्म जन्मांतरके पुण्यपापोदयसें संपदा, विपदा होती है, इस वास्ते धैर्यका अवलंबनां श्रेष्ठ है, यदा अनेक उपाय करनेसेंनी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी नाग्यवान्का आधार लेवे, अर्थात् सांजो बनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके संग लोहानी तर जाता है.

जे कर बहुता धन हो जावे,तदा अनिमान न करे,क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती हैं, १ निर्दयत्व, २ अहंकार, ३ तृष्णा, ४ कठिन बचन बोलनां, ५ वेश्या, नट, विट, नीच पात्र. वल्लन होते है, इस वास्ते बहुत धन हो जावे, तो इन पांचोंकों अवकाश न देवे, किसीके साथ लडाइ न करे,जबरदस्तके साथ तो विशेष करकें लडाइ नहिं करे. तथा १ धनवंत, २ राजा, ३ पक्षवाला, ४ बलवान्, ५ दीर्घरोषी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ तपस्वी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहां तक नरमाइसें काम बने, तहां तक कठिनाइ न करे, लेने देनेमें ज्रांति नूलादिकसें अन्यथा हो जावे, तो विवाद न करे, किंतु न्यायसें जगडा मिटावे, न्याय करनेवालेकोंनी निर्लोंनी पक्षपात रहित होनां चाहियें, तथा जिस वस्तुके महंगे होनेंसें पर्यायकों पीडा होवे, ऐसी वस्तुके महिंगे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसें डुर्निक्षादिक हो जावे, तबनी सौदेमें डुणे तिणे लान हो जावे, तदा अन्नमें अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रूपइये सैंकडेसें अधिक व्याज न लेवे, किसीका गिर पडा धन न लेवे, तथा कालांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिंदित लान होवे, सो लेवे, यह कथन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा है. तथा खोटा तोल, खोटा मापा, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमें नेल संनेल न करे, वस्तुका अनुचित मौल, अनुचित व्याज, लंचा अर्थात् घूस, कोडवट्टी न लेवे, घसा हूआ तथा खोटा रूपकादि किसीकों खरेमें न देवे, दूसरोंके व्यापारमें नंग न करे, ग्राहक न बकावे, वानकी और न दिखावे, अंधेरा करकें वस्तु न वेचे, जाली खत पत्रादि न बनावे, इत्यादि परवंचन प

णाकों वर्जे, सर्वथा प्रकारें व्यवहार शुद्धि करे, क्योंकि व्यवहार शुद्धिही गृहस्थ धर्मका मूल है.

तथा स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासघात, बालद्रोह, वृद्धद्रोह, देवगुरुद्रोह न करे, थापणमोसा न करे. ये सर्व महापापके काम वर्जे, तथा कूडी साक्षी, रोष, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारों, कर्मचमालपणां है, तिसकों वर्जे. फूठ जो है, सो सर्व पापोंसें बडा पाप है, इस वास्ते फूठ सर्वथा न बोले, न्यायसें धन उपार्जन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते हैं, वो अन्यायसें सुखी नहीं हैं, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसें सुखी हैं, क्योंकि कर्मफल चार तरेंका है ॥ यदाहुर्धर्मघोषसूरिपादाः ॥ एक पुण्यानुबंधी पुण्य है, दूसरा पापानुबंधी पुण्य है, तीसरा पुण्यानुबंधी पाप है, चौथा पापानुबंधी पाप है. यह चार प्रकार जो हैं, तिनकूं किंचित् विस्तार पूर्वक कहते हैं.

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु संपूर्ण आराधकें जो संसारमें नवांतरमें महा सुखी धनाढ्य उत्पन्न होवे, नरत बाहुबलकी तरें, सो पुण्यानुबंधी पुण्य है.

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यनी होवे, परंतु कोणिकराजाकी तरें पाप करणेमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व नवमें अज्ञान कष्ट करणेसें होता है, सो पापानुबंधी पुण्य है.

३ जो पुरुष पापके उदयसें दरिद्री अरु दुःखी होवे, परंतु श्रीजिनधर्ममें बडा अनुरक्त होवे. धर्म करणेंमें तत्पर होवे, सो पुण्यानुबंधी पाप है, यह डुमकमहर्षिवत्. पूर्व नवमें लेश मात्र दयादि सुकृत करणेसें होता है.

४ पापी चंम कर्मका करनेवाला निर्धर्मी, निर्दय, पाप करकें पश्चात्ताप रहित यह पुरुष दुःखीया है. तोनी पाप करणेमें तत्पर है, सो पापानुबंधी पाप है, काल सौकरिकादिवत्.

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप ऋद्धि है, अरु अंतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप ऋद्धि है, सो पुण्यानुबंधी पुण्यसें होती है, ऐसें जे कर कोइ जीव पापानुबंधी पुण्यके प्रनावसें इस लोकमें सुखी दीखता है, तोनी आगले नवमें महा आपदा पावेगा, अरु जो महसूलकी चोरी है, सो स्वामिद्रोहमें है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमें अनर्थकी दाता

है; जिसमें दूसरोंकों पीडा होवे, ऐसे व्यवहार न करे ॥ यतः ॥ इंद्रवज्रा वृत्तं । शाठ्येन मित्रं कपटेन धर्मं, परोपतापेन समृद्धिभावं ॥ सुखेन विद्या परुषे ण नारी, वांछंति ये व्यक्तमपंडितास्ते ॥ १ ॥ तथा जिसतरें लोकोंकों राग भाव होवे तैसें यत्न करे ॥ यतः ॥ वंशस्थ वृत्तं ॥ जितेंद्रियत्वं विनयस्य कारणं, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ॥ गुणप्रकर्षेण जनोनुरंज्यते, जनानुरागप्रभवाहि संपदः ॥ १ ॥ तथा धनहानिवृद्धि, संग्रहादि, गुह्य, दूसरोंके आगें प्रकाश न करे ॥ यतः ॥ अनुष्टुप्वृत्तं ॥ स्वकीयं दारमाहारं, सुकृतं द्रविणं गुणं ॥ दुष्कर्म मर्म मंत्रं च, परेषां न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥ तथा कूठभी न बोले, जेकर राजा गुरु आदिक पूछे, तो सत्य कह देवे सत्य बोलनां सोही पुरुषकी परमदशा है.

तथा यथार्थ कहनेसें मित्रका मन हरे, तथा बांधव जनोकों सन्मानसें वश करे, तथा स्त्रीकों प्रेमसें वश करे, तथा चाकरोंकों दान देनेसें वश करे, तथा दाक्षिण्यता करकें इतर लोकोंका मन हरे, तथा किसी जगे अपणे कार्यकी सिद्धि करने वास्ते पुष्ट जनोंकोंभी अगुवे, (आगडी) करे, तथा जिस जगे प्रीति होवें, तहां लेने देनेका व्यापार न करे. यह कथन सोमनीतिमेंभी है.

तथा साक्षी विना मित्रके घरमेंभी धनादिक रखनां न चाहियें, क्योंकि लोभ बडा दुर्दांत है, तथा जो धन रखनेवाला मर जावे तो वो धन उसके पुत्रादिककों दे देनां चाहियें, जे कर धन रखने वालेका कोइभी संबंधी न होवे, तब वो धन सर्वलोकोंके समक्ष धर्मस्थानमें लगा देवे, तथा श्रावक, देवगुरु, चैत्य, जिनमंदिरकी चाहे सच्ची, चाहे कुठीभी शपथ अर्थात् सौगंद न खावे, तथा दूसरोंका साक्षीभी न बने, यत् कप्पासिक ऋषि कहता है ॥ श्लोक ॥ अनीश्वरस्य द्वे भार्ये, पथि क्षेत्रं द्विधा कृषिः ॥ प्रातिभाव्यं च साक्ष्यं च, पंचानर्थाः स्वयं कृताः ॥ १ ॥

तथा श्रावक मुख्यवृत्तिसें तो जिस गाममें रहे. तहांही व्यापार करे, क्यों कि ऐसे करनेसें कुटुंबका अवियोग तथा घरका कार्य अरु धर्मकार्यादिक सर्व बने रहते हैं, कदापि अपने गाममें निर्वाह न होवे. तदा निकट देशांतरमें व्यवहार करे, जहांसें कोइ योग्य काम पडे, तो शीघ्र घरमें आ जावे, ऐसा कौन पामर है! कि:— जिसका स्वदेशमें निर्वाह होवे, तोभी परदे

शमें जावे, उक्तमपि ॥ जीवंतोपि मृताः पंच, श्रूयंते किल जारते ॥ दरिद्री व्याधितो मूर्खः, प्रवासी नित्यसेवकः ॥ जे कर निर्वाह न होवे, तदा आप तथा पुत्रादिकोंकों परदेशमें न नेजे, किंतु सुपरीक्षित गुमास्तेकों नेजे, जे कर स्वयमेव देशांतरमें जावे, तदा नला मुहूर्त्त शकुन निमित्त देखकें अरु देव गुरुकों वंदना करकें मंगलपूर्वक नाग्यवान् साथके बीचमें निद्रादि प्र माद वर्जकें कितनेक अपने ज्ञातियोंकों साथ ले कर जावे, क्योंकि नाग्य वान्के साथ जातां विघ्न टल जाता है, तथा लेनां, देनां, गडा हूवा धन, सर्व, पिता, नाइ, पुत्रादिकोंकों कह जावे, अपणे संबंधीयोंकों नली शिक्षा दे जावे, बहुमान पूर्वक सर्वकों बोलाकें जावे, परंतु जो जीवनेकी इछा होवे, तो देव गुरुका अपमान करकें, किसीकों निर्न्नछिकें, स्त्रीयादिककों ता डना कूटना करकें, बालककों रुदन करवा करकें न जावे. कदापि कोइ पर्व महोत्सवादिकका दिन निकट होवे, तदा उत्सव करकें जावे ॥ यतः ॥ उत्स वमशनं सर्वं, प्रगुणं चोपेक्ष्य मंगलमशेषं ॥ असमापिते च सूतक, युगेंऽग नर्त्तौ च नो यायात् ॥ १ ॥ तथा दूध पीकें, मैथुन करकें, स्नान करकें, अ पणी स्त्रीकों हणकें, वमन करकें. थूंककें, रुदन करकें, कठिन शब्द सु णकें, गालीयां सुणकें, प्रदेशकों न जावे, तथा शिर मुंमन करवाकें, आंसु गिराकें, खोटे शुकनके हूयें ग्रामांतर न जावे.

तथा कार्यके वास्ते जब चले, तब जौनसा स्वर वहता होवे, उस पा सेंका पग पहिला उगाकें धरे, जिस्से कार्यसिद्धि होवे, तथा रोगी, बूढा, ब्राह्मण, अंधा, गौ, पूजनिक, राजा, गर्नवती स्त्री, नार उगानेवाला, इनकों कुछ दे कर ग्रामांतरमें जावे, तथा धान्य पक्का वा कच्चा पूजा योग्य मंत्र मंमल, इनकों त्यागे नहीं, तथा स्नानका जल, रुधिर, मुरदा, थूंक, श्लेष्म, विष्टा, मूत्र, बलती अग्नि, साप, मनुष्य, शस्त्र, इनकों उल्लंघे नहीं, तथा नदीके कांठे, गौओंके गोकुलमें, बड वृक्षके हेठ, जलाश्रयमें, अरु कूपकांठे, इतने जगो पर विष्टा न करे, तथा रात्रिकों वृक्ष हेठ न रहे, उत्सव, सूतक, पूरा हूये परदेशकों जावे, विना साथके न जावे, दासके साथ न जावे, मध्यान्हमें तथा अर्द्धरात्रिमें मार्गमें न चले, तथा क्रूर प्रकृतिवाला मनु ष्य, कोटवाल, चुगल, दरजी, धोबी प्रमुख अरु कुमित्र, इतनोंके साथ गोष्टि न करे, इनोके साथ अकालमें चले नहीं, तथा महिष, गर्दन, अरु

गौ, इनकी असवारी न करे, तथा हाथीसें हजार हाथ, गाडेसें पांच हाथ अरु घोडे तथा सिंग वाले जनावरोंसेंभी पांच हाथ दूर रहे, तथा खरची विना रस्तेमें न चले, बहुत सोवे नहिं, रस्तेमें किसीका विश्वास न करे, एकीला किसीके घरमें न जावे, जीर्ण नावां ऊपर चढे नहीं, एकला नदीमें न पैसे, कठिन जगामें उपाय बिना न जावे, अगाध पाणीमें प्रवेश न करें, जहां बहुते क्रोधी होवे, अरु बहुते सुखोंके इछक होवे, तथा जहां घणे सूम होवे ऐसे सथवाराके साथ कदापि परदेश न जावे, तथा बांधनेके, मारणेके, जूआ खेलनेके, पीडाके, खजानेके, अंतेउरके, स्थानमें न जावे, तथा बूरे स्थानमें, श्मशानमें, शून्यस्थानमें, चौंकमें, शूके घासमें कूडेमें, ऊंची नीची जगामें, उकरूडीमें, वृक्षाग्रमें, पर्वताग्रमें, नदीके कांठेमें, कूपके कांठेमें, इतने स्थानोमें बैठे नहीं, तथा जो जो कृत्य जिस जिस कालमें करनां है, सो करे, परंतु छोडे नहिं.

तथा पुरुषकों जो भला वस्त्रादि पहरनेका आडंबर चाहियें सो न छोडे, परदेशमें तो विशेष करकें आडंबर, नहीं छोडनां, क्योंकि आडंबरमें अनेक कार्य सिद्ध हो जाते हैं, तथा जो कार्य करणां सो पंच परमेष्ठिस्मरण पूर्वक तथा गौतमादि गणधरोंका नामग्रहण पूर्वक करे. तथा देव गुरु की भक्ति वास्ते धनकी कल्पना करे, क्योंकि जब धन कमावनेका प्रारंभ करनां, तबही नफेमेंसूं इतना हिस्सा सात क्षेत्रमें लगावुंगा? ऐसी भावना जरुर करनी चाहियें.

जदा लाभ हो जावे. तदा चिंता अनुसारें मनोरथ सफल करे, क्योंकि व्यापारका फल यह है, कि:—धन होनां, अरु धन होनेका फल यह है, कि धर्ममें धन लगानां, नहीं तो व्यापार करनां सो नरक तिर्यंचगति होनेका कारण है, जे कर धर्ममें खरचे, तो धर्मधन कह्या जावे, जेकर नहीं खरचे तो पापधन कह्या जावे क्योंकि ऋद्धि तीन प्रकारकी है, एक धर्मऋद्धि, दूसरी भोग ऋद्धि, तीसरी पापऋद्धि. उसमें जो धर्मकार्यमें लगावे, सो धर्म ऋद्धि तथा जो शरीरके भोगमें आवे सो भोगऋद्धि अरु धर्म तथा भोगसें जो रहित, सो पाप ऋद्धि जाननी, इस वास्ते नित्य प्रत्यें स्वधनकों दानादि धर्ममें लगानां चाहियें, जेकर थोडा धन होय तो थोडा लगाने, क्योंकि किसीकों इछानुसारिणी शक्ति होती है. तथा धन उत्पन्न करनेका उपाय

नित्य करनां चाहियें, परंतु अत्यंत लोज न करनां चाहियें, तथा धर्म, अर्थ, अरु काम यथा अवसरमें सेवनां, परंतु अत्यंत कामासक्त न होनां चाहियें, अरु जो धन उत्पन्न करनां सोजी न्यायसें उत्पन्न करनां चाहियें, यहां न्यायार्जित धन सत्पात्रमें देनां, लगानां, तिसके चार नंग है, सो लिखते हैं.

१ न्यायोपार्जित सत्पात्रविनियोग रूप प्रथम नंग. पुण्यानुबंधी पुण्यका हेतु होनेसें वैमानिक देवतापणा नोगनूमि मनुष्यपणा सम्यक्त्वादिककी प्राप्ति निकट मोक्ष फल है, धनसार्थवाह तथा शालिनद्रादिवत्.

२ न्यायोपार्जित असत्पात्रविनियोगरूप दूसरा नंग. पापानुबंधी पुण्यका हेतु होनेसें नोग मात्र फलनी है, तोनी बेकड विरस फल है, जैसें लक्ष्य नोज्यकरणे वाला ब्राह्मण बहुत नवोंमें किंचित्सुख नोगकें सेचनक नामा सर्वांग सुलक्षणो नद्र हस्ती हूआ.

३ अन्यायसें आया सत्पात्रपरिपोषरूप तीसरा नंग है, तिसका अछे खेतमें जैसें सामक बो देने वत् फल है, यह सुखानुबंधी होने करकें राजके कारनारीयोंके बहुत आरंनोपार्जित धनवत् है. परंतु ऐसा धननी धर्ममें लगावे, तो अछा है, जैसें आबूके पर्वतोपरि जिनमंदिर बनाने वाले विमलचंद्र अरु तेजपाल मंत्रीकी तरें अछा है, जेकर ऐसा धननी धर्ममें न लगावे, तो डुर्गति अरु अपकीर्त्तिका फल है, मम्मन शेठवत्.

४ अन्यायार्जित कुपात्रपोष रूप चौथा नंग है, यह नंग सर्वथा प्रकाकारें त्यागने योग्य है, क्योंकि अन्यायार्जित जो धन कुपात्रकों देनां, सो ऐसा है, किः— जैसा गौकों मारकें उसके मांससें कागोंका पोषण करनां, इस वास्ते गृहस्थकों न्यायसें धनार्जन करनां चाहियें.

श्राद्धदिनकृत्य सूत्रमें लिखा है, किः— व्यवहारशुद्धि जो है, सोही धर्मका मूल है, जिसका व्यापार शुद्ध है, उसका धननी शुद्ध है, जिसका धन शुद्ध है, उसका आहार शुद्ध है, जिसका आहार शुद्ध है, उसकी देह शुद्ध है, जिसकी देहशुद्ध है, वो धर्मके योग्य है, ऐसा पुरुष जो जो कृत्य करे, सो सर्व सफल होवे, अरु जो व्यवहार शुद्ध न करे, वो धर्मकी निंदा करानेसें स्वपरकों डुर्लनबोधी करे, इस वास्ते व्यवहार शुद्धि जरुर करनी चाहियें ॥ इति व्यवहारशुद्धिस्वरूपं समाप्तं ॥

तथा देशादि विरुद्ध त्यागे, सो देश, काल, राजविरुद्धादि परिहरे,

यह कथन हितोपदेशमालामें लिखा है, कि देश, काल, राज, अरु धर्म विरुद्ध जो त्यागे, सो पुरुष सम्यग्धर्मकों प्राप्त होता है.

तिनमें देशविरुद्ध तो जैसें किः—सौवीरदेशमें खेती करणी,लाट देशमें मदिरा बनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरभी जो जिस देशमें शिष्टजनोंके अनाचीर्ण है, सो तिस देशमें विरुद्ध जाननां. जाति कुलादि अपेक्षा जो अनुचित होवें, सो देशविरुद्ध है, जैसें ब्राह्मण जातिकों सुरापान करनां, तिल लूणादि वेचनां, सो कुलापेक्षा विरुद्ध है, तथा जैसें चोहाणाकों मद्यपान करनां, तथा और देशवालोंके आगें और देशवालोंकी निंदा करणी, यहभी देशविरुद्ध है.

तथा कालविरुद्ध, सो जैसें हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी जंगल तथा मरुदेशमें वर्षातमें अत्यंत पिच्छिल (पंक) संयुक्त दक्षिण समुद्रके पर्यंत भागोमें, तथा अति दुर्भिक्षमें. दो राजाओंका परस्पर विरोध होनेसें, धाडने रस्ता रोका होवे. दुरुत्तार महाअटवीमें. सांजकी वेला भयमें, इतने स्थानकोंमें तैसा सामर्थ्य सहायादि दृढ बल विना जावे. तो प्राण धन नाशादि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीछें तिलोंका व्यापार, तिल पीलाने. तिल भक्षण करने. वर्षाऋतु चनमासेमें पत्र शाकका ग्रहण करणां, तथा बहुजीवाकुल भूमिमें हल फेरानां. यह महा दोषका कारण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेनां.

तथा राजविरुद्ध यह है किः—राजाके दोष बोलनां, जिसकों राजा मानें तिसकों न माननां.तथा राजाके वैरीयोंमें मेल करनां, राजाके शत्रुके स्थानमें लोभसें जानां, राजाके शत्रुके पासों आयेके साथ व्यापार करनां, राजाके काममें अपणी इच्छासें विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है किः— नगरनिवासियोंके साथ प्रतिकूल पणा करणां, तथा स्वामिद्रोह करणां, लोकोंकी निंदा करणी. गुणवान् अरु धनवानूकी निंदा करणी, अपणी वडाइ करणी, सरलकी हांसी करणी, गुणवान्में मत्सर रखनां, कृतघ्नत्व करणां, बहुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी संगति करणी. लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, भले आचारवालेकों कष्ट पडे, तब राजी होनां, अपनी शक्तिके हुये साधर्मीके कष्टकों दूर न करनां, देशादि उचिताचार लंघन करनां. थोडे धनके हूए गुं

मोंका वेष रखनां, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोकविरुद्ध है. यह सर्व इस लोकमें अपयशका कारण है ॥ यदुवाच वाचकमुख्यः ॥ लोकः खल्वाधारः, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ॥ तस्माल्लोकविरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यं ॥ १ ॥ अर्थः—उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हैं, किः—सर्वधर्म करने वालोंके लोकजन समुदाय आधार है. तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों, त्यागने योग्य हैं, क्योंकि ऐसें करनेसें धर्मका सुखें निर्वाह होता है, लोक विरुद्धकें त्यागनेसें सर्व लोकोंको वल्लज होता है, अरु जो लोकोंको वल्लज होनां है, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज है.

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं. मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिककों निर्दय होकें ताडनां, बांधनां, जूं, मांकडादिकों निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कंघीसें लीख फोडनी, उष्ण कालमें तथा शेष कालमें चौडा, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी छानके पीछे जीवोंको युक्तिसें पाणीमें न गेरनां, तथा अन्न, इंधन, शाक, हाल, तांबूल, अरु फलादिकोंको विना शोधें खानां; तथा अक्षत, सोपारी, खारीक, वाल्ह, उलि.फली प्रमुख संपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिकको धारा बांध कर पीवे. तथा चलतेमें, बैठनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेतां, रांधतां. धान छडतां, पीसतां, औषधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजल, तंबोलका उगाल गेरतां, उपयोगसें न करे, तथा धर्ममें अनादर करे, देव, गुरु, अरु साधर्मीसें द्वेष धरे, जिनमंदिरका धन खावे, अधर्मीकी संगति करे, धर्मीयोंका उपहास करे. कषाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकर्म करनां, पापकी नोंकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध है. यह पांच प्रकारका विरुद्ध श्रावककों त्यागनां चाहियें.

अथ उचित आचरण कहते हैं. उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है. स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रंथसें लिखते हैं. एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा भाइयोंके साथ, चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, छठा स्वजनके साथ, सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवालोंके साथ, नवमा परतीर्थी अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणां,

१ तिनमें प्रथम पिताके साथ उचित आचरणः सो मन, वचन, अरु काया करकें तीन प्रकारें है, तिसमें काया करकें तो पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, किंकर दासकी तरें विनय करे, विना मुखसें निकलाही पिताका वचन प्रमाण करे, पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, पिताके चरण धोवे, मुष्टि चांपी करे, उगावे, बैगवे, देश काल उचित जोजन, शय्या, वस्त्र, शरीरविलेपनादिका योग मिलावे, विनयसें करे, परंतु आग्रहसें न करे, आप करे, परंतु नौकरोंसें न करावे, पिताके वचन प्रमाण करणे वास्ते श्रीरामचंद्रजी राज्याजिषेक ठोडकें बनवासमें गये, तथा पिताका वचन सुण्या अणसुण्या न करे, मस्तक धुननां, कालक्षेप करे नहीं, पिताके मनके अनुसारें प्रवर्त्ते, तथा सर्व कृत्योंमें यत्नपूर्वक जो अपने मनमें कार्य करणां उत्पन्न हूआ है, सो पिता आगें कह देवे, पिताके मनकों जो कार्य गमे, सो करे, क्योंकि माता, पिता, गुरु, बहुश्रुत, ये आराधे हूये सर्व कार्यका रहस्य प्रकाश देते हैं. माता, पिता, कदाचित् कठिन बचनजी बोले, तोजी क्रोध न करे. जो जो धर्मका मनोरथ माता पिताके होवे, सो सो पूरे करे. इत्यादि माता पिताके साथ उचित आचरण करे.

माताके साथ उचित आचरण, सोजी पितावत् करे, परंतु माताके मनोरथ पितासेंजी अधिक पूरे. देवपूजा, गुरुसेवा, धर्म सुननां, देशविरति अंगीकार करणी, आवश्यक करणां, सात क्षेत्रोंमें धन लगानां, तीर्थयात्रा, अनाथ दीनका उद्धार करणां, इत्यादि माताके मनोरथ विशेष करकें पूर्ण करे, क्योंकि यह करणे योग्यही है, ये पूर्वोक्त कृत्य जले सपूत पुत्रोंको इस लोकमें गुरु, माता, पिता है, सो माता पिताकों जो पुत्र श्रीअर्हतके धर्ममें जोडे, तो अैसा और कोइ उपकार जगत्में नहीं है, उस पुत्रने माता पिताका सर्व ऋण दे दीया, और किसी प्रकारसेंजी माता पिताका देणां पुत्र नहिं दे सक्ता है, यह कथन श्रीस्थानांग सूत्रमें है.

अब यह मातपिताके उचिताचरणमें जो विशेष है, सो लिखते हैं. माताके चित्तके अनुसार प्रवर्त्ते, क्योंकि स्त्रीका स्वजावही अैसा होता है, कि जलदी पीडाकों प्राप्त हो जानां, इस वास्ते जिस कामसें माताकों पीडा होवे, सो काम न करे, क्योंकि पितासेंजी माता विशेष पूज्य है ॥ यन्मनुः ॥ श्लोक ॥ उपाध्यायाद्दशाचार्यः, आचार्येन्यः शतं

पिता ॥ सहस्रं तु पितुर्माता, गौरवेणातिरिच्यते ॥ १ ॥ तथा औरोंनेंजी कहा है कि जहां तक दूध पीवे,तहां तक अपनी माता औसें पशु जानते हैं, तथा आहार न खावे तहां तक अधम पुरुष,माता जानते हैं,तथा जहां तक घरका काम करे, तहां तक मध्यम पुरुष, माता जानता है, अरु जहां तक जीवे, तहां तक तीर्थकी तरें माताकों उत्तम पुरुष, मानते हैं. पशुओंकी माता पुत्रसें सुख मानती है, धन उपार्जे तो मध्यम पुरुषकी माता सुख मानती है, तथा पुत्र वीर होवे, संपूर्ण धर्माचरण करकें संयुक्त होवे, निर्मलचरितवाला होवे, तब उत्तम पुरुषकी माता संतोष पावे है.

३ अथ सहोदरके साथ उचित आचरण लिखते है. बडे जाईकों तो पिता समान जाने, अरु गेटे जाइकों सर्वकार्योंमें माने, तथा जे कर दूसरी माताका बेटा होवे, तो जैसें श्रीरामचंड् और लक्ष्मणकी परस्पर प्रीति थी, तैसी प्रीति करणी चाहियें, औसेंही बडे जाइ अरु गेटे जाइकी स्त्रीयोंके साथ तथा पुत्र पुत्रीयोंके साथजी उचिताचरण यथायोग्य करे, परंतु पृथग्जाव न करे. जाइकों व्यापारमें पूछे, गानी बात न रखे, तथा धनजी जाइसें गुप्त (गानां) न रखे, अपणे जाइकों औसी शिक्षा देवे, जिस्सें उसकों कोइ धूर्त न उल सके, जे कर जाइकों खोटी संगति लग जावे, तथा अविनीत होवे, तदा क्या करे? सो कहते हैं. जेकर अविनीत होवे, तदा आप शिक्षा देवे, तथा जाइके मित्र पासों उलांना देवावे, तथा सगा संबंधीयोंसें शिक्षा देवावे; काकासें, मामासें, सुसरासें, इनके पुत्रोंसें अविनीत जाइकों शिक्षा देवावे, अन्योक्ति करकें शिक्षा देवावे, परंतु आप तर्जना न करे, अरु जे कर आप तर्जना करे, तब क्या जाने निर्लज्ज होकर निर्मर्याद हो जावे? सन्मुख बोल उठे? तिस वास्ते हृदयमें स्नेह सहित उपरसें जब जाइकों देखे, तब औसें जान पडे जो जाइ मेरे उपर बहुत बे राजी है, जब जाइ विनयमार्गमें आ जावे, तदा निःकपट मीठे बचन बोलकें प्रेम धरे, कदाचित् जाइ अविनीतपणा न गेडे, तब चित्तमें ऐसा बिचारे कीः– इसकी प्रकृतिही औसी है, तब उदासीन पणेसें प्रवर्त्ते, तथा जाइकी स्त्री अरु पुत्रोंके साथ दान सन्मान देनेमें समदृष्टि होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष करकें दान सन्मान प्रेमादि करे, क्योंकि उसके साथ थोडाजी अंतर करे,तो उसकों बे प्रतीति

हो जावे, अरु लोकोंमें निंदा होवे. ऐसेंही माता, पिता अरु नाइके स मान जो और जन हैं, तिनोंके साथजी यथोचित उचिताचरण विचार लेनां ॥ यतः ॥ जनकश्चोपकर्त्ता च, यस्तु विद्यां प्रयच्छति ॥ अन्नदः प्राणदश्चैव, पंचैते पितरः स्मृताः ॥ १ ॥ राजपत्नी गुरोः पत्नी, पत्नीमाता तथैव च ॥ स्वमाता चोपमाता च, पंचैता मातरः स्मृताः ॥ २ ॥ सहोदरः सहाध्यायी, मित्रं वा रोगपालकः ॥ मार्गे वाक्यसखा यश्च, पंचैते भ्रातरः स्मृताः ॥ ३ ॥ अस्यार्थः सुगमः ॥ तथा अपणे नाइकों धर्मकार्यमें अवश्य प्रेरणा करे, नाइकी तरें मित्रके साथजी उचिताचरण करे.

४ अथ स्त्रीके साथ उचित कहते हैं. स्त्री विवाहिताके साथ स्नेह संयुक्त वचन बोलकें स्त्रीकों अनिमुख करे, वल्लन, और स्नेह संयुक्त वचन, निश्चय प्रेमका जीवन है, तथा स्त्री पासों स्नान करावे, अपणा स्नान पगचंपी प्रमुखमें स्त्री प्रत्यें प्रवर्त्तावे, जब स्त्री विश्वास पा करकें सच्चा स्नेह धरेगी, तब कदापि बुरा आचरण न करेगी, तथा देश काल कुटुंब धनादि उचित वस्त्रानरण देवे, क्योंकि अलंकार संयुक्त स्त्री लक्ष्मीकी वृद्धि करती है, तथा स्त्रीकों रात्रिमें कहीं जाने न देवे, तथा कुशील पुरुषकी अरु पाखंमी नगत योगी योगीकोंकी संगति न करणे देवे, स्त्रीकों घरके काममें जोड देवे, तथा राजमार्गमें वेश्याके पाडेमें न जाने देवे, धर्मकृत्य पडिक्कमणा सामायिकादिक जे कर करणे वास्ते धर्मशाला उपाश्रयमें जावे, तदा माता बहिनादि सुशील धर्मिणी स्त्रीयोंकी टोलीमें जावे, आवे. घरका काम, दान देनां, सगे संबंधीका सन्मान करणां, रसोइका कारण करणां, यह सब करे, तथा प्रनात समयें शय्या उगावे, घर प्रमार्जन करे, दूधके बर्त्तन धोवे, चौकादि चुल्लेकी क्रिया करे, तथा नांमे धोने, अन्न पीसणां, गौ, नैंस दोहनी, दहिं विलोनां, रसोइ करणी, खाने वालोंकों पुरोसनां, जूठे बर्त्तन शुचि करने, सासु, नरतार, नणंद, देवर, इतनोका विनय करनां, इत्यादि पूर्वोक्त कामोंमें स्त्रीकों जोडे, अर्थात् काम करणेमें तत्पर करे, जे कर स्त्रीकों पूर्वोक्त कामोंमें न जोडे, तब स्त्री, चपलतासें विकारकों प्राप्त हो जाती है, काममें लगे रहनेंसें स्त्रीकी रक्षा, गोपना होती है, तथा नरतार स्त्रीके सन्मुख देखे, बोलावे, गुणकीर्त्तन करे, धन, वस्त्र, आनूषण देवे, जिस तरें स्त्री कहे, उस तरें करे, स्त्रीकों दूर न छोडे, तब

वो स्त्रीका जरतार उपर अत्यंत प्रेम हो जाता है, तथा स्त्रीकों न देखनेसें, अतिदेखनेसें, देख कर न बुलानेसें, अपमान देनेसें, अहंकार करनेसें, इन पूर्वोक्त बातोंसें प्रेम टूट जाता है.

तथा जरतार बहुत परदेशमें रहे,तब स्त्री कदाचित् अनुचित काम कर लेवे, इस वास्ते बहुत काल परदेशमेंजी न रहनां चाहियें, तथा स्त्रीका अपमान न करे, स्त्री जूल जावे, तो शिक्षा देवे, रूस जावे, तो मना लेवे, तथा धनकी हानी वृद्धि, घरका गुह्य, स्त्रीके आगें प्रगट न करे,तथा क्रोधमें आ करकें दूसरी स्त्री न विवाहे, क्योंकि दो स्त्री करनी महा दुःखों का कारण है, कदाचित् संतानादिकके वास्ते दो स्त्रीजी कर लेवे, तदा दोनों उपर समजावसें प्रवर्त्ते, तथा स्त्री किसी काममें जूल जावे, तदा असी शिक्षा देवे, कि जे कर फेर वो स्त्री,उस कामकों न करे, तथा रूसी स्त्रीकों जे कर नहिं मनावे, तो सोमजट्ट जार्या अंबावत् कूवेमें गिर पडे, इत्यादि अनर्थ करे. इस वास्ते स्त्रीसें सर्वकाम, स्नेहकारी वचनोंसें करावे, नतु कठिनतासें.

जेकर निर्गुण स्त्री मिले, तब विशेष करकें नरमाइसें प्रवर्त्ते, परंतु स्त्रीकों घरमें प्रधान न करे, जिस घरमें पुरुषकी तरें स्त्री सामर्थ्य प्रधान पणा करे, वो घर नष्ट हो जाते हैं, यह कहनां, बाहुल्यतासें है, क्योंकि कोइक स्त्री तो असी बुद्धिमान् होती है, किः– जेकर उसकों पूछके कार्य करे, तो बहुत गुणके तांइ होता है, जैसें तेजपालकी जार्या, अनुपदेवीकों तेजपाल अरु वस्तुपाल पूछके काम करते थे, तथा स्त्री जब धर्म कार्योंमें तप करे, चारित्र लेवे, उद्यापन करे, दान देवे, देवपूजा, तीर्थयात्रादि करे, तथा यह बातोंकों करनेका मनमें उत्साह धरे, तब धन देवे, सुशील सहायक दे कें उसका मनोरथ पूर्ण करे, परंतु अंतराय न करे, क्योंकि स्त्री जो धर्मकृत्य करेगी उसमेंसें पतिकोंजी पुण्य होगा, क्योंकि पति उस कृत्य करणेमें बहुत राजी रहे है ॥ इति ॥ ५ ॥

५ अथ पुत्रके साथ उचिताचरण लिखते हैं. पिता अपने पुत्रकों बाल अवस्थामें बहुत मनोज्ञ पुष्टाहारसें पोषे, स्वेछा नाना प्रकारकी क्रीडा करावे, क्योंकि मनोज्ञ पुष्ट आहार देनेसें बालककों बुद्धि, बल, अरु कांतिकी वृद्धि होती है, स्वेछा क्रीडा करानेसें शरीर पुष्ट होता है, अरु अं

गोपांग संकुचित नहीं होते हैं॥ यदंति॥ श्लोक॥ लालयेत् पंच वर्षाणि, दश वर्षाणि ताडयेत्॥ प्राप्ते षोडशमे वर्षे, पुत्रोमित्रवदाचरेत्॥ १॥ तथा गुरु, देव, धर्म अरु सुखी स्वजन, इनकी संगति करावे, नली जाति, कुलआचार, शीलवान् असा पुरुषके साथ मित्राचार करावे, क्योंकि गुरु आदिकका परिचय होनेसें बाल्यावस्थामें नली वासनावाला हो जाता है, वल्कलचीरीवत् जाति, कुल, आचारशील संयुक्तकी मित्रतासें, दैवयोगसें कदापि अनर्थनी आ पडे, तोनी नले मित्रकी सहायसें कष्ट दूर हो जाता है, जैसें अनयकुमारके साथ मित्रता करनेसें आईकुमारकों नली वासना, हो गइ. तथा जब अढार वर्षका पुत्र हो जावे, तब उसका विवाह करे, क्योंकि बाल्यावस्थामें वीर्यक्षय हो जानेसें बुद्धि, पराक्रम अरु आयु, अधिक नहीं होता है, सर्व जैनमतके शास्त्रोंमें असेंही लिखा है, कि जब पुत्रकों नोगसमर्थ जाने, तब पुत्रका विवाह करे, तथा जिस कन्यासें विवाह करावे, उस कन्याका कुल, जन्म, रूप, सरिखा होवे, तब विवाह करावे, तथा पुत्रके उपर घरका नार सर्व गेरे, घरका स्वामी बना देवे, तथा जिस कन्यामें सरिखे गुण न होवे, उसके साथ विवाह करानां महा विडंबना है, विवाहनेद आगें लिखेंगे, जब पुत्रके उपर घरका नार होवेगा, तब चिंताक्रांत होनेसें कोइनी स्वछंद उन्मादादि न करेगा, क्योंकि वो जान जावेगा कि धन, बडे क्लेशोंसें प्राप्त होता है, इस वास्ते अनुचित व्यय न करनां चाहियें, असा वो आपसें जान जावेगा, परंतु पुत्रकी परीक्षा करकें पीछें उसके घरका नार माल देवे, जैसें प्रसेनजित राजानें श्रेणिकपुत्रकों दीया, तथा पुत्रकी तरें पुत्रीके साथ अरु नत्तीजादिकके साथ नी यथायोग्य उचित जान लेनां, असेंही बेटेकी बहूके साथनी धनश्रेष्ठीकी तरें उचिताचरण करे, तथा प्रत्यक्ष पणे पुत्रकी प्रशंसा न करे, तथा जब कष्ट पडे, तब डुःख सुखकी बात कहे, तथा आय व्ययका स्वरूप कहे, तथा पुत्रकों राजसना देखावे, क्योंकि क्या जाने बिना बिचार्या कोइ कष्ट आ पडे, तब क्या करे? तथा कोइ डुष्टजन उपद्रव कर देवे, तब राजसना बिना बूटकारा नहीं होता है॥श्लोक॥ तत्पठंति॥ आर्या॥ गंतव्यं राजकुले, इष्टव्याराजपूजितालोकाः॥ यद्यपि न नवंत्यर्था, स्तथाप्यनर्था विलीयंते॥ १॥ तथा पुत्रकों परदेशका आचार, व्यवहारादिकसें जानकार

करे, क्योंकि प्रयोजनके वशसें कदा काल देशांतरमेंजी जाना पडे, तो कोइ कष्ट न होवे, तथा जो मातके पुत्रके साथ विशेष उचित करे.

५ अब सगोंके साथ उचित करणां लिखते हैं, पिता, माता, स्त्रीके प क्षके जो लोक हैं, तिनकों स्वजन कहते हैं, यह स्वजनोंका कोइ घरके बडे काममें तथा सदा काल सन्मान करे, तथा आपनी स्वजनोंके काममें अग्रेश्वरी बने, जो स्वजन धनहीन होवे, रोगातुर होवे, तिसका उद्धार करे, क्योंकि स्वजनका जो उद्धार करणां है, सो तत्त्वसें अपणाही उ द्धार करणां है. तथा स्वजनके परोक्ष उनकी निंदा न करे, तथा स्वज नके वैरीयोंसें मित्राचारी न करे, स्वजनादिकसें प्रीति करणी होवे, तदा शुष्क कलह, हास्यादि, बचनकी लडाइ न करे, स्वजन घरमें न होवे, तो उसके घरमें एकिला न जावे, देव, गुरु, धर्म अरु धनके कार्यमें स्वजनोंके साथ सामिल रहे. जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया होवे, असे स्वजनके घरमें एकिला न जावे, तथा स्वजनोंके साथ लेने देनेका व्यापार न करे॥ तथाह ॥ यदीच्छेद्विपुलां प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत् ॥ वाग्वादमर्थसं बंधं, परोक्षे दारदर्शनम् ॥ १ ॥ तथा इस लोकके कार्यमें स्वजनोंके साथ एक चित्त रहे, अरु जिनमंदिरादि कार्यमें तो विशेष करकें स्वजनसेंही मिलकें करे, क्योंकि असे कार्य जे कर बहुतोंसें मिलकें करे, तोही शोजा है. इत्यादि स्वजनोचित जाननां.

७ अब गुरुउचित कहते हैं. धर्माचार्यके साथ उचित नक्ति आंतरंगकी बहुमान, वचन, कायाका आवश्यक प्रमुख कृत्य करणां, गुरु पासों शुद्ध श्रद्धा करकें धर्मोपदेश श्रवण करणां, गुरुकी आज्ञा माने मनसेंजी गुरुका अपमान न करे, गुरुके अवर्णवाद किसीकों बोलने न देवे, गु रुकी प्रशंसा सदा प्रगट करे, गुरुके प्रत्यक्ष वा परोक्ष स्तुति करे, गुरु स्तुति जो है. सो अगणित पुण्यबंधनेका कारण है, गुरुके छिद्र कदापि न देखे, गुरुसें मित्रकी तरें अनुवर्त्तन करे, गुरुके प्रत्यनीक निंदककों सर्व शक्तिसें निवारण करे, कदाचित् गुरु, प्रमादके वशसें कहीं चूक जावे, तब एकांत हितशिक्षा देवे, अरु कहे कि हे जगवन्! तुम सरीखोंकों यह काम करणां उचित नहिं, गुरुका विनय करे, गुरुके सन्मुख जावे, गुरु निकट आवे, तो आसन छोडकें खडा हो जावे, गुरुकों आसन देवे, गुरुकी पग

चंपी करे. गुरुकों शुद्ध, निर्दोष, वस्त्र, पात्राहारादि देवे, यह द्रव्योपचार करे, अरु नावोपचार सो गुरुका परदेशमें सदा स्मरण करे, इत्यादि.

८ अब नगर निवासी जनोंका उचित कहते हैं. जिस नगरमें रहे, उस नगरके निवासी जनोके साथ उचित इसी प्रकारसें करनां कि:— अपणे सरीखी जीन व्यापारीयोंकी वृत्ति होवे, उनके साथ जो एकचित्तसें सुख, दुःख, व्यसन, कष्ट, राजउपद्रवादिमें बराबर रहे, उनके उत्साहमें उत्साहवान् होवे, राजदरबारमें किसीकी चुगली न करे, तथा नगरनिवासीयोंसें फटे नहीं, सर्वसें मिल कर राजका हुकुम करे, क्योंकि जब निर्बल पुरुष बहुते एकठे होकें कार्य करे, तब तृणरज्जुवत् बलवान् हो जाते हैं, जब विवाद हो जावे, तब निःपक्ष होकें कार्य करे, किसीसें लंचा ले कें फूठा काम न करे, तथा किसीसें थोडीसी लडाइ हो जावे, तो उसका राजमें पुकार न करे, तथा राजाके कारजारीयोंसें लेने देनेका व्यापार न करे, क्योंकि उनलोकोंकों नाणां देनेके अवसरमें क्रोध आ जाता है, तब वो कोइ और अनर्थ कर देते हैं, तथा समानवृत्ति नागरोंकी तरें असमान वृत्ति वाले नगरनिवासीयोंके साथनी यथायोग्य उचिताचरण करे ॥ ए ॥

ए अथ परतीर्थी परमत वालोके साथ उचिताचरण लिखते हैं. जो परमतवाला भिक्षाके वास्ते उसके घरमें आवे, वो सर्वका उचित करे, तथा राजाका माननीयका विशेष उचित करे, उचित कृत्य सो यथायोग्य दान देनां चाहे, जे कर उन साधुओंकी मनमें नक्ति नहींनी होवे, तोनी घरमें मांगने आयेकों देनां चाहियें, क्योंकि:—दान देनां यह गृहस्थका धर्मही है, तथा महंत कोइ घरमें आ जावे, तो आसन, दान, सन्मुख जानां, उठके खडा होनां प्रमुख करे, तथा परमतवाला किसी कष्टमें पडा होवे, तदा उसका उद्धार करे, दुःखी जीवोंकी दया करे, पुरुषापेक्षा मधुर आलापादि करे, तथा अन्यमतवालेकों कामका पूछनादि करे, जैसें कि आपका आनां किस प्रयोजनके वास्ते हूआ है? पीछे जो कार्य वो कहे, सो कार्य जे कर उचित होवे, तो पूरा कर देवे, तथा दुःखी, अनाथ, अंधा, बधीर, रोगी प्रमुख दीन लोकोंकी दीनताकों यथाशक्तिसें प्रतिकार करे, जो श्रावकादि पूर्वोक्त लौकिक उचिताचरणमें कुशल नहीं होवे, तो वो जिनमतमेंनी क्यों

कर कुशल होवेंगे? तिस वास्ते अवश्य धर्मार्थीयोने उचिताचरणमें नि पुण होनां चाहियें ॥ इति नवविध उचिताचरणं समाप्तं ॥

अब अवसरमें उचित बोलनां, यही बडा गुणकारी है, तथा औरजी जो कुशोजाकारी होवे, सो त्यागे ॥ उक्तं च विवेकविलासादौ ॥ जंनाइ, छींक, डकार, तथा हसनां, यह सब मुख ढांकके करे, तथा सजाके बीच नाकमें अंगुली घालके मैल न काढे, हाथ मोडे नहीं, पर्यस्तिका न करे, पग न प सारे, निद्रा विकथा न करे, सजामें कोइ बुरी चेष्टा न करे, जो कुलीन पुरुष है, सो अवसरमें हसे, तो होठ फरकने मात्र हसे, परंतु मुख फा डके न हसे, अपणा अंग बजावे नहिं, तृण तोडे नहिं, व्यर्थ जूमिमें लि खे नहिं, नखों करकें दांत घसे नहिं, दांतों करी नख न तोडे, अजिमान न करे, जाट चारणकी करी हुइ प्रशंसा सुनकें गर्व न करे, अपणे गु णोंका निश्चय करे, वातकों समझके बोले, नीच जन जो अपनेकों हीन बचन कहे, तो उसकों बदलेका हीन बचन न बोले, जिस वस्तुका निश्चय न होवे, सो बात प्रगट न कहे, जो कोइ पुरुष कार्य करे, अरु उस कार्य करणेमें वो समर्थ न होवे, तिसकों पहिलां वर्ज देवे, कहे कि यह काम तुम न करो, तथा किसीका बूरा न बोले, जेकर वैरीका बूरा बोले, तो उसका अटकाव नहिं, परंतु सोजी अन्योक्ति करकें बोले, तथा माता, पिता, रोगी, आचार्य, पराहुणा, अन्यागत, जाइ, तपस्वी, वृद्ध, बाल, स्त्री, वैद्य, पुत्र, गोत्री, पामर, बहिन, बहिनोइ, मित्र, इन सर्वके साथ वचनकी लडाइ न करे, सदा सूर्यकों न देखे, तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणकों न देखे, ऊंडे (गहिरे) कूवेकों झूककें न देखे, संध्या समय आकाश न देखे, तथा मैथुन करतेकों, शिकार मारतेकों, नंगी स्त्रीकों, यौवनवंती स्त्रीकों, पशुक्रीडाकों, कन्याकी योनिकों, इतनेकों देखे नहीं, तथा तेलमें, जलमें, शस्त्रमें, मूतमें, रुधिरमें, इतनी वस्तुओंमें अपणा मुख न देखे, क्योंकि इस कामसें आयु टूट जाती है, तथा अंगीकार करेकों त्यागे नहिं, नष्ट हो गइ वस्तुका शोक न करे, किसीका निद्राछेद न करे, बहु तोसें वैर न करे, जो बहुतोकों सम्मत होवे, सो बोले, जिस काममें रस न होवे, सो न करे, कदापि करनां पडे, तोजी बहुतोसें मिलकें करे, तथा धर्म, पुण्य, दया, दानादि शुज काममें बुद्धिमान् मुख्य होवे, अग्रेश्वरी

बने, तथा किसीके बूरे करनेमें जलदी अग्रेश्वरी न बने, तथा सुपात्र साधुमें कदापि मत्सर ईर्ष्या न करे, तथा अपणे जातिवालेके कष्टकी उपेक्षा न करे, पंच एकिठे मिल कर आदरसें उनकी कष्ट दूर करे, तथा माननीयका मानभ्रंश न करे, तथा दरिद्रपीडित, मित्र, साधर्मिक, न्यातिमें बुद्धिवाला होवे, तथा गुणों करकें बडा होवे, बहिन संतान रहित होवे, इन सर्वकी पालना करे, अपने कुलमें जो काम करने योग्य न होवे, सो न करे, इत्यादि. तथा नीतिशास्त्रोक्त तथा और शास्त्रोंमें जो उचिताचरण होवे, सो करे, अरु अनुचित होवे,सो वर्जे, मध्यान्हमें पूर्वोक्त विधिसें विशेष करकें प्रधान शाल्योदनादि निष्पन्न निःशेष रसवती होवे, दूसरी वार जिनपूजा, जो मध्यान्हकी पूजा, अरु भोजन, इन दोनोका कालनियम नहीं, क्योंकि जब भूख लगे, सोइ भोजनकाल है, इस वास्ते मध्यान्हसें पहिलांभी प्रत्याख्यान पारकें देव पूजापूर्वक भोजन करे, तो दोष नहीं, वैद्यकग्रंथोंमेंभी लिखा है, कि:– एक प्रहरमें दो वार भोजन न करे, तथा दो प्रहर उल्लंघे नहीं, क्योंकि एक प्रहरमें दो वार खानेसें रसोत्पत्ति होती है, अरु जेकर दो प्रहर पीछें न खावे, तो बलक्षय होता है.

अब सुपात्रदानादिककी युक्ति लिखते हैं. सो ऐसें है कि:– भोजन वेलामें भक्ति सहित साधुओंकों निमंत्रणा करकें, साधुके साथ घरमें आवे, अथवा साधु स्वयमेव आता होवे तब सन्मुख जाकें आदर करे, विनयसहित संविज्ञ भावित अभावित क्षेत्र देखे, तथा सुभिक्ष दुर्भिक्षादिक काल देखे, तथा सुलभ दुर्लभादि देने योग्य वस्तु देखे, तथा आचार्य, उपाध्याय, गीतार्थ, तपस्वी, बाल, वृद्ध, ग्लान, सह असहादि अपेक्षा करकें महत्त्व, स्पर्द्धा,मत्सर, स्नेह, लज्जा, भय. दाक्षिण्य, परानुयायिपणा, प्रत्युपकार, इच्छा, माया, विलंब, अनादर, बूरा बोलना, पश्चात्तापादि. ये सर्व दानके दूषण वर्जकें आत्माकों संसारसें तारनेके वास्ते ऐसी बुद्धिसें बेंतालीश दूषण रहित जो कुछ घरमें अन्न, पक्वान्न, पाणी, वस्त्रादि होवे, तिसकी अनुक्रमसें सर्व निमंत्रणा करे, अपणे हाथमें पात्र लेकें पास रही भार्यादिकसें दान दिलावे, पीछें वंदना करकें अपने घरके दरवाजे तक साथ जावे, फेर पीछा आवे, जे कर साधु न होवे, तदा विना बादलों मेघकी तरें साधुका आना देखे, जे साधु आ जावे, तो मेरा जन्म स

फल हो जावे, इस वास्ते दिशावलोकन करे, जो भोजन साधुकों न दीया होवे, सो भोजन श्रावक न खावे, तथा जो श्रावक लष्ट पुष्ट साधुकों बिना कारण अशुद्ध आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोंकों रोगीके दृष्टांत करिकें हितकारी नहिं है. तथा जिस साधुका निर्वाह न होवे, दुर्भिक्ष होवे, साधु रोगी होवे तथा और कोइ कारण होवे, तो उस साधुकों अशुद्ध अप्राशुक आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोकों हितकारी होवे, तथा रस्तेके थकेकों, रोगीकों, शास्त्र पढने वालेकों, लोच करेकों, पारणेके दिनकों, दान देवे, तो बहुत फल होता है, इस सुपात्रदानका नाम अतिथिसंविभाग कहते हैं ॥ यदागमः ॥ अतिहि संविभागो नाम नायगयाणं ॥ इत्यादि पाठका अर्थ कहते हैं. अतिथि संविभाग उसकों कहते हैं, कि जो न्यायसें आया कल्पनीय अन्न, पाणी प्रमुख, देश, काल, श्रद्धा सत्कार क्रमयुक्त उत्कृष्ट भक्तिसें आत्माकों अनुग्रह बुद्धिसें, संयत साधुकों दान देवे, सुपात्र दानसें देवता संबंधी तथा औदारिकादि संबंधी अद्भुत भोग इष्ट सर्व सुखसमृद्धि राज्य प्रमुख मनगमतासंयोगादि प्राप्ति, और निर्विलंब, निर्विघ्न, मोक्षफलप्राप्ति है. क्योंकि अभयदान, अरु सुपात्र दान, तो मोक्ष देते है, और अनुकंपादान, उचितदान, अरु कीर्त्ति दान, यह तीनों सांसारिक सुखभोगोंके देने वाले हैं.

पात्रभी तीन तरेंका कहा है. एक उत्तम पात्र साधु है, दूसरा मध्यमपात्र श्रावक है, तीसरा अविरतिसम्यग्दृष्टि, सो जघन्यपात्र है. तथा अनादर, कालविलंब, विमुख, खोटा बचन बोलनां, अरु दान देकें पश्चात्ताप करणां, ये पांच सत्दानके कलंक है. तथा आनंदके आंशु आवे, रोमांच होवे, बहुमान देवे, मीठा बोले, दान दीयें पीछें अनुमोदना करे, यह पांच सुपात्र दानके भूषण हैं, सुपात्रदानका परिग्रह परिमाण करनेका फल, रत्नसार कुमारकी तरें होता है, यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी. इस वास्ते ऐसे साधु आदि संयोगके मिलेसें सुपात्रदान, दिन प्रतिदिन विवेकवान् अवश्य करे.

तथा यथाशक्ति भोजनावसरमें आये साधर्मीयोंकों अपने साथ भोजन करावे, क्योंकि वोभी पात्र हैं, तथा अंधे आदि मांगनेवालोंकोंभी यथा योग्य देवे, परंतु किसी मांगनेवालेकों निराश न जाने देवे, धर्मकी निंदा

न करावे, कठिन हृदयवाला न होवे, जोजनके अवसरमें दयावंतकों क पाट लगाने न चाहियें, उसमेंजी धनवान् तो विशेष करकें कपाट ल गावेही नहिं॥ आगमेऽप्युक्तं ॥ नेव दारं पिहावेई, जुंजमाणो सुसावउ ॥ अ णुकंपा जिणंदेहिं, सड्ढाणं न निवारिया ॥ १ ॥ दिठूण पाणिनिवहं, जीमे जव सायरंमि दुरकत्तं ॥ अविसेस अणुकंपं, डुहावि सामडउ कुणई ॥२॥ अ स्यार्थः– जोजन करतां हूआ दरवाजा जडे नहिं. क्योंकि अनुकंपादान श्रावककों जिनेश्वर जगवान्ने मने नहीं करा है. जीवोंका समूहकों जया नक संसारमें दुःखपीडित देखकें विशेष रहित द्रव्य अरु जाव दोनों तरेंसें अनुकंपा करे. उसमें द्रव्यसें तो यथायोग्य अन्नादि देवे, अरु जावसें उ नकों सन्मार्गमें प्रवर्त्तावे, श्रीपंचमांगादिकमें जहां श्रावकोंका वर्णन करा है, तहां असा पाठ है, "अवगुंविअ डुवारा" इस विशेषण करकें निक्षुका दिकोंके प्रवेश वास्ते सदा किंवाड उघाडे रखे. दीनोद्धार तो संवत्सरी दान देनेंसें तीर्थंकरोनेंजी करा है, कदापि काल डुकाल पड जावे. तब तो श्रा वक जो होवे, सो विशेष करकें दीनोद्धार, दानादिसें करे, क्योंकि आगेंजी विक्रमादित्यके संवत् १३१५ में जद्रेसर गामके वसनें वाला श्रीमाल जाति शाह जगडु श्रावकने (११२) एक सौ बारह दानशाला करकें दान दीया है, तथा विक्रमादित्यके संवत् १४२ए में सोनी सिंहा श्रावकने २४००० मण अन्न, दीन जीवोंकों डुकालमें दीया है, तथा निर्दूषण आ हार देवे, तो सुपात्र दान शुद्ध है.

तथा माता, पिता, जाइ, बहिन, पुत्र, बहू, सेवक, ग्लान, अरु बांधे हूये गौ प्रमुख इन सर्वकी चिंता करकें अर्थात् इन सर्वकों जोजन कराकें पीछें पंच परमेष्टि स्मरण करकें, प्रत्याख्यान पारकें, सर्व नियम स्मरण क रकें, साम्यतासें जोजन करे. साम्यता असें जाननी कि जो अन्न, पाणी, आपसमें विरुद्ध न होवे, तथा उलटा न परिणमे, आपणे स्वजावके मा फक होवे, तिसकों साम्य कहते हैं. जो पुरुष संपूर्ण जन्म तक साम्य तासें जोजन करे, वो कदी विषजी खावे, तोजी अमृत हो जावे, अरु अ साम्यतासें अमृत खायाजी विष हो जाता है, परंतु इतना विशेष है, कि:– साम्यतासेंजी पथ्यही खानां चाहियें, नतु अपथ्य. तथा खानेका अत्यंत गृद्ध न होनां चाहियें, कंठ नाडिसें जब हेठ उतर जाता है, तब

सर्व नोजन बराबर हो जाता है, इस वास्ते एक क्षणमात्रका स्वादके वास्ते अति लोल्यता न करनी चाहियें. तथा अनदय अनंतकाय, बहु सावद्य वस्तु, अर्थात् बहुत पापवाली वस्तु न खावे, तथा जो थोडा खाता है, सो बहुत बलादिवान् होता है, तथा जो बहुत खाता है, सो अल्प खानेके फलवाला होता है, तथा अधिक खानेसें अजीर्ण वमन विरेचनादि मरणांत कष्टनी हो जाता है ॥ श्लोक ॥ हितमितविपकनोजी, वामशयो नित्यचंक्रमणशीलः ॥ उज्झितमूत्रपुरीषः, स्त्रीषु जितात्मा जयति रोगान् ॥ १ ॥ अर्थः—जो नूख लगे तो हितकारी ऐसा अन्न थोडा जीमे, वामा पासा हेठ करकें सोवे, नित्य चलनेका स्वनावशील होवे, जब बाधा होवे, तबही दिसामात्रा करे, स्त्रीसें नोग न करे, वो पुरुष रोगोंकों जींत लेता है.

अथ नोजनविधि, व्यवहार शास्त्रादिकोंके अनुसार लिखते हैं. अतिप्रनातमें, अतिसंध्यामें, तथा रात्रिमें नोजन न करनां चाहियें, तथा सडा, वास्या, अन्न न खावे, चलता हूआ न खावे, तथा जीमणा (दाहिण) पग ऊपर हाथ रखकें न खावे, हाथ उपर रखकें न खावे. खुल्ले आकाशमें न खावे, धूपमें बैठकें न खावे, अंधारेमें वृक्षके तलें न खावे, तर्जनी अंगुली उंची करकें कदापि न खावे, मुख. हाथ. पग. अरु वस्त्र, विना धोयां न खावे, नंगा हो कर मैले वस्त्रोंसें. दाहिणे हाथसें, थालकों विना पकडे, न खावे, धोती आदिक एक वस्त्र पहिरकें न खावे, नींजे वस्त्र पहिरकें न खावे, नींजे वस्त्रसें मस्तक लपेटकें न खावे. यदा अपवित्र होवे, तदा न खावे, अति गृद्ध रस लंपट हो कर न खावे, तथा जूते सहित, व्यग्रचित्त, निःकेवल नूमि उपर बैठकें, अरु मंजे उपर बैठकें न खावे. विदिशिकी तर्फ तथा दक्षिणकी तर्फ मुख करकें न खावे. पतले आसनपैं बैठकें नोजन न करे, तथा आसन उपर पग रखकें नोजन न करे, चंमालके देखते न खावे, जो धर्मसें पतित होवे, उसके देखते न खावे, तथा फूटे पात्रमें अरु मलीन पात्रमें न खावे, जो शाकादिक वस्तु विष्टासें उत्पन्न होवे, सो न खावे, बालहत्यादि जिसने करी होवे इनने तथा रजस्वला स्त्रीने जो वस्तु स्पर्शी होवे, तथा जो वस्तुकों गाय, श्वान, पंखीने सूंघी होवे, तथा जो वस्तु अजाणी होवे, तथा जो वस्तु फेरकें उष्ण करी होवें, सो न खावे,

तथा बचबचाट शब्द करकें न खावे, तथा मुख फाटे तो बुरा लगे ऐसें मुख करकें न खावे, तथा भोजनके अवसरमें दूसरोंकों बुलाकें प्रीति उप जावे, अपणे देवगुरुका नामस्मरण करकें समासन उपर बैठकें, जो अन्न अपनी माता, बहिन, ताइ, (पितासें बडे भाइकी औरत) भाणजी. स्त्री प्रमु खनें रांध्या होवे, सो पवित्र पणे भोजन परोसा हूआ उसकों, मौन करकें दाहिना स्वर चलते खावे. जो जो वस्तु खावें, सो नासिकासें सूंघके खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखके स्वाद मात्र खावे. क्योंकि अति उष्ण खावे, तो रस हण्या जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति लवण खावे, तो नेत्र बिगड जाते हैं, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहित हो जाती है. तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कौडा द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जाता है, तथा कषायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं.

जो पुरुष शाक न खावे, अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे. तदा खावे नहिं. सो पुरुष, रोगोकों जींत लेता है, भोजन करती वखत पहिलां मीठा अरु स्निग्ध भो जन करे, बीचमें तीक्ष्ण भोजन करे, पीछें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुस्नि ग्धमधुरैः पूर्व, मश्नीयादन्वितं रसैः ॥ द्रव्याम्ललवणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः॥

तथा जो पहिलां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कडुआ रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवंत अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीकों भोजनसें पहिलां पीवे, तो मंदाग्निका जनक है, तथा भोजनके बिचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा भोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान है, भोजनके अनंतर सर्वरससें लिप्त हूये हाथसें एक चलु राज पीवे; पशुकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीछें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसें पाणी न पीवे, पाणी थोडा पीणां पथ्य है, पाणीसें भींजे हूये हाथोंकों गला, तथा कपोल, हाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पूंजे, गोडे (जानु) का स्पर्श करे, तथा अंगमर्दन, दिशा जानां, भार उठानां, बैठनां, स्नान

करनां, ये सर्व जोजन कीया पीछें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमा न् पुरुष जोजन करकें बैठ जावे, तो पेट बडा हो जाता है, तथा उपरि कों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल वधे, वामे पासें सोवे, तो आयु वधे, जोजन करकें दोडे, तो मरण होवे, जोजन कीयां पीछें वामे पासें दो घडी तांई सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नहीं तो सौ प ग (सौ डिग) चले, (फिरे) अन्यत्रजी कहा है कि देवकों, साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोंकों, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्रसूर्यके ग्र हणमें जे कर शक्ति होवें, तो विवेकवान् पुरुष जोजन न करे. ऐसेंही "अजीर्ण प्रजवारोगा" इस वास्ते अजीर्णमेंजी जोजन न करे.

ज्वरकी आदिमें लंघन करनां श्रेष्ठ है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोध ज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर त था नेत्ररोगके हूये लंघन करे.

तथा देव गुरुके वंदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते वखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करतां, बडा पुण्य कार्य प्रा रंज करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, जोजन न कर नां चाहियें. तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें बहुत गु णकारी है, तथा जोजन करा पीछें नमस्कार स्मरण करकें उठे, चैत्यवंद ना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे, तथा जोजनके पीछें गंठिस हित दिवसचरिमं प्रत्याख्यान विधिसें करे, पीछें गीतार्थ साधु, गीतार्थ श्रा वक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपें स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंकों पढावे, स्वाध्याय करे, पीछें संध्यामें जिनपूजा करे, पीछें पडिक्कमणां करे, पीछें स्वाध्याय करे, पीछें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचंपी करे, पीछें घर जा कर सकल परिवारकों जोडकें धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमार्गें तो श्रावककों एक वारही जोजन करनां चाहियें ॥ यदजाणि ॥ उस्सग्गेणं तु सड्ढोय, सचित्ताहारं वज्जउ ॥ इक्कासणग जोइअ, बंजयारि तहेव य ॥ १ ॥ जेकर एक जुक्त न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा जाग अर्थात् चार घडी दिन जब रहे, तब जोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घडी दिन रहनेसें पहिलांही जोजन कर लेवे, पीछें यथाशक्ति चार आहार, तीन

आहार, दो आहारका त्यागरूप दिवसचरिम सूर्य उगते तांइ करे, सो मुख्य वृत्तिसें तो दिन होतेही करनां चाहियें, परंतु अपवादमें रातकोंजी करे.

इतिश्री तपगच्छीय गणिश्रीमणिविजय तच्छिष्य मुनिश्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्राद्धविधिशास्त्रानुसारेण श्रावक दिनकृत्यप्रकाशक नामा नवम परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ९ ॥

॥ अथ दशम परिच्छेद प्रारंभः ॥

इस परिच्छेदमें श्रावकोंका एक रात्रिकृत्य, दूसरा पर्वकृत्य, तीसरा चौमासिककृत्य, चौथा संवत्सरीकृत्य, अरु पांचमा जन्मकृत्य, यह पांच कृत्य अनुक्रमसें लिखेंगे. तिसमें प्रथम रात्रिकृत्य लिखते हैं.

साधुके पास तथा पौषधशालादिमें यत्नपूर्वक प्रमार्जना पूर्वक सामायिक करकें प्रतिक्रमण करे, पीछें साधुओंकी पगचंपी करे, यद्यपि साधुने श्रावकके पासों उत्सर्गमार्गमें विश्रामणादि नहीं करावणी, तोभी श्रावक विश्रामणा करणेके भाव करे, तो महाफल है. पीछें श्राद्धदिनकृत्य, श्रावकविधि, उपदेशमाला अरु कर्मग्रंथादि शास्त्रोंकी स्वाध्याय करे, पीछें सामायिक पारके घरमें जावे.

पीछें सम्यक्त्वमूल बारह व्रतमें, सर्वशक्तिसें यत्न करणादिरूप तथा सर्वथा अर्हत् चैत्य, अरु साधर्मिक वर्जित वासस्थानमें अनिवासरूप तथा पूजा प्रत्याख्यानादि अभिग्रहरूप, यथाशक्ति सप्त क्षेत्रमें धन खरचनरूप ऐसा यथायोग्य सकल परिवारकों धर्मोपदेश कथन करे, जेकर श्रावक अपणे परिवारकों धर्म न कहे, तब उन परिवारकों धर्मकी प्राप्ति न होवेगी, तो इस लोक परलोकमें जो वे पापकर्म करेंगे, सो सर्व उस श्रावककों लगेंगे, क्योंकि लोकमें यह व्यवहार है किः– जो चोरकों खाने पीनेकों देवे, सोभी चोर गिना जाता है. ऐसें धर्ममेंभी जान लेनां, इस वास्ते श्रावकने द्रव्य तथा भावसें अपने कुटुंबकों शिक्षा देनी चाहियें, उसमें द्रव्यसें तो पुत्र, कलत्र, बेटी प्रमुखकों यथायोग्य वस्त्रादि देवे, अरु भावसें तिनकों धर्मका उपदेश करे, तथा दुःखीये सुखीयेकी चिंता करे ॥अन्यत्राप्युक्तं॥ राज्ञि राष्ट्रकृतं पापं, राज्ञः पापं पुरोहिते ॥ भर्त्तरि स्त्रीकृतं पापं, शिष्यपापं गुरावपि ॥ १ ॥ धर्मदेशना दीये पीछें, रात्रिका प्रथम प्रहर वीत्या पीछें, शरीरकों हितकारी श

य्यामें विधिसें निद्रा अल्पमात्र करे, गृहस्थ बाहुल्यता करकें मैथुनसें व र्जित होवे,जे कर गृहस्थ जावजीव तक ब्रह्मव्रत पालने समर्थ न होवे,तदा पर्व तिथिके दिन तो अवश्य ब्रह्मचर्यव्रत पालना चाहियें.

नींद लेनेकी विधि नीतिशास्त्रके अनुसारें यह है:– जिस मांचेमें जीव पडे होवे, जो खाट छोटी होवे, जांगी हुइ होवे, मैली होवे, दूसरे पाये संयुक्त होवे, तथा अग्निके बले काष्ठकी खाट होवे, सो त्यागे, खाटमें तथा आसनमें चार जातकी लकडी लगे,तब तांइ तो शुभ है,परंतु पांचादि काष्ठ लगे, तो अशुभ है. तथा पूजनिक वस्तुके उपर न सोवे, तथा पाणीसें पग नींजे न सोवे, तथा उत्तर दिशि अरु पश्चिमदिशि तर्फ शिर करकें न सोवे, बांसकी तरें न सोवे, पगोंके ठिकाणे न सोवे, हाथीके दांतकी तरें न सोवे, देवताके मंदिरके मूलगंभारेमें, सर्पकी बंबी उपर, वृक्षके हेठ, तथा श्मशानमें सोवे नहीं, किसीके साथ लडाइ हुइ होवे, तदा मिटाकें सोवे, सोने वखत पाणी पास रखे, तथा दरवाजा जडकें, इष्टदेवकों नमस्कार करकें बडी शय्यामें अच्छी तरें उढनेके वस्त्र समारकें, सर्वाहार त्यागकें, वामा पासा नीचें करकें सोवे.

दिनकों सोवे नहीं. परंतु क्रोध, शोक, अरु भयके मिटाने वास्ते तथा स्त्रीकर्म, अरु नारके थकेवेकें मिटाने वास्ते तथा रस्तेके खेदके मिटाने वास्ते तथा अतिसार, श्वास, हिजकी प्रमुख रोग दूर करने वास्ते सोवे, तथा जो बाल होवे, वृद्ध होवे, बलक्षीण होवे, सो सोवे, तथा तृषा, शूल, गड, गूंमडकी वेदना करकें विव्हल होवे, सो सोवे, तथा जिसकों अजीर्ण हुवा होवे, वाय हुवा होवे, जिसकों खुसकी हुइ होवे, तथा जिसकों रात्रिमें निद्रा थोडी आती होवे, वो दिनमेंजी सो जावे. तथा ज्येष्ठ अरु आषाढ महीनेमें दिनमेंजी सोनां अच्छा है, और महीनोमें सोवे, तो कफ अरु पित्त करता है, तथा बहूत नींद लेनी बहुत काल लग सूता रहनां, अच्छा नहीं, तथा रातकों सोवे तदा दिशावकाशिक व्रत उच्चारकें सोवे, तथा चार सरणां लेवे, सर्व जीवराशिसें खामणां करे, अढारह पाप स्थानक व्युत्सर्जन करे, दुष्कृतकी निंदा करे, सुकृतानुमोदन करे, तथा ॥ जइ मे हुज्ज पमाउ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीये ॥ आहारमुवहि देहं, सव्वं तिविहेण वोसरियं ॥ १ ॥ नमस्कार पूर्वक इस गा

थाकों तीन वार पढे. साकार अनसन करे, पंच नमस्कार स्मरण सोनेके अवसरमें पढे, स्त्रीसें दूर अलग शय्यामें सोवे, जेकर निकट सोवे, तब एक तो विकार अधिक जागता है, तथा दूसरा जिस वासना युक्त पुरुष सोवे, सो जितना चिर जागे नहीं, उतना चिर उही वासना उस पुरुषकों रहती है. इस वास्ते स्त्रीसें अलग दूसरी शय्यामें सोवे, तथा पागल (दीवाना) हो जावे, तथा मरणावसरमें गफलत हो जावे, तोनी तिसके जो सचित्त अवस्थामें वासनाथी, उही वासना है, असें जानना ॥ इत्याप्तोपदेशः ॥ इस वास्ते सर्वथा उपशांतमोह हो करकें, धर्म वैराग्यादि नावना करकें, वासित हो करकें निद्रा करे, तो खोटा स्वप्न न होवे, जिस रीतिसें अछा धर्ममय स्वप्न देखे, इसी रीतिसें सोवे, जे कर कदाचित् उसका आयु समाप्तिनी हो जावे, तोनी वो अछी गतिमें जावे.

तथा सूतां पीछें रात्रिमें जब जाग जावे, तदा अनादि कालका अन्यास रससें कदाचित् काम पीडा करे, तब स्त्रीके शरीरका अशुचिपणा विचारे, अरु श्रीजंबूस्वामी तथा थूलिनद्रादि महा रुषियोंका तथा सुदर्शनादि महा श्रावकोंकी डुष्कृत शील पालनेमें दृढता विचारे, तथा कषायादि दोषके जीतनेका उपाय जो नवस्थिति अत्यंत डुःखदाता है, धर्म मनोरथ इनकी चिंतवणा करे, तिनमें स्त्रीके शरीरकों अपवित्रता, जुगुप्सनीयादि सर्व विचारे, जैसें श्रीहेमचंद्रसूरिजीनें योगशास्त्रमें लिखा है. तथा पूज्यश्री मुनिसुंदर सूरिजीनें अध्यात्मकल्पद्रुममें लिखा है, तैसें विचारे, सो लेशमात्र इहां लिखते हैं.

चाम, हाड, मज्जा, आंदरा, चरबी, नसा, रुधिर, मांस, विष्टा, मूत्र, खेल, खंकारादि अशुचि पुजलका, पिंड स्त्रीका शरीर है, इस पिंडमें तुं क्या रमणिक वस्तु देखता है? जो विष्टेकों दूरसें देख कर लोक थूथूकार करते हैं, वेही मूढ लोक विष्टे अरु मूत्रसें पूर्ण, असें स्त्रीके शरीरकी अनिलाषा करते हैं? विष्टेकी कोथली बहुत छिद्रोंवाली जिसके छिद्र द्वारा कृमीजाल निकलते हैं, अरु कृमीजालसें नरी है, असी स्त्री है, तथा चपलता, माया, जूठ, ठगी, इनों करकें संस्कारी हुइ है, तातें जो पुरुष मोहसें इसका संग करे, नोगविलास करे, तिसकों नरकके तांइ है, असी स्त्री विष्टेकी कोथली जिसके इग्यारों द्वारोंसें अशुचि जरती है, जिस द्वारकों सूंघो,

उसीमें महा सडे हूये कुत्तेके कलेवर समान दुर्गंध आती है, तो फेर कामीजन क्यों कर उन स्त्रीके शरीरमें रागांध होते हैं? इत्यादि स्त्रीके शरीरकी अशुचि विचारे, वो पुरुषकों धन्य है, वो पुरुष जंबुकुमार, जिसने नवपरिणीत आठ पद्मिनी स्त्री, अरु निनानवे क्रोड सौनइये तिनकमें त्याग दीया, तिसका माहात्म्य विचारे, तथा श्रीथूलिभद्र अरु सुदर्शन शेठके शीलका माहात्म्य विचारे.

कषाय जीतनेका उपाय इस तरें करेः—क्रोधकों क्षमा करकें जींते, मानकों नरमाइसें जींते, मायाकों सरलताइसें जींते, लोभकों संतोषसें जींते, रागकों वैराग्यसें जींते, द्वेषकों मित्रतासें जींते, मोहकों विवेकसें जींते, कामकों स्त्रीके शरीरकी अशुचि भावनासें जींते, मत्सरकों परकी संपदा देखकें पीडा न करनेसें जींते, विषयकों संयमसें जींते, अशुभ मन, वचन, अरु काया इन तीनोंकों तीन गुप्तिसें जींते, आलसकों उद्यमसें जींते, अविरतिपणाकों विरतिपणासें जींते, इस प्रकार करकें यह सब, सुखसें जींते जाते हैं, आगेंभी बहुत महात्माउने इनकों इसी तरे जींता हैं.

भवस्थिति महादुःखरूप है, क्योंकि चारों गतिमें जीव नाना प्रकारके दुःख पा रहे हैं, तिनमें नरकगतिमें तो सातों नरकोंमें क्षेत्रवेदना है, तथा पांच नरकोंमें परस्पर शस्त्रों करकें उदीरी वेदना है, तथा तीन नरकमें परमाधार्मिक देवताकृत वेदना है, आंख मींचके उघाडे, इतना कालभी नरकवासी जीवोंकों सुख नहीं है. निःकेवल दुःखही पूर्व जन्मका करा हूआ पापोंसें उदय हूआ है. रात, अरु दिन, एक सरीखे दुःखमें जाते हैं, जितना नरकगतिमें जीव दुःखकों पावे है, उस्सें अनंतगुणा दुःख निगोदमें जीव पावे है, तथा तिर्यंचगतिमें अंकुश, पराणा, लाठी, सोटा, शृंगमोडन, गलमोडन, तोडन, छेदन, भेदन, दहन, अंकन, परवशादि, अनेक दुःख पावे है. तथा मनुष्य गतिमें गर्भ, जन्म, जरा, मरण, नानाप्रकारकी पीडा, रोग, व्याधि, दरिद्रता, माता, पिता, स्त्री, पुत्रका मरणादि अनेक दुःख पावता है; तथा देवगतिमें चवनका दुःख, दासपणेका दुःख, पराजय, ईर्ष्यादि अनेक दुःख है, इत्यादि भवस्थिति विचारे.

तथा धर्ममनोरथ भावना. सो श्रावकके घरमें जो ज्ञान, दर्शन, व्रत सहित मैं दासभी हो जाऊं, तोभी अच्छा है, परंतु मिथ्यादृष्टिमें चक्रवर्त्ती राजाभी

न होउं? तथा कब मैं संविज्ञ सो संवेगी वैराग्यवंत गीतार्थ गुरुके चरणोमें स्वजनादि संग रहित प्रव्रज्या ग्रहण करुंगा? तथा कब मैं तिर्यंचके पिशाचके नयसें निःप्रकंप हो कर श्मशानादिमें विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करुंगा? तथा कब मैं तपसें कृश शरीर हो कें उत्तम पुरुषोंके मार्गमें चलुंगा? इत्यादिक नावनासें कामके कटककों जीते॥ इति श्राद्धविधि ग्रंथानुसार रात्रिकृत्यं॥

अथ श्रावकका पर्वकृत्य लिखते हैं. पर्व जो अष्टमी, चतुर्दशी आदिक दिवस, तिसमें धर्मकी पुष्टि करे तिसका नाम पौषध है, सो पौषधक नले व्रतवाले श्रावककों पर्वके दिनमें अवश्य करनां चाहियें, जे कर पर्वके दिन शरीरमें शाता न होवे तदा पौषध न कर सके, तो दो वार प्रतिक्रमणां करे, तथा बहुत वार सामायिक अरु दिशावकाशिक व्रत अंगीकार करे, तथा पर्वदिनोमें ब्रह्मचर्य पाले, आरंन वर्जे, विशेष तप करे, चैत्यपरिवाडी करे, सर्वसाधुउंकों नमस्कार करे, तथा सुपात्रदान, देवपूजा अरु गुरुनक्ति, यह सर्व, और दिनोंसें विशेष करे, धर्मकरणी तो सर्वदिनोमें करणी अच्छी है, जे कर सदा न करी जावे, तो पर्वके दिन तो अवश्यमेव करणी चाहियें सो, पर्व ये हैं. अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, अमावास्या, यह एक मासमें है पर्व, अरु पक्षमें तीन पर्व, तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, यह पांच तिथि, तीर्थंकरोनें कही है. उसमें दूजके दिन दो प्रकारका धर्म आराधना करनां. पंचमीके दिन ज्ञानकों आराधनां, अष्टमीकों अष्टकर्मका नाश करणां, एकादशीमें इग्यारह अंगकों आराधनां, चतुर्दशीकों चौदह पूर्वकों आराधनां, यह पांच तथा पूर्वोक्त अमावास्या अरु पूर्णमासी एवं षट पर्व हूये. अरु वर्षमें है अठाइ पर्व है चौमासी पर्वादि पर्वोमें जेकर सर्वथा आरंन न त्याग सके, तो स्वल्प स्वल्पतर आरंन करे. तथा पर्वके दिन सर्व सचित्ताहार वर्जे, श्रावककों तो नित्यही सचित्ताहार वर्जनां चाहियें, जेकर शक्ति न होवे, तदा पर्वके दिन तो अवश्य वर्जे, तथा ऐसें पर्वके दिनोंमें स्नान, शिर दिखाने, गूंथन करानां, वस्त्र धोनां, वस्त्र रंगनां, गाडा हलादि चलानां, धान्यका मूढक बंधनां, कोल्हु, अरहट चलानां, दलनां, छडनां, पीषणां, पत्र, पुष्प, फल तोडनां, सचित्त खडी हरमजीका मर्दन करनां, धान्य काढनां, लींपनां, माटी खोदनी तथा घर बनानां, इत्यादि आरंन सर्व यथाशक्तिसें त्यागनां चाहियें,

तथा सर्व सचित्ताहार न त्याग सके, तो नाम लेकें कितनीक वस्तु खानेकी छूट रक्खे, उपरांत त्याग देवे. तथा छेहों अठाइयोंमें जिनवर पूजा करनी, तप करनी. ब्रह्मचर्य पालनां, छेहों अठाइयोमें चैत्र तथा आसोजकी यह जो दो अठाइ है, सो शाश्वती है, इन दोनोमें वैमानिक देवताजी नंदी श्वरादिमें यात्रोत्सव करते हैं. तथा तीन चौमासेकी तीन अठाइ अरु चौथी पर्यूषणकी तथा दो चैत्र अरु आसोजकी, यह सब मिलकर छै अठाइ हैं.

तथा तिथि जो प्रजातसमय प्रत्याख्यानकी वेलामें होवे, सो जैनमतमें माननी प्रमाण है, सूर्योदय अनुसारें लोकमेंजी दिनका व्यवहार होनेसें माननी प्रमाण है, तथा च निशीथजाष्ये ॥ चउमासी अ वरीसे, पक्खिय पंच ठमीसु नायवा ॥ ताउ तिहिउ जासिं, उदेइ सूरो न अन्नाउ ॥ १ ॥ पूआ पच्चरकाणं, पडिक्कमणं तहय नियम गहणं च ॥ जीए उदेइ सूरो, तीए तिहिए उ कायवं ॥ २ ॥ उदयम्मि जा तिहि सा, पमाणमिअरी कीरमाणी ए ॥ आणाजंगणवत्था, मिछत्त विराहणं पावे ॥ ३ ॥ अस्यार्थः— चौमासी, संवत्सरी, पक्खी, पंचमी, अष्टमी, ये तिथियां सूर्योदयमें होवे, तब प्रमाण है, नान्यथा. पूजा, पडिक्कमणा, प्रत्याख्यान, तैसेंही नियम ग्रहण करनां सो जिस तिथिमें सूर्योदय होवे, तिसमें करनां चाहियें, जो तिथि सूर्योदयमें होवे, सो प्रमाण है, तथा उदय तिथि बिना जो कोइ और तिथि करे, माने, सो आज्ञाका विराधक, अनवस्था कारक, मिथ्या दृष्टि है. पाराशरस्मृत्यादिमेंजी लिखा है ॥ श्लोक ॥ आदित्योदयवेलायां, या स्तोकापि तिथिर्भवेत् ॥ सा संपूर्णेति मंतव्या, प्रभुता नोदयं विना ॥१॥ उमास्वातिवाचकप्रघोषश्चैवं श्रूयते ॥ क्षये पूर्वा तिथिः कार्या, वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥ श्रीवीरज्ञाननिर्वाणं, कार्यं लोकानुगैरिह ॥ २ ॥

तथा श्रीअर्हंतोंके जन्मादि पंचकल्याणकके दिनजी पर्व हैं, जब दो, तीन, कल्याणक होवे, तब तो विशेष करकें पर्व माननां चाहियें, शास्त्रोंमें सुनते हैं, कि श्रीकृष्ण वासुदेव सर्व पर्व आराधनेमें अपणेकों असमर्थ जान कर श्रीनेमिनाथ अरिहंतकों पूछता हूआ कि, उत्कृष्ट पर्व कौनसा है? तब जगवान् कहते जये कि हे कृष्ण वासुदेव! मगसिर शुक्ल एकादशी, यह पर्व सर्वोत्तम है, क्योंकि इस दिन श्रीजिनेंद्रोंके पांच कल्याणिक जये हैं, सर्व क्षेत्रोंके मेढ सौ कल्याणिक हूये हैं, तब श्रीकृष्ण वासुदेवने

मौन पौषधोपवास करकें तिस दिनकों माना, तबसेंही "यथा राजा तथा प्रजा." यह रीतिसें सब लोक एकादशी मानने लगे, सो आज तांइ प्रसिद्ध हैं.

तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, इन तिथियोंमें प्रायः जीवोंका परजवायु बंधता है, इस वास्ते इन तिथियोंमें विशेष धर्मकरणी करे, तथा पर्वके महिमाके प्रजावसें अधर्मी निर्दयादिनी धर्मी। अरु दयावान् हो जाता है, कृपणभी धन खरच देते हैं, कुशीलनी सुशील हो जाते हैं. वो जयवंत रहो, कि जिसने संवत्सरी, चातुर्मासी आदि श्रेष्ठ पर्व कथन करे हैं, क्योंकि जो अनार्योंके चलाये पर्व हैं, तिनमें आग जलानां, जीव मारने, रोनां, पीटनां, धूल उडानी, वृक्षोंके पत्रादि तोडने, इत्यादि नाना प्रकारके पाप होते हैं, अरु जो पर्व, परमेश्वर अरिहंतने कहे हैं, उनमें तो निःकेवल धर्मकृत्यही करनां कहा है, इस वास्ते पर्वदिनमें पौषधादि करे, पौषधके जेद, अरु विधि, यह सब श्राद्धविध्यादि शास्त्रोंसें जान लेनां ॥ इति

अथ चौमासिककृत्य विधि लिखते हैं, चौमासेमें विशेष करकें नियम व्रत परिग्रह परिमाण करनां चाहियें, वर्षा (चौमासेमें) बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते विशेष नियमादि करनां चाहियें, वर्षादमें गाडा चलानां, तथा हल फेरनां न करे, तथा राजादन, अर्थात् खिरनी आंबादिमें कीडे पड जाते हैं, सो न खाने चाहियें. देशोंका विशेष अपनी बुद्धिसें समझ लेनां, तथा नियमनी दो तरेंके है, एक सुनिर्वाह, दूसरा डुर्निर्वाह, तिनमें धनवंतोंकों व्यापार, अरु अविरतियोंकों सचित्तका त्याग, रसका त्याग, तथा शाकका त्याग करनां, अरु सामायिकादि ये अंगीकार करनां, यह डुर्निर्वाह है. अरु पूजा, दान, महोत्सवादि सुनिर्वाह है, अरु निर्धनोंकों इस्सें विपरीत जान लेनां, तथा चित्त एकाग्र करनां. यह तो सर्वहीकों डुःष्कर है, इनमें डुर्निर्वाह नियम न हो सके तो सुनिर्वाह नियम अंगीकार करे, तथा चौमासेमें ग्रामांतर न जावे, जे कर निर्वाह न होवे तो जिस गाममें अवश्य जानां है, तिसकों वर्जकें और जगें न जावे, सर्व सचित्तका त्याग करे, निर्वाह न होवे, तो परिमाण करे, तथा दो, तीन बार जिनराजकी अष्टप्रकारी पूजा करे. संपूर्ण देववंदन सर्व जिनमंदिरोंमें जिनबिंबोंकी पूजा वंदना करनी, स्नात्रपूजा महामहोत्सव, प्रजावनादि करे, गुरुकों बृहत्वंदना तथा और साधुओंकों प्रत्येक वंदनाकरे, च

तुर्विंशतिस्तवका कायोत्सर्ग करे, अपूर्वज्ञान पढे, गुरुकी वैय्यावृत्त्य करे, ब्रह्मचर्य पाले, अचित्त पाणी पीवे, सचित्तका त्याग करे, बासी, विदल, रोटी, पूरी, पापड, वडी, सूका साग, पत्ररूप हरिया साग, खारक, खजूर, द्राक्ष, खांड, सुंठ्यादि यह सर्व, नीली फूलण, कुंथुआदि लट कीडे पडनेसें खाने योग्य नहिं रहते है, इस वास्ते इनका त्याग करे, कदाचित् औषधादि विशेष कार्यमें लेनी पडे, तो सम्यग्रीतिसें शोधकें लेवे, तथा खाट, स्नान, शिरगुंदानां, दातण, पगरखा, इनका त्याग करे, तथा नूषण, वस्त्र रंगनेका निषेध करे, तथा घर, हाट, नींत, स्तंन, खाट, पाट, पट्टक, पट्टिका, छींका, अरु घृत तैलादिकका वासण, इंधन धान्यादि सर्व वस्तुमें नीली फूली हो जाती है, तो इसकी रक्षा वास्ते पहिलांही चूना आदि खार लगा देवे, मैल दूर करे, धूपमें न गेरे, शीतल स्थानमें रख देवे, तथा दिनमें दो तीन वार जल छाणे, स्नेह, गुड, छाछ प्रमुखके वासणका मुख यत्नसें ढककें रक्खे, तथा उसामणका अरु स्नानका पाणी, जहां जीव न होवे, तहां पृथक् पृथक् नूमिमें थोडा थोडा गेरे, तथा चूला अरु दीपक प्रमुख उघाडा न छोडे, तथा खंमनां, पीसनां, रांधनां, वस्त्र नाजन धोने, इत्यादि कामो देख कें यत्नसें करे, तथा जिनमंदिर अरु धर्म शालाकों समराकें रक्खे, तथा यथाशक्ति उपधान तप प्रतिमा मासादि वहै, तथा कषाय अरु इंद्रियकों जींते, तथा योगशुद्धि तप, वीशस्थानक तप, अमृत अष्टमी तप, एकादशांग तप, चौदह पूर्वतप, नमस्कार तप, चौवीश तीर्थंकरके कल्याणिक तप, अक्षयनिधि तप, दमयंती तप, नद्रमहानद्रादि तप, संसारतारण अठाइ तप, पक्ष मासादि विशेष तप करे, तथा रात्रिकों चतुर्विध आहार, त्रिविध आहार त्याग करे, पर्वदिनमें विकृति त्यागे, पर्वदिनमें पौषधोपवासादि करे, तथा निरंतर पारणेमें अतिथिसंविनाग करे, चातुर्मासिक अनिग्रह पूर्वाचार्योंनें इस तरेसें लिखा है, ज्ञानाचारमें, दर्शनाचारमें, चारित्राचारमें, तपआचारमें, तथा वीर्याचारमें इत्यादि अनेक प्रकारका अनिग्रह करे, सो इस रीतिसें हैः—ज्ञानाचारमें शक्ति अनुसारें सूत्र पढे, सुने, चिंते, तथा शुक्ल पंचमीकों ज्ञानकी पूजा करे, तथा दर्शनाचारमें काजा काढे, अर्थात् समार्जना करे, देहरेमें लीपे, गुंहली करे, मांमली करे, चैत्यजिनप्रतिमाकी पूजा करे, देववंदना करे, जिनबिंबोंकों निर्मल करे,

तथा चारित्रमें जूआंकी यत्ना करे, बनस्पतिमें कीडे पडे खार न देवे, इंधनमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमें जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीकों कलंक न देवे, कठिन बचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी अरु गुरुकी सोगंद न खावें, किसकी चुगली न करे, किसीके अवर्णवाद न बोले, माता पितासें छाना काम न करे, निधान तथा पडा हूआ धन देखकें जैसें शरीर और धर्म न बिगडे, तैसें करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पाले, रात्रिकों स्वदारासें संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इछा परिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करें, तथा स्नानका, उवटनेका, विलेपनका, आनरणका, फूलका, तंबोलका, बरासका, अगरका, केशरका, कस्तूरिका, इतनी नोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीठ, लाख, कुसुंना, नील, इनसें रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे. तथा रत्न, वज्र, नीलमणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंबीर, जंबरूद, जंबू, राजदन, नारंगी, शंतरा, बीजोरां, काकडी, अखोड, बदाम, कोठफल, टींबरू, बिल, खजूर, डाख, दाडिम, उत्तिजका फल, नालिअर, अंबलो, बोर, वीलूक फल, चीनडा, चीनडी, कयर, कर्मदा, नोरड, निंबू, आंबली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया हूआ नाना प्रकारके फूल, पत्र, सचित्त, बहुबीजा, अनंतकाय, इतनी वस्तु वर्जे, तथा विगय अरु विगयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणेका, हल वाहनेका, स्नानकी वस्तुका परिमाण करे, तथा खंमनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण करे, कूठी साख न देवे, तथा पाणीमें कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण करे, व्यापारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ संनाषण करनां, स्त्रीकों देखनां त्यागे, तथा अनर्थदंड त्यागे, सामायिक, पौषध करे, अतिथिसंविनाग करे, इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे, तथा जिनमंदिरकों देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संनाल करे, पर्वमें तप करे, उजमणो करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका गलनां देवे, तथा औषधी देवे, साधर्मीवत्सल यथाशक्तिसें करे, गुरुकी विनय करें, मास मासमें सामायिक करे, वर्षमें पौषध करे ॥ इत्यादि ॥ इति श्राद्धश्राविका चातुर्मासिक नियमस्वरूप कथनं समाप्तं ॥

अथ श्रावकोंका वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी लिखने हैं.

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वद्रव्यकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसें साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कंबल, पूंछणा, सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंम, दंमिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुकों देवे, औरनी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोनी देवे, ऐसेंही प्रातिहारक. पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंकों देवे, ऐसेंही श्रावक, श्राविकारूप संघकी नक्ति यथाशक्तिसें पहरावणादि करकें सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोंकोंनी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट, तिसमें सर्वदर्शन सर्व संघकों करे,सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहां अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्यें देवे, इस रीतिसें संघ पूजा करे. तो निर्धनकोंनी महा फल है ॥ यतः ॥ संपत्तौ नियमाशक्तौ,सहनं यौवने व्रतं ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्पं,महालानाय जायते॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल करे,सो सर्व साधर्मीयोंकी अथवा कितनेककोंकी यथाशक्ति यथायोग्य नक्ति करे,तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें, तथा और किसी कार्यमें पहिलें तो साधर्मियोंकों निमंत्रणा करकें विशिष्ट नोजन, तांबूल. वस्त्रानरणादि देवे, तथा किसी साधर्मीकों कोइ कष्ट पडे, तब अपणा धन खरचकें उसका कष्ट दूर करे,जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसें सहाय करे, परदेशसें देशमें पहुंचावे, तथा धर्मसें सीदताकों जैसें बने तैसें स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मीयोंकों विद्या पढावे, पूछना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पौषधशालादि करावे, तथा श्राविकाके साथनी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकानी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वाली होती हैं. तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमें अनुरक्त होवे, वो सर्वकों साधर्मिकपणे माननां चाहियें, तिसकानी माताकी तरें बहिनकी तरें बेटीकी तरें हितकरनां चाहियें, बहुत करकें राजाका तो अतिथि संविनाग व्रत साधर्मीवा

स्तत्र करनेसेंही हो सक्ता है. क्योंकि मुनिकों तो राजपिंम लेनाही नहीं है. तिस वास्तें श्रीनरतचक्री. तथा दंमवीर्य राजादिकोंनें ऐसेही करा है, तथा श्रीसंनवनाथ अर्हतके जीवनें तीसरे नवमें धातकीखंम ऐरावतक्षेत्रमें क्षेमापुरी नगरीमें विमलवाहनराजाने महा डुर्भिक्षमें सकल साधर्मिकादिकोंकों नोजनादिक देनेसें तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करा है, तथा देवगिरि मांमव गढमें शाह जगत्सिंहने तथा थिरापद्र नगरमें श्रीमाल आनूने तीन सौ साठ साधर्मियोंकों धन देकें अपणे तुल्य करा, तथा शाह सारंगादि अनेक पुरुषोंने बडा बडा साधर्मिवात्सल्य करा है ॥ इति ॥ २ ॥

३ तीसरी यात्राविधि कहते हैं, वर्ष वर्षमें जघन्यसें एक यात्रा तो अवश्य करनी चाहियें, यात्राजी तीन तरेंकी है, एक अठाइयात्रा, दूसरी रथयात्रा, तीसरी तीर्थयात्रा, तिसमें अठाइमें विस्तार सहित सर्व चैत्यपरिवाडी करे, इसका नाम चैत्ययात्राजी कहते हैं, तथा रथयात्रा श्रीहेमचंद्रसूरिकृत परिशिष्ट पर्वमें जैसी सांप्रतिराजाने करी है, तैसें करे, तथा महापद्मचक्रवर्त्तीने जैसें माताके मनोरथ पूरणे वास्ते करी है, तैसें करे,तथा जैसी कुमारपाल राजाने रथयात्रा करी तैसें करे ॥ इति ॥ ३ ॥

तीसरी तीर्थयात्राका स्वरूप लिखते हैं, तहां श्रीशत्रुंजय रैवतादि तीर्थ तथा तीर्थंकरोंके जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण, अरु विहारनूमि, यह सर्व प्रनूत नव्यजीवोंकों शुननावका संपादक है, इस वास्ते संसारसें तारणेंका कारण होनेसें इसकों तीर्थ कहना चाहियें. तिन तीर्थोंमें जानेसें सम्यक्त्व निर्मल होता है, अब जिनशासनकी उन्नति करनेके वास्ते जिस विधिसें यात्रा करे, सो विधि यह है,कि:-चलनेके स्थानसें ले कर यात्रा करे, तहां तक, एक वार नोजन करे, दूसरा सचित्त परिहार, तीसरा नूमिशयन, चौथा ब्रह्मचारी, पांचमा सर्व सामर्थीके हूयेनी पगें चलनां, ठठा सम्यक्त्वधारी पणां. तथा यात्रा वास्ते राजासें आज्ञा लेवे, विशिष्ट मंदिरोकों सजावे, विनय बहुमान सहित स्वजन और सार्धर्मियोंकों बुलावे,तथा गुरुकों साथ ले जाने वास्ते निमंत्रणा करे, अमारी ढंढेरा फिरावे, मंदिरमें महापूजा महोत्सव करावे, खरची रहितोंकों खरची देवे, वाहन विनाकों वाहन देवे, निराधारोंकों यथायोग्य आधार देवे, सार्थवाहकी तरें दौंमी फिराकें लोकोंकों उत्साहवंत करे, तथा आमंबर सहित बडा चरु, घडा,

थाल, मेरा, तंबू, कडाहिया साथ लेवे, चलतां कूपादिककों सज करे, तथा गाडा, सेजवाला रथ, पर्यंक, पालखी, ऊंट, घोडा प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसंघकी रक्षा वास्ते बडे योद्धोंकों नौकर रक्खे, योद्धोंकों कवच अंगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अछे मुहूर्त्तमें, शुभ शकुनमें प्रस्थान (चलनां) करे, जोजनादिसें श्रीसंघका सत्कार करकें संघप तिका तिलक देवे, आगें पीछें रखवाला रक्खे. संघके चलने उतरणेका संकेत करे, तथा संघवालोंकी गाडी आदिक टूट जावे, तो समरा देवे, अपणी शक्तिअनुसार सर्वसंघकों सहाय देवे. तथा गाम नगरमें जहां जिनमंदिर आवे. तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवाडी आदि बडा महोत्सव करे, जीर्णचैत्यका उद्धार करे, तथा जब तीर्थकों देखे. तब सुवर्ण, रत्न, मोती आदिकसें वधापना करे, लापसी. लड्डु प्रमुखका लाहणा करे, तथा साध र्मिवात्सल्य, यथोचित दान देवे, बडे उत्सवसें जब तीर्थकों प्राप्त होवे, तब प्रथम हर्षपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घट्टन, घीकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूलघर कदलीघरादि महापूजा करे, डुकूलादिमय महाध्वज देवे, मांगनेवालोंकों नांही न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सव करे, तथा तीर्थोपवास छठ प्रमुख तप कोडि लाख अक्षतादि विविध प्रकारका उजमणा होवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ. चौवीश, ब्यासी, बावन, बहत्तरादि होवे. सर्व जक्ष्य जोजनके थाल होवे, डुकूलादि मय चंडुवा पहरावणी करे, तथा अंगलूहणां. दीपक. तेल, धोती. चंदन, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (छाबडी) कलश. धूपधाणां, आरति, आजरण, प्रदीप, चामर, भृंगार, स्थाल, कचोलक, घंटा. कालरी. पडहादि विविध प्रकारके वाजिंत्र देवे, देहरी करावे. कारीगरोंकों सत्कार देवे, तीर्थके बि गडे कामकों समरावे, सार संजाल करे, तीर्थके रक्षकोंकों बहु सन्मान देवे, जैनके मंगतोंकों, दीनोंकों, उचित दान देवे, तथा साधर्मिवात्सल्य गुरुजक्ति करे. इस रीतिसें यात्रा करकें तैसेंही पीछा फिरे, वर्षादि तक तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधिः ॥ इति यात्रात्रयस्वरूपं समाप्तम् ॥३॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्लिख्यते ॥ मंदिरमें स्नात्र महोत्सवमें घृतका मेरु

करे, अष्ट मांगलिक नैवेद्यादि ढोवे, बहुत बहुत जातिवंत चंदन, केसर, पुष्प, अंबरादि ल्यावे, सकल श्रावकसमुदाय मेले, गीत नृत्यादि आडंबर रचावे, डुकूलादि महाध्वज देवे, प्रौढाडंबरसें प्रभावनादि, निरंतर तथा पर्वदिनमें करे, जेकर निरंतर अथवा पर्वदिनमेंभी न कर सके, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे. स्नात्र महोत्सवमें स्वधनकुलप्रतिष्ठादि अनुसारें सर्वशक्तिसें करे, जिनमतका महा उद्योत करे ॥इति स्नात्रविधिः॥४॥

तथा देवद्रव्यकी वृद्धि वास्ते प्रतिवर्ष मालोद्‌घट्टन करे, इंद्रमाला तथा और मालाभी यथाशक्ति करे, असेंही पहरावणी, नवीन धोती, विचित्र प्रकारका चंडुआ, अंगलूहणां, दीपक, तेल, जातिवंत केसर, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुख चैत्योपयोगी वस्तु, प्रतिवर्ष यथाशक्तिसें देवे ॥५॥

तथा सुंदर अंगी, पत्रभंगी, सर्वांगाभरण, पुष्पगृह, कदलीगृह, पूतली, पाणीके यंत्रादिककी रचना करे, तथा नाना गीत नृत्यादि उत्सवमें महापूजा रात्रि जागरण करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

तथा श्रुतज्ञानकी पुस्तकादिककी पूजा कर्पूरादिसें सदा सुकर है, अरु प्रशस्त वस्त्रादिकसें विशेषपूजा तो प्रतिमास शुक्लपंचमीके दिन श्रावककों करनी योग्य है. जे कर शक्ति न होवे, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे, इसका विस्तार, जन्मकृत्यमें ज्ञानभक्तिद्वारमें लिखेंगे॥८॥

तथा पंचपरमेष्ठि नमस्कार, आवश्यकसूत्र, उपदेशमाला, उत्तराध्ययनादि ज्ञान दर्शनका तप, इत्यादिमें जघन्य एक वार उद्यापन करे, जिस्सें लक्ष्मी सफल होवे,जब जप तपका उद्यापन करे,तब चैत्य उपर कलशारोपण करे. फल चढावे, अक्षत पात्रके मस्तक उपर अक्षत देवे, जैसें भोजन उपर तांबूल देते हैं. तैसी तरें यहभी जान लेनां. यह उपधान, उद्यापनविधि, शास्त्रांतरसें जान लेनी ॥ इति उद्यापनविधिः ॥ ९ ॥

तथा तीर्थकी प्रभावना वास्ते वाजे गाजे प्रौढाडंबरसें गुरुका प्रवेश करावे, यह व्यवहारभाष्यमें कहा है, क्योंकि इस्सें जिनमतकी प्रभावना होती है, तथा यथाशक्ति श्रीसंघका बहुमान करणां, तिलक करणां, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुखसें विलेपन करे, तथा सुगंधि फूल, भक्तिसें नालियरादि विविध तांबूलप्रदानरूप भक्ति करे, क्योंकि शासनकी उन्नति करनेसें तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करता है, यह कथन ज्ञातासूत्रमें है ॥ १० ॥

तथा गुरुके योग मिले हूए जघन्यसेंनी एक वर्षमें एक वार आलोचना लेवे, अपणे करे हूए सर्व पापकों गुरुके आगें कह देवे, पीछें गुरु जो प्रायश्चित्त देवे, सो लेवे, फेर उस पापकों न करे, तिसका नाम आलोचना लेनी है, ऐसी श्राद्धजितकल्पादिमें विधि लिखी है. पक्ष पीछें, चार मास पीछें, एक वर्ष पीछें, उत्कृष्ट बारा वर्ष पीछें, निश्चेंही आलोचना करे, अपणा शल्य काढनेंकों क्षेत्रसें सात सौ योजन, अरु कालसें बारा वर्ष तक गीतार्थ गुरुका अन्वेषण करे, तथा जिस गुरुके आगें आलोचना करे, सो गुरु कैसा होवे ? सो लिखते हैं. गीतार्थ होवे, मन, वचन, काया स्थिर होवे, चारित्रवंत होवे, आलोचना ग्रहणमें कुशल होवे, प्रायश्चित्तका जाणकार होवे, विषाद रहित होवे, ऐसा गुरु होवे, सो आलोचना प्रायश्चित्त देनें योग्य होता है.

तिनमें गीतार्थ उसकों कहते हैं, कि जो १ निशीथादि छेद शास्त्रोंका मूलपाठ, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी, इनका जानकार होवे, तथा ज्ञानादि पंचाचार युक्त होवे, तथा २ आधारवंत आलोचितपापका धारणे वाला होवे, ३ आगमादि पांच व्यवहारका जानने वाला होवे, तिसमेंभी इस कालमें तो जितव्यवहार मुख्य है, तिसका जानने वाला होवे, ४ प्रायश्चित्त आलोचककी लज्जा दूर करानेवाला होवे, ५ आलोचककी शुद्धि करने वाला होवे, ६ आलोचकके पापकर्म, औरके आगें न कहे, ७ जैसें वो आलोचक निर्वाह कर सके, तैसें प्रायश्चित्त देवे, ८ जो प्रायश्चित्त न करे, तिसकों इस लोक अरु परलोकका भय दिखावे, यह आठ गुण युक्त गुरु होता है.

साधुने तथा श्रावकने १ प्रथम तो अपणे गच्छमें गच्छके आचार्य आगें, २ तदयोगे (तदभावे) उपाध्यायके पास, ३ तदभावे प्रवर्त्तकके पास, ४ तदभावे स्थविरके पास, ५ तदभावे गणावछेदकके पास, स्वगच्छमें इन पांचोंके अभावसें संभोगी एकसमाचारी वाले गच्छांतरमें पूर्वोक्त आचार्यादि पांचोंके पास क्रमसें आलोचे, तिनकेभी अभावसें असंभोगी संवेगी गच्छमें पूर्वोक्त क्रमसें आलोचे, तिनकेभी अभाव हूआ गीतार्थ पार्श्वस्थके पास आलोचे, तिसके अभावसें गीतार्थ सारूपीके पास आलोचे, तिसके अभावें पश्चात्कृतके पास आलोचे, सारूपी उसकों कहते हैं, कि

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंमित, अबद्धकछ, रजोहरण रहित, ब्रह्मचारी, स्त्रीरहित भिक्षावृत्ति होवे, अरु जो सिद्धपुत्र होता है, सो शिखा सहित. अर्थात् चोटी सहित, स्त्री सहित होता है, तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चारित्र छोडकें गृहस्थके वेषवाला होता है. आलोचनाके अवसरमें पार्श्वस्थादिककोंजी गुरुकी तरें वंदना करे, क्योंकि विनयमूल धर्म है, इस वास्ते वंदना करे. जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपणे आपकों गुणहीन जान कर वंदना न करावे, तब तिसकों आसन उपर बैठा कर प्रणाम मात्र करकें आलोचना लेवे. तथा पश्चात्कृतकों इत्वर सामायिक आरोपण लिंग दे कर पीछेसें उसके पास यथाविधिसें आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अजावें जहां राजगृहादि गुणशील चैत्यादिकमें जहां श्री अर्हत गणधरादिकोंने बहुत वार प्रायश्चित लोकोंकों दीया है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है. वास्ते तिस देवताकों अष्टमादि तपसें आराधकें तिसके आगें आलोचे. कदाचित् वो देवता चव गया होवे, अरु उसकी जगे और उत्पन्न हूआ होवे, तदा वो देवता महाविदेहके अर्हतकों पूछकें प्रायश्चित्त देवे, तिसके अजावें अर्हत प्रतिमाके आगें आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे. तिसके अजावें पूर्वोत्तर मुख करकें अर्हतसिद्धोंके समक्ष आलोवे. परंतु शल्य न रखे. आलोचना करनेवाला पुरुष, मायारहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे. जो कोइ किसी कारणसें आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है.

आलोचना करनेवाला दश दोष वर्जके आलोचना करे, सो दश दोषका नाम लिखते हैं. १ गुरुकों वैयावृत्तादिकसें खुशी करकें पीछें आलोवे, जिस्सें वो गुरु थोडा प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोडा दंम देता है, ऐसें अनुमान करकें आलोवे. ३ जे दूसरोंने देखा होवे, सो आलोवे, परंतु जो अपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसकों न आलोवे, ४ बादर दोषकों आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषकों न आलोवे, ५ सूक्ष्मदोष आलोवे, परंतु बादर दोष न आलोवे, ६ अव्यक्त स्वरसें आलोवे, ७ जैसें गुरु समझे नहीं, ऐसें रोला करकें आलोवे, ८ आलोचा हूआ बहुतोंकों सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पास आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपणे अपराधकों आलोवे, यह दश दोष हैं.

आलोचना करनेसें जो गुण होता है, सो कहते हैं. जैसें बोजा उठाने वाला जारके दूर हूए हलका होता है, तैसा पापसें वो हलका हो जाता है, तथा पापरूप शल्य दूर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है, आत्मपरके दोषोंसें निवृत्ति तिसकों देखकें औरन्नी आलोचना करेंगें, सरलता होती है, शुद्ध हो जाता है, वो डुष्कर कामके करने वाला है, क्योंकि दोषकों सेवनां तो डुष्कर नहीं है. किंतु आलोचना प्रकाश करनां, यह डुष्कर है, तथा श्री तीर्थंकरकी आज्ञाका आराधक होता है, निःशल्य होता है, आलोचनावालेकों ये गुण होते हैं. यह आलोचना विधि श्राद्धजितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसारें लीखा है, आलोचना करनेसें बाल, स्त्री, यति हत्यादि पाप तथा देवादिद्रव्यनक्षण पाप, तथा राजपत्नी गमनादि महापापन्नी सम्यक्रीतिसें आलोवे. गुरुदत्त प्रायश्चित्त करे, तो दूर हो जाते हैं. नहीं तो दृढप्रहारि प्रमुख उसी नवमें मोक्ष कैसें जाते ? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना लेवे ॥ इति श्राद्धविध्यनुसारें वर्षकृत्यं संपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अठारह द्वारों करकें लिखते हैं. १ तिसमें प्रथम उचित द्वार है, सो पहिलां तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां रहनेमें धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहां श्रावककों वास करनां चाहियें. क्योंकि और जगे वसनेमें दोनों नव बिगड जाते हैं, जीलपल्लीमें, चोरोंके गाममें, पर्वतके किनारे, हिंसक लोकोमें, डुष्ट लोकोंमें, धर्मीलोकोंके निंदकोंमें, इत्यादि स्थानमें वास न करे, परंतु जहां जिनचैत्य होवे, जहां मुनि आते होवें, जहां श्रावक वसते होवें, जहां बुद्धिमान् लोक स्वनावसेंही शीलवान् होवें, जहां प्रजा धर्मशील होवें, बहुत जल, इंधन, होवे, तहां वास करे. जैसा अजमेरके पास हर्षपुर नगर था, ऐसें नगरमें रहनेसें धनवंत, गुणवंत अरु धर्मवंतकी संगतिमें विनय, विचार, आचार, उदारता, गंनीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती है, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते बुरे गामोंमें चाहो धन प्राप्ति होवे, तोन्नी वास न करे ॥ उक्तं च ॥ यदि वांछसि मूर्खत्वं, ग्रामे वस दिनत्रयं ॥ अपूर्वस्यागमोनास्ति, पूर्वाधीतं च नश्यति ॥१॥

उचितस्थानन्नी स्वचक्र, परचक्र, परस्पर विरोध, डुर्जिक्ष, मारी,(हैजा)

प्रजाविरोध, अन्नादि वस्तुक्षय, इत्यादि कारण हो जावे, तो तत्काल छोड जाना चाहियें, नहीं तो त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी, जैसें आगें तुरकोंके जयसें लोक दिल्लिकों छोडकें गुजरातादि देशोमें जानेसें सुखी औ धनी हूए हैं, तथा क्षितिप्रतिष्ठित, चनकपुर, ऋषनपुर, प्रमुखके उजडनेकी व्यवस्था जान लेनी, सो इस रीतिसें है किः— क्षितिप्रतिष्ठित उजडकें चनकपुर वसा, अरु चनकपुर उजडके ऋषनपुर वसा, अरु ऋषनपुर उजडके राजगृह वसा, तथा राजगृह उजडके चंपा वसी, अरु चंपा उजडके पाटलीपुत्र अर्थात् पटना वसा. ऐसें श्रावकनी पूर्वोक्त हानी जाने तो नगरकों छोडकें और जगें जा कर वसे.

तथा रहनेका घरनी अछे पडोसीयोंके पास करे, परंतु वेश्या, तिर्यंच, निशाचर, श्रमण, बौद्ध, तापसादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाल, माछी, जूआरी, चोर, नट, नचानेवाला, नाट, कुकर्मी, इत्यादिकोंके पडोसमें घर हाट न लेवे, न वसे, जे कर देहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथा चौकमें, धूर्त्तकें अरु प्रधानके पास रहे, तो धन अरु पुत्र दोनोंका क्षय होवे. तथा मूर्ख, अधर्मी, पाखंडी, पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, चंडाल, मदोन्मत्त, गुरुतल्पग, वैरी, स्वामीवंचन, लोनी, तथा ऋषि, स्त्री, अरु बालहत्या करनेवाला, इतने लोक जे कर अपणां नला चाहे, तोनी इनकें पडोसमें न रहे, क्योंकि इनकी संगतिसें गुणहानी प्रमुख अनेक उपद्रव होते हैं, इस वास्ते इनके पडोसमें न रहे.

तथा नला स्थान वो होता है, कि जहां हड्डीका शल्य न होवे, राख न होवे, जहां डाल उगती होवे, नला वर्ण, गंधवाली मिट्टी होवे, मीठा जल होवे, खोदतां धन निकले, वो जगा शुन है. तथा जो नूमि, शीत कालमें उष्ण स्पर्शवाली होवे, अरु उष्ण कालमें शीतस्पर्शवाली होवे, वो जगा बहुत शुन है. एक हाथमात्र नूमि पहिलां खोदकें फेर तिस मट्टी करकें पीछें वो खाड नरे, जे कर मट्टी अधिक रहे, तो श्रेष्ठनूमि जाननी, अरु जो मट्टी बराबर रहे, तो समाननूमि जाननी, अरु मट्टी उंछी हो जावे तो नेष्टनूमि जाननी, तथा सौ पग चाले इतने कालमें जिस नूमिकामें पाणी न सूके, सो उत्तम नूमि जानना, अरु जे कर सौ पग चाले, इतने कालमें एक अंगुल नर पाणी शोष होवे, तो मध्यम नूमि जाननी,

अरु एक अंगुलीकेजी उपरांत पाणी शूके, तो अधमनूमि जाननी, तथा पहांतरमें जिस नूमिके खातमें फूल गेरे, वो फूल जे कर शूके नहीं, तो उत्तम नूमि जाननी, अर्द्ध शूके, तो मध्यमनूमि जाननी, अरु सर्व शूक जावे, तो अधम नूमि जाननी, तथा जिस नूमिमें व्रीहि बोइ हुई तीन दिन पीछें उगे, तो उत्तम, पांच दिन पीछें उगे तो मध्यम, अरु सातदिन पीछें उगे, तो हीन नूमि जाननी.

सर्पकी बंबी उपर घर बनावे, तो रोग होवे, पोली नूमि उपर घर बनावे, तो निर्धन होवे, शल्ययुक्त नूमि उपर घर बनावे, तो मरण पावे, मनुष्यका हाड अरु केशका शल्य होवे, तो मनुष्योंकी हानी करे. खरका शल्य होवे, तो राजा प्रमुखका नय होवे, श्वानका हाड होवे, तो बालक मरण पावे, बालकका हाड होवे, तो गृहस्वामी परदेशमें उजड जावे, गौका शल्य होवे, तो गौरूप धनकी हानी होवे, मनुष्यके केश तथा कपाल अरु नस्म होवे, तो मरण देवे.

तथा प्रथमप्रहर अरु पश्चिम प्रहर वर्जकें शेष प्रहरमें वृक्षकी अरु ध्वजाकी छाया घर ऊपर पडे, तो दुःखदायी है, अर्हंतके मंदिरके पीछें न वसे, ब्रह्मा और कृष्णके पास न रहे, चंडिका और सूर्यके सन्मुख रहे नहीं, महादेवके तो किसी पासेंजी न रहे, कृष्णके वामें पासें अरु ब्रह्माके दाहिणे पासें न रहे, निर्माल्य (स्नानका पाणी) ध्वजकी छाया, विलेपन वर्जे, जिनमंदिरके शिखरकी छाया अरु अर्हंतकी दृष्टि होवे, तहां बसे. तथा नगर अथवा गामके ईशान कोणमें घर न बनावे, बनावे, तो ऊंच जातिवालेकों दुःखदायी है.

घर बनावे, तो पूरा मोल देवे, पडोसीकों दुःख न देवे, घर लेती बखत किसीकों दुःख न देवे, ऐसेही ईंट, काष्ठ, पाषाण प्रमुख वस्तु निर्दोष, दृढ, बलवान्, अरु जो नवीन होवे, सो योग्य मोल दे कर लेवे, सो विक्रय होती होवे, तिसका योग्य मोल दे कर लेवे, परंतु आप ईंट पचावा न लगावे, तथा जिनप्रासादादिककी ईंटादि न ग्रहण करे, क्योंकि शास्त्रमेंजी कहा है, जो देहरा, कूवा, वावडी, मसाण, मठ, अरु राजाके मंदिर, इनके पाषाण, ईंट, काष्ठकों, सरसों मात्रजी वर्जे, क्योंकि इनका

पाषाणके, स्तंभ, पीठ, पट्टा, द्वार, शाखा, ये सर्व गृहस्थके घरमें, विरोध कारी है, अरु धर्मके स्थानमें सुखदायी हैं.

तथा पाषाणमय घरमें काष्ठके स्तंभ, अरु काष्ठमय घरमें, पाषाणके स्तंभ, मंदिरमें तथा घरमें बनानां वर्जे, तथा हलका काष्ठ, कोल्हुका काष्ठ, गाडेका काष्ठ, अरहटका काष्ठ, चरखेका काष्ठ, कांटेवाले वृक्षका काष्ट, पंच उंबरका काष्ठ, थोहरका काष्ठ, ये काष्ठ घरमें न लगावे, तथा बीजोरा, केला, दाडिम, बेरी, जंबीरी, हलद, आंवलीकी कर अरु धत्तूरा, इतनेका काष्ट वर्जे. तथा इन वृक्षोंकी जड पडोसमें घरमें प्रवेश करे, अथवा इनकी छाया घरमें पडे, तो कुलका नाश करे. तथा पूर्वदिशिकी तरफ घर उंचा होवे, तो धनका नाश करे, तथा दक्षिणदिशें उंचा होवे, तो धनकी वृद्धि करे. पश्चिमदिशें उंचा होवे, तो धनादिकी वृद्धि करे. उत्तर दिशिमें होवे, तो उजड जावे, तथा जो गोल घर होवे, बहुत कूणे वाला होवे, अथवा एक कूणा दो कूणा तीन कूणा होवे अरु दक्षिण वामो तरफ लंबा होवे, ऐसे घरमें न वसे. तथा जिस घरके कपाड स्वयमेव उघडे अरु भिडे वो घर सुखकारी नहीं.

तथा घरके द्वार आगें कलशादि चित्राम होवे, तो शुभ है, तथा रंगनी, नाटारंभ, भारत रामायणका युद्ध, राजाओंका युद्ध, ऋषियोंका चरित्र, देवचरित्र, ये चित्राम करानां, घरमें शुभ नहीं. तथा फलवृक्ष, फूली वेल, सरस्वती, नवनिधान, यक्षस्तंभ, लक्ष्मीदेवी, कलश, वर्द्धमान, चौदह स्वप्नावलि, ये चित्राम करानां शुभ है.

तथा खजूर, दाडिम, केलां, कोहला, बीजोरा, ये जिसघरमें उगे, उस घरका नाश करते हैं. वटवृक्ष उगे तो लक्ष्मीका नाश करे. कांटावाला वृक्ष उगे, तो शत्रुका भय करे, बडे फल वाला वृक्ष उगे, तो संतानका नाश करे, इन वृक्षका काष्ठभी वर्जे. तथा कोइ शास्त्र ऐसा कहता है कि:— घरके पूर्व बडवृक्ष होवे, तो अच्छा है. दक्षिणपासें उदुंबरवृक्ष शुभ है. पश्चिमभागें पीपल. उत्तरपासें प्लक्षवृक्ष अच्छा है.

तथा घरमें पूर्वदिशिमें लक्ष्मीका घर करे, अग्निकोणमें रसोइ करे, दक्षिणदिशिमें शयनकी जगा करे, नैऋतकोणमें शस्त्रशाला करे, पश्चिम दिशें भोजनक्रिया करे, वायुकोणमें अन्न संग्रह करे, उत्तर पासें जल र

कों प्राहुणे समान समुझे, क्योंकि नावश्रावकके लक्षण सत्तरे प्रकारें कहे हैं, तिनका नाम कहते हैं.

१ स्त्रीसें वैराग्य, २ इंद्रियवैराग्य, ३ धनसें वैराग्य, ४ संसारसें वैराग्य, ५ विषयसें वैराग्य, ६ आरंन स्वरूप जाणे, ७ घरकों दुःखरूप जाणे, ८ दर्शनधारी, ९ गमरीप्रवाह छोडे, १० धर्ममें आगें हो कर प्रवर्त्ते, आगमानुसारें धर्ममें प्रवर्त्ते, ११ दानादिकमें यथाशक्ति प्रवर्त्ते, १२ विधिमार्गमें प्रवर्त्ते, १३ मध्यस्थ रहे, १४ अरक्तद्विष्ट, १५ असंबद्ध, १६ परहित वास्ते अर्थ कामका नोगी न होवे, १७ वेश्याकी तरें घरवास पाले, ए सत्तरे पद संयुक्त नावश्रावक होता है. तिनमें १ प्रथम स्त्री जो है, सो अनर्थका नवन है, चपलचित्तवाली है, नरककी वाट सरीखी है, जाणता हूआ कामी, इसके वशवर्त्ती न होवे, २ दूसरी इंद्रियों जो हैं,सो चपल घोडे समान हैं, खोटी गतिकी तरफ नित्य दौडती हैं,उसकों नव्य जीव, संसारका स्वरूप जानकें सत्ज्ञानरूप रज्जु (दोरडी) सें रोके, ३ तीसरा धन जो है, सो सर्व अनर्थका औ क्लेशका कारण है, इस वास्ते धनमें लुब्ध न होवे,४ चौथा संसारकों दुःखरूप दुःखफल दुःखानुबंधी विडंबनारूप जानकें प्रीति न करे, ५ पांचमा विषयका क्षणमात्र सुख है, विषय विषफल समान है. ऐसें जानकें कदापि विषयमें गृद्धित्व न करे, ६ छठा तीव्रारंन सदा वर्जे. जे कर निर्वाह न होवे. तोनी स्वल्पारंन करे, अरु आरंन रहितोंकी स्तुति करे, सर्व जीवों उपर दयावंत होवे, ७ सातवा गृहवासकों दुःख रूप, फांसी मानकें गृहवासमें वसे, अरु चारित्रमोहनीय कर्मके जींतनेमें उद्यम करे, ८ आठमा आस्तिक्य नाव संयुक्त जिनशासनकी प्रनावना गुरुनक्ति करे, ऐसें सम्यग्दर्शन निर्मल धरे,९ नवमा जिस तरें बहुत मूर्ख लोक नेड (गमरी) प्रवाहवत् चलते होवे, तैसें न चले, परंतु जो काम करे,सो विचारकें करे, १० दशमा श्रीजिनागम विना और कोइ परलोकका यथार्थ मार्ग कहनेवाला शास्त्र नहीं, इस वास्ते जो काम करे, सो जिनागमानुसारें करे. ११ इग्यारहवा आपणी शक्तिके विना गोप्यां चार प्रकारका दानादि धर्म करे, १२ बारहवा हितकारी, अनवद्य, धर्मक्रियाकों चिंतामणि रत्नकी तरें दुर्लन जानकें करता हूआ किसी मूर्खके हसनेसें लज्जा न करे, १३ तेरहवा शरीरके रखने वास्ते धन, स्वजन, आहार, घरप्रमुखमें वसे,

जोग रहे, परंतु राग, द्वेष,किसी वस्तुमें न करे, १४ चौदहवा उपशांतवृत्ति सार है, ऐसें विचारसें जो राग द्वेषमें लेपायमान न होवे, खोटा आग्रह न करे, हितका अजिलाषी मध्यस्थ रहे, १५ पंदरहवा सर्ववस्तुकों क्षणजं गुर पणा निरंतर विचारे, धनादिके साथ प्रतिबंध तजे, १६ शोलहवा सं सारसें विरक्त मन होवे, क्योंकि जोग जोगनेसें आज तक कोइ तृप्त नहीं हुआ है, परंतु स्त्रीआदिके आग्रहसें जे कर जोगोमें प्रवर्त्ते, तोजी विरक्तमन रहे, १७ सत्तरहवा वेश्याकी तरें अजिलाषा रहित वर्त्ते, ऐसा विचारे की आज काल ये अनित्यसुख मुफकों गोडने पडेंगे,इस वास्ते घरवासमें स्थिर जाव न रखे, यह सत्तरे गुण संयुक्त श्रीजिनागममें जाव श्रावक कह्या है ॥ इति धर्मरत्नशास्त्रे कथितं ॥

ऐसें शुजनावना वासित प्रागुक्त दिनकृत्यादिमें रक्त "इणमेव निग्गंथे पवयणे अट्ठे परमट्ठे सेसे अणट्ठे" ऐसी सिद्धांतोक्त रीतिसें वर्त्तमान सर्व व्यापारोंमें सर्वप्रयत्नसें वर्त्तता हूआ सर्वत्राऽप्रतिबद्ध चित्त करकें क्रमसें मोह जीतने समर्थ होकें पुत्र, जाइ, जत्रीजादिककों गृहजार सौंपकें अप णी शक्तिकों देखकें अर्हत चैत्यमें अठाइ महोत्सव करकें संघकी पूजा क रकें दीन अनाथोंकों यथाशक्ति दान देकें परिचित जनोंसें खामणां करकें सुदर्शन श्रेष्ठीवत् विधिसें सर्वविरति अंगीकार करे ॥ १४ ॥

१५ पंदरहवा द्वारमें जे कर दीक्षा लेनेकी शक्ति न होवे,तदा आरंजका त्याग करे, जे कर निर्वाह न होवे, तोजी सर्व सचित्ताहारादिक कितनाक आरंज वर्जे ॥ इति पंचदशं द्वारं ॥ १५ ॥

१६ शोलमे द्वारमें ब्रह्मचर्य, जावज्जीव तक अंगीकार करे, यथा शाह पेथडनें बत्तीस वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण कीया ॥इति षोडश द्वारं॥

१७ सत्तरहवे द्वारमें प्रतिमादि तप विशेष करे,आदि शब्दसें संसार तार णादि तप करे, तहां इग्यारह प्रतिमाका स्वरूप इस तरें है, प्रथम राया जिओगेणादि बे आगार रहित, तथा सतशठ बोल श्रद्धादि सहित सम्यक् दर्शन जय लज्जादिसें अतिचार रहित त्रिकाल देवपूजादिमें तत्पर एक मास तक सम्यक्त्व पाले, यह प्रथम प्रतिमा, दूसरी दो मास तक अखंडित पांच अणुव्रत पाले, सोजी पीछली प्रतिमा सहित वर्त्ते, तीसरी तीन मास तक उजय काल अप्रमत्त पूर्वोक्त दो प्रतिमा सहित सामायिक करे, चौथी

चार मास तक चार पर्वोंमें पूर्वली तीन प्रतिमा सहित अखंडित परिपूर्ण पौषध करे, पांचमी पांच मास तक स्नान न करे, रात्रिकों चार आहार वर्जे, दिनमें ब्रह्मचर्य धरे, कछ बांधे नहीं, चार पर्वोंमें घरमें तथा चौकमें निःप्रकंप होकें सकलरात्रि कायोत्सर्ग करे, यह सर्व पूर्वली प्रतिमा सहित करे. यह बात, आगेंभी सर्व प्रतिमामें जान लेनी. छठी छै मास तक ब्रह्मचारी होवे, सातमी सात मास तक सचित्त आहार वर्जे, आठमी आठ मास तक आप आरंभ न करे, नवमी नव मास तक आरंभ करावे नहीं, दशमी दश मास तक क्षुरमुंडित रहे अथवा अल्प चोटी राखे, घरमें गडा हूआ धन होवे, जब घरके पूछे तब कहे जानता हूं, औ जो न गडा होवे, तो कहे मैं नहीं जानता, शेष घरका कृत्य सर्व वर्जे, तिसके निमित्त जो घरमें आहार कस्या होय, तोभी न खावे. इग्यारहवी इग्यारां मास तक घरका संग त्यागे, लोच करे, वा क्षुरमुंडित होवे, रजोहरण पात्रे प्रमुख लेकें मुनिका वेष धारी हो कर स्वकुलमें भिक्षा लेवे. मुखसें ऐसा कहे कि "प्रतिमाप्रतिपन्नाय श्रमणोपासकाय भिक्षां देहीति वचन कहे," धर्मलाभ शब्द न कहे, सर्वरीतिसें साधुकी तरें प्रवर्त्ते ॥ इति श्राद्धप्रतिमा सप्तदश द्वारम् ॥ १७ ॥

१८ अठारहवा द्वार, आराधनाका कहते हैं, श्राद्ध अंतकालमें आराधना जो आगें कहेंगे सो अरु संलेषनादिकों विधिसें करे. श्रावक जब सर्वधर्म कृत्यमें अशक्त हो जावे, तब मरण निकट जानकें द्रव्य अरु भावें दो प्रकारें संलेषना करे. तहां द्रव्यसंलेषना तो अनुक्रमसें आहार त्यागे, अरु भावसंलेषना सो क्रोधादि कषाय त्यागे, मरण निकट, इन लक्षणोसें जान लेवे, सो लक्षण कहते हैं. १ बूरे स्वप्न आवे, २ प्रकृति स्वभाव और तरेंका होवे, ३ दुर्निमित्त मले, ४ खोटे ग्रह आवे, ५ आत्माका आचरण फिर जावे, अथवा कोइ देवता कह जावे तो मरण निकट जान जावे, जो द्रव्यें भावें संलेषणा न करे, अरु अनशन कर देवे, उसकों प्रायें दुर्ध्यान होनेसें कुगति होती है, इस वास्ते संलेषना अवश्य करे, पीछे श्रावकोंके धर्मके उद्यापन करने वास्ते संयम अंगीकार करे, क्योंकि एक दिनकीभी दीक्षा स्वर्गलोककी दाता है, जैसें नलराजाके भाई कुवेरके पुत्र सिंहकेसरी, पांच दिनकी दीक्षासें केवलज्ञान पाकें मोक्ष गया, तथा हरिवाहन राजाने नव प्रहरका शेष आयु सुनकें दीक्षा लीनी.

सर्वार्थसिद्ध विमानमें गया, संथारा और दीक्षाके अवसरमें प्रजावना वास्ते यथाशक्ति धन खरचे, जैसें सात क्षेत्रोंमें ते अवसरमें थिरापद्रीय संघपति आजूने सात क्रोड धन खरच्या तथा जिसकों संयमका योग न होवे, सो संलेषना करकें शत्रुंजयादि तीर्थ सुस्थानमें जा कर निर्दोष स्थंमिलमें विधि सें चार आहार त्यागरूप अनशनकों आणंद कामदेवादि श्रावकोंवत् करे, तिस पीछें सर्वातिचारका परिहार चार सरणादि रूप आराधना करे.

आराधना दश प्रकारसें होती है, सो कहते हैं. १ पहिलां सर्वातिचार आलोवे, २ व्रत उच्चारण करे, ३ सर्व जीवोंसें क्षमावे, ४ अपणी आत्मा कों अठारह पापस्थानक करनेसें व्युत्सर्जन करे, ५ चार सरणां लेवे, ६ गमनागमन दुःकृतकी गर्हणा करे, ७ जो किसीने जिनमंदिरादि सुकृत करा होवें, तिसकी अनुमोदना करे, ८ शुजजावना जावे, ए अनशन करे, अर्थात् चार आहार तीन आहारका त्याग करे, १० पंच नमस्कारका स्मरण करे, ऐसी आराधना करणेसें जे कर तिस जवसें मुक्ति न होवे, तोजी सुदेव अथवा सुमनुष्यके आठ जव करकें तो अवश्यमेव मोक्षरूप हो जावेगा ॥ १८ ॥ इति अष्टादश द्वारं समाप्तम् ॥

इस गृहस्थके धर्म करनेसें निरंतर गृहस्थ लोक इस लोक, परलोकमें सुखकों प्राप्त होवे हैं, अरु परंपरासें मोक्षकों प्राप्त होते हैं ॥ इति श्रीश्राद्ध विधि ग्रंथानुसार श्रावकस्य जन्मकृत्यं संपूर्णम् ॥

इति श्री तपगच्छीयमुनि श्रीमणिविजयगणि तच्छिष्य मुनिश्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनिश्री मुक्तिविजयगणि तस्य लघुगुरुभ्रातृ मुनि आत्माराम आनंद विजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे गृहस्थधर्मनिरूपणनामा दशमः परिच्छेदः॥१०॥

॥ इति श्री जैनतत्त्वादर्शे दशम परिच्छेदः समाप्तः ॥

॥ अथ एकादश परिछेद प्रारंभः ॥

इस परिछेदमें ऋषनादि महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रोंके अनुसार पूर्व वृत्तांत इतिहास रूप लिखते हैं, क्योंकि इस ग्रंथके पढने वाले यह तो जान जायेंगे कि जैनी इस तरें मानते हैं, परंतु वर्त्तमान समयमें कितनेक नव्य जीवोंकी जिज्ञासा है, किः—जैनमत कबसें यहां प्रचलित हूआ है? फिर कितनेक जीवोंकों असी भ्रांति है किः—जैनमत बौद्धमतकी शाखा है, और कितनेक कहते हैं कि बौद्धमत जैनमतकी शाखा है, क्योंकि यह दोनों मत किसी कालमें एक थे, परंतु आचार्योंके मत नेद होनेसें एक मतके जैन औ बौद्ध यह दो मत हो गये है, तथा कोइक कहते हें किः—संवत् छे सौके ६०० लग नग जैनमत हूआ है, तथा कोइ कहते हें कि विष्णु नगवान्ने दैत्यके धर्मभ्रष्ट करनेकों अर्हतका अवतार लीया, तथा कोइ कहते हैं कि मछंदर नाथके बेटोनें जैनमत चलाया हे, इत्यादि अनेक विकल्प करते हें. परंतु ये सर्व कहने दंतकथा, अरु जैनमतके न जाननेका सूचक है, जैसें चर्मकार अर्थात् चमार कहते हें, कि बानो और चामो दो बहिनां थी, तिनमें बानीकी औलाद, अग्रवालादि सर्व बनिये हैं, और चामोकी औलाद, हम चमार हैं. इस वास्ते बनीयें और चमार एक वंशके हे. अब शोचना चाहियें कि चमारोंकी यह कही हूइ कथा सुनकें बुद्धिमान् सांच मान लेवेंगे? इसी तरें जो कोइ अपणी दलीलसें वा दंतकथा सुनकें जैनमतकी उत्पत्ति मानेगा, वोनी जैनीयोंके आगें हसनेका स्थान बनेगा, क्योंकि प्रथम तो कोइनी मतवाला जैनमतके असली तत्त्वकों नहीं जानता है, जैसें शंकर दिग्विजयमें शंकर स्वामीनें जो जैनमतका खंमन लिखा है, उसकों देखकें हमकों हांसी आती है, जब शंकर स्वामीने जैनमतकोंही नहीं जाना, तो फेर जो उनका जैनमतका खंमन है, सोनी असा जानना कि जैसें पुरुषकी गयाकों पुरुष जानकें तिसकों लाठीसें पीटनां, जब शंकरस्वामीकोंही जैनमतकी खबर नहीं थी, तो अबके वर्त्तमान कालकें गाल ब जाने वालोंका क्या कहनां है? इस वास्ते हम बहुत नम्र हो कर ग्रंथ पढने वालोंसें विनति करते हैं कि अछी तरेंसें जैनमतकों जान कर फिर

तुमनें जैनमतका खंडन मंडन करनां, नहीं तो शंकरस्वामी अरु रामानु जाचार्यादिककी तरें तुमनी हसने योग्य हो जावेंगे ?

अब सज्जनोके जानने वास्ते प्रथम इस जगत्का थोडासा स्वरूप लिखते हैं. यह जगत्कों जैनी, द्रव्यार्थिक नयके मतसें शाश्वत अर्थात् हमेशां प्रवाहसें असाही मानते हैं, और इस जगत्में छे तरेका काल वर्त्तता है, तिनहीकों जैनी लोक, छे आरे कहते हैं. एक अवसर्प्पिणी काल, अर्थात् सर्व अच्छी वस्तुका क्रमसें नाश करता चला जाता है, तिसके छे हिस्से हैं. तथा दूसरा उत्सर्प्पिणी काल, अर्थात् सर्व अच्छी वस्तुकों क्रमसें वृद्धिमान् करता चला जाता है, दश कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण एक अवसर्प्पिणी काल, और इतनेही सागरोपम प्रमाण एक उत्सर्प्पिणी काल है, एक सागरोपम असंख्याता वर्षका होता है. इसका स्वरूप जैनशास्त्रसें जान लेनां. यह एक अवसर्प्पिणी अरु एक उत्सर्प्पिणी मिल कर दोनोंका एक कालचक्र, वीश कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होता है. असें कालचक्र अनंत पीछें व्यतीत हो गये हैं, और आगेंकों व्यतीत होवेंगे, अवसर्प्पिणीके पूरे हूये उत्सर्प्पिणी कालका प्रारंभ होता है, और उत्सर्प्पिणीके पूरे हूये अवसर्प्पिणी‑का‑का प्रारंभ होता है. इसी तरें अनादि अनंत काल तक यही व्यवस्था रहेगी. अब छेहों आरोंके स्वरूप लिखते हैं.

अवसर्प्पिणीका प्रथम आरा जिसका नाम सूखम सूखम कहते हैं. सो चार कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण है. तिस कालमें भरतक्षेत्रकी भूमिका बहुत सुंदर रमणीय मार्दलके तले समान सम (बराबर) थी, उस कालके मनुष्य, भद्रक, सरलस्वभाव, अल्प राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि वाले थे, सुंदर रूपवान्, नीरोग शरीर वाले थे, दश जातिके कल्पवृक्षोसें अपनें खाने पीने पहनने सोने आदिकका सर्व व्यवहार कर लेते थे, एक लडका एक लडकी दोनोका युगल जन्मते थे, जब यौवनवंत होते थे, तब दोनों बहिन और भाइ, स्त्री भरतारका संबंध कर लेते थे, उनोंके आगें असेंही फेर युगल होते रहे, सो पूर्वोक्त सर्व व्यवहार करते थे, जैन मतके मापेसें तीन गाऊ (कोश) प्रमाण उनका शरीर उंचा था, और तीन पल्योपम प्रमाण आयु था, तथा दो सौ छप्पन पृष्ठ करंडके हाड थे, धर्म करनां, और जीवहिंसा, जूठ, चोरी प्रमुख पापभी विशेष नहीं था, वृक्षोंहीमें सो रह

ते थे, युगल जोडेनी गिणतीमें थोडे थे,बाकी (शेष) चउपाय, पक्षी, पंचें द्रिय सर्व जातिके जीव थे, परंतु वो नद्रक थे, क्षुद्रक नहीं थे, शालिप्रमुख सर्व अन्न तथा इक्षु प्रमुख चीजें सब जंगलोंमें स्वयमेवही उत्पन्न हो जाते थे, परंतु वो कुछ मनुष्योंके खानेमें नहीं आते थे, क्योंकि मनुष्य तो निःकेवल फल फूलोंकाही आहार करते थे, वस्त्रकी जगें वृक्षोंके पत्ते वा बिल्वक उढते थे, इत्यादि प्रथम आरेका स्वरूप, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रमुख शास्त्रों सें जान लेनां ॥ इति प्रथम आराका किंचित्स्वरूप कह्या ॥ १ ॥

दूसरा आरा, तीन कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण,तिसमें दो गाऊ (कोश) देहमान, दो पल्योपमायु, एक सौ अट्ठाइ पृष्ठ करंमक हाड थे, शेष व्यवहार प्रथम आरावत् जाननां ॥ इति दूसरा आरक ॥ २ ॥

तीसरा आरा, दो कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण, एक गाऊ (कोश) देहमान. एक पल्योपमायु, चौसठ पृष्ठ करंमकी पसलीयां,शेष व्यवहार प्रथम आरेवत् जाननां, इन सर्व आरोंमें सर्ववस्तु क्रमसें घटती घटती छेहडे अगले आरे तुल्य रह जाती है. परंतु एक बारगी सर्व स्तु नहीं घटती है.

इस तीसरे आरेके छेहडे एक वंशमें सात कुलकर उत्पन्न हूए, कुलकर उसकों कहते हैं कि जिनोंने तिस तिस कालके मनुष्योंके वास्ते कछुक मर्यादा बांधी है,इनही सात कुलकरोंकों लौकिकमें सप्त मनु कहते हैं, दूसरे वंशोंके कुलकर गिनीयें, तब श्रीऋषभदेवकों वर्जके चौदह कुलकर होता है अरु ऋषभनाथ पंदरहवा कुलकर होता है.

पूर्वोक्त सात कुलकरोंके नाम लिखते हैं. प्रथम विमलवाहन, दूसरा चक्षुष्मान्, तीसरा यशस्वान्, चौथा अभिचंद्र, पांचमा प्रश्रेणि, छट्ठा मरुदेव, सातमा नाभि. इन सातोंकी भार्याका नाम क्रमसें कहते हैं, १ चंद्रयशा, २ चंद्रकाता, ३ सुरूपा, ४ प्रतिरूपा, ५ चक्षुःकांता, ६ श्रीकांता, ७ मरुदेवी, ये सर्व कुलकर,गंगा अरु सिंधु नदीके मध्यके खंममें हुये हैं.

यह कुल कर होनेका कारण कहते हैं. तीसरे आरेके उतरतां दश जातिके कल्पवृक्ष, कालके दोषसें थोडे हो गये, तब युगलक लोकोंनें अपने अपने वृक्षोंका ममत्व कर लीया, पीछें जब दूसरे युगलोंके रखे हूए वृक्षोंसें फल लेने लगे, तब ममत्व वाले युगल उनसें क्लेश करनें लगे, तब युगलक पुरुषोंकों ऐसा विचार आया कि कोइ ऐसा होवे, जो ह

मारे क्लेशका निवेडा करे, तब तिन युगलियोंमेंसें एक युगलकों एक वनके श्वेत हाथीनें देख कर प्रेमसें अपने स्कंध पर चढा लीया, जब वो युगल पुरुष एकला हाथी ऊपर चढकें फिरने लगा, तब और युगलोंनें विचार किया कि यह युगल, हमसें बडा है, क्योंकि यह, हाथी ऊपर चढा फिरता है, और हम तो पगोंसें चलते हैं, इस वास्ते इसकों न्यायाधीश बनाउ. अर्थात् जो यह कहे, सो मानो, तब तिनोनें उसकों न्यायाधीश बनाया. जिस कारनसें हाथीनें युगलकों अपणे उपर चढाया है, सो कारण, और इनोकें पूर्वजनवकी कथा आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनी.

तब तिस विमलवाहननें सर्व युगलियोंकों कल्पवृक्ष बांटके दे दीये, कितनेक युगलीये अपने कल्पवृक्षोंसें संतोष न करकें औरोंके कल्पवृक्षोंसें फल लेने लगे, तब उस वृक्षके मालक क्लेश करने लगे. पीछे तिस निःसंतोषी युगलीयेकों पकडकें विमलवाहनके पास लाते हूए, तब विमलवाहननें उनकों कहा कि हा तुमने यह क्या करा ? तबसें विमलवाहननें ऐसी दंमनीति प्रवर्त्ताइ, तिस हकार दंमनीतिसें फेर वे ऐसा काम नहीं करते थे. पीछे [illegible] विमलवाहनका पुत्र चक्षुष्मान् हूआ, अपने बापके पीछे वो राजा अर्थात् कुलकर बना. तिसके बखतमेंजी हाकारही दंम रहा, तिसके यशस्वान् नामा पुत्र हूआ. तिसके अनिचंद्र पुत्र हूआ. इन दोनोंके समयमें थोडे अपराधवालेकों हाकार दंम और बहुत ढीढकों मकार दंम जो यह काम मत करनां, ये दो दंमनीति हूइ, तिसके पुत्र प्रश्रेणि हूआ, प्रश्रेणिके पुत्र मरुदेव हूआ, मरुदेवका पुत्र नाजि हूआ, ये तीनों कुलकरोंके समयमें हाकार, मकार अरु धिक्कार, ये तीन दंमनीति हो गइ, तिसमें थोडे अपराधीकों हाकार, अरु मध्यम अपराधीकों मकार, तथा उत्कृष्ट अपराधीकों धिक्कार दंम करते हूए, तिस नाजिकुलकरकें मरुदेवी नामा जार्या थी, यह नाजिकुलकर बहुलतासें इक्ष्वाकु जूमि अर्थात् विनता नगरीकी जूमिमें निवास करता था, यह जूमि, कश्मीर देशके परे थी, क्योंकि विनता नगरीके चारों दिशामें चार पर्वत थे, तिसमें पूर्वदिशिमें अष्टापद अर्थात् कैलासगिरि थे, दक्षिणदिशिमें महाशैल्य थे, पश्चिमदिशिमें सुर शैल्य, तथा उत्तरदिशिमें उदयाचल पर्वत होते.

कों प्राहुणे समान समुझे, क्योंकि नावश्रावकके लक्षण सत्तरे प्रकारें कहे हैं, तिनका नाम कहते हैं.

१ स्त्रीसें वैराग्य, २ इंद्रियवैराग्य, ३ धनसें वैराग्य, ४ संसारसें वैराग्य, ५ विषयसें वैराग्य, ६ आरंन स्वरूप जाणे, ७ घरकों दुःखरूप जाणे, ८ दर्शनधारी, ९ गमरीप्रवाह छोडे, १० धर्ममें आगें हो कर प्रवर्त्ते, आगमानुसारें धर्ममें प्रवर्त्ते, ११ दानादिकमें यथाशक्ति प्रवर्त्ते, १२ विधिमार्गमें प्रवर्त्ते, १३ मध्यस्थ रहे, १४ अरक्तद्विष्ट, १५ असंबद्ध, १६ परहित वास्ते अर्थ कामका नोगी न होवे. १७ वेश्याकी तरें घरवास पाले, ए सत्तरे पद संयुक्त नावश्रावक होता है. तिनमें १ प्रथम स्त्री जो है, सो अनर्थका नवन है, चपलचित्तवाली है, नरककी वाट सरीखी है, जाणता हूआ कामी, इसके वशवर्त्ती न होवे, २ दूसरी इंद्रियों जो हैं,सो चपल घोडे समान हैं, खोटी गतिकी तरफ नित्य दौडती हैं,उसकों नव्य जीव, संसारका स्वरूप जानकें सत्ज्ञानरूप रज्जु (दोरडी) में रोके. ३ तीसरा धन जो है. सो सर्व अनर्थका औ क्लेशका कारण है, इस वास्ते धनमें लुब्ध न होवे.४ चौथा संसारकों दुःखरूप दुःखफल दुःखानुबंधी विडंबनारूप जानकें प्रीति न करे, ५ पांचमा विषयका क्षणमात्र सुख है, विषय विषफल समान है. ऐसें जानकें कदापि विषयमें गृद्धित्व न करे. ६ छठा तीव्रारंन सदा वर्जे, जे कर निर्वाह न होवे, तोनी स्वल्पारंन करे. अरु आरंन रहितोंकी स्तुति करे, सर्व जीवों उपर दयावंत होवे, ७ सातवा गृहवासकों दुःख रूप. फांसी मानकें गृहवासमें वसे, अरु चारित्रमोहनीय कर्मके जींतनेमें उद्यम करे, ८ आठमा आस्तिक्य नाव संयुक्त जिनशासनकी प्रनावना गुरुनक्ति करे, ऐसें सम्यग्दर्शन निर्मल धरे,९ नवमा जिस तरें बहुत मूर्ख लोक नेड (गमरी) प्रवाहवत् चलते होवे, तैसें न चले, परंतु जो काम करे,सो विचारकें करे, १० दशमा श्रीजिनागम विना और कोइ परलोकका यथार्थ मार्ग कहनेवाला शास्त्र नहीं, इस वास्ते जो काम करे, सो जिनागमानुसारें करे, ११ इग्यारहवा आपणी शक्तिके विना गोप्यां चार प्रकारका दानादि धर्म करे, १२ बारहवा हितकारी, अनवद्य, धर्मक्रियाकों चिंतामणि रत्नकी तरें दुर्लन जानकें करता हूआ किसी मूर्खके हसनेसें लज्जा न करे, १३ तेरहवा शरीरके रखने वास्ते धन, स्वजन, आहार, घरप्रमुखमें वसे,

नोग रहे, परंतु राग, द्वेष किसी वस्तुमें न करे, १४ चौदहवा उपशांतवृत्ति सार है, ऐसें विचारसें जो राग द्वेषमें लेपायमान न होवे, खोटा आग्रह न करे, हितका अभिलाषी मध्यस्थ रहे, १५ पंदरहवा सर्ववस्तुकों क्षणनंगुर पणा निरंतर विचारे, धनादिके साथ प्रतिबंध तजे, १६ शोलहवा संसारसें विरक्त मन होवे, क्योंकि नोग नोगनेसें आज तक कोइ तृप्त नहीं हूआ है, परंतु स्त्रीआदिके आग्रहसें जे कर नोगोमें प्रवर्त्ते, तोनी विरक्तमन रहे, १७ सत्तरहवा वेश्याकी तरें अनिलाषा रहित वर्त्ते, ऐसा विचारे की आज काल ये अनित्यसुख मुझकों छोडने पडेंगे. इस वास्ते घरवासमें स्थिर नाव न रखे, यह सत्तरे गुण संयुक्त श्रीजिनागममें नाव श्रावक कह्या है ॥ इति धर्मरत्नशास्त्रे कथितं ॥

ऐसें शुननावना वासित प्रागुक्त दिनकृत्यादिमें रक्त "इणमेव निग्गंथे पवयणे अट्ठे परमट्ठे सेसे अणट्ठे" ऐसी सिद्धांतोक्त रीतिसें वर्तमान सर्व व्यापारोंमें सर्वप्रयत्नसें वर्त्तता हूआ सर्वत्राऽप्रतिबद्ध चित्त करके क्रममें मोह जीतने समर्थ होकें पुत्र, नाइ, नत्रीजादिककों गृहनार सौंपके अपणी शक्तिकों देखकें अर्हत चैत्यमें अट्ठाइ महोत्सव करकें संघकी पूजा करकें दीन अनाथोंकों यथाशक्ति दान देकें परिचित जनोंसें खामणां करकें सुदर्शन श्रेष्ठीवत् विधिसें सर्वविरति अंगीकार करे ॥ १४ ॥

१५ पंदरहवा द्वारमें जे कर दीक्षा लेनेकी शक्ति न होवे, तदा आरंनका त्याग करे, जे कर निर्वाह न होवे, तोनी सर्व सचित्ताहारादिक कितनाक आरंन वर्जे ॥ इति पंचदशं द्वारं ॥ १५ ॥

१६ शोलमे द्वारमें ब्रह्मचर्य, जावज्जीव तक अंगीकार करे, यथा शाह पेथडनें बत्तीस वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण कीया ॥ इति षोडश द्वारं॥

१७ सत्तरहवे द्वारमें प्रतिमादि तप विशेष करे, आदि शब्दसें संसार तारणादि तप करे, तहां इग्यारह प्रतिमाका स्वरूप इस तरें है, प्रथम राया नियोगेणादि छै आगार रहित, तथा सतशठ बोल श्रद्धादि सहित सम्यक् दर्शन नय लज्जादिसें अतिचार रहित त्रिकाल देवपूजादिमें तत्पर एक मास तक सम्यक्त्व पाले, यह प्रथम प्रतिमा, दूसरी दो मास तक अखंडित पांच अणुव्रत पाले, सोनी पीछली प्रतिमा सहित वर्त्ते, तीसरी तीन मास तक उनय काल अप्रमत्त पूर्वोक्त दो प्रतिमा सहित सामायिक करे, चौथी

चार मास तक चार पर्वोमें पूर्वली तीन प्रतिमा सहित अखंडित परिपूर्ण पोषध करे. पांचमी पांच मास तक स्नान न करे, रात्रिकों चार आहार वर्जे, दिनमें ब्रह्मचर्य धरे, कछ बांधे नहीं, चार पर्वोमें घरमें तथा चौकमें निःप्रकंप होकें सकलरात्रि कायोत्सर्ग करे, यह सर्व पूर्वलो प्रतिमा सहित करे. यह बात, आगेंनी सर्व प्रतिमामें जान लेनी. छठी छै मास तक ब्रह्मचारी होवे, सातमी सात मास तक सचित्त आहार वर्जे. आठमी आठ मास तक आप आरंभ न करे, नवमी नव मास तक आरंभ करावे नहीं, दशमी दश मास तक क्षुरमुंडित रहे अथवा अल्प चोटी राखे, घरमें गडा हूआ धन होवे, जब घरके पूछे तब कहे जानता हूं. औ जो न गडा होवे, तो कहे मैं नहीं जानता, शेष घरका कृत्य सर्व वर्जे, तिसके निमित्त जो घरमें आहार कस्या होय, सोनी न खावे. इग्यारहवी इग्यारां मास तक घरका संग त्यागे, लोच करे. वा क्षुरमुंडित होवे, रजोहरण पात्रे प्रमुख लेकें मुनिका वेष धारी हो कर स्वकुलमें निक्षा लेवे. मुखसें ऐसा कहे कि "प्रतिमाप्रतिपन्नाय श्रमणोपासकाय निक्षां देहीति वचन कहे," धर्मलान शब्द न कहे, सर्वरीतिसें साधुकी तरें प्रवर्ते ॥ इति श्राद्धप्रतिमा सप्तदश द्वारम् ॥ १७ ॥

१८ अठारहवा द्वार, आराधनाका कहते हैं, श्रावक अंतकालमें आराधना जो आगें कहेंगे सो अरु संलेषनादिकों विधिसें करे. श्रावक जब सर्वधर्म कृत्यमें अशक्त हो जावे. तब मरण निकट जानकें द्रव्य अरु नावें दो प्रकारें संलेषना करे. तहां द्रव्यसंलेषना तो अनुक्रमसें आहार त्यागे, अरु नावसंलेखना सो क्रोधादि कषाय त्यागे, मरण निकट, इन लक्षणोंसें जान लेवे, सो लक्षण कहते हैं. १ बूरे स्वप्न आवे, २ प्रकृति स्वनाव और तरेंका होवे, ३ डुर्निमित्त मले, ४ खोटे ग्रह आवे, ५ आत्माका आचरण फिर जावे, अथवा कोइ देवता कह जावे तो मरण निकट जान जावे, जो द्रव्यें नावें संलेषणा न करे, अरु अनशन कर देवे, उसकों प्रायें डुर्ध्यान होनेसें कुगति होती है, इस वास्ते संलेषना अवश्य करे, पीछें श्रावकोंके धर्मके उद्यापन करने वास्ते संयम अंगीकार करे, क्योंकि एक दिनकीनी दीक्षा स्वर्गलोककी दाता है, जैसें नलराजाके नाई कुवेरके पुत्र सिंहकेसरी, पांच दिनकी दीक्षासें केवलज्ञान पाकें मोक्ष गया, तथा हरिवाहन राजाने नव प्रहरका शेष आयु सुनकें दीक्षा लीनं

सर्वार्थसिद्ध विमानमें गया, संथारा और दीक्षाके अवसरमें प्रनावना वास्ते यथाशक्ति धन खरचे, जैसें सात क्षेत्रोंमें ते अवसरमें थिरापद्रीय संघपति आजूने सात क्रोड धन खरच्या तथा जिसकों संयमका योग न होवे, सो संलेषना करकें शत्रुंजयादि तीर्थ सुस्थानमें जा कर निर्दोष स्थंमिलमें विधिसें चार आहार त्यागरूप अनशनकों आणंद कामदेवादि श्रावकोंवत् करे, तिस पीछे सर्वातिचारका परिहार चार सरणादि रूप आराधना करे.

आराधना दश प्रकारसें होती है. सो कहते हैं. १ पहिलां सर्वातिचार आलोवे, २ व्रत उच्चारण करे. ३ सर्व जीवोंसें क्षमावे, ४ अपणी आत्माकों अठारह पापस्थानक करनेसें व्युत्सर्जन करे. ५ चार सरणां लेवे, ६ गमनागमन दुःकृतकी गर्हणा करे, ७ जो किसीने जिनमंदिरादि सुकृत करा होवें, तिसकी अनुमोदना करे, ८ शुभनावना नावे, ए अनशन करे, अर्थात् चार आहार तीन आहारका त्याग करे, १० पंच नमस्कारका स्मरण करे, ऐसी आराधना करणेसें जे कर तिस नवमें मुक्ति न होवे, तोजी सुदेव अथवा सुमनुष्यके आठ नव करकें तो अवश्यमेव मोक्षरूप हो जावेगा ॥ १८ ॥ इति अष्टादश द्वारं समाप्तम् ॥

इस गृहस्थके धर्म करनेसें निरंतर गृहस्थ लोक इस लोक. परलोकमें सुखकों प्राप्त होवे हैं, अरु परंपरासें मोक्षकों प्राप्त होते हैं ॥ इति श्रीश्राद्धविधि ग्रंथानुसार श्रावकस्य जन्मकृत्यं संपूर्णम् ॥

इति श्री तपगच्छीयमुनि श्रीमणिविजयगणि तच्छिष्य मुनिश्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनिश्री मुक्तिविजयगणि तस्य लघुगुरुभ्रातृ मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे गृहस्थधर्मनिरूपणनामा दशमः परिच्छेदः॥१०॥

॥ इति श्री जैनतत्त्वादर्शे दशम परिच्छेदः समाप्तः ॥

॥ अथ एकादश परिछेद प्रारंजः ॥

इस परिछेदमें ऋषजादि महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रोंके अनुसार पूर्व वृत्तांत इतिहास रूप लिखते हैं, क्योंकि इस ग्रंथके पढने वाले यह तो जान जायंगे कि जैनी इस तरें मानते हैं, परंतु वर्त्तमान समयमें कितनेक जव्य जीवोंकी जिज्ञासा है, किः—जैनमत कबसें यहां प्रचलित हूआ है? फिर कितनेक जीवोंकों असी ज्रांति है किः—जैनमत बौद्धमतकी शाखा है, और कितनेक कहते हैं कि बौद्धमत जैनमतकी शाखा है, क्योंकि यह दोनों मत किसी कालमें एक थे, परंतु आचार्योंके मत जेद होनेसें एक मतके जैन औ बौद्ध यह दो मत हो गये है, तथा कोइक कहते हैं किः—संवत् छे सौके ६०० लग जग जैनमत हूआ है, तथा कोइ कहते हैं कि विष्णु जगवान्ने दैत्यके धर्मच्रष्ट करनेकों अर्हतका अवतार लीया, तथा कोइ कहते हैं कि मछंदर नाथके बेटोनें जैनमत चलाया है, इत्यादि अनेक विकल्प करते हैं. परंतु ये सर्व कहने दंतकथा, अरु जैनमतके न जाननेका सूचक है, जैसें चर्मकार अर्थात् चमार कहते हैं, कि बानी और चामो दो बहिनां थी, तिनमें बानीकी औलाद, अग्रवालादि सर्व बनिये हैं, और चामोकी औलाद, हम चमार हैं. इस वास्ते वनीयें और चमार एक वंशके हैं. अब शोचना चाहियें कि चमारोंकी यह कही हूइ कथा सुनकें बुद्धिमान् सांच मान लेवेंगे? इसी तरें जो कोइ अपणी दलीलसें वा दंतकथा सुनकें जैनमतकी उत्पत्ति मानेगा, वोजी जैनीयोंके आगें हसनेका स्थान बनेगा, क्योंकि प्रथम तो कोइजी मतवाला जैनमतके असली तत्त्वकों नहीं जानता है, जैसें शंकर दिग्विजयमें शंकर स्वामीनें जो जैनमतका खंमन लिखा है, उसकों देखकें हमकों हांसी आती है, जब शंकर स्वामीने जैनमतकोंही नहीं जाना, तो फेर जो उनका जैनमतका खंमन है, सोजी असा जानना कि जैसें पुरुषकी गयाकों पुरुष जानकें तिसकों लाठीसें पीटनां, जब शंकरस्वामीकोंही जैनमतकी खबर नहीं थी, तो अबके वर्त्तमान कालकें गाल बजाने वालोंका क्या कहनां है? इस वास्ते हम बहुत नम्र हो कर इं पढने वालोंसें विनति करते हैं कि अछी तरेंसें जैनमतकों जान कर

तुमनें जैनमतका खंमन मंमन करनां, नहीं तो शंकरस्वामी अरु रामानु जाचार्यादिककी तरें तुमनी हसने योग्य हो जावेंगे ?

अब सज्जनोके जानने वास्ते प्रथम इस जगत्का थोडासा स्वरूप लिखते हैं. यह जगतुकों जैनी, इव्यार्थिक नयके मतसें शाश्वत अर्थात् हमेशां प्रवाहसें असाही मानते हैं, और इस जगतमें छै तरेका काल वर्त्तता है, तिनहीकों जैनी लोक, छै आरे कहते हैं. एक अवसर्प्पिणी काल, अर्थात् सर्व अछी वस्तुका क्रमसें नाश करता चला जाता है, तिसके छै हिस्से हैं. तथा दूसरा उत्सर्प्पिणी काल, अर्थात् सर्व अछी वस्तुकों क्रमसें वृद्धिमान् करता चला जाता है, दश कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण एक अवसर्प्पिणी काल, और इतनेही सागरोपम प्रमाण एक उत्सर्प्पिणी काल है, एक सागरोपम असंख्याता वर्षका होता है, इसका स्वरूप जैनशास्त्रमें जान लेनां. यह एक अवसर्प्पिणी अरु एक उत्सर्प्पिणी मिल कर दोनोंका एक कालचक्र, वीश कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होता है. असें कालचक्र अनंत पीछे व्यतीत हो गये हैं, और आगेंकों व्यतीत होवेंगे, अवसर्प्पिणी के पूरे हूये उत्सर्प्पिणी कालका प्रारंन होता है. और उत्सर्प्पिणीके पूरे हूये अवसर्प्पिणी कालका प्रारंन होता है. इसी तरें अनादि अनंत काल तक यही व्यवस्था रहेगी. अब छेहों आरोंके स्वरूप लिखते हैं.

अवसर्प्पिणीका प्रथम आरा जिसका नाम सूखम सूखम कहते हैं. सो चार कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण है. तिस कालमें नरतक्षेत्रकी नूमिका बहुत सुंदर रमणीय मार्दलके तले समान सम (बराबर) थी, उस कालके मनुष्य, नइक, सरलस्वनाव, अल्प राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि वाले थे, सुंदर रूपवान्, नीरोग शरीर वाले थे. दश जातिके कल्पवृक्षोसें अपनें खानें पीने पहनने सोने आदिकका सर्व व्यवहार कर लेते थे, एक लडका एक लडकी दोनोका युगल जन्मते थे, जब यौवनवंत होते थे, तब दोनों बहिन और नाइ, स्त्री नरतारका संबंध कर लेते थे, उनोंके आगें असेही फेर युगल होते रहे, सो पूर्वोक्त सर्व व्यवहार करते थे, जैन मतके मापेमें तीन गाऊ (कोश) प्रमाण उनका शरीर ऊंचा था, और तीन पल्योपम प्रमाण आयु था, तथा दो सौ छप्पन पृष्ठ करंमके हाड थे, धर्म करनां, और जीवहिंसा, जूठ, चोरी प्रमुख पापनी बिशेष नहीं था, वृक्षोंहीमें सो रह

ते थे, जुगल जोडेनी गिणतीमें थोडे थे,बाकी (शेष) चउपाय, पक्षी, पंचें द्रिय सर्व जातिके जीव थे, परंतु वो नद्रक थे, क्षुद्रक नहीं थे, शालिप्रमुख सर्व अन्न तथा इक्षु प्रमुख चीजें सब जंगलोंमें स्वयमेवही उत्पन्न हो जाते थे, परंतु वो कुछ मनुष्योंके खानेमें नहीं आते थे, क्योंकि मनुष्य तो निःकेवल फल फूलोंकाही आहार करते थे. वस्त्रकी जगें वृक्षोंके पत्ते वा छिल्यक उढते थे, इत्यादि प्रथम आरेका स्वरूप, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रमुख शास्त्रोंसें जान लेना ॥ इति प्रथम आराका किंचित्स्वरूप कह्या ॥ १ ॥

दूसरा आरा, तीन कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण,तिसमें दो गाऊ(कोश) देहमान, दो पल्योपमायु, एक सौ अठाइ पृष्ठ करंमक हाड थे, शेष व्यवहार प्रथम आरावत् जाननां ॥ इति दूसरा आरक ॥ २ ॥

तीसरा आरा, दो कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण, एक गाऊ (कोश) देहमान, एक पल्योपमायु, चौसठ पृष्ठ करंमकी पसलीयां,शेष व्यवहार प्रथम आरेवत् जाननां, इन सर्व आरोंमें सर्ववस्तु क्रमसें घटती घटती छेहडे अगले आरे तुल्य रह जाती है. परंतु एक बारगी सर्व स्तु नहीं घटती है.

इस तीसरे आरेके छेहडे एक बंशमें सात कुलकर उत्पन्न हूए, कुलकर उसकों कहते हैं कि जिनोंने तिस तिस कालके मनुष्योंके वास्ते कछुक मर्यादा बांधी है,इनही सात कुलकरोंकों लौकिकमें सप्त मनु कहते हैं, दूसरे बंशोंके कुलकर गिनीयें, तब श्रीऋषभदेवकों वर्जके चौदह कुलकर होता है अरु ऋषभनाथ पंदरहवा कुलकर होता है.

पूर्वोक्त सात कुलकरोंके नाम लिखते हैं. प्रथम विमलवाहन, दूसरा चक्षुष्मान्, तीसरा यशस्वान्, चौथा अभिचंद्र, पांचमा प्रश्रेणि, छठा मरुदेव, सातमा नाभि. इन सातोंकी नार्याका नाम क्रमसें कहते हैं, १ चंद्रयशा, २ चंद्रकाता, ३ सुरूपा, ४ प्रतिरूपा,५ चक्षुःकांता, ६ श्रीकांता, ७ मरुदेवी, ये सर्व कुलकर,गंगा अरु सिंधु नदीके मध्यके खंडमें हुये हैं.

यह कुल कर होनेका कारण कहते हैं. तीसरे आरेके उतरतां दश जातिके कल्पवृक्ष, कालके दोषसें थोडे हो गये, तब युगलक लोकोंनें अपने अपने वृक्षोंका ममत्व कर लीया, पीछें जब दूसरे युगलोंके रखे हूए वृक्षोंसें फल लेने लगे, तब ममत्व वाले युगल उनसें क्लेश करनें लगे तब युगलक पुरुषोंकों ऐसा विचार आया कि कोइ ऐसा होवे, जो

मारे क्लेशका निवेडा करे, तब तिन युगलियोंमेंसें एक युगलकों एक वनके श्वेत हाथीनें देख कर प्रेमसें अपने स्कंध पर चढा लीया, जब वो युगल पुरुष एकला हाथी ऊपर चढकें फिरने लगा, तब और युगलोंनें विचार किया कि यह युगल, हमसें बडा है, क्योंकि यह, हाथी ऊपर चढा फिरता है, और हम तो पगोंसें चलते हैं, इस वास्ते इसकों न्यायाधीश बनाउ. अर्थात् जो यह कहे, सो मानो, तब तिनोनें उसकों न्यायाधीश बनाया. जिस कारनसें हाथीनें युगलकों अपणे उपर चढाया है, सो कारण, और इनोकें पूर्वभवकी कथा आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनी.

तब तिस विमलवाहननें सर्व युगलियोंकों कल्पवृक्ष बांटके दे दीये, कितनेक युगलीये अपने कल्पवृक्षोंसें संतोष न करकें औरोंके कल्पवृक्षोंसें फल लेने लगे. तब उस वृक्षके मालक क्लेश करने लगे. पीछें तिस निःसंतोषी युगलीयेकों पकडकें विमलवाहनके पास लाते हूए, तब विमलवाहननें उनकों कहा कि हा तुमने यह क्या करा ? तबसें विमलवाहननें ऐसी दंमनीति प्रवर्त्ताइ, तिस हकार दंमनीतिमें फेर वे ऐसा काम नहीं करते थे. पीछें तिस विमलवाहनका पुत्र चक्षुष्मान् हूआ.अपने बापके पीछें वो राजा अर्थात् कुलकर बना, तिसके बखतमेंभी हाकारही दंम रहा, तिसके यशस्वान् नामा पुत्र हूआ, तिसके अभिचंद पुत्र हूआ. इन दोनोंके समयमें थोडे अपराध वालेकों हाकार दंम और बहुत ढीठकों मकार दंम जो यह काम मत करनां. ये दो दंमनीति हूइ.तिसके पुत्र प्रश्रेणि हूआ, प्रश्रेणिके पुत्र मरुदेव हूआ, मरुदेवका पुत्र नाभि हूआ, ये तीनों कुलकरोंके समयमें हाकार, मकार अरु धिक्कार, ये तीन दंमनीति हो गइ. तिसमें थोडे अपराधीकों हाकार. अरु मध्यम अपराधीकों मकार. तथा उत्कृष्ट अपराधीकों धिक्कार दंम करते हूए, तिस नाभिकुलकरकें मरुदेवी नामा भार्या थी. यह नाभिकुलकर बहुलतामें इक्ष्वाकु भूमि अर्थात् बिनता नगरीकी भूमिमें निवास करता था, यह भूमि, कश्मीर देशके परे थी, क्योंकि बिनता नगरीके चारों दिशामें चार पर्वत थे, तिसमें पूर्वदिशिमें अष्टापद अर्थात् कैलासगिरि थे. दक्षिणदिशिमें महाशैल्य थे, पश्चिमदिशिमें सुर शैल्य, तथा उत्तरदिशिमें उदयाचल पर्वत होते.

तिस नाभिकुलकरकी मरुदेवी नामक नार्याकी कूखमें आषाढवदि चौथकी रात्रिकों सर्वार्थसिद्ध देवलोकसें च्यवकें ऋषभदेवका जीव, गर्भमें पुत्रपणे उत्पन्न हूआ, मरुदेवीने चौदह स्वप्न देखे, इंद्रमहाराजने स्वप्न फल कह्या, चैत्रवदि अष्टमीकों ऋषभदेवजीका जन्म हूआ,छप्पनदिग्कुमारी और चौशठ इंद्रने मिलकें जन्ममहोत्सव करा, मरुदेवीनें चौदह स्वप्नकी आदिमें बैलका स्वप्न देखा था, तथा पुत्रके दोनो साथलोंमें बैलका चिन्ह था, इस वास्ते पुत्रका नाम ऋषभ दीया.

बाल अवस्थामें श्रीऋषभदेवकों जब भूख लगती थी, तब अपने हाथका अंगूठा मुखमें लेकें चूस लेते थे. उस अंगूठेमें इंद्रनें अमृत संचार कर दीया था, जब ऋषभदेवजी बडे हूए, तब देवता उनकों कल्पवृक्षोंके फल ल्या कर देते थे, वे फल खा लेते थे, जब ऋषभदेव कूछ न्यून एकवर्षके हूए,तब इंद्र आया,हाथमें इक्षुदंड ल्याया,क्योंकि रीते हाथसें स्वामीके समीप न जानां चाहियें. इस वास्ते इक्षुदंड ल्याया, उस वखतमें श्रीऋषभदेवजी नाभिकुलकरकी गोदीमें बैठे थे, तब ऋषभदेवकी दृष्टि, इक्षुदंड उपर पडी, तब इंद्रनें कह्या के हे भगवन्! इक्षु अकु अर्थात् इक्षु भक्षण करोगे ? तब ऋषभदेवजीनें हाथ पसाखा, तब इंद्रने ऋषभदेवजीका इक्ष्वाकुवंश स्थापन करा, तथा श्रीऋषभदेवजीके वंशवालोंनें काशकार पीया, इस वास्ते गोत्रका नाम काश्यप हूआ, श्रीऋषभदेवजीके जिस जिस वयमें जो जो काम उचित था, सो सो शक्र (इंद्र)नें करा, यह अनादिसें जो जो शक्र (इंद्र) होते हैं, तिनका जीतकल्प है, जो प्रथम भगवान्के वयोचित सर्वकाम करने.

इस अवसरमें एक लडकी लडका बहिन और भाइ बालावस्थामें ताडवृक्षके हेठ खेलते थे, उहां ताडके फल गिरनेसें लडका मर गया, तब लडकीकों नाभिकुलकरने यह ऋषभदेवजीकी भार्या होवेगी ? ऐसा विचार करकें अपने पास रख लीनी, तिसका नाम सुनंदा था, और दूसरी जो ऋषभदेवजीके साथ जन्मी थी, तिसका नाम सुमंगला था, इन दोनोंके साथ ऋषभदेव बालावस्थामें खेलते हूए यौवनके प्राप्त हूए, तब इंद्रने विवाहका प्रारंभ करा, आगें युगलकें समयमें विवाहविधि नहीं थी, इस वास्ते यह विवाहमें पुरुषके कृत्य तो सर्व इंद्रनें करे, और स्त्री

योंकी तर्फसें सर्वकृत्य इंद्राणीयोनें करे, तहांसें विवाहविधि जगत्में प्रचलित हूई, तब श्रीऋषभदेव दोनों नार्यांके साथ सांसारिक विषयसुख भोगता, जब छै लाख पूर्व, वर्ष व्यतीत हूए, तब सुमंगला राणीके भरत और ब्राह्मी यह युगल जन्मे. तथा सुनंदाके बाहुबली और सुंदरी यह युगल जन्मे, पीछेसें सुनंदाके तो और कोइ पुत्र पुत्री नहीं जन्मे, परंतु सुमंगला देवीके उणपंचास (४९) अर्थात् एक कम पंचास जोडे पुत्रों हीके जन्मे. यह सब मिल कर सौ पुत्र और दो पुत्रीयों.श्रीऋषभदेवके अपत्य अर्थात् पुत्र पुत्री हूए हैं.

तिन सौ पुत्रके नाम लिखते हैं. १ भरत, २ बाहुबली. ३ श्रीमस्तक, ४ श्रीपुत्रांगारक, ५ श्रीमल्लिदेव, ६ अंगज्योति, ७ मलयदेव, ८ भार्गवतार्थ, ९ वंगदेव, १० वसुदेव, ११ मगधनाथ, १२ मानवार्त्तिक, १३ मानयुक्ति, १४ वैदर्भदेव, १५ बनवासनाथ, १६ महीपक, १७ धर्मराष्ट्र, १८ मायकदेव, १९ आस्मक, २० दंमक, २१ कलिंग, २२ ईषकदेव, २३ पुरुषदेव, २४ अकल, २५ भोगदेव, २६ वीर्यभोग, २७ गणनाथ, २८ तीर्णनाथ, २९ अंबुदपति, ३० आयुर्वीर्य, ३१ नायक, ३२ काल्किक, ३३ आनर्त्तक, ३४ सारिक, ३५ ग्रहपति, ३६ करदेव, ३७ कछनाथ, ३८ सुराष्ट्र, ३९ नर्मद,४० सारस्वत, ४१ तापसदेव, ४२ कुरु, ४३ जंगल, ४४ पंचाल, ४५ शूरसेन, ४६ पुट, ४७ कालिंगदेव, ४८ काशीकुमार, ४९ कौशल्य, ५० भद्रकाश, ५१ विकाशक, ५२ त्रिगर्त्त, ५३ आवर्त, ५४ सालु, ५५ मत्स्यदेव, ५६ कुलियक, ५७ मुषकदेव, ५८ वाल्हीक, ५९ कांबोज, ६० मधुनाथ, ६१ सांड्क, ६२ आत्रेय, ६३ यवन, ६४ आभीर, ६५ वानदेव, ६६ बानस, ६७ केकेय, ६८ सिंधु, ६९ सौवीर, ७० गंधार, ७१ काष्ठदेव, ७२ तोषक,७३ शौरक, ७४ भारद्वाज, ७५ शूरदेव, ७६ प्रस्थान, ७७ कर्णक, ७८ त्रिपुरनाथ, ७९ अवंतिनाथ, ८० चेदिपति, ८१ विष्कंभ, ८२ नैषध, ८३ दशार्णनाथ, ८४ कुसुमवर्ण, ८५ भूपालदेव, ८६ पालप्रभु, ८७ कुशल, ८८ पद्म,८९ महापद्म,९० विनिद्र, ९१ विकेश, ९२ वैदेह,९३ कछपति, ९४ भद्रदेव, ९५ वज्रदेव, ९६ सांद्रभद्र, ९७ सेतज, ९८ वत्सनाथ.९९ अंगदेव, १०० नरोत्तम,यह ऋषभ देवके सौ पुत्रोंका नाम जाननां.

इस अवसरमें जीवोंके कषायों प्रबल हो जानेसं पूर्वोक्त हकारादि तीनो

दंमका लोक नय नहीं करने लगे, इस अवसरमें लोकोने सर्वसें अधिक ज्ञानवानादि गुणों करकें संयुक्त श्रीऋषनदेवकों जानकें युगलक लोक, श्रीऋषनदेवकों कहते हूए कि अबके सब लोक दंमका नय नहीं करते हैं? श्री ऋषनदेवजी गर्नमेंनी मति, श्रुत, अरु अवधि, यह तीन ज्ञानों करकें संयुक्त थे, यह श्रीऋषनदेवजीके पूर्वनवोंका वृत्तांत आवश्यक तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनां, तब श्रीऋषनदेव वो युगलक पुरुषोंकों कहते नये कि जो राजा होता है, सो दंम करता है, और राजा जो होता है, सो मंत्री कोटवालादि सेना संयुक्त होता है, अरु कृतानिषेक होता है, फेर उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती है, ऐसा बचन सुन कर, वे मिथुनक बोले कि ऐसा राजा हमारानी हो जावे? तब ऋषनदेवजी बोले जो तुमारी मनसा ऐसी है, तो नानिकुलकरसें याचना करो, पीछें तिनोनें नानिकुलकरसें विनति करी, तब नानिकुलकरने कहा, जाउ ऋषनदेवजी तुमारा राजा हूआ, तब वे मिथुनक, ऋषनदेवकों राज्यानिषेक करने वास्ते पद्मिनी सरोवरमें गये, इस अवसरमें इंडका आसन कंपमान हूआ. तब अवधिज्ञानसें राज्यानिषेकका अवसर जानकें यहां आ कर श्रीऋषनदेवकों राज्यानिषेक करा, मुकुटादि सर्व अलंकार जो कुछ राजाके योग्य थे, सो पहिराये, इस अवसरमें मिथुनक लोक पद्मसरोवरसें नलिनीकमलोंमें पाणी ल्याये, उनोने आ कर जब श्रीऋषनदेवजीकों अलंकृत देखा, तब सजनोंने चरणों उपर जल गेर दीया, तब इंडने मनमें चिंता करी कि ये बडे विनीत पुरुष हैं, ऐसा जान कर वैश्रमणकों आज्ञा दीनी कि इन विनीतोंके रहने वास्ते विनीता नामा नगरी वसाउ, तब विनीता नगरी वैश्रमणनें वसाइ. इसका स्वरूप, शत्रुंजयमहात्म्यसें जान लेनां.

अथ संग्रहके वास्ते हाथी, घोडे, गौ प्रमुख श्रीऋषनदेवके राज्यमें बनोंसें पकडे गये, तब श्रीऋषनदेवने चार प्रकारका संग्रह करा १ उग्रा, २ नोगा, ३ राजन्या, ४ क्षत्रिया, उसमें जिनकों कोटवालकी पदवी दीनी, सो दंमके करनेसें उग्रवंश कहलाया, तथा जिनकों श्रीऋषनदेवजीने गुरु अर्थात् उंचे बडे करकें माने, तिनोंका नोगवंश कहलाया, तथा जो श्रीऋषनदेवजीके मित्र थे उनोका राजन्यवंश नाम रक्खा गया, तथा शेष जो रहे, तिनका क्षत्रियवंश हूआ.

अथ आहारकी विधि कहते हैं, जब कल्पवृक्षोंके फलोंका अभाव हूआ,तब पकाहारका खाना किस तरेंसें हूआ ? सो लिखते हैं. कालके प्रभावसें कल्पवृक्ष फल देनेंसें रह गये, तब लोक,और वृक्षोंके कंद, मूल,पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केइक इक्षुका रस पीने लगे, तथा सत्तरे जातका कच्चा अन्न खाने लगे, परंतु कितनेक दिनो पीछें कच्चा अन्न उनकों जीर्ण न होनेसें ऋषभदेवजीने उनकों कहा कि तुम हाथोंसें मसलकें तूतडा दूर करकें खाउ. फेर कितनेक दिनो पीछें वैसेभी पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, असें बहुत तरेंसें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ. तोभी कालदोषसें अन्न पाचन न होने लगा. इस अवसरमें जंगलोंमें वांसादिके घसनेंसें अग्नि उत्पन्न हूआ.

प्रश्नः– तुम कहते हो कि ऋषभदेवजीकों जातिस्मरण और अवधि ज्ञान था. तो फेर ऋषभदेवजीने प्रथमसेंही अग्नि बनाना उस अग्निमें अन्न रांधके खानां क्युं न बतलाया ?

उत्तरः– हे भव्य ! एकांत स्निग्ध कालमें और एकांत रुक्षकालमें अग्नि किसी वस्तुसेंभी उत्पन्न नहीं हो सकि. कदाचित् कोइ देवता विदेहक्षेत्रसें अग्निकों लेभी आवे, तोभी यहां तत्काल बूज जाती थी. इस वास्ते अग्निसें पकाकें खानेका उपदेश नहीं दीया, पीछें तिस अग्निकों तृणादि दाह करता देखकें अपूर्व रत्न जानकें पकडनें लगे. जब हाथ जले. तब डर खा कर दौडकें श्रीऋषभदेवजीसें सर्व वृत्तांत कहा, तब श्रीऋषभदेवने अग्नि ले आनेकी विधि बताइ,तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आये.तब हस्ती उपर बैठे हूये ऋषभदेवने हाथीके शिर उपरही मिट्टिका एक कूंभासा बना कर उनोंके पास अग्निमें पका कर उसमें अन्न रांध कर खानां बताया, पीछें जिसके हाथसें वो कुंभा पकडाया वो कुंभार नामसें प्रसिद्ध हूआ.इसी वास्ते कुंभारकों प्रजापति पर्यापति कहते हैं, फेर तो शनैःशनैः सर्वतरेंका आहार पकाकें खानेकी विधि प्रवृत्त हो गइ,सर्वविधि श्रीऋषभदेवजीनेही बताइ है.

अथ शिल्पद्वार कहते हैं. श्रीऋषभदेवजीके उपदेशसें पांच मूल शिल्प अर्थात् कारीगर बने, तिसका नाम लिखते हैं. १ कुंभकार, २ लोहकार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुनने वाले, ५ नापित अर्थात् नाइ, ये पांच शिल्प

बने. यह एकेक शिल्पके अवांतर नेद वीश वीश हैं, इस वास्ते सर्व मिल कर एक सौ शिल्प उत्पन्न हूए.

अथ कर्मद्वार लिखते हैं. कर्मद्वारमें १ खेती करणी, वाणिज्य करणां, धनका ममत्व करणां, इत्यादि कर्म बताये. प्रथम मट्टीके संचयोंमें नरकें, अहरण, हथोडी प्रमुख बनाये, पीछें उनसें सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा नरतादि पर्यालोकोंकों बहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ उन, सनोंका नाम मात्र ऐसें हैं:— १ लिखनेकी कला, २ पढनेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल बजानां, ७ पटह बजानां, ८ मृदंग बजानां, ९ वीणा बजानां, १० वंशपरीक्षा, ११ नेरीपरीक्षा, १२ गजशिक्षा, १३ तुरंगशिक्षा, १४ धातुवाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मंत्रवाद, १७ बलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ छंदबंधन, २२ तर्कजल्पन, २३ नीतिविचार, २४ तत्त्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ षड्नाषा, २९ योगान्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अंजनविधि, ३२ अढारह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इंद्रजालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ बाणिज्य करणां, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंनन, ४० अग्निस्तंनन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्दनविधि, ४४ ऊर्ध्वगमन, ४५ घटबंधन, ४६ घटभ्रमन, ४७ पत्रछेदन, ४८ मर्मनेदन, ४९ फलाकर्षण, ५० जलाकर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरंजन, ५३ अफलवृक्षोंकों सफल करणां, ५४ खड्गबंधन, ५५ छुरी बंधन, ५६ मुद्राबिधि, ५७ लोहज्ञान, ५८ दांत समारणे, ५९ काललक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दंमयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वाग्युद्ध, ६७ गारुडविद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ नूतमर्दन, ७० योग सो द्रव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला. यह पुरुषोंकों बहत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कह्या.

अब स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ. तिसका नाम कहते हैं, १ नृत्यकला, २ औचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मंत्र, ६ तंत्र, ७ ज्ञान,

८ विज्ञान, ९ दंन, १० जलस्तंन, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मेघ वृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार, १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति, २२ धर्मनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरनीकरण, २६ लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९ कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिछेद, ३१ तत्कालबुद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि, ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्ननेद, ३५ घटन्रम, ३६ सारपरिश्रम, ३७ अंजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाटव, ४१ नोज्य विधि, ४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शालिखंमन, ४६ मुखमंमन, ४७ कथाकथन, ४८ कुसुमगुंथन, ४९ वरवेष, ५० सकलना पाविशेष, ५१ अनिधानपरिज्ञान, ५२ आनरण पहनने, ५३ नृत्योपचार, ५४ गृहाचार, ५५ शाठ्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरंधन, ५८ केशबंधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वितंमावाद, ६१ अंकविचार, ६२ लोक व्यवहार, ६३ अंत्याक्षरिका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका. यह स्त्रीकी चौशठ कला कही.

अबकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायोंका प्रकरनूत है, इस वास्ते सर्व कला इनहीके अंतर्नाव है. जैसें प्रथम लिपि कलाके अठारह नेद दक्षिण हाथसें ब्राह्मीपुत्रीकों सिखाइ. तिसके नाम कहते हैं १ हंसलिपि, २ नूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि, ७ कीरीलिपि, ८ झावडीलिपि, ९ सैंधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नडी लिपि, १२ नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमित्ती लिपि, १६ चाणक्यीलिपि, १७ मूलदेवी, १८ उड्डीलिपि, यह अठारह प्रकार की ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके नेदसें अनेक तरेंकी हो गइ, जैसेंकी १ लाटी, २ चोडी, ३ माहली, ४ कानडी, ५ गौर्जरी, ६ सोरठी, ७ मरहठी, ८ कोंकणी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हाडी, १३ कीरी, १४ हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी, १८ महायोधी, इत्यादि लिपि सिखाइ, तथा सुंदरी पुत्रिकों वाम हाथसें अंकविद्या सिखाइ, जो जगत्में प्रचलित कला है, जिनोसें अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वे सर्व श्रीऋषनदेवने प्रवर्त्ताइ हैं. तिसमें कितनीक कला कइ वार लुप्त होजाती हैं, फिर सामग्री पा कर प्रगटनी हो जाती हैं, परंतु नवीन विद्या वा कला कोइनी नहीं उ

त्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीऋषभदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सूत्रमें देख लेनां.

ब्राह्मी जो भरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह बाहुबलीके साथ कर दीया, और बाहुबलीके साथ जो सुंदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह भरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हूआ.

श्रीऋषभदेवजीने युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हूए बहिन भाइका विवाह दूर कीया, श्रीऋषभदेवकों देखकें लोकभी इसी तरें विवाह करने लगे, श्रीऋषभदेवने बहुत काल तांइ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सर्वतरेंके सुख उत्पन्न हूए, इस हेतुसें श्रीऋषभदेवकों जैनीलोक, जगत्का कर्त्ता मानते हैं, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी सृष्टि कहते हैं, वेभी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगत्का कर्त्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि भगवान् आदि, अर्हतआदि, तीर्थकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसें बडा, इत्यादि जो नाम, और महिमा गाते हैं, वे सर्व श्रीऋषभदेवजीकेही गुणानुवाद हैं, और कोइ सृष्टिका कर्त्ता नहीं है.

मूर्ख और अज्ञानीयोंनें स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमें मनमानी कल्पना कर लीनी है, उस कल्पनाकों बहुत जीव आज तांइ सच्ची मानते चले आये हैं, क्योंकि सर्वमत जैनके विना ब्राह्मणोंनेही प्रायः चलाये हैं, इस वास्ते ब्राह्मणोही मतोंके विश्वकर्मा हैं, अरु लौकिक शास्त्रोंमें जो कुछ है, सो ब्राह्मणोहीके वास्ते है. ब्राह्मणभी लौकिक शास्त्रोनें तार दीये, क्योंकि शास्त्र बनाने वालोंके संतानादि, खूब खाते, पीते, और आनंद करते हैं, इन ब्राह्मणोंकी तथा वेदोंकी उत्पत्ति जैसें आवश्यक आदिक शास्त्रोंमें लिखी है, तैसें भव्य जीवोंके जानने वास्ते यहां मैंभी लीखुंगा.

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, भरत पुत्रकों विनीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुबली पुत्रकों तक्षिलाका राज्य दीया, शेष पुत्रोंकों और और देशोंका राज्य दीया, उनही पुत्रोंके नामसें बहुत देशोंका नामभी तैसाही पड गया, जैसें अंगदेश, वंगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोंकाभी पुत्रोंके नामसें पड गया.

पीछें श्रीऋषभदेवनें स्वयमेव दीक्षा लीनी, उनके साथ कछ, महाकछ, सांमतादिक चार हजार पुरुषोंनें दीक्षा लीनी.

श्रीऋषभदेवजीकों एक वर्ष तक भिक्षा न मिली.तब चार हजार पुरुष तो भूखें मरते जटाधारी, कंद, मूल, फल, फूल, पत्रादि आहारी हो क रकें गंगाके दोनो किनारों उपर तापस बनकें रहने लगे, अरु श्रीऋषभदे वजीका ध्यान, जप आदि ब्रह्मादि शब्दोसें करने लगे.

तब एक वर्ष पीछें वैशाख शुदी तीजकों हस्तिनापुरमें आये, तहां श्री ऋषभदेवका पडपोता श्रेयांस कुमारने जातिस्मरण ज्ञानकें बलसें श्रीऋषभ देवकों भिक्षा वास्ते फिरते देखकें इक्षुरससें पारणां कराया, क्योंकि उस समयमें लोकोंने कोइ भिक्षाचर देखा नहीं था, अरु न वो भिक्षाभी दे जानते थे, तिस कारणसें श्रीऋषभदेवजीकों हाथी, घोडे, आभूषण, कन्या दि तो बहुत भेट करे. परंतु वे तो उस समयमें त्यागी थे, इस वास्ते लीने नहीं. तब लोकोंने श्रेयांसकुमारकों पूछा कि तुमने श्रीऋषभदेवजीकों भिक्षार्थी कैसें जाने? तब श्रेयांसकुमारने अपणे और श्रीऋषभदेवजीके आठ भवोंका संबंध कह्या. सो सर्व अधिकार, आवश्यक शास्त्रमें लिखा है. तद् पीछें सर्व लोक भिक्षा देनेकी रीति जान गये.

श्रीऋषभदेवजी एक हजार वर्ष तक देशोमें छद्मस्थ पणे विचरते रहे, तिस अवस्थामें कछ अरु महाकछके बेटे नमि और विनमीने आ कर प्रभुकी बहुत सेवा भक्ति करी. तब धरणेंद्रने प्रज्ञप्त्यादि अडतालीस ह जार विद्या (४८०००) उनकों दे कर वैताढ्यगिरिकी दक्षिण, अरु उत्तर, यह दोनों श्रेणिका राज्य दीया, वे सर्व विद्याधर कहलाये, इनही विद्या धरोंके संतानोंमें रावण, कुंभकर्णादि तथा वाली सुग्रीवादि और पवन ह नुमानादि सर्व विद्याधर हूए हैं.

एकदा छद्मस्थ अवस्थामें श्रीऋषभदेवजी विहार करते हूए, बाहुब लीकी तक्षिला नगरीमें गये. वहां बाहिर बागमें कायोत्सर्ग करकें खडे रहे. यह खबर जब बाहुबलीकों पहुंची तब बाहुबलीनें मनमें विचार करा कि कलकों बडे आडंबरसें पिताकों वंदना करनेकों जाऊंगा, प्रभात हूये जब आडंबरसें गया, तब श्रीऋषभदेवजी तो तहांसें और कहीं चले गये, तब बाहुबल बहु उदास हूआ, तब श्रीऋषभदेवजीके चरणोंकी ज

गोंके ऊपर धर्मचक्रतीर्थ स्थापन कराये, वो धर्मचक्र तीर्थ. विक्रमराजा तक तो रहा, पीछें जब पश्चिमदेशमें, नवे मतमतांतर खडे हूए, तबसें वो तीर्थ नष्ट हो गया.

तद्पीछें श्रीऋषजदेवजी बाल्हीक, जोनक, अम्बंब, इल्लाक, सुवर्णभूमि, पल्लवकादि देशोमें विचरने लगे. तहां जिनोनें श्रीऋषजदेवजीका दर्शन करा, वो तो सब जडक स्वनाव वाले हो गये,अरु शेष जो रहा, वो सब म्लेछ, निर्दयी अनार्य हो गये, अनेक कल्पनाके मत मानने लगे, उनका व्यवहार और तरेंका बन गया.

जब श्रीऋषजदेवकों एक हजार वर्ष व्यतीत हूए तब विहार करकें विनीता नगरीके पुरिमताल नामा बागमें आये. तब बड वृक्षके हेठ, फागुन वदि एकादशीके दिन, तीन दिनके उपवासी थे, तहां पहिले प्रहरमें केवलज्ञान अर्थात् जूत, जविष्यत् वर्त्तमानमें सर्व पदार्थोंके जानने देखने वाला आत्म स्वरूप रूप केवलज्ञान प्रगट हूआ,तब चौशठ इंद्र आए,देवताओनें समवसरण बनाया, तीन गढ चारों दरवाजे इत्यादि समवसरणकी रचना करी, एकैक दिशामें तीन तीन दरवाज बनाये, मध्यनागमें मणिपीठिका अर्थात् चौंतरा बनाया, तिसके मध्यनागमें अशोकवृक्ष रचा, तिसके हेठ दरवाजोंके सन्मुख चारों दिशोंमें चार सिंहासन रचे, तिसमें पूर्वके सिंहासन ऊपर श्रीऋषजदेव अर्हत बिराजमान हुए, अरु शेष तीनो सिंहासनो ऊपर श्रीऋषजदेव सरीखे तीन बींब स्थापन करे, तब जिस दरवाजेसें कोइ आवे, वो तिस पासेही श्रीऋषजदेवजीकों दीखते थे, इसी वास्ते जगत्में चार मुख वाला श्रीनगवान् ऋषजदेवजी ब्रह्माके नामसें प्रसिद्ध हूआ, धनंजयकोशमें श्रीऋषजदेवजीका नाम ब्रह्मा लिखा है.

जब श्रीऋषज देवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हूआ, तब जरत राजा श्रीऋषजदेवजीकों केवली सुन कर सकल परिवार संयुक्त समवसरणमें वंदना करनेंकों अरु उपदेश सुननेकों आया, उहां श्रीऋषजदेवजीका उपदेश सुन कर जरत राजाके पांच सौ पुत्र अरु सात सौ पोते तथा ब्राह्मी ऋषजदेवजीकी बेटी औरजी अनेक स्त्रीयोंने दीक्षा लीनी, मरुदेवीजी तो जगवान्के छत्रादि देखकें तथा बानी सुनकें केवली हो कर मोक्ष हो गइ, तथा जरतके बडे पुत्रका नाम ऋषजसेन पुंडरीक था, वो सोरठदेशमें

शत्रुंजय तीर्थ ऊपर देह त्यागकर, मोक्ष गया, इस वास्ते शत्रुंजयका नाम पुंमरीकगिरि रक्खा गया.

नरतके पांच सौ पुत्रोने जो दीक्षा लीनी थी, तिनमें एकका, नाम मरीची था, वो मरीचीने जैन दीक्षाका पालनां कठिन जान कर अपणी आजीविकाके चलाने वास्ते नवीन मनःकल्पित उपाय खडा कीया, क्योंकि उसने गृहवास करनेमें तो बडी हीनता जाणी, तब एक कुलिंग बनानां चाहा, सो इसी रीतिसें बनाया कि साधु तो मनदंम, बचनदंम, अरु काय दंम, इन तीनो दंमोंसें रहित है, और मैं तो इन तीनो दंमों करकें संयुक्त हुं. इस वास्ते मुऊकों त्रिदंम रखनां चाहियें, दूसरा साधु तो इव्य अरु नाव करकें मुंमित है. सो लोच करते हैं, अरु मैं तो इव्य मुंमित हुं, इस वास्ते मुऊे उस्तरे पाठनेंसें मस्तक मुंमवानां चाहियें, शिखाजी रखनी चाहियें, तीसरा साधु तो पांच महाव्रत पालते हैं, अरु मैरे तो सदा स्थूल जीवकी हिंसाका त्याग रहो चौथा साधु तो निःकचन है, अर्थात् परिग्रह रहित है, अरु मुऊकों एक पवित्रकादि रखनी चाहियें, पांचमा साधु तो शीलसें सुगंधित है, अरु मैं अैसा नहीं हूं इस वास्ते मुऊे चंदनादि सुगंधी लेनी ठीक है, ठहा साधु तो मोह रहित है, अरु मैंतो मोह संयुक्त हूं, इस वास्ते मुऊे मोक्षादितकों ठत्री रखनी चाहियें. सातमा साधु जूते रहित है. मुऊकों पगोंमें कुठ उपानह (जुती) प्रमुख चाहियें. आठमा साधु तो निर्मल है, इस वास्ते उनके शुक्लांबर वस्त्र है, अरु मैं तो क्रोध, मान, माया, अरु लोज, इन चारों कषायों करकें मैला हूं इस वास्ते मुऊे कषाय वस्त्र अर्थात् गेरुके रंगे (जगवे) वस्त्र रखने चाहियें, नवमा साधु तो सचित्त जलके त्यागी हैं, इस वास्ते मैं ठांनके सचित्त पाणी पीउंगा, स्नानजी करुंगा, इस तरें स्थूलमृषावादादिसें जी निवृत्त हूआ, इस प्रकारके मरीचीने स्वमतिसें अपणी आजीविकाके वास्ते लिंग बनाया, यही लिंग, परिव्राजकोंका उत्पन्न हूआ.

मरीची जगवान्के सायही विचरता रहा, तब साधुओंसें विसदृश लिंग देखकें लोक पूठते हूए, तब मरीची साधुका यथार्थ धर्म कहता था, अरु अपणा पांखंमवेष पूर्वोक्त रीतिसें प्रगट कह देता था, जो पुरुष, इसके पास धर्म सुन कर दीक्षा लेनी चाहता था, तिसकों जगवान्के सा

धुओंकों दे देता था, एकदा समय मरीची मांदा (रोग ग्रस्त) हूआ, तब विचार किया कि मैं तो असंयती हूं, इस वास्ते साधु मेरी वैयावृत्त नहीं करते हैं, अरु मुझे करानीजी युक्त नहीं है, तो कोइ चेलाजी मुझे वैयावृत्त वास्ते करनां चाहियें, तिस कालमें श्रीऋषभदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीछे एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेकों आया, तब मरीचीनें उसकों यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तब कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यों कर है? तब मरीचीने कहाकि मैं साधु पणा पालने समर्थ नहीं हूं, इस वास्ते मैं यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है. तब कपिलने कहा कि मुझे श्रीऋषभदेवके साधुओंका धर्म रुचता नहीं है, तुम कहो. तेरे पासभी कुछ धर्म है. या नहीं है, ? तब मरीचीनें जानां, यह भारीकर्मी जीव है, मेराही शिष्य होने योग्य है, इस लोभसें मरीचीने कह दीया कि वहांभी धर्म है, अरु मेरे पासभी कछुक धर्म है. यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है. उस वखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोइभी पुस्तक नहीं था, निःकेवल जो कुछ आचार मरीचीने कपिलकों बता दीया. सोइ आचार कपिल करता रहा, मरीचीने उत्सूत्र भाषण करनेसें एक क्रोडाकोटी सागरोपम लग संसारमें जन्म मरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया अरु पीछेसें कपिल ग्रंथार्थ ज्ञान शून्य मरीचीकी बताइ हूइ रीति ऊपर चलता रहा, उस कपिलका आसुरीनामा शिष्य हूआ, कपिलने आसुरीकोंभी आचार मात्रही मार्ग बतलाया, कपिलने औरभी बहुत शिष्य बनाये, उनके प्रेममें तत्पर थका, मरके ब्रह्मनामक पांचमे देवलोकमें देवता हूआ, तब उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसें देखा, कि मैंनें क्या दानादि अनुष्ठान करा है? जिस्सें मैं देवता हूआ, हूं, तब अवधिज्ञानसें ग्रंथज्ञानशून्य अपणे आसुरीनामा शिष्यकों देखा, तब विचार करा कि मेरा शिष्य कुछ नहीं जानता? इसकों कुछ तत्त्व उपदेश करुं? ऐसा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पंचवर्णके मंडलमें रह कर तत्त्वज्ञानका उपदेश करता भया, कि अव्यक्तसें व्यक्त प्रगट होता है, तिस अवसरमें षष्टितंत्र शास्त्र, आसुरीने बनाया, तिसमें ऐसा कथन करा कि प्रकृतिसें महान् होता है, अरु महा

नसें अहंकार होता है. अहंकारसें गण षोडश होता है, तिस गणषो डशमेंसें पंचतन्मात्रोंसें पांच भूत इत्यादि स्वरूप पूर्वे यही ग्रंथमें सांख्य मतविषे लिख आये हैं, उहांसें जान लेनां. पीछे इनकी संप्रदायमें नामी संख नामा आचार्य हूआ, तबसें इस मतका नाम सांख्यमत प्र सिद्ध हूआ, वास्तवमें सर्वपारिव्राजक संन्यासीयोंके लिंग आचारादि धर्मका मूल मरीचि हूआ, इन सांख्यमतका तत्त्व अबभी भगव द्गीता तथा भागवतादि ग्रंथोंमें तथा सांख्यमतके शास्त्रोंमें प्रचलित है, एक जैनमतके बिनां सर्वमतोंकी जड, इस्सें समझनी चाहियें.

जब श्रीऋषभदेवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हूआ था, उसीदिन भरत राजाकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हूआ. तब भरतने भरत क्षेत्रके छहों खंडोमें राज बनाया, अपनी आज्ञा मनाइ, इसी वास्ते इसका नाम भरत खंड प्रसिद्ध हूआ.

जब भरतने अपने छोटे भाइयोंकों आज्ञा मनाने वास्ते दूत भेजा, तब तिनोंनें विचार करा कि राज तो हमकों हमारा पिता दे गया है, तो फेर हम भरतकी आज्ञा क्यों कर माने? चलो पितासें कहे,जे कर अपना पिता श्री ऋषभदेवजी कहेंगे, कि तुम भरतकी आज्ञा मानो,तब तो हम आज्ञा मान लेवेंगे,जे कर हमारा पिता कहेगा लडो.तो हम लडेंगे, ऐसा विचार करकें कैलास पर्वतके ऊपर श्री ऋषभदेवजीके पास गये, तब ऋष भदेवजीनें उनके मनका अभिप्राय जान कर उनकों उपदेश करा जो उप देश करा था,सो श्रीसूत्रकृतांग सूत्रके दूसरे वैतालीय अध्ययनमें लिखा है, तब तो उपदेश सुन कर अठानवे (९८) पुत्रोंनें दीक्षा ले लीनी,सर्व झगडे छोड दीये, इस वार्त्तामें भरतकी अपकीर्त्ति हूइ, तब भरत चक्रवर्त्ती पांच सौ गाडे पक्वान्नके ले कर समवसरणमें आया, और कहने लगा कि मैं अ पनें भाइयोंकों भोजन कराउंगा, और मेरा अपराध क्षमा कराउंगा, तब श्री ऋषभदेवजीने कहा कि ऐसा आहार साधुओंकों लेनां योग्य नहीं, तब भरत मनमें बडा उदास हूआ,भरतने कहा अब मैं यह आहार, कि सकों देउं? तब शक्र (इंद्रने) कहा कि जो तेरेसें गुणोमें अधिक होवे, तिनकों यह भोजन देवो, तब भरतने मनमें विचार करा कि मेरेसें गुणा धिक तो श्रावक हैं, तब भरतने बहुत गुणवान् श्रावकोंकों वो भोजन

जिमाया, और उन श्रावकोंकों भरतजीनें कह दीया कि तुम सर्व मिल कर प्रतिदिन अर्थात् रोजकी रोज मेराही भोजन करा करो खेति बाणि ज्यादि कुछ काम मत करा करो, निःकेवल स्वाध्याय करनेमें त त्पर रहो, भोजन करकें मेरें महिलोंके दरवाजे आगें निकट बैठकें तुमने ऐसे कहना कि " जितो भवान् वर्द्धते भयं तस्मान्माहन माहने ति" तब वे श्रावक ऐसेंही करते हूये, अरु भरत राजा तो भोगविलासों में मग्न रहता था, परंतु जब तिनका शब्द सुनता था, तब मनमें विचार ता था, कि किसने मुझे जींता है? तब विचार करा कि क्रोध,मान, माया अरु लोभ, इन चार कषायोंने मुझे जींता है तिनोंसेंही भयकी वृद्धि हो ती है, ऐसा विचार करनेसें भरतकों बडा भारी वैराग्य उत्पन्न होता था, इस अवसरमें रसोइ जीमणे वाले श्रावक बहुत हो गये, जब रसोइदार र सोइ करने समर्थ न रहा, तब भरत महाराजकों निवेदन करा कि मैं नहीं जान सक्ता, जो इनमें श्रावक कौन है, और कौन नहीं है? तब भरतने कहा तुम पूछकें उनकों भोजन दिया करो, तब रसोइ करनेवाले उनकों पूछने लगे कि तुम कौन हो? वे केहने लगे, हम श्रावक हैं. फेर तिनोंकों पूछा कि श्रावकोंके कितने व्रत हैं? तब तिनोनें कहा हमारे पांच अणुव्रत हैं, अरु सात शिक्षा व्रत हैं, इस तरेंसें जब जाना कि यह श्रा वक ठीक है तब उनकों भरत महाराजके पास ल्याये, भरतने उनके श रीरमें काकणी रत्नसें तीन तीन रेखाका चिन्ह कर दीया, अरु छठे महि ने अनुयोग परीक्षा करते रहे, वे सर्व श्रावक ब्राह्मणके नामसें प्रसिद्ध हूये, क्योंकि जब भरत महाराजके दरवाजे आगें वे माहन माहन् शब्द वार वार उच्चारन करते थे, तब लोक उनकों माहन कहने लग गया, जैनमतके शास्त्रोंमें प्राकृत भाषामें अबभी ब्राह्मणोंकों माहन करकें लिखा है. अरु जो संस्कृती ब्राह्मण शब्द है, वो प्राकृत व्याकरणमें बंभ ण और माहणके स्वरूपसें सिद्ध होता है, श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें ब्रा ह्मणोंका नाम " वुड्ढसावया " अर्थात् बडे श्रावक ऐसा लिखा है यह सर्व ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति है, अरु सो ब्राह्मण अपणे बेटोंकों साधुओंकों देते हूये; जिनोने प्रव्रजा न लीनी वे श्रावक व्रतधारी हूए. यह रीति तो भरतके राज्यमें रही.

पीछें भरतका बेटा आदित्ययश हूआ, अर्थात् सूर्ययश जिसके संतान वाले भरत क्षेत्रमें सूर्यवंशी कहे जाते हैं,अरु बाहुबलीका बडा पुत्र चंद्रयश था तिसके संतानवाले चंद्रवंसी कहे जाते हैं. श्री ऋषभदेवजीके कुरु नामा पुत्रके संतान सब कुरुवंशी कहे जाते हैं. जिनमें कौरव पांडव हूये हैं.

जब भरतका बडा बेटा सूर्ययश सिंहासन पर बैठा, तब तिसके पास काकणी रत्न नहीं था, क्योंकि काकणी रत्न, चक्रवर्त्तीके शिवाय और किसी पास नहीं होता है, इस वास्ते सूर्ययश राजानें ब्राह्मण श्रावकोंके गलेमें सुवर्णमय यज्ञोपवीत करवा दीयें जनेउ इतिभाषा तथा भोजन प्रमुख सर्व भरत महाराजकी तरें देता रहा. जब सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी पर बैठा, तब तिसने रूपेके यज्ञोपवीत बनवा दीये, आगें तिनोंकी संतानोंनें पंचरंगे रेशमी पटसूत्र मय यज्ञोपवीत बनाते रहे. आगें सादे सूतके बनाये गये, यह यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति है.

भरतके आठ पाट तक तो ब्राह्मणोंकी भक्ति भरतकी तरें करते रहे पीछें प्रजाभी ब्राह्मणोंकों भोजन कराने लगे, तब सर्व लगे ब्राह्मणपूजनीक समझ गये, आठमां तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रभ स्वामीके वखत तक सर्व ब्राह्मणव्रतधारी, जैनधर्मी श्रावक रहे. अरु श्रीचंद्रप्रभ भगवानके पीछें कितनाकि काल व्यतीत भये, इस भरत खंडमें जैनमत अर्थात् चतुर्विधसंघ और सर्व शास्त्र विछेद हो गये, तब तिन ब्राह्मणाभासोंकों लोक पूछने लगे कि धर्मका स्वरूप हमकों बतलाउ, तब तिनोने जो मनमें भाना. और अपणा जिसमें लाभ देखा सो धर्म बतलाया, अनेक तरेंके ग्रंथ बनाते रहे.

जब नवमे श्रीसुविधिनाथ पुष्पदंत अरिहंत हूए, तिनोने जब फेर जैन धर्म प्रगट करा, तब कितनेंक ब्राह्मणाभासोंने न माना. स्वकपोलकल्पित मतहीका कदाग्रह रक्खा, साधुओंके द्वेषी बन गये, चारों वेदोंका नामभी बदल दीया, अरु उन वेदोंमें मतलबकी औरका और लिख दीया.

अब चारोंवेदोंकी उत्पत्ति लिखते हैं. जब भरतराजाने ब्राह्मणोकों पूजा, तब दूसरा लोकभी ब्राह्मणोकों बहुत तरेका दान देंन लग गये, तब भरत चक्रवर्त्तीने श्रीऋषभदेवजीके उपदेशानुसार तिन ब्राह्मणोके स्वाध्याय करने वास्ते श्रीआदीश्वर ऋषभदेवजीकी स्तुति और श्रावकके धर्मका स्वरूपगर्भित ऐसे चार आर्यवेद रचे, तिनके यह नाम रक्खे १

संसारदर्शन वेद, २ संस्थापनपरामर्शन वेद, ३ तत्त्वावबोध वेद, ४ विद्या प्रबोध वेद, इन चारोंमें सर्वनय, वस्तुके कथन संयुक्त तिन ब्राह्मणोंकों पढाये, तब वे ब्राह्मण, अरु पूर्वोक्त चार वेद, आठमे तीर्थंकर तक यथार्थ चले आये, परंतु जब आठमे तीर्थंकरका तीर्थ विछेद हूआ, तद् पीछें, तिन ब्राह्मणाभासोनें धनके लोजसें तिन वेदोंमें जीवहिंसा आदिकी प्ररूपणा करकें उलट पुलट कर माले, जैनधर्मका नामजी वेदोमेंसें निकाल दीया. बलकि अन्योक्ति करकें "दैत्यदस्युवेदबाह्य" इत्यादि नामोंसें साधुओंकी निंदा गर्जित १ रुग्, २ यजु, ३ साम, ४ अथर्व, ये चार नाम कल्पन कर दीये. तिन ब्राह्मणोंमेंसूं जिनोनें तीर्थंकरोंका उपदेश मान्या, उनोनें पूर्ववेदोंके मंत्र न त्यागे, सो आज तक दक्षिण करणाटक देशमें जैन ब्राह्मणोंके कंठ है. ऐसा सुना और देखाजी है, तथा उन प्राचीन वेदोंके कितनेक मंत्र मेरे पासजी हैं यत उक्तं आगमे ॥ सिरिजरह् चक्कवट्टी.आयरिय वेयाणविस्सु उप्पत्ती ॥ माहण पढणछमिणं, कहियं सुहझाण विवहारं ॥ १ ॥ जिणतिछे वुछिन्ने, मिछत्ते माहणेहिं तेठविया ॥ अस्संजयाण पूआ, अप्पाणं काहिया तेहिं ॥ २ ॥ इत्यादि यहांमें आगें तिनवेदोंकी रचना हिंसा संयुक्त याज्ञवल्क्य, सुलसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोने विशेष कर स्ल्ना रच दइ, तिसकाजी स्वरूप किंचित् मात्र यहां लिख देते है.

बृहदारण्यक उपनिषद्की नाष्यमें लिखा है, कि जो यज्ञोंका कहनेवाला सो यज्ञवल्क्य तिसका पुत्र याज्ञवल्क्य इस कहनेसेंजी यही प्रतीत होता है, जो यज्ञोंकी रीति प्रायः याज्ञवल्क्यसेंही चली है, तथा ब्राह्मण लोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, कि याज्ञवल्क्यने पूर्वली ब्रह्मविद्या वमके सूर्य पासों नवीन ब्रह्मविद्या सीखके प्रचलित करी, इस्सेंजी यही अनुमान निकलता है, जो याज्ञवल्क्यने प्राचीन वेद छोड दीये, और नवीन बनाये.

तथा श्रीत्रिशठ सलाका पुरुष चरित्र ग्रंथमें आठमे पर्वके दूसरे सर्गमें ऐसा लिखा है, कि काशपुरीमें दो संन्यासिणीया रहती थी, तिसमें एकका नाम सुलसा था. अरु डुसरीका नाम सुनदा था, यह दोनोही वेद अरु वेदांगोकी जानकारथी तिन दोनो बहिनोंने बहुवादीयोंकों वादमें जींता, इस अवसरमें याज्ञवल्क्य परिव्राजक तिनके साथ वाद करनेकों

आया, आपसमें असी प्रतिज्ञा करी कि जो हार जावे, वो जींतने वालेकी सेवा करे, तब याज्ञवल्क्यने सुलसाकों वादमें जींतके अपणी सेवा करने वाली बनाइ, सुलसाभी रात दिन याज्ञवल्क्यकी सेवा करने लगी, याज्ञवल्क्य अरु सुलसा यह दोनों यौवनवंत (तरुण) थे, इस वास्ते दोनो कामातुर हो के नोगविलास करने लग गये, सचतो है कि अग्नि और फूस मिलकें अग्नि क्यों कर प्रज्ज्वलित न होवे? निदान दोनो काम क्रीडामें मग्न होकर काशपुरीके निकट कुटीमें वास करते थे, तब याज्ञवल्क्य सुलसासें पुत्र उत्पन्न हूआ पीछें लोकोंके उपहासके नयसें उस लडकेकों पीपलके वृक्षके हेठ गेड कर दोनों नठके कहींकों चले गये, यह वृत्तांत सुनड्ा जो सुलसाकी बहिनथी उसने सुना, तब तिस बालकके पास आइ, जब बालककों देखा, तो पीपलका फल स्वयमेव मुखमें पडेकों चबोल रहा है, तब तिसका नामभी पिप्पलाद रखा, और तिसकों अपणे स्थानमें ले जाकें यत्नसें पाला. अरु वेदादि शास्त्र पढाये, तब पिप्पलाद बडा बुद्धिमान् हूआ, बहुत वादीयोंका अनिमान दूर करा. पीछें, तिस पिप्पलादके साथ सुलसा और याज्ञवल्क्य यह दोनो वाद करनेकों आए, तिस पिप्पलादनें दोनोकों वादमें जींत लीया, और सुनड्ा मासीके कहनेसें जान गया कि, यह दोनो मेरे माता पिता है. और मुझे जन्म देकें निर्दय हो कर गेड गये थे, जब बहुत क्रोधमें आया तब याज्ञवल्क्य अरु सुलसाके आगें मातृमेध पितृमेध यज्ञोंकों युक्तिसें सम्यक् रीतिसें स्थापन करकें पितृमेधमें याज्ञवल्क्यकों और मातृमेधमें सुलसाकों मारके होम करा, मीमांसक मतका यह पिप्पलाद मुख्य आचार्य हूआ, इसका बातली नामा शिष्य हूआ, तबसें जीवहिंसा संयुक्त यज्ञ प्रचलित हूए.

याज्ञवल्क्यके वेद बनानेमें कुछनी शंका नहीं. क्योंकि वेदमें लिखा है. "याज्ञवल्केति होवाच" अर्थात् याज्ञवल्क्य असे कहता हूआ, तथा वेदमें जो शाखा है, वे वेदकर्त्ता मुनियोंकेही सबबसें है, इस वास्ते जो आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जीवहिंसा संयुक्त जो वेद हैं, वे सुलसा अरु याज्ञवल्क्यादिकोंने बनाये है. सो सत्य है. क्योंकि कितनीक उपनिषदोमे पिप्पलादकानी नाम है, तथा और मुनियोंकाभी कितनेक जगेमें नाम है.

जमदग्नि कश्यप तो वेदोमें खुद नामसें लिखे हैं, तो फेर वेदोंके नवीन होनेमें क्या शंका रहती है?

तथा लंकाका राजा रावण जब दिग्विजय करनेके वास्ते देशोमें चतुरंग दल ले कर राजायोंकों अपणी आज्ञा मना रहा था, इस अवसरमें नारद मुनि, लाठी, सोटे, और, लात, घूंसयोंका पीटा हूआ पुकार करता हूआ रावणके पास आया, तब रावणने नारदकों पूछा कि तुझकों किसने पीटा है? तब नारदने कहा कि राजपुर नगरमें मरुत नामा राजा है, सो मिथ्यादृष्टि है, वो ब्राह्मणाजासोंके उपदेशसें यज्ञ करने लगा, होमके वास्ते सौनिकोंकी तरें वे ब्राह्मणाजास अरराट शब्द करते हूए, असे बिचारे पशुओंको यज्ञमें मारते हूए मैनें देखा, तब मैं आकाशसें उतरकें जहां मरुतराजा ब्राह्मणोंके साथमें बैठा था, तहां आ कर मरुत राजाकों कहा कि यह तुम क्या करने लग रहे हो? तब मरुतराजाने कहा ब्राह्मणोके उपदेशसें देवताओंकी तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञमें पशुओंकी बलिदानसें करता हूं. यह महाधर्म है, तब नारद कहता है. कि में वो मरुतराजाकों कहा कि हे राजा जो चारोंवेदोंमें यज्ञ करनां कहा है, वो यज्ञ में तुमकुं सुनाता हूं, आत्मा तो यज्ञका यष्टा अर्थात् करनेवाला है, तथा तपरूप अग्नि है, ज्ञानरूप घृत है, कर्मरूपी ईंधन है, क्रोध, मान, माया, अरु लोभादि पशु हैं, सत्य बोलनेरूप यूप अर्थात् यज्ञस्तंभ है, तथा सर्व जीवोंकी रक्षा करणी यह दक्षिणा है. तथा ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह रत्नत्रयी रूप त्रिवेदी है. यह यज्ञ वेदका कहा हूआ है. असा यज्ञ जो योगाभ्यास संयुक्त करे, तो करनेवाला मुक्त रूप हो जाता है, और जो राक्षस तुल्य होकें छागादि मारकें यज्ञ करता है, सो मरकें घोर नरकमें चिरकाल तक महादुःख भोगता है, हे राजा! तूं उत्तमवंशमें उत्पन्न हूआ है, बुद्धिमान् और धनवान् है, इस वास्ते हे राजन् तूं इस व्याधोचित पापसें निवर्त्तन हो जा, जेकर प्राणीवधसेंही जीवोंकों स्वर्ग मिलता होवे तब तो थोडेही दिनोंमें यह जीवलोक खाली हो जावेगा, यह मेरा वचन सुनकें यज्ञकी अग्निकी तरे प्रचंड हूए होये ब्राह्मण हाथमें लाठी, सोटे, ले कर सर्व मेरेकों पीटने लगे, तब जैसें कोइ पुरुष नदीके पूरसें मरकर द्वीपेमें चला आता है तैसें में दौडता हूआ

तेरे पास पहुंचा हूं. हे रावण राजा! बिचारे निरपराधि पशु मारे जाते हैं, तूं तिनकी रक्षा करणेमें तत्पर हो, जैसें मैं तेरे शरणसें बचा हूं असें तूं पशुओंकोंनी बचा तब रावण विमानसें उतरकें मरुत राजाके पास गया मरुत राजाने रावणकी बहुत पूजा, नक्ति आदर, सन्मान करा. तब रावण कोपमें हो कर, मरुत राजाकों असें कहता हूआः—अरे! तूं नरक का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा है? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूपसर्वज्ञ तीर्थंकरोने कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने पशुओंकों मारके धर्म समझा, तब तुमकों हितकारक क्योंकर होवेगा? इस वास्ते यह यज्ञ तुमकों दोनो लोकमें अहितकारक है, इसें छोड द्यो, नहीं तो इस यज्ञका फल तेरेकों इस लोकमें तो मैं देता हूं, और परलोकमें तुमारा नरकमें वास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यज्ञ करनां छोड दीया, क्योंकि रावणकी आज्ञा उस वखत असी नयंकरथी, कि कोइ उसकों उल्लंघन नहीं कर सक्ता था, इस कथानकमें यहनी मालुम हो जाता है, कि जो ब्राह्मण लोक कहते हैं कि आगें राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देते थे, सो क्या जाने रावणादि जबरदस्त जैनधर्मी राजाओं पशुवध रूप यज्ञका करणां बुडा देते थे, तबसेंही ब्राह्मणोने पुराणादि शास्त्रोंमें उन जबरदस्त जैनराजाओंकों राक्षसोंके नामसें लिखा है? तथा यहनी सुननेमें आया है, कि नारदजीनेनी मायाके वशसें जैनमत धारकें वेदोंकी निंदा करी थी तो क्या जाने? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया हो?

पीछें रावणने नारदकों पूछा कि असा पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ कहांसें चला है तब नारदजीनें कहा किः—शुक्तिमती नदीके किनारे उपर एक शुक्तिमती नगरी है सो बीशमें श्रीमुनिसुव्रत स्वामी हरिवंश तीर्थंकरकी औलादमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अनिचंदनामा राजा हूआ, तिस अनिचंद्रराजाका वसुनामा बेटा हूआ, वो वसु महाबुद्धिमान, सत्यवादी. लोकोमें प्रसिद्ध हूआ, तिस नगरीमें खीरकदंबक उपाध्याय रहता था तिसके पर्वत नाम पुत्र था, उहां एक तो राजाका बेटा वसु दूसरा पर्वत और तीसरा में (नारद) हम तीनो खीरकदंबक उपाध्यायके पास पढते थे, एकदा समय हमतो तीनो जन पाठ करनेके श्रमसें रात्रिकों सो गये थे और उपाध्याय जागता था हम छत उपर सूते

थे तब दो चारण साधु ज्ञानवान्, आकाशमें परस्पर वार्ता करते चले जाते थे, कि यह खीर कदंबक उपाध्यायके तीन छात्रोमेंसुं दो नरकमें जा येंगे अरु एक स्वर्गमें जायेगा, यह मुनियोंका कहनां सुन करकें उपाध्या यजी चिंता करने लगा कि जब मेरे पढाये हूये नरकमें जायगे, तब यह मुझको बहुत दुःख है,परंतु इन तीनोंमेंसूं नरक कौन जायगे ? और स्वर्ग कौन जायगा ? इस बातके जानने वास्ते तीनोकों एक समय बुलाया, पीछें वो गुरुने हम तीनोंकों एकेक पीठिका कुक्कड दीया और कह दीयाकि इनकों ऐसी जगेमें मारो जहां कोइनी न देखता होवे ! पीछें वसु अरु पर्वत यह दोनो तो शून्य जगाओंमें जाकर दोनो पीठके बनाये कुक्कडोंकों मार आये और में उस पीठके कुक्कडकों ले कर बहूत दूर नगरसें बाहिर चला गया, जहां कोइनी नहीं था, तहां जा कर खडा हूआ, चारों उर देखनें लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न हूआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वत्स यह कुक्कड तूं तहां मारी, जहां कोइ देखना न होवे,तो यह कुक्कड देखता है, अरु मेंनी देखता हूं, खेचर देखते हैं. लोकपाल देखते हैं, ज्ञानी देखते हैं, ऐसा तो जगत्में कोइनी स्थान नहीं जहां कोइनी न देखता होवे, इस वास्ते गुरुके कहनेका यही तात्पर्य है, कि इस कुक्कडका वध न करनां क्योंकि गुरुपूज्य तो सदा दयावंत और हिंसासें पराङ्मुख है, निःकेवल हमारी परीक्षा लेने वास्ते यह आदेश दीया है, तब मैनें ऐसा विचार करकें विनाही मारे कुकडेकों लेकें गुरुके पास चला आया, और कुक्कडेके न मारनेका सबब सर्व गुरुकों कह दीया, तब गुरुने मनमें निश्चय कर लीया कि यह नारद ऐसे विवेकवाला है, सो स्वर्ग जायगा तब गुरुजीने मुझकों छातीसें लगाबा, और बहुत साधुकार कहा, तथा वसु और पर्वतनी मेरेसें पीछे गुरुके पास आये, और गुरुकों कहते हूये कि हम कुक्कडाकों ऐसी जगे मारकें आये हैं,कि जहां कोइनी देखता नहीं था तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर देखते थे. तब हे पापिष्टो ! तुमने कुक्कड क्यों मारे ? ऐसे कह कर गुरुने शोचा कि पर्वत, और वसुके पढानेकी मेहनत मैनें व्यर्थही करी, में क्या करुं ? पानी, जैसे पात्रमें जाता है, वैसाही बन जाता है. विद्याकानी यही स्वनाव है. जब प्राणोसें प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रसें प्यारा वसु

यह दोनो नरकमें जायगे तो मुझे फेर घरमें रह कर क्या करणा है? ऐसे निर्वेदसें क्षीरकदंबक उपाध्यायने दीक्षा ग्रहण करी, साधु हो गया. तिसके पद उपर पर्वत बैठा क्योंकि व्याख्या करणेमें पर्वत बडा विचक्षण था और मैं (नारद) गुरुके प्रसादसें सर्वशास्त्रोंमें पंडित हो कर अपणे ···स्थानमें चला आया, तथा अभिचंद्रराजाने तो संयम लीया, और वसु राजा राज्यसिंहासन ऊपर बैठा, वसुराजा जगत्में सत्यवादी प्रसिद्ध हो गया अर्थात् वसुराजा झूठ नहीं बोलता है, ऐसा प्रसिद्ध हो गया, वसु राजानेभी अपणी प्रसिद्धिकों कायम रखनेके वास्ते सत्य बोलनांही अंगी कार कीया, वसुराजाकों एक स्फटिकका सिंहासन गुप्त पणे ऐसा मिला किः— सूर्यके चांदणेमें जब वसुराजा उसके ऊपर बैठताथा, तब सिंहासन लोकोंकों बिलकुल नहीं दीख पडताथा, इसी तरें वसुराजा आकाशमें अधर बैठा दीख पडताथा, तब लोकोंमें यह प्रसिद्धी होगइ. कि सत्यके प्रभावसें वसुराजाका सिंहासन देवता आकाशमें थांभे रखते हैं, तब सब राजा भ रकें वसुराजाकी आज्ञा मानने लग गये. क्योंकि चाहो सच्ची हो चाहो झूठी हो तोभी प्रसिद्धि जो है सो पुरुषके जयकारी होती है.

तब एकदा प्रस्तावमें (नारद) वो सूक्तिमतीनगरीमें गया, वहां जा कर पर्वतकों देखा तो वो अपणे शिष्योंकों ऋग्वेद पढा रहा है, और उ सकी व्याख्या करता है, तब ऋग्वेदमें एक ऐसी श्रुति आई "अजैर्यष्टव्य मिति" तब पर्वतने इस श्रुतिकी ऐसी व्याख्या करी जो अजानाम छागका (बकरीका) है तिनोंसें यज्ञ करनां तिनकों मारके तिनके मांसका होम क रनां, तब मैंने पर्वतकों कहा हे भ्राता? यह व्याख्या तूं क्या भ्रांतिसें क रता है? क्योंकि गुरु श्रीक्षीरकदंबकने इस श्रुतिकी ऐसें व्याख्या नहीं करी है, गुरुजीने तो तीन वर्षका धान्य पुराणें जौंका ऐसा अर्थ यह श्रुतिका करा है, "न जायंतइत्यजा" जो बोनेसें न उत्पन्न होवे, सो अजा, ऐसा अर्थ श्रीगुरुजीने तुमकों और हमकों शिखलाया था वो अर्थ, तुमने किस हेतुसें भूला दीया? तब पर्वतने कहा कि तुमने जो अर्थ करा है, यह अर्थ गुरुजीने नहीं कहा था, किंतु जो अर्थ मैने करा है, यही अर्थ गु रुनें कहा था क्योंकि निघंटमेंभी अजा नाम बकरीका ही लिखा है, तब मैंने (नारदने) पर्वतकों कहा कि शब्दोंका अर्थ दो तरेंके होते हैं, एक

मुख्यार्थ दूसरा गौणार्थ तो यहां श्रीगुरुनें गौणार्थ करा था गुरु धर्मोप देष्ठाका वचन और यथार्थ श्रुतिका अर्थ, दोनोंकों अन्यथा करकें हे मित्र तूं महापाप उपार्जन मत कर तब फेर पर्वतने कहा कि अजा शब्दका अर्थ श्रीगुरुजीने मेषेका करा है, निघंटमेंजी ऐसेही अर्थ है, इनको उल्लं घन करकें तूं अधर्म उपार्जन करता है ? इस वास्ते वसुराजा आपणा स हाध्यायी है, तिसकों मध्यस्थ करकें इस अर्थका निर्णय करो, जो जूठा होवे तिसकी जीव्हाछेद करणी, ऐसी प्रतिज्ञा कही, तब मैंनेजी पर्वतका कहना मान लीया क्योंकि सांचकों क्या आंच है ? तब पर्वतकी माताने पर्वतकों ठाना कहा कि हे पुत्र ! तूं ऐसा जूठा कदाग्रह मत कर. क्योंकि मैंनेजी इस श्रुतिका अर्थ तीन वर्षका धान्यही सुना है, इस वास्ते तूंने जो जीव्हाछेदकी प्रतिज्ञा करी है, सो अछी नहीं करी, क्योंकि जो विना विचारें काम करता है, वो अवश्य आपदामें पडता है, तब पर्वत कहने लगा कि हे माताजी ! जो में प्रतिज्ञा करी है, वो अबमें किसीतरेंसेंजी दूर नहीं कर सका हूं, तब माता अपने पर्वत पुत्रके दुःखकी पीडी हूइ दुःखिनी हो कर वसुराजाके पास पहुंची क्योंकि पुत्रके जीवतव्य वास्ते कौन ऐसो है, जो उपाय न करे ? जब वसुराजाने अपनी गुरुकी पत्नीकों आता देखा तब सिंहासनसें उठकें खडा हूआ, और कहने लगाकि मैंनें आज क्षीरकदंबकका दर्शन करा जो माता तुजकों देखा, अब हे माता ! कहो (आज्ञा करो) मैं क्या करुं ? और क्या देऊं ? तब ब्राह्मणी कहणे लगी कि तूं मुजे पुत्रकी भिक्षा दे क्योंकि विना पुत्रके मैंनें हे पुत्र ! धन धान्य क्या करणां है ? तब वसुराजा कहने लगा हे माता ! मेरेकोंतो प र्वत पूजने और पालने योग्य है, क्योंकि गुरुकी तरें गुरुके पुत्रके सा थजी वर्त्तना चाहियें, यह श्रुतिका वाक्य है, तो फेर आज किसकों का लने क्रोधमें आकर पत्र भेजा है, जो मेरे भाइ पर्वतकों मारा चाहाता है ? इस वास्ते हे माता ? तूं मुजे सर्व वृत्तांत कह दे, तब ब्राह्मणीने अ पणे पुत्रका अज व्याख्यान और जिव्हाछेदनेकी प्रतिज्ञा कह सुनाइ, और कहाकि जो तैने अपने भाइकी रक्षा करनी है, तो अजा शब्दका अर्थ मेष अर्थात् बकरी बकरा करानां क्योंकि महात्मा जन परोपकारके वास्ते अपने प्राणजी दे देते हैं, तो वचनसें परोपकार करनेंमें तो क्या क

हना है? तब वसु राजाने कहा कि हे माताजीमें मिथ्यावचन क्यों कर बोलुं? क्योंकि सत्यबोलनेवाले पुरुष जेकर अपणे प्राणभी जाते देखें तोभी असत्य नहीं बोलते हैं, तो फेर गुरुका वचन अन्यथा करणा और झूठी साक्षी देणी, इसका तो क्याही कहना है? तब ब्राह्मणीने कहा यांतो गुरुके पुत्रकी जान बचेंगी, यां तेरा सत्यव्रतका आग्रहही रहेगा, और मेंभी तुझे अपणे प्राणकी हत्या देऊंगी तब वसुराजाने लाचार हो कर ब्राह्मणीका वचन माना, पीछे क्षीरकदंबककी भार्या प्रमुदित हो कर अपने घरकों गइ, इतनेहीमें मैं (नारद) और पर्वत दोनो जने वसुराजाकी सभामें गये, तब तहां बडे बडे विद्वान् एकठे सभामें मिले. और स्फटिककें सिंहासन ऊपर बैठके वसुराजा सभाके बिचमें सभापति बन कर बैठा, तब पर्वतने और मैंने अपणी अपणी व्याख्याका पक्ष वसुराजाकों सुनाया, और ऐसाभी कहाकि हे राजन् तूं! सत्य कह दे कि गुरुने इन दो अर्थोमेंसें कौनसा अर्थ कहा था? तब वृद्ध ब्राह्मणोनें कहा हे राजा तूं सत्य सत्य जो होवे सो कह दे क्योंकि सत्यमेंही मेघ वर्षता है, और सत्यसेंही देवता सिद्ध होते हैं, सत्यके प्रभावसेंही यह लोक खडा है. और तूं पृथ्वीमें सत्य वादी सूर्यकी तरें प्रकाशक है, इस वास्ते सत्यही कहना तुमको उचित है, और हम इस्में अधिक क्या कहें? यह वचन सुनकरभी वसुराजाने अपने सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञाकों जलांजली दे कर "अजान्मेषान्गुरुर्व्याख्यदिति" अर्थात् अजाका अर्थ गुरुने मेष (बकरे) कहे थे, असी साखी वसुराजाने कही, तब इस असत्यके प्रभावसें व्यंतर देवताने वसुराजाके सिंहासनकों तोडके वसुराजाकों पृथ्वीके ऊपर पटककें मारा, तब तो वसु राजा मरके सातमें नरकमें गया, पीछें वसुराजाके राज सिंहासन ऊपर वसु राजाके आठपुत्र १ पृथुवसु, २ चित्रवसु, ३ वासव, ४ शक्र, ५ विभावसू, ६ विश्वावसू, ७ सूर, ८ महासूर, ये आठो अनुक्रमसें गद्दी ऊपर बैठे. वो आठोंहीकों व्यंतर देवताओंनें मार दीये, तब सुवसुनामा नवमा पुत्र तहांसें भाग कर नागपुरमें चला गया और दसमा बृहद्ध्वज नामा पुत्र भाग कर मथुरांमें चला गया, और मथुरामें राज करणे लगा. इस बृहद्ध्वजकी संतानोंमें यदुनामा राजा बहुत प्रसिद्ध हूआ, इस वास्ते हरिवंशका नाम छूट गया और यदुवंशी प्रसिद्ध हो गये.

यदु राजाके सूर नामक पुत्र हूआ, तिस सूर राजाके दो पुत्र हूवे, एक बडा शौरी और दूसरा छोटा सुवीर हूआ, शौरि राजा पिताके पीछें बना, शौरिने मथुरांका राज्यतो अपने छोटे जाइ सुवीरकों दे दीया, और आप कुशावर्त्त देशमें जा कर अपणे नामका शौरिपुर नगर वसा कें राज धानी बनाइ, शौरिका बेटा अंधकविष्ण, आदि पुत्र हूआ, और अंधकवि ष्णके दश बेटे हूयें १ समुद्रविजय, २ अक्षोन्य, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान्, ६ अचल, ७ धरण, ८ पूर्ण, ९ अनिचंद्र, १० वसुदेव, तिनमें समुद्रविजयका बडा बेटा अरिष्टनेमि जो जैनमतका बावीशमा ती र्थंकर हूआ, और वसुदेवके बेटे प्रतापी कृष्णवासुदेव,अरु बलनद्रजी हूये, तथा सुवीरका बेटा जोजवृष्णि और जोजवृष्णिका उग्रसेन और उग्रसेन का कंस बेटा हूआ,और वसुराजाका दूसरा बेटा सुवसु जो नागके नागपुर गया था, तिसका बृहद्रथ नामा पुत्र हूआ तिसने राजगृहमें आ कर राज करा, तिसका बेटा जरासिंधु हूआ, यह मैनें यहां प्रसंगसें लिख दीयाहै.

तब उहांतो नगरके लोक और पंमितोनें पर्वतका बहुत उपहास करा, सबने पर्वतकों कहा कि तूं जूठा है, क्योंकि तेरे साखी वसुकों जूठा जान कर देवताने मार दीया,इस वास्ते तेरेसें अधिक पापी कौन है ? असें कह कर लोकोनें मिलकें पर्वतकों नगरसें बाहेर निकाल दीया, तब महाकाल, असुर, उस पर्वतका साहायक हूआ.

यहां रावणने नारदकों पूछाकि वो महाकाल असुर कौन था ? नार दने कहा यहां चरणा युगल नामा नगर है, तिसमें अयोधन नामा राजा था, तिसकी दिति नामा नार्याथी, तिन दोनोंकी सुलसा नामक बहुत रू पवान् बेटी थी. तिस सुलसांका स्वयंवर उसके पिताने करा उहां और सर्व राजे बुलवाये, तिन सर्व राजाओंमेंसूं सगर राजा अधिक था तिस सगरराजाकी मंदोदरी नामा रणवासकी दरवाजेदार सगरकी आज्ञासें प्रति दिन अयोधनराजाके आवासमें जाती हूइ, एकदिन दिति घरके बागके क दलीघरमें गइ, और सुलसांके साथ मंदोदरीजी तहां आ गइ,तब मंदोदरी, सुलसा और दिति इन दोनोकी वातां सुननेके वास्ते तहां छिप गइ, तब दिति. सुलसांकों कहने लगी, हे बेटी ! मेरे मनमें इस तेरे स्वयंवरमें बडा शल्य है, तिसका उद्धार करनां तेरे अधीन है,इस वास्ते तूं सुनले मूलसें

श्रीऋषनदेव स्वामीके नरत अरु बाहुबली यह दो पुत्र हूये, फेर तिनके दो पुत्र हूये तिनमें नरतका सूर्ययश और बाहुबलीका चंइयश जिनोंसें सूर्य वंश और चंइवंश चले हैं. चंइवंशमें मेरा नाइ तृणबिंडुनामा हूआ, तथा सूर्यवंशमें तेरा पिता राजा आयोधन हूआ, और आयोधन राजाकी बहिन सत्ययशा नामा तृणबिंडुकी नार्या हूइ, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा नत्रीजा है, तो हे सुंदरी ! मैं तेरेकों तिस मधुपिंगलकों दीया चाहती हूं, और तूंतो क्या जाने स्वयंवरमें किसकों देइ जावेगी ? मेरे मनमें यह शल्य है इस वास्ते तूंने स्वयंवरमें सर्वराजाओंकों बोडकें मेरे नत्रीजे मधुपिंगलकों वरनां. तब सुलसाने माताका कहनां स्वीकार कर लीया, और मंदोदरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाकों कह दीया, तब सगर राजाने अपने विश्वनूतिनामा पुरोहितकों आदेश दीया, वो विश्वनूति बडा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्षणोंकी संहिता बनायी तिस संहितामें असें लिखा कि सगर तो शुनलक्षण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे. तिस पुस्तककों संदूकमें बंद करकें रख बोडा जब सब राजा आ कर स्वयंवरमें एकठे बैठे, तब सगरकी आज्ञासें विश्वनूतिने वो पुस्तक काढा अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसकों यातो मार देनां, अथवा स्वयंवरसें बाहिर निकाल देनां, यह कहनां सबोनें मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेकों अपलक्षण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरमें आपही निकल गया, तब सुलसानें सगरकों वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपणे अपणे स्थानोंकों चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसें बाल तप करकें साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव हूआ, तब अवधिज्ञानसें सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें जूठा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हूआ था. सो देखा जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंकों मैं मारुं ? तब तिनके बिइ देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पास पर्वतकों देखा, तब ब्राह्मणका रूप करकें पर्वतकों कहनें लगा कि हे पर्वत ! मैं तेरे पिताका मित्र हूं, मेरा नाम शांमिल्य है, मैं और तेरा पिता हम दोनो साथ होकर गौतम उपाध्यायके पास पढे थे, मैंने सुना था कि नारदनें और दूसरे लोकोंने तुझे

बहुत दुःखी करा, अब मैं तेरा पक्ष पुरुंगा, और मंत्रों कर कें लोकोंकों विमोहित करुंगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलकें लोकोंकों नरकमें गलने वास्ते तिस असुरने बहुत व्यामोह करा, व्याधि भूतादि दोष लोकोंकों कर दीये, पीछें जहां जो लोक पर्वतका बचन मान लेता था, तिसकों अछा कर देताथा, शांडिल्यकी आज्ञासें पर्वतभी लोकोंकों अछा करने लगा, उपकार करकें लोकोंकों अपने मतमें मिलाता जाता था, तब तिस असुरने सगर राजाकों तथा तिसकी राणीयोंकों बहुत भारी रोगादिकका उपद्रव करा, तब तो राजाभी पर्वतका सेवक बना, अरु पर्वतने शांडिल्यके साथ मिलकें तिसका रोग शांति करा, तब पर्वतने राजाकों उपदेश करा कि हे राजा! सौत्रामणि नामा यज्ञ करकें, मद्यपान अर्थात् सराब पीनेंमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमें अगम्य स्त्री (चांमाली) आदि तथा माता बहिन, बेटी आदिसें विषय सेवन करनां चाहियें, मातृमेधमें माताका और पितृमेधमें पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमें करें, तो दोष नहीं, तथा कछुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करकें तर्पण करे, कदाचित् कछु न मिले तो शुद्ध ब्राह्मणके मस्तककी टटरी ऊपर अग्नि स्थापन करकें होम करें, क्योंकि टटरीभी कछुकि तरें होती है. इस बातमें हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोंमें लिखा है. श्लोक ॥ सर्वंपुरुषेवचेदं, यद्भूतंयच्चविश्यति ॥ इशानोर्यमृतत्वस्य, यदन्नेनातिरोहति ॥१॥ इसका भावार्थ यह है, कि जो कुछ है, सो सब ब्रह्मरूपही है. जब एकही ब्रह्म हूआ, तब कौन किसिकों मारता है? इस वास्ते यथारुचिमें यज्ञोमें जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस भक्षण करो, इसमें कुछ दोष नहीं. क्योंकि देवोद्देश करनेंसें मांस पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाकों अपने मतमें स्थापन करकें अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमें वो पर्वत यज्ञ कराता हूआ तब कालासुरने अवसर पा करकें राजसूयादिक यज्ञभी कराता हूआ, और जो जीव यज्ञमें मारे जाते थे, तिनकों विमानोंमें बैठाके देवमायासें दिखाता हूआ, तब लोकोंकों प्रतीत आ गइ पीछें वो निःशंक होकर जीवहिंसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजाभी यज्ञ करनेंमें बडा तत्पर हूआ, सुलसा और सगर दोनों मरके नरकमें गये, तब माहाकालासुरनें सगर राजाकों नरकमें मार पीटादि महादुःख देकें अपणा वैर लीया, इस वास्ते

हे रावण! पर्वत पापीसें यह जीवहिंसारूप यज्ञ विशेष करकें प्रवर्त्त हूये हैं. हे राजा रावण! सो यह यज्ञ तैनें निषेध करा. यह कथा सुनके राजा रावणने प्रणाम करकें नारदकों विदा करा, इस तरेंसें जैन मतके शास्त्रोंमें वेदोंकी उत्पत्ति लिखी है सो आवश्यकसूत्र, आचारदिनकर, त्रेशठश लाका पुरुष चरित्रमें सर्व लिखा है, तांहांसें देख लेनां.

और इस वर्त्तमान कालमें जो चारों वेद है इनकी उत्पत्ति म्याक्स मो क्षमूलर साहिब अपने बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथमें तो ऐसा लिखते हैं, कि वेदोमें दो भाग है, एक छंदोभाग, दूसरा मंत्र भाग है, तिनमें छं दोभागमें इस प्रकारका कथन है, जैसें अज्ञानीके मुखसें अकस्मात् वचन निकला हो, तैसें इसकी उत्पत्ति एकत्तीससौ वर्षसें हूइ है, और मंत्रभागकों बने हूये उनतीससो वर्ष हूये हें, इस लिखनेसें क्या आश्चर्य है? जो कि सीने उलट पुलटके फेर नवीन वेद बना दीयें हों. इन वेदों ऊपर उवट, सायण, रावण, महीधर, अरु शंकराचार्यादिकोंनें भाष्य बनाये हैं, टीका, दीपिका, रची हैं. फेर अब उन प्राचीन भाष्य दीपिकाकों अयथार्थ जा नकें दयानंदसरस्वती स्वामि अपणें मतके अनुसार नवीन भाष्य बना रहे है, परंतु पंडित ब्राह्मण लोक, दयानंद सरस्वतीके भाष्यकों प्रामा णिक नही मानते हें अब देखा चाहियें क्या होता है? और जैनमत वालोंनेंतो जबसें उनके शास्त्रोंके लिखने मुजब आर्य वेद, बिगाडे गये उसीदिनसें वेदोकों मानने छोड दीये हैं॥ इतिवेदोत्पत्तिः॥

जब श्रीऋषभदेवजीका कैलास पर्वतके ऊपर निर्वाण हूआ, तब सर्व देवता निर्वाण महिमा करनेकों आये, तिन सर्व देवताओंमेंसूं अग्निकुमार देवतानें श्रीऋषभदेवकी चितामें अग्नि लगाइ, तवसेंही यहश्रुति लोकमें प्र सिद्ध हूइ है "अग्निमुखावैदेवा" अर्थात् अग्निकुमार देवता सर्वदेवताओंमें मुख्य है, और अल्पबुद्धियोंनेंतो यह श्रुतिका अर्थ ऐसा बनालीया है कि अग्निजो है, सो तेतीसक्रोड देवताओंका मुख है. यह प्रभुके निर्वाणका स्वरूप सर्व आवश्यक सूत्रमें जान लेनां.

जब देवताओंनें श्रीऋषभदेवकी दाढा वगैरे लीनी, तब श्रावक ब्राह्मण मिलकर देवतायोंकों अतिभक्तिसें याचना करते हूये, तब वे देवता तिनकों बहुत जान करकें बडे यत्नसें याचनेके पीछे हूये देख कर कहते हूये कि

अहो याचका! अहो याचका तबहीसें ब्राह्मणोंकों याचक कहने लगे, तब ब्राह्मणोने श्रीऋषजदेवकी चितामेंसें अग्नि ले कर अपने अपनें घरोमें स्थापन करते हूये, तिस कारणसें ब्राह्मणकों आहिताग्नय कहने लगे.

श्री ऋषजदेवकी चिता जले पीछें दाढादिक सर्व तो देवता ले गये, शेष नस्म अर्थात् राखा रहगयी सो ब्राह्मणोने थोडी थोडी सर्व लोकोंकों दीनी, तिस राखकों लोकोने अपणे मस्तक ऊपर त्रिपुंम्राकारसें लगायी, तबसें त्रिपुंम्रलगानां, शुरु हूआ. इत्यादि बहुत व्यवहार तबसेंही चला है.

जब नरतने कैलास पर्वतके उपर सिंहनिषद्या नामा मंदिर बनाया, उसमें आगें होनेंवाले त्रेवीश तीर्थकरोंके और श्री ऋषजदेवजीकी मिलकर चोवीश प्रतिमाकी स्थापना करी. और दंमरत्नसें पर्वतकों ऐसें छीला कि जिस उपर कोइ पुरुष पगोंसें न चढ सके उसमें आठ पद (पगथीए) रखे इसी वास्ते इन कैलास पर्वतका दूसरा नाम अष्टापद कहते हैं, तब मेंही कैलास महादेवका पर्वत कहलाया. महादेव अर्थात् बडेदेव सो ऋषजदेव तिसका स्थान कैलास पर्वत जाननां.

नरत अरु बाहुबलि यह दोनो दीक्षा लेकें मोक्ष गये,तब नरतके पीछें सूर्ययश गद्दी ऊपर बेठा, तिसकी औलाद सूर्यवंशी कहलाये, तिसके पीछें सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी उपर बेठा, ऐसेंही अतिबल, महाबल, तेजवीर्य, कीर्त्तिवीर्य अरु दंमवीर्य, ये आठ अनुक्रमसें अपने अपने बापकी गद्दी उपर बेठे, अपने अपने राजका प्रबंध करते रहे, परंतु नरतके राजसें इनोंने आधा (तीन खंमका) राज्य करा, और अंतें नरतकी तरें राज्य छोड कर मोक्षमें गये, इनके पीछें गद्दी ऊपर असंख पाट हूये, तिनकी व्यवस्था चितांतरगंमिकासें जान लेनी यावत् जितशत्रूराजा हूये ॥ इति संक्षेपतः श्रीऋषजाधिकारः संपूर्णः ॥

अब अजितनाथ स्वामीके वखतका स्वरूप लिखते हैं. अयोध्या नगरीमें श्रीनरतके पीछें जब असंख्य राजा हो चुके, तब इक्ष्वाकुवंशमें जितशत्रु राजा हूआ, विनीता नगरीकाही दूसरा नाम अयोध्या है, परंतु अब जो अयोध्या है सो वो अयोध्या नहीं वो तो कैलास पर्वतके पास थी, और यह तो नवीन अयोध्या उसके नामसें वसी है, जितशत्रु राजाका छोटा नाइ सुमित्र युवराज था, जितशत्रुकी विजया देवी राणी थी,

तिसके चौदह स्वप्न पूर्वक अजितनाथ नामा पुत्र हूआ, और सुमित्रकी राणी यशोमतीकोंभी चौदह स्वप्न देखने पूर्वक सगरनामा पुत्र हूआ जब दोनों यौवनवंत हूए तब जितशत्रु और सुमित्रतो दीक्षा लेकें मोक्ष रूप हो गये. तब श्रीअजितनाथ राजा हूये अरु सगर युवराजा हूये कितनेक काल राज करकें श्री अजितनाथजीने तो स्वयमेव दीक्षा ले कर तप करा, और केवलज्ञान पा कर दूसरा तीर्थंकर हूआ पीछें सगर राजा हूआ, सो सगर दूसरा चक्रवर्ति हूआ है. यह सगर राजाने भरतकी तरें षट् खंडका राज्य करा, यह सगर राजाके जन्हु कुमार प्रमुख शाठ हजार बेटे हूये, तिनोंनें दंड रत्नमें गंगा नदीकों अपने असली प्रवाहमें फेरके और कैलासके गिरदनवाह खाइ खोदके उस खाइमें गंगाकों लाकें गेरा. क्योंकि उनोंनें विचार करा था कि हमारे वडे भरतने जो इस पर्वत ऊपर सुवर्णरत्नमय श्रीऋषभादि तीर्थंकरोंका मंदिर बनाया हैं, तिसकी रक्षा वास्ते इस पर्वतके चारों उर खाइ खोद कर उसमें गंगा फेर देउं. जिससें तीर्थकी विशेष रक्षा हो जावेगी. तिन शाठ हजारकों नाग देवतानें मार दीया. क्योंकि खाइ खोदने और जल भरनेमें उनको तकलीफ पहुची थी. तब गंगाके जलनें देशमे बडा उपद्रव करा, तब सगरराजाका पोता जन्हुका बेटा भगीरथने सगरकी आज्ञामें दंड रत्नसें भूमि खोदके गंगाकों समुद्रमें मिलाया. इसी वास्ते गंगाका नाम जान्हवी और भागीरथी कहा जाता है, सगरराजाने श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर श्रीभरतके बनाये ऋषभदेवजीके मंदिरका उद्धार करा, तथा और जैनतीर्थोंकाभी उद्धार करा,तथा यह समुद्रभी भरतक्षेत्रमें सगरही देवताके सहाय्यमें लाया, लंकाके टापूमें वैताढ्य पर्वतसें सगरकी आज्ञामें घनवाहन पहिला राजा हूआ, और लंकाके टापूका नाम राक्षस द्वीप है. तिसका यह हेतु हैकि घनवाहन राजाके वंसके राक्षस कहलाये, इसी वंसमें राजा रावण और बिभीषणादि हूये हैं. इत्यादि सगरचक्रवर्तीके समयका हाल त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रमें जान लेनां, क्योंकि तिस चरित्रके तेत्तीस हजार काव्य हैं. इस वास्ते मैं सारा हाल उसका इस ग्रंथमें नहीं लिख सक्ता हूं, परंतु संक्षेप मात्र वृत्तांत लिखुंगा. सगरचक्रवर्त्ति राज्य करकें पीछें श्री अजितनाथजीके पास दीक्षा ले कर, संयम तप करकें केवलज्ञान पा

कर मोक्ष पहूंचे, और अजितनाथ स्वामीजी समेतशिखर पर्वतके ऊपर शरीर छोडकें मोक्ष गये, श्रीरूषभदेव स्वामीके निर्वाणसें पंचाश लाख कोडी सागरोपमके व्यतीत हूयां श्रीअजितनाथ तीर्थंकरका निर्वाण हूआ तिनोंके पीछें तीस लाख कोडी सागरोपम व्यतीत हूये, श्रीसंभवनाथजी तीसरे तीर्थंकर हूये, राज्य सर्व सूर्यवंशी, चंद्रवंशी, और कुरुवंशी, आदिक राजाओंके घरानेमें रहा ॥ इति श्रीअजितनाथ और सगरचक्रवर्तीका अधिकार संपूर्ण ॥

अब श्रावस्ती नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी जितारिराजा राज्य करता था, तिसकी सेना नामें पटराणी थी, तिनोंका संभव नामा पुत्र तीसरा तीर्थंकर हूआ. यह चोवीसही तीर्थंकरोंका वर्णन प्रथम परिछेदमें यंत्र और वार्तामें लिख आये हैं. इस वास्ते यहां संक्षेपसें लिखेंगे. और तीर्थंकरोंके आपसमें जो अंतरकाल हैं सोभी यंत्रोंमें देख लेनां. इति तृतीय तीर्थंकरवृत्तांत

इनके पीछें अयोध्यानगरीमें इक्ष्वाकुवंशी संवरराजाकी सिद्धार्था नामक राणी तिनोंका पुत्र अभिनंदन नामक चोथा तीर्थंकर हूआ पीछें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी मेघराजाकी सुमंगला राणी तिनोकापुत्र सुमतिनाथ नामक पांचमां तीर्थंकर हूआ., पीछें कोसंबी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी श्रीधरराजाकी सुसीमा राणी तिनोंका पुत्र पद्मप्रभनामक छठा तीर्थंकर हूआ, पीछे वाणारसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंसी प्रतिष्ठराजाकी पृथ्वी नामाराणी तिनोंका पुत्र श्रीसुपार्श्वनाथ नामा सातमा तीर्थंकर हूआ, पीछे चंद्रपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी महासेन राजाकी लक्ष्मणा नामें राणी तिनोंका पुत्र श्री चंद्रप्रभ नामा आठमां तीर्थंकर हूआ, पीछें काकंदी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सुग्रीवराजाकी रामा नामक राणी तिनोंका पुत्र श्रीसुविधिनाथ अपरनाम, पुष्पदंत नामक नवमा तीर्थंकर हूआ.

यहां तक तो सर्व ब्राह्मण जैनधर्मी श्रावक और आर्य चारों वेदोंके पढने वाले बने रहे, जब नवमें तीर्थंकरका तीर्थ व्यवछेद हो गया, तबसें ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैनधर्मके द्वेषी और सर्व जगत्के पूज्य कन्या, भूमि, गोदानादिकके लेने वाले, सर्व जगत्में उत्तम और सर्वके हर्त्ता कर्त्ता मतोंके मालक बन गये क्योंकि शूना घर देखकें कुत्ताभि आटा खा जाता है, और जो जगत्में पाखंड तथा बुरे बुरे देवतादिकोंकी पूजा

है, तथा औरनी जो जो कुमार्ग प्रचलित हूवा है, वे सर्व इनोंहीने चलाये हैं, मानो आदीश्वर नगवानकी रची हूइ सृष्टिरूप अमृतमें जहर मालने वाले हूये, क्योंकि आगे तो जैनमतके और कपिलके मतके विना और को इनी मत नहीं था कपिलके मतवालेनी श्रीआदीश्वर अर्थात् रुषनदेवकोही देव मानते थे, निदान यह इस हुंमा अवसर्पिणिमें आश्चर्य गिना जाता है.

तीस पीछें नद्दिलपुरनगरमे इक्ष्वाकुवंशी दृढरथराजाकी नंदा नामा राणी तिनोंका पुत्र श्री शीतलनाथनामा दशमा तीर्थंकर हूआ, इनही तीर्थंकरके शासनमें हरिवंश उत्पन्न हूआ है, तिसकी कथा लिखते हैं.

कौशांबिनगरीमें बीरा नामा कोली रहताथा, तिसकी वनमाला नामा स्त्री अत्यंत रुपवंती थी सो नगरके राजाने छीनकें अपणी राणी बना लेइ, बीरा कोली स्त्रीके विरहमें बावला हो गया हा वनमाला हा वनमाला ऐसें कहता हूआ नगरमें फिरने लगा एकदा वर्षाकालमें राजा वनमालाके साथ महिलके जरोखेमें बेठा था, तब राजा राणीनें बीरेकों तिस हालमें देखकें बडा पश्चात्ताप करा, अरु विचार करने लगे कि हमने यह बहुत बुरा काम करा, इसी वखत बीजली गिरनेंमें राजा राणी दोनो मरके हरिवासक्षेत्रमें युगल स्त्री पुरुष हो गये. तब बीरा कोली राजा राणीका मरण सुनकें राजी हो गया पीछें तापस बैनकें तप करा, अज्ञान तपके प्रनावसें किल्बिष देवता हूआ तब अवधिज्ञानसें राजा राणिकों युगलीये हूये देख कर विचार करा कि यह नद्रक परिणामी और अल्पारंनी है. इस वास्ते मरके देवता होवेंगे, तो फेर में अपना वैर किसमें लेऊंगा? इस वास्ते ऐसा करुं कि:- जिससें ये दोनों मरकें नरकमें जावे, ऐसा विचार के तिन दोनोंकों तहांसें उठा करकें नरत क्षेत्रमें चंपा नगरीके इक्ष्वाकुवंशी चंद्रकीर्त्ति राजा अपुत्रिया मरा था, लोक सब चिंतामें बैठे थे कि कौन यहांका राजा होवेगा? पीछें तिस देवतानें ये दोनो उनकों सोंपे. और कहाकि यह तुमारा हरिनामा राजा हूआ. इसकी यह हरणी नामा राणी है, इनके खाने वास्ते तुमने फलमिश्रित मांस देनां और इनसें शिकारनी करानां तब लोकोंनें तैसेही करा वे दोनों पापके प्रनावसें मरके नरकमें गये, और उनकी औलाद सब हरिवंशकी कहलायें इसी वंशमें वसुराजा हूआ इति हरिवंशोत्पत्ति ॥ इनश्री शीतलनाथजीकानी शासन विछेद गया, इसी

तरें पंदरहवें तीर्थंकर तक सात तीर्थंकरोंका शासन विछेद होता रहा, और मिथ्याधर्म बढ गये.

तिस पीछें सिंहपुरी नगरीमें इक्ष्वाकु वंशी विष्णुराजा हूआ तिसकी विष्णु श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीश्रेयांसनाथ नामा इग्यारमां तीर्थंकर हूआ, तिनके समयमें वैताढयपर्वतसें श्रीकंठ नामा विद्याधरके पुत्रने पद्मोत्तर विद्याधरकी बेटीकों हरकें अपने बहनोइ राक्षसवंशी लंकाका राजा कीर्त्ति धवलकी शरण गया, तब कीर्त्तिधवलने तीनसौ योजन परिमाण बानर द्वीप उनके रहनेकों दीया, तिनोंके संतानोंमेंसें चित्र विचित्र विद्याधरोने विद्यासें बंदरका रूप बनाया, तब बानर द्वीपके रहनेसें और बानरका रूप बनानेसें बानरवंशी प्रसिद्ध हूये, तिनोंहींकी औलादमें बाली और सुग्रीवादिक हूये हैं.

तथा श्रेयांसनाथके समयमें पहिला त्रिपृष्ट नामा वासुदेव हरिवंशमें हूआ, तिसकी उत्पत्ति ऐसें हैः– पोतनपुर नगरमें हरिवंशी जितशत्रु नामा राजा हूआ, तिसकी धारणी नामा राणी थी, तिसका अचल नामा पुत्र और मृगावती नामा बेटीथी,सो अत्यंत रूपवान् औ यौवनवंती थी, उसकों देखकें उसके पिता जितशत्रुने अपणी राणी बना लीनी तब लो कोंने जितशत्रु राजाका नाम प्रजापति रक्खा,"अर्थात् अपनी बेटीका पति ऐसा नाम रक्खा, तबहीसें वेदोमें यह श्रुति लिखी गइ "प्रजापतिर्वैस्वा दुहितरमभ्य ध्यायद्दिवमित्यन्यआहुरुषसमित्यन्येतामृश्योभूत्वा तदसावादि त्योभवत्" इसका भावार्थ यह है किः–प्रजापतिब्रह्मा अपनी बेटीसें विषय सेवनेकों प्राप्त होता हूआ. हमारे जैनमतवालोंकी तो इस अर्थसें कुछ हानी नहीं, परंतु जिनलोकोंने ब्रह्माजीकों वेदकर्त्ता हिरण्यगर्भके नामसें इश्वर माना है, औ इस कथाकों पुराणोंमें लिखा है, उनका फजीता तो जरूर दूसरे मतवाले करेंगे ? इसमें हम क्या करे ? क्योंकि जो पुरुष अपने हाथोंसेंही अपना मुह काला करे, तब उसकों देखने वाले क्योंकर हांसी न करेगे ? यद्यपि मीमांसाकें वार्त्तिककार कुमारिलनें इस श्रुतिके अर्थके कलंक दूर करणेकों मनमानी कल्पना करी है, तथा इस कालमें दयानंद सरस्वतीनेभी वेदश्रुतियोंके कलंक दूर करनेकों अपनी बनाइ भा ष्यमें खूब अर्थोंके जोड तोड लगाये हें, परंतु जो पुराणवालेने कथानक

लिखा हैं, तिसकों क्योंकर छिपा सकेंगें ? इसमें यह मशल मशहूर है कि:- बूंदकी बात तो विलायत गइ अब क्यों घडे रुडहाते हो अच्छा हमारे मतमेंतो वेदश्रुति और ब्रह्मा (प्रजापति) का अर्थ यथार्थही कराहै. अरु जब त्रिपृष्ट और अचल दोनो योवनवंत हूये तब तिनोनें त्रिखंडका राजा अश्वग्रीवकों मारकें तीन खंडका राज्य करा.

तिस पीछें चंपा पुरीका इक्ष्वाकुवंशी वसुपूज्य नामा राजा हूआ, तिसकी जया नामा राणी तिनोंका पुत्रश्रीवासुपूज्यनाथ नामा बारहवां तीर्थकर हूआ, तिनोके वारें दूसरा द्विपृष्ट वासुदेव और अचल बलदेव हूये. और इनका प्रतिशत्रु रावण समान तारक नामा दूसरा प्रतिवासुदेव हूआ, इन सर्व वासुदेव और चक्रवर्त्ती आदिकोंका संपूर्ण वरनन त्रेशठशलाका पुरुष चरित्रमें जान लेनां.

तिस पीछें कपिलपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्मा नामा राजा हूआ. तिसकी श्यामा नामा राणी. तिनोंका पुत्र श्री विमलनाथ नामा तरेहवां तीर्थंकर हूआ, तिनोंके वारें तिसरा स्वयंभु वासुदेव और भद्रनामा बलदेव तथा मेरक नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन राजा हूआ तिसकी सुयशाराणी तिनोंका पुत्र श्रीअनंताथ नामा चौदहवां तीर्थकर हूआ. तिनके वारें चौथा पुरुषोत्तम नामा वासुदेव और सुप्रभनामा बलदेव तथा मधुकैटभ नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें रत्नपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी भानुनामा राजा हूआ, तिसकी सुव्रतानामा राणी तिनोंका पुत्र श्रीधर्मनाथ नामा पंदरहवां तीर्थंकर हूआ, तिनके वारे पांचमां पुरुषसिंह नामा वासुदेव और सुदर्शन नामा बलदेव तथा निशुंभ नामा प्रतिवासुदेव हूआ, यहांतक पांच वासुदेव हूये सो पांचोही, अरिहंतोंके सेवक अर्थात् जैनधर्मी हूये.

तिस पीछें पंदरहवे धर्मनाथ और शोलवें श्रीशांतिनाथजीके अंतरमें तीसरा मघवा नामा चक्रवर्त्ती और चौथा सनत्कुमार नामा चक्रवर्त्ती हूये.

तिस पीछें हस्तिनापुरी नगरीमें कुरुवंशी विश्वसेन राजा हूआ तिसकी अचिरा राणी तिनका पुत्र श्रीशांतिनाथ नामा हूवा सो पहिला गृहवासमें तो पांचमां चक्रवर्त्तिथा पीछे दीक्षा लेके केवली होकर शोलवां तीर्थंकर हूआ.

तिस पीछें हस्तिना पुर नगरमें कुरुवंशी सूरनामा राजा हूआ, तिसकी श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीकुंथुनाथ हूआ, सो प्रथम गृहस्थावस्थामें छठा चक्रवर्त्ती था, अरु दीक्षा लीया पीछें सत्तरहवां तीर्थंकर हूआ.

तिस पीछे हस्तिनापुरनगरीमें कुरुवंशी सुदर्शन नामा राजा, हूआ तिसकी देवी राणी, तिनोंका पुत्र श्रीअरनाथ हूआ, सो गृहस्थावासमें तो सातवां चक्रवर्त्ति था और दीक्षा लीया पीछें अठारहवां तीर्थंकर हूआ.

अठारहवें और उन्नीसवें तीर्थंकरके अंतरेमें आठवां कुरुवंशी सुभूम नामा चक्र वर्त्ती हूआ यह सुभूमके वखतमेंही परशुराम हूआ इन दोनों का संबंध जैनमतके शास्त्रोंमें जैसें लिखा है तैसेंमेंभी यहां लिख देता हूं.

यह कथा योग शास्त्रमें ऐसें लिखी है कि, वसंत पुर नामा नगरमें उछन्नवंश नामा अर्थात् जिसका कोइभी संबंधी नहीं था ऐसा अग्निक नामा एक लडका था सो अग्निक एकदा समये किसी सार्थवाहके साथ देशांतरको जाता हूआ मार्गमें साथसें भूलके जंगलमें एक तापसके आश्रममें गया. तब कुलपति तापसने तिसको अपना पुत्र बनाकें रखलीया, पीछें तहां अग्निकने बडाभारी घोर तप करा और बडा तेजस्वी हूआ, जगत्में यमदग्नि तापसके नामसें प्रसिद्ध हूआ इस अवसरमें एक जैनमति विश्वानर नामा देव और दूसरा तापसोंका भक्त धन्वंतरि नामा देव, यह दोनो देव परस्पर विवाद करने लगे तिसमें विश्वानर तो ऐसा कहने लगाकिः— श्रीअर्हतका कहा धर्म प्रामाणिक है? और दूसरा कहने लगा कि तापसोंका धर्म सच्चा है, तब विश्वानरने कहाकि दोनो धर्मके गुरुओंकी परीक्षा कर लो तिसमेंभी अर्हतधर्मके तो जघन्य गुरुजो होवे तिसकी और तापस धर्मके उत्कृष्ट गुरु जो होवे.तिसका धैर्य देख लो, तब मिथिला नगरीका पद्मरथ राजा नवाही जिन धर्मी हो कर भावयति हूआथा सो चंपानगरीमें गुरुओंकें पास दीक्षा लेने वास्ते जाताथा.तिसकों पंथमें तिन दोनो देवताओंने देखा, तब रस्तेमें दुःख देनेवाले बहुत कंटे कंकरे बना दीये, तथा रस्तेके सिवाय दूसरे स्थानमें बहुत कीडे आदि जीव हरजगें बना दीये तब राजा भावयतिके भावोंसें कमल समान कोमल, नंगे पगोंसें उन कांटे कंकरोके उपर चला जाता है, पगोंमेंसुं रुधिरकी ततीरीयां छूटती हैं, तोभी जीवों संयुक्त भूमि ऊपर नहीं चलता है, तब देवता

ओंने गीत नाटकका बडा प्रारंभ करा तोभी वो राजा क्षोभायमान न हूआ तब दोनों देवता सिद्धपुत्रोंका रूप करकें राजाकों कहने लगे हे महाभाग तेरी आयु अभि बहुत है. तुं स्वछंद भोगविलास कर क्योंकि यौवनमें तप करनां ठीक नहीं इस वास्ते जब तूं वृद्ध हो जावेंगा, तब दीक्षा लेलीजो यह बात सुन कर राजा कहने लगा यदि मेरा बहुत आयु है, तब मैं बहुत धर्म करुंगा क्योंकि जितना कंभा पाणी होता है, तितनीही कमलकी नालभी बढ जाती है और यौवनमें जो इंद्रियोंकों जीतनां है. सोइ असली तप होता है. तब तिन देवताओंने जानां यह तो कदापि चलायमान न होगा, पीछें वो दोनो देवता मिल कर सर्वमें उत्कृष्ट जमदग्नि तापसके पास परीक्षा करणेंकों गये, तब तिनोंनें जिसकी वडवृक्षकी जटाकी तरें तो धरतीमें जटा लग रही है, और पगोंमें सर्प्पोंकी विंवीयां बन गइ हैं. असे हालमें जमदग्निकों देखा, तब वो दोनोंदेवतानें देव मायामें जमदग्निकी दाढीमें घोंसला बनाकर चिडा और चिडी वनकर घोंसलेमें दोनो बेठ गये पीछें चिडा चिडीसें कहने लगा मैं हिमवंत पर्वतमें जाउंगा तब चिडी कहने लगी मैं तुझे कभी न जाने देउंगी, क्योंकि तूं तहां जाके किसी और चिडीमें आसक्त हो जावेंगा, फेर मेरा क्या हाल होवेगा? तब चिडा कहने लगा कि जो मैं फिर कर न आउं, तो मुझे गौ घातका पाप लगे. तब चिडी कहने लगी मैं तेरी शपथकों नहीं मानती हों, जो मैं सपथ (सौगंद) कहूं वो तूं करे, तो मैं जाने देउंगी. तब चिडेने कहा तूं कह दे तब चिडी कहने लगी कि जो तूं किसी चिडीसें यारी करे तो इस जमदग्निका जो पाप है, सो तुझकों लगे. चिडाचिडीका असा वचन सुणके जमदग्निकों क्रोधोत्पन्न हूआ तब दोनों हाथोंसें चिडा चिडीकों पकड लीया और कहता हूआ कि मैं तो बडा दुष्कर तप जो पापोंका नाश करने वाला है, सो कर रहां हों तो फेर मेरेंमें असा कोनसा पाप शेष रह गया है जिस्से तुम मुझे पापी बतलाते हो? तब चिडा यमदग्निकों कहता हैं, हे ऋषि! तूं हमारें उपर कोप मत कर. क्योंकि हमने झुठ नहीं कहा है, और जो तेरेकों अपने तपका घमंड है, सो तप तेरा निष्फल है, क्योंकि तुमारे शास्त्रोमें लिखा है, जो "अपुत्रस्यगतिर्नास्ति" अर्थात् पुत्र रहितकी गति नहीं यह तुमनें शास्त्रमें नहीं सुना? तो जिसकी शुभगति न हूइ तिस्सें

अधिक और पापी कौन है? तब जमदग्निने शोचा कि हमारे शास्त्रमें तो जैसें चिडेने कहा है, तैसेंही है तब मनमें विचारा जब मेरे स्त्री, और पुत्र नहीं, तब मेरा सर्व तप ऐसा है, जैसा पाणीके प्रवाहमें मूतनां, तैसा है, पीछें जमदग्निके मनमें स्त्रीकी चाहना उत्पन्न हूइ, यह देखके धवनंतरि देवता श्रावक जैनधर्मी हो गया अरु उहांसे दोनो देवता अदृश्य हो गये और जमदग्नि तहांसें उठके नेमिक कोष्टक नगरमें पहुंचा तिस नगरमें जितशत्रुराजा था. तिसके बहुत बेटीयां थी तिस राजा पासों एक कन्या मांगु? ऐसा विचार किया? राजाभी आसनसें उठकें और हाथ जोडके कहता हूआ कि आप किस वास्ते आये हो? और मुजे आदेश देओ क्या करुं? तब जमदग्निने कहा मैं तेरे पास तेरी एक कन्या मांगने आया हूं तब राजाने कहा मेरी सौ (१००) पुत्री हैं तिनमेंसूं जौनसी तुमकों बांछे सो तुम लेल्यो, तब जमदग्नि कन्यायोंके महिलमें गया और कहने लगा कि तुममेंसें जिसने मेरी धर्मपत्नी (स्त्री) बननां है, सो कह देवे कि मैं तुमारी स्त्री बनूंगी, तब तिन राजपुत्रीयोंने जटाला और पलित धोलेकेशोंवाला दुर्बल और भीख मांगके खानेवाला जब देखा और उसका पूर्वोक्त वचन सुना तब सभोंने थूंका और कहा कि ऐसी बात कहते हूये तुझकों लज्जा नहीं आती है? यह बात सुनकर जमदग्निकों बडा क्रोध चढा, तब विद्याके प्रभावसें उन राजपुत्रीयोंकों कूबडी और महाकुरूपवान् बना दीया, अरु आप तहांसें निकलकें महिलोके अंगनमें आया, तहां एक छोटी राजाकी बेटी रेणु पुंजमें (मट्टीके ढेरमें) खेल रही थी, तिसकों हाथमें बिजोरेका फल ले कर कहने लगा हे रेणुका! तुं मुझकों बांछती हैं? तब तिस बालिकाने बिजोरेकों देखकें हाथ पसारा तब मुनिने कहा मुझकों यह बांछती है ऐसें कहकर मुनिने उसकों ले लीया पीछे राजाने कितनीक गौआं और धन देकर लडकीका विवाह उसके साथ विधिसें कर दीया. तब जमदग्निने शालीयोंके स्नेहसें सर्व कन्यायोंकों अछा कर दीया, और तिस रेणुका भार्याकों लेकर अपणे आश्रममें आया पीछें तिस मुग्धा, मधुर आकृति, हरणीसमान लोलाक्षीकों प्रेमसें वृद्धि करता भया, जब जमदग्निकों अंगुलियों ऊपर दिन गिणतेकों वो रेणुका सुंदर यौवन कामके लीला वनकों प्राप्त हूइ, तब जमदग्निने

अग्निकी साक्षी करकें रेणुकासें फिर विवाह करा, जब रेणुका ऋतुकालकों प्राप्त हुइ, तब जमदग्नि कहने लगा कि मैं तेरे वास्ते चरु साधता हूं, चरु "होममें मालनेकी वस्तुओंकों कहते हैं" जिस्सें सर्व ब्राह्मणोंमें उत्तम प्रताप वाला तेरेकों पुत्र होवेगा, तब रेणुकानें कहा हस्तिना पुरमें कुरुवंशी अनंतवीर्य राजाकों मेरी बहिन व्याही है तिसके वास्ते तूं क्षत्रिय चरुनी साध्य, अर्थात् मंत्रोंसें संस्कार करकें सिद्धकर पीछे जमदग्निने ब्राह्मण चरु तो अपणी जार्या वास्ते अरु क्षत्रिय चरु तिस जार्याकी बहिन वास्ते सिद्ध करा तब रेणुकाने मनमें विचार कराकि मैं जैसें अटवीमें हरिणीकी तरे रहती हूं, तो मेरा पुत्रनी वैसेंही जंगलोमें रहेगा, इस वास्तेमें क्षत्रिय चरु नक्षण करूं, जिस्सें मेरा पुत्र राजा होकें इस जंगल वाससें छुट जावे, ऐसा विचारकें क्षत्रिय चरु खा लीया और ब्राह्मण चरु अपनी बहिनकों नक्षण कराया; तब तिन दोनोंके दो पुत्र हूये तिसमें रेणुकाके तो राम नामक पुत्र हुये, और रेणुकाकी बहिनके कृतवीर्य पुत्र हूये, क्रमसें दोनों बडे हूये, राम तो आश्रममें पला, और कृतवीर्य राज महेलोंमें पला, राम तो क्षत्रीतेज अर्थात् क्षत्रिय पणेकी तेजी देखानें लगा अन्यदा एक विद्याधर अतिसार रोग वाला तिस आश्रममें आ गया, अतिसारके प्रनावसें आकाशगामिनी विद्या नूल गया, तब तिस मांदे विद्याधरकी रामने औषध पथ्यादि करकें नाइकी तरें सेवा करी, पीछे तिस विद्याधरने तुष्टमान होके रामको परशुविद्या दीनी, तब रामनी सरकंडके वनमें आकर तिस विद्याकों सिद्ध करता हूआ, तिस विद्याके प्रनावसें राम परशुराम नाम करकें जगत्में प्रसिद्ध हूआ, एकदा अवसरमें अपना जमदग्नि पतिकों पूछकें रेणुका बडी उत्कंठासें अपणी बहिनके मिलने वास्ते हस्तिना पुरमें गइ, तहां रेणुकाकों अपणी शालि जान कर अनंतवीर्य राजा हंसी मशकरी करने लागा, और रेणुकाका बहुत सुंदर रूप देख कर कामातुर होकें उसके साथ निरंकुश हो कर विषय सेवन करने लगा, तब अनंतवीर्यके नोगसें रेणुकाके एक पुत्र जन्मा, पीछे जमदग्नि पुत्र सहित रेणुकाकों आश्रममें ल्याया क्योंकि पुरुष जब स्त्रीयोंका लुब्ध हो जाता है तब बहुलताइसें कोइनी दोष नहीं देखता है, जब परशुरामने अपनी माताकों पुत्र सहित देखा, तब क्रोधमें आकर परशुसें अपनी माताका और तिस लड

केका दोनोंका शिर काट माला, जब यह वृत्तांत अनंतवीर्य राजाने सुना, तब क्रोधमें जर कर और फौज ले कर जमदग्निका आश्रम जाल फूक तोड फोक गेरा और सर्व तापसोंकों त्रास मान करा, तब तापसोंनें दौडते हूयां जो रोला करा तिसकों परशुरामनें सुना और सारा वृत्तांत सुनके परशु लेके राजाकी सेना ऊपर दोडा, परशुरामनें परशुसें राजा और राजाकी सेना सुनटोंकों काष्टकी तरे फाडके गेर दीया, आप पीछें आश्रममें चला गया, उधर प्रधान राजपुरुषोंनें अनंतवीर्यके बेटे कृतवीर्यकों राजसिंहासन उपर बैठाया, परंतु वो उमरमें छोटा था, एकदिन अपणी माताके मुखसें अपने पिताके मरणेका वृत्तांत सुनकें सर्पके मंसे हूयेकी तरें आ कर जमदग्निकों मार दीया, तब परशुराम आपना पिताका वध देखकें क्रोधमें जाज्वल मान हो कर हस्तिनापुरमें आकें कृतवीर्यकों मारकें आप राजसिंहासन उपर बैठ गया, क्योंकि राज्य जो है, सो पराक्रमके आधीन है, तब कृतवीर्यकी तारा नामा गर्नवती राणी परशुरामके नयसें दौडकर किसी जंगलमें तापसोंके आश्रममें गइ, तब तिन तापसोंनें दया करकें तिस राणीकों अपने मठके नोंहरेमें निधानकी तरें छिपाके रक्का, तहां तिस राणीके चौदह स्वप्न सूचित पुत्र जन्मा तिसका नाम तिसकी माताने सूनूम रक्का, क्षत्रिय जो जहां मिलता है, तहांही परशुरामका कुहाडा जाज्वलमान होजाता है, तब परशुराम परशुसें क्षत्रियोंका शिर काट देता है, अन्यदा परशुराम जिहां छिपी हूइ राणी पुत्रसें रहती थी तिस आश्रममें आया तहां परशुरामका परशु जाज्वलमान हूआ, तब परशुरामनें तापसोंकों पूछा, क्या यहां कोइ क्षत्रिय है, तब तापसोने कहा हम गृहस्थावासमें क्षत्रिय थे, तब परशुरामनेंनी ऋषियोंकों छोडकें सात वार निःक्षत्रिय पृथ्वी करी, अर्थात् सात वार चढाइ करकें अपणी जाणमें कोइनी क्षत्रिय बाकी नहीं छोडा, जैसें अग्नि, पर्वत ऊपर घांसकों नहीं छोडती है, तैसें परशुरामनेनी जो जो क्षत्रिय राजादि प्रसिद्ध थे, तिनोंकों मारकें तिनोंकी दाढासें एक थाल नरा. और परशुरामने छाना निमित्तियेकों पूछा कि मेरामरणा किसके हाथसें होगा ? तब निमित्तियेने कहा कि जो तैने दाढांसें थाल नरा है, सो थाल जिसके देखनेंसें दाढाकी क्षीर बन जायेगी, और इस सिंहासन ऊपर बैठके जो तिस क्षीरकों खा

यगा, तिसके हाथसें तेरा मरणा होवेगा. यह सुन कर परशुरामने दान शाला बनाइ, और दानशालाके आगें एक सिंहासन रचाया, तिस ऊपर क्षत्रियोंकी दाढांवाला स्थाल रखवाया, अब इधर तापसोंके आश्रममें प्रतिदिन तापस सुभूम बालककों लाड लडाते. खिलाते, अंगणके वृक्षकी तरें वृद्धि करते हूये रहते है, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोइ निमित्तियेकों पूछने लगा कि मेरी जो पद्मश्री कन्या है, तिसका वर कौन होवेगा? तब तिस निमित्तियेने सुभूम वर बतलाया. और उसका सर्व वृत्तांतभी सुना दीया, तब मेघ विद्याधरनें अपनी बेटी सुभूमकों व्याही. और तिसकाही सेवक बन गया. एकदा कूपके मंडूककी तरें और कंही जानेंमें रहित हूआ होया सुभूम अपनी माताकों पूछनें लगा कि हे माता! इतनाही लोक है, कि जिसमें हम रहते हैं. क्या इस्सें अधिकभी है? तब माता कहने लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत है. तिसमें मक्खिके पग जितनी जगामें यह आश्रम है, इस लोकमें बहुत प्रसिद्ध हस्तिना पुर नगर है. तिस नगरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था. परंतु परशुराम तेरे पिताकों मारकें हस्तिना पुरका राजा बन गया है. और तिस परशुरामने निःक्षत्रिय पृथ्वी कर दइ है, तिस परशुरामके भयसें हम यहां आश्रममें छिपे हूये बैठे हैं. अपनी माताका यह कहना सुनके सुभूम भौमकी तरें अर्थात् मंगलके तारेकी तरें लाल हूआ. और तहांसें निकलके सीधा हस्तिना पुरमें आया, तब लोकोंने पूछा कि तूं असा अत्यद्भुत सुंदर किसका बेटा हूं? तब कहा मैं क्षत्रियका पुत्र हूं तब लोकोंने कहा तूं यहां ज्वलती आगमें क्यों आया? तब तिसने कहा मैं परशुरामकों मारनेके वास्ते आया हूं, तब लोकोंने बालक जानके उसकी बात उपर कुछ ख्याल न करा अब सुभूम सिंहकी तरें उस पूर्वोक्त सिंहासन उपर जाकें बैठा, और तहां देवताके विनियोगसें दाढाकी क्षीर बन गइ. तिसकों सुभूम खाने लग गया तब तहां जो रखवाले ब्राह्मण थे. वे सर्व सुभूमको मारणेकों उठे, तब मेघनाद विद्याधरने सब ब्राह्मणकों मार दीया तब कंपता हूआ और होठोंकों चाबता हूआ, क्रोधमें भरा हूआ, असा परशुराम कोहाडा (परशु) लेके सुभूमकों मारने आया परशुरामने सुभूमके मारणेंकों परशु चलाया वो परशु सुभूमतक पहूंचनेंसें पहिलाही आगके अंगारेकी तरें बुझ गया,

विद्या देवी जो थी, सो सुनूमके पुण्य प्रनावसें परशुकों छोड के नाग गइ तब सुनूमनें शस्त्रके अनावसें थालही उगाके परशुरामकों मारा तिस थालका चक्र बन गया, तिस चक्रने परशुरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेंही सुनूम आठवां चक्रवर्त्ति हूआ.

इस कथा उपर लोकोंनें जो यह कथा बना रक्खी, सो ठीक नहीं है,सो कथा कहते हैं. जैसें कि परशुराम परशुसें क्षत्रियोंकों काटता हूआ रामचंद्रजीके पास पहूंचा और परशुसें रामचंद्रजीकों मारने लगा, तब रामचंद्रजीने नरमाइसें पग चंपी करकें उसका तेज हर लीया, तब परशुरामका परशु हाथसें गिर पडा, और फिर न उग सका यह श्रीरामचंद्र नहीं था, परंतु यहतो सुनूम नामा आठमां चक्रवर्त्ती था, जिसनें परशुरामका काम तमाम कीया, इस कथाके बनानें वालोंनें परशुरामकी हीनता दूर करनेकों श्रीरामचंद्रजीका संबंध लिख दीया है. असली सुनूमचक्रवर्त्ति लिखने वालोंनें यहनी शोचा होगा एक अवतारनें दूसरे अवतारका अंश खींच लीया, इसमें परशुरामकी लघुता न होवेगी, परंतु यह नहीं शोचा होगा कि दोनों अवतार अज्ञानी बन जायेंगे. जब परशुराम आपही अपने अंशकों कोहाडेसें काटने लगा, तब तिसमें और अधिक अज्ञानी कौन बनेगा ? जब सुनूम चक्रवर्त्ति आठमा हूआ, तब जैसें परशुरामने सात वार निःक्षत्रिया पृथ्वी करी थी. तैसें सुनूमनें पिछले बैरसें इक्कीश वार निर्ब्राह्मण पृथ्वी करी अपणी जाणमें कोइनी ब्राह्मण जीता नहीं छोडा, इसी वास्ते इन राजायोंकों ब्राह्मणोंनें दैत्य, राक्षसके नामसें पुस्तकोंमें लिख दीया है,यह दोनों मरके अधोगतिमें गये ॥ इति परशुराम और सनूमचक्रवर्त्तिका संबंध संपूर्णः ॥

यह सनूमचक्रवर्त्तिसें पहिला इसी अंतरेमें छठा पुरुषपुंमरीक वासुदेव तथा आनंद नामा बलदेव और बलि नामा प्रतिवासुदेव हूये,तथा सुनूमके पीछें इस अंतरेमें दत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नंद नामा बलदेव और प्रल्हाद नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें मिथुला नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी कुंन राजा हूआ, तिसकी प्रनावती राणी तिनकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवीसमा तीर्थंकर हूआ,

तिस पीछें राजगृह नगरीमें हरिवंशी सुमित्र राजा हूआ, तिसकी

पद्मावती राणी तिनका पुत्र मुनिसुव्रतनामा वीशमा-तीर्थंकर हूआ, इ नोंकें समयमें महापद्म नामा नवमा चक्रवर्त्ती हूआ, तिसका संबंध त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां परंतु तिसके नाइ विष्णु कुमारका थो डासा संबंध यहां लिखते है.

हस्तिना पुर नगरमें पद्मोत्तर नामा राजा तिसकी ज्वालादेवी राणी तिनका बडा पुत्र विष्णुकुमार, और छोटा नाइ महापद्म हूआ, तिस अव सरमें अवंती नगरीमें श्रीधर्मनामा राजेके मंत्रि नमुचि अपर नाम बल यह नामके मिथ्यादृष्टि ब्राह्मणने श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकरका शिष्य श्री सुव्रताचार्यके साथ अपनी मतका विवाद करा, वादमें हार गया. तब रा त्रिकों तलवार लेकें आचार्यकों मारने चला, रस्तेमें पग थंनये यह स्व रूप राजानें सुनके अपनें राज्यसें बाहिर निकाल दीया तब नमुचि बल तहांसें चलके हस्तिना पुरमें युवराज महापद्मकी सेवा करने लगा किसी काममें तुष्ट मान होकें महापद्मनें तिसकों यथेच्छा वर दीया पीछें पद्मोत्तर राजा और विष्णु कुमार दोनोंनें सुव्रत गुरुके पास दीक्षा ले कें पद्मोत्तर मोक्ष गयां. और विष्णु कुमार तपके प्रनावसें महालब्धिमान् हूआ इस अवस रमें सुव्रताचार्य फेर हस्तिना पुरमें आये. तब नमुचिबलनें विचारा कि यह वैर लेनेका अवसर है, तब महापद्म चक्रवर्त्तीसें विनति करी किः—मैंनें जैमें वेदोमें कहा है,तैसें एक महायज्ञ करना है इस वास्ते मैं पूर्वोक्त वर मांगना चाहाता हूं, तब महापद्मने कहा मांग तब नमुचिने कहा मुझे कितनेक दिन तक आपनां सर्व राज दे देवो, यह सुनकर महापद्मनें उसके कहे दिन तक सर्व राज उमें दे कर आप अपने अंतेउरोमें चला गया. तब नमुचिबलने नगरसें निकलके यज्ञ वास्ते यज्ञ पाडा बनाया, उसमें दी क्षा ले के आसन उपर बैठा तब जैनमतके साधु छोडके दूसरे सर्व पाखं मी निक्षु और गृहस्थ नेटना ले के आये नेट दे के सर्वांने नमस्कार करा, तब नमुचिबलने पूछा कि नहीं आया होये, ऐसा तो कोइ रहा नहीं? तब लोकोंनें कहा कि जैनमती सुव्रताचार्य वर्जके सर्व दर्शनी आ गये हैं, तब नमुचिबलने यह छिद्र प्रगट करकें और क्रोधमें नरकें सिपा ही बोलानेंकों नेजे. और कहला नेजा कि राजा चाहो कैसाही हो, तो नी सर्वको माननें योग्य है, उसमेंनी साधुओंको तो विशेप करकें मान

नां चाहियें, क्योंकि राजासें उपरांत औसें अनाथ लिंगीयोंकी रक्षा करने वाला कौन है? तथा मेरा तुम कुछ करने समर्थ नहीं. और बडे अनिमानी हो, तथा हमारे धर्मके निंदक हो इस वास्ते मेरे राजसें बाहिर हो जाउ, जो रहेगा, उसकों में मार डालूंगा इसमें मुझे पापनी नहीं होगा, तब गुरुने आ कर मीठे वचनसें कहा कि हमारा यह कल्प नहीं जो गृहस्थके कार्यमें जानां, परंतु हम अनिमानसेंही नहीं आये औसा मत समझना क्योंकि साधु समजावसें अपने धर्मकृत्यमें लगे रहते हैं, तब नमुचिबल अति शांतिवृत्तिवाले मुनियोंकों कठोर हो कर कहनें लगा कि सात दिनके अंदर मेरे राजसें बाहिर हो जाउ जो रहेगा, सो मारा जायगा, यह सुनके सब साधु अपने तपोवनमें आये, और शोचने लगे कि अब क्या उपाय करीयें? तब एक साधु कहने लगा कि महापद्म चक्रवर्त्तिका बडा नाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् बडी शक्तिवाला मेरु पर्वत ऊपर हैं, तिसके कहनेसें यह नमुचिबल प्रशांत हो जावेगा, इस वास्ते कोइ चारण साधु उसकों यहां बोला ल्यावे तो ठीक है तब एक साधु बोला कि मैरी उहां मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परंतु पीछें आवनेकी शक्ति नहीं है तब गुरु कहने लगे कि तुमकों पीछा विष्णु मुनिही यहां ले आवेंगे, तुम जाउ. तब वो साधु लब्धिसें एक क्षणमें तहां गया, और सर्व वृत्तांत सुनाया, तब विष्णु मुनि उस साधुकोंनी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आकें वंदना करी, पीछें गुरुकी आज्ञासें एकिलाही राज सनामें आया उहां एक नमुचिबलके विना और सर्व सनाके लोकोंनें उठके वंदना करी तब विष्णु मुनिने धर्मोपदेश देकर कहाकि निःसंगी साधुओंसें वैर करणां, यह महा नरकका कारण है, क्योंकि साधु किसीका कुछ बिगाडते नहीं, और जगत् तो और बडे पुरुषोंकों नमस्कार करतें हैं, किसी शास्त्रमें मुनि निंदे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है, कि:—तुछ, क्षणिक राजके पानेंसें अंधे अधम पुरुष अपणेकों साधुओंसें नमस्कार कराया चाहते हैं, और नमुचिबलकों कहा तूं इस बुरे कामकों जानेदे जिस्सें साधु सब सुखसें रहे, और तूं क्युं मत्सरमें मगन होकें अपणा आप बिगाडा चाहता है? साधु चौमासेमें विहार करते नहीं क्योंकि चौमासेमें जीवोंकी बहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगे तेराही राज्य

है, तो सर्व साधु सात दिनमें कहां चले जाय? तब नमुचि बल कुकाष्ठकी तरें होकर बोला कि बहुत कहनेंसें क्या है? पांच दिनसें उपरांत जो कोइ तुमारा साधु मेरे राज्यमें रहेगा, तो मैं उसकों चोरकी तरे बध करूंगा, और तूं हमारे मानने योग्य है, इसी वास्ते तूं जाकर साधुओंकों कहदे जो कि जीवनां चाहते हो तो नमुचिके राज्यसें बाहिर चले जाउ क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है. और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कदम अर्थात् तीन डिंग जगा देता हूं, तिस्सें बाहिर किसी साधुकों देखूंगा तिसका शिरछेद करूंगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके योग्य नहीं यह तो बडा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जडही उखाडनी चाहिये. तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसें लाख योजनकी देह बनाइ. एक डिंगसेंतो जरतक्षेत्रादि मापा और दूसरी डिंग पूर्वापर समुद्र उपर धरी और तीसरी डिंग नमुचिबलके शिर ऊपर रखके सिंहासनसें हेठ गेरके धरतीमें घसोड दीया नमुचि मरकें नरकमें पहुंच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंनें कानोमें मधुर गीत सुनाकर शांत करा, तब शरीरकों संकोचके गुरुके पास जाकर आलोचना करी, पापका प्रायश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर संयम पालकें मोक्षगया.

इस कथासें ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणोने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु जगवान्नें वामन रूप करकें यज्ञ करते बलिराजाकों छला, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाकों बिगाडके अपने मतके अनुसार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीजगवान्कों क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यज्ञ करने वालेके साथ छल करता? यह तो निःकेवल बुद्धि हीनोका काम है. जो अपनी बेटीयोंसें तथा परस्त्रीयोंसें विषय सेवन करा कहनां, तथा जगवान्ने झूठ बोला, औरोंसें बोलाया, चोरी करी, औरोंसें कुशील जगवान्ने सेवन करा, छलसें मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके हैं, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह काम कजीजी नहीं करता तो और करने वालेकों परमेश्वर जूलकेजी न माननां चाहियें ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिबलका संबंध समाप्त ॥

वीसमें और इकवीसमें तीर्थंकरके अंतरमें श्री अयोध्या नगरीके दशरथराजाकी कौशल्या राणीका पद्म (रामचंद्र) नामा पुत्र हूवा, सो आ

ठमां बलदेव और दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण अपर नाम लक्ष्मण सो आठमां वासुदेव हूआ जिनोंका प्रतिशत्रु रावण प्रतिवसुदेव लंकाका राजा हूआ सो जगतमें प्रसिद्ध है. इन तीनोंका यथार्थ स्वरूप पद्मचरित्रसें जान लेनां, परंतु लौकिक रामायणमें जो रावणके दश शिर लिखे हैं.सो ठीक नहीं है,क्योंकि मनुष्यके स्वाभाविकही दश शिर कदापि नहीं हो शक्ते हैं, पद्मचरित प्रथमानुयोग शास्त्रमें लिखा है कि रावणके बडे बडेरोंकी परंपरायसें एक बडा नव माणिकका हार चला आता था,सो रावणने बालावस्थासें अपने गलेमें पहिर लीये थे और वे नौही माणक बहुत बडे थे, सो चार माणक एक पासें स्कंधके ऊपर हारमें जडे हूये थे. और पांच माणक दूसरे पासे जडे थे, दोनों स्कंधो उपर नव माणकमें नवमुख दीखते थे, और एक रावणका असली मुख था इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है, तथा रावणके समयमेंही हिमालयके पहाडमें बद्रीनाथका तीर्थ उत्पन्न हूआ है, तिसकी उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोंमे ऐसे जानी जाती है किः—यह असली पार्श्वनाथकी मूर्त्तिथी. तिसकाही नाम बद्रीनाथ रक्खा गया है. इसका पूरा स्वरूप गद्यबंद पार्श्वपुरानसें जान लेना.

तिस पीछे मिथुलानगरीमें इक्ष्वाकुवंशी विजयसेनराजाकी विप्रा राणी तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इक्कवीसमा तीर्थंकर हूआ तिनोकें वारें हरिषेणनामा दशमां चक्रवर्त्ति हूआ है. तथा यह इक्कवीसमें और बावीसमें तीर्थंकरके अंतरेमें इग्यारहमां जयनामा चक्रवर्त्ती हूआ.

तिस पीछे सौरीपुर नगरमें हरिवंशी समुद्रविजय राजा तिसकी शिवा देवी राणी तिनका पुत्र श्रीअरिष्ट नेमिनामा बावीशमा तीर्थंकर हूआ तिनोके वारें तिनोके चाचेके बेटे नवमे कृष्णवासुदेव और राम बलदेव (बलभद्रबलदेव) इनका प्रतिशत्रु जरासिंधु प्रतिवासुदेव हूआ, तिसमें कृष्ण अरु बलभद्र तो जगतमें बहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि लोक श्रीकृष्ण वासुदेवकों साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार जगत्काकर्त्ता मानते हैं, यह बात कृष्ण वासुदेवके जीते हूयें नहीं हूइ, किंतु उनके मरे पीछे लोक कृष्ण वासुदेवकों ईश्वरावतार मानने लगे हैं, तिसका हेतु त्रेसठ सलाका पुरुष चरित्रमें ऐसें लिखाहै किः—जब कृष्ण वासुदेवनें कुसंबी बनमें शरीर छोडा तब काल क

रकें बालुप्रजा पृथ्वी (पातालमें) गये और बलजद्रजी एक सौ वर्ष जैनदीक्षा पालके पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें गये वहां अवधिज्ञान सें अपनें जाइ श्रीकृष्ण कों पातालमें तीसरी पृथ्वीमें देखा, तब जाइके स्नेहसें वैक्रिय शरीर बनाकर श्री कृष्णके पास पहूचा और श्रीकृष्णसें आलिंगन करकें कहा कि मैं बलज द्रनामा तेरे पिछले जन्मका जाई हूं, मैं काल करकें पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें उत्पन्न हूआ हूं, और तेरे स्नेहसें यहां तेरे पास मिलनेकों आया हूं सो मैं तेरे सुख वास्ते क्या काम करुं ? इतना कह कर जब बलजद्रजीनें आ पनें हाथों ऊपर कृष्णजीको लीया, तब कृष्णका शरीर पारेकी तरें हा थसें छूरके जूमि ऊपर गिर पडा, और मिलकर फेर संपूर्ण शरीर पूर्ववत् हो गया. इसीतरें प्रथम आलिंगन करनेंमें फेर विरतांत कहनेंमें और हाथों ऊपर उठानेसें कृष्णनेजी जान लीयाकि यह मेरे पूर्वजवका अति वल्लज बलजद्र जाई है तब कृष्णजीने संभ्रमसें उठके नमस्कार करा तब बलजद्रजीनें कहा हे ज्राता ! जो श्रीनेमिनाथने कहाथाकि यह विषय सुख महादुःखदाई है सो प्रत्यक्ष तुमकों प्राप्ति हूआ और तुऊकर्मनियंत्रितकों मैं स्वर्गमेंजी नही लेजा सक्ता हूं परंतु तेरे स्नेहसें तेरे पासमें रहा चाहता हूं तब कृष्णने कहा हे ज्राता ! तेरे रहनेंमेंजी तो मैनें करे हूये कर्मका फल अवश्यमेव जोगनाही है परंतु मुऊकों इस दुःखसें वो दुःख बहुत अधिक है जो मैं द्वारिका और सकल परिवारके दग्ध होजानेंमें एकला कुसंबी वनमें जरा कुमारके तीरसें मरा और मेरे शत्रुओंकों सुख तथा मेरे मित्रोंकों दुःख हूया जगतमें सर्व यदुवंशी बदनाम हूये इस वास्ते हे ज्राता ! तूं जरतखंडमें जा कर चक्र, शारंग, शंख, गदाका धरने वाला और पीत (पीले) वस्त्र वाला, तथा गुरुड ध्वजा वाला, ऐसा मेरा रूप बना कर विमानमें बैठ कर लोकोंकों दिखला तथा नीलवस्त्र और तालध्वज अरु हल, मूशल, शस्त्रका धरनेंवाला ऐसा तूं विमानमें बैठके अपना रूप सर्वजगें दिखलाकर लोकोंकों कहोकि राम कृष्ण दोनो हम अविनाशी पुरुष है, और स्वेछा विहारी हैं, जब लोकोंकों यह सत्य प्रतीत हो जा वेगा तब हमारा सर्व अपयश दूर हो जावेगा यह श्रीकृष्णजीका कहना सर्व श्रीबलजद्रजीने स्वीकार कर लीया, और जरतखंडमें आकर कृष्ण ब लजद्र दोनोका रूप करकें सर्व जगे विमानारूढ दिख लाया और ऐसे क

हने लागा कि नो लोको! तुम कृष्ण बलनद्र अर्थात् हमारे दोनोंकी सुंदर प्रतिमा बनाकर ईश्वरकी बुद्धिसें बडे आदरसें पूजो क्योंकि हमही जगतके रचनेवाले और स्थिति संहारके कर्त्ता हें और हम अपणी इछासें स्वर्ग (वैकुंठसें) यहां चले आते हैं, और पीछें स्वर्गमें अर्थात् वैकुंठमें अपनी इछासें चले जाता हैं और द्वारका हमनेही रची थी तथा हमनेही उसका संहार करा है. क्यों कि जब हम, वैकुंठमे जानेकी इछा करते हैं, तब सर्व अपना वंश द्वारिका सहित दग्ध करके चले जाते हैं, हमारे उपरांत और कोई अन्य कर्त्ता, हर्त्ता नहीं है ऐसा बलनद्रजीका कहना सुननेसें सर्व ग्राम (नगर) के लोकोंने कृष्ण बलनद्रजीकी प्रतिमा सर्व जगे बना कर पूजी तब प्रतिमा पूजनेवालोंकों बहुत सुख धनादिसें बलनद्रने आनंदित करा, इस वास्ते बहुत लोक हरिनक्त हो गये. जबसें नक्त हूये तबसें पुस्तकोसें कृष्णजीकों पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि नामोंमें लिखा, क्याजाने जबसें बलनद्रजीनें कृष्णकी पूजा कराई, तबसेंही लोकोने कृष्णकोंही ईश्वरावतार माना हो? और उस समयकों पांच हजार वर्ष हूये हों, जिस्सें लौकीकमें कृष्ण हूयेकों पांच हजार वर्ष कहते हैं.

बाइसमें अरु तेइसमें तीर्थंकरके अंतरेमें बारमा ब्रह्मदत्तनामा चक्रवर्ती हूआ, तिस पीछे वाणारसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी अश्वसेन राजा हूआ तिसकी वामादेवी राणी तिनका पुत्र श्रीपार्श्वनाथ नामा तेइसमा तीर्थंकर हूआ तिस पीछें क्षत्रियकुंड नामा नगरमें इक्ष्वाकुवंशी दूसरा नाम सूर्यवंशी सिद्धार्थ नामा राजा हूआ तिसकी त्रिसला नामा राणी तिनका पुत्र श्रीवर्द्धमान महावीरनामा चौवीशमा चरम छेला तीर्थंकर हूआ, आज काल जो जैनमत नरत खंडमें प्रचलित है, सो इसही श्रीमहावीरका शासन अर्थात् उनहीके कहे उपदेशसें चलता है, और जो जैनमतके शास्त्र हें, वे सर्व इसही श्रीमहावीर नगवंत के उपदेशानुसार रचे गये है यह श्रीमहावीर नगवंतका संपूर्ण वृत्तांत देखना होवे, तदा आवश्यक सूत्रवृत्ति कल्पसूत्र वृत्ति तथा श्रीमहावीर चरितादि ग्रंथोंसें जान लेनां.

इति श्रीतपगछीय मुनिश्रीगणि मणिविजय तछिष्य मुनिबुद्धिविजय तछिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रीऋषनादि महावीर पर्यंत पूर्ववृत्तांत निरूपण नाम एकादश परिछेदः संपूर्णः ॥ १ ॥

अथ द्वादशः परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह परिच्छेदमें श्रीमहावीर भगवानसें लेकर आजकाल पर्यंत कितनाक वृत्तांत लिखते है. श्रीमहावीर भगवंतके इग्यारह शिष्य मुख्य, और सर्व साधुओंसें बडे हूये, तिनका नाम कहते है १ इंद्रिभूति. अर्थात् गौतम स्वामी, २ अग्निभूति, ३ वायुभूति, ४ व्यक्तस्वामी, ५ सुधर्मस्वामी, ६ मंडिकपुत्र, ७ मौर्यपुत्र. ८ अवकंपित, ९ अचलभ्राता, १० मेतार्य, ११ प्रभास. यह इग्यारह बडे शिष्य श्रीमहावीर भगवंतके हूए और सर्व शिष्य तो चौदह हजार साधु हूये, परंतु चौदह हजारमें कदेभी अधिक नही हूये, और साध्वी छत्तीस हजार हूइ. तथा श्रेणिक, उदायन, कोणक, उदायी, वत्सदेशका उदायन. चेटक, नवमल्लिक क्षत्रियजातिके, नवलेछिक क्षत्रिय जातिके. उज्जयनका राजा चंद्रप्रद्योत. अमलकल्पा नगरीका स्वेत नामे राजा, पोलासपुरका विजय राजा, क्षत्रिय कुंमका नंदिवर्द्धन राजा. वीतभय पट्टनका उदायनराजा. दशार्णपुरका दशार्णभद्र राजा, पावापुरीका हस्तिपाल राजा, इत्यादि अनेक राजे श्रीमहावीर भगवंतके सेवक थे. अर्थात् श्रावक थे, और आनंद, कामदेव, संख पुष्कली प्रमुख श्रावक. और जयंती, रेवती, सुलसा प्रमुख श्राविका तो लाखोंही थे, तिन श्रावकोंमें एक सत्यकी नामा अविरति, सम्यग्दृष्टि श्रावक हूआ है, तिसका संबंध आवश्यक शास्त्रमें इसी तरें लिखा है. सो कहते हैः–

विशालानगरीके चेटक राजाकी छठी पुत्री सुज्येष्टानामा कुमारी कन्यानें दीक्षा लीनी थी अर्थात् जैनमतकी साध्वी हो गइ थी. वो किसी अवसरमें उपाश्रयके अंदर सूर्यके सन्मुख आतापना लेती थी. इस अवसरमें पेढाल नामा परिव्राजक अर्थात् संन्यासी विद्या सिद्ध था. सो आपनी विद्यादेनेके वास्ते पात्र पुरुषकों देखता था. और उसका विचार ऐसाथा किः– यदि ब्रह्मचारणीका पुत्र होवे, तो सुनाथ होवेगा. तब तिस संन्यासीने रात्रिमें सुज्येष्टाकों नग्न पणे शीतकी आतपना लेतीकों देखा, तब धुंध विद्यासें अंधकारमें विमोह अर्थात् अचेत करकें उसकी योनिमें अपने वीर्यका संचार करा, तिस अवसरमें सुज्येष्टाकों ऋतुधर्म आ गया था. इस वास्ते गर्भ रह गया तब सायकी साध्वीयोंमें गर्भकी चर्चा होने लगी, पीछें अति

शय ज्ञानीने कहा कि सुज्येष्ठानें विषयज्ञोग किसीसें नहीं करा, अरु तिस विद्याधरका सर्ववृत्तांत कहा, तब सर्वकी शंका दूर हो गई पीछे समयमें सुज्येष्ठाके पुत्र जन्मा, तब तिस लडकेकों श्रावकनें अपने घरमें ले जाकें पाला, तिसका नाम सत्यकी रक्खा, एकदा समय सत्यकी साध्वीयोंके साथ श्रीमहावीर जगवानके समवसरणमें गया, तिस अवसरमें एक कालसंदीपक नामा विद्याधर, श्रीमहावीरकों वंदना करकें पूछने लगा कि मुझकों किससें जय है, तब जगवंत श्रीमहावीर स्वामीने कहा कि, यह जो सत्यकी नामा लडका है, इससें तुझकों जय है तब कालसंदीपक सत्यकीके पास गया, अवज्ञासें कहने लगा कि अरे तूं मुझकों मारेगा? ऐसें कह कर जोरावरीसें सत्यकीकों अपने पगोंमे गेरा तब तिसके पिता पेढालने सत्यकीका पालन करा, और अपणी सर्व विद्यायोंकों सत्यकीकों दे दई, सत्यकी महारोहिणी विद्याका साधन कर रहा था, इस सत्यकीका यह सातमा जव रोहिणीविद्या साधनमे लग रहा था, रोहिणी विद्याने इस सत्यकी के जीवकों पांच जवमें तो जानसें मार गेरा और छठे जवमें छे महीने शेष आयुके रहनेंसें सत्यकीके जीवने विद्याकी इच्छा न करी परंतु इस सातमें जवमें तो तिस रोहिणी विद्याकों साधनेका आरंज करा तिसकी विधि लिखते हैं.

अनाथ मृतक मनुष्यकों चितामें जलावे और गीले (आले) चमडेकों शरीर उपर लपेटके पगके वामें अंगूठेसें खडा होकर जहां लग वो चिताका काष्ठ जले तहां लग जाप करे इस विधिसें सत्यकी विद्या साध रहा था, उहां काल संदीपक विद्याधरजी आ गया, और चितामें काष्ठ प्रक्षेप करकें सात दिन रात्री तक अग्नि बुझने न देनी, तब सत्यकीका सत्व देखकें रोहिणी देवी आप प्रगट हो कर कालसंदीपककों कहने लगी कि मत विघ्न करः– क्योंकि मैं इस सत्यकीके सिद्ध होने वाली हूं, इस वास्ते मैं सिद्ध हो गइ हूं, तब रोहिणी देवीने सत्यकीकों कहा, कि मैं तेरे शरीरमें किधरसें प्रवेश करुं? सत्यकीने कहा मेरे मस्तकमें हो कर प्रवेश कर, तब रोहिणीने मस्तकमें हो कर प्रवेश करा, तिस्सें मस्तकमें खडा पड गया तब देवीने तुष्टमान हो कर तिस मस्तककी जगों तीसरे नेत्रका आकार बना दीया तबतो सत्यकी तीन नेत्रवाला प्रसिद्ध हूआ. पीछे सत्यकीने शोचाकि पेढालने मेरी माता राजाकी कुमारी बेटीकों बिगडा है, ऐसा

शोच कर अपने पिता पेढालकों मार दीया; तब लोकोंने सत्यकीका नाम रुद्र (नयानक) रख दीया. क्योंकि जिसने अपना पिता मार दीया उससें और नयानक कौन है ? पीछें सत्यकीने विचारा कि कालसंदीपक मेरा वैरी कहां है ? जब सुना कि कालसंदीपक अमुक जगामें है, तब सत्यकी तिसके पास पहुंचा, फेर कालसंदीपक विद्याधर तहांसें नाग निकला तोनी सत्यकी तिसके पीछें लगा, तब कालसंदीपक हेठ ऊपर नागता रहा, परंतु सत्यकीने तिसका पीछा न छोडा, फेर कालसंदीपकने सत्यकीके छुलाने वास्ते तीन नगर बनाये, तब सत्यकीने विद्यासें तीनो नगरनी जलादीयें तब कालसंदीपक दौडके लवणसमुद्रके पाताल कलशमें चला गया. सत्यकीने तहां जा कर कालसंदीपककों मार म्हाला, तिस पीछे सत्यकी विद्याधर चक्रवर्त्ति हूआ, तीन संध्यामें सर्व तीर्थंकरोंकों वंदना करकें नाटक करता हूआ, तब इंद्रने सत्यकीका नाम महेश्वर दीया, तिस महेश्वरके दो शिष्य हूये, एक नंदीश्वर, दूसरा नादीया, तिनमें नादीया तो विद्यासें बैलका रूप बना लेता था, और तिस ऊपर चढके महेश्वर अनेक क्रीडा कुतूहल करता था, महेश्वर श्रीमहावीर नगवंतका अविरति सम्यग्दृष्टि श्रावक था, परंतु बडा नारी कामीथा और ब्राह्मणोंके साथ उसका बडा नारी वैर हो गया, तब विद्याके बलसें सैकडों ब्रह्मणोंकी कुमारी कन्यायोंकों विषय सेवन करकें बिगाडा, और लोक तथा राजा प्रमुखकी वहु बेटीयोंसें काम क्रीडा करने लगा. परंतु उसकी विद्यायोंके नयसें उसे कोइ कुछ कहता नहीं था, जेकर कोइ मनानी करता था, सो मारा जाताथा, महेश्वरने विद्यासें एक पुष्पक नामा विमान बनाया तिसमें बैठके जहां इछा होती तहां चला जाता था. ऐसें उसका काल व्यतीत होता था, एकदा प्रस्तावें महेश्वर उज्जयन नगरमें गया, तहां चंद प्रद्योतकी एक शिवा नामा राणीकों छोडके दूसरी सर्व राणीयोंके साथ विषय नोग करा, औरनी सर्वलोकोंके वहु बेटीयोंकों बिगाडनां शुरु करा, तब चंडप्रद्योतकों बडी चिंता हूइ, अरु विचाराकी कोइ ऐसा उपाय करीयें कि जिस्सें इस महेश्वरका विनाश (मरणं) हो जावे:- परंतु तिसकी विद्याके आगें किसीका कोइ उपाय नही चलताथा, पीछें तिस उद्ययन नगरमें एक उंमा नामा वेश्या बडी रूपवंत, रहतीथी, उसका यह कौलथा कि जो कोइ इतना धन

मुझे देवे, सो मेरेसें जोग करे, जो कोइ उसके कहे मूजब धन देता था सो उसके पास जाता था, एक दिन महेश्वर उस वेश्याके घर गया, तब तिस उमावेश्याने महेश्वरके सन्मुख दो फूल करे एकविकश हूआ दूसरा मिचा हूआ, तब महेश्वरने विकशे फूल (खिडे फूलकी) तर्फ हाथ पसारा तब उमावेश्याने मिचा हूआ कमल महेश्वरके हाथमे दीया, और कहा कि यह कमल तेरे योग्य है, तब महेश्वरनें कहा क्यों यह कमल मेरे योग्य है ? तब उमानें कहा इस मिचे हूए कमल समान कुमारी कन्या है, सो तुझकों जोग करने वास्ते वल्लन है, और मैं खिले हूए फूल समान हों, तब महेश्वरने कहा तूंजी मेरेकों बहुत वल्लन है, ऐसा कह कर महेश्वर उसके साथ जोग जोगने लगा, और तिसकेही घरमें रहने लगा, तिस उमाने महेश्वरकों अपनें वशमें कर लीया उमाका कहनां महेश्वर उल्लंघन नहीं कर सकता था, ऐसें जब कितनाकि काल व्यतीत हूआ तब चंड्प्रद्योतने उमाकों बुलायके उसकों बहुत धन, और आदर सन्मान देकर कहा कि तूं महेश्वरसें यह पूछेकि:— ऐसाजी कोइ काल है कि जिस कालमें तुमारे पास कोइजी विद्या नहीं रहती ? तब उमाने महेश्वरकों पूर्वोक्त रीतिसें पूछा, तब महेश्वरने कहा कि जबमैं मैथुन सेवता हूं तब मेरे पास कोइजी विद्या नहीं रहती, अर्थात् कोइ विद्या चलती नहीं तब उमाने चंड्प्रद्योतराजाकों सर्वकथन सुना दीया, तब राजाने उमासें कहा कि जब महेश्वर तेरेसें जोग करेगा, तब हम उसकों मारेंगे तब उमाने कहाकि मुझकों मत मारना तब चंड्प्रद्योतने कहाकि तुझकों नहीं मारेंगे ? पीछे चंड्प्रद्योतनें अपने सुजटोंकों गुप्त (छाना) उमाके घरमें छिपा रक्खा, जब महेश्वर उमाके साथ विषय सेवनमें मग्न होकें दोनोका शरीर परस्पर मिलकें एक शरीरवत् हो गया, तब राजाके सुजटोंने दोनोंहीको काट माला, और अपने नगरका उपद्रव दूर करा, पीछें महेश्वरकी सर्व विद्यायोंने उसके नंदीश्वर शिष्यकों अपना अधिष्ठाता बनाया जब नंदीश्वरने अपने गुरुकों इस विटंबनासें मारा सुना, तब विद्यासें उज्जयनके उपर शिला बनाइ, और कहने लगाकि हे मेरे दासो ! अब तुम कहां जाउगे ? में सबकों मारुगा क्योंकि मैं सर्वशक्तिमान् ईश्वर हूं किसीका मारा मैं मरता नहीं हूं, मैं सदा अविनाशी हूं, यह सुनकर बहुत लोक मरे औ

र सर्वलोक विनती करकें पगोंमें पडे, अरु कहने लगेकि, हमारा अपराध क्षमा करो, तब नंदीश्वरनें कहाकि जे कर तुम उसी अवस्थामें अर्थात् उमाकी जगमें महेश्वरका लिंग स्थापन करकें पूजो, तो मैं तुमकों जीता छोडेगा, तब लोकोने तैसेही बना कर पूजा करी, पीछे नंदीश्वरनेभी असे ही गाम गाममें नगर नगरमें लोकोंकों मरा मरा करकें मंदिर बनवाये तिनमें पूर्वोक्त आकारे जगमें लिंगस्थापन कराकें पूजा कराई, यह श्रीमहावीरके अविरतिसम्यग्दृष्टि श्रावक महेश्वरकी उत्पत्ति है.

तथा श्रीमहावीर स्वामीके विद्यमान होते राजगृह नगरमें श्रेणिकराजाकी चेल्लणा राणीके कोणिक नामा पुत्र हूआ. परंतु कोणिकका श्रेणिकके साथ पूर्व जन्मका वैर था, इस वास्ते कोणिक राजानें श्रेणिक राजाकों पकडके पिंजरेमें दे दीया, और राज सिंहासन ऊपर आप बैठा, जब अपनी माता चेलनाके मुखसें सुना कि श्रेणिककों जैसा तूं वल्लभ था. असा कोइभी पुत्र वल्लभ नहीं था, क्योंकि जब तूं बालक था तब तेरी अंगुली पक गइ थी, तिस्में तुझे रात्रिमें निंद नहीं आती थी, और तूं सर्व रात्रिमें रोता था, तब तेरा पिता तेरी अंगुलीकों अपने मुखमें ले कर चूसके उसकी राध रुधिरकों थुंकता था, इत्यादि तेरे पितानें तेरे साथ राग (स्नेह) करा है, और तुमने उस उपकारके बदले अपने पिताकों पिंजरेमें बंद कीया, वाह रे पुत्र! तेरी लायकी! यह सुनके कोणिक राजा बडा दुःखी हूआ, और रोता हूआ आप कुहाडा लेकर दौडाकि मं अपनें हाथसें पिताका पिंजरा काटकें बाहिर निकालूंगा और राजसिंहासन ऊपर बैठाउंगा परंतु जब श्रेणिकराजाने देखा कि कोणिक कुहाडा लेकर दौडा आता है, तब विचार करा कि क्याजाने मुझे किस कुमौतसें मारेगा? तब श्रेणिक राजा कुछ खाकें मर गया, जब कोणिकने आकर देखा कि पिता तो मर गया तब बहुत रोया पीटा, महाशोकमें दाह लग गया, जब राजगृहके अंदर बाहिर श्रेणिकके मकान महिल सिंहासनादि देखता है, तब बडा दिलगीर (शोकवंत) होता है, इस दुःखसें राजगृह नगरकों छोडकें चंपा नगरी अपनी राजधानी बनाकें रहने लगा, तोभी पिताके वियोगसें सेवा न करनेंसें दुःखी रहने लगा, तब प्रधान (मंत्रीयोंनें) मता करकें एक छाना पुस्तक बनवाया, उसमें असा कथन लिखवाया किः—जो पुत्र अपने

मरें हूये पिताकों पिंड प्रदान वस्त्र जोडे, आनूषण, शय्या प्रमुख ब्राह्म णोंकों देता है, वो सर्व श्राद्धादि सामग्री उसकें पिताकों प्राप्ति होते हैं, तिस पुस्तककों धुंयेके मकानमें रखकें धुंयेसें पुराने पुस्तकवत् बना दीया, तब कोणिक राजाकों सुनाया कोणिकनेजो पिताकी नक्तिवास्ते पिंड प्रदा नादि बहुत धन लगा करके करा, तबहीसें मृतकोंकों पिंड प्रदान श्रा द्धादि प्रवृत्त हूये हैं. क्योंकि जगतमें प्रसिद्ध है कि कर्ण राजाने श्राद्ध च लाये हैं, सो इसी कोणिक राजाका नाम लोकोने कर्ण राजा करकें लिखा है.

तथा अन्निका सुत जैनाचार्य अत्यंत वृद्ध गंगा नदी उतरतेकों केवल ज्ञान हूआ, और जहां प्रयाग है. तहां शरीर छोडकें मोक्ष हूआ, तिस जगे देवताओंने तिस मुनिकी महिमा करी तबसें प्रयाग तीर्थकी मानता चली. अर्थात् प्रयाग तीर्थकी उत्पत्ति हूई, महावीर स्वामीके बखतमें जो न्मरूप राजादि व्यवहारोंकाथा तथा जैनमतका जहां तक विस्तारथा सो आवश्यकसूत्र वीरचरित्र तथा वृहद्कल्पादि शास्त्रोंसें जान लेना.

तथा श्रीमहावीरके समयमें राजगृह नगरीका राजा श्रेणिक तिसके पीछें कोणिक हूआ जिसने श्रेणिककें मरनेंसें पीछें चंपानगरीकों अपनी राजधानी बनाई तिसका बेटा उदायी हूआ जिनके कोणिककें मरे पीछें उदासीसें चं पाकों छोडके पाडली पुत्र नगर (पटना) वसाकें अपनी राजधानी बनाया.

श्रीमहावीर नगवंत विक्रम संवतसें (४७०) वर्ष पहिलां पावापुरी न गरीमें हस्तपाल राजाकी पुराणी राजसनामें बहत्तर वर्षकी आयु नोगके कार्तिक वदि अमावास्याकी रात्रिके पीछले प्रहरमें पद्मासन अर्थात् चौंकडी मारे हूये, शरीरादि चार कर्मकी सर्व उपाधी छोडकें निर्वाण हूये (मोक्ष पहूंचे) तिस समयमें गौतमस्वामी और सुधर्म स्वामी यह दो बडे शिष्य जीतेथे, शेष नव बडे शिष्य तो श्रीमहावीरजीके जीते हूयेही एक मा सका अनशन करकें केवलज्ञान पाके मोक्ष चले गये थे, यह इग्यारहही बडे शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद और छे वेदांगादि सर्वशास्त्रोंके जानकार थे, इन इग्यारहोके चौतालीससै (४४००) विद्यार्थीथे.

इनोंका संबंध असें है, किः- जब नगवंत श्रीमहावीरजीकों केवलज्ञान हूआ, तिस अवसरमें मध्यपापा नगरीमें सोमल नामा ब्राह्मणने यज्ञ क रनेका आरंन करा था, और सर्व ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ विद्वान् जान कर इन पू

वोंक गौतमादि इग्याराही आचार्योंकों बुलायाथा तिस समय तिस यज्ञ पाडाके ईशान कूणमें महासेन नामा उद्यानमें श्रीमहावीर जगवंतका समवसरण रत्न सुवर्ण रौप्यमय क्रमसें तीन गढ संयुक्त देवोने बनाया तिसके वीचमें बैठकें जगवंत श्रीमहावीरस्वामी उपदेश करने लगे, तब आकाश मार्गके रस्ते सैंकडो विमनोमें बैठे हूये चार प्रकारके देवता जगवंत श्रीमहावीरके दर्शनकों और उपदेश सुननेकों आते थे, तब तिनों यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोने जाना कि यह देव सब हमारे करे हूये यज्ञकी आहुतीयों लेने आये हैं, इतनेमें देवता तो यज्ञ पाडेकों छोडके जगवानके चरणोंमें जाकर हाजर हूये, तथा और लोकजी श्रीमहावीर जगवंतका दर्शन करकें और उपदेश सुनकें गौतमादि पंमितोंके आगें कहने लगे, कि:– आज इस नगरके बाहिर सर्वज्ञ सर्वदर्शी जगवान् आया है, नतो उसके रूपकी कोई तारीफ कर सक्ता हैं, अरु न कोई उसके उपदेशसें संशय रहता है, और लाखों देवता जिनोके चरणोंकी सेवा करते हैं, ताते हमारे बडेजाग्योदय हैं, जो ऐसे सर्वज्ञ अरिहंत जगवंतका हमने दर्शन पाया ऐसा जब गौतमजीने सुना कि सर्वज्ञ आया तब मनमें ईर्ष्याकी अग्नि जडकी अरु ऐसे कहने लगाकि:– मरेसें अधिक और सर्वज्ञ कौन है? मैं आज इसका सर्वज्ञ पणा उडा देता हूं? इत्यादि गर्व संयुक्त जगवान् श्रीमहावीरके पास पहुंचा, और जगवानकों चौंत्तीश अतिशय संयुक्त देखा, तथा देवता, इंद्र, मनुष्योंसे परिवृत देखा, तब बोलनेकी शक्तिसें हीन हुवा जगवंतके सन्मुख जाके खडा हो गया तब जगवंतने कहा कि:– हे गौतम इंद्रजूति! तूं आया? तब गौतमजीने मनमें विचाराकि जो मेरा नामजी ये जानते हैं, तोजी मैं सर्व जगे प्रसिद्ध हूं मुझे कौन नहीं जानता? तो इन्ने मेरा नाम लीया, इस बातमे कुछ आश्चर्य और सर्वज्ञ इसकों नहीं मानता हूं, किंतु मेरे मनमें जो शंशय है तिसकों दूर कर देवें तोमें इसकों सर्वज्ञ मानुं, तब जगवंतने कहा, हे गौतम! तेरे मनमें यह संशय है:– जो जीवहै कि नही? और यह संशय तेरेकों वेदोंकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ है, वो श्रुतियों यह हैं सो कहते हैं.

"विज्ञानघनएवैतेज्योजूतेज्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यादि" इस्सें विरुद्ध यह श्रुति हैः– सवै अयमात्मा ज्ञानमय

इत्यादि इन श्रुतियोंका अर्थ जैसा तेरे मनमें नासन होता है. तैसाही प्रथम श्रुतिका अर्थ कहते हैं. नीलादि रूप होनेसें विज्ञानही चैतन्य है, चैतन्य विशिष्ट जो नीलादि तिस्सें जो घन सो विज्ञानघन सोविज्ञानघन इन प्रत्यक्ष परिछिद्यमान रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, इन पांच नूतोंसें उत्पन्न हो कर फेर तिनके साथही नाश हो जाता है. अर्थात् नूतोंके नाश होनेसें उनके साथ विज्ञानघनकानी नाश हो जाता है, इस हेतुसें प्रेत्यसंज्ञा नही अर्थात् मरके फेर परलोकमें और कोई नर नारकका जन्म नहीं होता, इस श्रुतिमें जीवकी नास्ती सिद्ध होती है, और दूसरी श्रुति कहती है कि:– यह आत्मा ज्ञान मय अर्थात् ज्ञान स्वरूप है, इस्में आत्माकी सिद्धी होती है, अब ये दोनो श्रुतियों परस्पर विरोधी होनेमें प्रमाण नहीं हो शक्ती हैं, और बहुत परस्पर आत्माके स्वरूपमें विरोधी मत है, कोइ कहता हैकिः– एतावानेवपुरुषो,यावानिंद्रियगोचरः॥ नद्रे वृकपदं पश्य,यद्वदंत्यबहुश्रुता॥ १॥ इस श्लोकका अर्थ चार्वाकमतमें लिख आये हैं यहनी एक आगम कहता है, तथा "न रूपं निक्षवः पुजलः" अर्थात् आत्मा अमूर्त्ति है, यहनी एक आगम कहता है, तथा "अकर्त्तानिर्गुणोनोक्ताआत्मा" अर्थः– अकर्त्ता सत्व, रज, अरु तम, इन तीनों गुणोंसें रहित सुख दुःखका नोगने वाला आत्मा है, यहनी एक आगम कहता है. अब इनमेंसें किसकों सच्चा और किसकों जूग माने? परस्पर विरोधी होनेसें सर्व तो कुछ सच्चे होही नहीं शक्ते हैं, तथा युक्ति प्रमाणसेंनी मरके परलोक जाने वाली आत्मा सिद्ध नहीं होती है, ताते हे गौतम! यह तेरे मनमें संशय है, अब इसका उत्तर कहता हूं कि तूं वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है इत्यादि श्रीगौतमजीके संशयकों दूर करा, ये सर्व अधिकार मूलावश्यक और श्रीविशेषावश्यकसें जान लेनां, मैनें ग्रंथके नारी और गहन हो जानेके सबबसें यहां नहीं लिखा क्योंकि सब इग्यारह गणधरोंके संशय दूर करनेका कथनके चार हजार श्लोक हैं. पीछे जब गौतमजीका संशय दूर हो गया, तब गौतमजी पांचसौ अपने विद्यार्थीयोंके साथ दीक्षा लेकें श्रीमहावीर नगवंतका प्रथम शिष्य हूआ.

इसीतरें इंद्रनूतिकों दीक्षित सुनके दूसरा नाई अग्निनूति बडे अनिमानमें नर कर चला और कहने लगा किः– मेरे नाईकों इंद्रजालीयेने छलसें

जीतके अपना शिष्य बना लीया, तो मैं अबी उस इंद्रजालीयेकों जींतके अपने नाईकों पीछा लाता हूं, इस विचारसें नगवंत श्रीमहावीरजीके पास पहुंचा, जब नगवानकों देखा, तब सर्व आड वाड नूल गया मुखसें बोलनेकीनी शक्ती न रही और मनमें बडा अचंना हूआ क्योंकि असा स्वरूप न उसने कबी सुनाथा और न कबी देखा था, तब नगवानने उसका नाम लीया, अग्निनूतिने विचारा कि यह मेरा नामनी जानते हैं, अथवा मैं प्रसिद्ध हूं,मुझे कौन नहीं जानता है ? परंतु मेरे मनका संशय दूर करे तो मैं इसकों सर्वज्ञ मानुं,तब नगवंतने कहा हे अग्निनूति ! तेरे मनमें यह संशय है किः– कर्म है किंवा नहीं ? यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदोंमें हूआ है, क्योंकि तूं वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है. वे वेदपद यह हैंः– "पुरुषएवेदंग्निसर्वंयद्भूतं यच्च नाव्यं उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनाऽतिरोहति यदेजति यन्नेजति यद्दूरेयदुअंतिके पदंतरस्य यदुत सर्वस्यास्य बाह्यतइत्यादि" इस्सें विरुद्ध यहश्रुति हैः– "पुण्यःपुण्येनेत्यादि" और इनका अर्थ तेरे मनमें असा नासन होता है किः– पुरुष अर्थात् आत्मा एव शब्द अवधारणके वास्ते है, सो अवधारण कर्म और प्रधानादिकोंके व्यवच्छेद वास्ते है. "इदं सर्व" अर्थात् यह सर्व प्रत्यक्ष वर्तमान चेतन अचेतन वस्तु "ग्नि" यह वाक्यालंकारमें है, यद्नूतं अर्थात् जो पीछे हूआ है और आगेकों होवेगा जो मुक्ति तथा संसार सो सर्व पुरुष आत्मा ब्रह्मही हैं, तथा उतशब्द अतिशब्दके अर्थ में है और अपि शब्द समुच्चय अर्थमें है. अमृतत्वस्य अमरणनावका अर्थात् मोक्षका ईसानःप्रनुः अर्थात् स्वामी (मालक) है, "यदिति यच्चेति" च शब्दके लोप होनेसें यदिति बना इसका अर्थ जो अन्न करकें वृद्धिकों प्राप्त होता है, "यदेजति" जो चलता है असे पशुआदिक और जो नहीं चलता है असें पर्वतादिक और जो दूर हैं मेरु आदिक "यतुअंतिके" उ शब्दअवधारणार्थमें है, जो समीप अर्थात् नेडे है, सो सर्व पूर्वोक्त पदार्थ पुरुष अर्थात् ब्रह्मही है, इस श्रुतिसें कर्मका अनाव होता है. अरु दूसरी श्रुतिसें तथा शास्त्रांतरोंसें कर्मसिद्ध होते हैं, तथा युक्तिसें कर्मसिद्ध होते नहीं क्योंकि अमूर्त्ति आत्माको मूर्त्ति कर्म लगते नहीं, इस वास्ते मैं नहीं जानता कि कर्म है वा नहीं यह संशय तेरे मनमें है, असा कह कर नगवानने वेदश्रुतियोंका अर्थ

बराबर करके तिसका पूर्वपक्ष खंमन करा, सो विस्तारमें मूलावश्यक तथा विशेषावश्यकसें जानलेना अग्निजूतिनेजी गौतमवत् दीक्षा लीनी॥ २॥

अग्निजूतिकी दीक्षा सुनके तीसरा वायुजूति आया परंतु आगे दोनो जाईयोंके दीक्षा ले लेनेसें इसकों विद्याका अजिमान कुछजी न रहा, मनमें विचार कराकि मैं जा कर जगवानकों वंदना (नमस्कार) करुंगा असा विचारके आया आ कर जगवंतकों वंदना (नमस्कार) करी तब जगवंतने कहा तेरे मनमें संशयतो है परंतु लोजसेंतूं पूछ नही शक्ता है संशय यह हेकिः– जो जीव है सो देहही है और यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदश्रुतिसें हूआ है, और तूं तिन वेदपदोंका अर्थ नहीं जानता है वे वेद पद ये हैंः– "विज्ञानघनइत्यादि" पहिले गणधरकी श्रुति जाननी इस्में देहसें न्यारा जीव (आत्मा) सिद्ध नहीं होता है, और इस श्रुतिसें विरुद्ध यह श्रुति है, "सत्येन लन्यस्तपसा ह्येषब्रह्मचर्येण नित्यज्योतिर्मयो हिशुद्धोयं पश्यंति धीरायतयः संयतात्मानइत्यादि" इस श्रुतिसें देहसें जिन्न आत्मा सिद्ध होती है, इस वास्ते तुजकों संशय है, पीछे जगवानने यह सर्व संशय दूर करे, तब तीसरा वायुजूतिनेजी अपने पांच सो विद्यार्थीयोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥

वायुजूतिकी तरें शेष आठ गणधर क्रमसें आये, तिसमें चौथा अव्यक्तजी आया तिनके मनमें यह संशयथा किः– पांचजूत हैं कि नही? यह संशय विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ वे परस्पर विरुद्ध श्रुतियों यह हैंः– "स्वप्नोपम वै सकलमित्येव ब्रह्मविधिरंजसाविज्ञेयइत्यादीनि" तथा इससें विरुद्ध यह श्रुति है "द्यावापृथिवी जनयन्देवइत्यादि" तथा पृथिवीदेवता, आपो देवता, इत्यादीनि इनका अर्थ तेरे मनमें असा जासन होता हैः– अर्थ स्वप्न सरीखा वैनिपात अवधारणार्थे संपूर्ण जगत है "एष ब्रह्मविधि" अर्थात् यह परमार्थ प्रकार है, अंजसा सीधेन्यायसें जाननां योग्य है, यह श्रुति पांचजूतका अजाव कहती हैं, और श्रुतियों पांचजूतकी सत्ताकों कहतीयों हैं, इस वास्ते तेरेकों संशय है, तेरे मनमें यहजी हेकिः– युक्तिसें पांचजूतसिद्ध नहीं होते हैं. पीछे जगवानने इसका पूर्वपक्ष खंमन करा वेदपदोंका यथार्थ अर्थ कराये,यह अधिकार उक्त ग्रंथोंसें जान लेनां यह सुन कर चौथा वायुजूतिनेजी अपने पांचसौ शिष्योंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ४ ॥

तब पांचमां सुधर्म नामा गणधर आया इसकाभी उसी तरें सर्वाधि कार जानलेनां, यावत् तेरे मनमें यह संशय है किः- मनुष्यादि सर्व जैसें इस भवमें हैं तैसेंही अगले जन्ममें होते हैं ? कि मनुष्य कुछ और पशुआ दिभी बन जाते हैं ? यह संशय तेरेकों परस्पर विरुद्ध वेद श्रुतियोंसें हूआ है सो वेद श्रुतियों यह हैंः-"पुरुषोवैपुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वं इत्यादीनि" यह श्रुति जैसा इस जन्ममें पुरुष स्त्री आदि हैं वे पर जन्ममेंभी ऐसेही हो वेंगे इस्सें विरुद्ध यह श्रुति हैं "शृगालोवैएषजायते यः सपुरीषोदह्यतइ त्यादि इन सर्व श्रुतियोंका भगवानने अर्थ करकें संशय दूर करा, तब अ पने पांच शिष्यके साथ दीक्षा लीनी ॥ ५ ॥

तिस पीछें छठा मंडिक पुत्र आया, तिसके मनमें यह संशय था, कि बंध मोक्ष है, वा नही है ? यह संशयभी विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ है, सो श्रुतियों यह हैंः-"स एष विगुणोविभुर्न बध्यते, संसरति वा न मुच्यते मो चयति वा ॥ एष बाह्यमभ्यंतरं वा वेदइत्यादीनि" इस श्रुतिका ऐसा अर्थ तेरे मनमें भासन होता है, "एषअधिकृतजीवः" अर्थात् यह जीव जि सका अधिकार है "विगुणः" अर्थात् सत्वादि गुण रहित सर्वगत सर्वव्या पक पुण्य पाप करकें इसकों बंध नहीं होता है, और संसारमें भ्रमणभी नहीं करता है, और कर्मोंसें छूटताभी नहीं है, बंधके अभाव होनेसें दूस रोंकों कर्मबंधसें छुडाताभी नहीं है, इस कहनेमें आत्मा अकर्त्ता है, सोई कहता हैः- यह पुरुष अपणी आत्मासें बाहिर महत् अहंकारादि और अभ्यंतर स्वरूप अपना जानता नही क्योंकि जानना ज्ञानसें होता है, और ज्ञानजो है, सो प्रकृतिका धर्म है, और प्रकृति अचेतन है, बंध मोक्ष नही इस श्रुतिसें बंध मोक्षका अभाव सिद्ध होता है,अब इस्सें विरुद्ध श्रुति यह है सो कहते हैंः- "नही वैसशरीरस्य, प्रिया प्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसंतं प्रिया प्रिये नस्पृशत इत्यादीनि" इशका अर्थ कहते हैंः- सशरीरस्य अर्थात् शरीर सहितकों सुख दुःखका अभाव कदापि नहीं होता है, तात्पर्य यह हैकिः- संसारी जीव सुख दुःखसें रहित नहीं होता है, और अमूर्त्त आत्माकों कारणके अभावसें सुख दुःख स्पर्श नहीं कर शक्ते हैं, इस श्रुतिसें बंध मोक्ष सिद्ध होते हैं, तथा तेरे मनमें यहभी बात हैः- किः- युक्तिसेंभी बंध मोक्ष सिद्ध नहीं होते हैं इत्यादि संशय कह कर भग

वानने तिसके पूर्वपक्षोंकों खंमन करकें संशय दूर करा,तब मंमितपुत्र साढे तीनसौ विद्यार्थियोंके साथ दीक्षित नया ॥ ६ ॥

७ तिस पीछें सातवां मोर्यपुत्र आया तिसके मनमें यह संशयथा किः— देवता हैं किंवा नही है ? यह संशय परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ वो श्रुतियों यह हैंः— सएषयज्ञायुधीयजमानोंज सास्वर्गलोकं गछति इत्यादि श्रुतियों स्वर्ग तथा देवताओंकी सिद्धि करतीयों हैं, इस्सें विरुद्ध श्रुति यह हैंः— अपामसोमं अमृता अनूम, अगमामज्योतिर्विंदामदेवान् ॥ किंनूनम स्मान्तृणवदरातिः किमुधूर्त्ति रमृतमर्त्यस्येत्यादीनि" तथा कोजानाति मा योपमान् गीर्वाणानिं इयमवरुणकुबेरादीन् इत्यादि" इनका असा अर्थ तेरे मनमें नासन होता है किः— पाणीकों पीते हूये एतावता सोमलताका रस पीते हूये अमृत (अमरण) धर्मवाले हम हूये हैं, ज्योति स्वर्ग और देवताकों हम नही जानते हैं तथा देवता हम हूये हैं, यहनी नहीं जानते देवता तृणेकी तरें हमारा क्या कर शक्ते हैं ? यह श्रुति अनाव प्रतिपादन करती है, और यह नावकी प्रतिपादक है, "धूर्त्तिजराअमृतमर्त्यस्य" अमृतत्व प्राप्त पुरुषकों क्या कर सक्ती है ? इन श्रुतियोंका यथार्थ अर्थ करकें और तिसका पूर्वपक्ष खंमन करकें नगवंतने इनका संशय दूर करा, तब यहनी साढे तीनसो गात्रोंके साथ दीक्षित नया ॥ ७ ॥

८ तिस पीछें आठमा अकंपिक आया उसके मनमेंनी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसें नरकवासी है कि नही ? यह संशय उत्पन्न हूआ था, वो परस्पर विरुद्ध श्रुतियों लिखते हैंः—"नारको वै एष जायतेयः शुद्रान्न मश्नाति इत्यादि" इसका अर्थः— यह ब्राह्मण नारक होवेगा जो शूद्रका अन्न खाता है, इस श्रुतिसें नरक सिद्ध होता है, तथा "नह वैप्रेत्यनरके नारकाः संतीत्यादि सुगमार्थः इसश्रुतिसें नरकका अनाव सिद्ध होता है इनका अर्थ करकें और पूर्वपक्ष खंमन करकें नगवान्ने तिसका संशय दूर करा तब अंक पिकनेनी तीन सौ गात्रोंके साथ दीक्षालीनी ॥ ८ ॥

९ तिस पीछें नवमा अचलभ्राता आया तिसकोंनी परस्पर वेदकी विरुद्ध श्रुतियोंकेपदोंसें पुण्य पाप है, कि नही ? यह संशय था, सो वेद पद यह हैंः— "पुरुषएवेदंग्निसर्वंइत्यादि दूसरे गणधर वत् इस्सें विरुद्धपद यह हैः— "पुण्य.पुण्येन कर्मणा नवति, पापं पापेन कर्मणा नवति इत्यादि" इस्सें

पुण्यपाप सिद्ध होते हैं, यह संशयभी भगवानने दूर करा, तब यहभी तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षित भया ॥ ९ ॥

१० तिस पीछे दशमा मेतार्य आया उसकोंभी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें यह संशयहूआ था, किः—परलोक है किंवा नहीं है? वो श्रुतियों यह हैः— "विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अभाव कथक श्रुति जाननी" तथा "स वैअयं आत्मा ज्ञानमयइत्यादि" परलोक भाव प्रतिपादक श्रुति जाननी इनका तात्पर्य भगवानने कहा तब मेतार्यजीनेभी निःशंक होकें तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीछे इग्यारहवा प्रभास नामा गणधर आया, तिसके मनमेंभी वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसें यह संशयथा कि निर्वाण है कि नही है? वो श्रुतियों यह हैंः— "जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्नि होत्रं" इससें विरुद्ध श्रुति यह हैः— "द्वेब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञानमनंतंब्रह्मेति" इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें भासन होता है किः—अग्निहोत्र जो है, सो जीव हिंसा संयुक्त है, और जरा मरणका कारण है, अरु वेदमें अग्नि होत्र निरंतर करणां कहा है, तब ऐसा कौनसा काल है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीयें? इस वास्ते आत्माकों मोक्ष (निर्वाण) कदापि नहीं हो शक्ता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिभी कहती है, इस वास्ते संशय हूआ है इसका जब भगवान्ने उत्तरदे के निशंक करा तब तीनसौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी. यह श्रीमहावीर भगवंतके वैशाखशुदि दशमीके दिन मध्यपापानगरीके महासेन वनमे (४४००) शिष्य हूये. तिस पीछे राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयों आदिकने दीक्षा लीनी. तथा जब भगवंत श्रीमहावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इंद्रभूति अर्थात् गौतमगणधरकों केवल ज्ञान हूआ, तब इंद्रोंने निर्वाण महोत्सव करा, और सुधर्मास्वामीजीकों श्रीमहावीर स्वामीजीकी गद्दी ऊपर बैठाया श्रीगौतमजीकों गद्दी इस वास्ते न हूइ की केवलज्ञानी पुरुष कोइ पाट ऊपरनहीं बैठता है. क्योंकि केवली तो जो पूछे उसका उत्तर अपने ज्ञानसेही देता है, परंतु ऐसा नहीं कहता है किः— मैं अमुक तीर्थंकरकें कहनेसें कहता हूं, इस वास्ते केवलज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैठता है, जेकर बैठे तो तीर्थंकरका

शासन दूर हो जावे, यह कभी हो न शक्ती जो अनादि रीतिकों के भी भंग करे, इस वास्ते श्रीगौतमजी केवल ज्ञानी था सो गद्दी ऊपर नही बैठे और सुधर्म स्वामी बैठे.

१ श्रीसुधर्म स्वामी पचास वर्ष तो गृहस्थावास (घरमें) रहे, और तीस वर्ष श्रीमहावीर भगवंतकी चरण सेवा करी, जब श्रीमहावीर निर्वाण हूआ. तिस पीछें बारां वर्ष तक छद्मस्थ रहे, और आठ वर्ष केवली रहे, क्योंकि श्रीमहावीर अर्हंतके पीछें केवली हो कर बारां वर्ष श्रीगौतमजी जीते रहे. और श्रीगौतमजीके निर्वाण पीछें श्रीसुधर्म स्वामीजीकों केवल ज्ञान हूआ, केवली हो कर आठ वर्ष जीते रहे, श्रीसुधर्म स्वामी जीकी सर्वायु एक सौ (१००) वर्षकी थी, सो श्रीमहावीरजीके पीछें वीश वर्ष मोक्ष गये २ श्रीसुधर्म स्वामी के पाट उपर श्रीजंबूस्वामी बैठे सो राजगृहनगरका वासी श्रीऋषभदत्तश्रेष्ठकी धारिणी नामा स्त्रीमें जन्मेथे नि नानवे क्रोड सोनइये और आठ स्त्रीयोंकों छोड कर दीक्षा लेता भया, शो लांवर्ष गृहस्थ वासमें रहे. वीश वर्ष व्रतपर्याय. औ चौतालीस वर्ष केवलपर्याय पालके श्रीमहावीरके निर्वाण पीछें चौशठमें वर्ष मोक्ष गये.

यह श्रीजंबूस्वामीके पीछें भरतक्षेत्रमें दश बातें विछेद हो गइ तिसका नाम लिखते हैं:– १ मनः पर्यायज्ञान, २ परमावधि ज्ञान, ३ पुलाक लब्धि. ४ आहारकशरीर, ५ क्षपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकल्पमुनिकी रीति. ८ परिहारविशुद्धिचारित्र, तथा सूक्ष्मसंपराय, और यथाख्यात, यह तीन तरेंके संयम, ९ केवलज्ञान, १० मोक्ष होनां, यह दश वस्तु विछेद हो गइ, श्रीमहावीर भगवंतके केवली हूये, पीछें जब चौदह वर्ष बीते थे; तब जमाली नामा, प्रथम निन्हव हूआ, और शोलां वर्ष पीछें तिष्य गुप्त नामा दूसरा निन्हव हूआ. श्री जंबुस्वामीकी आयु एंसी वर्षकी थी.

३ जंबूस्वामीके पाट ऊपर प्रभवा स्वामी बैठे, तिनकी उत्पति ऐसें हैः– विंध्याचल पर्वतके पास जयपुर नामा पत्तन था, तिसका विंध्य नामा राजा था तिसके दो पुत्र थे एक वडा प्रभव दूसरा छोटा प्रभु, विंध्यराजाने किसी कारणसें छोटे पुत्र प्रभुकों राज तिलक दे दीया, तब वडा बेटा प्रभव गुस्सें हो कर जयपुर पत्तनसें निकल कर विंध्याचलकी विषम जगामें गाम वसा कर रहने लगा, और खात्रखनन, बंदिग्रहण,

रस्ते लूंटनादि, अनेक तरेंकी चोरीयोंसें अपने परिवारकी आजीविका करता था, एक दिन पांच सौ चोरोंकों ले कर राजगृह नगरमें जंबूजीके घरकों लूटनें आया, तहां जंबूस्वामीने तिसकों प्रतिबोध करा, तब तिसने पांच सौ चोरोंके साथ दीक्षा श्रीजंबूजीके साथ लीनी· इत्यादि जंबूजीका और प्रभवजीका अधिकार जंबूचरित्र तथा परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसें जान लेनां. प्रभव स्वामी तीस वर्ष गृहस्थ पर्याय, चौतालीश वर्ष व्रतपर्याय, तथा एकादश वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्व पंचाशी वर्षकी आयु पूरी करकें श्री महावीरसें पंचहत्तर वर्ष पीछें स्वर्ग गया.

४ श्रीप्रभवस्वामीके पाट ऊपर श्रीशिय्यंभव स्वामी बैठे, जिनोने मनक साधुके वास्ते दशवैकालिक सूत्र बनाया, तिनकी उत्पत्ति ऐसें हैः– एकदा प्रस्तावें प्रभवस्वामीनें रात्रिमें विचार कराकि मेरे पाट ऊपर कौन बैठेगा ? पीछें ज्ञान बलसें अपणे सर्वसंघमें पाट योग्य कोइ न देखा, तब परदर्शनीयोंकों ज्ञान बलसें देखने लगा तब राजग्रह नगरमें शिय्यंभव भट्टकों यज्ञ करते हूयेकों अपने पाट योग्य देखा. पीछें प्रभव स्वामी विहार करकें सपरिवार राजगृह नगरमें आये तहां दो साधुओंकों आदेश दीयाकि तुम यज्ञ पाडेमें जाकर भिक्षाके वास्ते धर्म लाभ कहो, और यज्ञ करने वालोंकों ऐसे कहोः– " अहोकष्ट महोकष्ट तत्वं विज्ञायते नहि " तब तिन साधुओंनें पूर्वोक्त गुरुका कहना सर्व कीया, जब ब्राह्मणोनें " अहोकष्ट " इत्यादि सुना और तिस यज्ञ वाडेमें शिय्यंभव ब्राह्मणने यज्ञ दीक्षा लीनी थी, तिसने यज्ञ वाडेके दरवाजेमें खडेनें अहो कष्ट इत्यादि मुनियोंका कहनां सुनके विचार करनें लगा कि ऐसा उपशम प्रधान साधु होते हैं, इस वास्ते यह असत्य (झूठ) नहीं बोलते हैं. इस्सें मनमें संशय होगया, तब उपाध्यायकों पूछा कि तत्त्व क्या है ? तब उपाध्यायने कहा कि चार वेदमें जो कथन करा है, सो तत्त्व है, क्योंकि वेदोंके शिवाय और कोइ तत्त्व नहीं है ? तब शिय्यंभवने कहा कि तूं दक्षिणाकें लोभसें मुझकों तत्त्व नहीं बतलाता है, क्योंकि राग द्वेष रहित, निर्मम, निःपरिग्रह, शांत, दांत, महांत मुनियोंका कहनां झूठा नहीं होता है. और तूं मेरा गुरु नहीं तैनें तो जन्मसें इस जगत्कों ठगनांही सीखा है, इस वास्ते तूं शिक्षाके योग्य है इस वास्ते याती मुझे

तत्त्व कह दे? नहीं तो तलवारसें तेरा शिर छेद करुंगा औसें कहके जब मियानसें तलवार काढी तब उपाध्यायने प्राणांत कष्ट देखकें कहा हमारे वेदोंमेंभी औसें लिखा है और हमारी आम्नायभी यही है, जब हमारा कोइ शिर छेदे, तब तत्त्व कहनां, नहीं तो नहीं कहनां तिस वास्तेमें तुमकों तत्त्व कह देता हूंकि इस यज्ञ स्थंभकें हेठ अर्हंतकी प्रतिमा स्थापन करी है, और नीचेही तिसकों प्रछन्न हो कर पूजते हैं, तिसके प्रभावसें यज्ञके सर्व विघ्न दूर हो जाते हैं, जेकर यज्ञस्थंभके नीचे अर्हंतकी प्रतिमा न राखें तो महातपा सिद्ध पुत्र और नारद ये दोनो यज्ञकों विध्वंस कर देते हैं,पीछें उपाध्यायने यज्ञ स्थंभ उखाडके अर्हंतकी प्रतिमा दिखाइ और कहा कि यह प्रतिमा जिस देवकी है, तिस अर्हंतका कहा हूआ धर्म जीवदया रूप तत्त्व है, और यह जो वेद प्रतिपाद्य यज्ञ हैं, वे सर्व हिंसात्मक रूप होनेसें विडंबना रूप हैं, परंतु क्याकरें? जेकर हम औसें न करें तो हमारी आजीविका नहीं चलती है, अब तूं तत्त्व जानले और मुझकों छोड दे अरु तुं परमार्हत होजा क्योंकि मैनें अपने पेटके वास्ते तुझकों बहुत दिन बहकाया है, तब शिय्यंभवने नमस्कार करकें कहा तूं यथार्थ तत्त्वके प्रकाश करनेसें सच्चा उपाध्याय है, औसा कह कर शिय्यंभवने तुष्टमान हो कर यज्ञकी सामग्री जो सुवर्णपात्रादिथे,वे सर्व उपाध्यायकों दे दइ, और प्रभवस्वामीके पास जा कर तत्त्वका स्वरूप पूछ कर दीक्षा ले ली थी, शेष इनका वृत्तांत परिशिष्टपर्व ग्रंथसें जान लेनां. शिय्यंभवस्वामी अठाइस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, इग्यारह वर्ष सामान्य साधु व्रतमें रहे, और तेइस वर्ष युगप्रधानाचार्य पदवीमें रहे, इसीतरें सर्वायु बाशठ वर्ष भोगकें श्रीमहावीर भगवंतके अठानवे वर्ष पीछें स्वर्ग गये.

५ श्रीशिय्यंभवस्वामीके पाट उपर यशोभद्र स्वामी बैठे. सो बावीश वर्ष गृहस्थावासमें रहे, और चौदह वर्ष व्रत पर्यायमें रहे अरु पंचास वर्ष तक युगप्रधान पदवीमें रहे, इसीतरें सर्वायु छयासी वर्षकी भोगके श्रीमहावीरसें (१४८) वर्ष पीछें स्वर्गमें गये.

६ श्रीयशोभद्रस्वामीके पाट ऊपर एक संभूतविजय और दूसरे श्रीभद्रबाहु, यह दोनो बैठे, तिनमें संभूतविजय तो बैतालीस वर्ष तक गृहस्थ रहे, और चालीश वर्ष व्रत पर्याय तथा आठ वर्ष युग प्रधान पदवी स

र्वायु नवे वर्ष जोगके स्वर्गमें गये, और जद्रबाहुस्वामीने १ आवश्यक निर्युक्ति २ दशवैकालिकनिर्युक्ति ३ उत्तराध्ययन निर्युक्ति ४ आचारांगकी निर्युक्ति, ५ सूत्रकृदंग निर्युक्ति, ६ सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ७ ऋषिजाषित नि र्युक्ति, ८ कल्प निर्युक्ति, ए व्यवहार निर्युक्ति, १० दशा निर्युक्ति, ये दश निर्युक्तियों और १ कल्प, २ व्यवहार, ३ दशाश्रुतस्कंध, यह नवमे पूर्वसें उद्धार करके बनाये और एक बहुत बडा जद्रबाहु नामे संहिता ज्यो तिष शास्त्र बनाया, उपसर्गहर स्तोत्र बनाया, जैनमतीयों उपर बहुत उ पकार करा इनही जद्रबाहुजीका सगा जाइ वराहमेहर हूआ. वो पहिलें तो जैनमतका साधु हूआ था, फेर साधुपणां छोडके वराही संहिता बनाइ और जो वराह मिहर विक्रमादित्यकी सन्नाका पंमित था, वो दूसरा वरा हमिहर था, संहिता कारक वो नहीं हूआ. इसका संपूर्ण वृत्तांत परिशिष्ट पर्वसें जान लेनां श्रीजद्रबाहुस्वामी गृहस्थावासमें पंतालीश वर्ष रहे, स त्तारे वर्ष व्रतपर्याय, अरु चौदह वर्ष युगप्रधान, सब मिल कर बहुत्तर व र्षकी आयु जोगके श्रीमहावीरसें एकसौ सत्तर (१७०) वर्ष पीछें स्वर्ग गये.

७ यह श्रीसंजूतविजय अरु जद्रबाहुस्वामीके पाट ऊपर श्रीस्थूलजद्र स्वामी बैठे इनका बहुत वृत्तांत है, सो परिशिष्टपर्वग्रंथमें जान लेनां, १ प्रजवस्वामी, २ शिय्यंनवस्वामी, ३ यशोजद्रस्वामी, ४ संजूतविजय, ५ जद्रबाहुस्वामी, ६ स्थूलजद्र,यह छहों आचार्य चौदह पूर्वके वेत्ता थे. श्री थूलजद्रस्वामी तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, चोवीश वर्ष व्रतपर्याय, अरु पैंतालीस वर्षयुगप्रधान पदवी,सर्वायु निनानवें वर्षकी जोगकें श्रीमहावीरके पीछे (२१५) वर्षे स्वर्ग गये श्रीमहावीरसें दोसौ चौदह वर्ष पीछें आषाढा चार्यके शिष्य तीसरे निन्हव हूये.

स्थूलिजद्रके वखतमें नवनंदोंका एक सौ पंचावन (१५५) वर्षका राज्य उछेद करकें चाणाक्य ब्राह्मणने चंद्रगुप्तराजाकों राजसिंहासन उपर बैठाया, और चंद्रगुप्तके संतानोंनें एक सौ आठ वर्ष तक राज्य कीया चंद्र गुप्त मोरपालका बेटा था, इस वास्ते चंद्रगुप्तका मौर्यवंश कहते हैं. यह चंद्रगुप्त जैनमतका धारक श्रावक राजा था, यह चंद्रगुप्त तथा नवनंदका वृत्तांत देखनां होवे, तदा परिशिष्ट पर्व, उत्तराध्ययनवृत्ति तथा आवश्य क वृत्तिसें देख लेनां.

श्री स्थूलभद्रस्वामीके पीछें उपर ले चार पूर्व, प्रथम संहनन, प्रथम संस्थान, व्यवछेद हो गये, तथा श्रीमहावीरसें दोसौ बीस (२२०) वर्ष पीछे अश्वमित्र नामा चौथा क्षणिकवादि निन्हव हूआ, और श्री स्थूलभद्रजीके समयमें बारां वर्षका दुर्भिक्ष (काल) पडा उस समयमें चंद्रगुप्तका राज था. तथा श्री महावीरके पीछें (२२८) वर्ष व्यतीत हूए गंग नामा पांचमां निन्हव हूआ.

८ श्री स्थूलभद्रके पीछे श्री स्थूलभद्रजीके दो शिष्य एक आर्यमहागिरि, और दूसरा सुहस्ति सूरि, आठमें पाट उपर बैठे, तिसमें आर्यमहागिरिके शिष्य १ बहुल, २ बलिस्सह, फेर बलिस्सहका शिष्य श्री उमास्वातीजी जिसनें तत्त्वार्थादि सूत्र रचे हैं, और उमास्वातीका शिष्य श्यामाचार्य जिसने प्रज्ञापना (पन्नवणासूत्र) बनाया, यह श्यामाचार्य श्रीमहावीरसें तीन सौ छिहत्तर वर्ष पीछें स्वर्ग गया, और आर्य महागिरजी तीस वर्ष गृहवासमें रहे, चालीस वर्ष व्रत पर्याय अरु तीस वर्ष युगप्रधान पदवी सर्वायु एक सौ वर्षकी भोगके स्वर्ग गया.

और दूसरा आठमें पाटवाला सुहस्तिसूरि, जिसनें एक भिखारीकों दीक्षा दीनी वो भिखारी काल करकें चंद्रगुप्तका बेटा बिंदुसार और बिंदुसारका बेटा अशोक और अशोकका बेटा कुणाल तिस कुणालका बेटा संप्रति राजा हूआ, तिस संप्रति राजाने जैनधर्मकी बहुत वृद्धि करी, क्योंकि कल्प सूत्रके प्रथम उद्देसेमें श्रीमहावीरके समयमें अबकी निसबत बहुत थोडे देशोमें जैनधर्म लिखा है, मारवाड, गुजरात, दक्षिण, पंजाब वगैरे देशोमें जो जैनधर्म है, सो संप्रति राजाहीसें फेला है, यद्यपि इस कालमें जैनी राजाके न होनेसें जैनधर्म सर्व जगें नही, परंतु संप्रतिराजाके समयमें बहुत उन्नति पर था, क्योंकि संप्रति राजाका राज्य मध्यखंड और गंगापार और सिंधु पारके सर्व देशोमें था, संप्रति राजाने अपने नौकरोंकों जैनके साधुओंका वेष बना कर अपने सेवक राजाओंके जो शक, यवन. फारसादि देशों थे, तिन देशोंमें भेजे, तिनोने तिन राजाओंकों जैनके साधुओंका आहार विहार आचारादि सर्व बताया. और समझाया पीछेसें साधुओंका विहार तिन देशोंमें कराकर लोकोंकों जैन धर्मी करा, और संप्रति राजाने (९९०००) निनानवें हजार जीर्ण (पु

राने) जिनमंदिरोंका उद्धार कराया अर्थात् पुरानें टूटेफूटोंकों नवा बनाया, और छवीस हजार (२६०००) नवीन जिनमंदिर बनवाये, और सोने, चांदी पीतल, पाषाण, प्रमुखकी सवा क्रोड प्रतिमा बनवाइ, तिसके बनवायें मंदिर नमौल, गिरनार. शत्रुंजय, रतलाम, प्रमुख अनेक स्थानोंमें खडे हमनें अपनी आंखोसें देखे हैं, और संप्रतिकी बनवाइ जिनप्रतिमा तो हमने सैंकडो देखी हैं, इस संप्रति राजाका वृत्तांत परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसें समग्र जान लेनां.

तिसही सुहस्ती सूरि आचार्यने उजयनकी रहने वाली नद्रसेठानीका पुत्र अवंती सुकुमालकों दीक्षा दीनी. और जहां उस अवंती सुकुमालने काल करा था, तिस जगे तिस अवंती सुकुमालके महाकाल नाम पुत्रने जिनमंदिर बनवाया, और तिस मंदिरमें अपने पिताके नामसें अवंति पार्श्वनाथकी मूर्त्ति स्थापन करी, कालांतरमें ब्राह्मणोने आपना जोर पा कर तिस मंदिरमें मूर्त्तिकों हेठ दाब कर उपर महादेवका लिंग स्थापन करकें महाकाल (महादेवका) मंदिर प्रसिद्ध कर दीया, पीछे जब राजा विक्रम उजयनमें राजा हूआ, तिस अवसरमें कुमुदचंद्र अर्थात् सिद्धसेन दिवाकर नामा जैनाचार्यने कल्याणमंदिर स्तोत्र बनाया, तब शिवका लिंग फटकर वीचमेंसुं पूर्वोक्त पार्श्वनाथकी मूर्त्ति फिर प्रगट हूइ.

इसका संबंध ऐसा हैकिः– विद्याधर गछमें स्कंदिलाचार्य तिनका शिष्य वृद्धवादि आचार्य था, तिस अवसरमें उजयनका राजा विक्रमादित्य था, तिसका मंत्री कात्यायन गोत्री देवऋषिनामा ब्राह्मण तिसकी देवसिका नामा स्त्री, तिनका पुत्र सिद्धसेन सो विद्याके अनिमानमें सारे जगतके लोकोंकों तृणवत् (घासफुसशमान) समजता था, और ऐसा जानता था किः– मेरे समान बुद्धिमान् कोइनी नहीं, और जो मुजकों वादमें जींत लेवे, तो मैं उसकाही शिष्य बन जाऊंगा पीछें तिसने वृद्धवादीकी बहुत कीर्त्ति सुनी उनके सन्मुख जाने वास्ते सुखासन ऊपर बैठकें नृगुकछ (नडौंच) कीतरफ चला जाता था, तिस अवसरमें वृद्धवादीनी रस्तेमें सन्मुख आता हूआ मिला, तब आपसमें दोनोका आलाप संलाप हूआ पीछें सिद्धसेनजीने कहा कि मेरे साथ तुम वाद करो, तब वृद्धवादीने कहाकि वाद तो करुं, परंतु इस जंगलमें जीते हारेका कहनेवाला कोइ शाक्षी

नहीं, तब सिद्धसेनजीने कहा कि यह जो गौ चरानेवाले गोप हैं, येही मेरे तुमारे साक्षी रहे, ये जिसकों कहदेंगे हारा सो हारा, तब वृद्धवादीने कहा बहुत अच्छा, येही साक्षी रहे, अब तुम बोलो तब सिद्धसेनजीने बहुतसंस्कृत भाषा बोली और चुप करी तब गोपोंने कहा यह तो कुछभी नहीं जानता, केवल ऊंचा बोलके हमारे कानोंकों पीडा देता है, तब गोप कहने लगे हे वृद्ध ! तूं बोल ? पीछे वृद्धवादी अवसर देख कें कछा बांध कर तिन गोपोंकी भाषामें कहने लगे, और थोडे थोडे कूदनेभी लगे, जो छंद उच्चारा सो कहते हैं. " नविमारियें नविचोरियें, परदारागमणनिवारिये ॥ थोवाथोवंदाइयें, सग्गिमट्टमट्टेजाइयें ॥ १ ॥ फेरभी बोले और नाचने लगे ॥ छंद ॥ कालो कंबल नीचोवट्ट, छाछें भरिउ दीवडो पट्ट ॥ एवड पडीउंनीले जाड, अवरकिसोछे सग्ग निलाड ॥ २ ॥ यह सुनकर गोप बहुत खुशी हूये और कहने लगेकि वृद्धवादी सर्वज्ञ है, इसने कैसा मीठा कानोंकों सुखदायी हमारे योग्य उपदेश कहा, और सिद्धसेन तो कुछ नहीं जानता तब सिद्धसेनजीने वृद्धवादीकों कहा कि हे भगवन् ! तुम मुझकों दीक्षा देकें अपना शिष्य बनाउ क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा थी के जो गोप मुझे हाराकहेंगे, तो मैं हारा, और तुमारा शिष्य बनूंगा यह सुनकर वृद्धवादीने कहा कि भृगुपुरमें राजसभाके बीच तेरा मेरा वाद होवेगा, परंतु यह गोपोंकी सभामें वादही क्या है? तब सिद्धसेनने कहा मैं अवसर नहीं जानता, तुम अवसरके ज्ञाता हो, इस वास्ते मैं हारा पीछे वृद्धवादीने राजसभामें उसको पराजय करा, तब सिद्धसेनने दीक्षा लीनी, गुरुने उनका नाम कुमुदचंद्रजी दीया, पीछे जब आचार्य पदवी दीनी, तब फिर सिद्धसेन दिवाकर नाम रक्खा. पीछे वृद्धवादी तो और कहीकों विहार कर गये, और सिद्धसेन दिवाकर अवंती (उज्जयनमें) गये, तब उज्जयनका संघ सन्मुख आया, और सिद्धसेन दिवाकरकों सर्वज्ञ पुत्र ऐसा बिरुद दीया, ऐसा विरुद बोलते हूए अवंती नगरीके चौकमें लाये, तिस अवसरमें राजाविक्रमादित्य हाथी ऊपर चढा हूआ सन्मुख मिला तब राजानें सर्वज्ञ पुत्र ऐसा बिरुद सुनके तिनकी परीक्षा वास्ते हाथी ऊपर बेठेहीनें मनसें नमस्कार करा तब आचार्यने धर्मलाभ कहा, तब राजाने पूछाकि विनाही वंदना करे, आप मेरेकों धर्मलाभ क्यों कर कहा ? क्या यह

धर्मलाभ बहुत सस्ता है? तब आचार्यने कहा यह धर्मलाभ क्रोडचिंतामणि रत्नोंसेंभी अधिक है. जो कोइ हमकों वंदना करता हैं, उसकों हम धर्मलाभ कहते हैं. और ऐसेंभी नहीं, जो तुमने हमकों वंदना नहीं करी? तुमनेभी अपने मनसें वंदना करी, तो मनही सर्व कार्योंमें प्रधान है, इस वास्ते हमने धर्म लाभ कहा है, और तुमनेंभी मेरी परीक्षा वास्तेही मनमें नमस्कार करा है, तब विक्रमराजा तुष्टमान हो कर हाथीसें नीचें उतर कर सर्वसंघकी समक्ष वंदना करी, और एक क्रोड अशर्फी दीनी परंतु आचार्यने अशर्फीयों नही लीनी क्योंकि वे त्यागी थे, और राजाभी पीछा नहीं लेता, तब आचार्यकी आज्ञासें संघपुरुषोने जीर्णोद्धारमें लगा दीनी, राजाके दफतरमें तो ऐसा लिखा है ॥श्लोक॥ धर्मलाभ इतिप्रोक्ते, दूरा दुछ्रितपाणये ॥ सूरये सिद्धसेनाय, ददौकोटिं धराधिपः ॥१॥ श्रीविक्रमराजाके आगें सिद्धसेन दिवाकरने ऐसेंभी कहा था कि ॥गाथा॥ पुन्ने वास सहस्से, सयंमि वरिसाण नवनवइकलि ए ॥ होइ कुमर नरिंदो, तुहविक्कम राय सारिछो ॥ १ ॥ अन्यदा सिद्धसेन चित्रकूटमें गये तहां बहुत पुराने जिनमंदिरमें एक बडा मोटा स्थंभ देखा, तब किसीकों पूछाकि यह स्थंभ किसतरांका है? यह सुन कर किसीनें कहा कि यह स्थंभ औषध द्रव्यमय जलादि करकें अभेद्य वज्रवत् है. इस स्थंभमें पूर्वाचार्योंनें बहुत रहस्य विद्याके पुस्तक स्थापन करे हैं, परंतु किसीमें यह स्थंभ खुलता नहीं यह सुन कर सिद्धसेन आचार्यने तिस स्थंभकों सूंघा तिसकी गंधसें तिसकी प्रतिपक्षी औषधीयोंका रस छांटा तिस्सें वो स्थंभ कमलकी तरें खिड गया, तब तिसमें पुस्तक देखा तिनमें सु एक पुस्तक ले कर वांचा, तिसके प्रथम पत्रमें दो विद्या लिखी पाइ, एक सरसों विद्या और दूसरी सुवर्णविद्या. तिसमें सरसों विद्या उसको कहते है, कि जो काम पडे तब मंत्रवादी जितनें सरसोंके दाने जपके जलाशयमें गेरे उतनेही अश्वार बेतालीश प्रकारके आयुधों सहित बाहिर निकलके मैदानमें खडे हो जाते हैं, तिनोंसें शत्रुकी सेना भंग हो जाती है, पीछें जब वो कार्य पूरा हो जाता है, तब अश्वार अदृश्य हो जाते हैं, और दूसरी हेमविद्यासें विनाभेदनतके जितना चाहे, उतना सुवर्ण हो जाता है, ये दो विद्या सिद्धसेनने लेलीनी, पीछे जब आगे वांचने लगा तब

स्पर्शन मिल गया सर्व पुस्तक बीचमें रह गये और आकाशसें देव वाणी हूइ कि तूं इन पुस्तकोंके वाचने योग्य नहीं आगे मत वांचना, वांचेंगा तो तत्काल मर जायगा तब सिद्धसेनने मनकें विचार करा कि दो विद्यामि ली दोही सही. पीछें चित्रोडसें विहार करके पूर्वदेशमें कुमार पुरमें गये, तहां देवपाल राजा था तिसकों प्रतिबोधके पक्का जैनधर्मी करा, तहां वो राजा सिद्धांत श्रवण करता है, जब ऐसे कितनाक काल व्यतीत हूआ, तब एकदा समय राजा छाना आया. और आंसुसें नेत्र भर कर कहने लगा कि:—हे भगवन् हम बडे पापी हैं, क्योंकि आपकी ऐसी उत्तम गो ष्ठिका रस नहीं पीसक्के हैं? कारण कि हम बडे संकटमें पडे हैं, तब आ चार्यने कहा तुमकों क्या संकट हूआ? राजा कहने लगा कि बहुत मेरे वैरीराजे एकठे हो कर मेरा राज्य छीना चाहते हैं, तब फेर आचार्यने कहा कि हे राजन्! तूं आकुल व्याकुल मत हो.जब मैं तेरा साहायक हों तो फेर तुझ क्या चिंता है? यह बात सुन कर राजा बहुत राजी हूआ, पीछें आचार्यने राजाकों पूर्वोक्त दोनो विद्यायोंसें समर्थ कर दीया, तिन विद्यायोंमें परदल भंग हो गया, तिनका डेरा डंडा सर्व राजानें लूट ली या,तब राजा आचार्यका अत्यंत भक्त हो गया उससें आचार्य सुखोंमें पडके शिथिलाचारी हो गया यह स्वरूप वृद्धवादीजीनें सुना, पीछें दया करकें तिनका उद्धार करने वास्ते तहां आये, दरवाजे आगें खडे हो कर कह ला भेजा कि एक बूढा वादी आया है, तब सिद्धसेननें बुला कर अपनें आगे बैठाया वृद्धवादी, सर्व अपना शरीर वस्त्रसें ढांक कर बोलेः—"अण फुल्लियफुल्लमतोडहिं, मारोवामोडिहिंमणुकुसुमेहिं॥ अच्चिनिरंजणंजिण, हिं म्हिकाइवणेणवणु ॥१॥ इस गाथाकों सुणकर सिद्धसेनने विचारभी करा परंतु अर्थ न पाया तब विचार कराकि क्या यह मेरे गुरु वृद्धवादी हैं? जिनके कहेका मैं अर्थ नही जानता हूं पीछें जब वार वार देखने लगा तब जाना कि यह मेरा गुरु है पीछे नमस्कार करकें क्षमापन मांगा, औरपूर्वोक्त श्लो कका अर्थ पूछा, तब वृद्धवादी कहने लगे "अणफुल्लियेत्यादि" अणफुल्लिय फुल्ल प्राकृतके अनंतहोनेंसें अप्राप्त फूल फलोंकों मत तोड, भावार्थ यह हैकि योग जो है, सो कल्पवृक्ष है, किस तरें कि जिस योग रूप वृक्षमें यम नि यम तो मूल है, और ध्यान रूप बडा स्कंध है, तथा समता पणां कवि

पणां, वक्तापणां, यश, प्रताप, मारण, उच्चाटन, स्तंजन, वशीकर णादि सिद्धियों कि जो सामर्थ सो फूल है, अरु केवलज्ञान फल है, अजी तो योगकल्पवृक्षके फूलही लगे हैं सो केवल ज्ञानरूप फल करकें आगे फलेंगे इस वास्ते तिन अप्राप्त फल पुष्पोंकों क्यों तोडता है? अ र्थात् मत तोड असा जावार्थ है, तथा "मारोवा मोडिहिं" जहां पांच महाव्रत आरोपा है तिनकों मत मरोड "मणुकुसुमेत्यादि" मनरूप फूलें करी निरंजनं जिनं पूजय (निरंजन जिनकों पूज) "वनात् वनांकिंहिंमसे" राजसेवादि बुरे नीरस फल क्यों करता है? इतिपद्यार्थ तब सिद्धसेनसू रिने गुरु शिक्षाकों अपने शिर उपर धरके और राजाकों पूछके वृद्धवादी गुरुके साथ विहार करा, और निबिड चारित्र धारण करा, अनेक आचा र्योंसें पूर्वोंका ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवास हूए पीछे एकदा सिद्धसेनजीने सर्वसंघ एकिठा करकें कहा कि जेकर तुम कहोतो सर्वागमोंकों में संस्कृ तजाषामें करदेउं तब श्रीसंघने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नही जानते थे? जो तिनहोंनें अर्द्धमागधीजाषामें आगम करे? असी बात कहनेसें तुमकों पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुममें क्या कहें? तुम आपही जानते हो, तब सिद्धसेनने विचार करकें कहा कि, मैं मौन करकें बारांवर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेकें गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोह रणादि लिंग करकें और अवधूत रूप धारके फिरुंगा, असें कह कर गच्छकों छोडके नगरादिकोंमें पर्यटन् करने लगे बारां वर्षके पर्यंतमें उज्जयन नगरी में महाकालके मंदिरमें शेफालिकाके फूलों करकें वस्त्ररंगे पहने हूए सिद्ध सेनजी जाके बैठा तब पूजारी प्रमुख लोकोंने कहा तुम महादेवकों नम स्कार क्यों नही करता? सिद्धसेन तो बोलतेही नहीं हैं? असें लोकों की परंपरासें सुन कर विक्रमादीत्यनेजी तहां आ कर कहा "क्षीरलिलि क्षोनिक्षोकिमितित्वयादेवोनवंद्यते" तब सिद्धसेनने कहा मेरे नमस्कारसें तुमारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमकों महादुःख होवेगा मैं इस वा स्ते नमस्कार नही करता हूं तब राजाने कहा लिंग फटे तो फट जानेद्यो परंतु तुम नमस्कार करों, पीछें सिद्धसेनजी पद्मासन बैठके कहने लगा, सु नो तब द्वात्रिंशका करकें देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥ श्लोक ॥ इंद्रवज्रवृत्तम् ॥ स्वयंजुवं जूतसहस्रनेत्र, मनेकमेकाक्षरजावलिंगं ॥ अव्यक्तम

व्याहत विश्वलोक, मनादिमध्यांतमपुण्यपापं ॥१॥ इत्यादि प्रथमही श्लोक पढनेसें लिंगमेंसे धूआं निकला तबलोक कहने लगे शिवजीका तीसरा नेत्र खुला है, अब इस भिक्षुकों अग्निनेत्रसें भस्म करेगा तबतो विजलीके तेजकी तरें तडतडाट करता प्रथम अग्नि निकला पीछें श्रीपार्श्वनाथजीका बिंब प्रगट हूआ, तब वादी सिद्धसेननें कल्याण मंदिरादि स्तवनों करी स्तवन करकें क्षमापन मांगा, तब राजा विक्रमादित्य कहने लगाकि हे भगवन् ! यह क्या अदृश्यपूर्व देखनेमें आया ? यह कौनसा नवीन देव है ? और यह प्रगट क्यों कर हूआ ? तब सिद्धसेनजीनें आवंतीसुकुमाल और तिसके पुत्र महाकालने पिताके नामसें आवंती पार्श्वनाथका मंदिर और मूर्त्ति बनाइ स्थापन करी, तिसकी कितनेक वर्ष लोकोंने पूजा करी अवसर पाकर ब्राह्मणोंने जिनप्रतिमाकों हेठ दाबके ऊपर यह शिवलिंग स्थापन करा इत्यादि सर्व वृत्तांत कहा.और हे राजन् ! इस मेरी स्तुतिसें शासनदेवताने शिवलिंग फाडके वीचमेंसें यह प्रतिमा प्रगट कर दीनी, अब तूं सत्यासत्यका निर्णय कर ले तब विक्रमादित्यने एक सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये. और देवके समक्ष गुरु मुखसें बारां व्रत ग्रहण करे, और सिद्धसेनकी बहुत महिमा करी, अपने स्थानमें गया और वादीं (सिद्धसेनदिवाकरकों) संघने जिनधर्मकी प्रभावनासें तुष्टमान हो कर संघमें लीया. अरु पूर्ववत् आचार्य बनाया.

एकदा प्रस्तावे सिद्धसेन दिवाकर विहार करते हूये मालवेके देशमें जो ॐकारनामें नगर है.तहां गये,तिसनगरके भक्त श्रावकोनें आचार्यकों विनती करी,जैसें हे भगवन् ! इसी नगरके समीप एक गाम था,तिसमें सुंदर नामा राजपुत्र ग्रामणी था, तिसकी दो स्त्रीयां थी, एक स्त्रीके प्रथम पुत्री जन्मी वो स्त्री मनमें खीजी तिस अवसरमें उसकी सौकनभी प्रसूत होने वाली थी,तब तिस बेटीवालीनें विचारा कि इसके पुत्र न होवे,तों ठीक है,क्योंकि नही तो यह पतिकों वल्लभ हो जावेगी, तब दाइसें मिलके उससें पैदा हूआ पुत्रकों बाहिर गिरा दीया, और तत्कालका मरा हूआ लडका उसके आगें रख दीया पीछें जौनसा लडका बाहिर गेरा गया था, उसकों कुलदेवीनें गौका रूप करकें पाला जब आठ वर्षका हूआ तब इस ॐकार नगरके शिवभवनके अधिकारी भरटनें देखा और अपना चेला बना लीया, एकदा प्रस्तावे

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग् विजय कार्यसें तहां पडाव करा तब रात्रिमें उस छोटे चेलेकों शिवभक्त व्यंतर देवतानें कहा कि शेष जोगराजाकों देनां, उसकी आंख अच्छी हो जावेंगी, तैसेही करा तिस्सें राजाकी आंख अच्छी हो गइ तब राजाने सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये और यह बडा ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोभी उसीनें बनवाया, और हम इस नगरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेंमें हम जिनमंदिर बनाने नही पाते हैं, इस वास्ते आपमें विनति करते हैं. कि इस मंदिरसें अधिक हमारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरेंसें सामर्थ हों. तिनका वचन सुनकर वादिइने आवंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्रमादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखमें राजाकों कहाया " दिदृक्षुर्भिक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः उतागच्छतुगच्छतु॥ १ ॥ तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेंका श्लोक लिखकर भेजा " दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः उतागच्छतु गच्छतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा भेजा कि भिक्षु तुमकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुलवाये और पिछानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तब आचार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेंसें बहुत दिन हूये चिरमें आना हूआ अब चार श्लोक तुम सुनो॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या. भवताशिक्षिता कुतः॥ मार्गणौघः समभ्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्रे, लक्ष्मीकरसरोरुहे ॥ कीर्त्तिःकिंकुपित राजन, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्तिस्तेजातजाड्येव, चतुरंभोधिमज्जनात्, ॥ आतपायधरानाथ. गतामार्त्तंडमंडलं ॥ ३ ॥ सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनैः ॥ नारयोलेभिरे पृष्टं. नवक्षःपरयोषितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनकें राजा बहुत खुश हूआ, और आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदउं तब आचार्यनें कहा मुझेतो कुछभी नही चाहिता, परंतु ॐकार नगरमें चतुर्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरमें उंचा बनाउ और प्रतिष्ठाभी कराउ तब राजानें वैसेंही करा तब जिनमत प्रभावना देखकें संघ तुष्टमान हूआ, इत्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रभावना करते हूए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें जा कर अनशन करके देवलोक गये, तब तहांसें संघने एक भट्टकों सि-

सेनकी गछ पास खबर करनेकों नेजा,तिस नट्टने सूरियोंकी सनामे आधा श्लोक पढा और वार वार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह हैः– स्फुरंति वादिखद्योताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब वार वार यह अर्द्ध श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥ १ ॥ पीछे तिस नट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बडा शोक हूआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीसवर्ष व्रत पर्याय, तथा छेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु नोगकें श्रीमहावीरसें पीछें दोसौ एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए.

९ श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोंने क्रोडों वार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गछका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्खा. क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगछ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्दनिल्लराजाके उछेद करणेवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीछे नृगुकछ (नडौंचमें) श्रीआर्य खपुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिनद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रनावक चरित्रमें ऐसा लिखा है किः– श्रीमहावीरसें (४७४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोने विक्रमादित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हूएहैं;– जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवंति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्यानिषेक हूआ, यह पालक चंडप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीछें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि

ना पुत्रके मरा तब तिसकी गद्दी उपर नंद नामा नाइ बैठा, तिनकी गद्दी में सर्व नंदनामा नव राजे हूए तिनका राज्य (१५५) वर्ष तक रहा न वमें नंदकी गद्दी उपर मौर्यवंशी चंद्रगुप्त राजा हूआ तिसका बेटा बिंदु सार तिसका बेटा अशोक तिसका बेटा कुणाल तिसका बेटा संप्रति महारा जादि हूए, इन मौर्यवंशीयोंका सर्व राज (१०८) वर्ष तक रहा यह पू र्वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीछे तीस वर्ष तक पुष्पमित्र राजाका राज्य रहा, तिस पीछें बलमित्र, नानुमित्र, यह दोनो राजाका राज्य (६०) वर्ष तक रहा, तिस पीछे नजवाहन राजाका राज्य (४०) वर्ष तक रहा, तिस पीछें तेरां वर्ष गर्दनिल्लीका राज्य रहा. और चार वर्ष शकोंका राज्य रहा, पीछे विक्रमादित्यनें शकोंकों जीतके अपना राज्य जमाया यह सर्व (४७०) वर्ष हूए.

११ श्रीइंद्रदिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीदिन्नसूरि हूये १२ दिन्न सूरिके पाट उपर श्रीसिंहगिरि सूरि हूये, १३ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्रीवज्र स्वामी हूये, जिनकों बाल्यावस्थामें जातिस्मरण ज्ञान था, जिनकों आका शगमन विद्यानी थी, जिनोंने दूसरे बारां वर्षी कालमें संघकी रक्षा करी, तथा जिनोंने दक्षिणपथमें बौधोंके राज्यमें श्रीजिनेंद्रपूजा वास्ते फूल लाके दीये, बौद्धराजाकों जैनमती करा, यह आचार्य पीछला दशपूर्वका पाठक हूआ, जिनोंसें हमारी वज्री शाखा उत्पन्न हूइ, इनका प्रबंध आवश्यक वृ त्तिसें जान लेनां. सो वज्रस्वामी श्रीमहावीरसें पीछें चार सौ छानवे और विक्रमादित्यकें संवत छवीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे चौतालीस वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और छत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वायु अठाशी वर्षकी नोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री शत्रुंजय तीर्थका संवत् १०८) में तेरहवा बडा उद्धार करा, तिसकी श्री वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमहावीरसें (५८४) वर्ष पीछें स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमें दशमा पूर्व और चौथा सं हनन और चौथा संस्थान व्यवछेद होगये, यहां श्रीसुहस्ती सूरि आठमें और श्रीवज्र, स्वामी तेरहवें पाटके वीचमें अपर पटावलियोंमें १ श्रीगुण सुंदरसूरि, २, श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधिलाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रसूरि, ५, श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीनद्रगुप्ताचार्य, ७ श्रीगुप्ताचार्य, यह सात क्रमसें युग

प्रधान आचार्य हूये तथा श्रीमहावीरसें पांचसौ तेतीस (५३३) वर्ष पीछें श्रीआर्यरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोंका अनुयोग पृथग् पृथग् कर दीयें, ये प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेनां. तथा श्रीमहावीरसें (५४८) में वर्ष त्रैराशिके जीतने वाले श्रीगुप्त सूरि हूये. तिनका प्रबंध उत्तराध्यनकी वृत्ति तथा श्रीविशेषावश्यकसें जान लेनां, जिसने त्रैराशिक मत निकाला तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उलूक गोत्र था जब रोहगुप्त गुरुके आगे हारा, और मत कदाग्रह न छोडा, तब अंतरंजिका नगरीके बलश्रीराजाने अपने राज्यसें बाहिर निकाल दीया, तब तिस रोहगुप्तनें कणाद नाम शिष्यकरा, उसकों १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इन षट् पदार्थोंका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादनें वैशेषिक सूत्र बनाये, तहांसें वैशेषिक मत चला.

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर चौदवें श्रीवज्रसेन सूरि बैठे, वे दुर्भिक्षमें श्रीवज्र स्वामीके वचनमें सोपारक पत्तनमें गये तहां जिनदत्तके घरमें ईश्वरी नामा तिसकी भार्याने लाख रूपकके खरचनेमें एक हांडी अन्नकी रांधी, जिसमें विष (जहर) मालने लगी, क्योंकि उनोंनें विचाराथा कि अन्न तो मिलता नहीं तिस वास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मर जायें गे, तिस अवसरमें श्रीवज्रसेन सूरि तहां आये, वो उनकों कहने लगे कि तुम जहर मत खाउ कलकों सुगाल हो जावेगा तैसेंही हूआ तब तिन शेठके चार पुत्रोंनें दीक्षा लीनी, तिनके नाम लिखते हैंः— १ नागेंद्र, २ चंद्र, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोंसें स्व स्व नामके चार कुल बने. यह वज्रसेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावासमें रहे और (११६) वर्ष समान साधुव्रतमें रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वायु (१२८) वर्षकी भोगके श्री महावीरसें (६२०) वर्ष पीछें स्वर्ग गये, यहां श्रीवज्रस्वामी और वज्रसेन सूरिके वीचमें आर्य रक्षित सूरि तथा श्री दुर्बलिका पुष्प सूरि, यह दोनो युग प्रधान हूये, श्रीमहावीरसें (५८४) वर्ष पीछें सातवा निन्हव हूआ, तथा श्रीमहावीरसें (६०९) वर्ष पीछें श्री कृष्ण सूरिका शिष्य शिवभूति नामें था तिनें दिगंबर मत प्रवृत्त करा, सो अधिकार विशेषावश्यकादिकोसें जान लेनां.

१५ श्रीवज्रसेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंद्रसूरि बैठा, तिनके नामसें गच्छ

का तीसरा नाम चंद्रगच्छ हूआ, (१६) श्री चंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री सामंतभद्रसूरि हूये, वे पूर्वगत श्रुतके जानकार थे, वैरागके रंगसें निर्मल हूए, जंगलोंमें रहते थे, तब लोकोंनें चंद्रगच्छका नाम वनवासी गच्छ रक्खा. १७ श्रीसामंतभद्र सूरिके पाट ऊपर श्रीवृद्धदेव सूरि हूये, तथा श्रीमहावीरसें (५९५) वर्ष पीछें कोरंट नगरमें नाहड नामा मंत्रीनें तथा सत्यपुरमें नाहडमंत्रीने मंदिर बनवाया, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा जज्जक सूरिनें करी. प्रतिमा श्री महावीरकी स्थापन करी जिसकों "जयउवीरसच्चउरिमंमण" कहते हैं (१८) श्रीवृद्धदेव सूरिके पाट ऊपर श्री प्रद्योतन सूरि हूये.

१९ श्री प्रद्योतन सूरिके पाटऊपर श्रीमानदेव सूरि हूये, इनके सूरिपद स्थापनावसरमें दोनो स्कंधोंपर सरस्वती और लक्ष्मी साक्षात् देखकें यह चारित्रसें भ्रष्ट हो जावेगा ? ऐसें विचार करकें खिन्नचित्त गुरुकों जानकें गुरुके आगें ऐसा नियम करा कि:– भक्तिवाले घरकी भिक्षा और दूध, दही, घृत, मीठा, तेल, अरु सर्व पक्वान्नका, त्याग कीया, तब तिनके तपके प्रभावमें नडोल पुर जो पालीके पास है तिसमें १ पद्मा, २ जया, ३ विजया, ४ अपराजिता, ए चार नामकी चार देवी सेवा करती देखी, कोइ मूर्ख कहने लगाकि ए आचार्य स्त्रीयोंका संग क्यों करता है? तब तिन देवीयोंनें तिसकों शिक्षा दीनी, तथा तिसके समयमें तक्षिला (गजनी) नगरीमें बहुत श्रावक थे तिनमें मरीका उपद्रव हूआ तिसकी शांतिके वास्ते श्री मानदेव सूरिने नडोल नगरीसें शांतिस्तोत्र बना कर भेजा.

२० श्री मानदेव सूरिके पाट ऊपर श्रीमानतूंग सूरि हूये जिनोने भक्तामर स्तवन करकें बाण अरु मयूर पंडितोंकी विद्या करकें चमत्कृत हूआ जो वृद्ध भोजराजा तिनकों प्रतिबोधा, और भयहर स्तवन करकें नागराजा वश करा. तथा भत्तिभरेत्यादि स्तवन जिनोनें करे है प्रभावक चरित्रमें प्रथम श्री मानतूंग सूरिका चरित्र कहा. और पीछें देवसूरिका शिष्य श्री प्रद्योतनसूरि तिनका शिष्य श्रीमानदेव सूरिका प्रबंध कहा. परंतु तहां शंका न करनी चाहियें क्योंकि प्रभावक चरित्रमें औरभी कई प्रबंध आगे पीछें कहे है.

२१ श्रीमानतुंगसूरिके पाट ऊपर श्रीवीरसूरि बैठा, सो वीरसूरिनें श्री महावीरसें (७७०) वर्षमें तथा विक्रम संवत्के तीन सौ वर्ष पीछें नागपुरमें श्रीनमि अर्हंतकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी, यदुक्तं ॥ आर्या ॥ नागपुरे

नमिजवन, प्रतिष्ठयामहितपाणिसौजाग्यः ॥ अजवधीराचार्य, त्रिजिः शतैः साधिके राज्ञः ॥ १ ॥

२२ श्रीवीरसूरिके पाट ऊपर श्रीजयदेवसूरि बैठे, २३) श्रीजयदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीदेवानंदसूरि बैठे इस अवसरमें श्रीमहावीरसें (७४५) वर्ष पीछे बलजी नगरी जंग हूइ, तथा (७०२) वर्ष पीछे चैत्येस्थिति तथा (७७६) वर्ष पीछे ब्रह्मद्विपिका २४) श्रीदेवानंदसूरिके पाट ऊपर श्रीविक्रमसूरि बैठे, २५) श्रीविक्रमसूरिके पाट ऊपर श्रीनरसिंहसूरि बैठे यतः ॥ नरसिंहसूरिरासी,दतोऽखिलग्रंथपारगोयेन ॥ यक्षोनरसिंहपुरे, मांसरतिस्त्याजितास्वगिरा ॥ १ ॥ २६) श्रीनरसिंहसूरिके पाट ऊपर श्रीसमुद्रसूरि बैठा ॥श्लोक॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ खोमीणराजकुलजोपि समुद्रसूरि, र्गछं शशास किल यः प्रवणः प्रमाणी ॥ जित्वातदाक्षपनकान् स्ववशं वितेने, नागह्रदेभुजगनाथनमस्यतीर्थम् ॥१॥२७) श्रीसमुद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव सूरि हूए ॥श्लोक॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ विद्यासमुद्रहरिजद्रमुनींद्रमित्रं, सूरिर्बजूव पुनरेव हि मानदेवः ॥ मांद्यात्प्रयातमपियोनघसूरिमंत्रं, लेनेंबिकामुखगिरा तप सोऊर्पंते ॥ १ ॥ श्री महावीरसें एक हजार वर्ष पीछें सत्यमित्र आचार्यके साथ पूर्वोंका व्यवछेद हूआ, यहां १ श्रीनागहस्ति, २ रेवतीमित्र, ३ ब्रह्मद्वीप, ४ नागार्जुन, ५ जूतदिन्न, ६ श्रीकालकसूरि, ये छै युगप्रधान यथाक्रमसें श्रीवज्रसेनसूरि और सत्यमित्रके बीचमें हूए, इन पूर्वोक्त छै युगप्रधानोंमेंसें शक्राजिवंदित और प्रथमानुयोग सूत्रोंका सूत्रधार कल्प श्रीकालिकाचार्य श्रीमहावीरसें (९९३) वर्ष पीछें पंचमीमें चौथकी संवत्सरी करी. तथा श्रीमहावीरात् (१०५५) वर्ष पीछे और विक्रमादित्यमें (५८५) वर्ष पीछे यकनी साधवीका धर्मपुत्र श्रीहरिजद्र सूरि स्वर्गवास हूए. तथा (१११५) वर्षपीछे श्रीजिनजद्रगणि युगप्रधान हूआ. और यह जिनजद्रीय ध्यानशतकका कर्त्ता होनें सें और हरिजद्रसूरिके टीका करनेसें दूसरा जिनजद्र है, यह कथन पट्टावलिमें है, परंतु श्रीजिनजद्रगणिक्षमाश्रमणकी आयु (१०४) वर्षकी थी, इस वास्ते जे कर हरिजद्रसूरिके वखतमें जीते होवें तोजी विरोध नहीं.

२८ श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविबुधप्रजसूरि हूआ, २९) श्रीविबुधप्रजसूरिके पाट ऊपर श्रीजयानंदसूरि हूआ, ३०) श्रीजयानंदसूरिके पा

ट ऊपर श्रीरविप्रभसूरि हूआ, सो महावीरसें पीछें (११७०) वर्ष और विक्रमसंवत्सें (७००) वर्ष पीछें नमोल नगरमें श्रीनेमिनाथका प्रासाद (मंदिरकी) प्रतिष्ठा करी तथा श्रीवीरात् (११९०) वर्ष पीछें उमास्वाति युगप्रधान हूआ, ३१ श्रीरविप्रभसूरिके पाट ऊपर श्रीयशोदेव सूरि बैठे, यहां श्रीमहावीरसें (१२७२) वर्ष पीछें और विक्रम संवतसें (८०२) के सालमें अणहिल पुर पट्टन वनराज राजेने वसाया वनराज जैनी राजा था, तथा श्रीवीरात् (१२७०) और विक्रमादित्यके संवत् ८००) के सालमें भाद्रपद शुक्ल तीजके दिन बप्प भट्ट आचार्यका जन्म हूआ, जिसने गवालियरके आम नाम राजाकों जैनी बनाया. इनका विशेष चरित्र प्रबंधचिंतामणि ग्रंथसें जान लेना.

३२ श्रीयशोदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीप्रद्युम्नसूरि हूआ, ३३) श्रीप्रद्युम्नसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव, सूरि उपधानवाच्यग्रंथका कर्त्ता हूआ, ३४) श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविमलचंद्र सूरि हूआ, ३५) श्रीविमलचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीउद्योतनसूरि हूआ, सो उद्योतनसूरि अर्बुदाचलें (आबू)के पहाड ऊपर यात्रा करणे आये थे, उहां टेली गामके पास बडी बडवृक्षकी छायामें बैठोनें अपने पाटकी वृद्धि वास्ते अच्छा मुहूर्त्त देख करकें श्रीमहावीरसें (१४६४) वर्ष और विक्रमसें (९९४) वर्ष पीछें अपने पाट ऊपर श्रीसर्वदेवप्रमुख आठ आचार्य स्थापे कोइ एकले सर्वदेव सूरिकोंही कहते हैं, बडे बडके हेठ सूरि पदवी देनेंमें तहांसें बनवासी गच्छका पांचमा नाम बडगच्छ हूआ. " प्रधानशिष्यसंतत्या, ज्ञानादिगुणैः प्रधानचरितैश्चवृद्धत्वा बृहद्गच्छइत्यपि "

३६) श्रीउद्योतनसूरिके पाट ऊपर श्रीसर्वदेवसूरि हूए, यहां कोइक तो श्रीप्रद्युम्नसूरि और उपधान ग्रंथका कर्त्ता श्रीमानदेवसूरि इन दोनोंको पट्टधर नहीं मानते हैं, तिनके अभिप्रायसें सर्वदेवसूरि चौतीसमें पाट हूआ. सो सर्वदेवसूरि श्रीगौतमस्वामीकी तरें सुशिष्य लब्धिमान विक्रमसंवतसें (१०१०) वर्ष पीछें रामसैन्य पुरमें श्रीऋषभचैत्य तथा चंद्रप्रभचैत्यकी प्रतिष्ठा करी, तथा चंद्रावतीमें कुंकणमंत्रिकों प्रतिबोधके दीक्षा दीनी, तिसनेही चंद्रावतीमें जैनमंदिर बनवाया था, तथा विक्रमसें (१०२९) वर्ष पीछें धनपाल पंडितने देशी नाम माला बनाइ तथा विक्रमसें(१०९६)

वर्ष पीछे श्रीउत्तराध्ययनकी टीका करने वाला थिरापद्रीयगछमें वादी वैताल श्री शांति सूरि हूये.

३७ श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री देवसूरिके रूपश्री ऐसा राजानें विरुद दीया, (३८) श्री देवसूरिके पाट ऊपर फिर श्री सर्व देवसूरिनामा हूये जिसने यशोभद्र नेमिचंद्रादि आठ आचार्योंकों आचार्य पदवी दीनी, तथा श्री महावीरसें(१४९६)वर्ष पीछे तक्षिलाका नाम गजनी रक्खा गया, (३९) श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री यशोभद्र अरु नेमिचंद्र ये दो गुरु भाइ आचार्य हूये, तथा विक्रमसें (११३५) वर्ष पीछे कोइ कहता है, (११३९) वर्ष पीछे नवांगीवृत्ति करनें वाला श्री अभयदेवसूरि स्वर्ग वास हूये, तथा कूर्चपुरगछीय चैत्यवासि जिनेश्वरसूरि शिष्य श्री जिनवल्लभ सूरिनें चित्रकूटमें श्री महाबीरके षट् कल्याणक प्ररूपे.

४० श्री यशोभद्रसूरि तथा श्री नेमिचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री मुनिचंद्र सूरि हूये, जिनोंने जावज्जीव एकसौवीर पाणी पीना रक्खा, और सर्व विगयका त्याग करा. तथा जिनोंनें श्रीहरिभद्रसूरिकृत अनेकांत जयपताकादि अनेक ग्रंथोंकी पंजिका करी. उपदेशपदकी वृत्ति, योगबिंदुकी वृत्ति, इत्यादिकोंके करनेमें तार्किक शिरोमणि जगत्में प्रसिद्ध हूआ, और यह आचार्य बडा त्यागी निस्पृह हूआ. यहां विक्रम राजासें (११५९) वर्ष पीछे चंद्रप्रभसें पौर्णिमीयक मतोत्पत्ति हुइ तिस चंद्रप्रभके प्रतिबोधने वास्ते श्री मुनिचंद्रसूरिजीने पाक्षिक सप्ततिका करी, है. तथा श्री मुनिचंद्रसूरिका शिष्य श्री अजितदेव सूरि वादी अरु श्री देवसूरि प्रमुख हूये तहां वादी श्री अजितदेव सूरिजीनें अणहल पुरपाटणमें श्रीजयसिंह देवराजाकी सभामें अनेक विद्वज्जन संयुक्त चोराशीवाद वादियोंसें जीते, दिगंबरमतका चक्रवर्त्ती कुमुदचंद्र आचार्यकों जिनोंनें वादमें जींता, और दिगंबरोंका पट्टनमें प्रवेश करनां बंद कराया, सो आज तक प्रसिद्ध है. तथा विक्रमसें (१२०४) वर्ष पीछे फलवर्द्धिग्राममें चैत्यबिंबकी प्रतिष्ठा करी, सो तीर्थ आजभी प्रसिद्ध है. तथा आरासणेमें श्री नेमिनाथकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंनें (८४०००) चोरासी हजार श्लोक प्रमाण स्याद्वादरत्नाकर नामा ग्रंथ बनाया, तथा जिनोंसें बडे नामावर चौवीश आचार्योंकी शाखा हूइ, इनोंका जन्म संवत् (११३४) में हूआ, (११५२) में दीक्षा लीनी, (११७४) में सूरिपद

मिला, (१२२०) की श्रावणकृष्णसप्तमी गुरुवारें स्वर्गकों प्राप्त हूये, ति नोंके समयमें श्री देवचंद्रसूरिका शिष्य तीन क्रोड ग्रंथका कर्त्ता, कलिका लमें सर्वज्ञ बिरुदका धारक, पाटणके राजा कुमारपालका प्रतिबोधक, सवा लक्ष श्लोक प्रमाण पंचांग व्याकरणका कर्त्ता, श्री हेमचंद्रसूरि विद्या समुद्र हूआ, तिनका विक्रमसंवत् (११४५) में जन्म (११५०) में दीक्षा (११६६) में सूरिपद अरु (१२२९) में स्वर्गवास हूआ, इनोंका संपूर्ण प्रबंध देखनां होवे, तदा श्री प्रबंध चिंतामणि तथा कुमारपाल चरित्रसें देख लेनां. ४१ श्री मुनिचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री अजितदेव सूरि हूये, तिनोंके समयमें संवत् (१२०४) में खरतरोत्पत्ति, संवत् (१२१३) वर्षे आंचलिकमतोत्पत्ति, संवत् (१२३६) वर्ष सार्द्धपौर्णिमीयक मतो त्पत्ति, संवत् (१२५०) वर्ष आगमिक मतोत्पत्ति, हूइ, तथा श्री वीरजगवा नसें (१६९२) वर्षे वागजट मंत्रीने शत्रुंजयका चौदहमां उद्धार कराया, साढे तीन क्रोड रूपक लगाया.

४२ श्री अजितदेव सूरिपट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये, जिनोंनें विवेकमं जरी शुद्ध करी. जिनोका बडा शिष्य श्री सोमप्रभ सूरि शतार्थितया अर्थात् ज नोंके बनाये एकेक श्लोकोंके सौ सौ तरेंके अर्थ निकलें और दूसरा मणिरत्न सूरिथा, (४३) श्री विजयसिंह सूरिपट्टे श्री सोमप्रभ सूरि और मणिरत्नसूरि हूये. ४४ श्री सोमप्रभ तथा श्री मणिरत्न सूरिके पाट ऊपर श्री जगच्चंद्र सूरि हूये, जिनोंनें अपणें गच्छकों शिथिल देखकें और गुरुकी आज्ञासें वैराग्य रसका समुद्र चैत्रवालगच्छीय श्री देवभद्र उपाध्यायके सहायमें क्रिया उद्धार कीया, और हीरलाजगच्चंद सूरि बिरुद पाया, क्योंकि जि नोंनें चितोडके राजाकी राजधानी अघाट अर्थात (अहडमें) बत्तीस दि गंबराचार्योंके साथ वाद करता हूआ, हीरेकी तरें अभेद्य रहा, तब रा जाने हीरलाजगच्चंद्र सूरि ऐसा बिरुद दीया तथा जिनोंने यावज्जीव आचाम्लतपका अभिग्रह करा तब बारा वर्ष तप करता हूआ तब चितो डके रानाने तपा बिरुद दीया संवत् (१२८५) के वर्षमें वडगच्छका नाम तप गच्छ हूआ, यह छट्ठा नाम हूआ १ निर्ग्रंथ, २ कोटिक, ३ चंद्र, ४ बनवासी, ५ वडगच्छ, ६ तपागच्छ, इन छहों नामोंके प्रवृत्त होनेके छ आचार्य हेतुरूप हूये हैं, तिसका नाम अनुक्रममें लिखते

हैं:— १ श्री सुधर्मस्वामी, २ सुस्थित सूरि, ३ श्रीचंद्र सूरि, ४ सामंतभद्र सूरि, ५ श्रीसर्वदेव सूरि, ६ श्रीजगच्चंद्र सूरि.

४५ श्री जगचंद्र सूरि पट्टे श्री देवेंद्र सूरि हूये, सो मालवेकी उज्जयनी नगरीमें जिनचंद्र नामा बडे शेठका वीरधवल नामा पुत्र तिसके विवाह निमित्त महोत्सव हो रहा था, तब वीरधवल कुमारकों प्रतिबोध करकें संवत् (१३०२) वर्षमें दीक्षा दीनी, तिस पीछें तिसके भाइकोंभी दीक्षा देकर चिरकाल तक मालव देशमें विचरे, तिस पीछें गुर्जर देशमें देवेंद्र सूरि श्री स्तंभ स्तीर्थमें आये, तहां पहिलां श्री विजयचंद्र सूरि गीतार्थोंकों पृथक् पृथक् वस्त्रके पोटले देता है, और नित्य विगय खानेकी आज्ञा देता है, और वस्त्र धोनेकी तथा फल, शाक लेनेकी और निर्विकृतके प्रत्याख्यानमें विगयगतका लेना कहता है. और आर्याका ल्याया आहार साधु खावे, यह आज्ञा देता है, और दिनप्रत्यें द्विविध प्रत्याख्यान और गृहस्थोंके अवर्जिने वास्ते प्रतिक्रमण करणेकी आज्ञा देता है, और संविभागके दिनमें तिसके घरमें गीतार्थ जावे, लेपकी संनिधि रखनी, तत्कालोष्णोदकका ग्रहण करणां इत्यादि काम करनेंसें कितनेक साधु शिथिलाचार्योंकों साथ लेकर सदोष पौषधशालामें रहा.

इन विजयचंद्राचार्यकी उत्पत्ति असें हैं. मंत्री वस्तुपालके घरमें विजयचंद्रनामा दफतरीथा, वो किसी अपराधमें जेहल खानेमें कैद हूआ, तब श्री देवभद्र उपाध्यायने दीक्षा देनेकी प्रतिज्ञा करवा कर छुडा दीया, पीछें तिसने दीक्षा लीनी, सो बुद्धिबलमें बहुश्रुत हो गया, तब मंत्री वस्तुपालनें कहाकि ये अभिमानी हैं, इस वास्ते सूरिपदके योग्य नहीं हैं. इस तरें मने करते हूए तोभी श्री जगचंद्र सूरिजीने श्री देवभद्र उपाध्यायके कहनेंमें सूरिपद दे दीया, क्योंकि यह देवेंद्र सूरिका साहायक होवेगा असा जान कर सूरिपद दीया, पीछें वो विजयचंद्र बहुत काल तक श्री देवेंद्र सूरिके साथ विनयवान् शिष्यकी तरें वर्त्तता रहा परंतु जब मालव देशसें श्री देवेंद्र सूरि आये, तब वंदना करनेकोभी नहीं आया, तब देवेंद्र सूरिजीने कहला भेजा कि एक वस्तिमें तुम बारां वर्ष कैसें रहे? तब विजयचंद्रने कहाकि शांत दांतकों बारां वर्ष एक जगेंमें रहनेसें कुछ दोष नहीं. संविग्नसाधु सर्व देवेंद्र सूरिके साथ रहे, और देवेंद्र सूरिजी तो अनेक सं

विप्र साधुकें समुदाय साथ उपाश्रयमेंही रहे, तब लोकोंने बडीशालामें रहनेंसें विजयचंद्रसूरिके समुदायका नाम वृद्धपौशालिक रक्खा और देवेंद्र सूरिजीके समुदायका लघुपौशालिक नाम दीया, और स्थंभनतीर्थके चौकमें कुमारपालके विहारमें धर्मदेशा नामे मंत्रि वस्तुपालने चारोवेदोंका निर्णय दायक स्वसमय परसमयके जानकार श्रीदेवेंद्रसूरिजीकों वंदना देकें बहुमान दीया, और श्रीदेवेंद्रसूरिजी विजयचंद्रकी उपेक्षा करकें विचरते हूए क्रमसें पाल्हणपुरमें आये, तहां चौरासी इभ्यसेठ अनेक पुरुषोंकें साथ परिवरे, सुखासन उपर बैठे हूए शास्त्रके वडे श्रोता व्याख्यान सुनने आते थे, और पालनपुरके विहारमें रोजकी रोज एक मूढक प्रमाण अक्षत और सोला मण सोपारी दर्शन करनेवाले श्रावकोंकि चढाइ चढती होती थी, इत्यादि वडे धर्मी लोकोंनें गुरुकों विनति करी कि हे भगवन्! यहां आप किसीकों आचार्य पदवी देओ हमारा मनोरथ पूरो तब गुरुने उचित जानके पाल्हन पुरमें विक्रम संवत् १३२३) में वर्ष श्रीविद्यानंद सूरि नाम देकें वीरधवलकों सूरिपद दीनां, और तिसके अनुज भीमसिंहकों धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकी पदवी दीनी, तिस अवसरमें प्रल्हादनविहारके सौवर्ण कपिशीर्ष मंडपसें कुंकुमकी वर्षा हूइ, तब सर्व लोकोंकों बडा आश्चर्य हूआः— श्री विद्यानंद सूरिजीने विद्यानंद नाम नवीन व्याकरण बनाया यदुक्तं ॥ विद्यानंदाभिधं येन, कृतं व्याकरणं नवं ॥ भाति सर्वोत्तमं स्वल्प, सूत्रं बह्वर्थसंग्रहं ॥ १ ॥ पीछें श्री देवेंद्र सूरिजी फेर मालवेकों गये श्री देवेंद्र सूरिजीके करे हूये ग्रंथोंका नाम लिखते हैं. १ श्राद्धदिनकृत्यसूत्रवृत्ती, २ नव्यकर्मग्रंथपंचकसूत्रवृत्ती, ३ सिद्धपंचाशिकासूत्रवृत्ती, ४ धर्मरत्नवृत्ती, ५ सुदर्शनचरित्र, ६ तीनभाष्य, ७ वंदारुवृत्ती, ८ सिरिउस्सहवद्धमाण प्रमुख स्तवन, कोइ कहते हैं कि श्राद्धदिनकृत्यसूत्रतो चिरंतन आचार्योंका करा है. विक्रम संवत् (१३२७)में वर्ष मालवदेशमें देवेंद्र सूरि स्वर्गवास हूये दैवयोगसें विद्यापुरमें तेरह दिनों पीछें श्रीविद्यानंद सूरिजी स्वर्गवास हूये, तब छै मास पीछें सगोत्र सूरिने श्रीविद्यानंद सूरिके भाइ श्री धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकों सूरिपद देकें श्री धर्मघोष सूरि नाम दीया.

४६ श्री देवेंद्र सूरिपट्टे श्री धर्मघोष सूरि हूये, जिनोंने मंडपाचलमें शा० श्री पृथ्वीधरकों पंचमानुव्रत लेतेकों ज्ञानसें निषेध करा, क्योंकि

आचार्यने ज्ञानसें जाना कि यह पुरुषके व्रत भंग होजावेंगा? इस भयसें निषेध करा, पीछे वो पृथ्वीधर, मंमपाचलके राजाका मंत्री हूआ, और धन करकें तो धनद समान हो गया, पीछें तिसने चौरासी जिनमंदिर और सात ज्ञानके पुस्तकोंके भंमारे बनाये और श्री शत्रुंजयमें इकीस धडी प्रमाण सोना खरचकें रूपे मय श्री ऋषभदेवजीका मंदिर बनवाया, कोइ कहते हैं कि छप्पन धडी सुवर्ण खरचकें इंद्रमाला पहरि तथा धरती नगरमें किसी साधर्मीनें ब्रह्मचारीका वेष देनेंके अवसरमें पृथ्वीधरकों महाधनाढ्य जानकें तिसकी भेट करा, तब पृथ्वीधरने वोही वेष लेकर तिस दिनसें बत्तीस वर्षकी उमरमें ब्रह्मचर्य व्रत धारण करा, तिसके एकही जांजण नाम पुत्र था, जिसने श्री शत्रुंजय, उज्जयंतगिरिकें शिखर उपर बारह योजन प्रमाण सुवर्ण रूप्यमय एकही ध्वज चढाइ, जिसनें सारंगदेव राजासें कर्पूरका महसूल छुडाया, तथा जिसनें मंमपाचलमें बहत्तर हजार (७२०००) रूपक गुरुके प्रवेशके उत्सवमें खरच करे.

तथा श्री धर्मघोष सूरिनें देवपत्तनमें शिष्योंके कहनेसें मंत्रमय स्तुति बनाइ तथा देवपत्तनमें जिनोंके स्वध्यानके बलसें नवीनोत्पन्न हूये कपर्दी यक्षनें वज्र स्वामीके महात्मसें पुरानें कपर्दी मिथ्यादृष्टिकों निकालाथा,इनोंने उसको प्रतिबोधकें श्री जैनबिंबोंका अधिष्ठाता करा, तथा जिनों आगें समुद्रके अधिष्ठातानें अपने समुद्रके तरंगोसें रत्न ढोकन करे, एकदा समय किसी दुष्टस्त्रीनें कार्मण संयुक्त वडे बनाकर साधुओंको दीए परं श्री धर्मघोष सूरिजीनें वे वडे धरती उपर गिराए, अरु उस स्त्रीकों मंत्रसें पकडा पीछें जब बहु दुःखी हूइ, तब दया करकें छोड दीनी, तथा विद्यापुरमें पक्षांतरीयोंकी स्त्रीयोंनें धर्मघोषजीके व्याख्यान रसके भंग करने वास्ते कंठमें मंत्रसें केश गुछक कर दीया पीछे श्री धर्मघोष सूरिजीने जब जाना, तब तिन स्त्रीयोंकों स्तंभन कर दीया, तब तिन स्त्रीयोंनें विनति करी कि आज पीछे हम तुमारें गछकों उपद्रव न करेंगे, तब गुरुजीने श्री संघके बहुत आग्रहसें छोडी, तथा उज्जयनीमें एक योगी जैनके साधुओंको रहने नहीं देता था. जब श्री धर्मघोष सूरि तहां आये तब उस योगीनें साधुओंकों कहा कि अब तुम इहां आये हो सो तकडे हो कर रहनां तब साधुओंने कहा हमभी देखेंगे कि तूं क्या करेगा? पीछे उसनें साधु

ओंकों दांत दिखलाये, तब साधुओंनें कफोणि (कूहनी) दिखलाइ पीछे साधुओंने जा कर यह सर्व समाचार अपने गुरुकों कहा, वहां योगी नेंनी धर्मशालामें विद्याके बलसें बहुत चूहे बनादीये, तब साधु बहुत मरे पीछे गुरुजीनें घडेका मुख, वस्त्रसें ढांककें ऐसा मंत्र जपा कि जिस्सें योगी आराटि करता हूआ आकें पाकमें पडा, और अपने अपराधका क्षमापना मांगा, तथा किसी नगरमें शाकनीयोंके नयसें मंत्रके कपाट दीये जाते थे, एक दिन विना मंत्रे कपाट दीये गये, तब रात्रिकों शाकनीयोंनें उपद्रव करा, गुरुने उनकों विद्यासें स्तंभित करा, एकदा रात्रिमें गुरुकों सर्पके काटनेसें जब जहेर चढा, तब गुरुने संघकों विधुर देख कें कहा कि दरवाजेमें किसी पुरुषके मस्तकोपरि काष्ठकी नरीमें विशपहार एक वेलडी आवेगी वो वेलडी घसके मेंकमें देदेनी उस्सें जहर उतर जायगा, संघनें तैसेंही करा गुरुराजी हो गये, पीछे तिस दिनसे जावज्जीव छे विगयका त्याग करा, और सदा जुवारकी रोटी नीरस जानके खाते रहे, श्री धर्मघोष सूरिजीके करे ये ग्रंथहैंः— सो कहते हैंः— १ संघाचारनाष्यवृत्ती. २ सुअधम्मेतिस्तव, ३ कायस्थिति नवस्थिति. ४ चौवीश तीर्थंकरोंके चौवीश स्तवन, तथा ५ स्वस्ताशर्मेत्यादिस्तोत्रं, ६ देवेंद्रैरनिशंइति श्लेषस्तोत्रं. ७ यूयं युवात्वमिति श्लेषस्तुतीयां, ८ जयवृषनेत्यादि स्तुति, यह जयवृषनेत्यादि स्तुति करणेका यह निमित्त थाकिः—एक मंत्रीने आठ यमक काव्य कह करकें कहा, कि ऐसें काव्य अब कोइ नहीं बना सका तब गुरुने कहाकि नास्ति नहीं तब तिसने कहा तो हमकों कर दिखलाउ तब गुरुजीनें जयवृषनेत्यादि छे स्तुति एक रात्रिमें बना कर नीतोंपर लिखकें दिखाइ तब तिसने बडा चमत्कार पाया, गुरुजीने तिसकों प्रतिबोधके जैनी करा, ये श्री धर्मघोष सूरि विक्रम संवत् (१३५७) में स्वर्ग गये.

४७ श्री धर्मघोष सूरि पट्टे श्री सोमप्रन सूरि हूये, जिनोंनें नमिऊण नणइएवमित्यादि आराधना सूत्र करा, तिनका संवत् (१३१०) में जन्म, (१३२१) में दीक्षा, (१३३२) में सूरिपद, जिनोंके इग्यारह अंग सूत्रार्थ कंठ थे, तथा "गुरुनिर्गमनायां मंत्रपुस्तकायां यत्नतचरित्रं मंत्रपुस्तिकां च " ऐसा कह कर तिसमंत्र पुस्तकाकों ग्रहण करा, क्योंकि अपर कोइ योग्य नहीं था यह श्री सोमप्रन सूरिने जलकुंकणदेशमें अ

कायके विराधनाके भयसें और मरुदेशमें शुद्धजलकी दुर्लभतासें साधुओं का विहार निषेध करा तथा भीमपल्लीमें दोकार्त्तिक मास हूये तब सोमप्रभजी प्रथम कार्त्तिककी एकादशीकों विहार कर गए क्योंकि उनोंनें जानाकि भीमपल्लीका भंग होगा अरु भंग हूए पीछें जो रहे वो, दुःखी हूए, सोमप्रभ सूरिके करे ग्रंथ जितकल्पसूत्र, यत्राखिलेत्यादि स्तुतीयां, जितेन येनेतिस्तुतीयां, श्री मद्धर्म्मेत्यादि, तिनके करे बडे शिष्य विमलप्रभ सूरि, श्री परमानंद सूरि, श्री पद्मतिलक सूरि, अरु श्री सोमविमल सूरि थे, जिस दिन पूर्वोक्त श्री धर्मघोष सूरि, देवगत हूए तिस दिनही (१३५७) वर्षे श्री सोमप्रभ सूरिजीने श्री विमलप्रभ सूरिकों सूरिपद दीया क्योंकि तिनोंने अपना स्वल्पही आयु जानां श्री सोमप्रभजी (१३७३) वर्षे देवलोक गए.

४८ श्रीसोमप्रभसूरि पट्टे श्रीसोमतिलकसूरि हूए, तिनोका (१३५५) में वर्षे माघे जन्म. (१३६९) वर्षे दीक्षा, (१३७३) वर्षे सूरिपदं, (१४२४) वर्षे स्वर्गगमनं, सर्वायु ६९) वर्षकी जाननी. तिनके करे ग्रंथ लखते हैः— १ बृहन्नव्यक्षेत्रसमास सूत्र, सत्तरिसयठाणं, यत्राखिलजयवृषभस्रस्ताशर्म० प्रमुखकी वृत्ति, श्रीतीर्थराज०, चतुरर्थीस्तुतित वृत्ति, शुभभावानत० श्रीम द्वीरस्तुवेदित्यादिकमलबंधस्तवःशिवशिरसि श्रोनाभिसंभव० श्रीशैवेय० इत्यादि स्तवन. श्रीसोमतिलकसूरिक्रम करकें १ श्रीपद्मतिलकसूरि, २ श्रीचंद्रशेखरसूरि, ३ जयानंदसूरि, ४ श्रीदेवसुंदरसूरियोंकों सूरि पद दीया, तिनमें श्रीपद्मतिलक सूरि, सोमतिलक सूरिसें पर्यायमें बडे थे, सो एक वर्ष जीते रहे, और बडे वैरागी थे तथा श्रीचंद्रशेखर सूरि, विक्रम संवत् (१३७३) में जन्मे (१३८५) में दीक्षा, (१३९३) में सूरिपद, इनके करे ग्रंथः— १ उषितभोजनकथा, यवराजऋषिकथा, श्रीमत्स्तंभनकहारबंधादिस्तवन है, जिनोंके मंत्रों सों मंत्री रजहोवे तिनसेंभी उपद्रव करनेवाले गृह, हरिका, दुर्द्दर मृगराज, श्वान, शुरिति दूर हो जाते थे तथा श्रीजयानंदसूरिका विक्रम संवत् (१३८०) वर्षे जन्म, (१३९२) वर्षे आषाढ सुदिसातम सुक्रवारकेदिन धारानगरीमें व्रतग्रहण, (१४२०) में सूरिपद (१४४१) में स्वर्ग गये तिनके करे ग्रंथ १ श्री थूलभद्र चरित्रं, २ देवाः प्रभोयं प्रमुख स्तवन है.

४९ श्री सोमतिलक सूरि पट्टे श्री देवसुंदर सूरि हूए, तिनका (१३९६) वर्षे जन्म, (१४०४) वर्षे दीक्षा (१४२०) वर्षे अणहलपत्तनमें सूरिपदं,

यह देवसुंदर सूरि बडा योगाभ्यासी और मंत्र तंत्रकी ऋद्धिका, मंदिर, स्थावर जंगमविषापहारी, जनानल, व्याल अरु हरि, जयका तोडनेवाला. अतीतानागत निमित्तका वेत्ता, राजमंत्रि प्रमुखोंका पूज्यनीक, यह श्री देव सुंदर सूरिके शिष्य १ श्रीज्ञानसागर सूरि, २ श्री कुलमंडन सूरि, ३ श्री गुणरत्न सूरि, ४ श्री सोमसुंदर सूरि, ५ श्री साधुरत्न सूरि, यह पांच बडे शिष्य थे, तिनमें श्री ज्ञानसागरजीका (१४०५) में वर्षे जन्म (१४१७) में दीक्षा. (१४४१) में सूरिपदं, (१४६०) में स्वर्गगमनं. तिनके करे ग्रंथ श्री आवश्यक, उंगनिर्युक्त्यादि अनेक ग्रंथावचूरी, श्री मुनिसुव्रत स्तवन, घनौघनखंड पार्श्वनाथादि स्तवन, दूसरा श्री कुलमंडन सूरिजीका (१४०९) में जन्म, (१४१७) में दीक्षा, (१४४२) में सूरिपदं. (१४५५) में स्वर्गगमनं, जिनोंके करे ग्रंथ सिद्धांतालापकोद्धार. विश्वश्रीधरेत्यादि. अष्टादशारचक्रस्तव. गरीयो और हारस्तवादय है. तीसरा श्री गुणरत्न सूरि तिनके करे ग्रंथ १ क्रियारत्न समुच्चय. २ षट्दर्शनसमुच्चय बृहद्वृत्ति है. चौथा श्री साधुरत्न सूरिजीके करे ग्रंथः— १ यतिजीतकल्पवृत्ति है.

५० श्री देवसुंदर सूरि पट्ट श्री सोमसुंदर सूरि हूए तिनका (१४३०) में जन्म, (१४३७) में दीक्षा, (१४५०) में वाचक पद. (१४५७) में सूरिपदं, जिसके (१८००) अठारहसो साधु क्रिया पात्र परिवार देखके कितनेक लिंगी पाखंमीयोंनें पांचसो (५००) रूपक देके एक सहस्र पुरुषोंकों उनके वध करनें वास्ते नेजे. तब वे जिस मकानमें गुरु थे तिस मकानमें रातकों लीप रहे. जब मारनेकों उद्यत हूए तब चंद्रमाके उद्योतमें श्री गुरुजीनें रजोहरणमें पूंजके जब पासा पलटा. तब देखकें तिनके मनमें असा विचार आया किः— ए नींदमेंनी क्षुद्र प्राणियोंकी दया करते हैं, और हम इनकों मारने आए हैं, यह कितना अंतर है ? तब मनमें मरे और गुरुके पायोंमें पडके अपराध क्षमा कराया. इनोंके करे ग्रंथः— योगशास्त्र, उपदेशमाला, षडावश्यक, नवतत्त्वादि बालावबोध, नाष्यावचूर्णी, कल्याणिकस्तोत्रादि. जिनोंके शिष्य श्री मुनिसुंदर सूरि कृष्णसरस्वती विरुद धारक श्री जयसुंदर सूरि, और महाविद्या विडंबन टिप्पनक कारक श्री भुवन सुंदर सूरि, जिनके कंठ एकादशांगी सूत्रार्थ थे, और चौथा जिनसुंदर सूरि ये चार जिनकेप्रतापी शिष्य हूए, जिनोंने

राणक पुरमें श्री धनकृत चौमुखविहारेमें ऋषभादि अनेक शत बिंब प्रतष्ठित करी. ये विक्रम संवत् (१४९९) में स्वर्ग गये.

५१ श्री सोमसुंदर सूरि पट्टे श्री मुनिसुंदर सूरि हूये, जिनोंनें अनेक प्रसाद, पद्मचक्र, षट्कारक, क्रियागुप्तक, अर्द्धभ्रम, सर्वतोभद्र, मुरज, सिंहासन, अशोक, भेरी, समवसरण, सरोवर, अष्टमहाप्रातिहार्यादि नवीन त्रिशतिबंध तर्क प्रयोगादि अनेक चित्राक्षर, छंदक्षर, पंचवर्ग परिहारादि अनेक स्तवमय त्रिदशतरंगिणीनामा एक सौ आठ हाथ लंबी पत्रिका लिखकें श्री गुरुकों भेजी तथा चातुर्वेद्यविशारद्य निधि, उपदेश रत्नाकर प्रमुख अनेक ग्रंथोका कर्त्ता, तथा जिनकों श्री स्तंभतीर्थमें दफर खाननें वादीगोकुलसंढ, ऐसा नाम कहा, तथा जिनोंनें दक्षिणमें कालसरस्वती ऐसा बिरुद पाया, आठ वर्ष गणनायक, पीछे तीन वर्ष युगप्रधान पद, लोकोंनें प्रसिद्ध करा. एक सौ आठ वर्त्तुलिकानादोपलक्षक, बाल्यावस्थामेंभी एक शहस्र श्लोक नवीन कंठ कर लेते थे तथा संतिकर नामा समहिम स्तवन करनेंसें योगिनी कृत मरीका उपद्रव दूर करा चौवीश वार विधिसें सूरि मंत्रकों आराधा, तिनमेंभी चौदह वार जिनके उपदेशसें धारादि नगरीयोंके स्वामी पांच राजाओंने अपने अपने देशोंमें अमारिका ढंढोरा फिराया, तथा सिरोही देशमें सहस्रमल्लराजानेंभी ऽप्रमार प्रवृत्त करी तीडका उपद्रव टाला, इनका विक्रम संवत् (१४३६) में जन्म (१४४३) में दीक्षा (१४६६) में वाचक पद, (१४७८) में बत्तीस सहस्र रूपक खरचकें वृद्धनगरीके शाह देवराजने सूरिपदका महोत्सव करा. (१५०३) वर्षे कार्त्तिकशुदि पडिवाके दिन स्वर्गवास हूआ.

५२ श्री मुनिसुंदर सूरि पट्टें श्री रत्नशेखर सूरि हूए, तिनका (१४५७) वर्षे जन्म, (१४६३)वर्षे दीक्षा, (१४८३) वर्षे पंडितपद, (१४९३) वर्षे वाचकपद (१५०२) वर्षे सूरिपद, (१५१७) वर्षे पोषवदि६ दिनें स्वर्गवास हूआ, जिसका स्तंभतीर्थमें बांबी नामा भट्टनें बाल सरस्वती नाम दीया, तिनके करे ग्रंथः—श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति, श्राद्धविधिसूत्रवृत्ति, लघुक्षेत्र समास, तथा आचारप्रदीपादि अनेक ग्रंथ जान लेनां. तथा जिनोंकें समयमें लुंका नामक लिखारीने संवत् (१५०८) में जिनप्रतिमाका उत्थापक लुंका नामा मत चलाया और तिसके मतमें वेषका धर

ने वाला संवत् (१५३३) में जाणा नामा प्रथम साधु हूआ, इस मतकी उत्पत्ति ऐसें हूइ है, सो लिखते हैं:—

गुजरात देशमें अहमदावादमें जातिका दशाश्रीमालि लुंका नामें लिखारी वसता था, सो ज्ञानजी जतीके उपाश्रयमें पुस्तक लिख कर उसकी आमदनीसें गुजारा करताथा. एक दिन एक पुस्तककों लिख रहा था, तिसमेंसें सात पत्रे बिना लिखे छोड दीये, जब पुस्तक वालेनें पुस्तक देखा तब पूछाकि इस पुस्तकके सात पत्रे क्यों छोड दीये ? तब लुंका उसके साथ लडने लगा तिस वखत लोकोंनें मार पीटके उपाश्रयसें बाहिर निकाल दीया, और नगरमें कह दीयाकि इस्सें कोइ जनजी पुस्तक न लिखावे, तब लुंका लाचार और क्रोधमें जरकर अहमदाबादसें छेतालीस कोसके लग जग नींबडी गाममें चला गया, उस गाममें लुंकेकी बिरादरीका एक लखमसी नामा बणिया राजमें कारजारी था.तिसके आगें बहुत रोया, पीटा.जब तिसने पूछा क्या हूआ ? तब लुंकेने कहाकि मैं जगवानका सच्चा मत कहने लगा था, तब तपगच्छके श्रावकोंने मुझे पीटा.अब मैं तेरे पास आया हूं, जेकर तूं मेरा मददकार बने. तो मैं सच्चामत प्रगट करूं, तब तिस लखमसीने कहाकि नींबडीके राज्यमें तूं बेशक अपणे सच्चे मतकों प्रगट कर, मैं तेरा मददगार हूं.खाने पीनेकोंजी देउंगा. और तेरा शास्त्रजी सुनुंगा. तब लुंकातो श्रीमहावीरके साधुओंकी और श्रीजिनप्रतिमाकी उत्थापना करने लगा,अरु कहने लगा कि यह साधु नहीं हैं, भ्रष्टाचारी हैं निंदय हैं,उलटाज्ञान सुनाते हैं.इत्यादि जो आपके मनमानी सो निंदा करी, और शास्त्रोंमेंसेंजी जिन जिन शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाका जिकर नहीं था वो शास्त्रकों सच्चे माने, और जिनोमें थोडासा जिनप्रतिमाका कथन था, तिन पाठोंके अर्थ कुयुक्तिसें औरके और सुनाने लगा, अरु कहने लगा कि एकतीस शास्त्र सच्चे हैं, तिनमेंजी आवश्यकसूत्रकों तो बिलकुल बिगाडके लोकोंने स्वकपोलकल्पित औरका और बना दीया है.क्योंकि श्रीआवश्यकमें बहुत जगें जिनप्रतिमाका अधिकार चलता है, पीछे एक दिन तिस लुंकेकों किसीने कहा कि बिना जैनदीक्षाके लीए शास्त्र पढनेका तो व्यवहारसूत्रमें निषेध करे हैं, तो फेर तुम गृहस्थ हो कर शास्त्र क्यों कर पढते हो ? तब लुंकेने कहा मैं व्यवहारसूत्रकोंही सच्चा नहीं मानता हूं ? इत्यादि प्ररूपणा

पच्चीश वर्ष तक करी, परंतु लुंकेके उपदेशसें साधु कोइभी न हूआ, जब संवत् (१५३३) का शाल आया तब, एक भाणा नामा बनीयके बेटेनें लुंकेके उपदेशसें वेष पहना, उसकों ऋषिभूणा नाम दीना, तिसका शिष्य संवत् (१५६८) में रूपजी हूआ, तिसका शिष्य संवत् (१५७८) में जी वाजीऋषि हूआ, तिसका शिष्य (१५८७) में वृद्धवरसिंहजी हूए, तिसका शिष्य संवत् (१६०६) में वरसिंहजी हूआ, तिसका शिष्य संवत् (१६४९) में जसवंतजी हूआ, इस लुंपक मतके तीन नाम हूए, १ गुजराती, २ नागोरी, ३ उतराधी, ॥ इति लुंपक मतोत्पति ॥

५३ श्रीरत्नशेखरसूरि पट्टे श्रीलक्ष्मीसागरसूरि हूए, तिनका (१४६४) में वर्षे जन्म (१४९०) में वर्षे दीक्षा, (१५०१) वर्षे वाचक पद, (१५०८) में सूरिपद, ५४ श्रीलक्ष्मीसागरसूरिपट्टे श्रीसुमतिसाधुसूरि हूआ, ५५ श्रीसुमतिसाधुसूरिपट्टे श्रीहेमविमलसूरि हूए, शिथिलसाधुओंके वीचमेंभी रहे, तोभी जिनोंनें साधुका आचार उल्लंघन न करा, तब कितनेक दिन पीछें बहुत साधुओंनें शिथिलपणां छोडा, तथा ऋषिहरगिरि, ऋषिश्रीपति, ऋषिगणपति, प्रमुख बहुत जनोंनें लुंपक मत छोड के श्रीहेमविमलसूरिके पास दीक्षा लीनी, तिस अवसरमें संवत् (१५६२) में कडुये नामक एक वणियेने कडुयामत निकाला और तीन थूइ मानी अरु इस कालमें साधु कोइभी नही दीखता, ऐसा पंथ निकाला, परंतु इसग्रंथके लिखनेवालेके समयमें ये मत नहीं है,व्यवछेद हो गया है,तथा संवत् १५७०) में लुंका मतसें निकलकें बीजा नामा वेषधरने बीजामत चलाया, जिसकों लोक विजय गछ कहते हैं तथा संवत् (१५७२) वर्षे नागपुरीया तपगछसें निकलकें उपाध्याय पार्श्वचंद्रनें अपने नामका मत अर्थात् पासचंदीया मत चलाया.

५६ श्रीहेमविमलसूरि पट्टे श्रीसुविहितमुनि चूडामणि कुमत तमके मथनेकों सूर्यसमान श्रीआनंदविमलसूरि हूआ तिसका विक्रम संवत् (१५४७) में जन्म (१५५२) में दीक्षा (१५७०) में सूरि पद तथा आनंदविमलसूरिके साधु शिथिलाचारीभी थे, तोभी तिनके वैरागरंगका भंग नहीं हूआ और जब उनोंनें देखाकि जिनप्रतिमाके निषेधने वाले बहुत बढे और शुद्ध साधु तुछमात्र रह गए अरु उत्सूत्र प्ररूपण रूप जलमें नभ्मजन वह चले तब मनमें दयादृष्टि लाकें और अपने गुरुकी आज्ञासें

कितनेक संविग्न साधुओंकों साथ ले कर संवत् (१५८२) में शिथिलाचार परिहार रूप क्रिया उद्धार करा,देशमें विचरके बहुत नव्यजनोंका उद्धार करा, और अनेक इभ्योंके पुत्रोंकों धन कुटुंबका मोह त्याग कराके दीक्षा दीनी. और सोरठके राजा पासों खत लिखवाया कि जो जीते सो मेरे देशमें रहे अरु जो हारें सो निकाला जावे.तूणसिंह नामा श्रावक जिसकों बादशाहनें बैठने वास्ते पालकी दीनी हूइथी, और बादशाहनें जिसकों मलिक श्रीनगद लबिरुद दीयाथा ऐसा तूणसिंह श्रावकने गुरुकों बिनति करी कि साधुओंकों सोरठदेशमें विहार कराउ,तब श्रीगुरुजीने गणि जगर्षिकों साधुओंके साथ सोरठदेशमें विहार कराया, तथा जेसलमेरादि मरवाड देशमें जल दुर्लभ मिलता है, इस वास्ते पूर्वे श्रीसोमप्रभ सूरिनें साधुओंकों मने कर दीया था कि मारवाडमें न जानां,सो विहार कुमतिव्याप्त न हो जावे. तिन जीवोंकी अनुकंपा कर कें और लाभ जान कर साधुओंकों आज्ञा दीनी कि तुम मारवाडमें जा कर कुमतिमतकों खंमन करो. तब लघु वयमें शील करकें श्रीस्थुलिभद्रसमान वैराग्यनिधि निस्पृहावधि जावज्जीव जघन्यसें जघन्यभी षष्ठ अर्थात् दोदिनका उपवास करणां अरु पारणेके दिन आचम्ल करणां ऐसे अभिग्रहधारी महोपाध्यायश्रीविद्यासागरगणिनें मारवाडदेशमें विहार करा, जिनोंनें जैसलमेरादिकोंमें खरतरांकों और मेवात देशमें बीजामतियोंकों और मोरबी आदिकमें लुंकामतीयोंकों प्रबोधके श्रावक बनाए सो आजतक प्रसिद्ध है, तथा पार्श्वचंद्रके व्युद्ग्राहे वीरमगाममें पार्श्वचंद्रके साथ वाद करकें पार्श्वचंद्रकों निरुत्तर करा, तब बहुत जिनोंनें जैनधर्म अंगीकार करा, ऐसेही मालवेमें अरु उज्जयनी प्रमुख देशोंमें फिरकें धर्मकी प्रवृत्ति करी, यह श्रीविद्यासागर उपाध्यायजीने तपगच्छकी फिरवृद्धि करी, और क्रियाउद्धार करा पीछे श्रीआनंदविमलसूरिजी चौदह वर्ष तक जघन्यसेंभी नियत तप वर्जके बेलेसें कम तप नहीं करा. तथा जिनोंनें चतुर्थ, षष्ठ तप करकें वीश स्थानककी आराधना करी.यह संवत् (१५९६) वर्ष नवदिनका अनशन करिकें स्वर्ग गए.

५७ श्रीआनंदविमलसूरि पट्टे श्रीविजयदानसूरि हूआ, जिनोंनें स्तंभ तीर्थ, अहमदावादपत्तन, महीशानकगाम, गंधार बंदिरादिमें महा महोत्सव पूर्वक अनेक जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके उपदेशसें बादशाह

महमदका मान्य मंत्री गलराजा दूसरा नाम मलिक श्रीनगदलनें श्रीशत्रुंज यका बडा संघ निकाला. तथा जिनोंके उपदेशमें गांधार नगरके श्रावक रामजीने तथा अहमदावादी साह कुंअरजी प्रमुखोनें श्रीशत्रुंजय चौमुख अष्टापदादि जिनमंदिर बनवाए. गिरनार ऊपर जीर्ण प्रासादोद्धार करा तथा जिनके सूर्यकी तरें उदय होनेंसें वादी रूपीये तारे अदृश्य हो गये, श्रीविजयदान सूरि सर्व सिद्धांतका पारंगामी, अखंमित प्रताप वाला तथा अप्रमत्त पणे रूप करकें श्रीगौतममुनिवत् था, तथा गूर्जर मालवक, कछ, मरुस्थली, कुंकणादि देशोमें अप्रतिबद्ध विहार करता हूआ, महातपस्वी, जावजीव एक घृतविगय विना सर्व विगयका त्यागीथा, जिनोंने एकादशांग सूत्र अनेक वार शुद्ध करे, और जिनोंने बहुत जीवोंकों धर्मप्राप्त करा, तिनका संवत् (१५५३) वर्षे जामलामें जन्म, (१५६२) वर्षे दीक्षा (१५८७) में, सूरिपद (१६२२) वर्षे, वटपल्लीमें अनशनें स्वर्ग प्राप्त हूआ.

५८ श्री विजयदान सूरि पट्टे श्री हीरविजय सूरि हूआ. जिनका संवत (१५८३) वर्षे मार्गशीर्षशुदि नवमी दिनें प्रल्हादन पुरका वासी ऊके जाती सा० कूंरा नार्या नाथी ग्रहे जन्म हूआ. (१५९६) वर्षे कार्तिकवदि दूज दिनें पत्तन नगरें दीक्षा, (१६०७) वर्षे नारदपुरी में श्रीऋषभदेवके मंदिरमें पंमित पद. (१६०८) माघशुक्लपंचमीदिने नारदपुरीमें श्री वरकाणक पार्श्वनाथसनाथे नेमिजिन प्रसादें वाचकपद. (१६१०) वर्षे सिरोही नगरे सूरिपद. तथा जिनका सौजाग्य वैराग्य निःस्पृहतादि गुणोंकों वचन गोचर करनेंकों बृहस्पतिजी चतुर नहींथा तथा श्री स्तंजतीर्थमें जिनोंके रहनेसें श्रद्धावानोंने एक क्रोड रूपक प्रजावनादि धर्मकृत्योमें खरच करा. तथा जिनोंकें चरण विन्यासके प्रतिपदमें दो मोहर अरु एक रूपक मोचन करा. और जिनोंकें आगें श्रद्धालुओंने मोतीयोंसें साथीये करे, तथा जिनोंनें सिरोही नगरमें श्री कुंथुनाथ बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी तथा नारदपुरमें अनेक सहस्रबिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके विहारादिमें युगप्रधान अतिशय देखनेमें आती थी, तथा अहमदावादमें लुंके मतका पूज्य ऋषि मेघजी नामा था तिसने अपने लुंके मतकों दुर्गतिका हेतु जान कर रजकी तरें आचार्य पद छोडके पच्चीश यतियोंके साथ सकल राजाधिराज बादशाह श्रीअकब्बर राजाकी आज्ञा पूर्वक बादशाही बाजंत्र ब

जते हूये, महामहोत्सवसें श्री हीरविजय सूरिजीके पास दीक्षा लीनी, ऐसा किसी आचार्यके समयमें नहीं हूआ था. तथा जिनोंके उपदेशमें अकब्बर बादशाहनें अपने सर्व राज्यमें एक वर्ष में छे महिनें तक जीव हिंसा बंद करी, जिजय छोडाया, इसका विशेष स्वरूप देखनां होवे, तो हीरसौभाग्यकाव्यमेंसें देख लेनां.

और संक्षेपसें यहांभी लिखते हैं:- एकदा कदाचित् प्रधान पुरुषोंके मुखसें अकब्बरशाहनें श्री हीरविजय सूरिके निरुपम शम दम संवेग वैराग्यादि गुणो सुणके बादशाह श्री अकब्बरनें अपनें नामांकित फुरमान भेज कें बहुमान पुरस्सर गंधार बंदिरमें आगरेके पास फतेपुर नगरमें दर्शन करनेकों बुलाया. तब गुरुजी अनेक भव्यजीवोंकों उपदेश देते हूये. क्रमसें विहार करते हूये विक्रम संवत् (१६३९) वर्षे ज्येष्ठवदि त्रयोदशी दिनें तहां आए तिसमें बादशाहका शिरोमणी प्रधान अबुल फजल नाम द्वारा उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि प्रमुख अनेक मुनियोंमें परिवरे हूए बादशाहकों मिले तिस अवसरमें बादशाहने बडी खातरसें अपनी सभामें बैठाए, और परमेश्वरका स्वरूप गुरुका स्वरूप अरु धर्मका स्वरूप पूछा, और परमेश्वर कैसे प्राप्त होवे ? इत्यादि धर्मविचार पूछा. तब श्री गुरुने मधुर वाणीसें कहा कि जिसमें अठारह दूषण न होवें, सो परमेश्वर है, तथा पंचमहाव्रतादि धारक गुरु है. और आत्माका शुद्धस्वभाव जो ज्ञान दर्शन, चारित्ररूप है, सो धर्म है तब अकब्बरशाहने ऐसा धर्मोपदेश सुनके आगरासें अजमेर तक प्रतिकोश कूवा मनार सहित बनाए, और जीवहिंसा छोडकें दयावान् हो गया. तब अकब्बरशाह अतीव तुष्टमान होकें कहनें लगा कि हे प्रभु ! आप पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, देहादिमेंभी ममत्व रहित हो, इस वास्ते आपकों सोनां, चांदी, देनां, तो ठीक नहीं, परंतु मेरे मकानमे जैनमतके पुराने पुस्तक बहुत हैं. सो आप लीजीये, और मेरे ऊपर अनुग्रह करीयें जब बादशाहका बहुत आग्रह देखा. तब श्री गुरुजीनें सर्व पुस्तक ले कें श्री आगरा नगरके ज्ञानभंडारमें स्थापन कर दीए, तब एक प्रहर तक गुरुजी धर्मगोष्टि करकें बादशाहकी आज्ञा लेकें बडे आडंबरमें उपाश्रयमें आए, उस वखतमें लोकोंमें जैनमतकी उन्नति स्फीती हूइ, तिस वर्षमें आगरे नगरमें चौमासा करकें सोरीपुर न

गरमें श्री नेमिजिनकी यात्रा वास्ते गये, तहां श्री ऋषभदेव और नेमिना थजीकी बडी और बहुत पुरानी दोनो प्रतिमा और उस तत्कालके ब नाए श्री नेमिनाथके चरणोंकी प्रतिष्ठा करी, फिर आगरेमें शा० मानसिंह कल्याणमल्लका कराया (बनवाया) श्री चिंतामणि पार्श्वनाथादि बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, सो आज तक आगरेमें श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रसिद्ध है, पीछें श्री गुरुजी फेर फतेपुर नगरमें गए और अकब्बर बादशाहसें मिले तहां एक प्रहर धर्मगोष्टि धर्मोपदेश करा, तब बादशाह कहने लगा किः— मैनें आपकों दर्शनके उत्कंठित हो कर दूरदेशसें बुलाए है, और आप हमसें कुछभी नहीं लेते हो, इस वास्ते आपकोंजो रुचे सो मेरेसें मांगना चाहियें, जिस्में मेरे मनका मनोरथ सफल होवे, तब सम्यग्वि चार करकें गुरुजीने कहा कि तेरे सर्वराज्यमें पर्यूषणांके आठ दिनोंमें कोइ जनावर न मारा जाय और बंदिजन छोडे जाय मैं यह मागा चाहता हूं, तब बादशाहने गुरुकों निर्लोभी, शांत, दांत, जान करकें कहा कि आठ दिन तुमारी तर्फसें और चारदिन मेरी तर्फसें सर्व मिलकर बारहदिन तक अर्थात् भाद्रवावदि दशमीसें ले कर भाद्रवासुदि छठ तक कोइ जानवर न मारा जायगा, पीछें बादशाहने सोनेके हर्फोंसें लिखवा कर छे फुरमान श्री गुरुजीकों दीए, छे फुरमानकी व्यक्ति ये हैः— प्रथम श्री गूर्जरदेशका, दूसरा मालवेदेशका, तीसरा अजमेरदेशका, चौथा दिल्लीफतेपुरके देशका, पांचमा लाहोर मुलतान मंम्डलका, और छठा श्री गुरुके पास रखनेका पूर्वोक्त पांचोंदेशका साधारण फुरमान पांच, तो तिन तिन देशोंमें भेजकें अमारि पटह बजवा दीया, तब तो बादशाहकी आज्ञासें जो नहींभी जा नते थे ऐसे सर्व आर्य अनार्य कुल मंम्डपमें दयारूपिणी वेलडी विस्तार वान् हो गइ, और बंदिवान जनभी बादशाहने गुरुपाससे उठ कर तत्काल छोड दीए,और एक कोशका झील अर्थात् तलावमें आप जाकर बादशाहने अपने हाथसें नानाजातिके नानादेशवालोंनें जो जो जानवर बादशा हकों भेट कर हूए थे, वे सर्व छोड दीए, बादशाहसें गुरुजी अनेकवार मिले और अनेक जिनमंदिर अरु उपाश्रयोंके उपद्रव दूर करे, और जब श्री हीरविजय सूरि अपर देशकों जाने लगे, तब बादशाहसें ऐसा फुर मान लिखवा ले गए, तिसकी नकलमैं इस पुस्तकमें लिखता हूं.

जलालुदीन बादशाह.
अकब्बर बादशाह.
गाजीकाफुरमान.

अकब्बरमोहरकी वंशावली.
जलालुदीनअकब्बर बादशाह.
हुमायुन बादशाहका बेटा.
बाबरशाहका वीन बेटा.
उमरशेख मीरजांका बेटा.
सुलतान अबुस इदका बेटा.
सुलतान महम्मदशाहका बेटा.
मीर शाहका बेटा.
अमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा.

सूबे मालवा तथा अकब्बराबाद, लाहोर, मुलतान, अहमदावाद, अजमेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा और जो हाल मेरे तावेके मुलक हैं तथा आंयदा, मुतसद्दी, सूवा, करोरी तथा जगीरदार इन सबोंकों मालुम रहे, कि जो हमारा पूरा इरादा यह है कि सर्व रइयतका मन राजी रखनां. क्योंकि रइयतका जो मन है सो परमेश्वरकी एक बडी अनामत है. और विशेष करकें वृद्ध अवस्थामें मेरा यही इरादा है. कि:– मेरा नला वांछने वाली रइयत सुखी रहे तिस वास्ते हरेक धर्मके लोकोंमेंमें जो अच्छे विचार वाले परमेश्वरकी नक्ति करनेमें अपनी उमर पूरी करते हैं. तिनकों दूर दूर देशोंसें मैंने अपने पास बुलवाये, और तिनकी परीक्षा करकें अपनी सोबतमें रखता हूं. और तिनकी बाते सुनके मैं बहुत खुश होता हूं. तिस वास्ते हमारे सुननेमें आया है कि श्रीहीरविजय सूरि जैन स्वेतांवरमतका आचार्य गुजरातके बंदरोमें परमेश्वरकी नक्ति करता है. मैंने तिनकों अपनें पास बुलवाया. और तिनकी मुलाकात करकें हम बहुत खुश हूए. कितनेक दिन पीछें जब तिनोंनें अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तव अरज करी कि जो गरीबपरवरकी मरजीमें ऐसा हुकुम होना चाहियें कि:– सिद्धाचलजी, गिरनारजी, तारंगाजी, केसरीआनाथजी, तथा आवुजीका पहाड, जो गुजरातमें है. तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफ पार्श्वनाथजी जे बंगालके मुलकमें हैं, तथा पहाड हेठली सर्व मंदिरोंकी कोठीयों तथा सर्व नक्ति करनेकी जगायोंमें, तथा तीर्थकी जगायोंमें जो जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायों सर्व मेरे तावेके मुलकोंमें जिस ठिकाने होवे, उन पहाडों तथा मंदिरोंकी आस पास कोइनी आदमी, कोइ जानवरकों न मारे, यह अरज

करी अब ये बहुत दूरसें हमारे पास आये हैं, और इनकी अरज वाजबी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसलमानी महजबमें (मतसें) विरुद्ध मालुम होती है, तोभी परमेश्वरके पिछाननें वाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है, कि:- कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनोंके रेवाज बहाल रक्खे इस वास्ते यह अरज मेरी समझमें सच्ची मालुम हुइ, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेंसें जैनश्वेतांबरी धर्मवालोंकी है, तिस वास्ते इनकी अरज कबुल करी गइकि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारंगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा आबुका पहाड जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो बंगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोंकी जगायों तथा पहाड नीचें तीर्थकी जगायों जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायों होवे. सो हीरविजय जैनश्वेतांबरी आचार्यकों देनेमें आइ है. और इनोंनें अछीतरेंमें परमेश्वरकी भक्ति करनी चाहिये.

और एक बात यहभी याद रखनी चाहियें जो कि ये जैनश्वेतांबरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैंनें श्रीहीरविजय सूरि आचार्यकों दीनी हैं, परंतु हकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायों जैन श्वेतांबर धर्मवालोंकीही हैं, और जहांतक सूर्यसें दिन रोशन रहे, तथा जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैन श्वेतांबरी धर्मके लोकोंमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनकों हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडों उपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा तीर्थकी जगायोंमें जानवर नहीं मारनां, और इस हुकम ऊपर अमल करनां, इस हुकमसें फिरनां नहीं. तथा नवीन सणंद मांगनी नहीं लिखा तारीक ७ मी माह उरदी बहेस्त मुताबेक माह रबीयुल अवल सन् ३७ जुलसी यह अकब्बर बादशाहके दीये फुरमानकी नकल है.

तथा थानसिंघकी कराइ अपर साह दूजणमल्लकी कराइ श्रीफतेपुरमें अनेक लाख रुपइये लगाके बडे महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा भिराम नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमें करा, फेर वहां बादशाहकी गोष्ट वास्ते

श्रीशांतिचंद्र उपाध्यायकों छोड गये, और आप गुरुजी मेड्डते, नागपुर चौमासा करकें सिरोंही नगरमें गये, तहां नवीन चतुर्मुख प्रासादमें श्री आदिनाथके बिंब तथा श्री अजितनाथके प्रासादमें श्री अजितनाथके बिंबोंकी प्रतिष्ठा करकें अर्बुदाचलमें यात्रा करनेंकों गये, और पीछें श्री शांतिचंद्र उपाध्यायने नवीन कृपारस कोश नामा ग्रंथ बनाके अकब्बर बादशाहकों सुनाया, तिसके सुननेंसें बादशाहनें दयाकी बहुत वृद्धि करी, तिसका स्वरूप यह है किः– बादशाहके जन्मके दिनसें एक मास अरु पर्यूषणाके बारां दिन, तथा सर्व रविवार, तथा सर्वसंक्रांतिके दिन, नवरोजकामास, सर्व ईद केदिन, सर्व मिहर वासरा, सर्व सोफी अनादिन इत्यादि सब मिलकर एक वर्षदिनमें छे महीनें तक जीवहिंसा बंद कराइ, तिसके फुरमान लिखवाए सो फुरमान अबतक हमारें लोकोंके पास हें, इसमें कुछ शंका नहीं कि श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि और उन्नति बहुत करी? मुसलमानोंकोंभी जिनोंनें दयावान करा तथा स्थंभनतीर्थे संवत् (१६४६) में स्थंभनतीर्थवासी शा० तेजपालके बनवाये मंदिरकी प्रतिष्ठा करी.

५९ श्री हीरविजय सूरि पट्ट श्री विजयसेन सूरि हूए इनका (१६०४) वर्षे जन्म (१६१३) वर्षे मातापिता सहित दीक्षा, (१६२६) वर्षे पंडित पद, (१६२८) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६५२) वर्षे भट्टारक पद, (१६७१)वर्षे स्थंभनतीर्थे स्वर्गवास जिनके वेखहरख, अरु परमानंद येदोशिष्योनें अकब्बर बादशाहके बेटे जाहांगीरकों धर्म सुनाकें प्रतिबोधा, और जाहांगीर बादशाहनें फुरमान कराया तिसकी नकल यह है.

नुरुदीन महम्मद. जहांगीर बादशाह. गाजीका फुरमान.	जहांगीरकी मोहरमें वंशावलि. नुरदीनमहम्म जहांगीर बादशाह. अकब्बर बादशाह. हुमायुन बादशाह. बाबर बादशाह. मीरजा उमरशेष. सुलतानअबुसइस. सुलतान मीरजामोहम्मशाह. मीरांशाह. अमीरतैमुर साहिब. किरान.

मेरे सर्वराजके विशेष करकें गुजरातके सूबे, मोटे हाकिम तथा कीफायत करने वाले आमील तथा जागीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोंके कार कुनोंकों मालुम होवे कि जो परमेश्वरके पिछानने वाले लोक हैं, तिनका यह दस्तूर है, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नही बलकि सर्व जीव सुखी रहें, और अब वेखहरख, तथा परमानंद यतीयोंनें इनी यांकी रक्षा करने वालोंकी दरबारमें आकर तखतके पास खडेरहनें वालोंसें अरज करी कि विजयसेन सूरि तथा विजयदेव सूरि और जे अछी बुद्धि वाले लोक हैं, तिनकी हरेक जगें तथा हरेक सहरोमें देहरा अर्थात् जिन मंदिर तथा धर्मशाला है, तिनमें ये लोक ईश्वरकी भक्ति करते हैं औ प्रार्थना करतें हैं, और वेखहरख तथा परमानंद यतीकी परमेश्वरकों राजी रखनेंकी हकीगत हमने अछी तरेंसें जान लीनी है, तिस वास्ते इनीयांकों ताबे करने वाला हुकम हूआ कि:—कोइ आदमीने इन जैनलोकोंके मंदिर तथा धर्मशालामें उतरना नही तथा कारन विना अडचल नही करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा बनाया चाहेंतो तिनकों किसीतरेंकी मनाई तथा हरकत नही करणी और तिनके साधुओंके उपाश्रयोंमें कोइनेभी उतरणा नहीं, और जो ये लोक सोरठके मुलकमें शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करने वास्ते जावें तो कोइभी आदमी तिन यात्रालुओंमे कुछ न मांगे ला लच न करे, और पूर्वोक्त वेखहरख अरु परमानंदयतिकि अरज तथा खाहिस ऊपर हुकम बडा भारी हूआ कि दर अववाडेमें रविवार तथा गुरुवार तथा दर महिनेंमें शुदि पडिवाका रोज तथा इदके दिन तथा दर वर्षमे न वरोज तथा माहशहरयुरमा जे हमारा मुबारक दिन है तिनमें एक एक वर्षके हिसाव प्रमाण मेरे सर्व राज्यमें कोइ जीवकी हिंसा न होवे, तथा शि कार करना तथा पक्षीयोंका पकडनां, मारनां, तथा मछलीयोंका मारनां, ये बंद कीया जावे तथा इस तरेके औरभी काम इन पूर्वोक्त दिनोंमें न होने चाहियें, ये बात जरूर है, जे पूर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशां चलानेकी कोशिश करकें मेरे फुरमानके हुकमसें कोइ फिरे नहीं, विरुद्ध चले नहीं लिखा ता० माह सहर युरमें सन् ३ जुलसी यह फुरमान खाजांहांनके चौपानीयां तथा सेवक अली तकीके वर्त्तमान पत्रमें दाखल हूआ तरजुमा करनेवाला मुनशी सइयद अबदुलामीयां साहिब अरैजी.

६० श्री विजयसेन सूरि पट्टे श्री विजयदेव सूरि हूये तिनका (१६३४) वर्षे जन्म (१६४३) वर्षे दीक्षा. (१६५५) वर्षे पंमित पदं. (१६५६) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग, ६१ श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये तिनका (१६४४) वर्षे जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७३) वर्षे वाचक पद, (१६८२) वर्षे सूरि पदं, (१७०८) वर्षे स्वर्गगतं. ६२ श्री विजयसिंह तथा श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयप्रन सूरि हूये. तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६८९) वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंमित पदं, (१७१०) वर्षे उपाध्याय पदं, (१७१३) वर्षे नट्टारक पदं, (१७४९) वर्षे स्वर्गगमनं, इनोंके समयमें मुहबधे ढूंढीयोंका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैः—

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साहुकार दशाश्रीमालि वसता था, तिसकी फूलां नामें बालविधवा एक बेटीथी. तिसने एक लवजी नामा लडका गोदी लीया, तिस लवजीकों लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते नेजा, तहां यतीयोंकी संगतमें वैराग्य उत्पन्न हूआ. और लुंकेके यती बजरंगजीका शिष्य हूआ, तब दो वर्षे पीछे अपने गुरुकों कहने लगा कि जैसा शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नही पालते हो ? तब गुरुने कहा पंचमकालमें शास्त्रोक्त सर्व क्रिया नहीं हो सकि है. तब लवजीने कहा तुम भ्रष्टाचारी मेरे गुरु नहीं मैंतो आपही संयम फेरकें लेऊंगा इस तरेंका क्लेश करकें ऋषि लवजीने लुंके मतकी गुरु शिक्षा छोडके अपने साथ दो यति और लीए तिसमें एकका नाम नूणा.दूसराका नाम सुखजी इन तीनोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा, और मुंहके ऊपर कपडेकी पट्टी बांधी, तब इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी श्रावकने इनके रहनेकों जगा न दीनी. तब ये उजडे हूये मकानोंमें जा रहे गुजरात देशमें फूटे टूटे मकानकों ढूंढ कहते हैं. इस वास्ते लोकोंने इनका नाम ढूंढिये रक्खा, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें बडे बडे क्लेश नोगने पडे परंतु इनके त्यागकों देखकें कितनेक लुंकेमति इनकों माननेनी लगे, क्योंकि यह नेडचाल जगत्में प्रसिद्ध है, और नोले लोक तो ऊपरली बूगं फूगं देखकें रागी हो जाते हैं, और गुजरातके बहुत लोक ऐसें हठ ग्राही हैंकिः—जो बात पकड लेवें उस बातकों बहुत मुसकलसें छोडते हैं, इसी वास्ते जैनमतमें

केइ फिरके गुजरात देशसेंही निकले हैं. पीछे तिस लवजीका शिष्य अहम दावादके कालुपुरेका वासी उसवाल सोमजी हूआ, तिसने सूर्यकी आत पना बहुत करी. तिसके चेलोंका नाम १ हरिदासजी. २ प्रेमजी. ३ गि रधरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और लुकेमति कुंवरजीके चेलेभी इनके शिष्य बने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जी वाजी, ६ समरथ, ७ तोडुजी. ८ मोहनजी. ९ सदानंदजी, १० गोधा जी, ये एक गुजरातका वासी धर्मदास छींपीनें मुंहमुंहाके मुख ऊपर पट्टी बांधकें अपने आपकों ढूंढिया साधु मशहूर कीया, तिनमें हरिदासका चेला वृंदावन हूआ, और वृंदावनका चेला भुवानीदास हूआ, और भु वानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचंद हूआ, मलूकचंदका महा सिंघ. और महासिंघका कुशालराय और कुशालरायका छजमल, और छ जमलका रामलाल. और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिंह, ये दोनों मनें देखे हैं. अब इन दोनोंके चेले वसंतराय, और रामबकस वगैरे जीते हैं. ये पंजाब देशमें आज काल पडे फिरते हैं.

और जीवाजीका चेला लालचंद हूआ, लालचंदका अमरसिंह हूआ सो मारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोंके चेले अब अजमेर अरु कृष्णगढके जिल्लेमें बहुत रहते हैं, और श्यामिदास जि नोंके परिवारके कन्हीराम, खेखराज, तखतमल, प्रमुख अब मारवाडमें रहते हैं. और जो कोटेबूंदीमें तथा मालवेमें लालचंद, गणेशजी, गोविं दरामजी, हूये, तथा अमीचंद, हुकमचंद, उदयचंद, फतेचंद ग्यानजी छ गन, मगन, देवकरण. अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते हैं. येभी हरिदास केही चेले हैं. तथा अमरसिंघका चेला दीपचंद, दीपचंदका, चेला धर्म दास, धर्मदासका जोगराज, जोगराजका हजारीमल्ल, हजारीमल्लका ला लजीराम, लालजीरामका गंगाराम, गंगारामका जीवणमल्ल, जो इस व खत दिल्लीके आसपासके गामोंमें फिरते है, तथा अमरसिंघके परिवा रमें धनजी, मनजी, नाथुराम, अरु ताराचंदादि हूये, हैं, जिनोंके चेले रतीराम. नंदलाल, हूये. नंदलालका चेला रूपचंद, रूपचंदका विहारी, जोकि पंजाबमें कोट जगरावांदि गामोमे रहिते हैं. तथा कानजी और ध र्मदास छींपीके चेलेयोंमेंसें दीपचंद. गुपालजी प्रमुख ये लींमडी, बढ

वाण, मोरबी, गोंमल, जैतपुर, राजकोट, अमरेली, धांगधरा, प्रमुख झालावाड, काठीयावाड, मछुकांठा प्रमुख देशोंके गामोंमें फिरते रहते हैं. और धर्मदास छींपिका चेला धनाजी, धनाजीका भूदरजी, भूदरजीका रघुनाथजी, जैमलजी, गुमानचंद, डुर्गदास, कन्हीराम, रत्नचंद, हमीरमल्ल, कचोडीमल्ल प्रमुख जो अब मारवाडदेशमें रहते हैं सो प्रसिद्ध है.

और रघुनाथजीका चेला भीखमजी संवत् (१८१८) में हूआ, जिसने तेराहपंथ निकाला तिसके चेले भारमल, हेमजी, रायचंद, जीतमल्ल. जीतमल्लकी गद्दी उपर अब मेघजी है, ये पट्टीबंध जितने साधु हैं. इनका पंथ संवत (१७०७) के सालमें चला है, और इनका मत जबमें निकला है, तबसें ले कर आजपर्यंत इनके मतमें कोइभी विद्वान् नहीं हूआ है. क्योंकि ये लोक कहते हैं कि:– व्याकरण, कोश, काव्य, छंद, अलंकार, पढनेमें तथा तर्कशास्त्र पढनेमें बुद्धि मारी जाती है इस बे इलमीकेही सबबसें ये लोक परस्पर बडा द्वेष रखते हैं. केइ मनमानी कल्पित बाते बना लेते हैं, एक दूसरेके पग नही जमने देते, मनमें जानते हैं कि:– मेरे गृहस्थ चेलोंकों वह लेवेगा? इत्यादि मेरे लिखनेमें किसीकों शंका होवे तो मारवाडमें जाकर प्रत्यक्ष देख लेवे. इनका आचार, व्यवहार, वेष, श्रद्धा, प्ररूपणा, प्रमुख है सो जैनमतके शास्त्रानुसार नहीं है, और दूसरे मतोंवालेभी जो बहुत जैनमतकों बूरा जानते हैं, वो इन ढूंढीयोंके हीके आहार व्यवहारके देखनेमें जानते हैं. परंतु यह लोक तो सर्व जैन मतसें विपरीत चलने वाले हैं, इति ढूंढकमतोत्पत्ति ॥

६३) श्रीविजयप्रभसूरिपट्टे श्रीविजयरत्न सूरि हूए, ६४ श्रीविजयरत्नसूरिपट्टे श्रीविजयक्षमासूरि हूए, ६५ श्रीविजयक्षमा सूरिपट्टे श्रीविजयदयासूरि, ६६ श्रीविजयदयासूरिपट्टे श्रीविजयधर्मसूरि, ६७ श्री विजयधर्मसूरिपट्टे, श्रीजिनेंद्रसूरि, ६८ श्रीजिनेंद्रसूरिपट्टे श्रीदेवेंद्रसूरि, ६९ श्रीदेवेंद्रसूरिपट्टे श्रीविजयधरणेंद्रसूरि, जोकि इस वर्त्तमान कालमें विद्यमान विचरते हैं.

तथा एकसठमे पाटें जो श्रीविजयसिंह सूरिथे तिनका शिष्य श्रीसत्य विजयगणि हूए और महोपाध्याय षटशास्त्रवेत्ता, न्यायविशारद, बिरुदधारक महावैय्याकरण, तार्किकशिरोमणि, बुद्धिका समुद्र महोपाध्याय श्री

यशोविजयगणि इनदोनोंने श्रीविजयसिंहसूरिकी आज्ञा लेकें गछमेंक्रियाशिथिल साधुओंकों देखकें और ढूंढकमतके पाखंम अंधकारके दूर करणे वास्ते क्रिया उद्धार करा, और जिनोंनें काशीके पंमितोंमें जयपत्ताकाका ऊंमा पाया, और गुजरात प्रमुख देशोंसें प्रतिमा उत्थापक कुलिंगीयोंके मतरूप अंधकारकों दूर करा, और जिनोंके रचे हूए (१००) ग्रंथ अध्यात्मसार, स्याद्वादकल्पलता, शास्त्रसमुच्चयकीवृत्ति, मल्लवादी सूरिकृत नयचक्र उद्धारादि, अनेक बडेबडे एक सौ ग्रंथ है.

श्रीगणिसत्यविजयजी क्रिया उद्धार करके श्रीआनंदघनजीके साथ बहुत वर्ष लग वनवासमें रहे, और बडी तपस्या योगाभ्यासादि करा, जब बहुत वृद्ध हो गए, जंघामे चलनेका बल न रहा, तब अणहल पट्टनमे जा रहे तिनके उपदेशमें तिनके दो शिष्य हूए, एक गणिकपूरविजयपंमित, और दूसरा पंमित कुशलविजयजी, तिनमे गणिकपूरविजयजीनेंतो अनेक अर्हंत बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, और अनेक ग्राम नगरोंमें धर्मकी वृद्धि करी, बडे प्रभावक हूए, श्रीगणिकर्पूरविजयजीके दो शिष्य हूए, एक पंमित वृद्धिविजय गणि. दूसरा पंमित क्षमाविजयगणि, श्रीपंमित क्षमाविजयगणिके शिष्य पंमित श्रीजिनविजय गणि, तिनका शिष्य पंमित उत्तमविजयगणि, तिनका शिष्य पंमित पद्मविजयगणि, तिनका शिष्य पंमित रूपविजयगणि, तिनका शिष्य पंमित कीर्त्तिविजयगणी तिनका शिष्य पंमित कस्तूरविजयगणी तिनका शिष्य मुनिमणिविजयगणि, तिनका शिष्य मुनि बुद्धिविजय गणि, तिनका शिष्य पंमित मुक्तिविजय गणि. तिनोंके हाथका दीक्षित लघु गुरु भ्रातृ इस जैनतत्त्वादर्शग्रंथके लिखनेवाला मुनि आत्माराम आनंदविजय नामक हूं इतिगुरावलिसंपूर्ण ॥

अब इस ग्रंथके लिखनेवालेके समयमें इतने नवीनपंथ निकले हैं सो लिखते हैं:— गुजरातदेशमें स्वामी नाराणकापंथ, और बंगालदेशमें ब्रह्मसमाजीयोंका पंथ, और पंजाबदेशमें लोदीहानेंसें दश कोशके अंतरे एक नयणीनामा गाम है तिसमें रहनेवाला जातिका तरकाणसिख तिसके उपदेशमें कूका नामे पंथ, और कोइलमे मौलवी, अहमदशाहका नवीन फिरका, तथा दयानंदसरस्वतीस्वामीका निकाला आर्यसमाजका पंथ इत्यादि अनेकमत पुराने मतोकों छोडके निकाले है, क्योंकि इनोंनें अ

पनी बुद्धि समान प्राचीनोंके करे पुस्तक तथा वेदार्थोंकों नही समझा जेकर इसीतरें नवीन नवीन मत निकलते रहेतो कोइकदिनमे ब्राह्मणादि मताधिकारीयोंकी रोजी मारी जायगी. और धर्म अरु नियम किसिकिसिका कायम रहेगा?

इति श्रीतपगच्छीय मुनिगणिश्री मणिविजय तच्छिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय च्छिष्य मुनि आत्मरामआनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे गुरुआवलि कथन रूप द्वादशः परिच्छेदः संपूर्णः ॥ १२ ॥

॥ इति मुनि श्री आत्माराम आनंद विजयजी विरचित द्वादश परिच्छेद रूप जैनतत्वदर्श ग्रंथः समाप्तः ॥